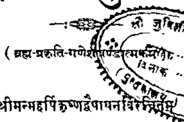
# ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्



( ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डात्मकम् )

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनविरचितम्

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपति पीठत्रयम्भैरवम्,
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्।
वीरान्द्व्यष्ट चतुष्कषष्टि नवकं वीरावलीपञ्चकम्,
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥



५, क्लाइव रो,
कलकत्ता

| वैक्रमाब्दः | प्रथमं संस्करणम् | खृस्ताब्दः |
| --- | --- | --- |
| २०११ | ५००० | १९५४ |

Gurumandal Series No. XIV.

THE

# Brahma Vaivarta Puranam

(Brahm prakriti-Ganeshkhandatmkam).

MAHARSHI KRISHNA DWAIPAYANA VYAS

5, Clive Row,
Calcutta.

Vikram Era. 2011 | First Edition. 5000 | Christian Era. 1954

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ श्री पुराणपुरुषोत्तमाय नमः ॥

# समर्पणम्

श्रीमतां विविधज्ञानविज्ञानविचक्षणप्रभविष्णूनां अशेषशास्त्रपारायणैक-दिव्यचक्षुषां तपसा त्यागेन ब्रह्मवर्चसा शमेन दमेन दयया च प्रकाशित-दिव्यगुणौघानां अजस्रं कर्मभक्तिज्ञानत्रिवेणीधाराप्रवाहाय कृतभगीरथपरि-श्रमाणां समस्तभारते स्वविद्वत्ताप्रकाशेन चमत्कृतानेकविद्वत्परिषत्प्रकर्षोत्कर्षवतां शान्तिस्वरूपाणां अधिभूमण्डलं भागवतधर्मप्रसाराय विजयवैजयन्तीसमुत्तोलन-पराणां नानाविलक्षणयुक्तिवादैरपास्तनिर्विशेषप्रतिपक्षजन्मनां विद्वत्कुलभूषणानां सनातनधर्मधुरन्धराणां वैष्णवाग्रगण्यानां उत्तरप्रतिवादिभयङ्कराणां वाराणसीस्थ जगद्गुरुभगवद्रामानुजाचार्यपीठाधिपतीनां श्रीमतां १००८ पूज्यप्रवर भगवत्पाद श्रीदेवनायकाचार्यस्वामिमहाभागानां करकमलेषु श्रीगुरुमण्डलग्रन्थमालाचतुर्दश-पुष्पोपहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्त्तपुराणमिदं सादरं सविनयञ्च समर्प्यते—

विजयैकादशीदिनम्
विक्रम सं० २०१२।

श्रीमतां चरणसेवकः
श्रद्धाभक्तिविनम्रः—
राधाकृष्ण मोरः
५, क्लाइव रो, कलकत्ता

प्रारम्भे हसितं भुजभ्रमकृतैरान्दोलनैर्विभ्रमम्

मुग्नं बाहुलतोपीपड़नभिया प्रोल्लासने भूभृतः ॥

दत्ताः कृष्णकराब्जशायिनि नगे श्रेयांसि पुष्णन्तु वो

गोपीभिर्भुजवल्लिकङ्कण क्वणत्कारोत्तरास्तालिकाः ॥

## आमुख

श्रीप्रभुकृपा से पूज्य पिताजी की यह दृढ़ निष्ठा रही है कि अप
ने किसी न किसी श्रेष्ठ कर्म के आयोजन में कहीं रहते हुए भी
सफलतातक लगे रहने का ही सदा प्रयत्न किया है। मनुष्य क
लापा है कि जीऊँ, जागूँ, जानूँ, अधिकार समर्थ बनूँ, आनन्
न्न रहूँ। इसकी विशेष व्याख्या तो विद्वज्जन ही करेंगे परन
षणा, धनैषणा और पुत्रैषणा में उस इच्छा का कुछ-कुछ चित्रण
जीवन को प्रशस्त करने में पुरुषार्थी महानुभाव इसमें कृतकार्य होते है
असफल। आपके दो मुख्य सिद्धान्त हैं; संसार में मनुष्य परम
है अपने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की ज्ञानमय चाभी उसे सौंप कर प्रभु
के क्रियाकलाप को देखते हैं। प्राणीमात्र की रक्षा का पूर्ण दा
कर निर्भर हो जाते हैं और उसके श्रेष्ठ कार्यों से प्रसन्न हो सदैव
प्रशस्त करते हैं। इसके साथ-साथ मनुष्य अपनी ओर से
प्रेम का पाठ जगत् के प्राणीमात्र को अपने सद् आचरण

ी को "जीयो और जीने दो" की कला सिखाता है। सृष्टि में कोई भी प्र
रहने पावे इसके लिये अदम्य उत्साह से यथाशक्ति प्रयत्न करता है। इसकी
ा प्राचीनकाल से आरम्भ होकर आजतक जीने जिओ सिद्धमन्त्र करने में
त्र का जप करते हुए भारतीय जनता में हिंसा को नष्ट कर अहिंसा प्र
रूप में रहती आई है।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
[ शुक्ल यजुर्वेद ४० अ० १ मन्त्र ]।

ईश्वर का कथन है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा हैं; इस
रा प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग, जो
ृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है, भोगो। किसी भी प्राणी की शक्ति
धन को) हरण करने की भावना मनमें भी न आने दो। यह क्रम म
ज्ञवल्क्य, पाराशर, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, पुलह और पुलस्त्य आदि मह
भूतियों से स्वीकृत होता हुआ संसार के सभी मतमतान्तरों और सम्प्रदायों
कर सृष्टि के उत्थानकालतक बराबर चलता रहा जो आज भी विश्वसाहि
सन्तवाणी के रूप में भारतीयों के विश्वभ्रातृत्व का उत्कृष्ट उदाहरण औ
हिंसक भावना का अपूर्व आदर्श है। विशेषता यही है कि यह स
मर साधक अरविन्द, महर्षि रमण, विश्ववन्द्य राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, कवी
वीन्द्र और सुप्रसिद्ध अमर सेनानी सुभाष बाबू के ही भारत में विशेषरूप
चलित हुआ। भगवान् बुद्ध, महावीर तीर्थङ्कर और सम्राट् अशोक के ज्वल
ादर्श सिद्धान्तों को आज भी भारत सरकार ने "अहिंसा परमो धर्मः" के ह
अशोक चक्र के राज्यचिह्न के रूप में प्रधानस्थान देकर अपना शान्तिमा
ो प्रशस्त किया है यह एक अभूतपूर्व घटना है। ऐसे सभी वरेण्य मानव औ
के उद्धारक नरपुङ्गवों को हम अपनी श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करते

जिनके निःस्वार्थ विश्वप्रेम ने मानव को दानव एवं पशु होने से सदा बचाया साथ
प्राणिरक्षा के सामने अपने जीवन की भी आहुति दे मानव का गौरव बढ़ाया

दूसरे सिद्धान्त का रूप है शास्त्रप्रचार—इसमें मानव की उदात्त भावनाओं का सभी दिशाओं में विकास होने से जीवनस्तर ऊँचा होगा और सभी प्रकार की आधिव्याधियाँ सृष्टि से विदा हो जायगी। उन्हें यह इष्ट है कि जिस भारतीय साहित्य ने गङ्गा, यमुना, सिन्धु, सरस्वती और पञ्चाम्बु तथा कृष्णा और कावेरी आदि की रज में उद्भूत होकर विश्व का मार्ग दर्शन किया उसका प्रसार आज के विज्ञानयुग में अधिकाधिक प्रकाशन द्वारा कियाजाय। इसी उद्देश्य से आपने अपने गार्हस्थ्यजीवन को कठिन अनुभवों की कसौटी पर कसते हुए गम्भीर मनन और अध्ययन द्वारा शास्त्रचर्चा के व्याज से विद्वत्समुदाय की सहायता से विशुद्ध पवित्र विचारों का सङ्कलन ग्रन्थ 'गृहस्थधर्म' षष्ठ संस्करणात्मक वितरण किया। इसका स्पष्ट प्रभाव हिन्दीभाषी क्षेत्रों में लोकप्रियता और एक अपूर्व धार्मिक क्रान्ति, उत्साह की लहर, एवं जनजागृति के रूप में स्पष्ट हुआ जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमारे ग्रन्थप्रकाशन के सम्बन्ध में प्रतिदिन आनेवाले बीसियों प्रशस्तिपत्र हैं जिनमें कितने हजार तो 'सम्मति और उद्गार' के आकार में गुरुमण्डल के आठवें पुष्प के रूप में सङ्कलित कर दो वर्ष पूर्व प्रकाशित भी किये गये हैं। मुझे आरम्भ से उनके सान्निध्य का लाभ मिला है और इसीलिये उनके अगाध वात्सल्य का पूर्ण अनुभव करने का सुयोग भी। उनकी इच्छानुसार जैसे मैं उनके पदचिह्नों पर चलकर आदर्श नागरिक होने का स्वप्न देखता हूं, उसी प्रकार एक सच्चरित्र पिता में भगवत्सन्निधि समक्ष पालन, पोषण शिक्षा और दीक्षा द्वारा अपने तुच्छ क्रियाकलाप से उनकी आज्ञा में रहते हुए एक आज्ञाकारी पुत्र होने का भी मुझे गौरव मिले इसके लिये प्रयत्नशील रहताहूं। पूज्य पिताजी अपने सत्यवादपूर्ण जीवन में एक ओर तो अजेय हिमालय के समान सिद्धान्तरूप में अडिग हैं तो दूसरी ओर उसीसे निकलनेवाली कलकल शब्द से विश्व को

मुखरित करनेवाली श्वेताभ पवित्र निर्मल गङ्गा के समान अपने में विश्वबन्धुत्व की भावना (सभी प्राणीमात्र के प्रति महानुभूतिपूर्ण उदार भाव) रखते हुए पुष्प से भी कोमल हृदय रखते हैं। अपने आदर्श वाक्य "कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्" के द्वारा उठते-बैठते उन्हें प्राणीमात्र के दुःखको मेटने की याद बनी रहती है और उसीके लिये कृतसङ्कल्प हो दिन-रात भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

विक्रम सम्वत् २०१० के चैत्रमास में जब श्री पितुःश्री स्वास्थ्यसुधार के लिये नवलगढ़ गये हुए थे वहां पर अपने पण्डितद्वय श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी तथा पं० कजोड़ीलाल मिश्र के सहयोग से स्थानीय विद्याविवर्द्धन पुस्तकालय तथा सात्विकजीवनशाला के पुस्तकालय से प्रायः अठारह पुराणों के पारायण का उपक्रम किया। पुराण पूर्ण संख्या में न मिलने के कारण केवल बारह पुराणों की ही आवृत्ति हो सकी। जो लोग आपके स्वाध्याय क्षणों में साथ रहते और उन्हें शास्त्रचर्चा करने का अवसर देते हैं उन्हें शास्त्रीय परम्परानुमोदित नवीन-नवीन अनुसन्धानों से आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। मैं तो अपने पिताजी को ही इस सब का श्रेय दूं तो अत्युक्ति नहीं; फिर भी जिनके निःस्वार्थ कार्यों का सहयोग इन सभी शास्त्रचर्चाओं में हुआ है उन सभी महानुभावों का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूं। हां, तो पिताजी को जो धुन सवार होती है उसे वे करके रहते हैं। मत्स्यपुराण के शङ्खचूड़ आख्यान को बार-बार पढ़ते हुए उन्हें वर्तमान शासन की परिस्थिति और कलहप्रिय प्रजा का दयनीय दृश्य व्याकुल करने लगे। आपने सृष्टि को अपने पूर्व गौरवगाथा का स्मरण करा पुरुषार्थ द्वारा स्वर्गतुल्य बनाने के लिये 'मानवजीवन और अहिंसा;' 'गृहस्थधर्म के सिद्धान्त' और 'सृष्टि की रक्षिका मातृजाति' शीर्षक से कई लेखमालायें कलकत्ता के दैनिक 'सन्मार्ग', 'लोकमान्य' एवं 'विश्वबन्धु' पत्रों में निकाली। फिर तो मूल से ही सबको मानवता का अमूल्य सन्देश मिले इस आशय से पुराणों के प्रकाशन का श्रीगणेश का

सार जहां व्यवसाय, वाणिज्य और उद्योगधन्धों में उनके आज्ञाकार
यावनत पुत्र के रूप में आदेश पालन करने का मैं अधिकारी हूं वहां घर
ो कार्यों में उनका आदेश ईश्वराज्ञा रूप में ही हमें इष्ट होता है। यही बात
प्रकाशन के प्रस्ताव के समय भी हुई। कलकत्ते में बाबूजी के अन्यतम
कर्ता और उनके निरुक्त स्मृति सन्दर्भ के सम्पादन में कार्य करनेवाले अपना
जीवन का उपयोग शास्त्रों के स्वाध्याय में लगानेवाले श्री रामनाथदाधीच शास्त्री
गढ़ निवासी ने निरन्तर परिश्रम कर बाबूजी के स्वदेशावास के सात मास
ल्प अवधि में दश हजार श्लोकों के प्रथम पुराण ब्रह्मपुराण को प्रकाशित
का प्रयत्न किया। अपने उत्साह की सीमा का अक्रिमण कर श्रीमान् बाबूजी,
थ्य में सुधार होते ही पुराण-परिचय से अपनी भूमिका तैयार की। इसमें
हों पुराणों की संक्षिप्त विषय-सूची बड़ी गवेषणा और प्रामाणिकता के साथ
गई। आपका यह लेख वास्तव में पुराणोक्त परिचय के सम्बन्ध में नई
। यह प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के पुराण एवं भारतीय समाज के प्रति
सम्माननीय सामयिक उद्धरणों से बहुत ही गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं मननीय सामग्री
प्रस्तुत करता है। विषय की प्रगल्भता और दुरूहता से लम्बा होने पर भी पाठ्य-
वस्तु का क्रम पठनीय है साथ ही चारों ओर के पुष्ट प्रमाणों द्वारा उसकी प्रतिपादन
शैली विशेष प्रौढ़ हो गई है। वास्तव में पुराणों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण आवश्यक
सामग्री से सुसज्जित पूर्ण परिचय देनेवाली अपने ढंग की यह एक अभिनव रचना है।

सदा की तरह ही इन महान् ग्रन्थों के प्रकाशन के प्रेरक श्रीमान्
पिताजी की इस ब्रह्मवैवर्त महापुराण के विषयों को ध्यान में रखते हुए
क ही मान्यता रही है कि जो पाश्चात्य राष्ट्र शास्त्रचर्चा को तिलाञ्जलि
कर शस्त्र के बल पर परमाणु एवं उद्रजन जैसे संहारास्त्रों के हिंसक प्रयोगों
बल पर शान्ति सुरक्षा और न्याय का दम भरते हैं उनकी आंखें खोली
य तथा उनका अनुकरण करनेवाली मध्यपूर्व, पूर्व और सुदूरपूर्व दक्षिण-पूर्वी

एशिया के अल्पविकसित आत्मनिर्भरता के पथ को प्रशस्त करनेवाले राष्ट्रों को नव जागरण के प्रभात में ही इस अमूल्य देन से सत्य मार्ग दर्शन हो; जिसकी आधार शिला विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, कल्याण और अहिंसा के अमर सन्देश देनेवाले इस ब्रह्माण्ड के प्राण इन महापुराणों के पारायण से मन्थन की हुई विचारधारा हो और जनताजनार्दन सच्चे अर्थों में मानवी गुणों को अपनाकर लोकहित में अपना पराया न समझकर लग जाय। इसी उद्देश्य से यह बृहत्प्रकाशन सेवा में प्रस्तुत है।

वैसे तो "न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते" इस अभियुक्तोक्ति के अनुसार किसी प्रकार विद्वत्समुदाय के सामने ब्रह्मवैवर्त के विषयों के लिये निवेदन करना सूर्य को दीपक दिखाना है फिर भी प्रसङ्गवश ब्रह्मवैवर्त के विभिन्न खण्डों का परिचय देना आवश्यक है। यह महापुराण सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार और वैष्णवों के हृदय का हार है। इसके प्रतिपाद्य गोलोकनाथ परब्रह्म आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिकाजी हैं जो नित्य ही गोलोक में गोगोपीगोपगण के साथ रासक्रीड़ा करते हुए सहृदय भक्तगण को अपूर्व अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं। इसमें चार खण्ड हैं—प्रथम ब्रह्मखण्ड द्वितीय प्रकृतिखण्ड; तृतीय गणेशखण्ड और चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्ड है—

सारभूतंपुराणेषु ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वं तत्त्वज्ञानविवर्द्धनम्। कामिनां कामदञ्चेदं मुमुक्षूणाञ्चमोक्षदम्। भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरूपकम्। ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम्। ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत्परात्परम्।

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्।
ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्॥
जीवकर्मविपाकश्च शालग्रामनिरूपणम्।
तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम्॥

कीर्त्तेरुत्कीर्त्तनं तासां प्रभावश्च निरूपितः।
सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत्स्थानं शुभाशुभम्॥
वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणन्ततः।
ततो गणेशखण्डे च तज्जन्मपरिकीर्तितम्॥
अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम्॥५२॥
गणेशभृगुसम्वादमर्वतत्त्वनिरूपणम्।
निगूढकवचस्तोत्र मन्त्रतन्त्रनिरूपणम्॥५३॥
श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च कीर्तितञ्च ततःपरम्।
भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीष्णजन्मकर्म च॥
भुवो भारावतरणं क्रीड़ाकौतुकमङ्गलम्।
सतां सेतुविधानञ्च जन्मखण्डनिरूपितम्॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम्।
विवृतं ब्रह्मकात्स्न्यञ्च कृष्णेन यत्र शौनक!॥
ब्रह्मवैवर्त्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः॥
( उपक्रमाध्यायः )

इस बार ब्रह्मवैवर्त में विषय-सूची बहुत विस्तार से हिन्दी भाषाभाषी नता के लाभार्थ दी गई है। आशा है, पुराण-प्रेमियों को इससे सन्तोष होगा। भी कुछ समय से ब्रह्मवैवर्त के तृतीयखण्ड का एक काशीरहस्यभाग बनारस से लने की आशा है जो सम्पूर्ण ग्रन्थ को साङ्गोपाङ्ग बनाने और अबतक के पे ब्रह्मवैवर्त के संस्करणों में विशिष्टता रखनेवाला होगा। भगवत्कृपा से सको परिशिष्टरूप से ही सम्मिलित करने का विचार है इसके लिये हम श्रद्धेय ग्भिषाचार्य प्रतिवादिभयंकर श्रीदेवनायकाचार्यजी महाराज भगवद्रामानुजपीठा-

धिपति, राजमन्दिर, बनारस के शुभाशीर्वाद से अनुगृहीत हुए हैं। इस ग्रन्थ
सादर समर्पण उन्हीं आचार्यश्री के करकमलों में अर्पित कर मैं अपना कर्तव्य
पालन कर सन्तुष्ट होता हूं। अब इसके प्रकाशन के सम्बन्ध में दो शब्दों
उपसंहार करना चाहता हूं।

इतने बड़े विस्तार को लेकर संस्कृत के ग्रन्थों का सम्पादन वैसे ही कठि
है। प्रूफ संशोधन, भूमिका लेखन, विषय-सूची और शुद्धिपत्र तैयार कर
में हमारे श्री मोरप्राच्य शोधप्रतिष्ठान की विद्वन्मण्डली का पूर्ण सहयोग रहा है
प्रभु उन्हें हमारे इस कार्य की पूर्णता के लिये सतत सम्पन्न और क्षमता प्रदा
करते रहें और उनका सदा ही हमें पूर्ण सहयोग मिलता रहे यही शुभ कामन
है। पूज्यपाद १००८ श्रीमान् गुरुवर्य आचार्य करुणामय सरस्वती और राजगु
पण्डित हरिदत्तजी शास्त्री देहरादून का कृतज्ञतापूर्ण आभार मानता हूं। उभ
विद्वद्धुरन्धर हैं इनके प्रकाण्ड पाण्डित्य, अद्भुत विवेचन, प्रतिभा,, विलक्षण स्मृति
अपूर्व मेधा और विचित्र वाग्वैदग्ध्य पूर्ण समन्वय शक्ति से हमें शङ्कास्थलों प
विशेष प्रमाणों द्वारा सन्देह निवृत्ति के लिये अवसर और शुभाशीर्वा
मिला है।

पुनः अपने सभी अनुग्राहक सम्मान्य पाठक महानुभावों से अपनी भूलों
के लिये प्रार्थना करते हुए आप सभी को अमूल्य सत्परामर्शों के लिये वारम्बार
साग्रह अनुरोध करता हूं जिनसे हमें भूलसुधार में सहायता मिलती रहे। अब
आप सभी गुणग्रहणैक पक्षपाती महानुभावों की सेवा में अपने परिवार की यह
अनुपम भेंट 'पुरा नवं भवति' कहते हुए मुझे आत्मसन्तोष एवं गौरव अनुभव

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप सभी महानुभाव हमारी अपूर्णताओं को क्षमा करते हुए प्रतिदिन इस दिव्यवाणी के स्वाध्याय प्रसार द्वारा इस परिश्रम को सफल बनायेंगे और जो कुछ तुच्छ सेवा हमसे होगी उससे उन पुराणवक्ता महर्षिकल्प आचार्यों के आदर्शवाक्यों से जनता का विशेष हित सम्पादन करेंगे।

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये"

कार्तिक शुक्ला
देवोत्थापिनी एकादशी
विक्रम सम्वत् २०११

विद्वज्जनचरणसेवक—
राधाकृष्ण मोर
५, हाइड रो, कलकत्ता।

श्रीराधाकृष्णौ प्रसीदेताम्

# सम्पादकीयं निवेदनम्

श्रीभगवत्कृपया वैष्णवहृदयहारीभूतं श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणं सहृदयधुरीणा
विद्वज्जनचूडामणीनां करकमलेषु प्रसूयमाना नितरां हृदयतोषं प्रसन्नताञ्चाऽनुभवाम
ग्रन्थेऽस्मिन् कियता विस्तारेण ज्ञानकर्मोपासनरहस्यानां गूढतमं तत्त्वं सवि
प्रकटीकृतमिति विद्वांस एवाऽवगच्छन्ति। गमिष्यन्ति च ग्रन्थस्य पारं प्रतिदिनं पा
यणैकशीलाः कृष्णभक्तिविलसितदेहभाजः सज्जनाः। श्रीमतां भगवत्पाद रामानु
चार्यपीठाधिपतिनां वाराणसेयप्रतिवादिभयङ्करेत्यादिविविधविरुदोपेतानां श्री१०
देवनायकाचार्यस्वामिमहाभानां करकमलेषु समर्पयन्तः श्रेष्ठिप्रवरवैदिकविचा
चर्चापरायणैक शास्त्रव्यवस्था प्रकाशननिपुणानां गीर्वाणवाणीसेवासक्तस्वनामध
श्रीमनसुखरायमोरमहोदयानां ज्येष्ठसुपुत्राः श्रीराधाकृष्णमोरमहाशयाः नित
धन्यवादार्हाः। स्थाने एव यत्सद्धर्मप्रचाराय कृतस्य प्रयत्नस्य पूर्ण
गोविन्दगुणानुवादकीर्तनपरायणानां विद्वद्धुरन्धराणां श्रीस्वामिसदृशाचार्यचरणा
कृतेऽपूर्वज्ञानविज्ञाननिधानयोः श्रीराधाकृष्णयोर्भक्तिप्रसङ्गात्मकस्य पुराणस्यास्य सम
विश्वकल्याणकारणपरमिति निश्चिनुमः। आशास्महेऽस्माकं भ्रमप्रमादालस्या
दोषवशाद्ग्रन्थेऽस्मिन् त्रुटयः स्युस्ताः गुणग्रहणैकपक्षपातिनो विद्वांसो नि
संशोधयन्त्वार्धयिष्यन्तीति।

॥श्रीगणेशाय नमः॥

# ब्रह्मवैवर्तपुराण की विषय-सूची

## ब्रह्मखण्ड

| अध्याय | विषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देवाः प्रणमामि तं विभुम्॥

### अनुक्रमणिकाऽध्यायवर्णनम्

नारायण, नर, नरोत्तम तथा देवी सरस्वती को प्रणाम कर जय (पुराण) पाठ करे। नैमिषारण्यक्षेत्र में शौनकादि ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि आप कहाँ से आये हैं आपके दर्शन से ही हमारा पुण्य दिन हुआ है पुराण कथाओं में सर्वश्रेष्ठ है तथा सब पुराणों को जानते हैं इसलिये भगवान् में हमारी निश्चल भक्ति हो ऐसे पुराण का वर्णन कीजिये। सृष्टि की ... साकार एवं निराकार का वर्णन, वैष्णव भक्त सदा ध्यान करते हैं तथा ... सदा ध्यान करते हैं, प्रकृति का आकार, गुणों का ..., ... गोलोक का तथा वैकुण्ठ लोक का वर्णन, ... प्रकृति की कलाओं का चरित्र तथा ..., दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री ... के आख्यान का वर्णन, जीवों के कर्मों का विपाक, नरकों का वर्णन, ... तथा उनके मोक्ष तथा प्रशंसा, तुलसी, ..., गंगा, ईश्वरी और

शालग्रामशिला की कथा, धर्माधर्म का वर्णन, गणेश का चरित्र तथा स्तोत्र-कव
एवं मन्त्र तथा श्रीकृष्ण भगवान के जन्म चरित्रों का वर्णन कीजिये।

सूतजी ने कहा—शौनकजी! आपके प्रश्न को मैं भली भांति समझ गया। आपका प्रश्न ब्रह्मवैवर्त पुराण विषयक है। इसमें (१) ब्रह्मखण्ड में परब्रह्म का वर्णन जिसका ध्यान वैष्णव, योगिराज तथा सन्त करते हैं इन तीनों में कोई भेद नहीं।

सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः।
वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः॥

इसी खण्ड में देवी, देव तथा सर्व जीवों की उत्पत्ति का वर्णन है।

(२) प्रकृति खण्ड में—देवियों का चरित्र, जीवों का कर्मविपाक, शालग्राम का वर्णन, कवच, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा का वर्णन, प्रकृति का लक्षण सुकर्मी तथा दुष्कर्मी मनुष्यों के स्थानों का वर्णन, शुभाशुभ का वर्णन और नरकों का वर्णन किया है।

(३) गणेश खण्ड में—गणेश का जन्म तथा गणेश के अपूर्व चरित्रों का वर्णन, गणेश और भृगु का संवाद और शुभ स्तोत्र मन्त्रतन्त्र कवचादिकों का वर्णन किया है।

(४) श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में—भारत में श्रीकृष्ण का जन्म तथा कर्म, और पृथ्वी का भारहरण एवं सज्जनों की मर्यादा का विधान वर्णित है।

हे शौनकजी! इस प्रकार चारखण्डों से युक्त सर्व धर्मों का सारभूत, पुराणों में श्रेष्ठ, सब आशाओं की पूर्ति करनेवाला यह ब्रह्मवैवर्त पुराण है। इसको सर्व प्रथम श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा को दिया। ब्रह्माजी ने महातीर्थ पुष्कर में धर्म को, धर्म ने अपने पुत्र नारायण को, नारायण ने नारदजी को और नारदजी ने व्यासजी को दिया। व्यासजी ने इस पुराण सूत्र को मुझे दिया और मैंने आपसे कहा। इसमें अट्ठारह हजार पाठ हैं सम्पूर्ण पुराण के श्रवण से जो फल मिलता है वह इस अध्याय [illegible] ने मिल जाता है।

२ परब्रह्मनिरूपणम्

शौनकजी के प्रश्न करने पर कि ब्रह्म का निरूपण कीजिये तब सौ सृष्टि के उपादान कारण रूप में उसका प्रतिपादन किया और नाना लोक स्थिति बतलाई।

३ सृष्टिनिरूपणम् ४

सृष्टि के रचना के सम्बन्ध में कई प्रचलित मत हैं कोई पहले जलजन्तु व पशुपक्षियों की उत्पत्ति बताते हैं और बन्दर मानुष आदि के बाद मनुष्य त पहुँचते हैं। कोई कहते हैं कि अनादि परम्परा प्राप्त इस क्रम का पूरा पता अ मिलना कठिन है अनुसन्धान चल रहा है। यहाँ ब्रह्मवैवर्त के मतानुसार सृ प्रक्रिया का सामयिक निरूपण पठनीय है :—

सृष्टि के आरम्भ में सम्पूर्ण विश्व शून्यमय निर्जन्तु होकर अन्धकारपू था; न कहीं वृक्ष थे न पर्वत और न नदी नदादि का कहीं नाम था। जब महा हिरण्यगर्भ ने अपने आपको अकेला देखा तो स्वेच्छा से "एकोऽहं बहु स्याम्" की भावना का प्रस्फुरण हुआ। उसके साथ ही सृष्टि के कारणस्वरूप मूर्तिमान् तीनों गुण आविर्भूत हुए; फिर महान् अहंकार, पञ्चतन्मात्रा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के साथ उत्पन्न हुए। फिर भगवान् नारायण स्वयं आविर्भूत हुए। वे भगवान् श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। माधव वाम पार्श्व से पाँच मुख एवं तीन नेत्रवाले शङ्करजी का आविर्भाव हुआ उन्होंने शङ्करजी की यही स्तुति की।

सौतिजी ने कहा फिर भगवान् श्रीकृष्ण के नाभि कमल से महातपस्वी ब्रह्माजी का तथा वक्षस्थल से धर्म का आविर्भाव हुआ। वाम पार्श्व से कन्या आविर्भूत हुई, जो साक्षात् सरस्वती हो थी उनके मन से महालक्ष्मीजीव परमात्मा की बुद्धि से सर्वाधिष्ठातृ देवी मूल प्रकृति का आविर्भाव हुआ उनसे।

निद्रा, तृष्णा, क्षुत्पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि हुए। वह आदिशक्ति समस्त पार्षद और आयुधों के साथ भगवती साक्षात् ही श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी और आदि शक्ति वहीं विराजमान हो गई।

## ४ सृष्टि निरूपणम् १२

प्रभु के रसना के आगे के भाग से देवी सावित्री का आविर्भाव हुआ और फिर मानस से एक पुरुष मन्मथ कामदेव हुए उनके वाम पार्श्व से सबको मोहने वाली रति हुई, उसके पास मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण, और उन्मादन नामक पाँच वाण थे, उसने उन वाणों की परीक्षा लेने के लिये उन्हें छोड़ दिया जिससे सभी काम के वशीभूत हो गये। इसी समय अग्नि का आविर्भाव हुआ इस लपेटे में ब्रह्माजी आ गये उसको शान्त करने के लिये भगवान् ने जल को रचा एवं उसका अधिष्ठाता वरुण को बनाया। अग्नि के वाम भाग से एक कन्या का आविर्भाव हुआ जिसे अग्नि की पत्नी स्वाहा नाम दिया गया। वरुण के वामपार्श्व में वरुणानी और विभु के निःश्वास वायु से पवन का आविर्भाव हुआ उसकी पत्नी भी। कृष्ण के काम वाण से वीर्यपात हुआ एक हजार वर्ष तक वह डिम्ब रूप में रहा तब महान् विराट् हुए जो सम्पूर्ण विश्वों का आधार है जिसके एक लोमविवर में सारा विश्व व्यवस्थित है। बड़े भारी समुद्र में शयन करते हुए भगवान् विष्णु के कान से दो दैत्य पैदा हुए और ब्रह्मा को ज्योंही मारना चाहा कि विष्णु ने उन्हें मार डाला।

## ५ सृष्टिप्रकारवर्णनम् १४

शौनकजी का प्रश्न "क्या गौ, गोप, गोपी और सभी उनके सहचर गोलोक में नित्य हैं कि कल्पित हैं? इस पर सौति ने काल मान बतलाते हुए सृष्टि की स्थिति बतलाई। इसके अनन्तर गोलोक का वर्णन, गोलोक के रासमण्डल में रास का सुन्दर [illegible] अधिष्ठात्री रासेश्वरी राधा का वर्णन, वहीं पर

गोप, गोपी, गाय, वत्स और उनके उपकरणों का सुन्दर वर्णन। फिर दिक्पाल डाकिनी, योगिनी आदि की उत्पत्ति का वर्णन।

६ सृष्टिप्रकरणम्

श्रीकृष्ण भगवान् ने नारायण के लिये सादर महालक्ष्मी और महासरस्वती सावित्री को ब्रह्माजी के लिये, मूर्ति को धर्म के लिये, रति को कामदेव के लि मनोरमा को कुबेर के लिये और अन्यान्य पुरुष देवताओं को उन-उन स्त्री गण को आदरपूर्वक दे दिया। शङ्कर जी को भगवती सिंहवाहिनी (अमितपराक्र शीला) देदी। इस पर भगवान् शङ्कर ने प्रार्थना कर इस अनुपम भेंट को भगव की भक्ति में बाधक बताकर टालने को कहा।

तपस्याच्छन्नरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम्। भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम्
शश्वद्विबुद्धिजननीं सद्बुद्धिच्छेदकारिणीम्।
शश्वद्भिमागसाराञ्च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम्॥
नेच्छामि गृहिणीं नाथ! वरं देहि मदीप्सितम्॥

यह गृहिणी का समागम संसाररूपी घोर कारावास में हथकड़ी बेड़ी क काम करती है। सद्बुद्धि को छेदन करती है विषयों के प्रति इच्छा को बढ़ाने वाली है अतः हे नाथ गृहिणी को मैं नहीं चाहता। कृपया मेरा इच्छित वर मुझे दीजिये। आपके चरणों के सेवन, पूजन, वन्दन, और नाम कीर्तन से बढ़कर संसार में दूसरी कोई वस्तु मैं नहीं चाहता। सारी कल्पावस्था तक आपके ध्यान में लगा रहकर नवधा भक्ति ही मेरे जीवन का लक्ष्य हो। यह मेरी कामना है।

"त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्तने। सदोह्लसितमेपाञ्च विरतौ विरतिं लभेत्॥१४॥
स्मरणं कीर्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः। त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम्॥१५॥
समर्पणञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम्। वरं वरेश! देहीदं नवधा भक्तिलक्षणम्॥"

शान्ति, मारोहन, स्तम्भन, उच्चाटन, मारण और ...ता में ही प्रकार की क्रियाएं एवं १८ सिद्धियां हैं, सम्पूर्ण वैभव, ऐश्वर्य, सिन्दूर और सिन्दार ... शक्ति भी १६ वीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते।

शङ्करजी को भगवान कृष्ण का वरदान कि इस महाशक्ति शिवा के साथ तुम्हारा त्रिकालाबाधित सम्बन्ध सदा ही बना रहे। जो दुर्गा (नारायणी) होती है वह स्वामी के लिये कल्याणकारिणी बन जाती है वाकी तो पुत्र की उत्पत्ति में आने ...द से पुत्र पौत्र की उन्नति कर पति का सर्वथा कल्याण करती है। शिव नाम की महिमा और शिवभक्त भगवान् कृष्ण को अत्यन्त ही प्रिय है। सिद्धादिनी को कृष्ण भगवान् ने अपने यहां रखकर कहा कि कल्प के बाद में सत्ययुग के प्रारम्भ में दक्ष की कन्या बन तुम शङ्कर की स्त्री बनोगी उसी जन्म में सती के रूप में शरीर को त्यागकर हिमालय की पत्नी के पार्वती रूप में आविर्भूत होकर शम्भु के साथ विहार करोगी। सम्पूर्ण विश्व में शरत्काल में प्रति वर्ष सर्वत्र तुम्हारी पूजा हुआ करेगी, उसमें भगवती के पूजन करनेवाले को यश, कीर्ति, धर्म और ऐश्वर्य सब कुछ मिलेगा श्रीमाया काम बीज भगवती को दिया। ऐसे ही कामदेव, वरुण, कुबेर आदि को नानामन्त्र और सिद्धियां दी तथा विदा किया स्वयं वृन्दावन में गोपी एवं गोपों के साथ निवास करने चले आये।

## ७ सृष्टिप्रकरणम् २२

ब्रह्माजी ने मधु-कैटभ के मेद से तपस्या कर पृथ्वी को रच आठ पर्वत समुद्र, नदी, नद, वृक्ष, वनस्पति, ग्राम, नगर सभी बनाये।

"लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान्"

सात ऊर्ध्वलोक, सात पाताल, सप्तद्वीप बनाये इनकी गणना सम्भव नहीं। ये सब अनादि परम्परावच्छेदेन कृत्रिम और स्वप्न के समान अनित्य नश्वर हैं केवल वैकुण्ठ और शिवलोक से ऊपर गोलोक ही नित्य है।

## ८ सृष्टिप्रकरणम् २३

सृष्टि रचने के बाद सावित्री के गर्भ से ब्रह्माजी ने मनोहर चारों वेदों, शास्त्रों, व्याकरण, एवं न्यायादि को ३६ राग एवं रागिणी चारों युग—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलहप्रधान कलि बनाये। वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण, रात, दिन, वार, सन्ध्या, प्रातःकाल, मातृका, चारों प्रलयकाल, मृत्युकन्यका और व्याधिगण को उत्पन्न कर उन्हें पोषित किया। ब्रह्माजी के पीठ से अलक्ष्मी हुई। नाभि से विश्वकर्मा जो शिल्पी जाति के गुरु हुए। आठ वसु चारों कुमार आदि नाना अङ्गों से हुए। स्वायम्भुव मनु और शतरूपा मनुष्यों के उत्पादन करने में प्रवृत्त हुए। ऋषियों की उत्पत्ति। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, अङ्गिरा, रुचि, भृगु, दक्ष, कर्दम, पञ्चशिख, वोढु, नारद, मरीचि, वशिष्ठ, हंस और यति हुए इन्हें सन्तान की वृद्धि का ब्रह्मा ने आदेश दिया। फिर नारदजी ने विषयरूपी विष एवं भक्ति रूपी अमृत की तुलना कर इन महर्षियों को बचाकर रखने के लिये अनुरोधपूर्वक निवेदन किया। इसपर ब्रह्माजी ने शाप दिया कि तूँ नाना जन्मों में भिन्न-भिन्न योनि ग्रहण कर अन्त में लोगों को ज्ञान बाँटता फिरेगा इस पर नारदजी ने क्षमा-प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण की भक्ति का माहात्म्य।

## ९ ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम् २६

ब्रह्माजी ने अपने सब पुत्रों को सृष्टि सञ्चालन का आदेश दिया। मरीचि महर्षि के मानस पुत्र कश्यप प्रजापति हुए। अत्रि के नेत्रों के मल से समुद्र में चन्द्रमा उत्पन्न हुए। पुलस्त्यजी के मानसपुत्र मैत्रावरुण हुए मनु के शतरूपा में तीन कन्यायें हुईं आकूति, देवहूति और प्रसूति जो परम प्रसिद्ध पतिव्रता हुईं तथा प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुआ जो परम धार्मिक

र प्रसिद्ध हुआ। मनुजी ने आकूति को रुचि नामक ऋषिको व प्रसूति को
तापति दक्षको एवं देवहूति को कर्दम ऋषि को दिया जिसके गर्भ से भगवान्
ख्याचार्य कपिल हुये। प्रसूति में दक्ष के सकाश से ६० कन्यायें पैदा हुईं जिनमें
८ धर्म को, ११ रुद्र को, १ सती शिवजी को, १३ कश्यपजी को और बाकी २७
न्द्रमा को प्रदान कीं। दक्ष कन्याओं के नाम एवं वंश का वर्णन। इस प्रकार
जी ने सृष्टि क्रम का सुन्दर वर्णन किया।



भृगुजी के पुत्र च्यवन और शुक्र हुए, क्रतु की क्रिया नाम की स्त्री से
लखिल्य हुए। अङ्गिरा के तीन पुत्र हुए बृहस्पति, उतथ्य और शंम्बर।
सिष्ठ के पुत्र शक्ति हुए उनके पराशर हुए उनके सुपुत्र महाभागवत कृष्ण-
पायन साक्षात् भगवान् व्यासजी हुए। व्यासजी के शिवजी के अंशरूप ज्ञानी
वर शुकदेवजी हुए। पुलस्त्य के विश्वश्रवा और उसके धनेश्वर नामक पुत्र हुआ।
विश्वश्रवा के पुत्र कुवेर, रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण हुए। पुलह के पुत्र
गस्त्य और रुचि के शाण्डिल्य हुए, इनके पांच गोत्रवाले नाना जन हुए, ब्रह्मा के
ख से ब्राह्मण जातियाँ बाहुदेश से क्षत्रिय जातियाँ जङ्घा से वैश्य और पैर से
द्र जातियां हुईं। (विशाल ब्रह्माण्ड में सभी वर्णों का विशिष्ट स्थान है इनमें
छोटे बड़े का कोई अन्तर नहीं सभी मानव अपने-अपने कर्मों से सुगति और
र्गति को प्राप्त होते हैं।) उनकी संकरता से नाना वर्णसंकर जातियाँ हुईं।
शिष्ट जातियाँ और सच्छूद्र आदि की उत्पत्ति का इतिहास। सङ्कर जातियों
ी उत्पत्ति का विवरण एवं जातियों के सम्बन्ध में निर्णय।

११ विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा ४०

सुतपा नामक ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या एक लाख वर्ष तक की। कृष्ण की अलौकिक ज्योति का उसे अकस्मात् दर्शन हुआ और आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मण तुम मोक्ष मत मांगना केवल लोकव्यवहार की परम्परा के लिये विवाह करो बाद में अपनी भक्ति और दास्य मैं तुम्हें दूँगा। स्वयं ब्रह्मा ने पितरों की मानसी कन्या को उसे दिया उसमें ब्राह्मण के द्वारा कल्याणमित्र का जन्म हुआ। इस महापुरुष के स्मरण करने से वज्र से भी भय नहीं रहता। वैष्णव ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने से भगवान् नारायण स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं। ब्राह्मण प्रशंसा के पद। विष्णुमन्त्र की दीक्षा गुरु से लेने से ही सब तरह की सिद्धि होती है।

१२ गन्धर्वराजस्य प्रशंसा ४२

उपबर्हण गन्धर्व के रूप में नारदजी का जन्म। पूर्व जन्म में नारदजी ने पिता के साथ विरोधकर क्या किया और उसका परिणाम सुनाने के लिये शौनकजी की प्रार्थना पर सौति ने बताया कि ब्रह्माजी की पूजा पुत्रों के शाप देने से नहीं होती है। इसीलिये ब्रह्माजी की आराधना भी विद्वान् लोग नहीं करते। नारदजी जिस प्रकार गुरुजनों के शाप से गन्धर्व हुए उसकी कथा का प्रसङ्ग। गन्धर्व होकर भी वैभव हुआ परन्तु पुत्र न हुआ इसपर गुरुजी की आज्ञा से उन्होंने पुष्कर तीर्थ में भगवान् शङ्करजी की तपस्या की। भगवान् शङ्करजी का मन्त्र उसे गुरुदेव वशिष्ठ ने दिया था। दिव्य सौ वर्ष तक उसका जप करता हुआ गन्धर्वराज अन्त में शिवजी को प्रसन्न करने में सफल हुआ भगवान् चन्द्रशेखर ने उसे वर मांगने को कहा तो गन्धर्व ने हरि भक्ति औरपरम भागवत पुत्र की याचना की। भगवान् शङ्कर ने कहा कि श्रीकृष्ण की आराधना करनेवाले को कभी कोई पाप ताप नहीं सता सकता अतः तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो

न्तु तुम दूसरा वर मांगो। गन्धर्वराज ने अपने पहले वरों की पूर्ति न होने पर
ार काट कर चढ़ाने की धमकी दी। तब भक्तों के ऊपर दया करनेवाले भगवान
ङ्कर ने पुत्र रत्न की प्राप्ति का सुन्दर वरदान दिया और अन्तर्धान कर गये।

१३ उपबर्हणमरणादि मालावत्या विलापकथनम् ४१

गन्धर्वराज के पुत्र उपबर्हण को भी गुरु दीक्षा पर भगवान् विष्णु का मन्त्र
मिला। एक बार गन्धर्वों की ५० पत्नियों ने उस युवक को इस प्रकार सुन्दर
रूप में देख कर मूर्छित होकर योग से प्राण छोड़ नया जन्म धारण कर चित्ररथ
की कन्याओं के रूप में जन्म लिया। बड़ी होनेपर उन्होंने उपबर्हण गन्धर्व को
अपना पति वर लिया जब यह सानन्द तीन लाख वर्ष तक जीवन बिताकर
भगवान् में मन लगाने की तैयारी कर रहा था तो रम्भा के नव यौवन को देखकर
उसका वीर्य स्खलन हो गया। इसपर ब्रह्माजी ने उसे शूद्र योनि की गति पाने का
शाप दिया। उस गन्धर्व ने योग के द्वारा अपना शरीर छोड़ा और उसकी
पचास रानियों में प्रधान महिषी ने पति विरह में मार्मिक विलाप किया।

१४ विष्णुमालावतीसम्वादवर्णनम् ५०

ब्राह्मण बालक के वेश में भगवान् विष्णु का मालावती के पास आना और
उस ब्राह्मण बालक का मालावती के साथ सम्वाद होने के प्रसङ्ग में कर्मफल
का कथन।

१५ मालावतीकालपुरुषसम्वादवर्णनम् ५२

ब्राह्मण ने रोग और व्याधि का बीज शास्त्रानुसार बताकर उसके दूर करने
के उपाय बताये। मालावती के सामने कालपुरुष को प्रगट किया गया। व्याधि
समूह और यमराज सभी उपस्थित हुए। मालावती ने खुले शब्दों में उससे पूछा

राज आप मेरे पतिदेव के हरने का कारण बताइये। यमराज ने इसपर
ा द्वारा मृत्यु कन्याओं को व्याधिरूप में मनुष्य एवं प्राणियों की मृत्यु का
बताया।

विष्णुमालावतीसंवादे व्याधिप्रणयनम् ५६

वैद्यकीसंहितावर्णनम्

मालावती के यह पूछने पर कि रोग की उत्पत्ति, शमन और उसे दूर करने
य बताइये तो ब्राह्मण ने परम्परानुसार जैसे आयुर्वेद का प्रादुर्भाव हुआ
या और वेदाङ्ग के रूप में ही चिकित्सा को एक अङ्ग कहकर इसकी
शंसा की। इसके १६ तन्त्रों में एक से एक बढ़कर रोगों की चिकित्सा
ई है। व्याधि का ज्ञान और कष्ट का निग्रह करना यही वैद्य का वैद्यत्व है
का मालिक नहीं है, फिर ज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ,
, ज्वरातिसार, ग्रहणी, खांसी, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म ( गोला ) रक्तदोष
वाले रोग, विषमेह, कुब्रड़ापन, गोद, गलगण्ड, भ्रमरी, सन्निपात,
ादि ६४ भेद रोगों के बतलाये। पापों से रोगों की वृद्धि और मृत्यु का
बतलाया और ईश्वरभक्ति से शमन।

व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम्। कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराव्याधिविनाशनम्
ाणं वह्निसेवां स्वप्नं करोति यः। बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति॥
ःकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम्। नोपयाति जरा तञ्च निदाघेऽनिल सेवनम्
ःकस्नायी घनतोयं च सेवते। समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति
गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत्। स्नातेस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति
स्नातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निञ्च सेवते।
भुङ्क्ते नवान्नमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति॥

भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयते जलम्।
नित्यं भुङ्क्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति ॥
दधि हैयङ्गवीनञ्च नवनीतं तथा गुडम्। नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति

अर्थात् नेत्रों को ठण्डे पानी से धोना, व्यायाम करना, तैल का पैरों के तलवे में मर्दन, कान में तेल डालना, और शिर में अच्छे तैल की मालिस करना बुढ़ापा और रोग को दूर करता है। वसन्तऋतु में प्रातः सायं टहलने, चित्रक के सेवन और गहरी नींद लेने और समय पर बाला युवती के साथ सम्भोग करने से वृद्धावस्था नहीं सताती। कूपजल, नदीजल अथवा तालाब या बावड़ी के जल में स्नान, चन्दन का लेपन और गर्मी में ठण्डी वायु का सेवन ये वृद्धावस्था से दूर रहने के साधन हैं। वर्षा में गर्म जल से स्नान और वर्षा के जल का सेवन तथा समय पर हित, मित और पथ्य आहार के सेवन का स्वास्थ्य पर बहुत सुन्दर प्रभाव होता है। शरदऋतु में सुन्दर औषध का सेवन, भ्रमणादि का वर्जन, नदी, कूआ, बावड़ी या तालाब में ठण्डे जल से सदा स्नान करने से वृद्धावस्था नहीं सताती। हेमन्त ऋतु में नदी कुआ, बावड़ी या तालाब में स्नान और अग्नि का सेवन, नवीन और गर्म सुपाच्य भोजन करनेवाले को वृद्धावस्था नहीं आती। प्रातस्नान के साथ-साथ सुपाच्य रुचिकर और अच्छे अन्न का भूख लगने पर खानेवाला, प्यास लगने पर जल पीनेवाला और नित्य ताम्बूल (पान) का सेवन करनेवाला वृद्धावस्था को नहीं प्राप्त करता। दही, बिना घी निकाला हुआ मट्ठा, नवनीत (मक्खन) और गुड़ का जो संयमी व्यक्ति सेवन करता है उसे वृद्धावस्था नहीं सताती।

इस प्रकार सारी रोगविनाशक और शरीर वर्द्धक प्रक्रियाओं को सुनकर मालावती ने उपबर्हण की मृत्यु का कारण ब्रह्माजी द्वारा शाप और संसार में महत्त्व की प्राप्ति विरक्ति के बिना नहीं हो सकती इस प्रकार जन्मान्तर से उत्पत्ति होना बतलाया है।

मालावती के साथ ब्राह्मण वेष में विष्णु का देवताओं की सभा में जाना और उपवर्हण की मृत्यु का स्पष्टीकरण करने के लिये देववृन्द से पूछना। ब्रह्माजी ने उपवर्हण को शाप दिया उसका कारण बताया और महेश्वर ने तथा धर्म ने देवताओं के आगे विष्णु को न देखकर उस ब्राह्मण से कटाक्ष करते हुए कारण पूछा। इसपर भगवान् ने स्वयं को विष्णु बतलाकर गोलोक, वैकुण्ठ आदि की स्थिति बतलाई और उस गन्धर्व को जिलाने का आदेश दिया।



ब्रह्माजी ने कमण्डलु जल ज्योंही उसपर छिड़का त्योंही मन वाणी आदि का संचार अवश्य हो गया परन्तु आत्मा के अधिष्ठान के बिना वह जड़वत् शव के रूप में ही पड़ा रहा इसी समय ब्रह्माजी के वचन से साध्वी ने विष्णु को प्रसन्न किया और भगवान् की कृपा से वह उपवर्हण गन्धर्व उठ खड़ा हुआ अपने सामने उपस्थित देव समूह तथा ब्राह्मण वेषधारी भगवान् विष्णु को प्रणाम किया। देवताओं के वरसे जीवित वह गन्धर्व अपनी राजधानी में लौट आया और इस उपलक्ष्य में बहुत आमोद प्रमोद के साथ खूब महोत्सव मनाया गया। इस महापुरुष स्तोत्र का वर्णन जो करता है उसकी सम्पूर्ण मनोकामनायें हरि भगवान् की कृपा से पूर्ण हो जाती हैं।



ब्रह्माण्ड को पवित्र करनेवाले श्रीकृष्ण के कवच का वर्णन। इसके साथ ही

[illegible] मधुर [illegible] और [illegible] के द्वारा कई [illegible]
[illegible]

२०

## उपबर्हण जन्मकथनम्

### कलावतीद्रुमिलपुत्रप्रदानम्

उपबर्हण का जन्म किस प्रकार हुआ इसका विवरण। चन्द्रकुल में द्रुमिल नामक राजा की कलावती नाम की पतिव्रता स्त्री थी जो बाँझ थी। योग से इस कन्या कलावती ने अपने पति की आज्ञा से नारदजी की सेवा की। वह यद्यपि उनके सामने आने से प्रसन्न थी फिर भी दुःख की मलीन हुई। नारदजी ने उसे देखकर मानो पहचान लिया। उसने [illegible] का प्रस्ताव किया। कश्यप नारद ने इस पर [illegible] सुनाई। कोई अपने अपनी गृहस्थी को दूसरे को देने की इच्छा करता है, वह अवश्य [illegible] है ऐसी देहों को [illegible] है। कभी भी [illegible] नहीं होने देते [illegible] देना होने से देवता और पितर इस पति का जल और अन्न ग्रहण नहीं करते। इसके बाद यह दूसरी मुनि के सामने खड़ी रही और [illegible] को देखकर स्खलित वीर्य होने पर इस कलावती ने उसे पी लिया [illegible] सारे [illegible] के कारण बतलाये। द्रुमिल ने अत्यन्त प्रसन्न होकर इन [illegible] प्रशंसा की तथा सबको प्रसन्न होकर अतुल धन दान किया। फिर वे [illegible] जाकर योग साधना से अपने शरीर को छोड़ा। वहाँ से विष्णुदूतों ने उसे वैकुण्ठ ले जाकर भगवान् का दास बना दिया। इधर भौतिक शरीर को विदीर्ण देखकर कलावती विलाप करने लगी और उसने पति के साथ ही चिता में जल जाने की पूरी तैयारी की परन्तु आकाश ने उसे 'मत जलो' कहकर [illegible] क्योंकि उनके गर्भ से बालक का आविर्भाव होगा।

जब बालक होकर पाँच वर्ष का हुआ तो उसे पूर्वजन्मों की स्मृति बराबर बनी रही और वह निरन्तर ही जहाँ भगवान् कृष्ण की पवित्र कथा का अनुवाद होता था वहाँ वह अवश्य ही पहुंचता है। उसे जब माता भी बुलाती तो वह यही कहता कि आता हूं थोड़ी भगवान् की पूजा करलूँ। यह बालक नारद नाम से विख्यात हुआ। वह दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया। उसे जिसे कृष्ण मन्त्र की प्राप्ति हुई उसका वर्णन। इसके बाद नारदजी शाप से छुटकारा पा गये।



ब्रह्माजी के पुत्रों की नाना सुन्दर व्युत्पत्तियों का वर्णन।



भगवान् ब्रह्माने अपने सब पुत्रों को सृष्टि के विधान में लगाकर नारदजी से सृष्टि करने को कहा। उन्होंने कहा कि सम्पूर्ण संसार में गृहस्थ ही प्रधान है और पुण्यशील है। यह स्त्री, पुत्र, पौत्रों का जो मन्दिर है वह बड़ी तपस्या का फल है देव पितर और ऋषि सभी गृहस्थ के नित्य, नैमित्तिक और काम्य विधियों से प्रसन्न होते हैं इसलिये गृहस्थ पालन करना आवश्यक है। नारदजी ने इसपर बहुत ही सुन्दर आदर्श वचन कहकर कि गृहस्थजीवन यदि कृष्णभक्ति विहीन है तो उसका सारा का सारा जीवन ही व्यर्थ है ऐसे घृणित जीवन की भर्त्सना की। आगे उन्होंने बताया कि जीवन में स्त्री के साथ पाणिग्रहण दुःखके लिये है सुख के लिये नहीं साथ ही तप, स्वर्ग, भक्ति और मुक्ति के उन्नत मार्ग पर चलने के लिये बड़ी भारी रुकावट है। साध्वी, भोग्या, कुलटा तीन प्रकार की स्त्रियाँ बतलाई गई हैं। परलोक

स्वर से और कामस्नेह से केवल अपने पति की जो सेवा करती है, वह साध्वी है। ...र, अलङ्कार, सुन्दर मिष्ठ आहार जबतक जिस स्त्री को मिलते हैं वह भोग्या और कुलटा तो कुल की अहार होकर नित्य ही पति को जलाती रहती है। ...रदजी कहते हैं सम्भोग से तेज नष्ट होता है 'दिनमें वात करने से यश का क्षय ...ता है' अधिक प्रेम करने से धन का क्षय होता है और अति आसक्ति होने से ...रीर का क्षय होता है। साथ रहने से पुरुषार्थ नष्ट होता है कलह में मान्यता ...नाश होती है उनका विश्वास करने से सर्वनाश होता है हे पितः आप ही कहिये ...सार में क्या सुख है। इस प्रकार पिता से क्षमाप्रार्थनापूर्वक नारदजी ने ...स्या के लिये आज्ञा मांगी। इसपर ब्रह्माजी गड़े लिपटकर ऊंचे स्वर से रोने लगे ...स्तव में मनुष्यों का विछोह भी दुःसह ( असह्य ) होता है।

## ४ नारदम्प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्रह्मण उपदेशः ८३

तदनन्तर ब्रह्माजी नारदजी को फिर समझाने लगे और दार परिग्रह के ...ये नाना उपदेशपूर्ण वचनों से अपना मन्तव्य प्रगट कर कहा कि कृष्णभक्त को ...में ही तपस्या का फल मिल जाता है।

आदौ भवेद् गृहीलोको वानप्रस्थस्ततः परम्।
ततस्तपस्वी मोक्षाय क्रमएप श्रुतौश्रुतः॥
गृहीभव मुनिश्रेष्ठ! गृहीणां सर्वदासुखम्।
कामिन्यां सुखसम्भोगः स्वर्गभोगात्सुदुर्लभः॥
...दर्शनमुपस्पर्शं वाच्छन्त्येव मुमुक्षवः। सर्वस्पर्शसुखात् स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं परम्॥
...तः सुखतमंपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने। नास्ति पुत्रात्परोबन्धुर्नास्तिपुत्रात्परः प्रियः॥
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेद् पुत्रादेकात्पराजयम्॥

इसपर भी नारदजी थोड़े ही मानने वाले थे। उन्होंने भगवान् कृष्ण की ...धना के लिये मन्त्रदीक्षा मांगी और इसके बाद ही दार परिग्रह करने की

बात कही तब ब्रह्माजी ने पति से, पिता से और विविक्त आश्रम (सन्यासी) वालों से मन्त्रदीक्षा न लेकर जन्मतः प्राप्त अपने इष्टगुरु से मन्त्र लेनेकी बात कही। क्योंकि
त्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः। विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः
नेपेक्षाल्लभ्यते मन्त्रो गुरुर्भर्त्ता च कामिनी। विद्या सुखंभयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च

अब महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं उनके पास जाकर भगवन्मन्त्र को लेकर फिर मेरे
ास आओ। इसके बाद नारदजी पिता के आदेश से शिवलोक को चले गये।

१५ नारदकृत शिवस्तुतिः शिवनारदसम्मेलनश्च ८६

शिवलोक में जाकर नारदजी ने उनकी स्तुति की तथा भगवान् के सम्मुख
पना हार्द ( भाव ) कहकर उनसे अपनेको दीक्षित करने की प्रार्थना की।

६ शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ८८

आह्निकप्रकरणम् ६१

जब शिवजीने सम्पूर्ण स्तोत्र कवच, मन्त्र, ध्यान और पूजा का विधान कह
ा तो नारदजी ने प्रतिदिन करने योग्य आचार प्रसङ्ग के सम्बन्ध में उपदेश
ने की प्रार्थना की। भगवान् भूतनाथ देवाधिदेव महेश्वर ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त
ाय्या त्यागकर रात्रि में शयन तक की आदर्श दिनचर्या का निरूपण किया
में निम्नलिखित मुख्य हैं :—

गुरु इष्टदेव के ध्यानपूर्वक शौच निवृत्ति के लिये वन में एकान्त स्थान पर
उत्तराभिमुखादि होकर जावे तदनन्तर जल से हाथ पैर धोकर १६ गण्डूष करे और
दन्तमार्जन काष्ठ से अच्छी प्रकार दाँतों को साफ करे फिर जलस्नान कर प्रातः
सन्ध्या करे। तर्पण, स्नान, दान, तप, होम, दैवपितृ कर्म के पहिले तिलक को
अवश्य धारण करे। तदनन्तर तर्पण और आवश्यक नित्यकार्यों को सम्पादनकर
ौर विहित शालग्राम की पूजा करे। शालग्राम शिला का माहात्म्य।

हर में और कामरेह में केवल अपने पति की ही सेवा करती है, वह सती है:
स्त्र, अलङ्कार, सुन्दर विविध आहार चबाकर जिस स्त्री को मिलते हैं वह भोग
और कुरूप भी कुल को अङ्गार होकर नित्य ही पति को जलाती रहती है।
नारदजी कहते हैं सम्भोग से तेज नष्ट होता है जिनसे प्यार करने से मन का भ्र
होता है अधिक प्रेम करने से धन का क्षय होता है और अति आसक्ति होने से
शरीर का क्षय होता है। साथ रहने से पुरुषार्थ नष्ट होता है कलह में मानसा
नाश होती है उनका विश्वास करने से सर्वनाश होता है हे पित: आप ही कहिये
स्त्रीमात्र में क्या सुख है। इस प्रकार पिता से अत्यन्तदीनतापूर्वक नारदजी ने
तपस्या के लिये आज्ञा मांगी। इसपर ब्रह्माजी गले लिपटकर ऊँचे स्वर से रोने लगे,
वास्तव में मनुष्यों का विछोह भी दुःसह ( असह्य ) होता है।

## २४ नारदंप्रति दारपरिग्रहार्थं ब्रह्मण उपदेशः ८३

तदनन्तर ब्रह्माजी नारदजी को फिर समझाने लगे और दार परिग्रह के लिये नाना उपदेशपूर्ण वचनों से अपना मन्तव्य प्रगट कर कहा कि कृष्णभक्त को घर में ही तपस्या का फल मिल जाता है।

> आदौ भवेद् गृहीलोको वानप्रस्थस्ततः परम्।
> ततस्तपस्वी मोक्षाय क्रमएष श्रुतौश्रुतः॥
> गृहीभव मुनिश्रेष्ठ! गृहीणां सर्वदासुखम्।
> कामिन्यां सुखसम्भोगः स्वर्गभोगात्सुदुर्लभः॥
> दर्शनमुपस्पर्शं वाञ्छन्त्येव मुमुक्षवः। सर्वस्पर्शसुखात् स्त्रीणामुपस्पर्शसुखं परम्॥
> ततः सुखतमंपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने। नास्ति पुत्रात्परोबन्धुर्नास्तिपुत्रात्परः प्रियः॥
> सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेद् पुत्रादेकात्पराजयम्॥

इसपर भी नारदजी थोड़े ही मानने वाले थे। उन्होंने भगवान् कृष्ण की साधना के लिये ...... मांगी और इसके बाद ही दार ......

रात कही तब ब्रह्माजी ने पति से, पिता से और विविक्त आश्रम (सन्यासी) वालों से मन्त्रदीक्षा न लेकर जन्मतः प्राप्त अपने इष्टगुरु से मन्त्र लेनेकी बात कही। क्योंकि
ात्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः। विविक्ताश्रमिणाञ्चैव न पुत्र सुखदायकः
नैपेकाल्लभ्यते मन्त्रो गुरुर्भर्त्ता च कामिनी। विद्या सुखंभयं दुःखं पुरुषैः स्वेच्छया न च

अब महेश्वर तुम्हारे गुरु हैं उनके पास जाकर भगवन्मन्त्र को लेकर फिर मेरे पास आओ। इसके वाद नारदजी पिता के आदेश से शिवलोक को चले गये।

१५ नारदकृत शिवस्तुतिः शिवनारदसम्मेलनञ्च ८६

शिवलोक में जाकर नारदजी ने उनकी स्तुति की तथा भगवान् के सम्मुख अपना हार्द ( भाव ) कहकर उनसे अपनेको दीक्षित करने की प्रार्थना की।

६ शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ८८

आह्निकप्रकरणम् ६१

जब शिवजीने सम्पूर्ण स्तोत्र कवच, मन्त्र, ध्यान और पूजा का विधान कह दिया तो नारदजी ने प्रतिदिन करने योग्य आचार प्रसङ्ग के सम्बन्ध में उपदेश करने की प्रार्थना की। भगवान् भूतनाथ देवाधिदेव महेश्वर ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में शय्या त्यागकर रात्रि में शयन तक की आदर्श दिनचर्या का निरूपण किया जिसमें निम्नलिखित मुख्य हैं :—

गुरु इष्टदेव के ध्यानपूर्वक शौच निवृत्ति के लिये वन में एकान्त स्थान पर उत्तराभिमुखादि होकर जावे तदनन्तर जल से हाथ पैर धोकर १६ गण्डूष करे और मार्जन काष्ठ से अच्छी प्रकार दाँतों को साफ करे फिर जलस्नान कर प्रातः सन्ध्या करे। तर्पण, स्नान, दान, तप, होम, दैवपितृ कर्म के पहिले तिलक को अवश्य धारण करे। तदनन्तर तर्पण और आवश्यक नित्यकार्यों को सम्पादनकर वेदविहित शालग्राम की पूजा करे। शालग्राम शिला का माहात्म्य।

शालग्राम शिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद । सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चि

शालग्राम की षोडश उपचार या बारह वस्तुओं तथा पञ्चद्रव्यों से पूजा
विधान आता है :—

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।पुष्पं चन्दन धूपञ्च दीप नैवेद्यमुत्तमम् ।।६

गन्धं माल्यञ्च शय्याञ्च ललितां सुविलक्षणाम् ।
जलमन्नञ्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ।।६२।।
गन्धान्नतल्पताम्बूलं विना द्रव्याणि द्वादश ।
पाद्यार्घ्यं जल नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च ।।६३।।

प्रथम भूतशुद्धि कर प्राणायाम करे अङ्गन्यास एवं प्रत्यङ्गन्यास और म
न्यास करे। वर्णन्यास के बाद अर्घ्य प्रदान किया जाय।

## २७ नराणां भक्ष्याभक्ष्यकर्तव्याकर्तव्य कथनम् ६

नारदजी के द्वारा द्विज, गृहस्थ, यति, वैष्णव, विधवा एवं ब्रह्मचारियों
लिये भक्ष्याभक्ष्य के विषय में पूछने पर भगवान् महादेवजी ने कहा कि ब्राह्म
के लिये भगवान् नारायण के प्रसादरूप में चढ़ाया हुआ हविष्य अन्न भोज्य
अन्य सब त्याज्य है, एकादशी को अन्न सर्वथा त्याज्य है।

ब्राह्मणःकामतोऽन्नं च यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ।।७।।

जन्माष्टमी, शिवरात्रि, रामनवमी और एकादशी को उपवास करने
असमर्थ व्यक्ति अन्न का सेवन न करे हाँ फल मूल जल का सेवन कर सकता है

नित्यं नैवेद्यभोजी यः श्रीकृष्णस्य च वैष्णवः ।
नित्यं शतोपवासानां जीवन्मुक्तः फलं लभेत् ।।

भगवान् श्रीकृष्ण को नैवेद्य लगाकर भोजन करनेवाला मनुष्य सौ उपवासों का फल पाता है और वह जीवन्मुक्त है। विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और तपस्वी लोगों के लिये ताम्बूल का सेवन गोमांस के सेवन के बराबर है। ताम्रपात्र में पयःपान और लवण के साथ दुग्ध सेवन गोमांस के समान है। कांस्यपात्र में नारिकेल का जल और ताम्रपात्र में मधु और ईख का रस सुरा के समान है। जो द्विज बांये हाथ से जल पीते हैं वह सुरा पीनेवाले हैं।

अनिवेद्यं हरेरन्नं भुक्तशेषञ्च नित्यशः। पीतशेषजलञ्चैव गोमांससदृशं मुने ॥२५॥

मत्स्यादि का मांस सदा ही अभक्ष्य है। प्रतिपदा को कूष्माण्ड, द्वितीया को बृहती भोजन, और पटोल शत्रुओं की वृद्धि करता है तृतीया और चतुर्थी को मूलक का सेवन, पञ्चमी को बिल्व का सेवन, षष्ठी को निम्ब का भक्षण, सप्तमी को ताल का भक्षण शरीर नाशक है। नारिकेल फल का भक्षण अष्टमी के दिन बुद्धि का नाश करता है नवमी को तुम्बी ( घिया ) दशमी को कलम्बिका, एकादशी को शिम्बीधान्य द्वादशी को पूतिका, त्रयोदशी को बैंगन का भक्षण पुत्र नाश करता है अतः वर्ज्य है, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या को मांसभक्षण सदा महापातक करनेवाला है अतः उसे कभी सेवन न करे।

सरसों का तैल, पकतैल का सेवन प्रातःस्नान में, विशेष रूप से पार्वण श्राद्ध व्रत के दिन, कुहू, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी को प्रशस्त है। रविवार, श्राद्ध, व्रत के दिन स्त्रीसेवन और तिल तैल, मांस, रक्त शाक और कांस्य बर्तन में भोजन निषिद्ध है। सम्पूर्ण वर्णों के लिये दिन में स्त्रीप्रसङ्ग वर्जित है। रात्रि में दधि भक्षण, दोनों सन्ध्या में शयन, रजस्वला स्त्री में गमन ये नरक के कारण है।

रजस्वला और वीरान्न पुंश्चलि का अन्न, शूद्रयाजक और शूद्र के श्राद्ध का अन्न, पल्लीपति का अन्न, ज्योतिषी का अन्न और वैद्य का अन्न वर्जित है। अमावास्या,

श्रीगणेशाय नमः।

# २ प्रकृति खण्ड

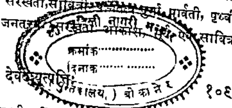
## विषय

## प्रकृतिचरित्रम्

सृष्टि में जो कुछ शक्ति विभूति का दर्शन होता है वह सब सर्व परब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति प्रकृति का ही विलास है। उस अनन्त ब्रह्माण्ड नायिका महादेवी प्रकृति के सृष्टिविधि में पाँच प्रकार का रूप उपलब्ध हो गणेश जननी भगवती पार्वती, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी और सरस्वती एवं सावि सभी स्त्रियों में ये ओत-प्रोत हैं व्याप्त हैं। यह अनादिकाल से ही सृष्टि के पालन-पोषण में तत्पर हैं इनकी महिमा किसी से भी नहीं कही जासकती। की यही व्युत्पत्ति है कि प्र=प्रकृष्ट का वाचक, कृति = सृष्टि का वाचक। प्रक्रिया में जो देवी प्रकर्ष रूप में विराजमान रहती है वह प्रकृति है।

स्त्री मात्र की प्रतिनिधि पृथ्वीरूपा है। जैसे पृथ्वी अपने प्रणव श्वांस से के द्वारा तीन गुण है, सत्व, रजस् और तमस्! प्र=प्रकृष्ट सत्व कृ= ति=तमस् त्रिगुणात्मिका सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न और सम्पूर्ण सृष्टि करने में प्र प्रकृति कहलाती है। सृष्टि के आरम्भ में योग से विराट ने अपना दो रूप दक्षिण अर्द्धाङ्ग से पुरुष और वामाङ्ग से प्रकृति हुई वैसे परमार्थतः स्त्री और का भेद नहीं है सम्पूर्ण संसार ही ब्रह्ममय है। सृष्टि रचने की इच्छा करने श्रीकृष्ण के द्वारा प्रकृति ईश्वरी पैदा हुई। उसकी आज्ञा से ही पञ्चविध भेद भक्तों पर

यह जड़ चेतन सब में अधिष्ठात्री रूप में रहती हैं। भगवान् की प्राणभूता हैं जो-जो
पदार्थों में प्राणियों में सत्त्व है वह सब इसी की प्रतिच्छाया है या यह सब यही
क्रमशः दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री ... पार्वती, पृथ्वी,
राधा राकिणी शक्ति, लक्ष्मी जनत... एवं सावित्री
का विधिपूर्वक वर्णन।




२ देवीभागवत ... १०६

प्रकृति के बिना परमब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकते जैसे बिना सोने के स्वर्णकार
कुण्डल नहीं बना सकता और बिना मिट्टी के कुलाल घड़ा नहीं बना सकता
वैसे ही प्रकृति के बिना ब्रह्म कुछ भी नहीं कर सकता। समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति, यश
का नाम भाग है। उससे युक्त होने से प्रकृति भगवती और भगवती से युक्त
भगवान्। श्रीकृष्ण और राधा की विशेष नामों के साथ व्युत्पत्ति और उनकी
अलौकिक ह्लादिनी शक्ति राधा की विशेष प्रशंसा। भगवती राधा के साथ
भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी की आयु तक सुखसम्भोग किया उससे प्राण, अपान,
समान, उदान और व्यान तथा अधः प्राण हुए। इसके बाद उनके जिह्वा के
अग्रभाग से शुक्लवर्ण की मनोहर कन्या का आविर्भाव हुआ वह पीतवस्त्र पहने हुए
वीणा पुस्तकधारिणी रत्न आभूषणों से सज्जित सम्पूर्ण शास्त्रों की अधिदेवता
थी। इसी के बाद श्रीकृष्ण द्विधा रूपवाले हो गये। दक्षिण अर्ध दो भुजावाला
और वामार्द्ध चार भुजावाला बन गया। उस वाणी को श्रीकृष्ण ने कहा कि
तुम इसकी कामिनी बनो। उन नारायण के साथ वह मनोहरा कन्या स्त्री रूप में
वैकुण्ठ में चली गई। सौ मन्वन्तरों तक स्वर्णमय डिम्ब को राधिकाजी ने सेवन
किया और उसे क्रोध से जल में फेंक दिया इस प्रकार ब्रह्माजीने शाप दिया कि
तुमने कोपशील होकर उसको छोड़ दिया अतः अब तुम आगे से बिना पुत्रों
की होजावोगी।

-३.१ विश्वनिर्णयवर्णनम् ११४

जब यह डिम्ब ( गर्भ का पिण्ड ) ब्रह्माजी के सम्पूर्ण वय तक जल में रहा ो समय पर उसके दो रूप हो गये उसके बीच में से रोता हुआ एक बालक अपने काश से करोड़ों सूर्यों की जगमगाहट को भी फीका करता हुआ निकला। वह ूख से व्याकुल था। उसने महाविराट् रूप में भगवान श्रीकृष्ण के १६ वें अंश से पना रूप धारण किया। यह सम्पूर्ण विश्व का आधार है और उसके प्रत्येक ोमकूप में सम्पूर्ण विश्व के ब्रह्माण्डों के प्रदेश रक्षित है। उन विश्व संख्याओं ो भगवान् भी नही बता सकते। प्रति विश्व में ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं पाताल ब्रह्मलोक तक ब्रह्माण्ड है उससे ऊपर वैकुण्ठ है उससे ऊपर पचास कोटि योजन र गोलोक है। सात द्वीपवाली पृथ्वी सात सागर युक्त ४६ द्वीप उपद्वीप समेत संख्य पर्वतों के साथ ऊपर स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक और नीचे सात पाताल लातल रसातल आदि उससे भी ब्रह्माण्ड से ऊपर तपोलोक, सत्यलोक और ह्मलोक की स्थिति है। इस प्रकार से पृथ्वी के अन्तर में सबकुछ है। पृथ्वी के ाश होने पर सबकुछ लय हो जाता है। वह विराट् भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान रने लगा और प्रभुके प्रगट होने से वरदान पाकर वह सृष्टि निर्माण में लग गया।

. ४ सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च ११७

सरस्वती मूलमन्त्रः ११६

सरस्वतीकवचवर्णनम् १२१

प्रकृति के पञ्चरूपों में से एक सरस्वती के सम्बन्ध में पूजादि विधान पूछने पर भगवान् नारायण ने संक्षेप से दुर्गा और भगवती राधा के सम्बन्ध में न बताकर आरम्भ में सरस्वती पूजा का विधान बताया, जिसे करने से मूर्ख भी ... है। जब श्रीकृष्ण की स्त्री के मुख से यह उत्पन्न हुई तो कामरूपिणी

इस देवी ने भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा की तब श्रीकृष्ण ने कहा हे साध्वि तुम मेरे अंश नारायण को भजो क्योंकि यहाँ पर रहने से राधा जैसी बलवती तुम मानिनी के सामने टिक नहीं सकोगी और न तुम्हारा कल्याण होगा। अतः नारायण की स्त्री बनकर रहो और तुम्हारी पूजा माघ शुक्ल पञ्चमी को विद्यारम्भ में सारे मनुष्य करेंगे यह मेरा वरदान है। इसके अनन्तर सरस्वती के मूलमन्त्र, और सरस्वती कवच का विधान बतलाया गया है। जिसको करने से मनुष्य त्रैलोक्य विजयी तथा बृहस्पति के समान महावाग्मी और कवीन्द्र हो जाता है। वास्तव में यह कवच सम्पूर्ण इच्छित वस्तुओं को देनेवाला है।



श्री याज्ञवल्क्य ने वाग्देवी सरस्वती को जिस स्तोत्र से प्रसन्न किया उससे गवान् सूर्य के आदेश से उन्हें सिद्धि मिल गई। याज्ञवल्क्यजी के द्वारा जो गवती का स्तोत्र है उसकी फलश्रुति और विधान का वर्णन।



भगवती सरस्वती गङ्गा के शाप से भारत में नदी रूप में अवतीर्ण हुई और में स्नान करने से अनन्त पुण्यों का फल। लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा ये तीन वान् नारायण की स्त्री हैं। अपने सौतेले डाह के कारण गङ्गा और सरस्वती का वादविवाद और सरस्वती को मर्त्यलोक में नदी रूप में जाने के लिये गङ्गा का प और बदले में गङ्गा को सरस्वती का शाप। फिर नारायण द्वारा महालक्ष्मी जी को मर्त्यलोक में जाकर त्रैलोक्यपावनी तुलसी रूप में रहने को आदेश करना। सभी को जाने के लिये नारायण का आदेश। गङ्गा को शिवस्थान के लिये और

स्वती को ब्रह्मा के स्थान पर जाने को कहा गया तदनन्तर स्त्री के वशीभूत रहनेवाले ति के पतन का वर्णन। फिर सरस्वती, गङ्गा तथा लक्ष्मी का भगवान् को अपने क में आने के लिये अवधि का पूछना और भगवान् का उन्हें आधे अंश से पने पास और आधे से मर्त्यलोक में रहकर जन कल्याण करने का आदेश देकर न्त्वना देना। भगवान् के भक्तों के चरण जहां टिके वह स्थान पवित्र हो जाता भक्त अपने चरित्रों से संसार का कल्याण कर अन्त में भगवान् में मन लगाते हैं।

७ कालकालेश्वरगुणनिरूपणम् १३०

भगवती गङ्गाजी द्वारा मर्त्यलोक के कल्याण के लिये संसार में अवतरण। गीरथ के प्रयत्नों द्वारा भगवान् शङ्कर के शिर पर धारण कर सम्पूर्ण प्रवाह से मालय से निकलना। भगवती महालक्ष्मी पद्मावती नाम से और फिर तुलसी प से जनकल्याण के लिये इस लोक में आई। कलि के पांच हजार वर्षों के बीतने बाद यहां पर रहकर भगवान् की आज्ञा से वैकुण्ठ में गमन। केवल काशी रि वृन्दावन तीर्थ ही प्रधान रूप से यहां पर रहेंगे। सभी आस्तिक सम्प्रदाय ी प्रसन्न करनेवाली परम्परायें धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त हो जायेंगी। इसके बाद भी मनुष्य आचार हीन विष्णुभक्ति विमुख, शठ, क्रूर, दाम्भिक, हिंसक और राचारी बन जायेंगे कहीं भी गुणीजन का आदर नहीं होगा। सभी सारपूर्ण स्तुयें निःसार हो जायेंगी। प्राणी वर्ग शौर्य और प्रतापहीन हो जायेंगे। सभी बालक त्री और पुरुष कुत्सित एवं विकृताकार हो जायेंगे। आपस में बातचीत करते ए भी लोग अपशब्दों का प्रयोग करेंगे। सभी ग्रामों व नगरों में अरण्य के समान ाय हो जायेंगे। सभी नागरिकों पर कर इतना लाद दिया जायगा कि वे उस बोझ से अपना जीवनस्तर ऊंचा नहीं बना सकेंगे और सभी स्थान कृषि से रहित हो जायेंगे। सभी मिथ्यावादी, धूर्त, असत्यवादी होंगे। पापी लोग पुण्यात्मा माने जायेंगे, लम्पट पुरुष जितेन्द्रिय होंगे, पुंश्चली पतिव्रता मानी जायगी। पातक करनेवाले

सरपंच कहलायेंगे, भगवान् के नाम पर लोग कमाई करेंगे और कलि आने पर
म्लेच्छमय वन जायेंगे। एक हाथ के वृक्ष हो जायेंगे और अङ्गुष्ठमात्र
हो जायेंगे ऐसे घोर समय में उत्थान के बाद जब पतन की चरम सीमा
जायगी तो भगवान् नारायण की कला के अंश सम्पूर्ण बलिपुरुषों में श्रेष्ठ
यशा नामक ब्राह्मण के पुत्र कल्की रूप में अवतार लेकर दुष्टों से शून्य इस भू
को तीन रात में बना देंगे। उस समय घोर वर्षा होगी और बारह आदित्य
उदय होकर पृथ्वी को सुखा देंगे। इसके बाद कल्प के अनुसार सत्ययुग का आ
होगा और फिर वेदप्रयुक्त धर्म का प्रचार होकर सभी प्राणियों का सा
विकाश होगा सभी धर्मपरम्पराओं का पालन करेंगे। भगवान् के बड़े भार्
और श्रुति स्मृति पुराणों के अच्छे ज्ञाता सभी होंगे। अधर्मों का लेशमा
फिर नहीं चलेगा। धर्म पूर्ण चारों पादों से युक्त सत्ययुग मे होगा, त्रेता मे
पादोंवाला होगा, द्वापर में दो पाद का रहेगा, कलि में एक पाद वाला औ
भी फिर लुप्तप्राय: हो जायगा। मनुष्यों के ३६० युग बीतने पर देवता
एक युग होता है एवं देवताओं के ७१ दिव्ययुगों से एक मन्वन्तर या इन्द्र की
का प्रमाण बतलाया गया है १०८ ब्रह्मा की आयु बीतने पर प्राकृत लय हो
है। भगवान् कृष्ण में सम्पूर्ण भूतग्राम लीन होता है अतः इसका नाम
रक्खा गया यह सब भगवान् कृष्ण की कालकालेश्वर की लीला बतलाई है।

## ८ पृथिव्युपाख्यानम्

### पृथिवी पूजामन्त्रः पृथिवीस्तोत्रञ्च

हरि के निमेष मात्र से ब्रह्मा का पात हुआ उसको प्राकृतिक प्रलय
गया है। उस समय लीन प्राणी भगवान् में समा जाते हैं और पृथिवी की
कहां रहती है और विधान के समय उसका आविर्भाव कैसे हो जाता है

कार नारदजी के पूछने पर नारायण ने भगवान श्रीकृष्ण को ही गयका उत्पत्ति और रोभाय का स्थान बतलाया। मधुकैटभ के मेद से यह सृष्टि बनी ऐसा कोई कहते मेद से उत्पन्न होने से इसका नाम मेदिनी पड़ा। भगवान् वाराह कल्प में इसे समुद्र में से ऊपर ले आये। पृथ्वी की स्तुति।

९ भूमिदानफलतद्धरणेपापश्च १३६

भूमिदान का फल यदि उसका हरण कोई करे तो नरक का गामी होता है:-

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। स तिष्ठति कालसूत्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४॥

भूमि की निरुक्ति सम्पूर्ण प्राणियों का आवास होने से उसकी भूमि सञ्ज्ञा। वसु=धन रत्नादि देने से उसका वसुन्धरा नाम सार्थक है हरि के उरु से यह जानी गई इसलिये उर्वी नाम रक्खा गया और सम्पूर्ण प्राणिमात्र एवं स्थावरजङ्गम को धारण करने से धरा, धरित्री धरणी हुआ।

१० गङ्गोपाख्यानम् १४०

कौथुमोक्त गङ्गाध्यानम् गङ्गास्तोत्रञ्च १४५

भगवती गङ्गा के अवतरण प्रसङ्ग में सगर के वंश का विस्तार से वर्णन

भगवती गङ्गा को सरस्वती के शाप से अनादिकाल में सगर के पुत्रों के उद्धार के लिये मर्त्यलोक में जाने के लिये श्रीकृष्ण भगवान् का आदेश। गङ्गा की अमित महिमा सम्पूर्ण पापताप का नाश करनेवाली यह भगवती गङ्गा है। जाह्नवी के तटपर उसकी पवित्र वायु के सेवन से ही दशगुणा पुण्य लाभ होता है। सामान्य दिनों में केवल स्नानमात्र से ही असंख्य पाप नष्ट होते हैं। विशेष पर्वों पर तो कहना ही क्या। अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के अवसर पर चातुर्मास्य के समय स्नान, दान एवं पुण्य का अनन्तकोटिगुणित फल कहा गया है।

भगवती गङ्गा की स्तुति इसके पूर्व भगवान ने गङ्गा जी को कई वरदान दिये जिसमें गङ्गा नाम स्मरणपूर्वक स्वर्गवासी होनेवाले मनुष्य की भगवान् के यहां सारुप्य मुक्ति विशेष बताई है।

भगवती भागीरथी की भगीरथ ने जो कौथुमशाखा की स्तुति की उसका सविस्तर वर्णन।



भगवती गङ्गा की विभूति कलियुग के पांच हजार वर्ष बीतने पर कहां चली गई। इस पर नारायण ने गोलोक से गङ्गाजी की राधाकृष्ण के शरीर से उत्पत्ति बताकर उस परमपावन धारा की प्रशंसा की और गोलोक में रासेश्वरी राधा के श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के बाएं अङ्ग में विराजने पर गङ्गाजी उनके रूप तथा गुणों पर मोहित हुई। इस पर राधा ने श्रीकृष्ण से कहा कि आप वार-वार गङ्गा को ही देख रहे हैं। अतः आप गोलोक से चले जांय आप इसे बहुत अधिक चाहते हैं और आप मेरे थोड़े शब्द से ही छिप गये। आपने बराबर सारे विश्व के प्राणिवर्ग को कुछ न कुछ विभूति दी है आपका क्या क्या गुणानुवाद कहा जाय। राधा द्वारा गङ्गाजल के पान की इच्छा और ब्रह्मादि देवों द्वारा भगवती गङ्गा की प्रशंसा।

भगवान् नारायण को फिर नारदजी ने प्रश्न किया कि भगवान् शङ्कर के सङ्गीत से मुग्ध होकर जब श्रीकृष्ण एवं राधिका द्रव रूप में होगये तो क्या हुआ और उपस्थित लोगों ने क्या किया इसे विस्तार से समझाइये। भगवान् श्रीनारायण बोले—राधाजी के महोत्सव पर जब कार्तिकी पूर्णिमा का दिन था रासमण्डल की सुन्दर शोभा हो रही थी उसी समय भगवती वीणापाणी सरस्वती

सुन्दर शास्त्रीय सङ्गीत से वातावरण को विमुग्ध कर दिया। इसपर ब्रह्माजी
गवान् कृष्ण, राधिकाजी एवं लक्ष्मीजी अमूल्य रत्न उन्हें भेंटस्वरूप दिये और
गवती दुर्गा ने विष्णुभक्ति दी। संसार में उनके द्वारा धर्म वृद्धि के साथ यश अर्जन
ो यह धर्म ने वरदान दिया। अग्नि ने विशुद्ध वस्त्र दिये और वायु ने मणिनूपुर
ये। फिर ब्रह्माजी ने शङ्कर देवाधिदेव को रासोल्लासयुक्त श्रीकृष्ण सङ्गीत के लिये
णा की। इसपर भगवान् शङ्कर ने इतना सुललित गान किया कि सभी देवतावृन्द
र्छित होगये जैसे चित्र में चित्रित पुत्तलिका हो। एक क्षण में जब चेतना हुई
ो वहां पर जल से पूर्ण स्थल को देखा तथा श्रीराधाकृष्ण को अन्तर्धान। इसपर
भी गोपगोपीवृन्द तथा देवता ब्राह्मण ऊंचे स्वर से रोने लगे। ध्यान लगाकर
ब ब्रह्माजी ने देखा तो उन्हें सारा रहस्य हृदयङ्गम हुआ कि भगवती राधा के
ाथ श्रीकृष्ण पिघलकर जल रूप हो गये। तब ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीकृष्ण
ी आराधना की और उन्हें स्वरूप का दर्शन देकर वाञ्छित वर देने की प्रार्थना
ी। इसपर आकाशवाणी हुई कि सम्पूर्ण भक्तजन पर दया करनेवाली यह जलरूपा
री ही शक्ति है हम दोनों के रूप की फिर क्या आवश्यकता है। इसके दर्शनों से
ी मेरा परम पद प्राप्त होगा। यदि आपलोग मुझे ही देखना चाहते हैं तो भगवान्
ङ्कर मेरी आज्ञा का पालन करें और ब्रह्माजी भी वेदाङ्ग शास्त्र को बनावें। जिससे
सार में सभी प्राणी लाभ उठाकर मुझे प्राप्त होवें। यदि यह सब आप सबको
ान्य हो तो मेरी प्रत्यक्ष मूर्ति के दर्शन सुलभ हैं। इसपर ब्रह्मा ने शङ्करजी को
सन्न होकर कहा और शङ्करजी ने गङ्गाजल हाथ में लेकर सत्य प्रतिज्ञा की कि
गवान् विष्णु की मायादि के सम्बन्ध में मन्त्रशास्त्र की रचना कर वेदों का सार
पस्थित करूँगा जिससे भगवान् कृष्ण की आज्ञा का पालन होसके। इसलिये
ोई भी व्यक्ति गङ्गाजल लेकर झूठ न बोले नहीं तो ब्रह्मा के वय तक नरक में
हना होगा।

इसपर भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिका फिर

आविर्भूत हुए इस प्रकार गङ्गाजी की उत्पत्ति एवं उनकी महिमा के जगन्मान्य प्रभाव का वर्णन हुआ—

१२ गङ्गाया विवाहः १५६

लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और लोकपावनी तुलसी भगवान् नारायण की ये चार प्रिया हैं। भगवती गङ्गा कैसे उनकी पत्नी बनी इस प्रकार नारदजी के पूछने पर ब्रह्माजी के मुख से कहे गये उपाख्यान को नारायण भगवान् ने बतलाया। जब राधाकृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न गङ्गाजी को राधा ने मान से न देखना चाहा और उसे पान करने को अधीर हो गई तो गङ्गा श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों में समा गई। भगवान् विष्णु ने सम्पूर्ण देवगण के मनका अभिप्राय जानकर अपने पैरों के नख के अग्रभाग से उसे गोलोक से बाहर निकाल दिया। इसे राधिका मन्त्र की दीक्षा दी और ब्रह्मा उसे लेकर नारायण को गान्धर्व विवाह ग्रहण कराने के लिये ले गये। इस प्रकार गङ्गाजी सहित तीन भार्या भगवान् विष्णु के हुई और तुलसी के साथ चार का योग हो गया।

३ तुलस्युपाख्यानम् १५७

नारदजी द्वारा तुलसी के कुल, जन्म और प्रभाव के सम्बन्ध में पूछे जाने पर भगवान् नारायण ने दक्ष सावर्णि मनु से लेकर धर्म सावर्णि, विष्णु सावर्णि, रुद्र सावर्णि, राज सावर्णि और वृषध्वज की वंश परम्परा बतलाई। वृषध्वज की शिवनिष्ठा प्रसिद्ध थी उसने भगवान् नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती किसीको भी अपना इष्टदेवता न माना। इसपर सूर्य ने उसे भ्रष्टश्री होने का शाप दिया। और सूर्य के पीछे भगवान् शङ्कर त्रिशूल लेकर दौड़े और उन्हें ब्रह्माजी तथा विष्णु के यहां शरण लेने को बाध्य किया। देवता लोग विष्णु की स्तुति करने लगे। तब विष्णु ने उन्हें अभय का आश्वासन दिया और शङ्करजी के आनेपर

ष्णु भगवान् की स्तुति करने पर भगवान् विष्णु ने उन्हें आने का कारण पूछा
ौर वृषध्वज को शाप देकर भागे हुए सूर्य के पीछे आने का कारण बताकर
विष्णु से वृषध्वज के शाप से उद्धार का उपाय पूछा। इसपर भगवान् ने वृषध्वज के
त्र हंसध्वज और दो पौत्र धर्मध्वज एवं कुशध्वज के बाद लक्ष्मी प्राप्ति की बात
ह अन्तर्धान हो गये।



भगवान् नारायण ने कहा कि धर्मध्वज और कुशध्वज दोनों ने कठिन
तपस्या से लक्ष्मी को प्रसन्न कर उनसे इच्छित वरदान प्राप्त किया। कुशध्वज की
स्त्री मालावती के कमला लक्ष्मी की अंशभूता एक कन्या उत्पन्न हुई। वह जन्मतेही
वेदध्वनि करती हुई उठ खड़ी हुई इसलिये उसे वेदवती नाम से पुकारा जाता है।
उसने भगवान् विष्णु की कठिन तपस्या पुष्करक्षेत्र में एक मन्वन्तर तक की। उसकी
तपस्या से प्रसन्न होकर आकाशवाणी हुई।

हे सुन्दरी दूसरे जन्म में साक्षात् भगवान् हरि तुम्हारे पति होंगे फिर वह
सन्तुष्ट नहीं हुई और गन्धमादन पर्वत पर जाकर पहले से भी कठिन तपस्या करने
लगी। वहांपर रावण को आया देख उसे अतिथि सुलभ सत्कार भावना से सुस्वादु
कन्दमूल फल और जल से सम्मानित किया। उस पापी ने एकान्त में ऐसी
यौवन प्राप्त स्त्री को देख काममोहित होकर पूछा हे सुन्दरी तुम कौन हो? वह
मूर्ख कामवाण से पीड़ित होकर उसे हाथ से ज्योंही खींचकर शृङ्गार करना चाहा
वैसे ही उस सती ने कोप दृष्टि से उसे स्तम्भित कर दिया और भगवती पद्मा की
आराधना से वह स्वस्थ हो गया और वह स्वयंयोगद्वारा देह को छोड़कर परमधाम
सिधार गई। रावण भी उसे गङ्गाजी में प्रवाहित कर अपने घर चला गया
मार्ग में वह नाना प्रकार से पश्चात्ताप करता हुआ विलाप करने लगा। वही

कालान्तर में साध्वी जनकपुत्री सीतारूप में अवतीर्ण हुई और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम को अपनी कठिन तपस्या से पतिरूप में पाकर धन्य-धन्य बन गई न्हीं के कारण रावण अन्त में मारा गया। भगवती सीता के साथ अपने पिता श्री सत्य वचनों को पालन करने के लिये जब राज्यपाट को छोड़कर राघवेन्द्र ामचन्द्र वन को गये तो समुद्र के निकट विप्रवेषधारी अग्निदेव से उनका ाक्षात्कार हुआ। श्रीरामचन्द्र को इस प्रकार दुःखी देखकर वह बहुत दुःखी हुए और न्होंने श्रीराम से कहा कि भगवन् अब आपके लिये सीताहरण का समय आ गा है दैव दुर्निवार्य है मेरी पुत्री को मेरे पास छोड़कर उसकी छाया आप अपने स रक्खें, फिर परीक्षकाल आने पर आपको सीता देदूँगा देवताओं ने मुझे भेजा मैं ब्राह्मण वेष में अग्नि हूँ। तब राम ने दुःखी होकर लक्ष्मण के बिना जाने इसे स्वीकार कर लिया और योग से अग्नि ने माया की सीता बनाकर उसी के समान गुण, रूपवाली श्रीराम को देदी। इसी समय रामने सोने का मृग देखा सीता ने उसे लाने के लिये श्रीरामजी को कहा। अब लक्ष्मण की देखरेख में सीता को छोड़ रामचन्द्र ने मायामृग के पीछे रहकर उसे मार दिया और वह परमधाम को चला गया। उसने मरते मरते लक्ष्मण को सम्बोधन कर प्राण छोड़े। इसपर जानकी ने भगवान् रामचन्द्र को खोजने के लिये लक्ष्मण को भेजा और अकेली सीता को पाकर दुष्ट रावण ने छलकर लङ्का में ले जाकर रक्खा। फिर राम ने जानकी का सारा पता पाकर वानरों की सहायता से उस दुष्ट रावण को मार डाला और सीता को प्राप्त किया। अग्निपरीक्षा के लिये जब सीताजी ने अग्निप्रवेश किया ी छाया की सीता ने अग्नि से अपना कर्तव्य पूछा। तब उन्होंने पुष्कर में जाकर पस्या करने की आज्ञा दी और तीन लाख दिव्य वर्षों तक तप कर स्वर्ग में लक्ष्मी न गई। सत्ययुग में कुशध्वज की कन्या वेदवती, त्रेता में रामपत्नी और द्वापर ं द्रौपदी रूप में हुई। अग्निप्रवेश के समय निकलकर जब शङ्करजी से पतिव्रम ीता ने ५ बार पति दो पति दो यह कहा तो शङ्कर ने पाँच पति होंगे यह वर

दिया। इसी से यह पाण्डवों की प्रिय स्त्री द्रौपदी बनी। भगवान् श्रीरामचन्द्र लंका में विभीषण को राज्य देकर अयोध्या लौट कर ११ हजार वर्ष तक राज कर वैकुण्ठ सिधार गये।

## १५ धर्मध्वजपत्न्या माधव्यातुलस्याजन्म १६४

धर्मध्वज की पत्नी माधवी के पद्मिनी नामक मनोहर कन्या का जन्म हुआ। उसकी अप्रतिम शोभा से लोग उसकी तुलना करने में असमर्थ रहे इसलिये उसे तुलसी नाम दिया गया। उसने भी भगवान् नारायण मेरे पति हों इस कामना से बड़ी कठिन तपस्या की; गर्मी में पञ्चाग्नि तप, शरद में जल में रहकर और वर्षा में श्मशानों में रहकर उसने कड़ी साधना की। कई हजार वर्ष तक फल और जल पर रही, फिर पत्तों पर, फिर वायु पर, फिर निराहार रहकर उसने भगवान् ब्रह्मा को वर देने को प्रसन्न कर लिया। इसपर तुलसी ने पूर्वजन्म की कथा बतलाई और भगवान् नारायण को पति रूप में पाने की इच्छा कही। ब्रह्माने कहा भगवान् कृष्ण के अङ्ग से उत्पन्न सुदामा नामक गोप का शंखचूड़ के रूप में राक्षस वंश में जन्म हुआ है और उसको तुम तपस्या से मिलोगी और बाद में तुलसी का पेड़ बन सारे संसार में पवित्र बन जाओगी। ब्रह्मा ने फिर तुलसी को राधा मन्त्र की दीक्षा दी और उसे बारह वर्ष जप कर तुलसी द्वारा तपस्या से विराम लेना।

## १६ तुलस्या सह शङ्खचूड़स्य मेलनं कथोपकथनञ्च शङ्खचूड़वृत्तान्तम् १६७

जब तुलसी वन में एकान्तवास कर रही थी तो वह कामज्वर से पीड़ित रहने लगी। भगवान् विष्णु की तपस्या किया हुआ किसी शाप से मर्त्यलोक में दैत्य योनि पाकर शंखचूड़ श्रीकृष्ण के मन्त्र का जप कर विधि के विधान से वहांपर आ पहुंचा। इस प्रकार व्याकुल वह तुलसी अपने वस्त्र से अपना मुँह ढँककर

उस युवा पुरुष को बड़ी लज्जा से ध्यानपूर्वक देखने लगी। शङ्खचूड़ ने इस रमणी को देखकर एकान्त में आने का कारण पूछा और उसके सम्बन्ध में विस्तार से जानना चाहा। इसपर तुलसी ने व्यर्थ में ही किसी अज्ञात कुलवाली ललना से वार्तालाप करना उचित नहीं समझा और धर्मध्वज की पुत्री के रूप में तपस्या करने की इच्छा से वन में आने का कारण बतलाया। साथ ही तुलसी ने स्त्रीजीवन की भर्त्सना की। इसपर स्त्री के दो रूपों की विशद विवेचना कर लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधा रूप में स्त्रीमात्र को बताकर उनसे होनेवाले सम्पूर्ण संसार के अतीव उपकार गिनाये जो सात्विकतापूर्ण हैं। कृत्यारूप में स्त्रियां संसार के लिये घातक हैं। शंखचूड़ ने ब्रह्माजी की आज्ञा से विवाह करने का अपना प्रस्ताव रक्खा इसपर तुलसी ने योग्य वर कन्या से ही आगामी गृहस्थ जीवन अच्छा रहता है और वर के लक्षण बतलाये। जब सारी बात हो गई तो ब्रह्माजी प्रगट हुए उन्होंने शङ्खचूड़ को तुलसी के साथ गान्धर्व विवाह करने की बात कही क्योंकि चतुर मनुष्य का चतुर दक्ष स्त्री के साथ सङ्गम गुणवान् ही होता है। इसपर तुलसी का शङ्खचूड़ के साथ गान्धर्व विधि से विवाह सम्पन्न हो गया वह उसे तपोवन से दूसरे स्थान पर ले गया। वह दुर्दान्त दैत्य अपने नगर में जाकर स्वच्छन्द विहार करने लगा। इससे देवतावृन्द बहुत व्यथित हुए और वे सीधे ब्रह्माजी के पास पहुंचे। ब्रह्माजी उनको साथ लेकर शिवलोक गये और शङ्करजी के साथ वे सभी वैकुण्ठलोक में भगवान् विष्णु के यहां अपनी पुकार सुनाने गये। भगवान् के द्वारपालों ने जब शिवजी एवं ब्रह्माजी के साथ देवताओं का आगमन सुनाया तो उनने सबको अन्दर लिवाने की आज्ञा दी। इसपर सभी विष्णु की सभा में चले गये और भगवान् के अलौकिक प्रभाव की प्रशंसा करते हुए अपने आने की बात ब्रह्माजी को अपना प्रतिनिधि बनाकर कही। तब भगवान् ने शङ्खचूड़ के पूर्वजन्म की कथा कही कि किस प्रकार वह सुदामा नामक गोप था और राधाजी के शाप से उसे दानवी योनि मिली। फिर राधा को बहुत

समझाया गया तो उन्होंने कहा कि एक आधे क्षण में शाप का पालन कर वह फिर आ जायगा परन्तु गोलोक का आधा क्षण तो एक मन्वन्तर के बराबर होता है। हे ब्रह्मन्! मेरी शूल लेजाकर शङ्कर उससे युद्धकर उसकी योनि छुड़ा दें तो परम कल्याण हो क्योंकि उसको यह वर दिया गया है कि जब तेरी पत्नी का सतीत्व भङ्ग होगा तो वहीं पर उसकी मृत्यु होजायगी। मैं तुलसी का सतीत्व भङ्ग करूँगा और उसके साथ ही तुलसी की योनि छूट जायगी तथा वह मेरी स्त्री बनेगी। तब विष्णु ने शिव को गदा दी और देवता लोग भारत में चले आये।

## १७ शिवेन सह शङ्खचूडस्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेषणम् १७६

ब्रह्माजीने शिवजी को शङ्खचूड़ के संहार के लिये नियुक्त कर अपने लोक में पदार्पण किया। इधर शङ्करजी चन्द्रभागानदी के किनारे अपने कार्य के लिये और देवताओं के उद्धार के लिये जुट गये। इसके लिये उन्होंने अपने पुष्पदन्त को शङ्खचूड़ के पास दूतरूप में भेजा। पुष्पदन्त ने बड़ी कठिनता से उसके राज दरबार में प्रवेश कर शङ्कर के अभिमत युद्ध के सन्देश को कहा। उसका संक्षेप सार यही था कि सम्पूर्ण देवताओं को उनका राज्य दो। श्रीहरि ने शङ्कर को शूल देकर भेजा है कि यदि वह दैत्येश्वर ना कर दे तो युद्ध करके उन्हें राज्य दिलवा दिया जाय। शङ्खचूड़ ने हँसकर प्रातःकाल आकर युद्ध के आह्वान को स्वीकार किया शङ्कर के साथ अब उनके पार्षद एवं गण लोग जुटने लगे। सभी अस्त्र, योगिनीवृन्द भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष, रक्ष और किन्नर लोग आगये। जब शङ्खचूड़ अपने अन्तःपुर में गया तब उस साध्वी तुलसी ने सब बातें सुनीं तो उसने काल निकट है यह संकेत देकर सम्पूर्ण जीवन की सार बात करने को कहा शङ्ख चूड़ ने इसपर भगवान् काल की महिमा बताकर भगवान् कृष्ण के चरणों में दृढ़भक्ति करने का उपदेश दिया और अपने पूर्वजन्म की बात कहकर दाम्प ——— और दोनों आनन्द से केलि विलास में मग्न हो गये।

फिर शङ्करजी ने भगवत्परायण होकर हरिगुणगान का उपदेश दिया क्योंकि वही संसार की आधि और व्याधि को छुड़ानेवाली अचूक रामबाण औषधि है। तब शंखचूड़ ने बड़ी विनय से शंकर भगवान् की बातों को मानते हुए कहा कि देव दानवों का यह शक्ति प्राप्ति के लिये युद्ध अनादिकाल से होता आया है। इसमें कभी उनकी जय कभी हमारी जय चली आई है। परन्तु हमारे साथ सदा ही बहुत बुरा बर्ताव हुआ है। आपको हमारे साथ होड़ लगी है जीतने पर कोई वाहवाही नहीं हारने पर बुराई होगी। शङ्कर ने सारी बातों का उत्तर देकर या तो बात मानने को कहा अन्यथा युद्ध करने की ही धमकी दी।



प्रातःकाल होते-होते शङ्खचूड़ ने नित्यकृत्य से निवृत्त होकर अपने पुत्र को राज्याभिषिक्त किया और तरह-तरह के अपूर्व दान युद्धयात्रा की सिद्धि के लिये किये। उसने लम्बी चतुर्वाहिनी रथ, घोड़े, हाथी और पैदल सेना इकट्ठी की और पश्चिम समुद्र की ओर बढ़कर भगवान् शङ्कर से युद्धार्थ चन्द्रभागा नदी के किनारे साक्षात् उपस्थित हुआ। भगवान् शङ्कर ने शङ्खचूड़ के पूर्व वंश का इतिहास बताते हुए उस की गौरवगाथा गाई और देवताओं तथा दानवों दोनों को ही अपने-अपने अधिकार बराबर मिलें इसके लिये शङ्खचूड़ को कहा। उन्होंने उन्नति एवं अवनति दोनों को ही दिखाकर शङ्खचूड़ से देवतागणों के लिये अधिकार देने की बात कही।



शङ्खचूड़ने युद्ध के लिये पहले से ही पूरी तैयारी कर रक्खी थी। उसने शङ्कर को प्रणाम कर युद्ध की साजसज्जा से आगे आने को अपने अमात्य

लोगों को आज्ञा दी। अब बड़ा भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। देवता लोग भाग गये केवल कार्तिकेयस्वामी अकेले बच रहे। उनका शङ्खचूड़ के साथ घोर युद्ध हुआ इसमें दोनों दलों ने महान् वीरत्व दिखलाया और नाना शक्तियाँ भी आ धमकीं कई दिनों तक जमकर युद्ध हुआ। अन्त में, आकाशवाणी हुई कि हे कार्तिकेय! यह दानव शंखचूड़ तुम से अवश्य है मारा नहीं जासकता।

२० शिवशङ्खचूड़युद्धम् १८६

शङ्करजी ने अपने गणों के साथ युद्धक्षेत्र में प्रवेश किया। शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम कर वह युद्ध के लिये तैयार हो गया। युद्ध एक वर्ष तक चला। दोनों दलों में वह अनिर्णयात्मक रूप में ही चलता रहा। तब भगवान् विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का वेष धरकर आये और शङ्खचूड़ से कवच की भिक्षा मांगी। शङ्खचूड़ ने कवच उन्हें दे दिया। विष्णु भगवान् उस कवच को लेकर शङ्खचूड़ के रूप में तुलसी के पास आये और माया से उसमें गर्भाधान किया और शंकरजी ने श्रीत्रिशूल से उस दैत्य को भस्म कर दिया। वह भी दिव्य शरीर धरकर गोलोक में कृष्ण भगवान् के यहां चला गया। वहां फिर सुदामा गोप बनकर श्रीकृष्णका पार्षद होकर सानन्द रहने लगा। शंकरजी ने दानव के अस्थिपञ्जर को अपने त्रिशूल से समुद्र में डाल दिया उन्हीं की शंख जाति बनी। इसी कारण से शङ्ख का जल तीर्थ जल के समान पवित्र है और लक्ष्मीकारक है। अपना काम पूरा कर शङ्करजी शिवलोक पधार गये।

२१ तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् १६१
शालग्रामचक्रनिर्देशस्तद्गुणकथनञ्च १६५

नारद के यह पूछने पर कि तुलसी में नारायण ने किस रूप में गर्भाधान किया। इसपर नारायण ने कहा कि शङ्खचूड़ के पास से छल से कवच लेकर और

फिर उसीका रूप बनाकर तुलसी के द्वार पर विष्णु पहुंच गये। वहां उन्होंने विजय दुन्दुभी बजाई। जय शब्द सुनकर अपने पति को आया हुआ देख तुलसी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने छद्मवेषधारी विष्णु से अपनी विजय का कारण पूछा। विष्णु ने सारी मनगढ़न्त कहकर ब्रह्मा द्वारा बीचबचाव होने से शङ्करजी के साथ समझौता हो गया और देवतागण को अपना इच्छित अधिकार मिल गया। ऐसा सुखद सम्वाद सुनाया। जब तुलसी के साथ भगवान् शङ्खचूड़ वेष में रमण करने लगे तो उसे कुछ दूसरा अनुभव हुआ और भगवान् को अपने सामने देखकर उसने शाप दिया कि आपने धर्म का भङ्ग कर मेरे स्वामी को मारा है आपमें दया की भावना तनिक भी नहीं है जाइये आप पाषाण ( पत्थर ) के समान दयाहीन हो जाइये। आपको अपने भक्त का भी थोड़ासा खयाल नहीं रहता अतः एक जन्म में आप अपनेको भी भूल जायेंगे। अब वह महासती जोर-जोर से रोने लगी और करुण विलाप करने लगी। इसपर भगवान् नारायण ने उसे बोध दिया हे साध्वि ! तुमने पूर्वजन्म में मेरे लिये तपस्या की और शङ्खचूड़ ने तेरे लिये की अब सारा फलाफल भोगकर वह चला गया और तुम्हारे तप का फल देना बाकी है सो अब इस शरीर को छोड़कर दिव्य देह से रास में लक्ष्मी के बराबर शोभा-वाली तुम बनोगी और तेरे केश पास के तुलसी के पुण्य वृक्ष होंगे। तेरे ही नामपर उन्हें भी तुलसी कहा जायगा। हे वरानने सभी पत्रपुष्पों में जो देवपूजा के योग्य होंगे स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल, वैकुण्ठ और मेरे पास गोलोक में तुलसी के वृक्ष प्रधान रूप में काम में आयेंगे। जहां पुण्यतीर्थस्थान हैं वहीं तुलसी के वृक्ष होंगे।

तुलसीपत्रतोयञ्च मृत्युकाले च यो लभेत्।
स मुच्यते सर्वपापात् विष्णुलोकं स गच्छति ॥८२॥

तुलसी का प्रतिदिन सेवन और तुलसीकाष्ठमाला के जप से अनन्तकोटि पुण्य लाभ होता है। अपने लिये भगवान् विष्णु ने कहा कि गण्डकी नदी के तीर के पास शैलरूप में मैं रहूंगा। वहांपर नानारूप में मेरी शिला मिलेगी उसके पूजन

से सारे पाप ताप नष्ट हो जायेंगे। तुलसीदल या शालग्राम शिलापर चढ़ाने का महान् पुण्य है जो इसे नहीं चढ़ायेगा उसको सात जन्म तक अपनी स्त्री से विछोह ( वियोग ) रहेगा। इसी प्रकार शङ्ख के सम्बन्ध में भी हरिपूजा का अविभाज्य अङ्ग कहकर बहुत प्रशंसा की गई है। एक बार भी प्रेम होने से किसी का वियोग सहा नहीं जाता है। तुलसिके! तुमने तो एक मन्वन्तर तक उसके साथ गृहस्थ भोगा है तब तो विरह असह्य है ही परन्तु जाओ तुम्हारी पूर्वजन्म की साधना सफल हो। यह कहकर भगवान गुप्त हो गये और तुलसी ने अपना शरीर छोड़कर दिव्य शरीर धारण किया और भगवान् के साथ ही वह वैकुण्ठ लोक में चली गई। यह संक्षेप में लक्ष्मी, सरस्वती गङ्गा और तुलसी की कथा हुई जो भगवान् की भार्या बनी और भगवान् के देह से गण्डकी नदी पर शालग्राम शिलायें बनी जिनकी पूजा से आज भी भक्तगण इच्छित फल पाया करते हैं।



नारदजी के तुलसीपूजाविधान और स्तोत्र के सम्बन्ध में पूछने पर भगवान् नारायण ने जो तुलसी बीजमन्त्र, पूजाविधान और स्तोत्र बताया उसका संक्षेप से विवरण। तुलसी के दिव्य देह धारण करने पर भगवान् नारायण उसे भी लक्ष्मी के समान मानने लगे, इसपर लक्ष्मी ने अप्रसन्न होकर उसे मारा। इस अपमान से लज्जित होकर तुलसी अन्तर्हित हो गई। इसपर भगवान् स्वयं तुलसीवन में गये और तुलसी बीजाक्षर से सिद्धि प्राप्त की। इसके बाद तुलसी ध्यानस्तोत्र और पूजा का संक्षेप से विवरण है।

---

२३ **सावित्र्युपाख्यानम्** १६८

**सावित्रीध्यानम् पूजाविधानञ्च** २०१

मद्र देश में महाराज अश्वपति एक प्रबल प्रतापी राजा हुए। उनके मालती नामकी प्रधान महिषी थी उसने गायत्री की आराधना वशिष्ठजी के उपदेश से की परन्तु कोई फल नहीं मिला। तब फिर सौ वर्ष तक राजा ने तपस्या की अन्तमें उसे आकाशवाणी हुई कि हे राजन् १० लाख गायत्री के जप करो। गायत्री जप का माहात्म्य। जपविधान में हाथ के द्वारा स्वनः करने के विशेष फल का वर्णन पराशरजी ने आकर बताया। गायत्री जपके पहले सन्ध्यावन्दन अवश्य कर्तव्य है अन्यथा फलहानि होती है। राजा ने तदनुसार सावित्री का जप और पूजा कर उसे प्रसन्न कर दिया उसका वर भी मिला। इसपर राजा अश्वपति के द्वारा गायत्री विधान का वर्णन।

२४ **द्वितीयसावित्र्या जन्मविवाहाद्युपाख्यानम्** २०३

राजा अश्वपति ने जब सावित्री को प्रसन्न किया तो वह प्रसन्न मुद्रा में स्वयं उपस्थित होकर राजा से बोली हे महाराज जो आपके मन में है और आपकी पत्नी को इच्छित है वह मैं दूँगी। तुम्हारी इच्छा पुत्रकी है और स्त्री की इच्छा पुत्री की है। तुम दोनों की ही पुत्री और पुत्र की इच्छा पूर्ण होगी। तब राजा के अपनी स्त्री मालती से कन्या हुई उसका नाम भी सावित्री रक्खा गया। वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई यहां तक कि उसकी विवाह के योग्य अवस्था हो गई। उसने भी द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को वरने का वर लिया था इसलिये राजा अश्वपति ने उसका विवाह सत्यवान् से कर दिया और खूब दहेज के साथ अपनी पुत्री को श्वसुर गृह भेज दिया। एक वर्ष बीतने पर सत्यवान् अपने पिता की आज्ञा से काठ इन्धन लाने के लिये वन में गया उसी के साथ दैवयोग से सावित्री भी थी।

दुर्भाग्य से वृक्ष से गिरकर सत्यवान् मर गया। उसी समय यम भी अंगूठे के समान उसके जीव को लेकर अपने लोक में जाने लगा तो अपने पीछे आती हुई सती सावित्री को देखा। यमराज के द्वारा कर्मफल का विस्तार से वर्णन करते हुए सावित्री को यमलोक में जाने से रोकना यम द्वारा सत्यवान् की आयु क्षीण थी अतः अब वह कर्मफल के भोगने के लिये जाता है उसके लिये रोकने को मना करना।

२५ - कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नः २०१

सावित्री ने शुभ कर्म और अशुभ कर्म क्या है इसको लेकर प्रश्न किया। यमराज ने वेदविहित कर्म को ही मङ्गलकर और शुभ बतलाया तथा अवैदिक कर्मों को अशुभ कहा। कर्म को निर्मूल करनेवाली हरिभक्ति ही सच्ची है, हरिभक्त ही मुक्त है उसे किसी प्रकार की जन्म-मृत्यु एवं व्याधि की अवस्था से थोड़ा भी भय नहीं रहता। मुक्ति दो प्रकार की है एक निर्वाण रूप और दूसरी हरिभक्ति स्वरूप। कर्मरूप भगवान् विष्णु बीजरूप से विराजमान है अतः जीव कर्मफल भोगता है और आत्मा निर्लिप्त रहती है। देही आत्मा का प्रतिबिम्ब है वही जीव है देह विनाशशील है और पाञ्चभौतिक है। यह सब शरीर पृथिवी, वायु, आकाश, जल और तेज रूप का विकार है। सृष्टिविधि में यह सब सूत्ररूप में रहते हैं इन सबका कारणरूप श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं है इसे जानकर बराबर स्वस्थ रहकर जीवनचर्या बनाने से ही मनुष्यजीवन की सफलता है। इसपर सावित्री ने कहा आप तो बुद्धि के सागर हैं मुझे बतलाइये कि इस पतिदेव को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ। कृपया यह समझाइये कि किन कर्मों से जीव किन-किन योनियों को प्राप्त करता है, किनसे स्वर्ग मिलता है, किनसे नरकगामी होता है, किनसे भगवान् में भक्ति बढ़ती है और किन कर्मों से मुक्ति होती है। किस कर्म से रोगी और नीरोग होता है किससे दीर्घायु और अल्पायु होता है। अङ्गहीन, काना, अन्धा, बहरा, कृपण

प्रमादी, लोभी, पागल और नरघातक किन-किन कर्मों से होता है ? किस कर्म से चारों प्रकार की मुक्ति मिलती है ? किससे ब्राह्मणत्व और तपस्वी जीवन मिलता है ? स्वर्ग के भोग और वैकुण्ठ किनसे मिलते हैं ? गोलोक किस कर्म से मिलता है ? नरक कितने प्रकार का है ? उसके भेद बतलाइये। कौन नरकगामी होता है और कितने समयतक वहांपर रहता है। पापियों को किन-किन कर्मों से व्याधियां हो जाती है आदि-आदि मुझे समझाइये।

## २५ कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् २०७

सावित्री का वचन सुनकर विस्मित होकर यम ने कहा हे सावित्री १२ वर्ष की कन्या होकर भी तुम्हारा ज्ञान अपूर्व है मानो पहले के विद्वान् योगियों से भी बढ़ी चढ़ी हो अतः मैं प्रसन्न हूं और जैसे पूर्वकाल के असंख्य स्त्री पुरुषों ने जीवन धर्ममय बनाकर आदर्श रक्खा वैसे तुम भी सत्यवान् के साथ सौभाग्यशीला बनो अब तुम्हें जो दूसरा वर इच्छित हो वह कहो। सावित्री ने इसपर कहा कि मेरे पति के ही औरस से मेरे १०० पुत्र हों, मेरे पिता के सौ पुत्र और श्वशुर के आंखें हो जाय और मेरा गृहस्थजीवन सुखपूर्वक व्यतीत होनेपर मैं अपने पतिदेव सत्यवान् के साथ एक लक्ष वर्ष के बाद विष्णुलोक में चली जाऊँ। इसके बाद आप क्रमशः मुझे जीवकर्मविपाक और विश्वविस्तारबीज विशेष रूप से समझाइये।

यमराज ने तथास्तु कहकर जीवकर्मविपाक बताना आरम्भ किया। भारत में जन्म लेने से ही शुभ और अशुभ कर्मों का भोग भोगना पड़ता है क्योंकि यही पुण्यक्षेत्र है और नहीं। देवता, राक्षस, गन्धर्व, दानव और मनुष्य ये कर्म भोगने की योनियां हैं परन्तु सभी समजीवी नहीं हैं। अच्छे कर्मों के प्रभाव से ऊँची योनियां मिलती हैं बुरे कर्मों के प्रभाव से नीच योनियां प्राप्त होती हैं। कर्म को उखाड़ फेंकने में दो प्रकार की युक्ति बतलाई गई है। एक निर्वाण परमपद और दूसरी कृष्णभगवान् की सेवा। जीव कर्म न करने से रोगी और शुभ कर्म

दुर्भाग्य से वृक्ष से गिरकर सत्यवान् मर गया। उसी समय यमराज उसके जीव को लेकर अपने लोक में जाने लगा तो अपनी सावित्री को देखा। यमराज ने द्वारा कर्मफल का विचार कर सावित्री को यमलोक में जाने से रोकना यम द्वारा ... थी अतः अब यह कर्मफल के भोगने के लिये जाता है ... मना करना।

२५ कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नः

सावित्री ने शुभ कर्म और अशुभ कर्म क्या है इस... यमराज ने वेदविहित कर्म को ही मङ्गलकर और शुभ ... कर्मों को अशुभ कहा। कर्म को निर्मूल करनेवाली हरिभक्ति ... मुक्त है उसे किसी प्रकार की जन्म-मृत्यु एवं व्याधि की अवस्था ... रहता। मुक्ति दो प्रकार की है एक निर्वाण रूप और दूसरी ... भगवान् विष्णु बीजरूप से विराजमान हैं अतः जीव कर्म ... आत्मा निर्लिप्त रहती है। देही आत्मा का प्रतिबिम्ब है य... शील है और पाञ्चभौतिक है। यह सब शरीर पृथिवी, वा... तेज रूप का विकार है। सृष्टिविधि में यह सब सूत्ररूप ... कारणरूप श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं हैं इसे जानकर बराबर ... बनाने से ही मनुष्यजीवन की सफलता है। इसपर सा... बुद्धि के सागर हैं मुझे बतलाइये कि इस पतिदेव को ... कृपया यह समझाइये कि किन कर्मों से जीव किन-किन ... है, किनसे स्वर्ग मिलता है, किनसे नरकगामी होता है, ... बढ़ती है और किन कर्मों से मुक्ति ... कर्म ... है किससे ...

को प्राप्त कर विष्णुलोक में जाता है। फिर भूमिदान, स्वर्णदान, वापी, कूप तड़ाग और धर्मशाला आदि के निर्माण का जो पुण्य करता है वह कल्पान्तजीवी होकर महाराजराजेश्वर बनता है उसको विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। यथाशक्ति दानादि करसकने में यदि कोई व्यक्ति असमर्थ है तो उसे भगवान् विष्णु के दिव्य नामों का जप कर अपना ऐहिक कल्याण करना चाहिये। संसार में सभी नाश को प्राप्त होते हैं, परन्तु विष्णुभक्त कभी नष्ट नहीं होते। कार्तिक मास में जो तुलसी और भगवान् को दीप दान करता है उसे अक्षय पुण्य का लाभ मिलता है। माघ में गङ्गा स्नान जब अरुणोदय हो उस समय करनेवाला मनुष्य ६० हजार वर्ष तक भगवान् के मन्दिर में आनन्द करता है। फिर बारह मासों के नाना कृत्यों का वर्णन कर उनके फल बतलाये हैं। भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद के साथ यम ने सत्यवान् के साथ सावित्री को लौट जाने की आज्ञा दी।

२८ **सावित्रीकृतं यमस्तोत्रम्** २१८

सावित्री ने यम के द्वारा भगवान् कृष्ण के गुणानुवाद को सुनकर आँखों में आँसू बहाते हुए गद्‌गद् होकर भगवान् हरि के नामाक्षर की अमित महिमा स्वयं अपनेआप गाई। सावित्री जैसी साध्वी के द्वारा कृष्ण गुणों की प्रशंसा स्वाभाविक है। उसने कृष्णभक्ति और भगवन्नाम कीर्तन से अपने कुल का उद्धार होना कहा और सुनने तथा बोलनेवाले सभी को समान रूप से उनके जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा को हरनेवाला होने के कारण लाभदायक बतलाया। भगवान् के कीर्तन से दान, व्रत, तपस्या और योगाभ्यास की सिद्धियाँ भी तुच्छ (छोटी) जान पड़ती हैं। मुक्ति, अमरता और सम्पूर्ण सिद्धियां भी श्रीकृष्ण भक्ति की १६ वीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकतीं। फिर अशुभ कर्मविपाक के सम्बन्ध में पूछकर उसने वेदोक्त स्तोत्र से यमराज की स्तुति की। इस स्तुति को प्रातः पढ़नेवाले को किसी प्रकार का पाप-ताप नहीं सताता।

यम ने सावित्री को विष्णुमन्त्र की दीक्षा विधिपूर्वक देकर कर्माशुभविपाक के सम्बन्ध में विस्तार से बतलाया। कुकर्मी को सदा नरक की गति मिलती है। इसके सम्बन्ध में नाना प्रकार के नरककुण्डों को विस्तार से पुराणों में जहाँ-जहाँ वर्णन आया है उसे सारख्प में यमराज ने सावित्री को बतलाया। ८०६ कुण्ड हैं, उनमें अग्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, श्लेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, दूषिकाकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, असृक् कुण्ड, अश्रुकुण्ड और कान, आँख, आदि के मलों के कई कुण्ड, मज्जाकुण्ड मांसकुण्ड, नखकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, और दु:खद अस्थि कुण्ड, ताम्रकुण्ड, लौहकुण्ड, तीक्ष्णकण्टककुण्ड, विषकुण्ड, घर्मकुण्ड (ताप का कुण्ड) तप्तसुराकुण्ड, प्रतप्ततैलकुण्ड, दन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड पूयकुण्ड, सर्पकुण्ड, मशककुण्ड, दंशकुण्ड, गरलकुण्ड, वज्रदंष्ट्री जीवों का कुण्ड, बिच्छुओं का कुण्ड, शरकुण्ड, शूल कुण्ड, खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, काककुण्ड, सञ्चालकुण्ड, वाजकुण्ड, दुस्तर-बन्धककुण्ड, तप्तपाषाणकुण्ड, तीक्ष्णपाषाणकुण्ड, लार का कुण्ड, असिकुण्ड, चूर्ण-कुण्ड, चक्रकुण्ड, वक्रकुण्ड, कूर्मकुण्ड, ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, पूतिकुण्ड, तप्तशालयप्सी-पात्र, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, गोधामुख, नक्रमुख, गजदंश, गोमुख, कुम्भीपाक, कालसूत्रनरक, अवटोद, अरुन्तुद पांशुभोज, पाशवेष्ट, शूलप्रोत, उल्कामुख, अन्धकूप, वेधन, दण्डताड़न, जालबन्ध, देहचूर्ण, दलन, शोषणङ्कार, सर्पज्वालामुख, जिम्भ, धूमान्ध, और नागवेष्टन इन कुण्डों का विवरण दिया तथा यहाँपर किङ्कर लोक बराबर रक्षक रूप से नियुक्त हैं। वे अपने हाथ में दण्ड, शक्ति, शूल, पाश, गदा लेकर मदोन्मत्त होकर निर्दयता से पापी जीवों के पूर्वकृत पापों का भोग करवाते हैं। आगे किन-किन पापों से किन-किन कुण्डों का वास होता है यह बताया जायगा।

---

३०

## पापिनां नरकनिरूपणम्

२२०

संसार में जो भगवान् की सेवा में लगजाता है मन, बुद्धि और शरीर से शुद्ध है, योगी, सिद्ध और व्रती, तपस्वी एवं ब्रह्मचारी है वह कभी भी नरकगामी नहीं होता है। अपने बन्धुबान्धवों को जो कड़ी वाणी से और दुष्टता से व्यवहार करता है वह अग्निकुण्ड को जाता है। शरीर में जितने लोम हैं उतनी संख्या के वर्षों तक उसमें नरक भोगकर तीन जन्मों तक पशुयोनि पाता है। भूखे प्यासे ब्राह्मण को जो अपने घरपर अतिथि सत्कार के अनुरूप भोजन नहीं कराता, वह तप्तकुण्ड का गामी होता है और शरीर के जितने रोम हैं उतने वर्षों तक रहकर फिर सात जन्म तक पक्षी होता है। रविवार, अर्क की संक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्ध के दिन जो कोई अपने कपड़ों में क्षार वा साबुन लगाकर सफ़ाई करता है वह क्षारकुण्ड में जितने कपड़े में सूत के धागे हैं उतने वर्ष तक रहता है बाद में धोबी की योनि पाता है। अपनी दी गई या दूसरे की दी गई ब्राह्मण की वृत्ति को जो हरता है वह ६० हजार वर्ष तक विट् कुण्ड में रहता है। वही उसका भोजन होता है फिर ६० हजार वर्ष तक पृथ्वी पर विष्ठा का कीड़ा बनता है। दूसरे के बनाये गये तालाब पर यदि तड़ाग बनाया जाता है तो दैवदोष का अपराध होने से वह मूत्र कुण्ड में जाता है। जितनी पृथ्वी की रेणुका हैं उतने वर्ष तक उसे खाने वाला कीड़ा बनकर वहीं रहता है, फिर मगरमच्छ की योनि सात जन्म तक लेकर उससे छुटकारा पाता है। अकेला यदि कोई मिष्टान्न खाता है तो श्लेष्म कुण्ड में जाता है और पूरे सौ वर्ष तक उसे खाते हुए अपना जीवन बिताता है फिर सौ वर्ष तक भारत में प्रेत योनि में जाता है श्लेष्म, मूत्र, गर को खाकर फिर छूटता है। पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र और अपनी पुत्री को अनाथावस्था में जो पालन नहीं करता वह गर कुण्ड मे पड़ता है और वहीं सहस्र वर्ष तक रहकर फिर भूत योनि सौ वर्ष तक भोगकर शुद्ध बनता है। जो अतिथि को देखकर

मुह मोड़ता है या टेढ़ी नजर से अपमान करता है उस पापी के यहाँ देवता और पितर जल नहीं लेते। ब्रह्महत्यादि जैसे जघन्य पापों का फल इसी जीवन में मिलता है। अन्त में दूषिका कुण्ड में गिरने से शुद्ध होता है ऐसा आदमी सात जन्म तक दरिद्र बनता है। ब्राह्मण को दिया हुआ धन यदि दूसरे को दिया जाय तो उसको देनेवाला २०० वर्ष तक वसाकुण्ड में गिरता है फिर चाण्डाल योनि में तीन जन्म रहकर शुद्ध होता है और भारत में गिरगिट योनि सात जन्म तक लेकर फिर दरिद्र और अल्पायु होता है। स्त्री-पुरुष को रज या पुरुष-स्त्री को यदि शुक्र पिलाता है तो शुक्र कुण्ड में गिरता है। १०० वर्ष तक उस कुण्ड का कीड़ा बनकर फिर पृथ्वी का कीड़ा बनता है और शुद्ध होता है बाद में सात जन्म तक व्याध के यहाँ पैदा होकर क्रम से शुद्ध होता है। भगवान् के भक्त को जो भक्ति से विह्वल और अश्रुपातादि से गद्गद हो गया हो यदि कोई उसकी हँसी करता है तो १०० वर्ष तक अश्रुकुण्ड में कीड़ा होता है फिर तीन जन्म तक चाण्डाल होकर शुद्ध होता है। सदा दुष्टता करनेवाला १० वर्ष तक शरीर के मलस्थानों के कुण्ड में गिरता है फिर तीन जन्म में गधा और तीन जन्म में शृगाल (सियार) बनकर शुद्ध होता है। जो बहरे की हँसी या अपमान तथा निन्दा करता है वह कानों के मल के कुण्ड में १०० वर्ष तक रहता है और फिर सात जन्म तक दरिद्री और बहरा होता है और सात जन्म तक अङ्गहीन होकर शुद्ध होता है। जो लोभ से अपना पालन करने के लिये जीव को मारता है वह लाख वर्ष तक मज्जा कुण्ड में कीड़ा होता है। अपनी कन्या का पालन कर बेचनेवाला मांस कुण्ड में पड़ता है, ऐसा व्यक्ति ६० हजार वर्ष तक व्याध होता है फिर वराह, कुत्ता, मेढ़क, जोंक और कौआ सात-सात जन्म तक होकर शुद्ध होता है। व्रत, उपवास, श्राद्धादि में संयम न कर और कर्म करता है वह कभी शुद्ध नहीं होता उसे कहीं भी कर्म करने का अधिकार नहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण पापों के नाना कुण्डों की गति और परिणाम का विस्तार से वर्णन किया गया है। पाप पुण्य के यातना और अतिदेशों के सम्बन्ध

में सावित्री ने जब यम से पूछा तो उसे यह बतलाया गया कि अतिदेशिक से वास्तव का चार गुना हत्या अधिक पाप का फल देती है। जो व्यक्ति किसी भी देवता के मन्त्र की दीक्षा नहीं लेता वह अदीक्षित है उसका कहीं भी अधिकार नहीं। प्रमत्त, पतित आदि के भेद का वर्णन।

३१ सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः २३०

हरि सेवा के बिना कर्म का खण्डन नहीं होता। शुभकर्म स्वर्ग का जनक है और कुकर्म नरक का जनक है। पुंश्चल्यान्न, वेश्यान्न आदि के खानेवाली की गतियाँ बतलाई और अगम्यागमन का सेवन करनेवाले का वज्र पाप नया योनि भोगने पर भी नहीं छूटता इसलिये सदा इनसे बचते रहना मनुष्य का परम धर्म है। पृथ्वी, वायु, आकाश, तेज और तोय देही जनके शरीरों के मूल हैं और सृष्टिविधि में ये ही कारण हैं। पृथिवी आदि पञ्चभूतों से देह निर्मित है वह नश्वर और कृत्रिम है तथा भस्मीभूत हो जाता है। वृद्ध के अङ्गुष्ठ के प्रमाणवाला जीव पुरुषाकार में सूक्ष्म देह धारण कर नाना योनियों में जाता है। यह सूक्ष्म देह न शस्त्र से छिदता है न अग्नि से जलता है न जल में लोहित है। यही भोग योनियों में जाता हुआ प्रभु की कृपा से प्रभुशरण होकर भगवान् के रूप में एकाकार हो जाता है। भक्तों को चार प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं उसका निरूपण किया और निष्काम भक्ति की सर्वत्र प्रशंसा की। तदनन्तर सत्यवान् को जिलाकर यमराज ने जाने की तैयारी की। सज्जन पुरुष का वियोग सदा ही दुःखदायी होता है दोनों ही इस सज्जन सङ्गम से प्रभावित हुए और विदा के समय दुःखी होकर रोने लगे। तब यमराज ने सावित्री को कहा कि लाख वर्ष तक भारत में सुखपूर्वक जीवन बिताकर अन्त में गोलोक में जाओगी। अब तुम घर जाकर सावित्री का व्रत करो। चौदह वर्ष तक ज्येष्ठ मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यह सावित्री का मङ्गल व्रत है। भाद्र शुक्ल की अष्टमी को महालक्ष्मी का व्रत आठ वर्ष

तक लगातार करने से भगवान् में भक्ति होकर अन्त में उसके लोक की प्रा
है। प्रति मास प्रति मङ्गलवार को शुक्लपक्ष की षष्ठी को मङ्गल चण्डी
विधान है और इसी प्रकार आषाढ़ की संक्रान्ति से सर्वसिद्धि देनेवाल
तथा कार्तिक शुक्लपक्ष में रासेश्वरी राधा का व्रत करना और प्रतिमास क
की अष्टमी को विष्णुमाया भगवती दुर्गा का उपासना धन, सम्मान और
को देनेवाला है। इसे शुभ आचरण करना इस प्रकार कह कर यमराज भव
तथा सावित्री सत्यवान् के साथ अपने घर को चली गई। सावित्री के
पुत्रों की प्राप्ति हुई और उसके श्वसुर को आँखों की ज्योति मिल गई वह
धन्या पतिव्रता एक लाख वर्ष तक सुख से गृहस्थ जीवन बिताकर
गोलोक में चली गई। सूर्य की अधिदेवी तथा सूर्य मन्त्रों की अधिष्ठा
होने से उसका नाम सावित्री सार्थक हुआ।

## ३२ यमसावित्री सम्वादवर्णनम्

फिर सावित्री ने इन नरककुण्डों में न जाने का उपाय पूछा और
भौतिक देह के जलजाने के बाद मनुष्य कैसे और किस शरीर से शुभ औ
कर्मों का भोग भोगते हैं फिर दीर्घकाल तक भोग भोगने पर भी देह का न
होता है आदि बातें मुझे संक्षेप से बतलाइये। सम्पूर्ण चारों वेद, धर्म
धर्मों का सार, पुराण, इतिहास, पञ्चरात्र आदि में तथा वेदाङ्ग और १८
में सम्पूर्ण इष्टों का सार मङ्गलरूप कृष्णसेवन बतलाया है। यह भगवत्कीर्तन
भजन, ध्यान, मनुष्य का जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, शोक और सन्ताप से छु
करवा देता है। यह सर्वमङ्गलरूप है, परम आनन्द का कारण है, भक्ति
का यह अङ्कुर है और सम्पूर्ण कर्मवृक्ष को जड़मूल से छेदन करनेवाला है
कुण्ड, यमदूत, यम और यम के नौकरों को कृष्ण भक्त कभी नहीं देखते। ती
की सन्ध्या करनेवाले आचार में लगे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का मार्ग प्र

गन्धर्वादि तथा नागों ने पाताल में इनकी पूजाकी। भाद्रपद की शुक्लपक्ष की अष्टमी को ब्रह्मा ने एक पक्ष तक भक्ति से इनकी पूजा की। चैत्र, पौष और भाद्रपद के मङ्गलवार के दिन भगवान् विष्णु द्वारा निर्मित इस महालक्ष्मी देवी की पूजा तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गई। पौष मास की संक्रान्ति में मनु ने इस भुवन-पावनी की पूजा की जो अबतक भी पूजी जाती है और सद्यः फल देती है। राजेन्द्र मङ्गल ने इसे पूजा। केदार, नल, नील, सुबल सभी ने इसकी अपने लिये पूजा की। ध्रुव ने भी, जो उत्तानपाद का पुत्र था, इसे पूजा। कश्यप, दक्ष, मनु, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुवेर, वायु, यम, अग्नि, वरुण सबने अपने-अपने इच्छित फल पाने के लिये भगवती की साक्षात् पूजा की। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य, विभूति और सम्पत्ति को देनेवाली है।

२६ इन्द्रम्प्रतिदुर्वाससःशापः २४८

मुनीन्द्रसुरेन्द्रसम्वादः २५१

भगवती महालक्ष्मीजी पृथिवी पर सिन्धु कन्या किस प्रकार हुई इस प्रश्न के उत्तर में नारायण भगवान् ने इन्द्र को दुर्वासा के द्वारा शाप देनेपर जब उसकी श्री जाकर वैकुण्ठ में महालक्ष्मी में मिल गई तो देवता लोग दुःखित होकर ब्रह्मा के यहाँ गये और ब्रह्माजी के नेतृत्व में भगवान् नारायण की शरण में जाकर उनसे अपनी कष्टकथा सुनाई, तब विष्णु की आज्ञा से देवराज इन्द्र की सम्पत्ति-रूपिणी लक्ष्मी सिन्धु की कन्या हुई और क्षीरसागर के मन्थन के समय लक्ष्मी के घर पाकर लक्ष्मी को यहाँ देखा। दुर्वासा के शाप का कारण पूछने पर भगवान् नारायण ने कहा कि रम्भा के साथ इन्द्र मद्यपान कर रमण करता था। दुर्वासा आये और प्रणाम करते हुए इन्द्रको पारिजात पुष्प से शुभाशीर्वाद दिया और प्रमादी इन्द्र ने यह पुष्प अपने हाथी के मस्तक पर धर दिया जिससे वह शोभा

ꣳ अन्यत्र चला गया इसी पर इन्द्रको शाप दिया। संसार के आवागमन से छुड़ाने
उपाय दुर्वासा ने इन्द्र को भगवान् विष्णु के मन्त्र की उपासना बताया। जन्म
लेकर मरण पर्यन्त सभी अवस्थाओं का वर्णन और सभी का स्वरूप वर्णन।

७ हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्यज्ञानप्राप्तिः २५७

भगवान् हरि के गुणों को सुनकर इन्द्र को स्वरूप का ज्ञान हुआ और
राग्य में अपना मन लगाया और अमरावती में जाकर उसकी सारी दुर्दशा
खी। तब भगवान् देवगुरु बृहस्पति के पास आकर उसने सारी अवस्था सुनाई।
हस्पति ने इन्द्र को सान्त्वना देते हुए पूर्वजन्म के सुकृत से सम्पत्ति और दुष्कृत
विपत्ति आती है। पहिये की धुरी के समान उत्थान पतन सभी के साथ
हता है। बिना भोगे हुए कर्म करोड़ों जन्मतक भी क्षीण नहीं होते उनका भोग
वश्यम्भावी है।

मा भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१७॥

सामवेद की कौथुम शाखा में इसका प्रतिपादन श्रीकृष्ण भगवान् ने
विस्तार से किया है। कालभेद, देशभेद, और पात्रभेद से कर्मों की न्यूनता और
अधिकता होती रहती है; जैसे, सामान्य दिन में विप्र को दान देने से समफल
होता है। अमावास्या, रवि की संक्रान्ति में उसीका सौगुना फल होता है।
चातुर्मास्य की पौणमासी को अनन्त फल होता है। सूर्यग्रहण के समय उसी
दान का करोड़गुना फल सूर्यग्रहण में उसका दशगुना फल होता है। सामान्य
श में दान का सामान्य फल विशेष देश में जैसे—गंगा देश में दश, सौ और
अनन्त गुना फल होजाता है। सामान्य ब्राह्मण को देने से सामान्य फल होता
व जितेन्द्रिय पण्डित को देने से लाखगुना फल होता है। जैसे—दण्ड, सूत्र,
चाक, जल और चक्र से मिट्टी को लेकर कुम्भ (घड़ा) बनता है यही बात कर्म

प्रकट करना। स्वाहा की पूजा करने का विधान एवं फलश्रुति। स्वाहा के षोडश नामों को पढ़ने से सर्वसिद्धि की प्राप्ति होती है।



स्वधा के ध्यान का कथन। सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने सात पितरों को उत्पन्न किया तथा उनके लिये श्राद्ध का अन्न एवं तर्पण का जल ही आहार बनाया। क्षुधित पित्रेश्वरों का ब्रह्मा के पास गमन और अपना दुःख प्रकट करना। ब्रह्मा द्वारा मानसी कन्या का प्रकट होना। कन्या ने पित्रेश्वरों का दान कर ब्राह्मणों के लिये उपदेश किया कि पित्रेश्वरों को *स्वधा* शब्द के उच्चारण से ही तृप्ति है। स्वधा की पूजा विधि। श्राद्ध समय स्वधा स्तोत्र को पढ़ने का फल। स्वधा स्तोत्र को सुनने से वेद पठन के समान फल।



दक्षिणा के आख्यान का कथन। गोलोक में सुशीला नाम की गोपी रहती थी। वह *अत्यन्त सुन्दरी एवं गुणवती एवं श्रीकृष्ण को प्रिय थी।* सुशीला को देख राधा का कुपित होना। दोनों के विरोध के भय से श्रीकृष्ण का अन्तर्धान। राधा ने श्रीकृष्ण के वियोग में विलाप करते हुए कहा कि हे श्रीकृष्ण आप कहाँ गये हैं। स्त्रियों के पति ही एकमात्र देव हैं जैसे—

*पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः।*
*परं सम्पत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्तिमान्॥* इत्यादि

दक्षिणा देवी का गोलोक से गमन। दक्षिणा की तपस्या एवं कमला के शरीर में प्रवेश। ब्रह्मा की प्रार्थना से दक्षिणा का प्रादुर्भाव। उससे किये कर्मों का पूर्ण फल। कर्म कराकर दक्षिणा उसी वक्त दे देनी चाहिये नहीं देने से मुहूर्त भर में दुगुनी हो जाती है। यज्ञकृत दक्षिणा स्तोत्र का वर्णन एवं फल कथन।

४३ षष्ठ्युपत्तिवर्णनम् २

षष्ठी का उपाख्यान का कथन। षष्ठी देवी की उत्पत्ति प्रकृति के छठे
से है। स्वायम्भुव मनु का पुत्र प्रियव्रत राजा था। वह तपस्या में ही लगा र
था। ब्रह्मा की आज्ञा से राजा ने विवाह किया। राजा को पुत्रेष्टि यज्ञ
से मृत पुत्र की प्राप्ति। उससे अन्य नारीगण एवं रानी को महा दुःख। तत्प
विमान का आगमन। राजा को देवी का दर्शन। राजा के द्वारा देवं
स्तुति। प्रसन्न हुई देवसेना द्वारा राजा को पुत्र प्राप्ति। राजा ने देवी की
कर ब्राह्मणों को द्रव्यदान किया। प्रत्येक मास में शुक्ल षष्ठी में राजा द्वारा
की पूजा। षष्ठी देवी की स्तुति एवं फल कथन।

४४ मङ्गलचण्ड्युपाख्यानम् २

मङ्गलचण्डी का उपाख्यान भी भगवान् नारायण ने कहते हुए बत
कि मङ्गल नामक मनु की पूज्य अभीष्ट देवी होने से इसका नाम मङ्गल
हुआ। सर्व प्रथम भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर के वध के अवसर पर विष्णु भ
की प्रेरणा से पूजा की। त्रिपुर ने शंकरजी के यान को आकाश से गिरा
उस समय ब्रह्मा विष्णु के उपदेश से दुर्गा की आराधना की और भगवती दु
अभय देकर मङ्गलचण्डी नाम से प्रसिद्ध होकर शंकर की सहायता की
ष्णु के दिये हुए अस्त्र से शंकर ने उस दैत्य को मार डाला। शंकरज
रतावृन्द ने पुष्प वृष्टि की। शंकरजी द्वारा मङ्गलचण्डी का मूलमन्त्र ध्यान
तोत्र उसका फल कथन।

४५ **मनसादेव्युपाख्यानम्** २८४

फिर कथाप्रसङ्ग से मनसा का उपाख्यान भी सुनाया। यह कश्यप की मानसी कन्या होने से मनसा नाम से विख्यात हुई। इसने मनसे भगवान् श्रीकृष्ण की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न कर वाञ्छित वरदान प्राप्त किया। स्वर्ग, नागलोक और पृथिवी में गौरी रूप में, नागेश्वरी और नागभगिनी के रूप में पूजा होती है। यही आस्तिक माता प्रसिद्ध है जो जरत्कारु मुनि की स्त्री थी। मनसा के बारह नामों का फल इससे सर्पों का भय नहीं रहता।

४६ **मनसापूजाविधानम्** २८५

**इन्द्रकृत मनसास्तोत्रम्** २६१

मनसादेवी का पूजा विधान। मनसा को पहले कश्यपजी ने जरत्कारु मुनि को बिना याचना किये ही दे दी। एक दिन सायंकाल पुष्कर तीर्थ में वट के मूल में थक कर मनसा की गोद में सिर रखकर ही जरत्कारु सोगये। धर्म लोप न हो इस भय से उसने अपने धर्मनिष्ठ पतिदेव को सन्ध्या के लिये जगाया इसपर जरत्कारु ने नाराज होकर पति का अप्रिय करनेवाली स्त्री को भला-बुरा कहा। मनसा ने इसपर कहा कि सन्ध्या के लोप भय से ही आपको जगाया अब मुझे आप क्षमा करें और स्वामी के चरणों में लोटकर विलाप करने लगी। जब मुनि सूर्य को शाप देने के लिये तैयार हुए तो स्वयं भगवान् सूर्य ने उपस्थित होकर क्षमा याचना की और श्रीकृष्ण भक्ति की प्रशंसा कर उन्हें प्रसन्न करलिया। अब मनसा को जरत्कारु ने छोड़ दिया परन्तु ब्रह्मा, शंकर और कश्यपजी के समझाने पर जरत्कारु ने गर्भाधान होने तक मनसा के यहाँ रहना स्वीकार कर लिया और योग द्वारा नाभिस्पर्श कर गर्भ धारण करवा दिया। जरत्कारु ने ; को वरदान दिया कि उसकी यह सन्तान तेजस्वी विष्णुभक्त होगी और

प्रेम में विह्वल रहेगी यही जनमेजय के नाग यज्ञ में आस्तिक होकर नागों
त्राणकर्ता हुआ। मनसा का स्तोत्र।

४७ सुरभ्युपाख्यानम् २

नारद ने गोलोक से आई हुई सुरभी के विषय में पूछा तो नारायण भग
ने गोमात्र की अधिष्ठात्री गौओं की प्रधान यह सुरभी गोलोक में प्रधान हु
बतलाया। एक दिन राधिकानाथ को राधाजी के साथ क्षीरपान की इच्छा
अपने वाम पार्श्व से लीला से ही भगवान् ने सुरभी वत्सयुक्त उत्पन्न की और सु
ने उसका दूध रत्नभाण्ड में दूह लिया वही भगवान् ने पी लिया और भा
उलट जाने से उसका क्षीरसरोवर प्रसिद्ध हो गया। वही भगवान् की कृ
लक्षकोटि गायें हो गई उनसे संसार धारण किया जाता है। उनका मूल
पूजा और स्तोत्र।

४८ राधिकाख्यानम् २

प्राचीनकाल में गोलोक में रासमण्डल में मालती मणिका के व
गवान् श्रीकृष्ण रत्नसिंहासन में विराजमान थे। उन्हें रमण करने की
ई। तब भगवान् के दो स्वरूप हुए दक्षिणाङ्ग में कृष्ण और वामाङ्ग में राधि
ा आविर्भाव हुआ। भगवती राधा सम्पूर्ण मुक्तियों को देनेवाली है।
हालक्ष्मी और गृहलक्ष्मी रूप में सर्वत्र विराजमान है। वही राधा सुदा
ाप से गोलोक से पृथिवी पर आगई। वृषभानु के गृह में जन्म लिया
ाता का नाम कलावती थी।

४६ हरगौरीसम्वादे राधोपाख्यानम्

भृगु ने किस प्रकार राधा को शाप दिया इसपर भगवान् ने विस
सारी कथा समझाई। भगवान् गोलोक में राधिकाजी के साथ रास म

लगे हुए थे। उसी समय सुरत के आनन्द में राधिका को चार दूतियों ने ज
और क्रोधित हो राधिका ने हरि को छोड़ दिया। श्रीकृष्ण भी उसी स
तिरोधान हो गये और मर्त्यलोक में सरिद्रूप से अवतीर्ण हुए। जब श्रीकृष्ण
आठ गोपों के साथ अपने घर आये तो उन्होंने राधिका को नहीं देखा
अन्तःपुर में गये। वहाँ पर श्रीकृष्ण को राधिकाजी ने फटकारा और बद
सुदामा ने उसी समय राधा की भर्त्सना की। तब राधा ने सुदामा को
होने का शाप दिया। आगे शंखचूड़ रूप में तब तुलसी के पति के रूप में सुद
हुआ और वृषभानु के यहाँ राधा ने जन्म लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने पृ
के भार को हल्का करने के लिये अवतार लेने पर वृन्दावन में सुन्दर रास
राधा की आह्लादिनी शक्ति का अलौकिक चमत्कार संसार को दिखाया।

## ५० सुयज्ञोपाख्यानम् ३०

पार्वतीजी के प्रश्न करने पर कि सुयज्ञ नामक राजा कौन था उ
भगवान् श्रीकृष्ण की ह्लादिनी शक्ति राधा को विप्र शाप से शप्त होकर भी प्र
किया जिनके दर्शनों के लिये भगवान् ब्रह्मा को भी ६० हजार वर्ष तक पुष्कर
में उनकी चरणकमलों की रेणु में तप करना पड़ा था। हे शंकरजी आपले
भी जिनके दर्शन नहीं कर सकते उनको इस महालक्ष्मी का दर्शन कैसे हुआ
भगवान् शंकरजी ने स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से आरम्भ कर उत्तानप
उसके पुत्र ध्रुव और उसका पुत्र उत्कल जिसने पुष्कर में हजारों राजसूय य
कराये उसीने सम्पूर्ण धन रत्न आदि प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को दे दिये उस शोभ
यज्ञ को देखकर सुरसंसद् में सुयज्ञ को उच्च स्थान दिलाया। वही सुयज्ञ रा
अन्नदाता, रत्नदाता और सम्पूर्ण सम्पत्तियों को देनेवाला तथा दशलाख गायों
सींग पर रत्न बांधा उन्हें सामग्री से सजाकर दक्षिणा समेत ब्राह्मणों को देता था
वसे इन बड़े भारी दानों को देने पर भी तृप्ति नहीं होती थी। इस प्रकार धर्मजीव

बिताते हुए उसके पास एक दिन मलिन वस्त्र पहने कण्ठ, ओष्ठ और तालु जिसके तृषा से व्याकुल होनेसे सूख गये हैं, ऐसे ब्राह्मणदेव आये और प्रसन्न चित्त से उन्हों ने सुयज्ञ को आशीर्वाद दिया। राजा ने उसे प्रणाम अवश्य किया परन्तु अभिवादन के लिये थोड़ासा भी खड़ा नहीं हुआ न सभासद ही खड़े हुए उलटे हँसे। इसपर मुनिदेवगण को नमस्कार कर उस द्विजराज ने क्रोध से राजा को शाप दिया कि हे पामर! यहाँ से दूर जाओ और राज्य से च्युत हो जाओ। साथ ही गलत्कुष्ठवाली बुद्धि हो तथा अस्थिर चित्त होओ। जैसे ही उसने सभासदों को, जो हँसे थे उनको शाप देना चाहा तो सबने परिहार किया और ब्राह्मण देवता शान्त हो गये। फिर राजा ने अपनी ओर से क्रोध शान्त करने की प्रार्थना की और सभा से जानेवाले उस ब्राह्मण को सभी मुनियों ने समझाने का प्रयत्न किया।

११

## नृपमुनिसम्वाद

२०४

ब्राह्मण को सनत्कुमार ने कहा कि राजा आपके शाप से भ्रष्टश्री हो गया है। आप आशुतोष हैं उसपर कृपा कीजिये। आप अतिथि रूप में आये। आपका राजा के द्वारा स्वागत होना चाहिये। पुलस्त्य ने राजा का दोष बताकर उसे क्षमा करनेको कहा। पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, कश्यप, प्रचेत, दुर्वासा ने अतिथि, ब्राह्मण, देवता, गुरु आदि को अभिवादन न करनेवाले का अपराध क्षमा योग्य नहीं होता ऐसा कहा। फिर भी आप हम सब के कहने से इसका अपराध क्षमा करें और आतिथ्य ग्रहण करें। राजा ने गोघ्न, स्त्रीघ्न, कृतघ्न, गुरुस्त्री-गामियों और ब्रह्मघ्न लोगों को क्या दोष लगता है इस तरह प्रश्न किया। इसके बाद वशिष्ठ ने गोहत्यारे को एक वर्ष तक तीर्थों में घूमकर और जौ के ही अन्न से अपना गुजारा करे और हाथ से जल पीये ऐसा बताया। सौ गायों को दक्षिणा सहित दान करने से उस पाप से छुटकारा हो जाता है। शुक्राचार्य ने गोहत्या से

दुगुना पाप स्त्रीहत्या में कहा है। बृहस्पति ने स्त्रीहत्या से दुगुना पाप ब्रह्महत्या में कहा। कृतघ्न उससे चारगुना पापी है। फिर राजा ने कृतघ्नों के भेद पूछे। मृत्य शृङ्ग ने एक प्रकार के कृतघ्न सामवेद के अनुसार बतलाये फिर कात्यायन, सनन्द सनातन ने कृतघ्नों के सम्बन्ध में विस्तार से समझाया। शूद्रान्न भोजन, उनके शव जलाने, और शूद्र स्त्री गमन के दोष पूछे सब पराशर, जरत्कारु ने सारी बातें विस्तार से बताकर उपरोक्त दोषों से सदा बचने को कहा। भरद्वाज और विभाण्डक ने शूद्रों का शव दाह करनेवाले और शूद्रों के यहाँ पितृश्राद्ध में भोजन करनेवालों को कृतघ्न बतलाया है। उन्हें देव और पितृकार्यों को करने का अधिकार नहीं रहता।

## ५२ हरगौरीसंवादे कर्मविपाकवर्णनम् ३०६

पार्वतीजी ने कृतघ्नों के अन्य-अन्य कर्मफलों के सम्बन्ध में पूछा, तो महेश्वर ने नारायण, नारद, देवल, जैगीषव्य, वाल्मीकि, आस्तिक आदि महर्षियों ने कृतघ्न पुरुषों के कर्म विपाक बताकर कभी भी कृतघ्न न बनने को कहा और राजा से ब्राह्मण को प्रणाम करने के लिये कहा और घर जाकर तपस्या कर फिर आनन्द से महाशाप से छूटकर कृतकृत्य हो जाओगे। यह कह सब विदा हो गये।

## ५३ सुतपः सुयज्ञसम्वादवर्णनम् ३१२

पार्वतीजी के महेश्वर को इसके बाद क्या हुआ ऐसे पूछने पर महेश्वर ने कहा कि निन्दाग्रस्त राजा वशिष्ठजी के द्वारा प्रेरित होकर ब्राह्मण के पैरों पर क्षमा याचना के लिये दण्डवत् गिर गया और ब्राह्मण ने क्रोध को त्यागकर आशीर्वाद दिया। इसपर राजा ने आखों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर ब्राह्मण से उसके विषय का सारा हाल पूछा और कहा कि आप अपना राज्य, कोष, अपने नौकर चाकर पुत्र और स्त्री को अपने अधिकार में कर लीजिये और मुझे अपना नौकर

रख लीजिये। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और उसके पुत्र कश्यप हुए। कश्यप के पुत्रों ने देवत्व प्राप्त किया। उनमें महाज्ञानी त्वष्टा हुए जिन्हों ने दिव्य हजार वर्षों तक पुष्कर में तपस्या की। उन्होंने ब्राह्मणार्थ देवदेव भगवान् हरि की पूजा की। भगवान् से वर पाकर उनके तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम विश्वरूप रखा, विश्वरूप अतीव कीर्तिशाली थे। उसके विरूप मेरे पितृपाद हुए उनमें सुतपा नामवाला वैरागी मैं हुआ। मेरे गुरुदेव महादेव हैं जिनके अभीष्ट देव सर्वात्मा श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं। मुझे तो उनके चरणकमलों की चिन्ता है किसी सम्पति की परवाह मैं नहीं करता। मुझे सभी भुक्तियाँ, ब्रह्मत्व या अमरत्व उन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति के विना मिले तो मैं उन्हें सहर्ष छोड़ दूँगा। संसार के बड़े-से-बड़े अधिकार मुझे जलबिम्ब के समान मिथ्या मालूम होते हैं। मुनियों का आपके यहाँ आना सुनकर उनसे विष्णु भक्ति का आनन्द लूटने को मैं आया था। मुझे शाप न देकर तेरा हित ही साधन किया गया है। हे राजन् अब विशेष विलम्ब मत करो, घर के सभा उत्तरदायित्व वेटे को सौंपकर वाहर हो जाओ और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में ध्यान लगाओ क्योंकि वही परम तत्व है बाकी तो ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त मिथ्या है। भगवान् की ही माया से ब्रह्मा, विष्णु और महेश सृष्टि को रचते, पालते और संहार करते हैं। समय पर वर्षा होती है काल, अग्नि आदि पाक करते है। प्रति ब्रह्माण्ड में सृष्टि की यह क्रिया चालू है। भगवान् श्रीकृष्ण के लोमकूपों में ही ब्रह्माण्डों के ब्रह्मादि समाये हुए हैं। महान् विराट् क्षुद्र विराट् सभी भगवान् कृष्ण की अनुगामिनी प्रकृति के आधार से चलते हैं वही सब की बीजरूपा है। काल की अखण्ड साधना से ही वे भगवान् श्रीकृष्ण में लीन होते हैं। इस प्रकार सभी कालभीत होकर आविर्भूत और तिरोभूत होते हैं। इसी भाँति महेश द्वारा दिये गये सारे दुर्लभ महा ज्ञान को बतलाया।

---

राजा ने महाविष्णु का आधार और क्षुद्र विराट् ब्रह्मा और प्रकृति, मनु, इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमा की आयु का मान पूछा और कहा कि सम्पूर्ण विश्वों के ऊपर कौनसा लोक है उसे मुझे समझाइये। सम्पूर्ण विश्वों का गोलोक आकाश के समान व्यापक सदा छिम्ब रूप श्रीकृष्ण की इच्छा से समुद्‌भूत श्रीकृष्ण के मुख विन्दु जल से परिपूर्ण यह गोलोक महाविष्णु का मूल है। यह रासेश्वर श्रीकृष्ण का षोडशांश कहा गया है। विष्णु से ऊपर नित्य वैकुण्ठ है यह भी आकाश के समान निःसीम है। यहाँ नारायण भगवान् चतुर्भुज रूप में निवास करते हैं। गोलोक गोलोक है और सुन्दर-सुन्दर रत्नमाणिक्य से जड़े गृह महलों से शोभित है भगवान् के पार्षद, गोप गोपियाँ यहाँ पर रहते हैं। शिशुरूप में गोपाल-वेषधारी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी रासेश्वरी राधिकाजी के साथ रहते हैं। इस प्रकार वैकुण्ठ और गोलोक का वर्णन कर दण्ड, मुहूर्त, घड़ी, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष, उत्तरायण और दक्षिणायन, इनका निरूपण किया गया। फिर कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगों के परिमाण बतलाये। मन्वन्तर आदि का वर्णन किया। आद्यमनु ब्रह्माजी के पुत्र मनु हुए शतरूपा उनकी धर्मपत्नी वह सब गुणों से युक्त हुआ। उसने बड़े-बड़े अश्वमेध, नरमेध और गोमेध यज्ञ किये एवं भगवान् शंकर दुर्लभ कृष्ण मन्त्र को प्राप्त कर श्रीकृष्ण का दास्य पाकर गोलोक में चले गये। अपने पुत्र स्वायम्भुव के इस प्रकार मुक्त होने पर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उसके प्रियव्रत हुआ प्रियव्रत के बाद दो मनु विष्णुभक्ति परायण इसके बाद पाँचवां मनु रैवत छठा चाक्षुप मनु, सातवां परमभागवत सूर्य का पुत्र श्राद्धदेव हुआ। आठवां सूर्यपुत्र सावर्णि हुआ, नवम दक्षसावर्णि हुआ, दशम ब्रह्मसावर्णि हुआ, ग्यारहवां धर्मसावर्णि और बारहवां रुद्रसावर्णि, तेरहवां देवसावर्णि और चौदहवां चन्द्रसावर्णि हुआ। जबतक मनु और इन्द्रों की आयु है उतना

ब्रह्मा का दिन उतने ही समय तक ब्रह्मा की रात्रि है। ब्रह्मा का दिन क्षुद्रकल्प कहा जाता है। ब्रह्मा ने रात बीतने पर फिर सृष्टि की रचना की इस ब्रह्मनिशा को क्षुद्रप्रलय कहा जाता है। ऐसे ३० दिन रात तक ब्रह्मा का मास कहा जाता है। कालरात्रि का वर्णन पहले आया है। १२ मास का एक ब्रह्मा का वर्ष और १५ वर्ष के बाद फिर प्रलय होता है यही मोहरात्रि वेदों में कही गई है। ब्रह्मा के निपात के बाद महाकल्प होता है वही महारात्रि कही जाती है। प्रकृति का निमेषकाल भी यही होता है निमेष के अन्त में श्रीकृष्ण की इच्छा से सृष्टि का निर्माण होता है। श्रीकृष्ण निमेष रहित हैं और श्रीकृष्ण में ही सारी प्रकृति आकर युगों के बाद लीन होती है तब उसे प्राकृतिक लय कहते हैं। सम्पूर्ण प्राणियों का संहार कर वह स्वयं कृष्ण के वक्षस्थल में लीन हो जाती है वही मूल प्रकृति और ईश्वरी है इसे ही दुर्गा, नारायणी और सनातनी कहते हैं। इसीमें भी सबकुछ समाया है यह ईश्वर में समाई है। सभी क्षुद्र वैष्णवमय हैं विष्णु में लीन हैं महाविष्णु प्रकृति में और वही परमात्मा में लीन है। प्रकृति योगनिद्रारूप में श्रीकृष्ण के नेत्रों में इस इच्छा से अधिष्ठान करने लगी। प्रकृति का एक दिन का जितना काल है उतने समय तक वृन्दावन में श्रीकृष्ण की निद्रा होती है यही प्रलयकाल है। उनके जागने पर सर्व सृष्टि होती है उनका वन्दन, स्मरण, ध्यान, अर्चन, कीर्तन और उनके गुणों का स्मरण महापातक नाशन है। इसके बाद सुयज्ञ के द्वारा भगवान् शिव का प्राकृतलय के समय में लीन होने पर भी मृत्युञ्जय नाम कैसे हुआ यह पूछने पर सुतपा ने सारा सृष्टिक्रम विस्तार से बतलाया।

ब्रह्मा के वय के अन्त में मृत्युकन्या जलबिम्ब के समान नष्ट हो गई यह सब लोकों की संहर्त्री है और ब्रह्मादिको अपने में समेट लेती है। भगवान् शंकर ने मृत्युकन्या को जीता न कि शम्भु को मृत्यु ने। पुण्य वृन्दावन में कृष्ण ने प्रलयकाल के अपने वामांश से उत्पन्न राधिका में गर्भाधान किया। ब्रह्मा के उम्रपर्यन्त राधा

ने गर्भ धारण किया तब गोलोक में उस डिम्ब को जन्म दिया फिर दुःखी हो
से उस डिम्ब को विश्वगोलोक में भेजा अपने पुत्र को इस प्रकार छोड़ने से
बार-बार महादेवी राधा रोने लगी। श्रीकृष्ण ने उसे कई प्रकार योग से
समझाया। उस डिम्ब से सबका आधार महाविराट् हुआ। इस प्रकार सारी
सृष्टि का वर्णन सुनकर सुयज्ञ राजा कृतकृत्य हुआ और भगवान् शंकर की शरण में
जाने के लिये गुरुजी के विषय में पूछने लगा। भगवान् कृष्ण की भक्ति से ही शंकर
भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। इसके बाद राजा को सुतपा ने राधाजी का
पूजा विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र और सामवेदोक्त ध्यान बतलाया। इसे देकर
तपस्या के लिये भेज दिया। सब को विलाप करते छोड़ राजा वन में तप करने
चला गया। एक सौ दिव्य वर्ष तक उसने परम मन्त्र का जप करते हुए कठोर
तपस्या की। तब रथ में विराजती हुई परमेश्वरी को देखा उनके दर्शनमात्र से
ही वह निष्पाप हो गया। सुतपा मनुष्य का शरीर छोड़कर दिव्य मूर्ति धारण कर
देवीजी के विमान से ही गोलोक चला गया। उसने वहाँ सभी अलौकिक दिव्य
मूर्तिसम्पन्न गोप गोपीवृन्द से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र परब्रह्म को देखा
उन्हें देख राजा ने तुरन्त रथ से उतरकर अश्रु गद्गद् नेत्र से प्रणाम किया और
परमात्मा ने अपना दास्य प्रदान किया तथा इच्छित वर से राजा कृतकृत्य हो
गया। श्रीराधामाधव भगवान् का स्मरण करनेवाला सदा ही उनका भक्त होकर
आनन्द लाभ करता है।

## ५५ राधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रम् ३२

भगवान् शंकरजी ने पार्वतीजी के पूछने पर बताया कि श्रीकृष्ण और
मेरे रहते राधा मन्त्र को ही क्यों ग्रहण किया। इसका कारण यह था कि राधा
मन्त्र से अति शीघ्र सिद्धि मिल जाती है। इस प्रकार राधिका मन्त्र की दीक्षा
देकर ध्यान, पूजा, जप का प्रकार बताकर भगवान् शंकर ने राधाजी की मूर्ति

कही। फिर श्रीकृष्ण और राधिका के वार्तालाप के रूप में श्रीकृष्ण द्वारा राधाजी के रूप, गुण और प्रभाव का दिव्य वर्णन। इस राधा गुणाख्यान के द्वारा सभी दक्षकन्या परमात्मा को मिलीं व सावित्री ब्रह्मा को। इसका प्रतिदिन पाठ करनेवाला पुत्रार्थी पुत्र पाता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है। कार्तिक की पूर्णिमा को राधा की पूजा कर पढ़नेवाले को अचल लक्ष्मी और राज्यश्री मिलती है। स्त्री सुननेवाली स्वामी के सौभाग्य को पाती है। इस स्तोत्र को भक्ति से सुननेवालों को बन्धन से छुटकारा होता है और अन्त में गोलोक में परमपद प्राप्त करता है।

## ५६ राधाकवचवर्णनम् ३२६

भगवती पार्वती ने राधापूजा विधान सुनकर शंकरजी से राधाकवच के विषय में पूछा और भगवान् शंकर ने कवच की महिमा बतलाकर उसके पाठ का फल बताया। जगन्मङ्गल इस कवच का प्रजापति ऋषि है। रासेश्वरी स्वयं गायत्री देवी हैं श्रीकृष्णभक्ति सम्प्राप्ति का विनियोग है। इस कवच को हर प्रकार से गोपनीय रखना चाहिये। सभी को भगवती राधा के स्तोत्र का जप करने से सबसे उच्च पद प्राप्त होता है।

## ५७ दुर्गोपाख्यानम् ३३२

भगवती राधा के १६ नामों का विस्तार से वर्णन। इन १६ नामों की प्रथम सृष्टि के आदि में गोलोक में रासमण्डल में पूजा की गई। फिर मधुकैटभ से डरकर ब्रह्मा ने, फिर त्रिपुरारि भगवान् शंकर ने त्रिपुर से प्रेरित होकर फिर दुर्वासा के शाप से भ्रष्टश्री होकर महेन्द्र ने पूजा की और भगवती ने सम्पूर्ण आधिदैविक, भौतिक एवं दैहिक पापतापों से संसार का उद्धार किया। दूसरे कल्पों में सुरथ राजा और मेधस के शिष्य समाधि वैश्य ने वेदोक्त प्रकार से राधाकवच

के द्वारा भगवती की मृण्मयी मूर्ति बनाकर पूजा की। राजा और वैश
यथेप्सित वर दिया। राजा अपने माँगे हुए राज्य पाकर राज्य करने ल
और वैश्य अपना शरीर त्यागकर गोलोक में भगवती दुर्गा के वर से च
गया। वह नाना भोग भोगकर दूसरे जन्म में सावर्णि मनु हुआ।

## ५८ दुर्गोपाख्याने तारोपाख्यानम् ३३

सुरथ, समाधि और मेधस ऋषि के सम्बन्ध में नारद के पूछने
नारायण ने अत्रि के पुत्र चन्द्रमा से बुध तारा में उत्पन्न हुए। बुध के पुत्र
और चैत्र का सुरथ हुआ। नारद ने बृहस्पतिजी की पत्नी तारा में चन्द्रमा
कैसे बुध हुए इस व्यतिक्रम का कारण पूछा। इस प्रकार कामयौवनोन्
चन्द्रमा द्वारा आसक्त होकर तारा के साथ सम्भोग बलात्कार से ही हो
बताया। तारा ने बहुत रोका परन्तु लम्पट अपने दुराग्रह से नहीं माना
शुक्र ने चन्द्रमा को सत्यमार्ग बताया और विप्रपत्नीगमन में महापातक बतलाय
फिर शुक्र ने चन्द्रमा को अपने तपोबल से शुद्ध किया। बहुतसे महापात
का चन्द्रमा के गुरुपत्नी के साथ अनुगमन करने के महापातकों का वर्णन। शुक्र
द्वारा चन्द्र को शुद्ध करने पर तारा को समझाबुझाकर बृहस्पति के पास भेजन

## ५९ बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिष्यप्रेषणम्

तारा के नदी से स्नान करके आने में विलम्ब होते देख बृहस्पतिजी
बहुत अधिक चिन्ता हुई उन्होंने अपने शिष्य को ताराको खोजने के लिये
नदी के किनारे भेजा। चन्द्र के इस दुःसाहसपूर्ण निन्दित कर्म की सूचना
बृहस्पति को मिली तो वे मूर्छित हो गये और फिर चेतना पाकर अपने मन
उद्गार शिष्यों को कहने लगे।

स्त्री बिना घर वन के समान है। जिस घर में सती स्त्री प्रिय बोलनेवा

पतिव्रता न हो वह घर वन है। जिसकी पतिसाध्वी पतिव्रता को दैवने हर लिया उसका घर वन के समान है।

यस्यमातागृहेनास्ति गृहणी वा सुशासिता। अरण्यंतेनगन्तव्यं यथाऽरण्यंतथा गृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः। अरण्यंतेनगन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम्॥
भार्याशून्यावनसमाः सभार्याश्च गृहा गृहाः। गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहंगृहमुच्यते

अशुचिः स्त्रीविहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः।
प्रभाहीनो यथा सूर्यः शोभाहीनो यथा शशी॥
शक्तिहीनो यथा जीवो यथात्मा च तनुं विना।
विना ऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिम्विना॥

। च शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणाम्विना। कर्मणांचफलं दातुं सामग्रीमूलमेवच

विनास्वर्णं स्वर्णकारो यथाशक्तः स्वकर्मणि।
भार्याः मूलाः क्रियाः सर्वाः भार्यामूलागृहास्तथा॥

भार्या मूलं सुखंसर्वं गृहस्थानां गृहे सदा। भार्यामूलः सदा हर्षो भार्यामूलश्चमङ्गलम्
भर्यामूलश्चसंसारो भार्यामूलश्च सौरभम्। यथा रथश्च रथिनां गृहिणाञ्च तथा गृहम्

यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा।
तथैव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीम्विना॥

गृह की लक्ष्मी न रहने से संसार में सबकुछ सूना है क्योंकि देव, पितर और सभी माङ्गलिककार्यों में उसकी आवश्यकता रहती है। इस पर बृहस्पति ने इन्द्र को अपना भाव कहा और इन्द्रने तुरन्त तारा को लानेकी बात कहकर उसके लिये प्रयत्न करने लगे। वे दोनों ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्मा ने उन्हें गुरुरूप में सदुपदेश दिया और तारा के गर्भ को शुद्ध करने के लिये सनत्कुमार भगवान् ने से उसका व्रत करवाया। इससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने तारा के सामने आकर से इच्छित वर प्रदान किया।

शिवजी के पास जाकर बृहस्पति ने क्या कहा इसका उत्तर नारा दिया कि शंकर के पास जाते ही बृहस्पति का अभिवादन किया गया और आसन पर बैठाकर सारी बातें पूछी गईं। शंकर ने उनके शोक का कार क्या दैवदोष से तपस्याहीन हो गई कि सन्ध्याहीन हो गये? क्या भगवान् में भक्ति नहीं रही क्या अतिथिसेवा नहीं हुई? आपके शिष्य इन्द्र देव और गुरु भगवान् वशिष्ठ हैं। सज्जन पर प्रसन्न होते हैं।

पुत्रेशशामितोये च समृद्धे च पराक्रमे। ऐश्वर्ये वा प्रतापे च प्रजाभूमिधने

> धनेषु च युद्धे च स्वभावे च चरित्रतः।
> आचारे व्यवहारे च ज्ञायते हृदयं नृणाम् ॥२१॥
> यादृग्येषां च हृदयं तादृक् तेषां च मङ्गलम्।
> यादृग्येषां पूर्वपुण्यं तादृक् तेषां च मानसम् ॥२२॥

अतः आप इसका कारण बतलाइये। बृहस्पति ने कर्मवश की बात अपना आत्मनिवेदन किया। इसपर शंकर ने वैष्णवभक्तों का कष्ट स्वयं श्री दूर करते हैं बता भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों की प्रशंसा की। भगवान् शंकर श्रीकृष्णभक्त बृहस्पति को लक्ष्मी माया का कामबीज प्रदान। बृहस्पति भगवान् श्रीकृष्ण में मन लगाने की बात कहना। इन्द्र के द्वारा भगवान् के यहाँ जाकर सारी बात कहकर तारा को प्राप्त करने का उपाय।

## ६१ ब्रह्मणः शुक्रगृहेगमनम्

गुरुपत्नी के लिये शुक्राचार्य के यहाँ ब्रह्मा का जाना। शुक्र ने ब्रह्म आते देखकर उनकी स्तुति की और अभिवादनपूर्वक सत्कार किया और ब्रह्म आने का कारण पूछा। ब्रह्मा ने शुक्र से गुरुपत्नी तारा को चन्द्रमा द्वारा हरने की कही और उसका पक्ष भी शुक्राचार्य ले रहे हैं। अतः मैं देवताओं की ओर से कहने आया हूँ कि या तो तारा को दो या कामी चन्द्र को छोड़ो। शु

शङ्करजी को छोड़कर सभी देववृन्द को खुला आह्वान किया कि वे युद्ध करें। ब्रह्मा ने फिर कहा कि भगवती काली और शिव के पार्षद वीरभद्रादि तथा कालाग्नि रुद्र तथा राधा कवच कण्ठवाले श्रीविष्णु के युद्ध में आते ही तुम दैत्यों में कौन उनके सामने टिक सकेगा।

प्रह्लाद ने ब्रह्माजी को विनय से प्रत्युत्तर दिया कि अवश्य ही भगवान् विष्णु मधुकैटभ और हिरण्यकशिपु को मारनेवाले हैं फिर भी वह परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण की ही कला हैं। वही सबके अन्तरात्मा अपने सुदर्शनचक्र से हम सभी की रक्षा करते हैं। उनसे तो कोई भी बलवान् नहीं कहा जासकता। मैं श्रीकृष्ण की शरण में होकर सभी को युद्ध के लिये आह्वान करता हूं। भगवान् की कृपा का ही सारा बल है। यदि मेरे पिता मरे तो वे विष्णु की निन्दा से। शंखचूड़ निर्बन्ध ( अभिमान से ) मधुकैटभ झूठे दर्प से। त्रिपुर तो हमारा सेवक था फिर भी शंकर प्रेरित वह मरा था। तब ब्रह्मा ने दोनों पक्षों को युद्ध से शक्ति, बल और सैन्य का दुरुपयोग बतलाकर दैत्यराज प्रह्लाद से तारा की भिक्षा मांगी और विमुख भिक्षुक के जाने पर गृहस्थ भी पापों का भागी होता है यह कहा। फिर सनत्कुमार, सनन्दन, सनक और ऋषियों ने भी बृहस्पति की स्त्री तारा को लौटाने की धर्मसङ्गत मांग की। इसपर प्रह्लाद ने शुक्राचार्य से ही वह कार्य हो सकता है, यह बताकर उन्हीं के पास जानेको ब्रह्मादि देवगण और ऋषि मुनियों को सत्परामर्श दिया। तब सब शुक्रजी से प्रार्थना करने लगे और उन्होंने तारा तथा चन्द्र को लौटा दिया। प्रह्लाद सभी ब्रह्मादि देवगण व मुनिवृन्द को प्रणाम कर घर लौट आया। इधर चन्द्रमा तथा तारा दोनों ही ब्रह्माजी के चरणों पर गिर पड़े। चन्द्रमा को अपनी भूल स्वीकार करने पर ब्रह्मा ने क्षमापूर्वक गोद में उठा लिया और कृपालु ब्रह्माजी ने कहा हे तारे अब डरो मत तुम सौभाग्ययुक्त बनोगी क्योंकि प्रायश्चित्त ही दुर्बलों का जो बलीजन से हरी गई एकमात्र उपाय है।

दुर्बला बलिनाग्रस्ता निष्कामात्प्रच्युता भवेत्।
प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुष्यति॥
सकामा कामतो जारं भजते स्वसुखेन च।
प्रायश्चित्तान्न शुद्धा सा स्वामिना परिवर्जिता॥

उन्होंने उसके गर्भ की स्थिति किस से हुई यह पूछा तो तारा ने चन्द्रमा को उसका कारण बतलाया। इसके बाद तारा ने सुन्दर कुमार को जन्म दिया और चन्द्रमा उसे लेकर ब्रह्माजी को प्रणाम कर चला गया। ब्रह्माजी तारा को देवगुरु बृहस्पतिजी को देकर तथा देवगण को अभय दान कर अपने भवन सिन्धु के तट पर चले गये।

एक बार बुध ने युवक होने पर घृताची के गर्भ से उत्पन्न कुबेर की कन्या चित्रा को नन्दनवन में देखा। यह बारह वर्ष की यौवन के उद्गम अवस्था में थी। उस चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसे गान्धर्व विधि से ग्रहण कर एकान्तस्थान में उसमें वीर्याधान कर दिया। उसके चैत्र नामक पुत्र हुआ जो धर्मात्मा, प्रतापी दानी हुआ। चैत्र को राजाधिरथ उसके सुरथ हुआ इसी सुरथ ने वैश्यसमाधि के साथ भगवती दुर्गा की सरिता के किनारे पूजा की थी। यह वैश्य धर्मात्मा जयी और क्रिया कुशल था परन्तु दुर्दैव से धन के लोभ में आकर स्त्री पुत्रादि सभी ने इसे घर के बाहर निकाला। भगवती दुर्गा के ध्यान से यह फिर समृद्धिशाली हुआ। राजा को मनुत्व और निष्कण्टक राज्य मिला।

## ६२ राज्ञः सुरथस्य वैश्यसमाधेश्च विवरणम् ३१६

राजा को मेधस मुनि से ज्ञान प्राप्ति और वैश्य को मुक्ति कैसे मिली नारदजी के इस प्रश्न के उत्तर में नारायण ने कहा कि ध्रुव का पौत्र उत्कल का पुत्र नन्दि महा प्रतापी था। उसने सुरथ राजा के देशों पर अधिकार कर ... जब सुरथ अकेला रह गया तो वह रात्रि में घोड़े पर चढ़कर दोनों ... आये।

जङ्गल में निकल गया। पुष्पभद्रा नदी के तट पर उसने वश्य को देखा और उनमें गहरी मित्रता हो गई। पुष्कर क्षेत्र में वैश्य के साथ राजा मेधस ऋषि के आश्रम में गया। वहां अपने आश्रम में शिष्यवृन्द को उन्होंने दुर्लभ ब्रह्मतत्त्व समझाते हुए देखा। राजा सुरथ और वैश्य समाधि ने मुनिको प्रणाम किया। मुनि ने उनको शुभाशीर्वादपूर्वक अभिवादन किया और उनको कुशल प्रश्न पूछा तो राजा ने अपना राज्य निष्कासन का वृत्तान्त बतलाया और राज्य प्राप्ति का उपाय पूछा और वैश्य के सम्बन्ध में बतलाया कि वह वैश्य धन के लोभी स्त्री पुत्रादि से निकाला गया है। क्योंकि प्रतिदिन अपने उपार्जित धन में से वह अपने स्त्री पुत्रादिकों के मना करने पर भी खूब रत्न, मणिमाणिक्य प्रतिदिन ब्राह्मणों को दिया करता था। जब उन बेटे, पोते, भाई बन्धुओं ने इसे खोजकर घर जाने को आग्रह किया तो यह ज्ञान पाकर ऊँचा वैराग्य का अभ्यास करने का दृढ़ निश्चय कर भगवान् में भक्ति करने का उपाय ढूँढ़ रहा है। बाद में इसके पुत्र भी अपने पिता के वियोग में शोक से दुःखी होकर वन में जाकर रागी हो गये। अब इसे निष्काम भगवान् का दासत्व मिले ऐसा उपाय तलाइये। मेधस ने भगवती कृपामयी कृष्ण की विष्णुमाया का चमत्कारपूर्ण भाव बताकर उन्हीं की कृपा से कृष्णभक्ति का आनन्द लाभ हो सकता है ह सिद्धान्त कहा। नाना जन्मों के बाद शंकर की भक्ति से विष्णु भक्ति का ौर विष्णुभक्ति से निर्गुण कृष्ण की भक्ति के सबल मार्ग का रहस्यपूर्ण वर्णन कर मेधस ने कृष्णभक्त से ही कृष्ण मन्त्र को लेकर अपना मार्ग प्रशस्त करने को हा। भगवान् की भक्ति दो प्रकार की है एक विवेचना और दूसरी आवरणी। थम भक्त को दी जाती है और दूसरी आवरणी से सारा जगत् लीला नाटक के धार से संचालित होकर अपना भाग ग्रहण करता है। मैं भी भगवान् कर से कृष्णभक्ति का ज्ञान लेकर अपना जन्म सफल करने में लगा हूं। जाओ ावती की आराधना करो। नदी तीर पर जाकर वही तुम्हें कामनापूर्ण

अपनी बुद्धि देगी जिससे मन ठीक हो जायगा। निष्काम वैश्य को भगवती भावना शक्ति देगी जिससे उसे भगवती के चरणों का सहज ही लाभ होगा। पर इन दोनों ने दुर्गास्तोत्र और कवच द्वारा भगवती को प्रसन्न किया। य को मुक्ति और राजा को मनु का पद तथा इच्छित देकर दिया।

## ३ सुरथसमाधिवैश्यसम्वादे प्रकृतिसम्वादः ३१८

राजा को कैसे प्रकृति की भक्ति का लाभ हुआ और वैश्य को किस पूजा ध्यान, मन्त्र, जप, स्तोत्र, और कवच से हुआ इसके विषय में जिज्ञासा करने पर नारायण ने कहा कि राजा और वैश्य दोनों को सुमेधस ने ध्यान, स्तोत्र, कवच का उपदेश किया। उसकी ही पुष्कर में एक वर्ष तक तीन काल उन दोनों ने साधना की। भगवती ने प्रसन्न होकर उन्हें यथेच्छ वरदान दिया। वैश्य को इतना देकर जब भगवती ने वर मांगने को कहा तो उसने भगवती चरण में रहकर कभी नाश न होनेवाले सम्पूर्ण वस्तुओं का सार वर मांगा। प्रकृति ने भगवान की नवधा भक्ति का वर्णन कर उसकी साधना करनेवाले सफल मुनीश्वर देवगण का परिगणन किया और भगवान् कृष्ण की भक्ति का उपदेश दिया। "कृष्ण" इस नाम का पुष्कर में दशलाख के जप का आदेश दिया जिसे पूर्ण कर वैश्य भगवान् कृष्ण का परमपद पाकर उनका दास बना।

## ६४ राज्ञः सुरथस्य दुर्गापूजनम् २६

फिर नारायण ने राजा के द्वारा भगवती के पूजन का विस्तार से वर्णन किया। सुरथ ने स्नान, आचमन और न्यासत्रय कर (कर, अङ्गअङ्गाङ्ग, न्यास) भूतशुद्धि की तथा प्राणायाम कर शंखशोधन किया। फिर भगवती की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उनका आवाहन किया। फिर देवी के दक्षिण भाग में कमलालय की और गणेश,, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव, पार्वती छओं देवों की पू

विधिविधान से की। फिर मूल प्रकृति ईश्वरी का सुन्दर ध्यान किया। इसे भक्तों को सुरथवैश्य की पूजा के अनुसार ही सदा कर आनन्द लूटना चाहिये। स्तोत्र का विधान पूजा तीन प्रकार की है। सात्विकी, राजसी और तामसी। वैष्णवों की सात्विकी, शाक्तादि की राजसी व अदीक्षित और अन्य सज्जन लोगों की तामसी पूजा है। "दुर्गा" यह नामजप मात्र से ही कष्टों का विनाश हो जाता है। पूजा षोडश उपचार से की जानी चाहिये। इसी प्रकार छओं देवताओं की, फिर जगदम्बिका, अष्टनायिका, अष्टदलकमल में स्थापित कर आराधना करे। इसके बाद महाभैरव, असिताङ्ग भैरव, ससभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूड़ और चन्द्रचूड़ की पूजा करे। फिर नवशक्ति जैसे वैष्णवी, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, रौद्री, नारसिंही, वाराही इन्द्राणी कार्तिकी तथा सर्वमङ्गला की पूजा कर फिर शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण और देवी की दासी तथा वटुक और चतुःषष्टि योगिनी की विधिविधान से पूजा करे। कवच को गले में बांधकर पठन करें। फिर बलिदान विधान कर भगवती को प्रसन्न करे। बलिदान के बाद भगवती को प्रणामादि कर ब्राह्मण को दक्षिणा देवे।

## ६५ दुर्गोपाख्याने दानकथनम् ३६६

श्रीनारायण ने नारदजी द्वारा स्तोत्र, कवच, पूजा के फल को जानने की इच्छा पर आर्द्रा में देवी को बोधन कर मूल से प्रवेश करे और श्रवण में विसर्जन करे, यह कहा। भगवती के बोधनोत्सव का आर्द्रायुक्त नवमी को यदि कोई करता है तो उसे शतवार्षिकी पूजा का फल मिलता है। सुरथ की पूजा से भगवती सन्तुष्ट हुईं और राजा से यथेच्छ वर मांगने को कहा। उसे अभीष्ट राज्य और शत्रुनाश होने का वर देकर अन्त में ज्ञानरूप कृष्णभक्ति का उपदेश किया। कृष्ण नाम के गुण प्रभाव का वर्णन कर भगवती अन्तर्धान कर गईं। राजा भी अपनी आराध्या को प्रणाम कर राज्य पाकर घर चला गया।

६ **श्रीकृष्णकृत दुर्गास्तोत्रम्** ३७१

प्रकृति के कवच स्तोत्र के सम्बन्ध में नारदजी द्वारा पूछने पर श्रीनाराय
जब-जब श्रीकृष्ण ने गोलोक रासमण्डल में राधा की स्तुति की तथा मधुकैट
 में विष्णु ने फिर त्रिपुरारि शंकर ने एवं वृत्रासुरवध के समय देवराज इन्द्र
 मनुष्यों, देवतावृन्द और सुरथादि राजाओं ने कल्प-कल्प में आराधना
त स्तोत्र को बताया। इसकी फलश्रुति सर्वत्र विजय ही प्रकृति की साधना का
र उनके श्रीचरणों में भक्ति द्वारा भक्त का उद्धार बतलाया गया।

७ **प्रकृतिकवचापरनामक ब्रह्माण्डमोहन कवचम्** ३७

नारदजी के अनुरोध से श्रीनारायण ने प्रकृति कवच अथवा ब्रह्माण्डमो
वच का उपदेश किया। सिद्धकवच करने के लिये इसका पांच लाख जप कर
ावश्यक है। गणपति मूलप्रकृति के ही पुत्र हैं उनके आविर्भाव के भगव
ीकृष्ण ही श्वांस से मूल कारण है। ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिखण्ड को सुनकर नानाप्रक
 ब्राह्मण भोजन, दान और जपतप करानेवालों को अनन्त फल और पुत्रपौ
क्ष्मी की अनन्तकाल तक प्राप्ति तथा अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण में निश्चला भ
ोकर गोलोक में परमपद की प्राप्ति होती है।

---

॥ शुभम्भूयात् ॥

---

श्रीगणेशाय नमः।

# अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्



श्रीकृष्ण परब्रह्म की कृपा से गणेशजननी भगवती पार्वतीजी की असीम अनुकम्पा से गणेश आविर्भाव के वृत्तान्त की विषयसूची का वर्णन प्रस्तुत है—

श्री नारदजी ने प्रकृतिखण्ड के अमृत समुद्रमय आख्यान में खूब स्नान कर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए गणेशखण्ड के लिये श्रीमन्नारायण से सादर निवेदन किया। उन्होंने गणेश के भगवती पार्वती के गर्भ से जन्म को लेकर प्रश्न किया। उनका प्रादुर्भाव किस देव के अंश से हुआ वह योनि सम्भव है कि अयोनि सम्भव ? उनका तेज, पराक्रम, तपस्या, ज्ञान और निर्मल यश कैसा है ? सभी नारायण, ब्रह्मा, शिवशंकर आदि के विद्यमान रहते हुए इनकी पूजा क्यों प्रथम विहित है ? इनका जन्म पुराणों में सारपूर्ण और रहस्यमय गाया गया है। यह हाथी के मुखवाले और एकदन्त क्यों हैं आदि प्रश्नों की झड़ी लगादी। भगवान् नारायण ने कहना आरम्भ किया कि सभी दैत्यों का संहार कर जब दक्षकन्या भगवती ने अपने स्वामी की निन्दा को सहन न कर दक्ष यज्ञ में देह छोड़ दिया तो योग से वह हिमालय के यहां कन्या रूप में उत्पन्न हुईं। विवाहयोग्य अवस्था में हिमालय ने उनका विवाह भगवान् शंकर से कर दिया। भगवान् शंकर और भगवती पार्वती नर्मदा के तट पर सुन्दर पुष्प उद्यान में देवों के हजार वर्ष पर्यन्त श्रृङ्गारपूर्ण रतिलीला में मग्न हो गये।

समहो दुःखमेकन्तु द्वितीयं गोत्रपातनम् । तृतीयोऽद्य महत्दुःखं पुत्रहीनस्य पार्वती ॥२॥

आपके रहते मुझे दरिद्रता, गोत्रपतन और पुत्र न होने के तीन-तीन दुःख इससे अधिक दुःख संसार में मेरे लिये और क्या होसकता है।

त्रैलोक्य के स्वामी आपको पति पाकर भी मेरे सन्तान न हो, जिस के रतिसुख से प्राप्त सन्तान न हो उसका जन्म व्यर्थ है। सद्वंश में सपुत्र ही दुःख का सब सुख है सुपुत्र तो कुल का उद्धार है, नाश करनेवाला है। स्वामी अपने अंश से अपनी स्त्री के गर्भ से जन्म लेता है। साध्वी स्त्री माता के समान हितकारिणी है। असाध्वी वैरी के समान सन्ताप देनेवाली है। "सुतसुता नीतिसुता नैवाऽस्माष्यति हि स्पृहा" अब आप ही बताइये मैं क्या उपाय करूं! इसपर शंकरजी ने हँसकर पार्वतीजी को सान्त्वना देते हुए कहा—

३ पार्वतीम्प्रति हरिव्रतकरणाय शिवस्योपदेशः ३७७

महादेवजी ने कार्यसिद्धि के लिये उपाय बतलाया। उन्होंने पुण्यक नामक व्रत को भगवान् हरि की आराधना करते हुए करनेका परामर्श दिया। यह वाञ्छाकल्पतरु है, सबका सार है, सुखदेने वाला और पुत्रदाता है, सम्पूर्ण सम्पत्ति का दाता भी यही है। इसलिए इसको पालन करो तुम्हें व्रत के आराध्य कृष्ण अवश्य वाञ्छित फल देंगे। अब तुम हरि मन्त्र को लो पितरों के मुक्ति कारण इस व्रत को करते हुए इष्टसिद्धि पाओगी। यह कहकर उन्होंने शीघ्र गङ्गाजी के तटपर जाकर बड़े प्रेम से भगवान् श्रीकृष्ण के स्तोत्रयुक्त कवच और पूजाविधान के नियमों को बताया।

## शिवेनपार्वत्यै व्रतोपकरणकथनम्



भगवती श्रीपार्वती ने सम्पूर्ण व्रतविधान सुनकर इसका विस्तार से वर्णन जानना चाहा। पिता अपनी कन्या को कौमारावस्था में सब प्रकार से भरण-पोषण कर योग्य बना देता है। युवावस्था में पति उसकी शक्ति का ह्रास नहीं होने देता और वृद्धावस्था में पुत्र उसकी सेवाकर अपना जन्म सफल करते हैं। सुन्दर पति को देकर कन्यापिता धन्य होता है। पति गृहस्थ में उसे सब प्रकार सुखीकर वृद्धावस्था में पुत्रों को उसका भार सौंपकर कर्तव्यपालन करता है। तीन भाईयों की बहन भाग्यवती है, उससे कम भाग्यशालिनी दो भाई वाली, उससे कम एक भाई वाली और एक भी न होनेपर तो वह बेचारी अधमा है। मुझे पुत्ररत्न की आवश्यकता है आप कृपाकर उसकी व्यवस्था कीजिये। तब शंकरजी ने पुण्यक व्रत का आरम्भ माघ शुद्ध त्रयोदशी को करने का विधान कहा। प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर स्वस्तिवाचन के साथ घटस्थापन किया जाय। पुरोहित को वरण कर षोडशोपचार से भगवान् श्रीकृष्ण का पूजन हो। इसका विधान साङ्गोपाङ्ग होना चाहिये। थोड़ीसी भी त्रुटि होने से अङ्गहानि होती है तो फल में भी हानि सम्भव है। नाना द्रव्यों से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा का नाना फल सङ्कल्प में श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ कहना चाहिये। पुष्पाञ्जलि के बाद सौ प्रणाम करे और छः मास तक हविष्य अन्न खावे। एक पक्ष तक हवि जल का पान करे। रात्रि में कुशासन पर बैठकर जागरण करे आठ तरह के मैथुनों को छोड़ दे। व्रत की समाप्ति पर पूर्ण सामग्री सजाकर तिल होम कर ब्राह्मण भोजन और दक्षिणा देवे। इस व्रत का यही फल है कि भगवान् में दृढ़ अचल भक्ति होती है और भगवान् हरि के समान ही सर्वगुणनिधान पुत्र उत्पन्न होता है और व्रत करनेवाली स्त्री को सौन्दर्य, स्वामी का सौभाग्य, ऐश्वर्य और विपुल धन की प्राप्ति होती है। अब महेश्वरी तुम व्रत करो तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी।

५ व्रतमाहात्म्यकथा ३८३

व्रतविधान को सुनकर पार्वतीजी की उत्कण्ठा व्रतमाहात्म्य को सुनते सम्बन्ध में हुई। महादेवजी ने कथा आरम्भ की। प्राचीन समय में शतरू ने जो मनु की पत्नी थी वह पुत्र न होने से अत्यन्त दुखित होकर ब्रह्माजी के पा जा वन्ध्या में पुत्र होने का सफल उपाय पूछा।

तज्जन्मनिष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्य्यंधनमेव च। किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम्

पुत्र के बिना सब सूना है। पुत्र सुखदेनेवाला, मोक्षदाता व प्रीतिदाता अपुत्र का सुख कोई नहीं देखना चाहता। स्वयं वह भी लज्जित होता है। ब्रह्मा ने उसे माघ शुक्ल त्रयोदशी को सुपुण्यक व्रत करने का आदेश किया। एक वर्ष तक लगातार करना चाहिये और इसकी समाप्ति बताई।

६ पार्वत्याव्रतारम्भोद्योगः ३

शिवस्य विष्णुसमीपे वरप्रार्थनम् ३

व्रताज्ञाग्रहणम् ३

नारदजी द्वारा व्रत के आरम्भ का विधान पूछने पर नारायण भगवा दिव्य कथा और व्रत का विधान कहा। जब भगवान् शंकर साक्षात् त करने चले गये तो भगवती पार्वती ने शंकरजी की आज्ञा से पुण्यक व्रत आरम्भ किया। इस अवसर पर ब्रह्माजी विष्णु आदि देवगण सनक, सन व सनत्कुमार आदि बड़े-बड़े ऋषि महर्षि उपस्थित हुए। उस समय बड़ी और उसमें नाना प्रकार के गीत, नृत्यवादित्रों से शंकरजी ने स । ब्रह्माजी की प्रेरणा से शङ्करजी ने हाथ जोड़कर भगवती पार्वत व्रत करने की इच्छा की बात कही। उन्होंने अपने रतिभङ्ग और पार्वत

के शोक, क्रोधयुक्त वचनों को ब्रह्माजी से कहा और पुत्राभिलाषा होने से उसे पूर्ण करने का उपाय जानना चाहा, साथ ही स्त्री स्वभाव को लेकर अपना मन्तव्य रक्खा।

दुर्निवार्य्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः।
दुस्त्यजं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः ॥२४॥

स्त्रीस्वभाव अत्यन्त चपल होता है वह किसी के समझाये नहीं ठीक होता इतना होनेपर भी स्त्रीरूप के वश में योगी लोग सिद्धगण और हम तपस्वी भी हैं। यह मोह का कारण है, सम्पूर्ण माया का पिटारा कामवर्द्धन का कारण कामदेव का महास्त्र, मोक्ष के द्वार को बन्द करने का किवाड़ और हरिभक्ति को रोकने-वाला यह है। वैराग्य नाश का बीज है, रागादि को बढ़ाता है। साहसों का समूह, दोषों का घर, अविश्वासों का क्षेत्र और स्वयं मूर्तिमान् कपट है। अहङ्कार का आश्रय सदा ही मुख में अमृत लगे हुए विषकुम्भ के समान यह रहती है। सभी के लिये असाध्य है, दुस्साध्य कलह के अङ्कुर का बीज है। अतः आपलोग पार्वतीजी के लिये परिणाम में सुखावह कोई पुत्र प्राप्ति का सुन्दर उपाय बता दीजिये। इसपर भगवान् विष्णु ने सुपुण्यक व्रत का माहात्म्य बतलाया और श्रीकृष्णभक्ति का अमोघ रहस्य कहकर श्रीकृष्ण भक्तों का मार्ग सदैव निष्कण्टक बतलाया और भगवती पार्वती के लिये इस व्रत को करने का विधान बतलाकर उसके प्रभाव से गोलोकनाथ श्रीकृष्ण स्वयं पार्वती के गर्भ से उत्पन्न होंगे यही गणेश नाम से प्रसिद्ध हो जायेंगे यह कहा। गजानन, एकदन्त आदि नामों की कथा।

---

भगवान् विष्णु के आदेश से शङ्करजी ने पार्वतीजी को व्रत का विधान बताया। उन्होंने सुन्दर वेषभूषा पहनकर शुभ दिन में रत्नकलशादि की स्थापना कर मुनिवृन्द की विधिविधान से पूजन कर पुरोहित, आचार्य, दिक्पाल, देव, नाग मनुष्य एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि की पूजा कर स्वस्तिवाचन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का मङ्गल घट में आवाहन किया और षोडश ( सोलहों ) उपचारों से भक्तिपूर्वक पूजा की। इस व्रत में जो उपकरण ( सामग्री ) देने की थी उसे सुन्दर सती पार्वती ने मन्त्र सहित प्रदान की। तिल और घृत की तीन लाख आहुतियों से हवन किया। देवता, अतिथि और ब्राह्मणों की सम्पूर्ण साधनों से पूजा की यह क्रम एक वर्ष तक प्रतिदिन चलता रहा। एक वर्ष के बाद समाप्ति दिवस पर पुरोहित ने भगवती पार्वती से पति को दक्षिणा में मांगा। भगवती इसपर मूर्छित होकर गिर पड़ीं। तब शङ्करजी ने उन्हें दक्षिणा न देने पर फलहानि का मर्म बताया और धर्म, देवता, मुनिवृन्द ने दक्षिणा के विषय में पार्वती को समझाया तब भगवती ने पति को दक्षिणारूप में मांगने पर आपत्ति उठाई कि पति के देने से स्त्री के पास फिर रह क्या जायगा।

भर्तुर्वंशश्चतनयः केवलं भर्तृमूलकः। यत्र मूलं भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यञ्च निष्फलम्॥

इस प्रकार जब पार्वतीजी एवं धर्म, देवता और मुनिगणों का दक्षिणा के विषय में विचार चल रहा था तो भगवान् चतुर्भुज श्रीकृष्ण रथ से वहां उपस्थित ... ं देववृन्द ने प्रणाम किया और उन्होंने देववृन्द को सृष्टि का स्वरूप ... ति ... का कारण बताया। सम्पूर्ण प्राणिमात्र का आधार प्रकृति

। बताकर गोलोकनाथ द्विभुज और वैकुण्ठनाथ चतुर्भुज विष्णुरूप का महत्त्व
समझाया और पार्वतीजी को अपने प्राणनाथ शङ्करजी को देकर फिर उचित
य द्वारा उन्हें पुनः प्राप्त करने का उपाय कहा। गौएँ विष्णु की देहरूपा हैं
वजी विष्णु के साक्षात् शरीर हैं अतः आप गोमूल्य देकर स्वामी को ग्रहण
। पार्वतीजी ने वैसा ही किया और एक लाख गौओं को बदले में देकर
रजी को फिर मांगा। इसपर सनत्कुमार ने ना किया इससे पार्वती को कष्ट
। उन्होंने शङ्कर का ध्यान किया और सामने महत्तेजः पुञ्ज भगवान् का रूप
ट हुआ। उसकी क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, धर्म, देवता, मुनिगण,
स्वती, सावित्री, लक्ष्मी, हिमालय और पार्वतीजी ने भक्तिभाव से स्तुति की।
ती ने भगवान् शंकर के तीन जन्म में पति होने के विषय को लेकर इस जन्म
ी सौभाग्य से उनके पति होने एवं पुत्र न होने का प्रकरण कहकर स्तुति की।
ने भगवान् से उनके समान ही पुत्ररत्न की प्राप्ति हो यह कामना की। इस
तीकृत स्तोत्र को संयत होकर सुननेवाले को भगवान् विष्णु के समान पुत्ररत्न
प्राप्ति होती है। एक वर्ष तक हविष्य भोजन कर इस व्रत को करनेवाले को
ुयक व्रत का अवश्य ही फल मिलता है।



भगवती पार्वती के स्तवन से प्रसन्न होकर देवाधिदेव श्रीकृष्ण ने अपना
दुर्लभ अनुपम सौन्दर्य सौकुमार्यपूर्ण रूप दिखाया उनके साथ चारों और गोप
एवं गोपिका बैठे हैं और राधा उनके पास विराजमान हैं। उस रूप को देख
मुग्ध होकर ऐसे ही सुन्दर पुत्र की अभिलाषा उनने की। भगवान् 'तथास्तु'
क

कहकर अन्तर्धान कराये। उन्होंने फिर सबको यथाविधि सन्तुष्ट किया व अमृतदान से सबको तृप्त किया। स्वयं शङ्करजी के साथ ब्राह्मणों को मो दक्षिणा से राजीकर आप प्रसाद पाकर सुन्दर शय्या पर पार्वतीजी मो उस रतिलीला के अन्त में वीर्यपतन काल में विष्णु वृद्ध ब्राह्मण का वेष धर आ पहुंचे और सब तरह से शङ्कर को तथा पार्वती को उद्बोधन दिया। इस पार्वती और शङ्करजी बीच में ही उठकर वस्त्र पहनकर उस रतिभवन के द्वार खड़े ब्राह्मण के पास गये और उसे आने का कारण पूछा। शङ्करजी ने उस नामपन्था पूछा और पार्वतीजी ने अपने द्वार पर आये हुए वृद्ध अतिथि सत्कार कर अतिथि पूजन का फल बतलाते हुए अपनेको धन्य कहा।

> अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्तते।
> पितृदेवाग्नयः पश्चाद् गुरवो यान्त्यपूजिताः ॥ ६ ॥
> यनि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
> तानिसर्वाणि लभते नाभ्यर्च्यातिथिमीप्सितम् ॥

ब्राह्मण ने भूख-प्यास से पीड़ित अपनेको बतलाकर आहार पाने की बलवती इच्छा प्रगट की। ब्राह्मण ने पांच प्रकार के पिता बतलाये।

> विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः।
> कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः ॥
> गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुः श्वसा।
> श्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्य्यान्नदायिका ॥
> भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः।
> धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति ॥ ४ ॥

मैं बुड्ढा ब्राह्मण आपके शरण में आया हूं मेरा अब अन्न से उपकार कीजिये। आगे उसने भगवद्भक्ति की प्रशंसा कर उनके चरणों की भक्ति मांगी। ने कर्म के भोगादि से लेकर भगवत्स्मरण एवं भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म की प्रशंसा

करते हुए हरिभक्ति एवं विष्णु मन्त्र की अपूर्व प्रशंसा की और भगवान् की भक्ति में एकमात्र कारण ही उसने पार्वतीजी को बतलाया और उनके पुत्र गणेश को साक्षात्कृष्ण का ही रूप कहा। उनकी उत्पत्ति श्रीकृष्ण भगवान् के अंश से हुई है। इसके पूर्व ही वह ब्राह्मण अन्तर्धान कर गया और उनके रूप माधुर्य का सुन्दर वर्णन किया।

९ हरौ तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम् ४०४

पार्वत्या शिवेन च गणेशदर्शनम् ४०५

वृद्ध ब्राह्मण के रूप में श्रीविष्णु के द्वारा बिना पूजा लिये ही चले जानेपर गवती पार्वती ने उनकी बहुत खोज की पर कहीं पता न चला इसपर आकाश-णी हुई कि हे पार्वति! आप शान्त होइये और शय्या पर अपने घर में लेटे ए सुपुत्र को देखिये। यह तुम्हारे द्वारा किये गये पुण्यक व्रत का फल है और ह ब्राह्मण भूखा नहीं स्वयं साक्षात् विष्णु थे। इस पर पार्वतीजी अपने भवन में लौट आईं और अपने पुत्र को उमा-उमा कहकर स्तन के लिये रोते हुए देखा। भगवती पार्वती शङ्करजी के पास गईं और उनसे गणेशजन्म का सारा वृत्तान्त कहा। शङ्करजी अपने पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पुत्रप्राप्ति की बहुत प्रकार से प्रशंसा की। भगवती पार्वती ने उस बालक को गोद में लेकर स्तन पान कराया।

१० सर्वेभ्यो बहुविधदानम् ४०६

विष्णुप्रभृतिभिर्देवैराशीर्वादप्रयोगः

पुत्र प्राप्ति के उत्सव पर भगवती पार्वती और शङ्करजी ने अधिकारी ब्राह्मण और याचक वर्ग को प्रचुर मात्रा में दान दिया। इसी प्रकार हिमालय ने भी अपने नाती के जन्म के उपलक्ष्य में खूब दान दिया। सभी गणेशजी की मङ्गल

कामना करते हुए लौटे और सभी देववृन्द ने इस उत्सव का अमित आ लूटा। सभी देवगण, विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, हिम मेनका, वसुन्धरा, पृथ्वी और भगवती पार्वती ने मंगलाशासनपूर्वक शुभाशं दिया एवं ब्राह्मण वन्दीजन ने मङ्गल कामना की। गणेशजन्म की इस मुना ध्याय के पढ़नेवाले का सदा मङ्गल होता है। इसके पाठ करनेवाले की इ मङ्गल कामना पूर्ण होती है। यह मङ्गलाध्याय जिस किसी के यहाँ हो उसका मङ्गल होता है। यात्रा में पुण्याह के दिन इसको मन लगाकर सुनने को सब अभीष्ट मिलते हैं।

## ११ गणेशदर्शनार्थं शनैश्चरागमनम् ४
## शनिपार्वतीसम्वादः ४

जब गणेशजन्म के उपलक्ष्य में शङ्करजी के यहाँ देवगण आनन्दपूर्वक उ मना रहे थे उसी समय महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर वहाँ पहुँच गये। श्याम शनैश्चर अहर्निश भगवान् कृष्ण के नाम में लगे हुए सभी देवगण को प्रणाम उनकी आज्ञा से शङ्करजी के भवन में श्रीगणेश को देखने गये। द्वार पर हाथ त्रिशूलधारी विशालाक्ष को देखकर उससे अन्दर जाने की आज्ञा मां विशालाक्ष ने पार्वतीजीकी आज्ञा से शनैश्चर को जाने दिया। अन्दर जा गणेशजी की मङ्गल कामना करते हुए आशीर्वाद देकर नीचा शिरकर वह बैठ गये। जब पार्वतीजी ने नीचे शिर करने का कारण पूछा तो कर्म की गति वर्णन करते हुए शनैश्चर ने अपनी स्त्री चित्ररथ की पुत्री के द्वारा उसके ऋतुस्ना होनेपर न जानेपर जो शाप दिया उसीके कारण किसीको देखने से वह नाश जाता है यह कहा। यद्यपि बाद में उसे मनाया भी गया परन्तु वह शाप लौटा न सकी।

---

१२ शनिनां बालकदर्शनम् ४११

विघ्नोपखण्डनम् ४१३

पार्वतीजी ने हँसी में टालते हुए शनि से बालक को देखने के लिये जोर दिया। शनैश्चर ने ज्यों ही अपनी दक्षिण आँख के कोण से बालक के शिर को देखा वैसे ही उसका शिर अलग होगया और गोलोक में श्रीकृष्ण के यहाँ चला गया। इस दुर्घटना से पार्वतीजी को बड़ा भारी खेद और शोक हुआ। सभी देवगण को इस अघटित घटना से विस्मय हुआ। सभी लोग मूर्छित हो गये। इसपर भगवान् विष्णु ने गरुड़ पर चढ़कर पुष्पभद्रानदी के किनारे एक वन में हथिनी के साथ सोये हुए गजेन्द्र को देखा। अपने सुदर्शनचक्र से उसका शिर छेदकर गरुड़ के ऊपर चढ़कर वे पार्वती के यहाँ जाने लगे। इधर वह हस्तिनी वर्षों के साथ अपने पति के अङ्ग विच्छेद से क्रोधित होकर विलाप करने और रोने-पीटने लगी। इससे विष्णु ने उसको दूसरे हाथी का सिर लगा दिया और उसको कल्प पर्यन्त आनन्द से जीवन विताने का वरदान दिया। कैलास पर आकर पार्वतीजी को जगाकर शिशुको गोद में रख उसके हाथी का शिर लगा दिया और बालक को आध्यात्मिक ज्ञान दिया। विष्णु भगवान् द्वारा कर्म के शुभाशुभ फलों के भोगों का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की कलाओं का महत्त्वपूर्ण वर्णन और उन्हीं के कलाअंश होने से गणेशजी की प्रशंसा। ब्रह्मा, विष्णु और देवगण सभी ने गणेशजी को भूरि-भूरि आशीर्वाद दिये। शङ्करजी ने मृतजीवित बालक की शान्ति करने के लिये ब्राह्मणों को खूब दान दिया। हिमालय ने भी इसी प्रकार ब्राह्मणभोजनादि से सब मङ्गल साधन जुटाये। श्रीविष्णु ने इस अवसर पर वेदों और पुराणों का पाठ करवाया। स्त्रीसुलभ स्वभाववश पार्वतीजी ने क्रुद्ध होकर शनैश्चर को शाप दिया कि जाओ तुम अङ्गहीन बन जाओ। इसपर सूर्य, कश्यप और यम रुष्ट होकर सभा से

ठकर चले गये। जब ब्रह्मा उन्हें मनाने गये तो परशुराम ने कहा कि शनि का बालक की माता के अनुरोध करने पर देखने से कोई दोष नहीं। सूर्य ने असने पुत्र के अङ्गहीन होने की बातपर शनि को निरपराध कहकर बदले में गणेशजी के अङ्गहीन होने का शाप दिया। यमने कहा कि यह कहां का न्याय है कि देखने की आज्ञा देने पर और सारी बात जानने पर भी शनि को शाप दिया गया। इस भी शाप देते हैं मारनेवाले को मारने में क्या कोई अधर्म है? ब्रह्माजी ने बीचबचाव कर उन्हें समझाया कि स्त्री के चपल स्वभाव से यह सब हुआ आप लोग क्षमा करें और पार्वती को कहा कि अपने बालक को देखने की आज्ञा देकर निर्दोष अतिथि को आपने क्यों शाप दिया? ब्रह्माजी के समझाने-बुझाने पर पार्वतीजी ने शाप छुड़ाने का और वर देने का उपक्रम किया। इसपर शनि को ग्रहराज होने, चिरंजीवी और हरिभक्तिपरायण होने का वरदान दिया गया। शाप के अमोघ होने से थोड़ा-थोड़ा लङ्ग होओगे यह कहा। इस प्रकार आपसकी समझौते की भावना से आनन्द छा गया और शनि विदा हो गये।



विष्णु भगवान् ने शुभ समय में देवगणों के साथ बालक गणेश की पूजा की और सबसे प्रथम देवगण में उनकी पूजा होने एवं सर्वपूज्य होने का वरदान दिया। भगवान् विष्णु ने विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक आदि नाम निकाले तथा खूब शुभाशीर्वाद दिये। धर्म ने सिद्धासन, ब्रह्मा ने कमण्डलु, शङ्कर ने योगपट्ट और दुर्लभतत्त्वज्ञान, इन्द्र ने रत्नसिंहासन, सूर्य ने मणिकुण्डल, वरुण आदि देवताओं ने नाना आभूषण और ... ने वाहन के लिये मूषक दिया। सभी ने भक्ति से पूजा की और देवगण

ः मन्त्रों से गणेशजी को स्नान कराया और गणेशमन्त्र से हिमालय ने पूजा
ौर दान दिया। तब विष्णु ने गणेशजी का स्तोत्र और कवच पाठ किय
नके पठन करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है।

## ़४ कार्तिकेय प्रवृत्तिप्राप्तिः ४२

प्रथम आदि सर्ग में जो रतिसङ्गम भगवती पार्वती एवं शंकरजी ने कि
ससे प्राप्त शङ्कर के अमोघ वीर्य के विषय में पार्वतीजी ने विष्णु भगवान्
जेज्ञासा की और विष्णु भगवान् ने देववृन्द को उस वीर्य की खोजकरने को वि
ौर दिया। सभी देवगण ने उस वीर्य के हरनेवाले को भला बुरा कह
सपर विष्णु ने कहा कि जब देवताओं ने उसे नहीं लिया तो फिर किसने लिय
ब धर्म ने कहा वह पृथ्वी पर गिरा; पृथ्वी ने कहा मैंने उसे धारण
र सकने के कारण अग्नि में डाल दिया। अग्नि ने भी अपनी असमर्थ
तलाकर उसे शरों के वन में डाल दिया। वायु ने उस. वीर्य से सुन्दर बाल
ोने की बात कही। चन्द्र ने कृत्तिकागण द्वारा उसके पालन-पोषण की ब
कट की और उसका कार्तिक नाम का रहस्य बतलाया। इसपर पार्वती
प्रसन्न होकर अति मात्रा में दान दिया।

## १५ शिवदूतैः कृत्तिकाभवनगमनम् कार्तिकतादिसंवादश्च ४२

पार्वतीजी के साथ शङ्कर ने कार्तिक के जन्म की बात सुनकर अ
महाबलशाली वीरभद्र, विशालाक्ष आदि पार्षदों को कृत्तिकागण के भवन
घेरने के लिये भेजा। इसपर कृत्तिकागण डर गईं और कार्तिक को सारा वृत्ता
कहा गया। नन्दिकेश्वर ने कार्तिक को कहा कि गणेशजन्म के मङ्गलोत्सव अ
यहां परतुम्हारे प्रकरण को लेकर खोजने की आज्ञा देने पर क्रमशः कृत्तिका स्थान
तुम्हारा ठीक ठिकाना बताया गया अतः अब तुम हमारे साथ चलो। कृत्तिका

को लेकर विष्णु देवताओं के साथ तुम्हारा अभिषेक करेंगे और तुम्हें तारक दै
को मारने के लिये सब प्रकार के शस्त्रास्त्र देंगे। अतः महत्त्वपूर्ण जीवनवाले मह
पुरुष कहीं एकान्त में थोड़े ही रहते हैं ऐसा समझकर हमारे साथ चलो
इसपर कार्तिक ने पूर्व जन्मों की सारी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण व
प्रकृतीश्वरी साक्षात् पार्वतीजी को अपनी माता कहा क्योंकि उनके स्वामी भगव
शङ्कर के वीर्य से मेरा जन्म हुआ है और कृत्तिकागण का मैं पोष्यपुत्र हूं क्यों
उनके स्तनपान से ही मैं पालापोसा गया हूं। हे नन्दिकेश्वर ! मैं शैलकन्या पार्व
के गर्भ से उत्पन्न नहीं हूं। यह मेरी धर्म-माता हैं और ये सर्वसम्मत मातायें हैं-
स्तनदात्री, गर्भदात्री, भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यक
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथ
मातुः पितुश्चभगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडशस्मृत

ये कृत्तिका कोई छोटी माया नहीं हैं। ये ब्रह्माजी की कन्या हैं औ
महाविभूति सम्पन्न हैं। . ये तीनों लोकों में पूजित हैं। जब विष्णु ने तुम्हें कह
है तो मैं शङ्करजी का पुत्र हूं आओ चलें देवगण के दर्शन करें।

## १६ कार्तिकगमनम् ४३६

कार्तिक ने कृतिकागण को सारी अच्छी तरह से सान्त्वना देकर उनसे
शङ्करजी के यहां जाने के लिये आज्ञा मांगी और सम्पूर्ण जगत् दैवाधीन कहकर
उन्हें भगवान् कृष्ण के भोजन करने की बातें कही। यह जगत् जलबुदबुद के
समान अनित्य हैं। मूर्ख लोग माया से सबकुछ करते रहते हैं। जब वह
विदा होने की तैयारी करने लगे तो सुन्दर रथ वहां आगया और कृत्तिकागण ने
दुःखी हृदय से अपना प्रेम का भाव प्रगट किया और अपने पुत्र के गमन वियोग
से मूर्छित होकर गिर पड़ीं। कार्तिक ने उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा से
. . . . . सवार होकर यात्रा की। मार्ग में पूर्ण पूर्णकलश, द्विज, वेश्या

सफेद धान्य, दर्पण, दधि, घृत, मधु, लाज, फूल, दूब, अक्षत आदि शुभशकुन के पदार्थ मिले। कैलास पहुंचने पर भगवती पार्वती को उनके मङ्गलाशासन के लिये प्रचुर सज्जा करते हुए देखा। सभी को उपस्थित देख पार्वती के सामने रथ से उतर कर कार्तिक ने प्रणाम किया और क्रमशः सबको दण्डवत् प्रणाम के साथ अभिवादन किया। सभी ने कार्तिक को शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया।

## १७ कुमाराभिषेकः ४२८

अब विष्णु ने शुभलग्न में रत्नसिंहासन पर कार्तिक को बिठाकर वेदमन्त्र से अभिषिक्त तीर्थों के जल से स्नान कराया। ब्रह्मा ने उसे ब्रह्मा एवं सन्ध्यामन्त्र, विष्णुमन्त्र और कवच, स्तोत्रादि वेदों ने दिये शङ्करजी ने पाशुपत संहारास्त्र आदि दिये। अन्य सभी देवतागण ने उन्हें अपने-अपने विशेष आयुध दिये और कार्तिक का अभिषेक कर अपने-अपने घर चले गये। समय आने पर भगवान् शङ्कर ने स्कन्दकार्तिक और गणेश का विवाह कर दिया। इस प्रकार संक्षेप में, कार्तिक के मिलने से सारे देवगणों में आनन्द और उत्साह की लहर दौड़ गई।

## १८ विघ्नेशविघ्नकथनम् ४३०

नारदजी ने भगवान् विघ्ननाशक गणेशजी के मस्तक छेदन के विघ्न को लेकर प्रश्न किया। इसपर पुराने इतिहास से भगवान् नारायण ने उनका समाधान किया। उन्होंने कहा कि पुराकल्प में एक बार शङ्करजी ने अपने भक्त माली और सुमाली के मारने सूर्य के ऊपर शूल से प्रहार किया। इसपर वह मूर्छित होकर रथ से गिर पड़ा। उसे इस अवस्था में कश्यपजी ने देखा और अपनी गोद में लेकर शोक से अतीव विलाप किया। अपने निष्प्रभ पुत्र की हीन अवस्था देखकर कश्यपजी ने शङ्करजी को शाप दिया कि जैसे मेरे पुत्र को छाती में प्रहार कर उसे छिन्न किया है वैसे ही तुम्हारे पुत्र का भी शिर छिन्न होगा।

जब आशुतोष भगवान् शङ्कर का क्रोध शान्त हो गया तो उन्होंने ब्रह्मज्ञान द्वारा सूर्य को उसी क्षण जिला दिया। सूर्य भगवान् चेतना पाकर उठे और कश्यपजी एवं शङ्करजी को सामने देखकर भक्ति से प्रणाम किया और शङ्कर को दिये गये शाप का वर्णन सुनकर सूर्य ने अपने पिता को भला-बुरा कहा और सभी सूर्य को आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान को चले गये। माली और सुमाली के कोढ़ निकल आई उन्हें ब्रह्मा ने सूर्य की प्रार्थना करने की बात कही और सूर्य कवच के पाठ से स्वस्थ होने का रहस्य कहा। वे दोनों पुष्कर जाकर त्रिकाल स्नान कर सूर्य के मन्त्र का जप करते रहे। सूर्य को भक्ति से सन्तुष्ट कर उन्हें पूर्व स्वरूप मिल गया और वे आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे।

४३२

## १६ भास्करपूजनं स्तोत्रञ्च

नारद ने सूर्य पूजा का स्तोत्र, कवच आदि को विस्तार से बताने के लिये जो प्रश्न किया उसके उत्तर में ब्रह्माजी द्वारा सूर्य कवच के पारायण की विधि का विस्तार से वर्णन बताया। इसे बृहस्पति ने इन्द्र को हजार भग होने पर प्रीतिपूर्वक साधन करनेको बतलाया था। इस कवच का अनन्त फल सभी रोगों से छुटकारा और इष्टसिद्धि की प्राप्ति होती है।

४३[illegible]

## २० गजमुखयोजनहेतुकथनम्

फिर नारदजी ने गणेशजी के हाथी के मुह को लगाने के विषय में पूछा इसपर श्रीनारायण ने पाद्मकल्प का पुरातन इतिहास समझाया। एक बार पुष्पभद्रानदी के किनारे, महेन्द्र देवराज बैठे थे। उस समय रम्भा को सजी-सजाई देखकर उनको कामविकार हो गया और उसने इन्द्रिय चपलता [illegible] बुलाया और कई प्रकार के फुसलानेवाले चाटुकारी वाक्यों से [illegible] का प्रयत्न किया। इसपर रम्भा ने कामी को भ्रमर के समान [illegible]

ुष्पको छोड़कर दूसरे पुष्प पर बैठने की वृत्तिवाला कहकर फिर अपना मनका
ाव कहा। इन्द्र ने कामशास्त्रानुसार उसके साथ रति की। इस प्रकार वह
ाममत्त इन्द्र सुख से दिन बिताने लगा। एक दिन दुर्वासा संयोग से आगये
न्होंने भगवान् विष्णु के यहां से लाये गये पुष्प को इन्द्र को उपहार देकर पुष्प
ारण का माहात्म्य कहा। देवराज ने उपेक्षा करके इस पुष्प को रम्भा को
दिया। रम्भा ने इसे हाथी के मस्तक पर रख दिया। जब रम्भा ने देवराज
ो भ्रष्टश्री देखा तो वह देवगण के यहां स्वर्ग में चली गई। देवराज को
ोड़कर वह महाबली हाथी उस फूल को फेंककर जंगल में चला गया
ां पर एक हथिनी के साथ कामोन्मत्त होकर खूब आनन्द से रमण किया
ौर उसके सन्तान फैलने लगी। भगवान् विष्णु ने उस पुष्प के प्रभाव से
का मस्तक गणेश के मस्तक के स्थान पर लगाया। यही मस्तक का रहस्य है।

१

### शक्रलक्ष्मीप्राप्ति

४३८

नारद ने ब्रह्माजी के शाप से देवता कैसे लक्ष्मी हीन हो गये और फिर कैसे उन्हें लक्ष्मी प्राप्त हो गई इसके लिये पूछा इसपर श्रीनारायण ने कहा कि रम्भा से पराभूत वह इन्द्र जब अमरावती आया तो वहां सब प्रकार से दैत्यग्रस्त बन्धुहीन और वैरिगण से घिरी हुई पुरी को देखकर उसे अत्यन्त दुःख हुआ। अपने दूत से नगरी की सारी दुर्दशा सुनकर वह बृहस्पतिजी के पास गया। वहां से वह इन्द्र के साथ ब्रह्माजी की सभा में चले गये और ब्रह्माजी की स्तुति कर अपने आने का सारा वृत्तान्त कहा। इसपर ब्रह्माजी ने अपने प्रपौत्र सम्बन्ध का स्मरण कराकर इन्द्र के दुराचार सम्बन्धी दुष्कृत्यों को फल समेत कहा और श्रीहीनता का कारण दुर्वासा द्वारा दिये गये भगवान् विष्णु के पुष्प के उपहार को गजेन्द्र के सिरपर उपेक्षा बुद्धि से डालना ही बताया और परस्त्री सेवन से मनुष्य को सदा ही दरिद्र होना पड़ता है। इसका उपाय उन्होंने

भगवान् नारायण का अभिप्राय से भजन गाया। ब्रह्माजी ने श्री नारायण का कवच दिया। उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिजी के साथ देवगण को लेकर मन्त्र और कवच का पुष्कर में जप किया। उन्होंने एक वर्ष तक निराहार रहकर साधना की। इसपर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि साक्षात् प्रगट होकर इन्द्र को इच्छानुसार वर दिया, साथ ही लक्ष्मीस्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्धन म... दिया। इन्द्र ने क्षीरसागर में जाकर उस लक्ष्मीस्तोत्र और कवच का वि... विधान से पाठ कर लक्ष्मीजी की फिर कृपा प्राप्त की। और अमरावती अधिकार किये हुए दैत्यों को हरा कर देवगण को अपने-अपने स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया।

## लक्ष्मीस्तोत्रं कवचश्च

२२

श्रीनारायण ने कहा पुष्कर में तपस्या करते हुए इन्द्र के सामने साक्षात् प्रगट हुए और इच्छित वर मांगने को कहा। इन्द्र ने लक्ष्मी प्राप्ति का वर मा... इसपर भगवान् ने इन्द्र को महालक्ष्मी कवच और लक्ष्मीस्तोत्र दिया और अन्तर्धान हो गये और इन्द्र लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने के लिये देवगण के साथ श्रीविष्णु की आज्ञा से क्षीरसागर के तटपर चले गये।

## महालक्ष्मीचरितम्

२३

इन्द्र ने महालक्ष्मी के कवच को सद्रत्नगुटिका में रखकर अपने ... बांधकर मनसे दिव्यस्तवन का स्मरण करते हुए भगवती को प्रसन्न करने ... लगाया। देवगण भी अति दीन भाव से आंखों में आंसू लाकर और ... होकर जगद्धात्री की पूजा में लगे। भगवती प्रसन्न होकर प्रगट हुईं और ... यदि उनके पास रहने की आज्ञा दें तो रहने का आश्वासन दिया। ... सभी ब्राह्मण वहां उपस्थित हो गये। इनमें अङ्गिरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु ...

रीचि, और अत्रि आदि प्रमुख हैं। इन्होंने ईश्वरी लक्ष्मी की पूजा विधिविधान की और लक्ष्मीजी से देवभवन तथा मर्त्यलोक में जाने की प्रार्थना की। इसके द महालक्ष्मीजी ने पुण्यवान्, सुनीति को जाननेवाले गृहस्थ और राजा लोगों पास रहने की बात कहकर जिनके पास वह नहीं रहतीं उन व्यक्तियों और नों की विस्तार से गणना की। इसपर देवता, ऋषियों एवं मुनिगण ने भगवती को णाम किया। फिर देवगण को निश्चल लक्ष्मी की प्राप्ति हो गई।

४

## गणेशस्य एकदन्तत्व विवरणम् ४४४

नारदजी ने भगवान् नारायण से गणेशजी के एकदन्त होने के सम्बन्ध में ...। भगवान् ने कहा एक बार कार्तवीर्य जङ्गल में शिकार खेलने के लिये गया। वहां बहुत मृगों की शिकार कर वह बहुत थक गया। दिन बीतने पर सन्ध्या के समय वह जमदग्नि ऋषि के आश्रम के निकट अपनी सेना के साथ ठहर गया। प्रातःकाल उठकर स्नान, सन्ध्या से निवृत्त होकर उसने दत्तात्रेय द्वारा दिये गये मन्त्र का जाप किया। मुनि ने राजा को शुष्क ओष्ठ, कण्ठ, तालु- वाला देखकर प्रेम से कुशल पूछा। राजा ने सादर विनम्र प्रणाम किया और ऋषि ने उन्हें शुभाशीर्वाद से वर्द्धापन किया। राजा ने अपने अनशन का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा को मुनि ने निमन्त्रण दिया और कामधेनु से आकर सारी बातें कह दीं। माता कामधेनु से सान्त्वना पाकर जमदग्नि प्रसन्न हुए। उस कामधेनु ने सम्पूर्ण भोज्य सामग्री और पाकपात्र दिये। महर्षि ने ...रिपक्व फल, मिष्टान्न, दुग्ध, घृत, शर्करा, मोदक, ताम्बूलादि सम्पूर्ण सामग्री से राजा को सेना सहित भोजन कराया। इसपर विस्मित होकर राजा ने पूछा कि मेरे से असाध्य इतनी विशाल सामग्रियां कहां से आईं। इसपर उसके ...चिव ने कपिला गौ का ही सारा महत्त्व बतलाया। इसपर लोभी राजा ने महर्षि जमदग्नि से उस कामधेनु को मांगा। कर्म की विचित्र गति है पुण्य कर्म से

पुण्यगति और पापकर्म से दुर्गति होती है। कर्म में फन्से जीव की गति
विस्तार का कोई पता नहीं। अतः सज्जन पुरुष सदा ही कर्म का भ्रम किया क

सा विद्या तत्तपोज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः।
सा माता स पिता पुत्रस्तत्कार्ये कारयेत्तु यः॥

इस कर्मभोग के रोग को कृष्णभक्ति रसायन से भक्त वैद्य ही शमन
है। भगवती जगद्धात्री महामाया ही इसमें प्रधान है। कार्तवीर्य माया से
होकर महर्षि जमदग्नि से कामधेनु को मांगने के लिये बड़ी अनुनय विनय
लगे। मुनि ने बहुत टालमटोल की। अन्त में राजा ने हठ से कामधेनु को
लिये नौकर को भेजा। महर्षि ने कपिला के पास जाकर अपना दुःख
इसपर कामधेनु ने कहा कि यदि राजी होकर आप राजा को मुझे देंगे तो मैं
जाऊँगी नहीं तो कभी भी नहीं जाऊँगी। आप सन्तोष करें। यह
कामधेनु ने कई शस्त्र अस्त्र और बड़ी सेना रच डाली। उसके शरीर
कोटि नाना भील जातियां उत्पन्न हुई। मुनि को अब निर्भय रहने का आ
दिया। इस सब तैयारी का पता राजा के नौकरों ने उसे तत्काल दिया
उसे बड़ी चिन्ता हुई।

## २५ जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम्

महर्षि जमदग्नि के पास दुःखित हृदय से कार्तवीर्य ने अपना दूत भे
मुझ अतिथि को चाहे तो आप युद्ध दें चाहे अपनी कामधेनु। मुनि ने का
कामधेनु को बलात् राजा मांगता है तो मैं उसे युद्ध ही देना चाहता हूं। यु
पूरी तैयारी के बाद राजा ने महर्षि को प्रणाम किया और तुमुल युद्ध हु
राजा मूर्छित होकर गिरपड़ा, तब कृपानिधि महर्षि ने अपनी सारी सेना को
लिया और कमण्डलुजल से शरीर को छिड़क कर आशीर्वाद दिया कि उ

य हो। फिर राजा ने प्रणाम कर महर्षि से आशीर्वाद लिया और राजा को ान, भोजन कराकर जाने के लिये कहा। ब्राह्मण स्वभाव से ही कोमल ते हैं। दूसरे लोग छूरे की धारा के समान असाध्यवदाघ्य। राजा नहीं माना ौर अपने हठ को फिर से दोहराया "या तो युद्ध करो या कामधेनु दो।"

## ६ पुनः जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम् ४४६

महर्षि ने राजा की हठ भरी बातों को सुनकर उसे नीतियुक्त वचन कहे। राजन् देखो तुम्हारा कितना आतिथ्य किया गया। जब तुम युद्ध में मूर्छित ्गये तो तुम्हें आशीर्वाद देकर चेतना दी। इसपर भी युद्ध करने की बात को राजा ने बार-बार दोहराया। युद्ध आरम्भ हुआ। कपिला कामधेनु के प्रताप से महर्षि ने राजा को मूर्छित कर दिया। फिर क्रमशः राजा ने अग्निबाण, वरुणास्त्र, गान्धर्व, नागास्त्र, गारुड़ास्त्र, माहेश्वर, वैष्णव, जृम्भणास्त्र एवं नारायणास्त्रों का प्रयोग किया जिनका समुचित उत्तर उन-उन शस्त्रों के प्रतिकार के अस्त्रों को काम में लेकर मुनि ने दिया। राजा फिर मूर्छित होकर गिर गया। इसपर मुनि ने दया कर उसे चेतना प्रदान की। उठते ही राजा ने अपनी शूल को लेकर मुनि के ऊपर आक्रमण किया पर मुनि ने उसे बीच में ही काट दिया। ब्रह्माजी ने आकर बीचबचाव किया और उनके कहने से वह घर लौट गया।

## २७ ससैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम् ४५१

घर से लौटकर फिर जमदग्नि के आश्रम में पूरी सेना की तैयारी कर राजा गया। इस विशाल सेना की सामग्री को देखकर महर्षि जमदग्नि के आश्रम के लोग मूर्छित हो गये और राजा बल से धेनु को लेकर घर जाने को तैयार होगया। महर्षि ने बाणों का एक ऐसा जाल बिछाया कि सारी सेना बिंध गई। राजा बार-बार मूर्छित हुआ परन्तु मुनि ने उसे नहीं मारा परन्तु उस दुष्टात्मा ने अपने

सब शास्त्रों की मामाण्य की परीक्षा कर फिर अन्त में शालिग्राम का उ
किया। उसने मुनि की छाती को पार कर अपने स्थान में हरि के पास जाने
और मूर्छित होकर मुनि के वही प्राणपखेरू उड़ गये यह ब्रह्मलोक में पहुँच
राजा ने ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर अपनी राजधानी की ओर प्रयाण किया
उधर कपिला भी त्रात ! त्राम !! कहती हुई गोलोक चली गई और वहाँ श्रीकृ
को यह सारी घटना उसने कह सुनाई। कामधेनु को कृष्ण ने ब्रह्माजी को दि
ब्रह्माजी ने भृगु को, और भृगु ने प्रसन्न होकर पुष्करक्षेत्र में जमदग्नि को दि
इधर रेणुका ने पति को स्वर्गत सुनकर महर्षि जमदग्नि के शव के पास जाकर
गोद में लेकर विलाप किया और मूर्छित हो गई। रेणुका ने अपने पुत्र परशुर
को याद किया। योग के प्रभाव से परशुराम ने पुष्कर से आकर बहुत वि
किया और सुन्दर चिता तैयार की। रेणुका ने राम को छाती से लगाया औ
कपोल तथा शिर में चुम्बन कर जोर-जोर से रुदन किया और परशुराम
तपस्या करने के लिये कहा। परशुरामजी ने माता की आज्ञा को अनसुनी क
२१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दूँगा यह प्रतिज्ञा की। इस पर माँ
आततायी लोगों को मारने की वेद आज्ञा देते हैं। इससे प्रसन्न होने
माता से कहा।

पितुः शासनहन्तारं पितुर्वधविधायकम्। यो न हन्ति महामूढो रौरवं स व्रजेद्ध्रु
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहा। क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः॥
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः। एकादशैते पापिष्ठा वधार्हा वेदसम्मताः।
द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति। वपनं ताडनञ्चैव धर्ममाहुर्मनीषिण

रोते हुए परशुरामजी को रेणुका ने ज्ञान दिया और कर्मबन्धन के लिये
भगवद्भक्ति को ही एक मात्र उपाय बतलाया।

---

रेणुका ने भृगु से कहा कि ऋतुधर्म का आज चतुर्थ दिवस है अतः तुम अकस्मात् ही पूर्व पुण्यों के प्रताप से उपस्थित हो गये हो अतः मेरे स्वामी के साथ सती होने की व्यवस्था के सम्बन्ध में निर्णय दो। इसपर भृगुजी ने चतुर्थदिवस रति के लिये शुद्ध कहा गया है न कि दैव और पितृकार्यों के लिये। इसलिये महर्षि के साथ सती होकर स्वर्गयात्रा करने की प्रार्थना की।

स पुत्रो भक्तिदाता यः साचस्त्रीयाऽनुगच्छति।
सबन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥
सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत् स राजा पालयेत्प्रजाः।
स च स्वामी प्रियाधर्मे मतिं दातुमिहेश्वरः॥
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः। एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम्॥

फिर भृगु से रेणुका ने स्वामी के साथ जाने योग्य और न जाने योग्य स्त्रियों के लिये पूछा। इसपर भृगु ने बालक पुत्रवाली, गर्भिणी, अऋतुमती, रजस्वला, कुलटा, गलित व्याधिवाली पतिसेवाहीन, कटु बोलनेवाली अभक्त स्त्री अयोग्य है तथा दूसरी सब पति को प्राप्त करती हैं। कृष्णभक्त पति के पीछे साध्वी उसे प्राप्त करती है। फिर रेणुका ने भृगुजी के धर्मयुक्त वचन अपने जीवन में पालने के लिये कहा और पति के साथ सती होकर ब्रह्मलोक को गई। तब फिर ब्रह्माजी के यहाँ जाकर परशुरामजी ने कार्तवीर्य की दुष्टता और पिताजीकी स्वर्गगति का वर्णन किया और अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई। ब्रह्माजी ने प्रकृतिगत जन्म-मरण के इस अनादि प्रवाह में इस प्रतिज्ञा को बाधक कहकर शिवजी के पास जाकर उपाय पूछने को कहा।

---

## २९ परशुरामस्य शिवगर्भागमनम् नाम्नीयांशः ४११

परशुराम ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर शिवलोक को गये। वहां द्वार पर दो भयानक आकृतिवाले द्वारपालों को उन्होंने देखकर मनमें डरते हुए कहा कि मेरे साथ कार्तवीर्य का सहज वैर पिताजी के द्वारा अच्छा व्यवहार करने पर भी उन्हें मारने के कारण हो गया है। इसपर ब्रह्माजी ने मुझे भगवान् शंकरजी के दर्शनों के लिये कहा है मुझे शिवजी से मिलने का अवसर दो। शङ्करजी ने परशुरामजी को लिवालाने की आज्ञा दी और उनने शङ्करजी की सभा में पार्षदगण, कार्तिकेय, गणेश, माता पार्वती आदि को देखकर विनम्र भाव से प्रणाम किया और भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति की। भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और परशुरामजी को आशीर्वाद प्रदान किया।

## ३० शिवशिवासमीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम् ४६२

पार्वती एवं शङ्करजी के यहां जानेपर शङ्करजी ने परशुराम को आने का कारण पूछा। परशुराम ने पिता के असामयिक दारुण मृत्यु का आदि से अन्त तक वर्णन कर कार्तवीर्य की कृतघ्नता की निन्दा की और २१ बार निःक्षत्रिय भूमि को करने की अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा कहकर अपनी रक्षा करने और शरण में आनेकी बात कही। शङ्कर पार्वती दोनों ही इस विषय को सुनकर हक्के-बक्के रह गये और परशुराम को हर सम्भव उपाय से समझाया। परन्तु परशुराम ने मरने की कड़ी धमकी दी और अपने निस्तार का उपाय पूछा। इसपर शङ्करजी ने पार्वती और भद्रकाली को समझाकर उनके निर्देश से भृगु को त्रैलोक्यविजय नामक कवच, पूजाविधान, मन्त्र, और सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या सिखाई। परशुराम ने दीर्घकालतक विद्यायें सीखकर, और तीर्थ में मन्त्रसिद्धि कर शङ्कर को प्रणाम कर अपने स्थान की ओर गमन किया।

## ३१ तुष्टेन शिवेन स्वकवचादिदानम् ४६४

शङ्कर ने प्रसन्न होकर जो कवच दिया उसके सम्बन्ध में नारदजी ने विस्तार से पूछा। इसपर श्रीनारायण ने त्रैलोक्यविजय कवच का अविकल विधान पाठ और सिद्धि विधान कहा। इसको सिद्ध करनेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है। कवच की अद्वितीय फलश्रुति।

## ३२ परशुरामाय स्तोत्रमन्त्रपूजाप्रदानम् ४६७

परशुराम ने इसके बाद स्तोत्र, मन्त्र और पूजाविधान पूछा। इसपर शङ्करजी ने "ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च" यह सोलह अक्षरों का मन्त्र बताया। इसकी पांच लाख संख्या जपने से सिद्धि होजाती है साथ ही इसके जप का दशांश हवन, उसका दशांश अभिषेक, उसका दशांश तर्पण और उसका दशांश मार्जन करना आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण की राधा सहित सम्पूर्ण देवगण ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के साथ पूजा की गई। गणेश, दिनेश, अग्नि, पार्वती, विष्णु एवं शिव की पूजा कर सामवेदोक्त स्तोत्र बताया। इसको कहकर उन्होंने पुष्करराज में जाकर तपस्या करने को आदेश दिया। जिससे मन्त्रसिद्धि के साथ सम्पूर्ण वाञ्छित मिलेगा।

## ३३ परशुरामस्य तपश्चरणम् ४७२

परशुराम पुष्कर तीर्थ में गये।और भगवती दुर्गा एवं काली समेत शङ्करजी को प्रणाम कर इस मन्त्रराज को भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए प्राणायामादि से मन और शरीर को संयम कर सिद्ध किया। इसपर श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर प्रगट हुए। परशुराम ने तब २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करूँ यह वर मांगा और श्रीकृष्ण भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति मांगी। 'तथास्तु' कहकर श्रीकृष्ण

अन्तर्धान हो गये। उसी समय भगवान् को ज्योंही भक्तिपूर्वक प्रणाम कर रहे कि उनका दहिना अङ्ग फड़कने लगा। मङ्गलसूचक शुभस्वप्न आये और समय की प्रतीक्षा कर कार्तवीर्य से युद्ध करनेकी वह तैयारी करने लगे। जाते समय उन्हें मङ्गलकारी शुभ शकुन हुए। रात्रि में भी जयसूचक मङ्गलमय स्वप्नों के दर्शन होने से उन्हें अपनी विजय के लिये मनमें दृढ़ विश्वास हो गया।

३४ परशुरामस्य राजसमीपे दूतप्रेषणम् ४७४

नर्मदा के किनारे अपने भाई-बन्धुओं के साथ आकर परशुराम ने अपना दूत युद्ध के आह्वान के लिये और २१ बार बिना क्षत्रियों की पृथ्वी बना देने की प्रतिज्ञा को बताने के लिये राजा के पास भेजा। युद्ध का आमन्त्रण मानकर ज्योंही राजा तैयारी कर जाने लगा तो उसकी स्त्री ने रोका। इसपर कार्तवीर्य ने अपनी आशंकामूल भीति को रानी से कहकर अपने दुःस्वप्नों की बातें विस्तार से कही। इसपर उसकी स्त्री मनोरमा ने युद्ध न करने के लिये अपने पति कार्तवीर्य को समझाया। विप्र के साथ विरोध न कर सदा विनम्रभाव से झुकने में ही अपना सब का हित है। सती स्त्रियों के लिये सौ पुत्रों से भी अधिक प्रिय पति ही वेदों में साक्षात् भगवान् हरि ने बतलाया है। कार्तवीर्य ने अपनी स्त्री को बार-बार न रोकने के लिये समझाया और काल की विचित्र गति कहकर अपनी मृत्यु जब परशुराम के हाथ में ही लिखी है तो फिर टालनेवाला कौन है। इस प्रकार सान्त्वना देकर अपनी अक्षौहिणी सेना को लेकर कार्तवीर्यार्जुन ने गले से गले मिलकर स्त्री से युद्ध के लिये विदा मांगी।

३५ राज्ञो युद्धयात्रा ४७६

राजा के जाने के पहले ही मनोरमा ने अपने शरीर को योगमाया से भेदन कर परब्रह्म में अपनेको मिला लिया। राजा ने उस सती

को मृत देखकर बहुत विलाप किया परन्तु अब क्या होसकता था। इसपर आकाशवाणी हुई और उसने घोषणा की कि हे राजन् स्थिर रहो रोदन मत करो। दत्तात्रेय तुम्हारे गुरु हैं तुम ज्ञानी जनमें श्रेष्ठ हो यह संसार जल के बुलबुलों के समान है। वह मनोरमा कमलालय के यहां चली गई अब तुम भी शीघ्र ही युद्ध में जाकर वैकुण्ठ का मार्ग ग्रहण करो। इसपर शोक को छोड़कर राजा अपनी प्राणप्यारी मनोरमा के लिये चन्दनकाष्ठ की चिता बनाई और अपने पुत्र से उस का दाह संस्कार करवाया और और्ध्वदेहिक क्रिया के बाद मनोरमा के पुत्र से ब्राह्मणादि को प्रचुर धनधान्य प्रदान किया। राजा दुःखी हृदय से युद्धभूमि में गया परन्तु मार्ग में उसे अशुभ शकुन होते चले गये। युद्धक्षेत्र में जाकर राजा ने भृगु एवं परशुराम को प्रणाम किया और राजा को भृगु ने स्वर्ग जाओ यह आशीर्वाद दिया। फिर रथ पर चढ़कर ब्राह्मणों को उसने युद्ध करने के पहले प्रचुर मात्रा में दान दिया। परशुराम ने कार्तवीर्य से उसके इस दुष्टाचरण का कारण पूछा। इसपर राजा ने ब्राह्मण, मुनि, योगी, भक्त चारों वर्णों की परिभाषा बताकर कामधेनु के प्रति आकर्षण ही राजसी राजा के लोभ का और महर्षि जमदग्नि की मृत्यु का कारण बना। इसके बाद युद्ध में कार्तवीर्य मारा गया और उससे शिव कवच लिया। शिवकवच का वर्णन।

३६ **सुचन्द्रण नृपतिना सह रामस्ययुद्धम्** • ४०६

मत्स्यराज के बाद कार्तवीर्य ने नाना देशों के राजाओं को लड़ने के लिये भेजा परन्तु सभी परशुराम के सामने हतवीर्य हो गये। तीन रात तक राजाओं के साथ युद्ध किया और बारह अक्षौहिणी सेना को अपने फरशे से मार गिराया। अब सूर्यवंशी राजा सुचन्द्र इन राजाओं का मरा देख अपने एक लाख राजाओं के साथ आया। उसे भी परशुराम ने सेना समेत फरशे से मौत के घाट उतारा। परन्तु सुचन्द्र के गले में कालीकवच होने से उसकी रक्षा साक्षात् भगवती काली

अब अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर परशुराम कैलाश पर भगवान् परम गुरु शि को नमस्कार करने गये वहां पर माता पार्वती, गणेश, और कार्तिकेय मत देखा सबसे बातचीत कर ज्योंही परशुराम जाने लगे तो गणेश ने उन्हें रो और भगवान् शंकर अभी निद्रित हैं उनके जागने पर उनसे आज्ञा लेकर मैं साथ ही चलूंगा इसलिये कुछ समय तक ठहरने की सलाह दी। इसपर परशुराम ने बृहस्पति समान युक्तियुक्त वचन कहा।



जिन भगवान् शंकर के प्रसाद से मैंने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शू कर दिया और महावीर कार्तवीर्य तथा सुचन्द्र को मारा उनके दर्शन औ माताजी के दर्शनों से कृतकृत्य हो मैं शीघ्र ही घरपर जाऊँगा। जिन महादेवाधिदेव जगद्गुरु शंकरजी ने नानाविद्या और दुर्लभ शास्त्रों को पढ़ा उन परम गुरु शंकरजी के दर्शन करने की इच्छा है। इसके उत्तर में श्रीगणेश ने कहा हे भ्रातः! कुछ क्षण ठहरो। एकान्त में स्त्रीयुक्त पुरुष को न देखे। उनके रङ्ग में भङ्ग करनेवाला कालसूत्रनामक नरक में जबतक सूर्य, चन्द्रमा की स्थिति है तबतक रहता है। विशेष रूप से माता, पिता, गुरु और राजा को सुरतसा में बिलकुल न देखे। ऐसा करनेवाले का सात जन्म तक स्त्री विच्छेद होता है।

श्रोणीवक्षःस्थलंवक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामतोऽपि विमूढश्च सोऽन्धो भवति निश्चितम्॥

इसपर भृगुनन्दन परशुरामजी ने कहा हे गणेश निर्विकार बालक का अपने माता-पिता के पास जानेका कोई डर नहीं। ये पार्वती परमेश्वर केवल तुम्हारे ही नहीं सारे जगत् के माता-पिता हैं। अतः बालक से माता-पिता को क्या संकोच है ? फिर हँसकर परशुरामजी ने अन्तःपुर में जाने की इच्छा प्रकट की। अब गणेशजी भी कुछ शान्त हो गये। उन्हों ने कहा कि अज्ञानी मनुष्य ज्ञानवान् से ही ज्ञान पाता है और पिता, भाई के मुख से भाग्यशाली ही ज्ञान सुनता है परन्तु मुझ मन्दबुद्धि का भी हे भ्रातः निवेदन सुनो जो निर्गुण है, वह निर्लिप्त है। शक्तियों से वह संयुत नहीं है, परन्तु परमशक्तिस्वरूप आनन्दकन्द सच्चिदानन्द जब अपनी ज्योति से प्रकृति में अपना वीर्य छोड़ते हैं तो डिम्ब होता है, वह दिव्य लाख वर्ष तक रहकर परब्रह्म के निःश्वास से वायु फिर मुख, विन्दु और उससे सहसा जल होजाता है और उसमें डिम्ब एक लाख वर्ष तक डिम्ब रहकर फिर सारे विश्वों का आधार महा विराट् उत्पन्न होता है। उस कृष्ण के गात्रलोम के समान संख्यावाले ब्रह्माण्ड हैं उन सब में प्रत्येक ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवगण हैं। अपने स्वांशकला से भगवान् हरि नानारूपधारी होते हैं। उन्हीं की पञ्चप्रकृतियां स्त्रीमात्र में सर्वत्रव्याप्त हैं। राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गादेवी तथा सरस्वतीरूप में विराजमान हैं, क्या उनकी लज्जा कहीं चली जाती है ? इस प्रकार परमप्रभु श्रीकृष्ण के गुणानुवाद को कहकर श्री परशुराम से कुछ ठहरने को कहा।

४३ गमनव्याघाते रामस्य गणेशेन सह वाग्युद्धम् ५०८
गणेशं प्रति परशुनिक्षेपायोद्योगः ५०६

इसी बीच में परशुराम ने जाने की शीघ्रता की, परन्तु श्रीगणेश ने उन्हें रोका और दोनों का वाग्युद्ध हुआ। इसपर गणेश पर अपने फरशे से आक्रमण करने की पूरी तैयारी की परन्तु कार्तिकेय के बीच में पड़ने से कुछ सुलह हो गई

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमन्महर्षि वेदव्यास प्रणीतम् ।

# ब्रह्मवैवर्त्त पुराणम् ।

## तत्रादौ प्रथमं ब्रह्मखण्डं प्रारभ्यते

## प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीपुराणपुरुषाय नमः ।

तत्रादौ मङ्गलाचरणम् ।

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः ।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च नमन्ति देव्यः प्रणमामि तं विभुम् ॥
स्थूलास्तनूर्विदधतं त्रिगुणं विराजं विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम् ।
सृष्ट्युन्मुखः स्वकलयापि ससर्ज सूक्ष्मं नित्यं समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि ॥
ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाः सुरनरमनवो योगिनो योगरूढाः,
सन्तः स्वप्नेऽपि सन्तं कतिकतिजनिभिर्यं न पश्यन्ति तप्त्वा ।
ध्याये स्वेच्छामयं तं त्रिगुणपरमहो निर्विकारं निरीहं,
भक्तध्यानैककारेणोनिजतनुमविरलश्यामरूपं दधानम् ॥

वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः। आविर्वभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः॥
अमृतपरमपूर्वं भारतीकामधेनुं श्रुतिगणकृतवत्सो व्यासदेवो दुदोह॥
प्रतिरुचिरपुराणं ब्रह्मवैवर्त्तमेतत् पिबत पिबत मुग्धा दुग्धमक्षय्यमिष्टम्॥

ओं नमो भगवते वासुदेवाय।

ओं नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

ओं भारते नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः।
नित्यां नैमित्तिकीं कृत्वा क्रियामूषुः कुशासने॥ १॥

एतस्मिन्नन्तरे सौतिमागच्छन्तं यदृच्छया। प्रणतं सुविनीतं तं विलोक्य ददुरासनम्॥
तंसम्पूज्यातिथिंभक्त्याशौनकोमुनिपुङ्गवः। पप्रच्छकुशलं शान्तं शान्तःपौराणिकं मुदा॥
वर्त्मायासविनिर्मुक्तं वसन्तं सुस्थिरासने। सस्मितं सर्वतत्त्वज्ञं पुराणानां पुराणवित्॥
परं कृष्णकथोपेतं पुराणं श्रुतिसुन्दरम्। मङ्गलं मङ्गलार्हञ्च सर्वदा मङ्गलालयम्॥
सर्वमङ्गलबीजञ्च सर्वदा मङ्गलप्रदम्। सर्वामङ्गलविघ्नघ्नं सर्वसम्पत्करं परम्॥ ६॥
हरिभक्तिप्रदं शश्वत् सुखदं मोक्षदं भवेत्। तत्त्वज्ञानप्रदं दारपुत्रपौत्रविवर्द्धनम्॥ ७॥
पप्रच्छ सुविनीतञ्च विनीतो मुनिसंसदि। यथाकाशे तारकाणां द्विजराजो विराजते॥

शौनक उवाच।

प्रस्थानं भवतः कुत्र कुत आयासि ते शिवम्। किमस्माकंपुण्यदिनंवत्स! त्वद्दर्शनेन च॥
वयमेव कलौ भीता विशिष्टज्ञानवर्जिताः। मुमुक्षवो भवे मग्नास्तद्धेतुस्त्वमिहागतः॥
भवान् साधुर्महाभागः पुराणेषु पुराणवित्। सर्वेषु च पुराणेषु निष्णातोऽतिकृपानिधिः

श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती।
तत् कथ्यतां महाभाग! पुराणं ज्ञानवर्द्धनम्॥ १२॥

गरीयसी या मोक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी। संसारसन्निबद्धानां निगडच्छेदकर्तनी॥
भवदावाग्निदग्धानांपीयूषवृष्टिवर्षिणी। सुखदानन्ददा सौते! शश्वच्चेतसिजीविनाम्॥
यत्रादौ सर्वबीजञ्चपरब्रह्मनिरूपणम्। तस्य सृष्ट्युन्मुखस्यापिसृष्टेरुत्कीर्त्तनं परम्॥
साकारंवानिराकारंपरमात्मस्वरूपकम्। किमाकारञ्च तद्ब्रह्म तद्ध्यानं किञ्च भावनम्॥

ध्यायन्ते वैष्णवाः किम्वा किम्वा सन्तश्च योगिनः।
मतं प्रधानं केषां वा गूढं वेदे निरूपितम्॥ १७॥

प्रकृतेश्च य आकारो यत्र वत्स ! निरूपितः। गुणानां लक्षणं यत्र महदादेश्च निर्ण
गोलोकवर्णनं यत्र यत्र वैकुण्ठवर्णनम्। वर्णनं शिवलोकस्य यत्रान्यत् स्वर्गवर्णन
अंशानाञ्चकलानाञ्चयत्रसौते ! निरूपणम्। के प्राकृताःकाप्रकृतिःकआत्मा प्रकृतेःप
निगूढं जन्मयेषांवादेवानांदेवयोषिताम्। समुत्पत्तिः समुद्राणां शैलानां सरिताम

के चांशाः प्रकृतेश्चापि कलाः का वा कलाकलाः।
तासाञ्च चरितं ध्यानं पूजास्तोत्रादिकं शुभम्॥ २२॥

दुर्गासरस्वतीलक्ष्मीसावित्रीणाञ्च वर्णनम्। यत्रैव राधिकाख्यानमत्यपूर्वं सुधोपम
जीवकर्मविपाकञ्च नरकाणाञ्च वर्णनम्। कर्मणां खण्डनं यत्र यत्र तेभ्यो विमोक्ष

येषाञ्च जीविनां यत् यत् स्थानं यत्र शुभाशुभम्।
जीविनां कर्मणो यस्मात् यासु यासु च योनिषु॥ २५॥
जीविनां कर्मणो यस्मात् यो यो रोगो भवेदिह।
मोक्षणं कर्मणो यस्मात्तेषाञ्च तन्निरूपय॥ २६॥

मनसातुलसीकालीगङ्गापृथ्वीवसुन्धरा। आसां यत्र शुभाख्यानमन्यासामपि यत्र
शालग्रामशिलानाञ्च दानानाञ्चनिरूपणम्। अपूर्वं यत्र वा सौते ! धर्माधर्मनिरूपण
णेश्वरस्य चरितं यत्र तज्जन्म कर्म च। कवचस्तोत्रमन्त्राणां गूढानां यत्र वर्णन
दपूर्वमुपाख्यानमश्रुतं परमाद्भुतम्। कृत्वा मनसि तत् सर्वं साम्प्रतं वक्तुमर्हसि॥
त्र जन्मभूमौ विश्वे पुण्यक्षेत्रे च भारते। परिपूर्णतमस्यापि कृष्णस्य परमात्मन
न्म कस्यगृहेलब्धंपुण्येपुण्यवतो मुने। सुतं प्रसूता का धन्या मान्यापुण्यवतीसत
गाविर्भूय च तद्गेहे क्व गतः केन हेतुना। गत्वा किं कृतवांस्तत्र कथं वा पुनराग

भारावतरणं केन प्रार्थितो गोश्चकार सः।
विधाय किं वा सेतुञ्च गोलोकं गतवान् पुनः॥ ३४॥

तीदमन्यदाख्यानं पुराणं श्रुतिदुर्लभम्। दुर्विज्ञेयं मुनीनाञ्च मनोनिर्मलकारणम्॥

स्वमानाद् यन्मया पृष्टमपृष्टं वा शुभाशुभम्। सद्यो वैराग्यजननं तन्मे व्याख्यातु

शिष्यपृष्टमपृष्टं वा व्याख्यानं कुरुते च यः।

स सद्गुरुः सतां श्रेष्ठो योग्यायोग्ये च यः समः ॥ ३७ ॥

सौतिरुवाच।

सर्वं कुशलमस्माकं त्वत्पादपद्मदर्शनात्। सिद्धक्षेत्रादागतोऽहं यामि नारायण

दृष्ट्वा विप्रसमूहञ्च नमस्कर्तुमिहागतः। द्रष्टुञ्च नैमिषारण्यं पुण्यदञ्चापि भारते

देवं विप्रं गुरुं दृष्ट्वा न नमेद् यस्तु संभ्रमात्।

स कालसूत्रं व्रजति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४० ॥

हरिर्ब्राह्मणरूपेण शश्वद् भ्रमति भारते। सुकृती प्रणमेत् पुण्यात् ब्राह्मणं हरिरूपि

भगवन्! यत्त्वया पृष्टं ज्ञातं सर्वमभीप्सितम्। सारभूतं पुराणेषु ब्रह्मवैवर्त्तमुत्त

पुराणोपपुराणानां वेदानां भ्रमभञ्जनम्। हरिभक्तिप्रदं सर्वतत्त्वज्ञानविवर्द्धनम् ॥

कामिनां कामदञ्चेदं मुमुक्षूणाञ्च मोक्षदम्। भक्तिप्रदं वैष्णवानां कल्पवृक्षस्वरू

ब्रह्मखण्डे सर्वबीजपरब्रह्मनिरूपणम्। ध्यायन्ते योगिनः सन्तो वैष्णवा यत् परा

वैष्णवा योगिनः सन्तो न च भिन्नाश्च शौनक।

स्वज्ञानपरिपाकेन भवन्ति जीविनः क्रमात् ॥ ४६ ॥

सन्तो भवन्ति सत्सङ्गाद् योगिसङ्गेन योगिनः।

वैष्णवा भक्तसङ्गेन क्रमात् सद्योगिनः पराः ॥ ४७ ॥

यत्रोद्भवश्च देवानां देवीनां सर्वजीविनाम्। ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शु

जीवकर्मविपाकस्य शालग्रामनिरूपणम्। तासाञ्च कवचस्तोत्रमन्त्रपूजानिरूपणम्

प्रकृतेर्लक्षणं तत्र कलांशानां निरूपणम्। कीर्त्तेरत्कीर्त्तनं तासां प्रभावस्य निरूपि

सुकृतीनां दुष्कृतीनां यद् यत् स्थानं शुभाशुभम्।

वर्णनं नरकाणाञ्च रोगाणां मोक्षणं ततः ॥ ५१ ॥

ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्त्तितम्। अतीवापूर्वचरितं श्रुतिवेदसुदुर्लभम्।

[illegible] । निगूढकवचस्तोत्रमन्त्रतन्त्रनिरूपणम् ॥ ५२ ॥

श्रीकृष्णजन्मखण्डश्च कीर्त्तितश्च ततः परम् । भारते पुण्यक्षेत्रे च श्रीकृष्णजन्म कर्म च
भुवो भारावतरणं क्रीडाकौतुकमङ्गलम् । सतां सेतुविधानञ्च जन्मखण्डे निरूपितम् ॥
इदं ते कथितं विप्र ! पुराणप्रवरं वरम् । चतुःखण्डपरिमितं सर्वधर्मनिरूपितम् ॥ ५६ ॥
सर्वेषामीप्सिततमं सर्वाशापूर्णकारणम् । ब्रह्मवैवर्त्तकं नाम सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ ५७ ॥
सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मितम् । विवृतं ब्रह्मकात्स्न्यंञ्च कृष्णेन यत्र शौनक ! ॥
ब्रह्मवैवर्त्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः । इदं पुराणसूत्रञ्च पुरा दत्तञ्च ब्रह्मणे ॥ ५६ ॥
निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना । महातीर्थे पुष्करे च दत्तं धर्माय ब्रह्मणा ॥
धर्मेण दत्तं पुत्राय प्रीत्या नारायणाय च । नारायणर्षिर्भगवान् प्रददौ नारदाय च ॥६१
नारदो व्यासदेवाय प्रददौ जाह्नवीतटे । व्यासः पुराणसूत्रं तत् संव्यस्य विपुलं महत् ॥
महां ददौ सिद्धक्षेत्रे पुण्यदे सुमनोहरम् । मयेदं कथितं ब्रह्मन् ! तत् समग्रं निशामय ॥
अष्टादशसहस्रन्तु व्यासेनेदं पुराणकम् । पुराणकात्स्न्यं श्रवणे यत् फलं लभते नरः ।
तत् फलं लभते नूनमध्यायश्रवणेन च ॥ ६४ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डेऽनुक्रमणिका नाम प्रथमोऽध्यायः ।

---

## द्वितीयोऽध्यायः ।

### परब्रह्मनिरूपणम्

शौनकउवाच ।

किमपूर्वं श्रुतं सौते ! परमाद्भुतमीप्सितम् । सर्वं कथय संव्यस्य ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् ॥१

सौतिरुवाच ।

वन्देगुरोःपादपद्मंव्यासस्यामिततेजसः । हरिदेवान् द्विजानत्वाधर्मान् वक्ष्येसनातनान्
यत् श्रुतं व्यासवक्त्रेण ब्रह्मखण्डमनुत्तमम् । अज्ञानान्धतमोध्वंसि ज्ञानवर्त्मप्रदीपकम् ॥

ज्योतिःसमूहं प्रलये पुरासीत् केवलं द्विज ! । सूर्यकोटिप्रभं नित्यमसंख्यविश्वकार

स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत् ।

ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम् ॥ ५ ॥

तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज । त्रिकोटियोजनायामविस्तीर्णं मण्डलाक

तेजःस्वरूपं सुमहद्रत्नभूमिमयं परम् । अदृश्यं योगिभिः स्वप्ने दृश्यं गम्यञ्च वैष्णवैः

योगेन धृतमीशेन चान्तरीक्षस्थितं परम् । आधिव्याधिजरामृत्युशोकभीतिविवर्जितम्

सद्रत्नरचितासंख्यमन्दिरैः परिशोभितम् । लये कृष्णयुतं सृष्टौ गोपगोपीभिरावृतम्

तदधो दक्षिणे सव्ये पञ्चाशत्कोटियोजनात् ।

वैकुण्ठं शिवलोकञ्च तत्समं सुमनोहरम् ॥ १० ॥

कोटियोजनविस्तीर्णं वैकुण्ठं मण्डलाकृति ।

लये शून्यञ्च सृष्टौ च लक्ष्मीनारायणान्वितम् ॥ ११ ॥

चतुर्भुजैः पार्षदैश्च जरामृत्य्वादिवर्जितम् । सव्ये च शिवलोकञ्च कोटियोजनविस्तृत

लये शून्यञ्च सृष्टौ च सपार्षदशिवान्वितम् । गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीवसुमनोहर

परमाह्लादकं शश्वत् परमानन्दकारणम् । ध्यायन्ते योगिनः शश्वद् योगेन ज्ञानचक्षु

तद्वैवानन्दजनकं निराकारं परात्परम् । तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीवसुमनोहरम् ॥ १५

नवीननीरदश्यामं रक्तपङ्कजलोचनम् । शारदीयपार्वणेन्दुशोभातिलोचनाननम् ॥ १६

कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोरमम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं पीतवाससम्

सद्रत्नभूषणौघेन भूषितं भक्तवत्सलम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् ॥१८

श्रीवत्सवक्षःसंभ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् । सद्रत्नसाररचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम्

रत्नसिंहासनस्थञ्च वनमालाविभूषितम् । तमेव परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २०

स्वेच्छामयं सर्वबीजं सर्वाधारं परात्परम् । किशोरवयसं शश्वद्गोपवेशविधायकम्

कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्यं भक्तानुग्रहकातरम् । निरीहं निर्विकारञ्च परिपूर्णतमं विभुम्

रासमण्डलमध्यस्थं शान्तं रासेश्वरं परम् । मङ्गल्यं मङ्गलार्हञ्च मङ्गलं मङ्गलप्रदम्

परमानन्दबीजञ्च सत्यमक्षरमव्ययम् । सर्वसिद्धीश्वरं सर्वसिद्धिरूपञ्च सिद्धिदम् ॥२४

तैः परमीशानं निर्गुणं नित्यविग्रहम्। आद्यं पुरुषमव्यक्तं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्॥ २५॥

सत्यं स्वतन्त्रमेकञ्च परमात्मस्वरूपकम्।

ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत् परमायणम्॥ २६॥

रूपं परं बिभ्रद्भगवानेक एव सः। दिग्भिश्च नभसा सार्द्धं शून्यं विश्वं ददर्श ह॥

इतिश्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे परब्रह्मनिरूपणं नाम

द्वितीयोऽध्यायः।

---

# तृतीयोऽध्यायः।

## सृष्टिनिरूपणम्

सौतिरुवाच।

ा शून्यमयं विश्वं गोलोकञ्च भयङ्करम्। निर्जन्तु निर्जलं घोरं निर्वातं तमसावृतम्
ैलसमुद्रादिविहीनं विरूपाकृतम्। निर्मूर्त्तिकञ्च निर्धातु निःशस्यं निस्तृणं द्विज॥
च्य मनसा सर्वमेक एवासहायवान्। स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयःप्रभुः
र्भूवुः सर्वादौ पुंसो दक्षिणपार्श्वतः। भवकारणरूपाश्च मूर्त्तिमन्तस्त्रयो गुणाः
महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्र एव च। रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चैवेतिसञ्ज्ञकाः॥ ५॥
र्भूव तत्पश्चात् स्वयं नारायणः प्रभुः। श्यामो युवा पीतवासा वनमाली चतुर्भुजः
शङ्खगदापद्मधरः स्मेरमुखाम्बुजः। रत्नभूषणभूषाढ्यः शार्ङ्गी कौस्तुभभूषणः॥ ७॥
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः। शारदेन्दुप्रभायुष्टमुक्तेन्दुसुमनोहरः॥
यप्रभायुष्टरूपलावण्यसुन्दरः। श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः॥ ९॥

नारायण उवाच।

ण्यं वरदं वराहं वरकारणम्। कारणं कारणानाञ्च कर्म तत्कर्मकारणम्। १०।
पस्तत्फलदं शश्वत्तपस्विनाञ्च तापसम्। वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम्।

रूपं कामदञ्च कामदं कामकारणम्। सर्वं सर्वेश्वरं सर्वबीजरूपमनुत्तमम्
वेदरूपं वेदबीजं वेदोक्तफलदं फलम्। वेदज्ञं तद्विधानज्ञं सर्ववेदविदां वरम्॥१९॥
इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवास तदाज्ञया। रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः
नारायणकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः। त्रिसन्ध्यञ्च पठेन्नित्यं पापं तस्य न विद्य
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम्। भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धनं भ्रष्टधनो ल
कारागारे विपद्ग्रस्तः स्तोत्रेणानेन मुच्यते। रोगात् प्रमुच्यते रोगी ध्रुवं श्रुत्वा च संयतः।

इति ब्रह्मवैवर्त्ते नारायणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच।

आविर्बभूव तत्पश्चादात्मनो वामपार्श्वतः। शुद्धस्फटिकसङ्काशः पञ्चवक्त्रो दिगम्ब
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरो वरः। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः॥२१॥
त्रिशूलपट्टिशधरो जपमालाकरः परः। सर्वसिद्धेश्वरः सिद्धो योगिनाञ्च गुरोर्गुरुः।
मृत्योर्मृत्युरीश्वरश्च मृत्युर्मृत्युञ्जयः शिवः। ज्ञानानन्दो महाज्ञानी महाज्ञानप्रदः पर
पूर्णचन्द्रप्रभामुष्टसुखदृश्यो मनोहरः। वैष्णवानाञ्च प्रवरः प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा॥२२॥
श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रोऽतिगद्गद

महादेव उवाच।

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानाञ्च वन्दे तमपराजितम्॥२४॥

विश्वं विश्वेश्वरेशञ्च विश्वेशं विश्वकारणम्।

विश्वाधारञ्च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥२५॥

विश्वरक्षाकारणञ्च विश्वघ्नं विश्वजं परम्। फलबीजं फलाधारं फलञ्च तत्फलप्रदम्॥
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम्। इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे।

नारायणञ्च संभाष्य स उवास तदाज्ञया॥२७॥

इति शम्भुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयश्च पदे पदे।
सन्ततं वर्द्धते मित्रं धनमैश्वर्यमेव च। शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च॥२९

इति ब्रह्मवैवर्त्ते शम्भुकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य नाभिपङ्कजात् । महातपस्वी वृद्धश्च कमण्डलुकरो वरः शुक्लवासाः शुक्लदन्तः शुक्लकेशश्चतुर्मुखः । योगीशः शिल्पिनामीशः सर्वेषां जनको गुरुः तपसां फलदाता च प्रदातासर्वसम्पदाम् । स्रष्टा विधाता कर्त्ताचहर्त्ताचसर्वकर्मणाम् ॥ धाता चतुर्णां वेदानां ज्ञाता वेदप्रसूपतिः । शान्तः सरस्वतीकान्तः सुशीलश्चकृपानिधिः श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भक्तिनम्रात्मकन्धरः

ब्रह्मोवाच ।

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम् । अव्यक्तमव्ययंव्यक्तं गोपवेशविधायिनम् ।३५। किशोरवयसंशान्तं गोपीकान्तं मनोहरम् । नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥ वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम् । रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम् इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे । नारायणेशौ संभाष्य स उवास तदाज्ञया ॥

इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत् ॥ ३९ ॥
भक्तिर्भवति गोविन्दे पुत्रपौत्रविवर्द्धनी ।
अकीर्त्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्त्तिर्वर्द्धते चिरम् ॥ ४० ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् वक्षसः परमात्मनः । सस्मितः पुरुषः कश्चित् शुक्लवर्णोजटाधरः सर्वसाक्षी च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्वकारणम् । समः सर्वत्र सदयो हिंसाकोपविवर्जितः धर्मज्ञानयुतो धर्मो धर्मिष्ठो धर्मदो भवेत् । स एव धर्मिणां धर्मः परमात्मकलोद्भवः ॥ श्रीकृष्णपुरतः स्थित्वा प्रणम्य दण्डवद् भुवि । तुष्टाव परमात्मानं सर्वेशं सर्वकामदम् कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम् । गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम् ॥ गोपेश्वरञ्च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम् । गवामीशञ्च गोष्ठस्थंगोवत्सपुच्छधारिणम् गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुषोत्तमम् । वन्दे नवघनश्यामं रासवासं मनोहरम् ॥

ससुखास्यं समुत्तिष्ठन् रत्नसिंहासने वरे । ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान् सम्भाष्य च उवास ह । चतुर्विंशति नामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च । यः पठेत् प्रातरुत्थाय स सुखी सर्वतो जयी । मृत्युकाले हरेर्नाम तस्य स्मृतिं भवेद् ध्रुवम् । स यात्यन्ते हरेःस्थानं हरिदास्यं भवेद् ध्रुवम् । नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मे तद्रतिर्भवेत् । चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत् करगतं भवेत् । तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भयेन च । भयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोरगाः ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव कन्यैका धर्मस्य वामपार्श्वतः । मूर्त्तिर्मूर्त्तिमती साक्षात् द्वितीयकमलालया । आविर्बभूव तत्पश्चात् मुखतः परमात्मनः । एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी । कोटिपूर्णेन्दुशोभाढ्या शरत्पङ्कजलोचना । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥ सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणाञ्च सुन्दरी । श्रेष्ठा श्रुतीनां शास्त्राणां विदुषां जननी परा । वागधिष्ठातृदेवी सा कवीनामिष्टदेवता । शुद्धसत्त्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ॥ गोविन्दपुरतः स्थित्वा जगौ प्रथमतः शुभम् । तन्नामगुणकीर्त्तिञ्च वीणया सा ननर्त च । कृतानि यानि कर्माणि जन्मे जन्मे युगे युगे । तानिसर्वाणि हरिणा तुष्टाव संपुटाञ्जलिः ।

सरस्वत्युवाच ।

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम् । रासाधिष्ठातृदेवञ्च वन्दे रासविनोदिनम् ॥ रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम् । रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तंमनोहरम् । प्रणम्य तं तानीत्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती । उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने वरे ॥

इति वाणीकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
बुद्धिमान् धनवान् सोऽपि विद्यावान् पुत्रवान् सदा ॥ ६४ ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम् ।

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव मनसः कृष्णस्य परमात्मनः ।

एका देवी गौरवर्णा रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ६५ ॥
पीतवस्त्रपरीधाना सस्मिता नवयौवना । सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्फलप्रदा ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥ ६६ ॥
सा हरेःपुरतः स्थित्वा परमात्मानमीश्वरम् । तुष्टाव प्रणता साध्वी भक्तिनम्रात्मकन्धरा

महालक्ष्मीरुवाच ।

सत्यस्वरूपं सत्येशं सत्यबीजं सनातनम् । सत्याधारं च सत्यज्ञं सत्यमूलं नमाम्यहम् ॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिं नत्वा सा चोवास सुखासने ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा भासयन्ती दिशो दश ॥ ६६ ॥
आविर्बभूव तत्पश्चात् बुद्धेश्च परमात्मनः । सर्वाधिष्ठातृदेवी सा मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्यकोटिसमप्रभा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या शरत्पङ्कजलोचना ॥७१
रक्तवस्त्रपरीधाना रत्नाभरणभूषिता । निद्रातृष्णा क्षुत्पिपासा दया श्रद्धाक्षमादिकाः ॥
तासाञ्च सर्वशक्तीनामीशाधिष्ठातृदेवता । भयङ्करी शतभुजा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी ॥
आत्मनः शक्तिरूपा सा जगतां जननीपरा । त्रिशूलशक्तिशार्ङ्गञ्च धनुः खड्गशराणि च
शङ्खचक्रगदापद्ममक्षमालां कमण्डलुम् । वज्रमङ्कुशपाशञ्च भुशुण्डीदण्डतोमरम् ॥७५॥
नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं रौद्रं पाशुपतं तथा । पार्जन्यं वारुणं वाह्नं गान्धर्वं बिभ्रती सती
कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं मुदान्विता ॥ ७६ ॥

प्रकृतिरुवाच ।

अहं प्रकृतिरीशानी सर्वेशा सर्वरूपिणी । सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत् ॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रा त्वमेवजगतांपतिः । गतिश्च पाता स्रष्टा च संहर्त्ता च पुनर्विधिः
परमानन्दरूपं त्वां वन्दे चानन्दपूर्वकम् । चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत् ॥७९॥
तस्यप्रभावमतुलंवर्णितुं कः क्षमोविभो ! । भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः
चराचरांश्च विश्वेषु देवान् ब्रह्मपुरोगमान् । मद्विधाः कति वादेवीःस्रष्टुं शक्तश्चलीलया
परिपूर्णतमं स्वीड्यं वन्दे चानन्दपूर्वकम् ।
महान् विराट् यत्कलांशो विश्वासंख्याश्रयो विभो ! ॥
वन्दे चानन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ८२ ॥

यं स्तोतुमक्षमा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
वेदा अहञ्च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम् ॥ ८३ ॥
वेदाश्च विदुषां श्रेष्ठाः स्तोतुं शक्ता न सज्जनाः ।
निर्लक्ष्यं कः क्षमः स्तोतुं तं निरीहं नमाम्यहम् ॥ ८४ ॥

इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे । उवास नत्वा श्रीकृष्णं तुष्टुवुस्तांसुरे
इति दुर्गाकृतं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः । यः पठेदर्चनाकाले स जयी सर्वतः सु

दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन ।
भवाब्धौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरेः पुरम् ॥ ८७ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे
सृष्टिनिरूपणे दुर्गास्तोत्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

---

# चतुर्थोऽध्यायः ।

## सृष्टि निरूपणम्

सौतिरुवाच ।

आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य रसनाग्रतः । शुद्धस्फटिकसङ्काशा देवी चैका मनो
शुक्लवस्त्रपरीधाना सर्वालङ्कारभूषिता । बिभ्रती जपमालाञ्च सा सावित्री प्रकीर्ति
सा तुष्टाव पुरः स्थित्वा परं ब्रह्म सनातनम् । पुटाञ्जलिपरा साध्वी भक्तिनम्रात्मक

सावित्र्युवाच ।

नमामि सर्वबीजं त्वां ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । परात्परतरं श्यामं निर्विकारं निर
इत्युक्त्वा सस्मिता देवी रत्नसिंहासने वरे । उवास श्रीहरिं नत्वा पुनरेव श्रुतिप्र
आविर्बभूव तत्पश्चात् कृष्णस्य परमात्मनः । मानसाच्च पुमानेकस्तप्तकाञ्चनसन्नि
मनो मथ्नाति सर्वेषां पञ्चबाणेन कामिनाम् । तन्नाम मन्मथं तेन प्रवदन्ति मनीषि

तस्य पुंसोवामपार्श्वात् कामस्य कामिनी वरा । बभूवातीवललिता सर्वेषां मोहकारिणी
रतिर्बभूव सर्वेषां तां दृष्ट्वा सस्मितां सतीम् । रतीति तेन तन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः
हरिं स्तुत्वा तया सार्द्धंसउवासहरेः पुरः । रत्नसिंहासने रम्ये पञ्चबाणो धनुर्द्धरः ॥१०
मारणं स्तम्भनञ्चैव जृम्भनं शोषणन्तथा । उन्मादनं पञ्चबाणान् पञ्चबाणो बिभर्त्ति सः
बाणांस्त्विक्षेप सर्वांश्च कामो बाणपरीक्षया । सद्यः सर्वे सकामाश्च बभूवुरीश्वरेच्छया
रतिंदृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह । तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया

वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ।
कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥
कृष्णस्तदर्द्दनं दृष्ट्वा ससर्जापः स्वलीलया ।
निःश्वासवायुना सार्द्धं मुखबिन्दुं समुद्गिरन् ॥ १५ ॥

विश्वौघं प्लावयामास मुखबिन्दुजलं द्विज । तस्य किञ्चिज्जलकणं वह्निं शान्तंचकार ह ॥
ततः प्रभृति तेनाग्निस्तोयान्निर्वाणतां व्रजेत् । आविर्भूतः पुमानेकस्ततस्तदधिदेवता ॥
उत्तस्थौतज्जलादेकःपुमान्सवरुणःस्मृतः । जलाधिष्ठातृदेवोऽसौसर्वेषां यादसाम्पतिः ॥
आविर्बभूव कन्यैका तद्वह्नेर्वामपार्श्वतः । सा स्वाहा वह्निपत्नीं तां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

जलेशस्य वामपार्श्वात् कन्या चैका बभूव सा ।
वरुणानीति विख्याता वरुणस्य प्रिया सती ॥ २० ॥
बभूव पवनः श्रीमान् विभोर्निःश्वासवायुना ।
स प्रमाणश्च सर्वेषां निःश्वासस्तत्कलोद्भवः ॥ २१ ॥

तस्यवायोर्वामपार्श्वात् कन्याचैकाबभूव ह । वायोःपत्नीसाचदेवीवायवीपरिकीर्त्तिता ॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतःपातो बभूव ह । जले तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि ॥२३॥
सहस्रवत्सरान्ते तद्डिम्बरूपं बभूव ह । ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वौघाधार एव सः ॥
यस्यैकलोमविवरेविश्वैकस्यव्यवस्थितिः । स्थूलात् स्थूलतमःसोऽपिमहान्नान्यस्ततःपरः
स एव षोडशांशोऽपिकृष्णस्यपरमात्मनः । महाविष्णुः स विज्ञेयःसर्वाधारःसनातनः ॥
महार्णवे शयानः स पद्मपत्रं यथा जले । बभूवतुस्तौ द्वौ दैत्यौ तस्य कर्णमलोद्भवौ ॥

तौ जलौघसमुत्थाय ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ । नारायणश्च भगवान् जघ्ने तौ जघनेऽ॥
बभूव मेदिनी कृत्स्ना कार्त्स्न्येन मेदसा तयोः ।
तत्रैव सन्ति विश्वानि सा च देवी वसुन्धरा ॥ २६ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे
चतुर्थोऽध्यायः ।

## पञ्चमोऽध्यायः ।

### सृष्टिप्रकारवर्णनम्

शौनक उवाच ।

गोगोपगोप्यो गोलोके किं नित्याः किं नु कल्पिताः ।
मम सन्देहभेदार्थं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

सौतिरुवाच ।

सर्वादिसृष्टौ ताः यत्कृताःप्रलये प्रलये स्थिताः । सर्वादिसृष्टिकथनं यन्मयाकथितंद्विज।
सर्वादिसृष्टौ कल्पानां च नारायणमहेश्वरौ । प्रलयेप्रलयेऽव्यक्तौ स्थितौ तौ प्रकृतिस्तथा।
सर्वादिब्रह्मकल्पस्य चरितं कथितं द्विज । वाराहपाद्मकल्पौ द्वौ कथयिष्यामिश्रोष्यसि।
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च कल्पाश्च त्रिविधा मुने । यथा युगानि चत्वारि क्रमेण कथितानि च।
सत्यत्रेताद्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् । त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्युगैर्दिव्यं युगं स्मृतम्॥
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । चतुर्दशसु मनुषु गतेषु ब्रह्मणो दिनम्॥७॥
त्रिशतैश्च षष्ट्यधिकैर्दिनैर्वर्षञ्च ब्रह्मणः । अष्टोत्तरं वर्षशतं विधेरायुर्निरूपितम्॥ ८ ॥
एतन्निमेषकालन्तु कृष्णस्य परमात्मनः । ब्रह्मणश्चायुषा कल्पः कालविद्भिर्निरूपितः॥
क्षुद्रकल्पा बहुतरास्ते संवर्त्तादयः स्मृताः । सप्तकल्पान्तजीवी च मार्कण्डेयश्च तन्मतः

ब्रह्मणश्च दिनेनैव स कल्पः परिकीर्तितः । विधेश्च सप्तदिवसे मुनेरायुर्निरूपितम् ॥११
ब्राह्मवाराहपाद्माश्च त्रयः कल्पा निरूपिताः । कल्पत्रये यथा सृष्टिः कथयामि निशामय

ब्राह्मे च मेदिनीं सृष्ट्वा स्रष्टा सृष्टिं चकार सः ।
मधुकैटभयोश्चैव मेदसा चाज्ञया प्रभोः ॥ १३ ॥

वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात् । विष्णोर्वराहरूपस्य द्वारा चातियत्नतः
पाद्मे विष्णोर्नाभिपद्मे स्रष्टा सृष्टिं विनिर्ममे । त्रिलोकीं ब्रह्मलोकान्तां नित्यलोकत्रयं विना ॥
एतत्तु कालसंख्यानमुक्तं सृष्टिनिरूपणे । किञ्चिन्निरूपणं सृष्टेः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

शौनक उवाच ।

अतःपरन्तु गोलोके गोलोकेशो महान् विभुः ।
एतान् सृष्ट्वा किम्प्रकार तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

सौतिरुवाच ।

एतान् सृष्ट्वा जगामासौ सुरम्यं रासमण्डलम् । एतैः समेतो भगवानतीवकमनीयकम्
रम्याणां कल्पवृक्षाणां मध्येऽतीवमनोहरम् । सुविस्तीर्णञ्च सुसमं सुस्निग्धं मण्डलाकृतम् ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमैश्च सुसंस्कृतम् । दधिलाजाशुक्लधान्यदूर्वापर्णपरिप्लुतम् ॥२०॥
पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तनवचन्दनपल्लवैः । संयुक्तरम्भास्तम्भानां समूहैः परिवेष्टितम् ॥ २१ ॥
सद्रत्नसारनिर्माणमण्डपानां त्रिकोटिभिः । रत्नप्रदीपज्वलितैः पुष्पधूपाधिवासितैः ॥२२
शृङ्गारार्हभोगवस्तुसमूहपरिवेष्टितैः । अतीवललिताकल्पतल्पयुक्तैः सुशोभितम् ॥ २३॥

तत्र गत्वा च तैः सार्द्धं समुवास जगत्पतिः ।
दृष्ट्वा रासं विस्मितास्ते बभूवुर्मुनिसत्तम ! ॥ २४ ॥

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः । धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे
रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः । तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ॥

प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ २७ ॥

देवी षोडशवर्षीया नवयौवनसंयुता । वह्निशुद्धांशुकाधाना सस्मिता सुमनोहरा ॥२८॥

…कोमलाङ्गी ललिता सुन्दरीषु च सुन्दरी। बृहन्नितम्बभारार्त्ता पीनश्रोणिपयोधरा ॥
…बन्धुजीवजितारक्तसुन्दरोष्ठाधरा वरा। मुक्तापंक्तिजिता चारुदन्तपंक्तिर्मनोहरा ॥२७॥
…शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभामुष्टशुभानना। चारुसीमन्तिनी चारुशारत्पङ्कजलोचना ॥३१॥
…खगेन्द्रचञ्चुविजितचारुनासा मनोहरा। स्वर्णगेण्डूकविजिते गण्डयुग्मे च बिभ्रती ॥
…ती चारुकर्णौ च रत्नाभरणभूषिते। चन्दनागुरुकस्तूरीयुक्तकुङ्कुमबिन्दुभिः ॥ ३३ ॥
…सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तसुकपोला मनोहरा। सुसंस्कृतं केशपाशं मालतीमाल्यभूषितम् ॥ ३४ ॥
…सुगन्धकबरीभारं सुन्दरं दधती सती। स्थलपद्मप्रभामुष्टं पादयुग्मञ्च बिभ्रती ॥ ३५ ॥
…गमनं कुर्वती सा च हंसखञ्जनगञ्जनम्। सद्रत्नसारनिर्माणां वनमालां मनोहराम् ॥३६॥
…रं हीरकनिर्माणं रत्नकेयूरकङ्कणम्। सद्रत्नसारनिर्माणं पाशकं सुमनोहरम् ॥ ३७ ॥
…अमूल्यरत्ननिर्माणं क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्। नानाप्रकारचित्राढ्यं सुन्दरं परिबिभ्रती ॥३८॥

सा च सम्भाष्य गोविन्दं रत्नसिंहासने वरे।
उवास सस्मिता भर्तुः पश्यन्ती मुखपङ्कजम् ॥ ३९ ॥

…तस्याश्च लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गनागणः। आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्समः।
…लक्षकोटिपरिमितःशश्वत्सुस्थिरयौवनः। संख्याविद्भिश्चसंख्यातोगोलोकेगोपिकागणः
…कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यो गोपगणोमुने। आविर्बभूव रूपेण वेशेनैव च तत्समः।
…त्रिंशत्कोटिपरिमितःकमनीयोमनोहरः। संख्याविद्भिश्चसंख्यातोवल्लवानांगणःश्रुतौ।
…कृष्णस्य लोमकूपेभ्यः सद्यश्चाविर्बभूव ह। नानावर्णो गोगणश्च शश्वत्सुस्थिरयौवन…

बलीवर्दाः सुरभ्यश्च वत्सा नानाविधाःशुभाः।
अतीवललिताः श्यामा बह्व्यश्च कामधेनवः ॥ ४५ ॥

…तेषामेकं बलीवर्दं कोटिसिंहसमं बले। शिवाय प्रददौ कृष्णो वाहनाय मनोहरम् ॥ ४…
…कृष्णाङ्घ्रिनखरन्ध्रेभ्यो हंसपंक्तिर्मनोहरा। आविर्बभूव सहसा स्त्रीपुंवत्ससमन्विता।
…तेषामेकं राजहंसं महाबलपराक्रमम्। वाहनाय ददौ कृष्णो ब्रह्मणे च तपस्विने ॥४८
…वामकर्णस्य विवरात् कृष्णस्य परमात्मनः। गणः श्वेततुरङ्गानामाविर्भूतो मनोहरः।
… धर्माय वाहनाय च। ददौ गोपाङ्गनेशश्च संप्रीत्या सुरसंसदि।

रस्य कर्णस्य विवरात् पुंसश्च सुरसंसदि । आविर्भूता सिंहपंक्तिर्महाबलपराक्रमा ॥५१॥
तेषामेकं ददौ कृष्णः प्रकृत्यै परमादरम् । अमूल्यरत्नाल्यश्च वरं यदभिवाञ्छितम् ॥
कृष्णो योगेन योगीन्द्रश्चकार रथपञ्चकम् । शुद्धरत्नेन्द्रनिर्माणं मनोयायि मनोहरम् ॥
शतयोजनमूर्ध्वं च प्रस्थे च शतयोजनम् । लक्षचक्रं वायुवहं लक्षक्रीडागृहान्वितम् ॥
शृङ्गारार्हभोगवस्तुतल्पासंख्यसमन्वितम् । रत्नप्रदीपलक्षाणां राजिभिश्च विराजितम् ॥
नानाचित्रविचित्राढ्यं सद्रत्नकलसोज्ज्वलम् । रत्नदर्पणभूषाढ्यं शोभितं श्वेतचामरैः ॥
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रैर्मालाजालैर्विभूषितम् । मणीन्द्रमुक्तामाणिक्यहीराहारविराजितम् ॥
तप्तकाञ्चनवर्णरत्नेन्द्रसारनिर्माणकृत्रिमैः । पङ्कजानामसंख्यैश्च सुन्दरैश्च सुशोभितम् ॥५८॥
ददौ नारायणायैकं तेषां मध्ये द्विजोत्तम ! । एकं दत्त्वा राधिकायै रक्ष शेषमात्मने ॥
आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशात्ततः परम् । पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह ॥६०
आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन ते गुह्यकाः स्मृताः ।
यः पुमान् स कुवेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वरः ॥ ६१ ॥
पुत्र कन्यका चैका कुवेरवामपार्श्वतः । कुवेरपत्नी सा देवी सुन्दरीणां मनोरमा ॥६२
प्रेतपिशाचाश्चकुष्माण्डब्रह्मराक्षसाः । वेताला विकृतास्तस्याविर्भूता गुह्यदेशतः ॥६३
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणो वनमालिनः । पीतवस्त्रपरीधानाः सर्वे श्यामचतुर्भुजाः ॥ ६४ ।
किरीटिनः कुण्डलिनो रत्नभूषणभूषिताः । आविर्भूताःपार्श्वदाश्च कृष्णस्यमुखतो मुने ॥
चतुर्भुजान् पार्श्वदांश्च ददौ नारायणाय च । गुह्यकान्गुह्यकेशायभूतादीन्शङ्करायच ॥
द्विभुजाः श्यामवर्णाश्च जपमालाकरा वराः । ध्यायन्तश्चरणाम्भोजंकृष्णस्यसन्ततं मुदा
दास्ये नियुक्ता दासास्त्वैवार्घ्यमादाय यत्नतः ।
आविर्भूता वैष्णवाश्च सर्वे कृष्णपरायणाः ॥ ६८ ॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः । आविर्भूताः पादपद्मात् पादपद्मैकमानसाः ॥
आविर्बभूवुः कृष्णस्य दक्षनेत्राद्भयङ्कराः । त्रिशूलपट्टिशधरास्त्रिनेत्राश्चन्द्रशेखराः ॥७०।
दिगम्बरामहाकायाज्वलद्ग्निशिखोपमाः । ते भैरवामहाभागाःशिवतुल्याश्च तेजसा ॥
संहारकालाख्याअसितक्रोधभीषणाः । महाभैरवखद्वाङ्गावित्यष्टौ भैरवाः स्मृताः ।

विर्बभूव कृष्णस्य वामनेत्राद्भयङ्करः । त्रिशूलपट्टिशव्याघ्रचर्माम्बरगदाधरः ॥ ६३ ॥
अम्बरो महाकायस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः । स ईशानो महाभागो दिक्पालानामधीश्वरः
डाकिन्यश्चैव योगिन्यः क्षेत्रपालाः सहस्रशः ।
आविर्बभूवुः कृष्णस्य नासिकाविवरोदरात् ॥ ७५ ॥
पादिकोटिसंख्याताः दिव्यमूर्तिधरा वराः । आविर्भूवुः सहसा पुंसस्तु पृष्ठदेशत
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे ब्रह्मखण्डे
पञ्चमोऽध्यायः ।

---

## षष्ठोऽध्यायः ।

### सृष्टि प्रकरणम् ।

सौतिरुवाच ।

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादरञ्च सरस्वतीम् । नारायणाय प्रददौ रत्नेन्द्रमालया सह
सावित्रीं ब्रह्मणे प्रादान्मूर्त्तिं धर्माय सादरम् । रतिं कामायरूपाढ्यां कुवेराय मनोरम
अन्याश्च या या अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः ।
तस्मै तस्मै ददौ कृष्णस्तां तां रूपवतीं सतीम् ॥ ३ ॥
ततः शङ्करमाहूय सर्वेशो योगिनां गुरुम् । उवाच प्रियमित्येवं गृहाण सिंहवाहिनीम्
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य नीललोहितः । उवाच भीतः प्रणतः प्राणेशं प्रभुमच्युत

श्रीमहेश्वर उवाच ।

अधुनाहं न गृह्णामि प्रकृतिं प्राकृतो यथा ।
त्वद्भक्तयैकव्यवहितां दास्यमार्गविरोधिनीम् ॥ ६ ॥
तत्त्वज्ञानसमाच्छन्नां योगद्वारकपाटिकाम् ।
मुक्तीच्छाध्वंसरूपाञ्च सकामां कामवर्द्धनीम् ॥ ७

पस्याच्छन्नरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम् । भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम् ॥
रवद्धिबुद्धिजननींसद्बुद्धिच्छेदकारिणीम् । शश्वद्भिभागसाराञ्च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम्
च्छामि गृहिणींनाथ ! वरंदेहि मदीप्सितम् । यस्य यद्वाञ्छितंतस्मै तद्ददाति सदीश्वरः
द्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्द्धतेऽनिशम् । तृप्तिर्न जायते नामजपने पादसेवने ॥११
ाम पञ्चवक्त्रेण गुणञ्च मङ्गलालयम् । स्वप्ने जागरणे शश्वद्गायन् गायन् भ्रमाम्यहम्
कल्पकोटिकोटिञ्च तद्रूपध्यानतत्परम् । भोगेच्छाविषये नैव योगेतपसि मन्मनः॥१३
त्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्त्तने । सदोल्लसितमेवाञ्च विरतौ विरतिं लभेत् ॥१४
रणं कीर्त्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः । त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥
णञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । वरंवरेश ! देहीदं नवधा भक्तिलक्षणम् ॥१६
ष्टिसालोक्यसारूप्यसामीप्यसाम्यलीनताम् ,वदन्तिषड्विधांमुक्तिमुक्तामुक्तिविदोविभो
गमा लघिमाप्राप्तिः प्राकाम्यंमहिमातथा । ईशित्वञ्च वशित्वञ्च सर्वकामावसायिता
दूरश्रवणं परकायप्रवेशनम् । वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्त्तुमीशता ॥ १६ ॥
त्वञ्च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादशस्मृताः । योगास्तपांसि सर्वाणिददानि च व्रतानि च
कीर्त्तिर्वचः सत्यं धर्माण्यनशनानि च । भ्रमणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्यसुरार्चनम् ॥
र्चा दर्शनं सप्तद्वीपसप्तप्रदक्षिणम् । स्नानं सर्वसमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥ २२ ॥
ब्रह्मत्वञ्चैव रुद्रत्वं विष्णुत्वञ्च परंपदम् । अतोऽनिर्वचनीयानि वाञ्छनीयानि सन्तिवा
सर्वाण्येतानि सर्वेश ! कथितानिच यानिच । तवभक्तिकलांशस्य कलांनार्हन्ति षोडशीम्
शर्वस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णस्तं योगिनां गुरुम् । प्रहस्योवाच वचनं सत्यं सर्वं सुखप्रदम्

श्रीभगवानुवाच ।

त्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदांवर । कल्पकोटिशतं यावत् पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥
वरस्तपस्विनां त्वञ्च सिद्धानां योगिनांतथा । ज्ञानिनां वैष्णवानाञ्च सुराणाञ्च सुरेश्वर
ामरत्वं लभ भव ! भव मृत्युञ्जयो महान् । सर्वसिद्धिञ्च वेदांश्च सर्वज्ञत्वञ्च मद्वरात् ॥
असंख्यब्रह्मणां पातं लीलया वत्स ! द्रक्ष्यसि । अद्य प्रभृति ज्ञानेन तेजसा वयसा शिव

[illegible] आविर्बभूव कृष्णस्य [illegible] । [illegible] ॥
[illegible] । [illegible]

[illegible] सहस्रशः ।
आविर्बभूवुः कृष्णस्य [illegible] ॥ ७५ ॥

[illegible] । आविर्बभूवुः सहसा [illegible]

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे सृष्टिनिरूपणे ब्रह्मखण्डे
पञ्चमोऽध्यायः ।

---

## षष्ठोऽध्यायः ।

### सृष्टि प्रकरणम् ।

सौतिरुवाच ।

[illegible]य कृष्णो महालक्ष्मीं सादरञ्च सरस्वतीम् । नारायणाय प्रददौ रत्नेन्द्रमालया सह ॥ [illegible]
[illegible]ाविर्त्री ब्रह्मणे प्रादान्मूर्त्तिं धर्माय सादरम् । रतिं कामाय रूपाढ्यां कुबेराय मनोरमा[illegible]

अन्याश्च या या अन्येभ्यो याश्च येभ्यः समुद्भवाः ।
तस्मै तस्मै ददौ कृष्णस्तां तां रूपवतीं सतीम् ॥ ३ ॥

[illegible]ः शङ्करमाहूय सर्वेशो योगिनां गुरुम् । उवाच प्रियमित्येवं गृहाण सिंहवाहिनीम् ॥ [illegible]
[illegible]कृष्णस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य नीललोहितः । उवाच भीतः प्रणतः प्राणेशं प्रभुमच्युतम् [illegible]

श्रीमहेश्वर उवाच ।

अधुनाहं न गृह्णामि प्रकृतिं प्राकृतो यथा ।
त्वद्भक्त्यैकव्यवहितां दास्यमार्गविरोधिनीम् ॥ ६ ॥
तत्त्वज्ञानसमाच्छन्नां योगद्वारकपाटिकाम् ।
मुक्तीच्छाध्वंसरूपाञ्च सकामां कामवर्द्धनीम् ॥ ७ ॥

तपस्याच्छन्नरूपाञ्च महामोहकरण्डिकाम् । भवकारागृहे घोरे दृढां निगडरूपिणीम् ॥
शश्वद्बुद्धिजननींसद्बुद्धिच्छेदकारिणीम् । शश्वद्विभागसाराञ्च विषयेच्छाविवर्द्धिनीम्
नेच्छामि गृहिणींनाथ ! वरंदेहि मदीप्सितम् । यस्य यद्वाञ्छितंतस्मै तद्ददाति सदीश्वरः
त्वद्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्द्धतेऽनिशम् । तृप्तिर्न जायते नामजपने पादसेवने ॥११
त्वन्नाम पञ्चवक्त्रेण गुणञ्च मङ्गलालयम् । स्वप्ने जागरणे शश्वद्गायन् गायन् भ्रमाम्यहम्
आकल्पकोटिकोटिञ्च तद्रूपध्यानतत्परम् । भोगेच्छाविषये नैव योगेतपसि मन्मनः॥१३
त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्त्तने । सदोल्लसितमेवाञ्च विरतौ विरतिं लभेत् ॥१४
स्मरणं कीर्त्तनं नामगुणयोः श्रवणं जपः । त्वच्चारुरूपध्यानं त्वत्पादसेवाभिवन्दनम् ॥
समर्पणञ्चात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम् । वरंवरेश ! देहीदं नवधा भक्तिलक्षणम् ॥१६
सार्ष्टिसालोक्यसारूप्यसामीप्यसत्यलीनताम् ,वदन्तिषड्विधांमुक्तिमुक्तामुक्तिविदोविभो
अणिमा लघिमाप्राप्तिः प्राकाम्यंमहिमातथा । ईशित्वञ्च वशित्वञ्च सर्वकामावसायिता
सर्वज्ञदूरश्रवणं परकायप्रवेशनम् । वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्त्तुमीशता ॥ १६॥
अमरत्वञ्च सर्वाग्र्यं सिद्धयोऽष्टादशस्मृताः । योगास्तपांसि सर्वाणिदानानि च व्रतानि च
यशः कीर्त्तिर्वचः सत्यं धर्माण्यनशनानि च । भ्रमणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्यसुरार्चनम् ॥
सुरार्चा दर्शनं सप्तद्वीपसप्तप्रदक्षिणम् । स्नानं सर्वसमुद्रेषु सर्वस्वर्गप्रदर्शनम् ॥ २२ ॥
ब्रह्मत्वञ्चैव रुद्रत्वं विष्णुत्वञ्च परंपदम् । अतोऽनिर्वचनीयानि वाञ्छनीयानि सन्तिवा
सर्वाण्येतानि सर्वेश ! कथितानिच यानिच । तवभक्तिकलांशस्य कलांनार्हन्ति षोड़शीम्
शर्वस्य वचनं श्रुत्वा कृष्णस्तं योगिनां गुरुम् । प्रहस्योवाच वचनं सत्यं सर्व सुखप्रदम्

### श्रीभगवानुवाच ।

मत्सेवां कुरु सर्वेश शर्व सर्वविदांवर । कल्पकोटिशतं यावत् पूर्णं शश्वदहर्निशम् ॥
वरस्तपस्विनां त्वञ्च सिद्धानां योगिनांतथा । ज्ञानिनां वैष्णवानाञ्च सुराणाञ्च सुरेश्वर
अमरत्वं लभ भव ! भव मृत्युञ्जयो महान् । सर्वसिद्धिञ्च वेदांश्च सर्वज्ञत्वञ्च मद्वरात् ॥
असंख्यब्रह्मणां पातं लीलया वत्स ! द्रक्ष्यसि । अद्य प्रभृति ज्ञानेन तेजसा वयसा शिव

वेष यशसा महसा मन्त्रगां भव । प्राणानामधिकस्त्वञ्च न भक्तस्त्वत्परो मम ॥
ते सान्निध्ये प्रेयांस्त्वं मद्गीतामनसः । येत्वां निन्दन्ति पापिष्ठा मानहीना विचेतनाः
ते कालसूत्रेण यास्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ । कल्पकोटिशतान्ते च प्रतीप्स्यसि शिवो शिव

कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति निश्चितम्। इत्युक्त्वा शूलिने कृष्णो ददौ कल्पतरुं मनु
तत्त्वज्ञानं मृत्युञ्जयमुवाच सिंहवाहिनीम् ॥ ५४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अधुनातिष्ठ वत्से ! त्वं गोलोके मम सन्निधौ । कालेन भजिष्यसि शिवं शिवदञ्च शिवायन
तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूय वरानने ! । संहृत्य दैत्यान् सर्वांश्च भविता सर्वपूजिता
ततः कल्पविशेषे च सत्यं सत्ययुगे सति । भविता दक्षकन्या त्वं सुशीला शम्भुगेहि
ततः शरीरं संत्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया । मेनायां शैलभार्यायां भवितापार्वतीति च
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च विहरिष्यसि शम्भुना । पूर्णं ततः सर्वकालमभेदत्वं लभिष्यसि
काले सर्वेषु विश्वेषु महापूजा च पूजिते । भविता प्रतिवर्षे च शारदीया सुरेश्वरि !
ग्रामेषु नगरेष्वेव पूजिता ग्रामदेवता । भवती भवितेत्येवं नामभेदेन चारुणा ॥ ६१
मदाज्ञया शिवकृतैस्तन्त्रैर्नानाविधैरपि । पूजाविधिं विधास्यामि कवचं स्तोत्रसंयुतम्
भविष्यन्ति महान्तश्च तवैव परिचारकाः । धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धाश्च फलभागिनः
येषां मातर्भजिष्यन्ति पुण्यक्षेत्रे च भारते । तेषां यशश्च कीर्त्तिश्च धर्मैश्वर्य्यञ्च वर्द्धते
इत्युक्त्वा प्रकृतिं तस्यै मन्त्रमेकादशाक्षरम् । दत्त्वा सकामबीजञ्च मन्त्रराजमनुत्तमम्
चकारविधिना ध्यानंभक्तं भक्तानुकम्पया । श्रीमाया कामबीजाढ्यं ददौमन्त्रं दशाक्षर
सृष्ट्यौपयोगिकींशक्तिसर्वसिद्धिञ्चकामदाम्। तद्विशिष्टोत्कृष्टतत्त्वज्ञानंतस्यैददौविधु
त्रयोदशाक्षरं मन्त्रं दत्त्वा तस्मै जगत्पतिः । कवचं स्तोत्रसहितं शङ्कराय तथा द्विज
दत्त्वा धर्माय तं मन्त्रं सिद्धिज्ञानं तदेव च । कामाय वह्नये चैव कुवेराय च वायवे ॥
एवं कुवेरादिभ्यस्तु दत्त्वा मन्त्रादिकं परम् । विधिञ्चोवाच सृष्ट्यर्थं विधातुर्विधिरेवस

श्रीभगवानुवाच ।

मदीयञ्च तपः कृत्वा दिव्यं वर्षसहस्रकम् । सृष्टिं कुरु महाभाग विधे नानाविधां परा
इत्युक्त्वा ब्रह्मणे कृष्णो ददौमालां मनोरमाम् । जगाम सार्द्धं गोपीभिर्गोपैर्वृन्दावनंवन

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनक-संवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणं
नाम षष्ठोऽध्यायः ।

# सप्तमोऽध्यायः ।

## सृष्टिप्रकरणम् ।

सौतिरुवाच ।

यथा गणः कृत्वा सिद्धिं प्राप्य यथेप्सिताम् । ससृजे पृथिवीमादौ मधुकैटभमेदसा
जे पर्वतानष्टौ प्रधानान् सुमनोहरान् । क्षुद्रानसंख्यान् विभुः प्रधानाख्यान्निशामय
रश्चैव कैलासं मलयञ्च हिमालयम् । उदयञ्च तथाऽस्तञ्च सुवेलं गन्धमादनम् ॥
ह्मन् ससृजे सप्त महान् कतिविधा नदीः । वृक्षांश्च ग्रामनगरं समुद्राख्यान् निशामय
णेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलार्णवान् । लक्षयोजनमानेन द्विगुणांश्च परात्परान् ॥ ५ ॥
द्वीपांश्च तद्भूमिमण्डले कमलाकृते । उपद्वीपांस्तथा सप्त सीमाशैलांश्च सा च ॥
तोय विप्र द्वीपाख्यांपुरा या विधिना कृता । जम्बुशाककुशप्लक्षक्रौञ्चन्यग्रोधपुष्करान्
मेरुसु शृङ्गेषु ससृजेऽष्टौ पुरीः प्रभुः । अष्टानां लोकपालानां विहाराय मनोहराः ॥
ऽनन्तस्य नगरीं निर्माय जगतां पतिः । ऊर्ध्वे स्वर्गांश्च सप्तैव तेषामाख्यां निशामय
र्लोकञ्च भुवर्लोकं स्वर्लोकं सुमनोहरम् । जनलोकं तपोलोकं सत्यलोकञ्च शौनक
मूर्ध्नि ब्रह्मलोकं जरादिपरिवर्जितम् । तदूर्ध्वे ध्रुवलोकञ्च सर्वतः सुमनोहरम् ।
धः सप्तपातालान्निर्ममे जगदीश्वरः । स्वर्गातिरिक्तभोगाढ्यानधोऽधः क्रमतो मुने
तलं वितलञ्चैव सुतलञ्च तलातलम् । महातलञ्च पातालं रसातलमधस्ततः ॥ १२ ॥
सप्तद्वीपैः सप्तस्वर्गैः सप्तपातालसंज्ञकैः । एभिर्लोकैश्च ब्रह्माण्डं ब्रह्माधिकारमेव च ॥
वञ्चासंख्यब्रह्माण्डं सर्वं कृत्रिममेव च । महाविष्णोश्च लोमाञ्चविवरेषु च शौनक ।
तिविश्वेषु दिक्पाला ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सुरा नरादयः सर्वे सन्ति कृष्णस्य मायया
ह्माण्डगणनां कर्तुं न क्षमो जगतां पतिः । न शङ्करो न धर्मश्च न च विष्णुश्च के सुर
ख्यातुमीश्वरः शक्तो न संख्यातुं तथापि सः । विश्वाकाशदिशाञ्चैव सर्वत्रोपविश्व

कृत्रिमाणि च विश्वानि विश्वस्थानि च यानि च ।
अनित्यानि च विप्रेन्द्र स्वप्नवन्नश्वराणि च ॥ १६ ॥
वैकुण्ठः शिवलोकश्च गोलोकश्च तयोः परः । नित्यो विश्वबहिर्भूतश्चात्माकाशदिशो यथा

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनक-संवादे ब्रह्मखण्डे सृष्टिनिरूपणे नाम सप्तमोऽध्यायः ।

---

## अष्टमोऽध्यायः ।

### सृष्टि प्रकरणम् ।

सौतिरुवाच ।

ब्रह्मा विश्वं विनिर्माय सावित्र्यां वरयोषिति ।
चकार वीर्य्याधानञ्च कामुक्यां कामुको यथा ॥ १ ॥
सा दिव्यं शतवर्षञ्च धृत्वा गर्भं सुदुःसहम् । सुप्रसूता च सुषुवे चतुर्वेदान् मनोहरान् ॥
विविधान् शास्त्रसङ्घांश्च तर्कव्याकरणादिकान् ।
षट्त्रिंशत्संख्यका दिव्या रागिणीः सुमनोहराः ॥ ३ ॥
षड्रागान् सुन्दरांश्चैव नानातालसमन्वितान् । सत्यत्रेताद्वापरांश्च कलिञ्च कलहप्रियम्
वर्षं मासमृतुञ्चैव तिथिं दण्डक्षणादिकम् । दिनं रात्रिञ्च वारांश्च सन्ध्यामुषसमेव च
पुष्टिञ्च देवसेनाञ्च मेधाञ्च विजयां जयाम् । षट्कृत्तिकाश्च योगांश्च करणांश्च तपोधन!
देवसेनां महाषष्ठीं कार्त्तिकेयप्रियां सतीम् । मातृकासु प्रधाना सा बालानामिष्टदेवता ॥
ब्राह्मं पाद्मञ्च वाराहं कल्पत्रयमिदं स्मृतम् । नित्यं नैमित्तिकञ्चैव द्विपरार्द्धञ्च प्राकृतम्
चतुर्विधञ्च प्रलयं कालञ्च मृत्युकन्यकाम् । सर्वान् व्याधिगणांश्चैव सा प्रसूय स्तनं ददौ
अथ धातुः पृष्ठदेशादधर्मः समजायत । अलक्ष्मीस्तद्वामपार्श्वाद्बभूव तस्य कामिनी ॥
नाभिदेशाद्विश्वकर्म्मा बभूव शिल्पिनां गुरुः । महान्तो वसवोऽष्टौ च महाबलपराक्रमाः

अथ धातुश्च मनस आविर्भूताः कुमारकाः । पञ्चवर्षवयस्का ये ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ज्ञानिनां वरः ॥
आविर्बभूव मुखतः कुमारः कनकप्रभः । दिव्यरूपधरः श्रीमान् सस्त्रीकः सुन्दरो युवा

क्षत्रियाणां बीजरूपो नाम्ना स्वायम्भुवो मनुः ।

या स्त्रीः सा शतरूपा च रूपाढ्या कमलाकला ॥ १५ ॥

सस्त्रीकश्च मनुस्तस्थौ धात्राज्ञापरिपालकः । स्वयं विधाता पुत्रांश्च तानुवाच प्रहर्षितः
सृष्टिं कर्तुं महाभागो महाभागवतान् द्विज !। जग्मुस्ते च नहीत्युक्त्वा तप्तुं कृष्णपरायणाः
चुकोप हेतुना तेन विधाता जगतां पतिः । कोपासक्तस्य च विधेर्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा
आविर्भूता ललाटाच्च रुद्रा एकादश प्रभो । कालाग्निरुद्रः संहर्ता तेषामेकः प्रकीर्तितः
सर्वेषामेव विश्वानां स एव तामसः स्मृतः।राजसश्च स्वयं ब्रह्मा शिवो विष्णुश्च सात्त्विकौ
गोलोकनाथः कृष्णश्च निर्गुणः प्रकृतेः परः । परमाज्ञानिनो मूढा वदन्ति तामसं शिवम्
शुद्धसत्त्वस्वरूपञ्च निर्मलं वैष्णवाग्रणीम्।शृणु नामानि रुद्राणां वेदोक्तानि च यानि च
महान् महात्मा मतिमान् भीषणश्च भयङ्करः । ऋतुध्वजश्चोर्ध्वकेशः पिङ्गलाक्षो रुचिः शुचिः
पुलस्त्यो दक्षकर्णाच्च पुलहो वामकर्णतः । दक्षनेत्रात्तथाऽत्रिश्च वामनेत्रात् क्रतुः स्वयम्
अरणिर्नासिकारन्ध्रादङ्गिराश्च मुखाद्रुचिः । भृगुश्च वामपार्श्वाच्च दक्षो दक्षिणपार्श्वतः
छायायाः कर्दमो जातो नाभेः पञ्चशिखस्तथा । वक्षसश्चैव वोढुश्च कण्ठदेशाच्च नारदः
मरीचिः स्कन्धदेशाच्चैवापान्तरतमा गलात् । वशिष्ठो रसनादेशात् प्रचेता अधरोष्ठतः
हंसश्च वामकुक्षेश्च दक्षकुक्षेर्यतिः स्वयम् । सृष्टिं विधातुं स विधिश्चकारासौ सुतान्प्रति

पितुर्वाक्यं समाकर्ण्य तमुवाच स नारदः ॥ २८ ॥

नारद उवाच ।

पूर्वमानयमज्ज्येष्ठान् सनकादीन् पितामह । कारयित्वा दारयुक्तानस्मान् वद जगत्पते !
पित्रा ते तपसे युक्ताः संसाराय वयं कथम् । अहो हन्त ! प्रभोर्बुद्धिर्विपरीताय कल्पते
कस्मै पुत्राय पीयूषात् परं दत्तं तपोऽधुना । कस्मै ददासि विषयं विषमञ्च विषाधिकम्

भर्तीव निम्ने घोरे च मयाब्धौ यः पतेत् पितः ।
निष्कृतिस्तस्य नास्तीति कोटिकल्पे गतेऽपि च ॥ ३२ ॥
ाराधीजं सर्वेषां बीजञ्च पुरुषोत्तमम् । सर्वदं भक्तिदं दास्यप्रदं सत्यं कृपामयम् ॥
शरणं भक्तवत्सलं स्वच्छमेव च । भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ३४ ॥
रार्ध्यं भक्तसाध्यं विहाय परमेश्वरम् । मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारणे
श कृष्णसेवाञ्च पीयूषादधिकां प्रियाम् । कोमूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधः
ानश्वरं तुच्छमसत्यं नाशकारणम् । यथा दीपशिखाग्रञ्च कीटानां सुमनोहरम् ।
बडिशमांसञ्च मत्स्यापाततुखप्रदम् । तथा विषयिणां तात विषयं मृत्युकारणम्
या नारदस्तत्र विरराम विधेः पुरः । तस्थौ तातं नमस्कृत्य ज्वलदग्निशिखोपमः ॥
कोपपरीतश्च शशाप तनयं द्विज । उवाच कम्पिताङ्गश्च रक्तास्यः स्फुरिताधरः ॥

ब्रह्मोवाच ।

। ज्ञानलोपस्ते मच्छापेन च नारद । क्रीडामृगस्त्वं साध्यश्च योषित्लुब्धश्च लम्पटः
विनयुक्तानां रूपाढ्यानां मनोहरः । पञ्चाशत्कामिनीनाञ्च भर्त्ता च प्राणवल्लभः
ास्त्रवेत्ता च महाशृङ्गारलोलुपः । नानाप्रकारशृङ्गारनिपुणानां गुरोर्गुरुः ॥
णाञ्च प्रवरः सुस्वरश्च सुगायनः । वीणावादनसन्दर्भनिष्णातः स्थिरयौवनः ॥
सुरवाक् शान्तः सुशीलः सुन्दरः सुधीः । भविष्यसि न सन्देहो नामतश्चोपबर्हणः
र्षं लक्षयुगं विहृत्य निर्जने वने । पुनर्मदीयशापेन दासीपुत्रश्च तत्परः ॥ ४६ ॥
ाणवसंसर्गात् वैष्णवोच्छिष्टभोजनात् । पुनःकृष्णप्रसादेन भविष्यसि ममात्मजः
स्यामि ते दिव्यं पुनरेव पुरातनम् । अधुना भव नष्टस्त्वं मत्सुतो निपत ध्रुवम्
ग्वा सुतं विप्र विरराम जगत्पतिः । रुरोद नारदस्तातमुवाच संपुटाञ्जलिः ॥

नारद उवाच ।

र संहरास्तात तात जगद्गुरो । स्रष्टुस्तपस्वीशस्याहो क्रोधोऽयमप्रसनाः
त्यजेत् विद्वान् पुत्रमुत्पथगामिनम् । तपस्विनं सुतं शप्तुं कथमर्हसि पो
। मे ब्रह्मन् यासु यासु च योनिषु । न जहातु हरेर्भक्तिर्मामेवं देहि मे वरः

पुत्रश्रेष्ठगतां धातुर्गान्ति अगिर्ह्रदः पदे । कृतकारकनिनिकृत्य सोऽधमो भारते मुनि ।
आजिन्मारो हरेर्मन्त्रगुरुः कृतकर्मोनिशु । जनिर्लभेन न प्रयरो गोलोके यानि कर्मज
गांगिनपरणाम्भोजमनित्यार्थमिस्त्रीप्सितम् । निगन्तो वैष्णवानां सर्वांपूतानयुक्त
श्रीगांनिजगदांमिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह । पापानां पापिदृष्टानां ज्ञानतापमनन्त
मन्त्रोपदेशमात्रेण नरा मुक्ताश्च भारते । कोऽत्र कोटिगुरुः पूर्वैः मानवं हरेर्हरो ॥
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मन्त्रग्रहणमात्रतः । मुक्ताः शुध्यन्ति यत्पूर्वं कर्म निर्मूलयन्ति च
पुत्रान् दारांश्च शिष्यांश्च सेवकान् बान्धवांस्तथा, यो दर्शयन्ति सन्मार्गं सद्गतिस्तं लभेत् ध्रुवम्
यो दर्शयत्यसन्मार्गं शिष्यैर्विश्वासितो गुरुः । कुम्भीपाके स्थितिस्तस्य यावच्चन्द्रदिवाकरौ

स किं गुरुः स किं तातः स किं स्वामी स किं सुतः ।
यः श्रीकृष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः ॥ ६१ ॥

शप्तो निरपराधेन त्वयाऽहं चतुरानन । मया शप्तं त्वमुचितो भन्तं भन्त्यपि पण्डिताः ॥
कवचस्तोत्रपूजाभिः सहितस्ते मनुर्मनोः । लुप्तो भवतु मच्छापात् प्रतिविश्वेषु निश्चितम्
मपूज्यो भव विश्वेषु यावत् कल्पत्रयं पितः । गतेषु त्रिषु कल्पेषु पूज्यपूज्यो भविष्यसि
अधुना यज्ञभागस्ते मतादिष्वपि सुव्रत । पूजनं चास्तु मासिकं वन्द्यो भव सुरादिभिः
इत्युक्त्वा नारदस्तत्र विरराम पितुः पुरः । तस्थौ सभायां स विधिर्हृदयेन विदूयता
उपबर्हणगन्धर्वो नारदस्तेन हेतुना । दासीपुत्रश्च शापेन पितुरेव च शौनक ॥ ६७
ततः पुनर्नारदश्च स बभूव महानृषिः । ज्ञानं प्राप्य पितुः पश्चात् कथयिष्यामि चाधुना

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे ब्रह्म-नारदशापोपलम्भनं नाम अष्टमोऽध्यायः ।

## नवमोऽध्यायः ।

### ब्रह्मपुत्रकृतसृष्टिप्रकरणम् ।

सौतिरुवाच ।

अथ ब्रह्मा स्वपुत्रांस्तानादिदेश च सृष्टये । सृष्टिं प्रचक्रुस्ते सर्वे विप्रेन्द्र नारदं विना ॥
मरीचेर्मनसो जातः कश्यपश्च प्रजापतिः । अत्रेर्नेत्रमलाच्चन्द्रः क्षीरोदे च बभूव ह ॥ २

प्रचेतसोऽपि मनसो गौतमश्च बभूव ह । पुलस्त्यमानसः पुत्रो मैत्रावरुण एव च ॥३॥
मनोश्च शतरूपायां तिस्रः कन्याः प्रजज्ञिरे । आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिस्ताः पतिव्रताः ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ द्वौ च पुत्रौ मनोहरौ । उत्तानपादतनयो ध्रुवः परमधार्मिकः ॥ ५ ॥
आकूतिं रुचये प्रादात् दक्षाय च प्रसूतिकाम् । देवहूतिं कर्दमाय यत्पुत्रः कपिलः स्वयम्
प्रसूत्यां दक्षवीजेन षष्टिकन्याः प्रजज्ञिरे । अष्टौ धर्माय प्रददौ रुद्रायैकादश स्मृताः ॥७॥
शिवायैकां सतीं प्रादात् कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशतिकन्याश्च दक्षश्चन्द्राय दत्तवान्
नामानि धर्मपत्नीनां मत्तो विप्र निशामय । शान्तिःपुष्टिर्धृतिस्तुष्टिःक्षमाश्रद्धामतिःस्मृतिः
शान्तेः पुत्रश्च सन्तोषः पुष्टेः पुत्रो महानभूत् । धृतेर्धैर्य्यञ्च तुष्टेश्च हर्षदर्पौ सुतौ स्मृतौ
क्षमापुत्रः सहिष्णुश्च श्रद्धापुत्रश्च धार्मिकः । मतेर्ज्ञानाभिधः पुत्रः स्मृतेर्जातिस्मरोमहान्
पूर्वपत्न्याश्च मूर्त्यांश्च नरनारायणावृषी । बभूवुरेते धर्मिष्ठा धर्मपुत्राश्च शौनक ॥ १२ ॥
नामानि रुद्रपत्नीनां सावधानं निबोध मे । कला कलावती काष्ठा कालिका कलहप्रिया
कन्दली भीषणा रास्ना प्रमोचा भूषणा शुकी । एतासां बहवः पुत्रा बभूवुः शिवपार्षदाः
सा सती स्वामिनिन्दायां तनुं तत्याज यत्नतः । पुनर्भूत्वा शैलपुत्री लेभे च शङ्करं पतिम्
कश्यपस्य प्रियाणाञ्च नामानिशृणु धार्मिक । अदितिर्देवमाता या दैत्यमातादितिस्तथा
सर्पमाता तथा कद्रुर्विनता पक्षिसूस्तथा । सुरभिश्च गवां माता महिषाणाञ्च निश्चितं
सारमेयादिजन्तूनां सरमा सूश्चतुष्पदाम् । दनुः प्रसूर्दानवानामन्याश्चेत्येवमादिकाः
इन्द्रश्च द्वादशादित्या उपेन्द्राद्याः सुरा मुने ! । कथिताश्चादितेः पुत्रा महाबलपराक्रमा
इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च महान् शच्यामजायत । आदित्यस्य सवर्णायां कन्यायां विश्वकर्मण
शनैश्चरयमौ पुत्रौ कालिन्दी कन्यका तथा । उपेन्द्रवीर्य्यात् पृथ्व्यान्तु मङ्गलःसमजायत

शौनक उवाच ।

कथं सौते स चोपेन्द्रान्मङ्गलः समजायत । वसुन्धरायां बलवान् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि

सौतिरुवाच ।

उपेन्द्ररूपमालोक्य कामार्त्ता च वसुन्धरा । विधाय सुन्दरीवेशमक्षता प्रौढयौवना २३॥
मलये निर्जने रम्ये चारुचन्दनपल्लवे । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २४ ॥

शीलंशयानञ्चशान्तंसस्मितमीप्सितम् । सस्मिता तस्य तल्पेच सहसा समुपस्थिता
यां मालतीमालां ददौ तस्मै वरानना । सुगन्धि चन्दनं चारु कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्
द्रस्तन्मनो ज्ञात्वा कामि मन्मथपीड़ितम् । नानाप्रकारशृङ्गारं चकार च तया सह
सङ्गसंसक्ता मूर्च्छां प्राप सती तदा । मृतेव निद्रितेवासौ वीजाधानं कृते हरौ ॥
विलग्नाञ्चसुश्रोणींसुखसम्भोगमूर्च्छिताम् । बृहन्मुक्तनितम्बाञ्चसस्मितांविपुलस्तनीम्
पक्षसि कृत्वा तां तदोष्ठञ्च चुचुम्ब ह । विहाय तत्र रहसि जगाम पुरुषोत्तमः ॥३०
वी पथि गच्छन्ती बोधयामास तां मुने ! । साचपप्रच्छवृत्तान्तंकथयामासभूस्वताम
यं संधरणं कर्तुं सा चाशक्ता च दुर्बला । प्रवालस्याकरेत्रस्तावीर्यंन्यासंचकारसा
प्रवालवर्णश्च कुमारः समपद्यत । तेजसा सूर्यसदृशो नारायणसुतो महान् ॥३२
न्तस्य प्रिया मेधा तस्य घण्टेश्वरो महान् । व्रणदातेति तेजस्वी विष्णुतुल्योबभूव
तेर्हिरण्यकशिपुर्हिरण्याक्षो महाबली । कन्या च सिंहिका विप्र सैंहिकेयश्च तत्सुत
सर्तिः सिंहिका सा च तेन राहुश्च नैर्ऋतः । शूकरेणहिरण्याक्षोऽप्यनपत्योमृतोयुव
रण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो वैष्णवाग्रणीः । विरोचनश्च तत्पुत्रस्तत्पुत्रश्चबलिःस्वयम् ।
ः पुत्रो महायोगी ज्ञानी शङ्करकिङ्करः । दितेर्वंशश्च कथितः कद्रुवंशं निबोध मे ।
नन्तं वासुकिञ्चैव कालीयञ्च धनञ्जयम् । कर्कोटकं तक्षकञ्च पद्ममैरावतं तथा ॥३९
हापद्मञ्च शङ्कुञ्च शङ्खं संवरणन्तथा । धृतराष्ट्रञ्च दुर्द्धर्षं दुर्जयं दुर्मुखं बलम् ॥ ४० ।
क्षं गोकामुखम्चैव विरूपाक्षंश्च शौनक । एतेषां प्रवराश्चैव यावत्यः सर्पजातयः ।
न्यका मनसा देवी कमलांशासमुद्भवा । तपस्विनीनां प्रवरा महातेजस्विनी शुभा ।
पतिश्च जरत्कारुर्नारायणकलोद्भवः । आस्तीकस्तनयो यस्या विष्णुतुल्यश्च तेजस
तेषां नाममात्रेण नास्ति नागभयं नृणाम् । कद्रुवंशोनिगदितो विनतायाश्च श्रूयताम्
नतेयारुणौ पुत्रौ विष्णुतुल्यपराक्रमौ । तद्वंशभूयुः क्रमेणैव यावत्यः पक्षिजातयः ॥४
ावश्च महिषाश्चैव सुरभिप्रवरा इमे । सर्वे वै सारमेयाश्च बभूवुः सरमासुताः ॥ ४६ ।
ानवाश्च दनोर्वंशा अन्यासामन्यजातयः । उक्तः कश्यपवंशश्च चन्द्राख्यानं निबोध ।
... चन्द्रवर्णानां मायधानं निशामय । अत्यपूर्वञ्च चरितं पुराणेषु पुरातनम् ॥४८

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा । मृगशीर्षा तथार्द्रा च पुष्या साश्लेषा पुनर्वसुः
पुष्यस्तेषा मघा पूर्वफल्गुन्युत्तरफल्गुनी । हस्ता चित्रा तथा स्वाती विशाखा चानुराधिका
ज्येष्ठा मूला तथा पूर्वाषाढा चैवोत्तरा स्मृता । श्रवणा च धनिष्ठा च तथा शतभिषा शुभा
पूर्वोत्तरभाद्रपदी रेवत्यन्ता विधुप्रियाः । तासां मध्ये च सुभगा रोहिणी रसिका वरा:
सन्ततं रसभावेन चकार शशिनं वशम् । रोहिण्युपगतश्चन्द्रो न यात्यन्याश्च कामिनीम्
सर्वा भगिन्यः पितरं कथयामासुरादृताः । सपत्नीकृतसन्तापं प्राणनाशकरं परम् ॥५४॥
दक्षः प्रकुपितश्चन्द्रं शशाप मन्त्रपूर्वकम् । द्रुतं श्वशुरशापेन यक्ष्मग्रस्तो बभूव सः ॥५५
दिने दिने यक्ष्मणा स क्षीयमाणश्च दुःखितः । वपुष्यर्द्धं क्षीयमाणे शङ्करं शरणं ययौ
दृष्ट्वा चन्द्रं शङ्करश्च क्लेशितं शरणागतम् । करुणासागरस्तस्मै कृपया चाभयं ददौ ॥५७॥
निर्मुक्तं यक्ष्मणा कृत्वा स्वकपोले स्थलं ददौ । अमरो निर्भयो भूत्वा सतस्थौ शिवशेखरे
तं शिवः शेखरे कृत्वा बभूव चन्द्रशेखरः । नास्ति देवेषु लोकेषु शिवात् शरणपञ्जरः ॥
दक्षकन्याः पतिं मुक्तं दृष्ट्वा च रुरुदुः पुनः । आजग्मुः शरणं तातं दक्षं तेजस्विनां वरम् ॥
उच्चैश्च रुरुदुर्गत्वा निहत्याङ्गं पुनः पुनः । तमूचुः कातरं दीना दीननाथं विधेः सुतम् ॥

दक्षकन्या ऊचुः ।

स्वामिसौभाग्यलाभाय त्वमुक्तोऽस्माभिरेव च ।
सौभाग्यमस्तु नस्तात ! गतः स्वामी गुणान्वितः ॥ ६२ ॥

स्थिते चक्षुषि हे तात ! दृष्टं ध्वान्तमयं जगत् । विज्ञातमधुना स्त्रीणां पतिरेव हि लोचनम्
पतिरेव गतिः स्त्रीणां पतिः प्राणाश्च सम्पदः । धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुः सेतुर्भवार्णवे
पतिर्नारायणः स्त्रीणां व्रतं धर्मः सनातनः । सर्वं कर्म वृथा तासां स्वामिनां विमुखाश्च याः
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा । सर्वदानानि पुण्यानि व्रतानि नियमानि च ॥
देवार्चनं चानशनं सर्वाण्येव तपांसि च । स्वामिनः पादसेवायां कलां नार्हन्ति षोडशीम्
सर्वेषां बान्धवानाञ्च प्रियः पुत्रश्च योषिताम् । स एव स्वामिनोऽशश्च शतपुत्रात् परः पतिः
असद्वंशप्रसूता या सा द्वेष्टि स्वामिनं सदा । यस्या मनश्चलं दुष्टं सक्तं तं परपूरुषे ॥
पतितं रोगिणं दुष्टं निर्धनं गुणहीनकम् । युवानं चैव वृद्धं वा भजेत्तं न त्यजेत् सती ॥

सगुणं निर्गुणं चापि या [illegible] । [illegible]
[illegible] दिवानिशम् । शुक्लो [illegible] त्रिपुरा [illegible]
पुनः [illegible] । [illegible]
[illegible] पूर्वकर्मजः । [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] शङ्करस्य [illegible] । [illegible] शम्भुं [illegible]
[illegible] कृपानिधिम् । [illegible]

दक्ष उवाच ।

देहि जामातरं शम्भो मदीयं प्रणतपालकम् । मत्सुतानाञ्च प्राणानां परमेव प्रियं पति
न चेद्ददासि जामातर्मम आमातरं विभुम् । दास्यामि दारुणं शापं तुभ्यं त्वं येनमु
दक्षस्य वचनं श्रुत्वा समुवाच कृपानिधिः । सुधाधिकञ्च वचनं [illegible]

शिव उवाच ।

करोषि भस्मसाच्चेन्मां ददासि शापमेव च । नाहं दातुं समर्थश्च चन्द्रञ्च शरणागतम्
शिवस्य वचनं श्रुत्वा दक्षस्तं शप्तुमुद्यतः । शिवःसस्मार गोविन्दं विपन्मोक्षणकारक
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो वृद्धब्राह्मणरूपधृक् । समाययौ तयोर्मूलं तौ तञ्च नमतुः क्रमात्
दत्त्वा शुभाशिषं तौ स ब्रह्मज्योतिः सनातनः । उवाच शङ्करं पूर्वं परिपूर्णतमो द्वि

श्रीभगवानुवाच ।

न चात्मनःप्रियःकश्चित् शर्व ! सर्वेषु बन्धुषु । आत्मानं रक्ष दक्षाय देहि चन्द्रं सुरेश्वर
तपस्विनां वरः शान्तस्त्वमेव वैष्णवाग्रणीः । समः सर्वेषु जीवेषु हिंसाक्रोधविवर्जितः ।
दक्षः क्रोधी च दुर्द्धर्षस्तेजस्वी ब्रह्मणः सुतः । शिष्टो बिभेति दुर्द्धर्षं न दुर्द्धर्षश्च कश्चन
नारायणवचः श्रुत्वा प्रहस्य शङ्करः स्वयम् । उवाच नीतिसारञ्च नीतिबीजं परात्परम् ।

शङ्कर उवाच ।

तपो दास्यामि तेजश्च सर्वसिद्धिञ्च सम्पदम् । प्राणांश्च न समर्थोऽहं प्रदातुं शरणागतम्
ददाति भयेनैव प्रपन्नं शरणागतम् । तञ्च धर्मः परित्यज्य याति शप्त्वा सुदारुणम्

धर्मं त्यक्तुं समर्थोऽहं न स्वधर्मं जगत्प्रभो ! । पश्यन्धर्मविहीनश्च सन्त सर्वबहिष्कृतः ॥
यश्च धर्मं सदा रक्षेत् धर्मस्तं परिरक्षति । धर्मं वेदेश्वर त्यक्ष्य किं मां ब्रूहि स्वमायया ॥
स्वं धर्मं रक्षताऽधर्मात् हन्तास्य परिणामतः । त्वयि [illegible] धर्मस्तस्य कस्माद्धर्ममवैत् ॥
[illegible] शृणु माधवान् [illegible] । धर्मं [illegible] दस्तायनदर्शनात्
[illegible] निर्वाणैः शिवशैलके । [illegible] परं धर्मं विष्णुदत्तं प्रजापतिः ॥
[illegible] तं दृष्ट्वा दस्तपुष्टं च माधवम् । पश्चे पूर्णं स्तनं पश्चेत चकार दृष्टिस्वयम् ॥
[illegible] दत्त्वा जगाम [illegible] । [illegible] शूर्दान्यान कन्यास्यः मद्दर्शपुत्रः
[illegible] विजहार दिवानिशम् । [illegible] सर्पांस्त्वम्भूत्वैव कस्मिन्
[illegible] सर्वं किञ्चित् [illegible] मुने ! । श्रुतञ्च गुप्तवचनेषु पुष्करे मुनिसंसदि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नवमोऽध्यायः ।

---

## दशमोऽध्यायः ।

## धनेशजन्मकथनम् ।

### सौतिरुवाच ।

भृगोः पुत्रश्च च्यवनः शुक्रश्च ज्ञानिनांवरः । [illegible] ॥
[illegible] पुत्रश्चाङ्गिरसो बभूवुर्वं [illegible] । [illegible] शौनक ॥ २ ॥
[illegible] पुत्रः [illegible] (कि) [illegible] पुत्रः पराशरः । [illegible]
[illegible] पुत्रश्च ज्ञानवान् । [illegible] पुत्रस्तस्य [illegible]

### शौनक उवाच ।

[illegible] ! पुराणविदुषामस्माकं [illegible] यथा । [illegible] ॥ ५ ॥
[illegible] धनेशदेवतादिरम् । [illegible]

बृहन्नितम्बभारार्त्तां मुनिमानसमोहिनीम् । अतिवेगकटाक्षेणलोलांकामातिपीडिताम् ॥
वह्निश्रोणीं कठिनां दृष्ट्वा पायूनां शुकसंहताम् । अतीवचोच्चैस्तनयुगं कठिनंवर्तुलादृतम् ।
सस्मितंचारुवक्त्रञ्च शरच्चन्द्रविनिन्दकम् । पक्वबिम्बफलारक्तमोष्ठाधरं मनोहरम् ।२६।
सिन्दूरबिन्दुसंयुक्तं कस्तूरीबिन्दुभिः सह ।
कपालमुज्ज्वलं शश्वत् कपोलं मणिकुण्डलम् ॥ ३० ॥
तमुवाचप्रियां शान्तां कामशास्त्रविशारदः । कामाग्निवर्द्धनोद्योगिवचनंश्रुतिसुन्दरम् ॥

विश्वकर्मोवाच ।

अयि क्व यासि ललिते ममप्राणाधिके प्रिये । मम प्राणांश्चापहृत्य स्थिताभव क्षणंशुभे ॥
तवैवान्वेषणंकृत्वाभ्रमामि जगतीतलम् । स्वप्राणांस्त्यक्तुमिष्टोऽहंतां न दृष्ट्वाहुताशने ॥
त्वंयासीतिकामंलाकंश्रुत्वारम्भामुखेऽधुना । आगच्छअहमेवाद्यचास्मिन्वर्त्मन्यवस्थितः
अहो सरस्वतीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे । सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुरभीकृते ॥३५ ॥
रमकान्तेमयासार्द्धंयूनाकान्तेन शोभने । विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमोगुणवान् भवेत् ॥
स्थिरयौवनसंयुक्ता त्वमेव चिरजीविनी । कामुकी कोमलाङ्गी च सुन्दरीषु च सुन्दरी
मृत्युञ्जयवरेणैव मृत्युकन्या जितयामया । कुवेरभवनं हत्वा धनंलब्धं कुवेरतः ॥३८॥
रत्नमाला च वरुणाच्छायोः क्षीररत्नभूषणम् । वह्निशुद्धं वस्त्रयुगंवह्नेः प्रातश्चचेतनात् ॥३९॥
कामशास्त्रं कामदेवाद्योपिद्रञ्जनकारणम् । शृङ्गारशिल्पं यत्किञ्चित् लब्धंचन्द्राच्चदुर्लभम्
रत्नमाला वस्त्रयुग्मं सर्वाणिभूषणानि च । तुभ्यं दातुं हृदि कृतं प्रासन्तत्क्षण एव च ॥
गृहेतान्येवसंस्थाप्यचागतोऽन्वेषणे भवे । विरामे सुखसम्भोगेतुभ्यंदास्यामिसाम्प्रतम्
कामुकस्यवचःश्रुत्वा घृताची सस्मितामुने ! । ददौ प्रत्युत्तरंशीघ्रं नीतियुक्तं मनोहरम् ॥

घृताच्युवाच ।

त्वया यदुक्तं भद्रन्तत् स्वीकारोऽप्यधुनाऽपि च ।
किन्तुसामयिकं वाक्यं प्रवक्ष्यामि स्मरातुर ॥ ४४ ॥

कामदेवालयं यामि कृतं वेशञ्च तत्कृते । यद्दिने यत्कृते यामो वयंवेश्याश्च योषितः ॥
अद्याहं कामपत्नी च गुरुपत्नी तवाधुना । त्वयोक्तमधुनेदञ्च परितं कामदेवतः ॥ ४६ ॥

विद्यादाता मन्त्रदाता गुरुर्लक्षगुणैः पितुः । मातुः सहस्रगुणतो नास्त्यन्यस्तत्समो गुरुः
गुरोः शतगुणैः पूज्या गुरुपत्नी श्रुतौ श्रुता । पितुः शतगुणैः पूज्या यथामाता विचक्षण
मात्रा सहितशृङ्गारे यावान्दोषः श्रुतौ श्रुतः । ततो लक्षगुणो दोषो गुरुपत्नीसमागमे ।
मातरित्येवशब्देन याञ्च सम्भाषते नरः । सा मातृतुल्या सत्येन धर्मःसाक्षी सतामपि ।
त्वयासहितशृङ्गारे कालसूत्रं प्रयाति सः । तत्र घोरे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
मातासहितशृङ्गारे ततो दोषश्चतुर्गुणः । सार्द्धञ्च गुरुपत्न्या च लक्षगुण एव च ।
कुम्भीपाके पतत्येव यावद् वै ब्रह्मणो वयः । प्रायश्चित्तं पापिनश्च तस्य नैव श्रुतौ श्रुतम्

चक्राकारं कुलालस्य तीक्ष्णधारञ्च खड्गवत् ।

वसामूत्रपुरीषञ्च परिपूर्णं सुदुस्तरम् ॥ ५४ ॥

शूलवत्कृमिसंयुक्तं तप्तमग्निसमद्रवम् । पापिनां तद्विहारञ्च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम् ।
यावान्दोषो हि पुंसाञ्च गुरुपत्नीसमागमे । तावांश्च गुरुपत्न्याश्च तत्रैव कामुकी यदि ।
अद्ययास्यामि कामस्य मन्दिरं तस्य कामिनी । वेशं कृत्वागमिष्यामि त्वत्स्थलेऽहं दिनान्तरे
घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा रुरोष ताम् । शशाप शूद्रयोनिञ्च प्रजेति जगतीतले ॥ ५७
घृताची तद्वचः श्रुत्वा तं शशाप सुदारुणम् । लभ जन्म भवे त्वञ्च स्वर्गभ्रष्टो भवेति च
घृताचीत्येवमुक्त्वा च जगाम काममन्दिरम् । कामेन सुरतं कृत्वा कथयामास तां कथाम्
सा भारते च कामोक्त्या गोपस्य मदनस्य च । पत्नीप्रयागे नगरे लेभे जन्म च शौनक !
जातिस्मरा तत्प्रसूता बभूव च तपस्विनी । वरं न वव्रे धर्मिष्ठा तपस्यायां मनो दधौ ।
तपश्चकार तरसा तप्तकाञ्चनसन्निभा । दिव्यञ्च शतवर्षं सा गंगातीरे मनोरमे ॥ ६१ ॥
वीर्येण सुरकारोश्च नव पुत्रान् प्रसूय सा ।

पुनः स्वर्लोकं गत्वा च सा घृताची बभूव ह ॥ ६४ ॥

शौनक उवाच ।

कथं वीर्यं सा दधार सुरकारोस्तपस्विनी । पुत्रान्नवप्रसूता च कुत्र वा कतिधा दिनान् ।

सौतिरुवाच ।

विश्वकर्मा तु तच्छापं समाकर्ण्य शुचान्वितः । जगाम ब्रह्मणः स्थाने शोकेन हतचेतनः

नत्वा स्तुत्वा च ब्रह्माणं कथयामास तां कथाम् ।
लेभे जन्म ब्राह्मण्यां पृथिव्यामाज्ञया विधेः ॥ ६७ ॥
स एव ब्राह्मणो भूत्वा भुवि कारुर्बभूव ह । नृपाणाञ्च गृहस्थानां नानाशिल्पं चकार ह
शिल्पञ्च कारयामास सर्वांश्च सर्वतः सदा । विचित्रं विविधं शिल्पमाश्चर्यं सुमनोहरम्
एकदा तु प्रयागे च शिल्पं कृत्वा नृपस्य च । स्नातुं जगाम गङ्गाञ्च ददर्श तत्र कामिनीम्
घृताचीं नवरूपाञ्च युवतिं तां तपस्विनीम् । जातिस्मरां तां बुबुधे स च जातिस्मरो द्विज
दृष्ट्वा सकामः सहसा बभूव हृतचेतनः । उवाच मधुरं शान्तः शान्तां ताञ्च तपस्विनीम्

ब्राह्मण उवाच ।

अहोऽधुना त्वमत्रैव घृताचि सुमनोहरे । मा मां स्मरसि रम्भोरु विश्वकर्माऽहमेव च
शापमोक्षं करिष्यामि भज मां तव सुन्दरि । त्वत्कृतेऽतिदहत्येव मनो मे स च मन्मथः
द्विजस्य वचनं श्रुत्वा घृताची नवरूपिणी । उवाच मधुरं शान्ता नीतियुक्तं परं वचः ॥

गोपिकोवाच ।

तद्दिने कामकान्ताहमधुना च तपस्विनी । कथं दास्यामि शृङ्गारं गङ्गातीरे च भारते ॥
विश्वकर्मन्निदं पुण्यं कर्मक्षेत्रञ्च भारतम् । अत्र यत् क्रियते कर्म भोगोऽन्यत्र शुभाशुभम्
धर्मी मोक्षकृते जन्म संलभ्य तपसः फलात् । निबद्धः कुरुते कर्म मोहितो विष्णुमायया
माया नारायणीशाना परितुष्टा च यं भवेत् ।
तस्मै ददाति श्रीकृष्णो भक्तिं तन्मन्त्रमीप्सितम् ॥ ७६ ॥
यो मूढो विषयासक्तो लब्धजन्मा च भारते । विहाय कृष्णं सर्वेशं समुग्धो विष्णुमायया
सर्वं स्मरामि देवाहमहो जातिस्मरा पुरा । घृताची सुरवेश्याहमधुना गोपकन्यका ॥
तपः करोमि मोक्षार्थं गङ्गातीरे सुपुण्यदे । नात्रस्थलञ्च क्रीडायाः स्थिरस्त्वं भव कामुक
अन्यत्र कृतपापञ्च गङ्गायाञ्च विनश्यति । गङ्गातीरे कृतं पापं सद्यो लक्षगुणं भवेत् ॥
तत्तु नारायणक्षेत्रे तपसा च विनश्यति । यद्येव कामतः कृत्वा निवृत्तश्च भवेत् पुनः ॥
घृताचीवचनं श्रुत्वा विश्वकर्मा निराकृतिः । जगाम तां गृहीत्वा च मलयं चन्दनालयम्
रम्यायां मलयद्रोण्यां पुष्पतल्पे मनोरमे । पुष्पचन्दनवातेन सन्ततं सुरभीकृते ॥ ८६ ॥

चकार सुखसम्भोगं तया सह सुनिर्जने । पूर्णे द्वादशवर्षेऽत्र बुबुधे न दिवानिशम् ॥
बभूव गर्भः कामिन्यां परिपूर्णः सुदुर्वहः । सा सुषाव च तत्रैव पुत्रान्नव मनोहरान् ॥
कृतशिक्षितशिल्पांश्च ज्ञानयुक्तांश्च शौनक । पूर्वप्राक्तनतो युग्यान् बलयुक्तान् विचक्षणान् ॥
मालाकारकर्मकारशङ्खकारकुविन्दकान् । कुम्भकारसूत्रधारस्वर्णचित्रकरांस्तथा ॥ ९०

तौ च तेभ्यो वरं दत्त्वा तान् संस्थाप्य महीतले ।
मानवीं तनुमुत्सृज्य जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥ ९१ ॥

स्वर्णकारः स्वर्णचौर्य्यात् ब्राह्मणानां द्विजोत्तम । बभूव पतितःसद्यो ब्रह्मशापेन कर्मणा
सूत्रधारो द्विजानान्तु शापेन पतितो भुवि । शीघ्रञ्च यज्ञकाष्ठानि न ददौ तेन हेतुना ॥
व्यतिक्रमेण चित्राणां सद्यश्चित्रकरस्तथा । पतितो ब्रह्मशापेन ब्राह्मणानाञ्च कोपतः ॥
कश्चिद्वणिग्विशेषश्च संसर्गात्स्वर्णकारिणः । स्वर्णचौर्य्यादिदोषेण पतितो ब्रह्मशापतः
कुलटायाञ्च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्य्यतः । बभूवाट्टालिकाकारः पतितो जारदोषतः ॥
अट्टालिकाकारबीजात् कुम्भकारस्य योषिति । बभूव कोटकः सद्यः पतितो गृहकारकः
कुम्भकारस्य बीजेन सद्यः कोटकयोषिति । बभूव तैलकारश्च कुटिलः पतितो भुवि ॥
सद्यः क्षत्रियबीजेन राजपुत्रस्य योषिति । बभूव तीवरश्चैव पतितो जारदोषतः ॥ ९९
तीवरस्य तु बीजेन तैलकारस्य योषिति । बभूव पतितो दस्युर्लेटश्च परिकीर्तितः ॥
लेटस्तीवरकन्यायां जनयामास षट्सुतान् । मल्लं मत्रं मातरञ्च भड्डं कोलं कलन्दरम् ॥
ब्राह्मण्यां शूद्रवीर्य्येण पतितो जारदोषतः । सद्यो बभूव चण्डालः सर्वस्मादधमोऽशुचिः
तीवरेण च चाण्डाल्यां चर्मकारो बभूव ह । चर्मकार्य्याञ्च चण्डालान्मांसच्छेदो बभूव

मांसच्छेद्यां तीवरेण कोञ्चश्च परिकीर्त्तितः ।
कोञ्चकन्यासु कैवर्त्तात् कर्तारः परिकीर्त्तितः ॥ १०४ ॥

सद्यश्चण्डालकन्यायां लेटवीर्य्येण शौनक । बभूवतुस्तौ द्वौ पुत्रौ दुष्टौ हड्डिडमौ तथा
क्रमेण हड्डिकन्यायां सद्यश्चण्डालवीर्य्यतः । बभूवुः पञ्चपुत्राश्च दुष्टा वनचराश्च ते ॥
लेटात्तीवरकन्यायां गङ्गातीरे च शौनक । बभूव सद्यो यो बालो गङ्गापुत्रः प्रकीर्तितः
गङ्गापुत्रस्य कन्यायां वीर्य्येण वेशधारिणः । बभूव वेशधारी च पुत्रो युङ्गी प्रकीर्तितः

वैश्यात्तीवरकन्यायां सद्यः शुण्डी बभूव ह । शुण्डीयोषितिवैश्यात्तु पौण्ड्रकश्च बभूव ह
तस्मात् करणकन्यायां राजपुत्रो बभूव ह । राजपुत्र्यान्तु करणादागरीति प्रकीर्त्तितः
क्षत्रवीर्य्येण वैश्यायां कैवर्त्तः परिकीर्त्तितः । कलौ तीवरसंसर्गात् धीवरः पतितोभुवि
तीवर्य्यां धीवरात् पुत्रो बभूव रजकः स्मृतः । रजक्यां तीवराच्चैव कोयालीति बभूव ह
नापिताद् गोपकन्यायां सर्वस्वीतस्ययोषिति । क्षत्राद्बभूवव्याधश्च बलवान्मृगहिंसकः
तीवरात् शुण्डिकन्यायां बभूवःसप्तपुत्रकाः । तेकलौ हड्डिसंसर्गात् बभूवुर्दस्यवःसदा
ब्राह्मण्यामृषिवीर्य्येण ऋतोः प्रथमवासरे । कुत्सितश्चोदरे जातः कुदरस्तेन कीर्त्तितः॥
तदशौचं विप्रतुल्यं पतितो ऋतुदोषतः । सद्यः कोटकसंसर्गादधमो जगतीतले ॥११६॥
क्षत्रवीर्य्येण वैश्यायामृतोः प्रथमवासरे । जातः पुत्रो महादस्युर्बलवांश्च धनुर्द्धरः ॥
चकार वागतीतञ्च क्षत्रियेणापि वारितः । तेन जात्याः सपुत्रश्च वागतीतः प्रकीर्त्तितः
क्षत्रवीर्य्येण शूद्रायामृतुदोषेण पापतः । बलवन्तो दुरन्ताश्च बभूवुर्म्लेच्छजातयः॥११९
अविद्धकर्णाः क्रूराश्च निर्भया रणदुर्जयाः । शौचाचारविहीनाश्च दुर्द्धर्षा धर्मवर्जिताः

म्लेच्छात् कुविन्दकन्यायां जोलाजातिर्बभूव ह ।
जोलात् कुविन्दकन्यायां शराकः परिकीर्त्तितः ॥ १२१ ॥

वर्णसङ्करदोषेण बहश्च श्रुतजातयः । तासां नामानि संख्याश्च को वा वक्तुंक्षमो द्विज
वैद्योऽश्विनीकुमारेण जातश्च विप्रयोषिति । वैद्यवीर्य्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः॥
तेच ग्रामम्यगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः । तेभ्यश्चजाताःशूद्रायांये व्यालग्राहिणोभुवि

शौनक उवाच ।

कथं ब्राह्मणपत्न्यान्तु सूर्य्यपुत्रोऽश्विनीसुतः । अहो केन विपाकेन वीर्य्याधानञ्चकार ह

सौतिरुवाच ।

गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः । ददर्श कामुकः शान्तः पुष्पोद्यानेच निर्जने
तया निवारितो यत्नात् बलेन बलवान् सुरः । अतीवसुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्य्याधानञ्चकार स
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे । सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकाञ्चनसन्निभः ॥१२८
सपुत्रा स्वामिनोगेहं जगाम व्रीडितासदा । स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसङ्कटम्

विप्रो रोषेण तत्याज तत्पुत्रं स्वकामिनीम् । सरिद्बभूव योगेनसाच गोदावरी स्मृता
पुत्रं चिकित्साशास्त्रं च पाठयामास यत्नतः । नानाशिल्पञ्च मन्त्रञ्च स्वयं स रविनन्दनः
विप्रश्च ज्योतिर्गणनाद्वेतनाच्च निरन्तरम् । वेदधर्मपरित्यक्तो बभूव गणको भुवि ॥१३२
लोभी विप्रश्च शूद्राणामग्रे दानं गृहीतवान् । ग्रहणे मृतदानानामग्रदानी बभूव सः ॥
कश्चित् पुमान् ब्रह्मयज्ञे यज्ञकुण्डात् समुत्थितः । ससूतोधर्मवक्ता च मत्पूर्वपुरुषःस्मृतः
पुराणं पाठयामास तञ्चब्रह्मा कृपानिधिः । पुराणवक्ता सूतश्च यज्ञकुण्डसमुद्भवः ॥१३३
वैश्यायां सूतवीर्य्येण पुमानेको बभूव ह । स भट्टो वावदूकश्च सर्वेषां स्तुतिपाठकः ॥
एतत्ते कथितं किञ्चित् पृथिव्यांजातिनिर्णयम् । वर्णसङ्करदोषेण बह्वोऽन्याःसन्तिजातयः
सम्बन्धो येषु येषां यः सर्वजातिषु सर्वतः । तत्त्वं ब्रवीमि वेदोक्तं ब्रह्मणा कथितं पुरा
पिता तातस्तु जनको जन्मदातरि वर्त्तते । अम्बा माता च जननी गर्भधात्री प्रसूरिति
पितामहः पितृपिता तत्पिता प्रपितामहः । अत ऊर्द्ध्वं ज्ञातयश्च सगोत्राः परिकीर्त्तिताः
मातामहः पिता मातुः प्रमातामह एव च । मातामहस्य जनकस्तत्पिता वृद्धपूर्वकः ॥१४१
पितामही पितुर्माता तत्श्वश्रूः प्रपितामही । तत्श्वश्रूश्च परिज्ञेया सा वृद्धप्रपितामही॥
मातामही मातृमाता मातुल्या च पूजिता । प्रमातामहीति ज्ञेया प्रमातामहकामिनी ॥
वृद्धमातामही ज्ञेया तत्पितुः कामिनी तथा । पितृभ्राता पितृव्यश्च मातृभ्राता च मातुलः
पितृस्वसा पितृभग्नी मातृभग्नी च मासुरी । सूनुश्च तनयः पुत्रो दायादश्चात्मजस्तथा
धनभाग्वीर्य्यजश्चैव पुंसिजन्ये च वर्त्तते । जन्यायांदुहिताकन्या चात्मजा परिकीर्त्तिता
पुत्रपत्नी वधूर्ज्ञेया जामाता दुहितुःपतिः । पतिः प्रियश्च भर्त्ता च स्वामी कान्तेव वर्त्ते
देवरःस्वामिनोभ्राताननान्दास्वामिनःस्वसा । श्वशुरःस्वामिनस्तातःश्वश्रूश्चस्वामिनःप्रसूः

भार्य्या जाया प्रिया कान्ता स्त्रीश्च पत्न्याश्च वर्त्तते ।
पत्नीभ्राता श्यालकश्चपत्नीभग्नी च श्यालिका ॥ १४६ ॥

पत्नीमातातथा श्वश्रूस्तत्पिता श्वशुरःस्मृतः । सगर्भः सोदरोभ्रातासगर्भाभगिनीस्मृता
भगिनीपुत्रो भागिनेयो भ्रातृपुत्रश्चभ्रातृजः । श्यालस्तुभगिनीकान्तो भगिनीपतिरेव च
श्यालीपतिस्तु भ्राता च श्वशुरैकस्य हेतुना । श्वशुरस्तु पिताज्ञेयो जन्मदातुः समोमुने

अन्नदाता भयत्राता पत्नीतातस्तथैव च । विद्यादाता जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम् ॥
अग्रजभ्रातृपत्नी च भगिनी गुरुकामिनी । माता च तत्सपत्नी च कन्या पुत्रप्रियातथा
मातुर्माता पितुर्माता श्वश्रूः पित्रोः स्वसा तथा । पितृव्यानी मातुलानी मातरश्चचतुर्दश
पौत्रस्तुपुत्रपुत्रश्च प्रपौत्रस्तत्सुतेऽपि च । तत्पुत्राद्याश्च ये वंशाःकुलजाश्चप्रकीर्त्तिताः
कन्यापुत्रश्चदौहित्रस्तत्पुत्राद्याश्चबान्धवाः । भागिनेयसुताद्याश्चपुत्राद्याबान्धवाःस्मृताः
भ्रातृपुत्रस्य पुत्राद्यास्ते पुनर्ज्ञातयः स्मृताः । गुरुपुत्रस्तथा भ्राता पोष्यःपरमबान्धवः ॥
गुरुकन्या च भगिनीपोष्या मातृसमामुने । पुत्रस्यच गुरुर्भ्रातापोष्यः सुस्निग्धबान्धवः
पुत्रस्यश्वशुरोभ्राताबन्धुर्वैवाहिकः स्मृतः । कन्यायाःश्वशुरेचैव तत्सम्बन्धःप्रकीर्त्तितः
गुरुश्च कन्यकायाश्च भ्राता सुस्निग्धबान्धवः । गुरुश्वशुरभ्रातॄणां गुरुतुल्यः प्रकीर्त्तितः
बन्धुता येन सार्द्धञ्च तन्मित्रं परिकीर्त्तितम् । मित्रं सुखप्रदं ज्ञेयं दुःखदो रिपुरुच्यते ॥
बान्धवोदुःखदोदैवात् निःसम्बन्धोसुखप्रदः । सम्बन्धास्त्रिविधाःपुंसांविप्रेन्द्रजगतीतले
विद्याजो योनिजश्चैवप्रीतिजश्च प्रकीर्त्तितः । मित्रन्तु प्रीतिजं ज्ञेयं स सम्बन्धःसुदुर्लभः
मित्रमाता मित्रभार्य्यामातृतुल्या न संशयः । मित्रभ्रातामित्रपिता पितृभ्रातृसमोनृणाम्
चतुर्थं नाम सम्बन्धमित्याह कमलोद्भवः । जारश्चोपपतिर्बन्धुर्दुष्टसम्भोगकर्त्तरि ॥
उपपत्न्यां नवज्ञा च प्रेयसी चित्तहारिणी । स्वामितुल्यश्च जारश्च नवज्ञा गृहिणीसमा॥
सम्बन्धो देशभेदे च सर्वदेशे विगर्हितः । अवैदिको निन्दितस्तु विश्वामित्रेण निर्मितः
दुस्त्यजस्तु महद्भिस्तु देशभेदे च सञ्चरेत् । अकीर्त्तिजनकःपुंसां योषिताञ्च विशेषतः
तेजीयसां न दोषाय विद्यमाने युगे युगे ॥ १७० ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे जातिसम्बन्धनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ।

# एकादशोऽध्यायः ।

## विष्णुवैष्णवब्राह्मणप्रशंसा ।

शौनक उवाच ।

द्विजः समार्य्यांसंत्यज्य किञ्चकारावशेषतः । अश्विनोर्वामहाभाग कितामकस्यवंशजा ।

सौतिरुवाच ।

द्विजश्च सुतपा नाम भारद्वाजो महामुनिः । तपश्चकार कृष्णस्य लक्षवर्षं हिमालये ॥२॥
महातपस्वी तेजस्वी प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा । ज्योतिर्दर्शनं कृष्णस्य गगने सहसा क्षणम् ।
वरंसवव्रे निर्लिप्तमात्मानं प्रकृतेः परम् । भाच मोक्षं ययाचे तं दास्यं भक्तिञ्च निश्चलम्
बभूवाकाशवाणीति कुरु दारपरिग्रहम् । पश्चाद्दास्यं प्रदास्यामि भक्तिं भोगक्षये द्विज ॥
पितृणांमानसीं कन्यां ददौतस्मैविधिःस्वयम् । तस्यां कल्याणमित्रश्च बभूव मुनिपुङ्गव
यस्य स्मरणमात्रेण न भवेत् कुलिशाद्भयम् । न द्रष्टव्यं बन्धुमात्रं नूनं तत्स्मरणाद्भवेत्
कल्याणमित्रजननीं परित्यज्य महामुनिः । शशाप सूर्य्यपुत्रञ्च यज्ञभागवर्जितो भव ॥
सहोदरस्त्वैवापूज्यो भवेति च सुरापम । व्याधिग्रस्तोजडाङ्गश्च भवतेऽकीर्तिमानिति ॥
इत्युक्त्वा सुतपागेहे प्रतस्थौ सुनुनासह । अश्विभ्यांसहितःसूर्य्यः भयतो च तदन्तिकम्

पुत्राभ्यां व्याधियुक्ताभ्यां सूर्य्यस्त्रिजगतांपतिः ।
मुनीन्द्रं च सुतपसं प्रतुष्टाव च शौनक ॥ ११ ॥

सूर्य उवाच ।

क्षमस्व भगवन् विप्र विष्णुरूप युगे युगे । ममपुत्रापराधञ्च भारद्वाजमुनीश्वर ॥१२
...विष्णुनदेशायाः सुराः सर्वं च सन्ततम् । शुभ्रनैविप्ररचन्तु फलपुष्पजलादिकम् ।
... देवाः शश्वद्विप्रेषु पूजिताः । न च विप्रात् परोदेवो विप्ररूपीस्वयंहरिः
च तुष्टो नारायणः स्वयम् । नारायणे च सन्तुष्टेसन्तुष्टाः सर्वदेवताः

ास्ति गंगासमंतीर्थं न च कृष्णात् परःसुरः । न शङ्करात् वैष्णवश्चनचादिष्णुधरापरा ॥
न च सत्यात् परोधर्मो न साध्वी पार्वती परा ।
न देवात् बलवान् कश्चित् न च पुत्रात् परः प्रियः ॥ १७ ॥
च व्याधिसमःशत्रुर्न च पूज्योःगुरोःपरः । नास्तिमातृसमोबन्धुर्न च मित्रंपितुःपरम्
कादशीव्रतपरा तपो ; नानशनात्परम् । परं सर्वधनं रत्नं विद्यारत्नात्परा यथा ॥१६॥
ाश्रमपरो विप्रो नास्ति विप्रसमोगुरुः । वेदवेदाङ्गसर्वार्थमित्याह कमलोद्भवः ॥
र्यस्य वचनंश्रुत्वा भारद्वाजो ननाम तम् । निरजौचापितत्पुत्रौ चकार तपसःफलात् ॥
ाश्चतव पुत्रौ च यज्ञभाजौ भविष्यतः । इत्युक्त्वातत्रसुतपा प्रणम्यभास्करंमुनिः ॥
ाम गङ्गां स प्रस्तोहरिसेवनतत्परः । पुत्राभ्यांसहितः सूर्य्यो जगामनिजमन्दिरम् ॥
ूवस्तुस्तौ पूज्यौ च यज्ञभाजौ द्विजाज्ञया । एतत्सूर्य्यकृतंविप्रस्तोत्रं योमानवः पठेत्
विप्रपादप्रसादेन सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ २४ ॥
ह्मणेभ्यो नम इति प्रातरुत्थाय यः पठेत् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥
पृथिव्यां यानितीर्थानि तानितीर्थानिसागरे । सागरे यानितीर्थानि विप्रपादेषुतानि च ॥
विप्रपादोदकंपीत्वा यावत्तिष्ठति मेदिनी । तावत् पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरोजलम् ॥
विप्रपादोदकं पुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पिबेत् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥
महारोगी यदि पिबेत् विप्रपादोदकं द्विज । मुच्यते सर्वरोगाच्च मासमेकन्तु भक्तितः ॥

अविद्यो वा सविद्यो वा सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः ।
स एव विष्णुसदृशो न हरी-विमुखो यदि ॥ ३० ॥

घ्नन्तं विप्रं शपन्तं वा न हन्यान्न च तं शपेत् । गोभ्यः शतगुणं पूज्यो हरिभक्तश्चब्राह्मणः
पादोदकञ्च नैवेद्यं भुङ्क्ते विप्रस्य यो द्विज । नित्यं नैवेद्यभोजी यो राजसूयफलं लभेत

एकादश्यां न भुङ्क्ते यो नित्यं कृष्णं समर्चयेत् ।
तस्य पादोदकं प्राप्य स्थलं तीर्थं भवेत् ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

यो भुङ्क्तेभोजनोच्छिष्टं नित्यं नैवेद्यभोजनम् । 
कृष्णदेवस्य पूतोऽसौ जीवन्मुक्तो महीतले ॥ ३४ ॥

मत्रं विणा पयो मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । द्विजानां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥
ब्रह्मा च ब्रह्मपुत्राश्च सर्वे विष्णुपरायणाः । ब्राह्मणस्तत्कुले जातो विमुखश्च हरौ कथम् ॥
पित्रोर्मातामहादीनां संसर्गस्य गुरोश्चवा । दोषेण विमुखाः कृष्णे विप्राजीवन्मृताश्चते ॥

स किं गुरुः स किं तातः स किं पुत्रः स किं सखा ।
स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद् यो हरौ मतिम् ॥ ३८ ॥
स वैष्णवाद्द्विजाद्विप्र चण्डालो वैष्णवो वरः ।
सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत् ॥ ३९ ॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यं कृष्णे वा विमुखो द्विज ।
स एव ब्राह्मणाभासो विषहीनो यथोरगः ॥ ४० ॥

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविशति । तं वैष्णवं महापूतं जीवन्मुक्तं वदेद्विधिः ॥
पुंसां मातामहादीनां शतैः सार्द्धं हरेः पदम् । प्रयाति वैष्णवः पुंसामात्मनःकुलकोटिभिः ॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राश्चतस्रो जातयो यथा । स्वतन्त्राजातिरेका च विश्वेषु वैष्णवाभिधा ॥

ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद्गोविन्दपादपङ्कजम् ।
ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत्तेषाञ्च सन्निधौ ॥ ४४ ॥

सुदर्शनं संनियोज्य भक्तानां रक्षणाय च । तथापि नहि निश्चिन्तोऽप्यतिष्ठेद्भक्तसंनिधौ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे विष्णुवैष्णवब्राह्मण-
प्रशंसा नामैकादशोऽध्यायः ।

## द्वादशोऽध्यायः ।

### गन्धर्वराजस्य प्रसंगः ।

शौनक उवाच ।

ब्रह्मविशेषप्रसङ्गेन बभूवुर्विविधाः कथाः । उपालम्भेन प्रस्तावात् कौतुकेन श्रुता मया ॥
प्रजा वा ससृजुः केया ऊर्द्ध्वरेतास्तं कथंन । पित्रा सह विरोधेन नारदः किञ्चकार ह ॥

पितुः शापेन पुत्रस्य किं बभूव विरोधतः । पितुर्वा पुत्रशापेन सौते नन् कथ्यतां शुभम्

सौतिरुवाच ।

हंसीयतिश्चारणिश्च वोढुः पञ्चशिखस्तथा । अपान्तरतमाश्चैव सनकाद्याश्च शौनक ॥४॥
एतैर्विना च बहवो ब्रह्मपुत्राश्च सन्ततम् । सांसारिकाः प्रजावन्तो गुर्वाज्ञापरिपालकाः
बभूव्रुः पुत्रशापेन स्वयं ब्रह्मप्रजापतिः । तेनैव ब्रह्मणो मन्त्रं नोपासन्ते विपश्चितः ॥
नारदो गुरुशापेन गन्धर्वश्च बभूव सः । कथयामि सुविस्तीर्णं तद्वृत्तान्तं निशामय ॥
गन्धर्वराजः सर्वेषां गन्धर्वाणां वरो महान् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तः पुत्रहीनो हि कर्मणा ॥
गुर्वाज्ञया पुष्करे स परमेण समाधिना । तपश्चकार शम्भोश्च कृपणो दीनमानसः ॥६॥
शिवस्य कवचं स्तोत्रं मन्त्रञ्च द्वादशाक्षरम् । ददौ गन्धर्वराजाय वशिष्ठश्च कृपानिधिः ॥
जजाप परमं मन्त्रं दिव्यं वर्षशतं मुने ! । पुष्करे स निराहारः पुत्रदुःखेन तापितः ॥११
विरामे शतवर्षस्य ददर्श पुरतः शिवम् । भासयन्तं दशदिशो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥१२॥
सुव्यक्ततेजः स्वरूपञ्च भगवन्तं सनातनम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥
तपोरूपं तपोबीजं तपस्या फलदं फलम् । शरणागतभक्ताय दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
त्रिशूलपट्टिशधरं वृषभस्थं दिगम्बरम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥१५॥
तप्तस्वर्णप्रभामुष्टजटाजालधरं परम् । नीलकण्ठञ्च सर्वज्ञं नागयज्ञोपवीतकम् ॥१६॥
संहर्त्तारञ्च सर्वेषां कालं मृत्युञ्जयं परम् । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोटिसङ्काशमीश्वरम् ॥
तत्त्वज्ञानप्रदं शान्तं मुक्तिदं हरिभक्तिदम् । दृष्ट्वा ननाम सहसा गन्धर्वो दण्डवद् भुवि ॥
वशिष्ठदत्तस्तोत्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् । वरं वृणुष्वेति शिवस्तमुवाच कृपानिधिः ॥

स ययाचे हरेर्भक्तिं पुत्रं परमवैष्णवम् ॥ १६ ॥

गन्धर्वस्य वचः श्रुत्वा जहास चन्द्रशेखरः । उवाच दीनं दीनेशो दीनबन्धुः सनातनम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

कृतार्थस्त्वं वरादेकाद्न्यश्च वितचर्वणम् । गन्धर्वराज वृणुषे को वा त्वत्तोऽतिमङ्गले ॥
यस्य भक्तिर्हरौ वत्स सुदृढा सर्वमंगला । स समर्थः सर्वविश्वं कर्तुञ्च लीलया ॥२२॥
आत्मनः कुलकोटिञ्च शतं मातामहस्य च । पुरुषाणां समुद्धृत्य गोलोकं याति निश्चितम् ॥

विविधानि च पापानि कोटिजन्मार्जितानि च ।
निहत्य पुण्यभोगांश्च हरिदास्यं ददेद् ध्रुवम् ॥ २४ ॥
तावत्पत्नी सुतस्तावत् तावद्विषयमीप्सितम् ।
सुखं दुःखं भृशं तावद् यावत् कृष्णे न मानसम् ॥ २५ ॥

कृष्णे मनसि संजाते भक्तिखड्गो दुरत्ययः । नराणां कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदं करोत्यहो ॥ अथ येषां सुकृतिनां पुत्राः परमवैष्णवाः । कुलकोटिश्च तेषां वै उद्धरत्येव लीलया ॥ चरितार्थः पुमानेकाह्नमिन्दुर्यथ नरदो । किं वरेण द्वितीयेन पुंसां नुमिते मङ्गले ॥ धनं सञ्चितमस्माकं वैष्णवानां सुदुर्लभम् । श्रीकृष्णे भक्तिदास्यञ्च तनयं दातुमुत्सुकः । वरयान्यं वरं यस्य यन्मे मनसि वाञ्छितम् । इन्द्रत्वममरत्वं वा ब्रह्मत्वं लभ्यदुर्लभम् ॥ सर्वसिद्धिं महायोगं ज्ञानं मृत्युञ्जयादिकम् । सुखेन सर्वं दास्यामि हरिदास्यं त्यजन् ॥ शङ्करस्य वचः श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । उवाच दीनो दीनेशं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥

गन्धर्व उवाच ।

यच्चक्षुः पतनेनैव ब्रह्मणः पतनं भवेत् । तद्ब्रह्मत्वं स्वप्नतुल्यं कृष्णभक्तो न वेच्छति ॥ इन्द्रत्वममरत्वं वा सिद्धियोगादिकं शिव । ज्ञानं मृत्युञ्जयाद्यं वा नहि भक्तस्य वाञ्छितम् ॥ सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यं श्रीहरेरपि । तत्र निर्वाणमोक्षञ्च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः ॥ शश्वत्तत्सुदृढां भक्तिं हरेर्दास्यं सुदुर्लभम् । स्वप्ने जागरणे भक्ता वाञ्छन्त्येवं वरं वरम् ॥ तद्दास्यं वैष्णवसुतं देहि कल्पतरो वरम् । त्वां प्राप्य लभते तुष्टं वरमन्यं स वर्वटः ॥

न दास्यसीदं चेच्छम्भो वरं दुष्कृतिनश्च माम् ।
कृत्वा हि स्वशिरश्छेदं प्रदास्यामि हुताशने ॥ ३८ ॥

गन्धर्ववचनं श्रुत्वा तमुवाच कृपानिधिः । भक्तं दीनञ्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः ॥

श्रीशङ्कर उवाच ।

हरिभक्तिं हरेर्दास्यं पुत्रं परमवैष्णवम् । चिरायुषञ्च गुणिनं शश्वत्सुस्थिरयौवनम् ॥ ज्ञानिनं सुन्दरवरं गुरुभक्तं जितेन्द्रियम् । गन्धर्वराजप्रवरं वरेमं लभ मा खिद ॥ ४१ ॥
स्वालयं मुने । गन्धर्वराजः सन्तुष्ट आजगाम स्वमन्दिरम्

प्रफुल्लमानसाः सर्वे मानवाः सिद्धकर्मणः। नारदस्तस्य भार्यायांलेभे जन्म च भार
सुषाव पुत्रं सा वृद्धा पर्वते गन्धमादने। गुरुर्वशिष्ठो भगवान् नाम चक्रे यथोचित
बालकस्य च तस्यैव मङ्गलं मंगले दिने। उपशब्दोऽधिकार्थश्च पूज्ये च बर्हणः पुम
पूज्यनामाधिको बालस्तेनोपबर्हणाभिधः॥ ४५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे सौति-शौनकसंवादे ब्रह्मखण्डे नारदजन्मकथनं न
द्वादशोऽध्यायः।

---

# त्रयोदशोऽध्यायः।

## उपबर्हणभार्याया मालावत्या विलापकथनम्।

### सौतिरुवाच।

पुत्रोत्सवे च रत्नानि धनानि विविधानि च। गन्धर्वराजः प्रददौ ब्राह्मणेभ्यो मुदा
उपबर्हणस्तु कालेन हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम्। वशिष्ठद्वारा सम्प्राप्य चकार दुष्करं तपः
एकदा गण्डकीतीरे तञ्च सम्प्राप्तयौवनम्। गन्धर्वपत्न्यो ददृशुर्मूर्च्छामापुश्च तत्क्षण
ततस्तीव्रं तपः कृत्वा प्राणान् संत्यज्य योगतः। पञ्चाशत्ता बभूवुश्च कन्याश्चित्ररथस
उपबर्हणगन्धर्वं ताश्च तं वव्रिरे पतिम्। मुदा माला ददुस्तस्मै कामुकयः पितुराज
गृहीत्वा ताश्च गन्धर्वो युवा सुस्थिरयौवनः। दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च रेमे रहसि का
ततोऽपि सुचिरं राज्यंकृत्वा ताभिः सहानिशम्। जगाम ब्रह्मणः स्थानं हरिगाथां जगौ
दृष्ट्वा स रम्भारम्भोरुनर्त्तने कठिनं स्तनम्। बभूव स्खलनं तस्य गन्धर्वस्य महात्म
दृष्टं तत्याज सङ्गीतं मूर्च्छां प्राप सभातले। उच्चैः प्रजहसुर्देवा ब्रह्माकोपात् शशा
व्रज त्वं शूद्रयोनिञ्च गान्धर्वीं तनुमुत्सृज। काले वैष्णवसंसर्गात् मत्पुत्रस्त्वं भविष
विना विपत्तेर्महिमा पुंसां नैव भवेत् सुत। सुखं दुःखञ्च सर्वेषां क्रमेण प्रभवेदिति

क्रमेणगुणना । स विविर्घ्याय पुष्करम् पूरम् । क्रमात्संयम्य [illegible] तं तदा ।
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरमनाहतम् । विशुद्धमाख्यमाज्ञेति भित्त्वा षट्चक्रमेव च ।
ब्रह्मरन्ध्रं सुषुम्नां च नेत्रं च पिङ्गलां प्राणहारिणीम् । सर्वज्ञानकराश्चैव मनःसंयमनी तथा ।
विशुद्धाश्च निन्दाश्च वायुरक्षारिणीस्तथा । तेजःशुष्ककराश्चैव बलपुष्टिकरीस्तथा ॥
बुद्धिसञ्चारिणीश्चैव ज्ञानजृम्भनकारिणीम् । सर्वप्राणहराश्चैव पुनर्जीवनकारिणीम् ।
एताः षोडशधा नाडीर्भित्त्वा च हंसमेव च । मनसा सहितं ब्रह्मरन्ध्रमानीय योगतः ।
स्थित्वा मुहूर्तमात्मानमात्मन्येव युयोज ह । जातिस्मरश्च योगीन्द्रः संस्मृत्य ब्रह्म शौनक
वीणां त्रितन्त्रीं युक्त्याप्यांयामस्कन्धे निधाय च । शुद्धस्फटिकमालाश्च विभूत्यर्थमिवेश्वरे
संजल्पन् परमं ब्रह्म वेदसारं परात्परम् । परं निस्तारबीजश्च कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् ॥२०॥
प्राच्यां कृत्वा शिरःस्थानं पश्चिमे चरणद्वयम् । निधाय दर्भशयने शयानः पुरुषो यथा ।
गन्धर्वराजस्तं दृष्ट्वा भार्य्ययासह तत्क्षणम् । योगेन ब्रह्म सम्प्राप श्रीकृष्णमनसास्मरन्
पत्न्यश्च बान्धवाः सर्वे विलप्य रुरुदुर्भृशम् । जग्मुः क्रमेण शोकार्त्ता मोहिता विष्णुमायया
पञ्चाशद्योषितां मध्ये प्रधाना महिषी च या । साध्वी मालावती नाम्ना परमा प्रेयसी वरा
उच्चैरुरोद सा तीव्रं कान्तं कृत्वा च वक्षसि । इत्युवाच च शोकार्त्ता कान्तसंयोग एव च

मालावत्युवाच ।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ विदग्धरसिकेश्वर । दर्शनं देहि मां बन्धो ! निमग्नां शोकसागरे ॥२६॥
विश्रम्भके सुवसने रम्ये चन्दनकानने । पुष्पभद्रानदीतीरे पुष्पोद्याने मनोहरे ॥ २७ ॥
चन्दनाचलसान्निध्ये चारुचन्दनकानने । पुष्पचन्दनतल्पे च चन्दनानिलवासिते ॥ २८ ॥
गन्धमादनशैलैकदेशे रम्ये नदीतटे । पुंस्कोकिलनिनादे च मालतीजलशालिनि ॥ २९ ॥
श्रीशैले श्रीवने दिव्ये श्रीनिवासनिषेविते । श्रीयुक्ते श्रीपद्माम्भोजे पूतेऽच्युतकृते शुभे ।
पुरा या या कृता क्रीडा वसन्ते रहसि त्वया । मया च दुष्टदासाद्यैस्तया च दूयतेऽमनः
सुधातुल्येन वचसा सिक्ताहञ्च पुरा त्वया । दूयते सततं तेन परमात्मातिदारुणम् ॥३१॥
साधुना सह संसर्गो वैकुण्ठादपि दुर्लभः । अहो ततोऽतिविच्छेदो मरणादपि दुष्कर
तस्मात्तेषाञ्च विच्छेदः साधुशोककरः परः । ततोऽपि बन्धुविच्छेदः शोकःपरमदारुण

ततोऽपत्यवियोगो हि मरणादतिरिच्यते । सर्वस्मात् पतिभेदो हि तत्परं नास्ति सङ्कटम्
शयने भोजने स्नाने स्वप्ने जागरणेऽपि च । स्वामिविच्छेददुःखञ्च नूतनं च दिने दिने
सर्वशोकं विस्मरेत् स्त्री स्वामिसंयोगमात्रतः । बन्धुमन्यं न पश्यामि तं द्रष्टा विस्मरेत्पतिम्
नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं स्वामिना विना ।
साध्वीनां कुलजातानामित्याह कमलोद्भवः ॥ ३८ ॥
हे दिगीशाश्च दिक्पाला हे धर्म हे प्रजापते । गिरीश कमलाकान्त पतिदानञ्च देहि मे
इत्युक्त्वा विरहार्त्ता सा कन्या चित्ररथस्य च । मूर्च्छां संप्राप तत्रैव दुर्गमे गहने घने
विचेतना तत्र तस्थौ कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि । परिपूर्णं दिवानक्तं सर्वदेवैश्च रक्षिता ॥
प्रभाते चेतनां प्राप्य विललाप भृशं मुहुः । इत्युवाच पुनस्तत्र हरिं संबोध्य सा सती

मालावत्युवाच ।

हे कृष्ण जगतां नाथ नाथ नाहं जगद्बहिः । त्वमेव जगतां पाता मां न पाहि कथं प्रभो
अयं भर्त्तास्य भार्य्याहं ममेति तव मायया । त्वमेव सम्भवो भर्त्ता सर्वेषां सर्वकारणः
गन्धर्वः कर्मणा कान्तः कान्ताहमस्य कर्मणा ।
क्व गतः कर्म भोगान्ते कुत्र संस्थाप्य मां प्रियाम् ॥ ४५ ॥
को वा कस्याः पतिः पुत्रः का वा कस्य प्रिया प्रभो ।
संयुनक्ति विधाता च वियुनक्ति च कर्मणा ॥ ४६ ॥
संयोगे परमानन्दो वियोगे प्राणसङ्कटम् । शश्वज्जगति मूर्खस्य नात्मारामस्य निश्चितम्
नश्वरो विषयः सत्यं भोगश्च बान्धवो भुवि ।
स्वयं त्यक्तः सुखायैव दुःखाय त्याजितः परैः ॥ ४८ ॥
तस्मात् सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्य्यमीप्सितम् ।
ध्यायन्ते सन्ततं कृष्णपादपद्मं निरापदम् ॥ ४९ ॥
सर्वज्ञ ज्ञानिनः सन्तः का स्त्री ज्ञानवती भुवि ।
ततो मह्यं विमूढायै दातुमर्हति वाञ्छितम् ॥ ५० ॥
न मे वाञ्छाऽमरत्वे च शत्रुत्वे मोक्षवर्त्मनि । इमं कान्तं वरं देहि चतुर्वर्गकरं परम् ॥

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

### विष्णुमालावतीसंवादवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

तत्र स्थित्वा क्षणं देवा ब्रह्मेशानपुरोगमाः । ययुर्मालावतीमूलं परं मंगलदायकाः ॥ १ ॥
मालावती सुरान् दृष्ट्वा प्रणनाम पतिव्रता । रुरोद कान्तं संस्थाप्य देवानां सन्निधौ मुने ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कश्चिद्ब्राह्मणबालकः । आजगाम सुराणाञ्च सभामतिमनोहरः ॥
दण्डी छत्री शुक्लवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् । दीर्घपुस्तकहस्तश्च सुप्रशान्तश्च सस्मितः
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा । सुरानसंभाष्य तत्रैव विस्मितान्विष्णुमायया
तत्रोवास सभामध्ये तारामध्ये यथा शशी । उवाच देवान् सर्वांश्च मालतींश्च विचक्षणः

ब्राह्मण उवाच ।

कथमत्र सुराः सर्वे ब्रह्मेशानपुरोगमाः । स्वयं विधाता जगतां स्रष्टाऽत्र केन कर्मणा ॥
सर्वब्रह्माण्डसंहर्त्ता शम्भुरत्र स्वयं विभुः । अहो त्रिजगतां साक्षी धर्मश्च सर्वकर्मणाम्
कथं रविः कथं चन्द्रः कथमत्र हुताशनः । कथं कालो मृत्युकन्या कथं वाऽत्र यमादयः
हे मालावति त्वत्क्रोडे शवः कस्तेऽतिशुष्कितः ।
जीवितायाः कथं मूले योषितश्च पुमान् शवः ॥ १० ॥
इत्युक्त्वा तांश्च तां विप्रो विरराम सभातले ।। मालावती तं प्रणम्य समुवाच विचक्षणम्

मालावत्युवाच ।

आनन्दपूर्वकं वन्दे विप्ररूपं जनार्दनम् । तुष्टा देवा हरिस्तुष्टो यस्य पुष्पजलेन च ॥१२
अवधानं कुरु विभो ! शोकार्त्ताया निवेदने । सभा रूपा सतां शश्वद्योग्यायोग्ये कृपावताम्
कन्या चित्ररथस्य च । सर्वे मालावतीं कृत्वा वदन्ति विप्रपुङ्गव ॥
लक्षयुगं रम्ये स्थाने स्थाने मनोहरे । कृता क्रीडा च स्वच्छन्दमनेन स्वामिना सह

प्रिये स्नेहो हि साध्वीनां यावान् विप्रेन्द्र योषिताम् ।
सर्वं शास्त्रानुसारेण जानासि त्वं विचक्षण ॥ १६ ॥

अकस्मात् ब्रह्मणःशापात् प्राणांस्तत्याजमत्पतिः । देवानुद्दिश्यविलपे यथाजीवतिमत्पतिः
स्वकार्य्यसाधने सर्वे व्यग्राश्च जगतीतले । भावाभावं न जानन्ति केवलंस्वार्थतत्पराः ॥

सुखं दुःखं भयं शोकः सन्तापः कर्मणां नृणाम् ।
ऐश्वर्यं परमानन्दो जन्म मृत्युश्च मोक्षणम् ॥ १६ ॥

देवाश्च सर्वजनका दातारः कर्मणां फलम् । कर्त्तारः कर्मवृक्षाणां मूलच्छेदश्चलीलया ॥
न हि देवात्परोबन्धुर्न हि देवात्परो बली । दयावान्न हि देवाच्च न च दाता ततः परः
सर्वान् देवानहं याचे पतिदानं ममेप्सितम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदांश्चसुरद्रुमान् ॥

यदि दास्यन्ति देवा मे कान्तदानं यथेप्सितम् ।
भद्रं तदन्यथा तेभ्यो दास्यामि स्त्रीवधं ध्रुवम् ।
शपिष्यामि च सर्वांश्च दारुणं दुर्निवारकम् ।
दुर्निवार्य्यः सतीशापस्तपसा येन धार्य्यते ॥ २४ ॥

इत्युक्त्वा मालतीसाध्वी शोकार्त्तासुरसंसदि । विरराम द्विजश्रेष्ठस्तामुवाच च शौनक ॥

ब्राह्मण उवाच ।

कर्मणां फलदातारो देवाः सत्यञ्च मालति । न सद्यः सुचिरेणैव धान्यं कृषकवन्नृणाम्
गृही च कर्षकद्वारा क्षेत्रेधान्यं वपेत् सति ! । तदङ्कुरो भवेत्कालेकालेवृक्षः फलत्यपि ॥
काले सुपक्वं भवति काले प्राप्नोति तद्गृही । एवं सर्वं समुन्नेयं चिरेण कर्मणः फलम्॥
मही वपति संसारे गृहस्थो विष्णुमायया । काले तदङ्कुरोवृक्षः कालेप्राप्नोति तत्फलम्
पुण्यवान् पुण्यभूमौ च करोति सुचिरन्तपः । तेषाञ्च फलदातारो देवाः सत्यं न संशयः
ब्राह्मणानांमुखे क्षेत्रे श्रेष्ठेऽनूपरएव च । यो यज्जुहोतिभक्त्या च स तत् प्राप्नोतिनिश्चितम्
न बलं न च सौन्दर्य्यंनैश्वर्य्यं न धनंसुतः । नैवस्त्री नच सत्कान्तःकिम्भवेत्तपसा विना
सेवंतेप्रकृतिपोहि भक्त्याजन्मनिजन्मनि । सलभेत् सुन्दरींकान्तांविनीताञ्चगुणान्विताम्
श्रियञ्च निश्चलां पुत्रं पौत्रं भूमिं धनं प्रजाम् । प्रकृतेश्च वरेणैव लभेद्भक्तोऽप्यलीलया ॥

सिद्धं सिद्धेश्वरञ्च सिद्धिदं सिद्धिकारणम् । ब्रह्मानन्दं महानन्दं परं मृत्युञ्जयं प्रभुम् ॥
[illegible] । [illegible]
[illegible] पुत्रं पौत्रं धनं [illegible] । [illegible] ॥
[illegible] हि लभेत् [illegible] ध्रुवम् । [illegible]
यो भक्त्या भजते भक्त्या [illegible] दिनेश्वरम् । विद्यामारोग्यमानन्दं धनं पुत्रं लभेद् ध्रुवम्
गणेश्वरं यो भजते देवदेवं सनातनम् । सर्वाभ्युदयं [illegible] भक्त्या जन्मनि जन्मनि ॥
विघ्ननाशो भवेत्तस्य स्वप्ने जागरणेऽनिशम् । परमानन्दमैश्वर्यं पुत्रं पौत्रं धनं प्रजाः ।
ज्ञानं विद्यां सुकवितां लभते स्वरेण च । भजते यो हि विष्णुञ्च सर्वसाकान्तं [illegible]
धर्मार्थी [illegible] सर्वनिर्वाणमन्यथा ध्रुवम् । [illegible] सर्वसम्पल्लभेद्ध्रुवम्
सर्वे तस्य सर्वधर्मं यशः कीर्तिमनुत्तमाम् । विष्णुं निषेव्य सावित्रीं यो मूढो लभते यदा
विडम्बितो विधात्राऽसौ मोहितो विष्णुमायया । मायानारायणी नाना सर्वसंसारविडम्बती
सा कृपां कुरुते यस्मै विष्णुमन्त्रं ददाति तम् । धर्मं यो भजते धर्मी सर्वधर्मं लभेद् ध्रुवम्
इहलोके सुखं भुक्त्वा याति विष्णोः परं पदम् । यो यं देवं भजेद्भक्त्या स वाञ्छां लभते च तम्
काले पश्चात्तेन सार्धं परं विष्णोः पदं लभेत् । श्रीकृष्णं भजते यो हि निर्गुणं प्रकृतेः परम्
ब्रह्माविष्णुशिवादीनां सेव्यं बीजं परात्परम् । अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥४॥
साकारञ्च निराकारं ज्योतिः स्वेच्छामयं विभुम् । सर्वाधारञ्च सर्वेशं परमानन्दमीश्वरम्
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । जीवन्मुक्तः स सत्यं हि न परं लभते सुखम् ॥
स सर्वं मन्यते तुच्छं सालोक्यादि चतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा मोक्षं यत्तुच्छवत्सतः ॥
ऐश्वर्यं लोष्ठतुल्यञ्च नश्वरं चैव मन्यते । इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च चिरजीवित्वमेव वा ॥५१॥
जलबुद्बुदवद्बुद्ध्या चातितुच्छं न गण्यते । स्वप्ने जागरणे वापि शश्वत् सेवाऽभिवाञ्छति
दास्यं विना न याचेत श्रीकृष्णस्य पदं परम् । तत्पादाब्जे दृढां भक्तिलब्ध्वा पूर्णो निरन्तरम्
परिपूर्णतमं ब्रह्म निषेव्य सुस्थिरः सदा । आत्मनः कुलकोटिञ्च शतं मातामहस्य च ॥
श्वशुरस्य शतं पूर्वमुद्धृत्य चावलीलया । दासं दासीं प्रसूं भार्यां पुत्रादपि परं शतम् ॥५॥
उद्धरेत् कृष्णभक्तश्च गोलोकं याति निश्चितम् । तावद्गर्भं वसेत् कामी तावतीयमयातना

ावद् गृही च भोगार्थी यावत्कृष्णं न सेवते । गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्यकर्णे प्रविशयति
मस्तल्लिखनं दूरं करोति तत्क्षणं भिया । मधुपर्कादिकं ब्रह्मा पुरैव सन्नियोजयेत् ६०
हो विलङ्घ्य मल्लोकं मार्गेणानेन यास्यति । तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति कल्पकोटिशतैरपि
रितानि च भीतानि कोटिजन्मकृतानि च । तं विहाय पलायन्ते वैनतेयं यथोरगाः ॥
ातनं कृतं कर्म यद् यत्तस्य शुभाशुभम् । छिनत्ति कृष्णचक्रेण तीक्ष्णधारेण सन्ततम्
विहाय जरां मृत्युर्याति चक्रभिया सति । अन्यथा शतखण्डं तां कुरुते च सुदर्शनः॥
:शङ्को यातिगोलोकं विहाय मानवीतनुम् । गत्वादिव्यां तनुंधृत्वा श्रीकृष्णंसेवतेसदा
यत् कृष्णोहिगोलोके तावद्भक्तो वसेत् सदा । निमेषंमन्यते दासोनश्वरं ब्रह्मणोवयः
ते श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे विष्णुमालतीसंवादो नाम
चतुर्दशोऽध्यायः ।

---

## पञ्चदशोऽध्यायः ।

### मालावतीकालपुरुषसंवादवर्णनम् ।

ब्राह्मण उवाच ।

केन रोगेण हि मृतोऽधुना साध्वि! तव प्रियः ।
सर्वरोगचिकित्साञ्च जानामि च चिकित्सकः ॥ १ ॥

ल्यं मृतं रोगात् सप्ताहाभ्यन्तरे सति! ।महाज्ञानेन तं जीवं जीवयाम्यवलीलया ॥
मृत्युं यमं कालं व्याधिमानीय त्वत्पुरः । निबध्यदातुंशक्तोऽहं व्याधो यद्वश्यापशुंयथा
न सञ्चरेद् व्याधिर्देहेषु देहधारिणाम् । व्याधीनां कारणं यद्यत् सर्वं जानामिसुन्दरि
न सञ्चरेद् व्याधिबीजं दुष्टममङ्गलम् । तदुपायं विजानामि शास्त्रतत्त्वानुसारतः ॥
ा योगेन खेदेन देहत्यागं करोति च । तस्य तं जीवनोपायं जानामि योगधर्मतः ॥
तस्य वचः श्रुत्वा स्फीतामालावतीसती । सस्मितास्निग्धचित्ता सा समुवाचप्रहर्षिता

मालावत्युवाच ।

[illegible] पुंसां विनाभार्त्रा [illegible] । [illegible] मे [illegible] ॥ [illegible] कान्तं [illegible] । [illegible] न [illegible] । [illegible] कान्तं [illegible] वरः । [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] न [illegible] ॥ [illegible] न कोऽपि [illegible] न कोऽपि [illegible] । [illegible] स्वामीकर्ता च हर्ता च शास्ता पोषाय [illegible] । [illegible]

कन्या सत्कुलजाता या सा कान्तस्यानुगामिनी ।

या स्वतन्त्रा च सा दुष्टा स्वभावात् कुत्सिता ध्रुवम् ॥ १६ ॥

दुष्टा परपुमांसञ्च सेवते या नराधमा । सा निन्दति पतिं शश्वदसद्वंशसमुद्भवा ॥ १७ ॥

उपबर्हणभार्य्याहं कन्या चित्ररथस्य च । पञ्चाशद्वर्षं [illegible] कान्तभक्ता सदा द्विज ॥ १८ ॥

सर्वं कालयितुं शक्तस्त्वञ्च वेदविदां वर । कालं यमं मृत्युकन्यामस्माकं समानय ॥ १९ ॥

मालावतीवचः श्रुत्वा विप्रो वेदविदां वरः । सभामध्ये समाहूय तान् प्रत्यक्षं चकार ह ॥ २० ॥

ददर्श मृत्युकन्याञ्च प्रथमं मालती सती । कृष्णवर्णां घोररूपां रक्ताम्बरधरां वराम् ॥ २१ ॥

सस्मितां षड्भुजां शान्तां दयायुक्तां महासतीम् ।

कालस्य स्वामिनो वामे चतुष्षष्टिसुतान्विताम् ॥ २२ ॥

कालं नारायणांशञ्च ददर्श सुव्रता सती । महोग्ररूपं विकटं ग्रीष्मसूर्य्यसमप्रभम् ॥ २३ ॥

षड्वक्त्रं षोडशभुजं चतुर्विंशतिलोचनम् । षट्पादं कृष्णवर्णञ्च रक्ताम्बरधरं परम् ॥ २४ ॥

देवस्य देवं विकृतं सर्वसंहाररूपिणम् । कालाधिदेवं सर्वेशं भगवन्तं सनातनम् ॥ २५ ॥

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यमक्षमालाकरं धरम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् ॥ २६ ॥

सती ददर्श पुरतो व्याधिसंघान् सुदुर्जयान् ।

वयसाऽतिमहावृद्धान् स्तनन्धान् मातृसन्निधौ ॥ २७ ॥

...शूलपादं कृष्णवर्णं धर्मिष्ठं रविनन्दनम् । जपन्तं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥ २८
...र्माधर्मविचारज्ञं परं धर्मस्वरूपिणम् । पापिनामपि शास्तारं ददर्श पुरतो यमम् ॥ २९
...ञ्च दृष्ट्वा च निःशङ्का पप्रच्छ प्रथमं यमम् । मालावती महासाध्वी प्रहृष्टवदनेक्षणा ॥

मालावत्युवाच ।

... धर्मराज धर्मिष्ठ धर्मशास्त्रविशारद । कालव्यतिक्रमे कान्तं कथं हरसि मे विभो ३१

यम उवाच ।

...प्राप्तकालो म्रियते न कश्चिज्जगतीतले । ईश्वराज्ञां विना साध्वि नामृतं चालयाम्यहम्
...हं कालो मृत्युकन्या व्याधयश्च सुदुर्जयाः । निषेकेण प्राप्तकालं कालयन्तीश्वराज्ञया
...त्युकन्या विचारज्ञा यं प्राप्नोति निषेकतः । तमहं कालयाम्येव पृच्छ तां केन हेतुना ३४

मालावत्युवाच ।

त्वमपि स्त्री मृत्युकन्या जानासि स्वामिवेदनम् ।
कथं हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रिये ॥ ३५ ॥

मृत्युकन्योवाच ।

... विश्वसृजा सृष्टाऽप्यहमेवात्र कर्मणि । न च क्षमा परित्यक्तुं बहुना तपसा सति ॥
...सतीनां मध्ये च काचित्तेजस्विनी वरा । मामेव भस्मसात् कर्त्तुं क्षमा यदि भवेद्ध्रुवे
...पच्छन्तिरेवेह तदा भवति सुन्दरि । पुत्राणां स्वामिनः पश्चात् भविता यद्भविष्यति
...न प्रेरिताऽहञ्च मत्पुत्रा व्याधयश्च वै । न मत्सुतानां दोषश्च न च मे शृणु निश्चितम्
... कालं महात्मानं धर्मज्ञं धर्मसंसदि । तदा यदुचितं भद्रे तत्करिष्यसि निश्चितम्

मालावत्युवाच ।

...ल कर्मणां साक्षिन् कर्मरूप सनातन । नारायणांशो भगवन् नमस्तुभ्यं पराय च
... हरसि मत्कान्तं जीवितायां मयि प्रभो । जानासि सर्वदुःखञ्च सर्वज्ञस्त्वं कृपानिधे

कालपुरुष उवाच ।

...थाऽहंकोयमःका च मृत्युकन्या च व्याधयः । वयं भ्रमामः सततमीशाज्ञापरिपालकाः
... स्रष्टा च प्रकृतिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सुरा मुनीन्द्रा मनवो मानवाः सर्वजन्तवः ॥

ध्यायन्ते सन्ततं सन्तो योगिनश्च निरन्तरम् । [illegible]
यद्गुणान् [illegible] सन्तो [illegible] मङ्गलात् । [illegible]
[illegible] शङ्करः सर्वेशः [illegible] भगवान् । [illegible]
[illegible] महाः [illegible] । [illegible]
यस्याज्ञया च वातः पुष्पाणि च फलानि च । [illegible]
यस्याज्ञया जलाधारा सर्वाधारा वसुन्धरा । क्षमावती च पृथिवी कम्पिता च भवेत् [illegible]
यद्भयात् मोहिता माया मायया [illegible] । सर्वप्रसूः प्रकृतिः सा भीता यद्भयाद्
यस्यान्तं न विदुर्वेदा यन्मूलतया अपि । पुराणानि च सर्वाणि यस्यैव स्तुतिकारकाः
यस्य नाम विधिर्विष्णुः सेवते सुमहान् विराट् । षोडशांशो भगवतः स एवैकोऽसौ विभोः
सर्वेश्वरः कालकालो मृत्योर्मृत्युः परात्परः । सर्वविघ्नविनाशाय तं कृष्णं परिकल्पय
सर्वार्थदश्च भर्तारं प्रदास्यति कृपानिधिः । इमे यस्याश्रिताः सर्वे स दाता सर्वसम्पदाम्
इत्युक्त्वा कालपुरुषो विरराम च शौनक । कथां कथितुमारेभे पुनरेव तु ब्राह्मणः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे मालावतीकालपुरुषसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ।

---

## षोडशोऽध्यायः ।

### विष्णुमालावतीसंवादे व्याधिप्रणयनम् ।

ब्राह्मण उवाच ।

दृष्टः कालो यमो मृत्युकन्या व्याधिगणा अहो । कस्तेऽधुनावसन्देहस्तं पृच्छ कन्यके शुभे ॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा हृष्टा मालावती सती । यन्मनोनिहितं प्रश्नं चकार जगदीश्वरम् ॥

मालावत्युवाच ।

त्वया यत् कथितो व्याधिः प्राणिनां प्राणहारकः । तत्कारणञ्च विविधं सर्ववेदे निरूपितम् ।
यतो न सञ्चरेद् व्याधिर्दुर्निवारोऽशुभावहः । तदुपायञ्च साकल्यं भवान् वक्तुमिहार्हति ।

यद् यत् पृष्टमपृष्टं वा ज्ञातमज्ञातमेव वा । सर्वं कथय तद्भद्रं त्वं गुरुर्दीनवत्सलः ॥ ५ ॥
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः । संहितां वक्तुमारेभे संहितार्थञ्च वैद्यकीम् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

वन्दे तं सर्वतत्त्वज्ञं सर्वकारणकारणम् । वेदवेदाङ्गबीजस्य बीजं श्रीकृष्णमीश्वरम् ॥
स ईशश्चतुरो वेदान् ससृजे मङ्गलालयान् । सर्वमङ्गलमङ्गल्यबीजरूपः सनातनः ॥ ८ ॥
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः । विचिन्त्यतेषामर्थञ्चैवायुर्वेदं चकार सः
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः । स्वतन्त्रसंहितां तस्माद्भास्करश्च चकार सः
भास्करश्च स्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वसंहिताम् । प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च । व्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि मत्तो निशामय
धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशीराजोऽश्विनीसुतौ । नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः
जावालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च । एते वेदाङ्गवेदज्ञाः षोडश व्याधिनाशकाः
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम् । धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति
चिकित्सादर्पणं नाम दिवोदासश्चकार सः । चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशीराजश्चकार सः
चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ । तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् । ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥ १८
च्यवनो जीवदानञ्च चकार भगवानृषिः । चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ॥ १९
सर्वसारं चन्द्रसुतो जावालस्तन्त्रसारकम् । वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम् । द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसम्भवः ॥ २१
चिकित्साशास्त्रबीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश । व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकराणि च
मथित्वा ज्ञानमन्थेनैवायुर्वेदपयोनिधिम् । ततस्तस्मादुदाजह्रुर्नवनीतानि कोविदाः ॥
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम् । आयुर्वेदं सर्वबीजं सर्वं जानासि सुन्दरि
व्याधेस्तत्त्वं परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ २५
आयुर्वेदस्य विज्ञाता चिकित्सासु यथार्थवित् । धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यः प्रकीर्तितः
जनकः सर्वरोगाणां दुर्वारो दारुणो ज्वरः । शिवभक्तश्च योगी च निष्ठुरो विकृताकृतिः

भीमस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः। भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः॥
मन्दाग्निस्तस्य जनको मन्दाग्नेर्जनकाज्वरः। पित्तश्लेष्मसमीराश्च प्राणिनां दुःखदायकाः
वायुजः पित्तजश्चैव श्लेष्मजश्च तथैव च। ज्वरभेदाश्च त्रिविधाश्चतुर्थश्च त्रिदोषजः॥
पाण्डुश्च कामलः कुष्ठः शोथः प्लीहा च शूलकः। ज्वरातिसारग्रहणीकासव्रणहलीमकाः
मूत्रकृच्छ्रश्च गुल्मश्च रक्तदोषविकारजः। विषमेहश्च कुब्जश्च गोदश्च गलगण्डकः॥२१
भ्रमरी सन्निपातश्च विसूची दारुणी सति। एषां भेदप्रभेदेन चतुःषष्टी रुजः स्मृताः॥
मृत्युकन्यासुताश्चैतेजरातस्याश्चकन्यका। जराचभ्रातृभिःसार्द्धंशश्वद् भ्रमति भूतल
एते चोपायवेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम्। पलायन्ते च तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः॥
चक्षुर्जलञ्च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम्। कर्णयोर्मूर्ध्नि तैलञ्च जराव्याधिविनाशनम्
वसन्ते भ्रमणं वह्निसेवां स्वल्पं करोति यः। बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति
स्नातशीतोदकस्नायी सेवते चन्दनद्रवम्। नोपयाति जरा तञ्च निदाघेऽनिलसेवकम्॥
प्राविष्युष्णोदकस्नायी घनतोयं च सेवते। समये च समाहारी जरा तं नोपगच्छति॥
शरद्रौद्रं न गृह्णाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत्। स्नातस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति॥
स्नातस्नायी च हेमन्ते काले वह्निञ्च सेवते। भुङ्क्ते नवान्नमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति
शिशिरेऽप्युष्णवह्निञ्च नवोष्णान्नञ्च सेवते। यत्र घोष्णोदकस्नायी जरा तं नोपच्छति॥
सद्योमांसं नवान्नञ्च बालास्त्रीक्षीरभोजनम्। घृतञ्च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति
भुङ्क्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयतेजलम्। नित्यंभुङ्क्तेचताम्बूलंजरातंनोपगच्छति
दधि हैयङ्गवीनञ्च नवनीतं तथा गुडम्। नित्यं भुङ्क्ते संयमी यो जरा तं नोपगच्छति॥
शुष्कमांसं स्त्रियं वृद्धां बालार्कं तरुणं दधि। संसेवन्ते जरा याति प्रहृष्टा भ्रातृभिःस
रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्वलाः। ताननुैति जरा हृष्टा भ्रातृभिः सह सुन्दरि
रजस्वला च कुल्टा चावीरा जारदूतिका। शूद्रयाजकपत्नी या ऋतुहीना च या सति।
यो हि तासामन्नभोजी ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः। तेन पापेन सार्द्धं सा जरा तमुपगच्छति
पापानां व्याधिभिःसार्द्धं मित्रता सन्ततं ध्रुवम्। पापंव्याधिजरावीजंविघ्नवीजञ्चनिश्चि
पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा। पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयङ्क

तस्मात् पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम् । भारते सन्ततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः ॥
स्वधर्माचारयुक्तञ्च दीक्षितं हरिसेवकम् । गुरुदेवातिथीनाञ्च भक्तं सक्तं तपःसु च ॥५३
व्रतोपवासयुक्तञ्च सदा तीर्थनिषेवकम् । रोगा द्रवन्ति तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥ ५४
एतान् जरा न सेवेत् व्याधिसंघश्च दुर्जयः । सर्वं योग्यमसमये काले सर्वं ग्रसिष्यति
ज्वरश्च सर्वरोगाणां जनकः कथितः सति । पित्तश्लेष्मसमीराश्च ज्वरस्य जनकास्त्रयः
एते यथा सञ्चरन्ति स्वयं यान्ति च देहिषु । तमेव विविधोपायं साध्वि मत्तो निशामय
क्षुधि जाज्वल्यमानायामाहाराभाव एव च । प्राणिनां जायते पित्तं चक्रे च मणिपूरके
तालबिल्वफलं भुङ्क्त्वा जलपानञ्च तत्क्षणम् । तदेव तु भवेत् पित्तं सद्यःप्राणहरं परम्
तप्तोदकञ्च शरदि भाद्रे तिक्तं विशेषतः । दैवग्रस्तश्च यो भुङ्क्ते पित्तं तस्य प्रजायते ॥
सशर्करञ्च धन्याकं पिष्टं शीतोदकान्वितम् । चनकं सर्वगव्यञ्च दधि तक्रविवर्जितम्
बिल्वतालफलं पक्वं सर्वमैक्षवमेव च । आर्द्रकं मुद्गयूषञ्च तिलपिष्टं सशर्करम् ॥ ६२ ॥
पित्तक्षयकरं सद्योबलपुष्टिप्रदं परम् । पित्तनाशञ्च तद्बीजमुक्तमन्यं निबोध मे ॥ ६३ ॥
भोजनानन्तरं स्नानं जलपानं विना तृषा । तिलतैलं स्निग्धतैलं स्निग्धमामलकीद्रवम् ॥
पर्युषितान्नं तक्रञ्च पक्वं रम्भाफलं दधि । मेघाम्बु शर्करातोयं सुस्निग्धजलसेचनम् ॥
नारिकेलोदकं रूक्षस्नानं पर्युषिते जले । तरमुजापक्वफलं सुपक्वं कर्कटीफलम् ॥ ६६
स्नातस्नानञ्च वर्षासु मूलकं श्लेष्मकारकम् । ब्रह्मरन्ध्रे च तज्जन्म महद्वीर्य्यविनाशनम् ॥
वह्निस्वेदं भ्रष्टभक्ष्यं पक्वतैलविशेषकम् । भ्रमणं शुष्कभक्ष्यञ्च शुष्कपक्वहरीतकी ॥ ६८ ॥
पिण्डारकमपक्वञ्च रम्भाफलमपक्वकम् । वेसवारः सिन्धुवार अनाहारमपानकम् ॥६९॥
सघृतं रोचनाचूर्णं सघृतं शुष्कशर्करम् । मरीचं पिप्पलं शुष्कमार्द्रकं जीवकं मधु ॥७०॥
द्रव्याण्येतानि गान्धर्वि ! सद्यःश्लेष्महराणि च । बलपुष्टिकराण्येव वायुबीजं निशामय
भोजनानन्तरं सद्योगमनं धावनं तथा । छेदनं वह्नितापश्च शश्वद्भ्रमणमैथुनम् ॥७२॥
वृद्धास्त्रीगमनञ्चैव मनःसन्ताप एव च । अतिरूक्षमनाहारं युद्धं कलहमेव च ॥ ७३ ॥
कटुवाक्यं भयं शोकः केवलं वायुकारणम् । आज्ञाख्यचक्रे तज्जन्म निशामय तदौषधम्
पक्वं रम्भाफलञ्चैव सबीजं शर्करोदकम् । नारिकेलोदकञ्चैव सद्यस्तक्रं सुपिष्टकम् ॥

[illegible] इति [illegible] [illegible]म्। [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]म्। [illegible] ॥
शीतोष्ण[illegible]म्। [illegible]
[illegible] कथितं [illegible]। [illegible]म्। [illegible]
व्याधिसंघश्च कथितास्तन्त्राणि विविधानि च। तानि [illegible]
तन्त्राण्येतानि सर्वाणि व्याधिक्षयकराणि च। रसायनानि [illegible]
न ज्ञातः कश्चित् [illegible]। [illegible] च। [illegible]
येन योगेन त्वत्कान्तो मृतः कथय शोभने॥ तदुपायं करिष्यामि येन जीवेदयं स[illegible]

सौतिरुवाच।

ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा कन्या चित्ररथस्य च। कथां कथितुमारेभे सा गान्धर्वी[illegible]

मालावत्युवाच।

योगेन प्राणांस्तत्याज ब्रह्मणः शापहेतुना। सभायां लज्जितः कान्तो मम [illegible]
सर्वं श्रुतमपूर्वञ्च शुभाख्यानं मनोहरम्। [illegible] विप्रं विना ॥[illegible]
अधुना मत्प्राणकान्तं देहि देहि विचक्षण। [illegible]
मालावतीवचः श्रुत्वा विप्ररूपी जनार्दनः। सभां जगामदेवानां शीघ्रं विप्रस्तदन्तिका[illegible]

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे मालावतीविष्णुसंवादे
चिकित्साप्रणयने षोड़शोऽध्यायः।

---

## सप्तदशोऽध्यायः।

### देवानांसमीपेविष्णोर्गमनम्।

सौतिरुवाच।

दृष्ट्वा द्विजं देवसंघः प्रत्युत्थानं चकार च। परस्परञ्च सम्भाषा बभूव तत्र संसदि
[illegible] तं बुबुधिरे देवाः श्रीहरिं विप्ररूपिणम्। पौर्वापर्यं विस्मृताश्च मोहिता विष्णुमाय[illegible]

सुरान् सम्बोध्य विप्रश्च वाचा मधुरया द्विज । उवाचसत्यं परमं प्राणिनांयत्शुभावहम्

ब्राह्मण उवाच ।

उपबर्हणमार्य्येयं कन्या चित्ररथस्य च । ययाचे जीवदानञ्च स्वामिनः शोककर्पिता ॥
अधुना किमनुष्ठानमस्यकार्य्यस्य निश्चितम् । तन्मांब्रूहिसुराःसर्वेनित्यंयत्समयोचितम्
शप्तुकामा सुरान् सर्वान्साध्वीतेजस्विनीवरा । अहं क्षेमाययुष्माकमागतोबोधितासती
स्तुतिः कृता च युष्माभिः श्वेतद्वीपेहरेरपि । युष्माकमीशो विष्णुश्च कथमेवात्र नागतः
बभूवाकाशवाणीति पश्चाद् यास्यति केशवः । विपरीतं कथम्भूतं वाणीवाक्यमचञ्चलम्
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरुः । उवाच वचनं सत्यं हितं परममङ्गलम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

मत्पुत्रो नारदः शप्तो गन्धर्वश्चोपबर्हणः । योगेन प्राणांस्तत्याज पुनः शापान्ममैव हि
कालं लक्षयुगं व्याप्य स्थितिरस्य महीतले । शूद्रयोनि ततः प्राप्य भवितामत्सुतः पुनः
अस्य कालावशेषस्य कश्चिदस्ति द्विजोत्तम ! सत्तु वर्षसहस्रञ्चैवायुरस्यास्ति साम्प्रतम्

दास्यामि जीवदानञ्च स्वयं विष्णोःप्रसादतः ।
यथैनं न स्पृशेत् शापस्तत् करिष्यामि निश्चितम् ॥ १३ ॥

नागतो हरिश्चेति त्वया यत् कथितं द्विज ! हरिः सर्वत्र सर्वात्मा विग्रहःकुत आत्मनः
स्वेच्छामयः परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः । सर्वं पश्यति सर्वज्ञः सर्वत्रास्ति सनातनः ॥
विः पश्चयांतिवचनोणुश्चसर्वत्रवाचकः । सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णुःप्रकीर्त्तितः

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतः पुमान् ।
भक्त्या च यःस्मरेद्विष्णुं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ १७ ॥

कर्मारम्भे च मध्ये वा शेषे विष्णुञ्च यः स्मरेत् । परिपूर्णंतस्य कर्म वैदिकञ्चभवेद्द्विज
अहं स्रष्टा च जगतां विधाता संहरो हरः । धर्मश्च कर्मणां साक्षी यस्याज्ञापरिपालकः

कालः संहरते लोकान् यमः शास्ता च पापिनाम् ।
उपैति मृत्युः सर्वांश्च भिया यस्याज्ञया सदा ॥ २० ॥

सर्वेशा या च सर्वाद्याप्रकृतिःसर्वसूःपुरा । सा भीता यस्यपुरतो यस्याज्ञापरिपालिका

महेश्वर उवाच ।

पुत्राणां ब्रह्मणस्तेषां कस्य वंशोद्भवो भवान् । वेदानधीत्य भवता ज्ञातः कःसारएव

शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्य कस्त्वं नाम्ना च भो द्विज !

विमत्त्यर्कातिरिक्तश्च शिशुरूपोऽसि साम्प्रतम् ॥ २३ ॥

विडम्बयसि देवांश्च विष्णुमस्माकमीश्वरम् । हृदिस्थञ्च न जानासिपरमात्मानमीश्वरम्

यस्मिन् गते पतेद्देहो देहिनां परमात्मनि । प्रयान्ति सर्वे तत्पश्चात् नरदेवानुगा इव ।

जीवस्तत्प्रतिबिम्बश्च मनो ज्ञानञ्च चेतना । प्राणाश्चेन्द्रियवर्गाश्च बुद्धिर्मेधाधृतिः स्मृति

निद्रादया च तन्द्रा च क्षुत्तृष्णापुष्टिरेव च । श्रद्धासंतुष्टिरिच्छा च क्षमालज्जादिका स्मृता

प्रयाति यत्पुरः शक्तिरीश्वरे गमनोन्मुखे । एते सर्वे च शक्तिश्च यस्याज्ञापरिपालका

ईश्वरे च स्थिते देही क्षमश्च सर्वकर्मसु । गतेऽस्पृश्यः शवस्त्याज्यः कस्तं देहीन मन्यते

स्वयं ब्रह्मा च जगतां विधाता सर्वकारकः । पदारविन्दमनिशं ध्यायते द्रष्टुमक्षमः ॥ ३

युगलक्षं तपस्तप्तं श्रीकृष्णस्य च वेधसा । तदा बभूव ज्ञानी च जगत् स्रष्टुं क्षमस्तदा ।

असंख्यकालं सुचिरं तपस्तप्तं हरेर्मया । तृप्तिं जगाम न मनस्तृप्यते केन मङ्गले ॥ ३

अधुना पञ्चवक्त्रेण यन्नामगुणकीर्त्तनम् । गायन् भ्रमामि सर्वत्र निःस्पृहः सर्वकर्मसु ।

मत्तो याति च मृत्युश्च यन्नामगुणकीर्त्तनात् । शश्वज्जपन्तं तन्नाम दृष्ट्वा मृत्युः पलायते

सर्वब्रह्माण्डसंहर्त्ताऽप्यहं मृत्युञ्जयाभिधः । सुचिरं तपसा यस्य गुणनामानुकीर्त्तनम्

काले तत्र विलीनोऽप्रमाविर्भूतस्ततः पुनः । न कालो मम संहर्त्ता न मृत्युर्यत्प्रसादत

गोलोके यः स वैकुण्ठे श्वेतद्वीपे स एव च । अंशांशिनोर्न भेदश्च ब्रह्मन्वह्निस्फुलिङ्गय

मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । अष्टाविंशतिमे शक्रे गते च ब्रह्मणो दिनम् ।

एतत्संख्याविशिष्टस्य शतवर्षायुषो विधेः । पाते लोचनपातश्च यद्विष्णोः परमात्मन

अहं कल्पानामृग्यः कृष्णस्य परमात्मनः । परं महिम्नः को गच्छेन्न जानामि च किञ्च

इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च शौनक । धर्मश्च धनुमारेभे यः साक्षी सर्वकर्मणाम् ।

धर्म उवाच ।

यत्पाणिपादौ सर्वत्र चक्षुश्च सर्वदर्शनम् । सर्वान्तरात्मा प्रत्यक्षोऽप्रत्यक्षश्च दुरात्मन

मधुनाऽपिसमोविष्णुर्नायातिइति यद्वचः। त्वयोक्तं तत्कथं बुद्ध्या मुनीनाञ्चमतिभ्रमः
महन्निन्दामवेद्यत्रनैवसाधुःशृणोतिताम्। निन्दकःश्रोत्रेभिःसार्द्धंकुम्भीपाकंव्रजेद्युगम्
श्रुत्वादेवान्महन्निन्दांश्रीविष्णोःस्मरणाद्बुधः। मुच्यतेसर्वपापेभ्यःपुण्यंप्राप्नोतिदुर्लभम्
कामतोऽकामतोवापि विष्णुनिन्दांकरोतियः। यःशृणोति हसति वा समामध्येनराधमः
कुम्भीपाके पचति स यावद्धि ब्रह्मणो वयः। स्थलंभवेदपूतञ्च सुरापात्रं यथा द्विज ॥
पापीचनरकंयाति श्रुतन्तत्रैवचेद्ध्रुवम्। विष्णुनिन्दाचत्रिविधा ब्रह्मणा कथितापुरा ॥
प्रत्यक्षञ्च कुरुते किं वा तञ्च न मन्यते। देवान्यसाम्यं कुरुते ज्ञानहीनो नराधमः ॥
..स्यात्रनिष्कृतिर्नास्तियावद्वैब्रह्मणःशतम्। गुरोर्निन्दां यः करोतिपितुर्निन्दांनराधमः ॥
स याति कालसूत्रञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ५० ॥
विष्णुर्गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायकः। पोष्टा पाता भयत्राता वरदाता जगत्त्रये ॥
एवाञ्च वचनंश्रुत्वा त्रयाणां विप्रपुंगवः। प्रहस्योवाच तान् देवान् वाचामधुरयापुनः ॥

ब्राह्मण उवाच।

का कृताविष्णुनिन्दाऽहो हे देवाधर्मशालिनः। नागतो हरिश्चेति व्यर्थाकाशसरस्वती ॥
इति वोक्तंमया भद्रं ब्रूत धर्मार्थमीश्वराः। सभायांपाक्षिकाःसन्तोघ्नन्तिस्मशतपूरुषम् ॥
यूयञ्च भावका ब्रूत विष्णुः सर्वत्र सन्ततम्। इति चेत् तत्कथंयाताःश्वेतद्वीपं वराय च
अंशांशिनोर्न भेदश्चेदात्मनश्चेति निश्चितम्। कलांहित्यानिषेवन्तेसन्तः पूर्णतमं कथम्
कोटिजन्मदुराराध्यमसाध्यमसतामपि। आशा बलवती पुंसां कृष्णं सेवितुमिच्छति ॥
किं क्षुद्राः किं महान्तश्च वाञ्छन्तिपरमंपदम्। लब्धुमिच्छतिचन्द्रञ्चबाहुभ्यांवामनोयथा
यो विष्णुर्विषयी विश्वे श्वेतद्वीपनिवासकृत्। यूयं ब्रह्मेशधर्माश्चदिक्पालाश्च महेश्वराः
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सुरलोकाश्चराचराः। एवं कतिविधाः सन्ति प्रतिविश्वेषुसन्ततम्
विश्वानाञ्च सुराणाञ्च कः संख्यां कर्तुमीश्वरः। सर्वेषामीश्वरःकृष्णो भक्तानुग्रहविग्रहः
ऊर्द्ध्वञ्च सर्वब्रह्माण्डात् वैकुण्ठं सत्यमीप्सितम्।
तस्मादूर्द्ध्वञ्च गोलोकः पञ्चाशत् कोटियोजनम् ॥ ६२ ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे लक्ष्मीकान्तः सनातनः। सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥ ६३ ॥

गोलोके द्विभुजः कृष्णो राधाकान्तः सनातनः । गोपाङ्गनादिभिर्युक्तो द्विभुजैर्गोपपार्षदैः
परिपूर्णतमं ब्रह्म स चात्मा सर्वदेहिनाम् । स्वेच्छामयश्च विहरेद्रासे वृन्दावने सदा ॥
तज्ज्योतिर्मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । ध्यायन्तेयोगिनःसन्तःसन्ततञ्च निरामयम्
नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् ॥ ६
किशोरवयसं शश्वच्छान्तंसस्मितमीश्वरम् । ध्यायन्तेवैष्णवाःसन्तःसेवन्तेसत्यविग्रह
यूयञ्च वैष्णवा ब्रूहि कस्य वंशोद्भवो भवान् । शिष्यः कस्य मुनीन्द्रस्येत्येवंमाञ्च पुनःपुन
यस्य वंशोद्भवोऽहञ्च यस्य शिष्यश्च बालकः । तस्येदं वचनं ज्ञानं देवसंघा निबोधत ।
शीघ्रं जीवय गन्धर्वं देवेश्वर सुरेश्वर । व्यक्तोविचारे मूर्खः को वाग्युद्धे किंप्रयोजनम्
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विप्ररूपी जनार्दनः । विरराम सभामध्ये प्रजहास च शौनक ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे विष्णु-सुरसंघसंवादे विष्णुप्रशंसाप्रणयने सप्तदशोऽध्यायः ।

---

## अष्टादशोऽध्यायः ।

### गन्धर्वाय जीवदानम् ।

सौतिरुवाच ।

देवाः सार्द्धं ब्राह्मणेन मोहिता विष्णुमायया । प्रययुर्मालतीमूलं ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥१
ब्रह्मा कमण्डलुजलं ददौ गात्रे शवस्य च । सञ्चारं मनसस्तस्य चकार सुन्दरं वपुः ॥
ज्ञानदानं ददौ तस्मै ज्ञानानन्दः शिवः स्वयम् । धर्मज्ञानं स्वयं धर्मो जीवदानञ्च ब्राह्मण
वह्निर्दर्शनमात्रेण बभूव जठरानलः । कामदर्शनमात्रेण सर्वकामः सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥
तस्य वायोरधिष्ठानाज्जगत्प्राणस्वरूपिणः । निःश्वासस्य च सञ्चारः प्राणानाञ्च बभूव
सूर्य्याधिष्ठानमात्रेण दृष्टिशक्तिर्बभूव ह । वाक्यं वाणीदर्शनेन शोभा श्रीदर्शनेन च ॥

शवस्तथापि नोत्तस्थौ यथा शेते जडस्तथा । विशिष्टबोधं न प्राप चाधिष्ठानं विनात्मनः ।
ब्रह्मणो वचनात् साध्वीतुष्टावपरमेश्वरम् । स्नात्वाशीघ्रंसरित्तोयेधृत्वाधौते च वाससी ।

मालावत्युवाच ।

वन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम् । विना येन शवाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले ॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च सर्वेषां सर्वकर्मसु । विद्यमानं न दृष्टञ्च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा ॥१०॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसूर्या त्रिगुणात्मिका ।
जगत्स्रष्टा स्वयंब्रह्मा नियतोयस्य सेवया । पाता विष्णुश्चजगतां संहर्त्ताशङ्करःस्वयम् ।
ध्यायन्ते यं सुराःसर्वे मुनयोमनवस्तथा । सिद्धाश्च योगिनः सन्तः सन्ततं प्रकृतेःपरम् ।
साकारञ्च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम् । वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम् ।१४।
तपःफलं तपोवीजं तपसाञ्च फलप्रदम् । स्वयं तपःस्वरूपञ्चसर्वरूपञ्च सर्वतः ॥ १५ ॥
सर्वाधारं सर्ववीजं कर्म तत्कर्मणां फलम् । तेषाञ्च फलदातारं तद्बीजं क्षयकारणम् ॥
स्वयं तेजःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । सेवाध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना १७
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । अतीवकमनीयञ्च रूपं तत्र मनोहरम् ॥१८॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम् ।१९
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥२०।
द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतकौशेयवाससम् । किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम् ।२१।
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने वने । कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिसेवितम् ॥ २२॥
कुत्रचिद् गोपवेशञ्च वेष्टितं गोपबालकैः । शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे रम्ये वृन्दावने वने ॥२३
निकरं कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम् । गोलोके विरजातीरे पारिजातवने वने ॥२४॥
णुं क्वणन्तं मधुरं गोपीसम्मोहकारणम् । निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम् ॥
क्ष्मीकान्तं पार्षदैश्च सेवितञ्च चतुर्भुजैः । कुत्रचित् स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च ॥
वेतद्वीपे विष्णुरूपं पद्मया परिसेवितम् । कुत्रचित् स्वांशकलया ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम् ।
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम् । स्वात्मनःषोडशांशेन सर्वाधारं परात्परम् ॥
स्वयं महद्विराड्रूपं विश्वौघं यस्य लोमसु । लीलया स्वांशकलया जगतां पालनाय च

नानायन्त्रं विभ्रन्तं बीजं तेषां सनातनम् । यत्पादे कुत्रचित् मग्नं योगिनां हृदये सताम्।
प्राणरूपं प्राणिनाञ्च परमात्मानमीश्वरम् । तञ्च स्तोतुमशक्ताहमबला निर्गुणं विभुम् ॥
निर्लक्ष्यञ्च निरीहञ्च सारं वाङ्मनसोः परम् । यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ।
पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रः षडाननः । यं स्तोतुं न क्षमा माया मोहिता यस्य मायया
यंस्तोतुं न क्षमा श्रीश्च जडीभूता सरस्वती । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं के वा विद्वांश्च वेदवित्

किं स्तौमि तमनीहञ्च शोकार्त्ता स्त्री परात्परम् ।
इत्युक्त्वा सा च गान्धर्वी विरराम रुरोद च ॥ ३६ ॥

कृपानिधिं प्रणनाम भयार्त्ता च पुनः पुनः । कृष्णश्च शक्तिभिः सार्द्धमधिष्ठानं चकार

भर्त्तुरभ्यन्तरे तस्याः परमात्मा निराकृतिः ।
उत्थाय शीघ्रं वीणाञ्च धृत्वा स्नात्वा च वाससी ॥ ३७ ॥

प्रणनाम देवसङ्घं ब्राह्मणं पुरतः स्थितम् । नेदुर्दुन्दुभयो देवाःपुष्पवृष्टिञ्च चक्रिरे॥३
दृष्ट्वा चोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशिषम् । गन्धर्वो देवपुरतो ननर्त्त च जगौ स्वयम्
जीवितंपुरतः प्राप देवानाञ्च वरेण च ! जगाम पत्न्या सार्द्धञ्च पिता माता च हर्षितः
उपबर्हणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः । मालावती रत्नकोटिं धनानि विविधानि च ॥
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान् सती । वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम्
महोत्सवञ्च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम् । जग्मुर्देवाश्च स्वस्थानं विप्ररूपी हरिःस्वयम्
एतत्ते कथितं सर्वं स्तवराजञ्च शौनक । इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत्
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभतेवैष्णवो जनः । वरार्थी यः पठेद्भक्त्या चास्तिकः परमास्थया

धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते फलम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ॥ ४६ ॥

भार्य्यार्थी लभतेभार्य्यां पुत्रार्थी लभतेसुतम् । धर्मार्थी लभतेधर्मं यशोऽर्थी लभतेयश

भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं प्रजाभ्रष्टः प्रजां लभेत् ।
रोगार्त्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ४८ ॥

यान्मुच्येत भीतस्तु धनं नष्टधनो लभेत् । दस्युग्रस्तो महारण्ये हिंस्रजन्तुसमन्वितः॥
दावाग्निदग्धो मुच्येत निमग्नश्च जलार्णवे ॥ ४६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे गन्धर्वजीवदाने महापुरुषस्तोत्रप्रणयनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ।

---

# ऊनविंशोऽध्यायः ।

## ब्रह्माण्डपावनं श्रीकृष्णकवचम् ।

सौतिरुवाच ।

मालावती धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रहर्षिता । चकारविविधंवेशंस्वात्मनःस्वामिनः कृते ॥
भर्त्तुश्चकार शुश्रूषां पूजाञ्च समयोचिताम् । तेन सार्द्धं सुरसिका रेमे सा सुचिरं मुदा॥
महापुरुषस्तोत्रञ्च पूजाञ्च कवचं मनुम् । विस्मृतं बोधयामास स्वयं रहसि सुव्रता ॥
पुरा दत्तं वशिष्ठेन स्तोत्रपूजादिकं हरेः । गन्धर्वाय च मालत्यै मन्त्रमेकञ्च पुष्करे ॥ ४॥
विस्मृतं स्तोत्रकवचं वशिष्ठश्च कृपानिधिः । गन्धर्वराजं रहसि बोधयामास शूलिनः ॥
ययश्चकार राज्यञ्च कुबेरभवनोपमे । आश्रमे परमानन्दो गन्धर्वो बान्धवैः सह ॥ ६ ॥
यथातथागतामिश्च स्त्रीभिरन्याभिरेव च । आगत्य ताभिः स्वस्वामी संप्राप्तःपरया मुदा॥

शौनक उवाच ।

किं स्तोत्रं कवचं विष्णोर्मन्त्रपूजाविधिः पुरा ।
दत्तो वशिष्ठैस्ताभ्याञ्चं भवान् वक्तुमर्हति ॥ ८ ॥
द्वादशाक्षरमन्त्रञ्च शूलिनः कवचादिकम् । दत्तं गन्धर्वराजाय वशिष्ठेनर्चकिपुरा ॥ ९॥
तदपि ब्रूहि हे सौते श्रोतुं कौतूहलं मम । शङ्करस्तोत्रकवचं मन्त्रं दुर्गतिनाशनम् ॥१०॥

सौतिरुवाच ।

ष्टाव येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम् । तदेव स्तोत्रं दत्तञ्च मन्त्रञ्च कवचं शृणु ॥११

ँ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा । इदं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददौ षोडशाक्षरम् ॥

रा दत्तं कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हरेः । पुरा दत्तञ्च कृष्णेन गोलोके शङ्कराय च ॥१२

यानञ्च विष्णोर्वेदोक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम् । मूलेन सर्वं देवञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम् ॥

तीवगुप्तकवचं पितुर्वक्त्रान्मया श्रुतम् । पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिना ध्रुवम् ।

लिने ब्रह्मणे दत्तं गोलोके रासमण्डले । धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमाद्भुतम् ।१३

ब्रह्मोवाच ।

राधाकान्त महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम् । ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥

मां महेशञ्च धर्मञ्च भक्तञ्च भक्तवत्सल । त्वत्प्रसादेन पुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मेदं कवचं परम् । अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥

यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि । यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपि च ॥

कुरु सृष्टिमिमं धृत्वा धाता त्रिजगतां भव । संहर्त्ता भव हे शम्भो मम तुल्यो भवे भव ॥

हे धर्म ! त्वमिमं धृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम् । तपसां फलदाता च यूयं भवत मद्वरात् ॥

ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्य हरिः स्वयम् । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं जगदीश्वरः ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः । त्रिलक्षवारपठनात् सिद्धिदं कवचं विधे ॥

यो भवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेत्तु सः । तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेण च ॥

प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च । भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो राधेश्वराय च ॥

कृष्णः पायात् श्रोत्रयुग्मं हे हरे घ्राणमेव च । जिह्विकां वह्निजाया तु कृष्णायेति च सर्वतः ॥

श्रीकृष्णाय स्वाहेति च कण्ठं पातु षडक्षरः । ह्रीं कृष्णाय नमो वक्त्रं क्लीं पूर्वश्च भुजद्वयम् ।

नमो गोपाङ्गनेशाय स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु । दन्तपङ्क्तिमोष्ठयुग्मं नमो गोपीश्वराय च ।

[illegible] स्वाहा स्वयं वक्षःस्थलं पातु मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ।

[illegible] कर्णयुग्मं सदाऽवतु । ॐ विष्णवे स्वाहेति च कङ्कालं सर्वतोऽवतु ।

ओं हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽवतु । ओं गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम् ॥
प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः ।
दक्षिणे पातु गोपीशो नैर्ऋत्यां नन्दनन्दनः ॥ ३३ ॥
वारुण्यांपातुगोविन्दो वायव्यांराधिकेश्वरः । उत्तरेपातुरासेश ऐशान्यामच्युतःस्वयम् ॥
सन्ततं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम् । इति ते कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम् ॥
मम जीवनतुल्यञ्च युष्मभ्यं दत्तमेव च । अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥
कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात् ॥ ३६ ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । स्नात्वातञ्च नमस्कृत्य कवचं धारयेत् सुधीः ॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यदि स्यात् सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद्द्विज ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे महापुरुष-ब्रह्माण्डपावनं नाम श्रीकृष्णकवचं समाप्तम् ।

सौतिरुवाच ।

शिवस्य कवचं स्तोत्रं श्रूयतामिति शौनक । वशिष्ठेन च यद्दत्तं गन्धर्वाय च यो मनुः ।
ओं नमो भगवते शिवाय स्वाहेति च मनुः । दत्तो वशिष्ठेन पुरा पुष्करे कृपया विभो ॥
अयं मन्त्रो रावणाय प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा । स्वयं शम्भुश्च बाणाय तथा दुर्वाससेपुरा ॥
मूलेन सर्वं देयञ्च नैवेद्यादिकमुत्तमम् । ध्यायेन्नित्यादिशं ध्यानं वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥
ओं नमो महादेवाय ।

बाणेश्वर उवाच ।

महेश्वर महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम् । संसारपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥४३॥

महेश्वर उवाच ।

श्रृणु वक्ष्यामि हे वत्स ! कवचं परमाद्भुतम् । अहंतुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च । ममैवेदञ्च कवचं भक्त्या यो धारयेत् सुधीः ॥
जेतुं शक्नोति त्रैलोक्यं भगवन्नवलीलया ॥ ४६ ॥

संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहञ्च महेश्वरः

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ४७ ॥

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिदं कवचं भवेत् ।

यो भवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेद्भुवि । तेजसा सिद्धियोगेन तपसा विक्रमेण च

शम्भुर्मे मस्तकं पातु मुखं पातु महेश्वरः । दन्तपंक्तिं नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम्

कण्ठं पातु चन्द्रचूडः स्कन्धौ वृषभवाहनः । वक्षःस्थलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः

सर्वाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिक्षु च सर्वदा । स्वप्ने जागरणे चैव स्थाणुर्मे पातु सन्ततम् ।

इति ते कथितं बाण कवचं परमाद्भुतम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥

यत् फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः । तत् फलं लभते नूनं कवचस्यैव धारणात् ॥

इदं कवचमज्ञात्वा भजेन्मां यः सुमन्दधीः । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते शङ्करकवचं समाप्तम् ।

सौतिरुवाच ।

इदञ्च कवचं प्रोक्तं स्तोत्रञ्च शृणु शौनक । मन्त्रराजः कल्पतरुर्वशिष्ठो दत्तवान् पुरा ॥

ओं नमः शिवाय ।

बाणेश्वर उवाच ।

वन्दे सुराणां सारञ्च सुरेशं नीललोहितम् । योगीश्वरं योगबीजं योगिनाञ्च गुरोर्गुरुम् ।

ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥५७॥

तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं वरम् । वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः ॥ ५८ ॥

कारणं भक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम् ॥५९॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥६०॥

विषयाणां विभेदेन विभ्रन्तं बहुरूपकम् । जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम् ॥ ६१ ॥

वायुरूपं चन्द्ररूपं सूर्य्यरूपं महत्प्रभुम् । आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया ॥ ६२॥

[illegible] भक्तानुग्रहकातरम् । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम् ॥

अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम् ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं वृषभस्थं दिगम्बरम् । त्रिशूलपट्टिशधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम् ॥ ६४
इत्युक्त्वा स्तवराजेन नित्यं बाणः सुसंयतः । प्रणमेच्छङ्करं भक्त्या दुर्वासाश्च मुनीश्वरः ॥
इदं दत्तं वसिष्ठेन गन्धर्वाय पुरा मुने । कथितञ्च महास्तोत्रं शूलिनः परमाद्भुतम् ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पठेद्भक्त्या च यो नरः । स्नानस्य सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः ॥ ६६ ॥
संयतश्च हविष्याशी प्रणम्य शङ्करं गुरुम् ।
गलत्कुष्ठी महाशूली वर्षमेकं शृणोति यः । अवश्यं मुच्यते रोगाद्व्यासवाक्यमिति श्रुतम् ।
कारागारेऽपि बद्धो यो नैव प्राप्नोति निर्वृतिम् । स्तोत्रं श्रुत्वा मासमेकं मुच्यते बन्धनाद्ध्रुवम् ।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भक्त्या मासं शृणोति यः । मासं श्रुत्वा संयतश्च लभेद्भ्रष्टधनो धनम् ।
यक्ष्मग्रस्तो वर्षमेकमास्तिको यः शृणोति चेत् । निश्चितं मुच्यते रोगाच्छङ्करस्य प्रसादतः ।
यः शृणोति सदा भक्त्या स्तवराजमिमं द्विज । तस्यासाध्यं त्रिभुवने नास्ति किञ्चिच्च शौनक ।
कदाचिद्बन्धुविच्छेदो न भवेत्तस्य भारते । अचलं परमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः ॥
सुसंयतोऽतिभक्त्या च मासमेकं शृणोति यः । अभार्यो लभते भार्यां सुविनीतां सतीं वराम् ।
महामूर्खश्च दुर्मेधो मासमेकं शृणोति यः । बुद्धिं विद्याञ्च लभते गुरूपदेशमात्रतः ।७७।
कर्मदुःखी दरिद्रश्च मासं भक्त्या शृणोति यः । ध्रुवं वित्तं भवेत्तस्य शङ्करस्य प्रसादतः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा कृत्वा कीर्त्तिं सुदुर्लभाम् । नानाप्रकारधर्मञ्च यात्यन्ते शङ्करालयम् ।
पार्षदप्रवरो भूत्वा सेवते तत्र शङ्करम् । यः शृणोति त्रिसन्ध्यञ्च नित्यं स्तोत्रमनुत्तमम् ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनक-संवादे स्तवराजोऽय-
मूनविंशोऽध्यायः ।

---

# विंशोऽध्यायः ।

## उपबर्हणजन्मकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

मुदा मालावतीसार्द्धं गन्धर्वश्चोपबर्हणः । रेमेकालावशेषञ्च तामिश्च निर्जने वने ॥ १
गन्धर्वराजो मुमुदे पुत्रदारादिभिः सह । नानाविधं कृत्यचरं महत् पुण्यं चकार ह ।
राजत्वं बुभुजे राजा कुबेरभवनोपमे । रेमे सुशीलया सार्द्धं स्थिरयौवनयुक्तया ॥ ३
गन्धर्वराजः काले च गङ्गातीरे मनोहरे । पत्न्या सार्द्धमसूंस्त्यक्त्वा वैकुण्ठञ्च ययौमुद
शैवः शिवप्रसादेन पुत्रस्य विष्णुसेवया । बभूव दासो वैकुण्ठे विष्णोःश्यामचतुर्भुजः
कृत्वा पित्रोश्च सत्कारं गन्धर्वश्चोपबर्हणः । ब्राह्मणेभ्यो ददौ विप्रधनानि विविधानि च
काले स्वयं ब्रह्मशापात् प्राणांस्त्यक्त्वा विचक्षणः । स यज्ञे वृषलीगर्भेब्रह्मवीजेन शौनक
मालावती वह्निकुण्डे पुष्करे भारते भुवि । कृत्वातुवाञ्छितंकामंप्राणांस्तत्याजसा सत
सृञ्जयस्य तु पत्न्याश्च मनुवंशोद्भवस्य च । जज्ञे नृपस्य श्साध्वीसापुण्याजातिस्मरावर
उपबर्हणगन्धर्वः पतिर्मे भवितेति च । इतिकामा कामुकी सा सुन्दरी सुन्दरीवरा ॥

शौनक उवाच ।

ब्रह्मवीर्य्यात् शूद्रपत्न्यां गन्धर्वश्चोपबर्हणः । जातः केन प्रकारेण तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ १

सौतिरुवाच ।

कान्यकुब्जे च देशे च द्रुमिलो नाम राजकः । कलावती तस्य पत्नी वन्ध्या चापि पतिव्रता
स्वामिदोषेण सा वन्ध्या काले च मनुरागया । उपतस्थे वने घोरे नारदं काश्यपं मुनिम
ध्यायमानश्च धीरूपं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । तत्रो सुवेशं कृत्वासाध्यानान्तश्च मुनेःपुर
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभातुल्येन तेजसा । गच्छन्तं दृष्टोऽप्येवं समीपं गन्तुमक्षमा
ध्यानान्ते च मुनिश्रेष्ठः पुरः ह्रन्नतरागतः । ददर्श पुरतो दूरे सुन्दरीं स्थिरयौवनाम्
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां रत्नभूषणभूषिताम्

वृहन्नितम्बभारार्त्तां पीनश्रोणिपयोधराम्। शोभितांपीतवस्त्रेणसस्मितां रक्तलोचनाम्।
मोहितां मुनिरूपेण कामबाणप्रपीड़िताम् । दर्शयन्तीं स्तनश्रोणीं मैथुनासक्तचेतसा ॥
सिन्दूरविन्दुभूयाढ्यांसुचारुकज्जलोज्ज्वलाम्। पदालक्तकशोभाढ्यांरूपेणवयसोर्वशीम्।
मुनिः पप्रच्छ दृष्ट्वा तां का त्वं कामिनि निर्जने । कस्य पत्नी कथंवात्रसत्यंब्रूहिचपुंश्चलि ।
मुनेश्च वचनं श्रुत्वा कम्पिता च कलावती । उवाच विनयेनैव कृत्वा च श्रीहरिं हृदि ॥

कलावत्युवाच ।

गोपिकाहं द्विजश्रेष्ठ द्रुमिलस्य च कामिनी । पुत्रार्थिनी चागताहं त्वन्मूलं भर्त्तुराज्ञया ।
वीर्य्याधानं कुरु मयि स्त्री नोपेक्ष्या ह्युपस्थिता । तेजीयसां न दोषाय वह्नेःसर्वभुजोयथा।
वृषलीवचनं श्रुत्वा चुकोप मुनिसत्तमः । उवाच नीतं सत्यञ्च कोपप्रस्फुरिताधरः ॥

काश्यप उवाच ।

यः स्वलक्ष्मीञ्च भोगार्हां पराय दातुमिच्छति । तं सा त्यजति मूढ़ञ्चवेदवादइतिध्रुवम्।
न त्वं द्रुमिलभोगार्हां पुनरेव भविष्यसि । विरक्तेन स्वयं त्यक्ता न गृह्णाति च त्वां पुनः ।
यः शूद्रपत्नीं गृह्णाति ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । स चण्डालो भवेत् सत्यंनकर्मार्हो द्विजातिषु।
पितृश्राद्धे च यज्ञे च शिलास्पर्शे सुरार्चने । नाधिकारश्च तस्यैवमित्याह कमलोद्भवः ॥२६॥

कुम्भीपाकं स्वयं याति पातयित्वा च पूरुषान् ।
मातामहान् स्वात्मनश्च दश पूर्वान् दशापरान् ॥ ३० ॥

त्तर्पणं मूत्रमेव पिण्डं सद्यः पुरीषकम् । शालग्रामस्य तत्स्पर्शे चोपवासः त्रिरात्रकम्॥
तद्दिष्टदेवो गृह्णाति न नैवेद्यं न तज्जलम् । सन्न्यासिनां ब्राह्मणानां तदन्नञ्च पुरीषवत् ॥
कुम्भीपाके पच्यते स शकान्तं यावदेव हि । एकविंशतिपुरुषैः सार्द्धं सत्यञ्च पुंश्चलि ॥

पत्रोच्छिष्टञ्च यो भुङ्क्ते शूद्राणां ब्राह्मणाधमः ।
तत्तुल्योऽधरभोजी चैवेत्याङ्गिरसभाषितम् ॥ ३४ ॥

शूद्रो वा यदि गृह्णाति ब्राह्मणींज्ञानदुर्बलः । स पच्यते कालसूत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
अष्टादशेन्द्रावच्छिन्नं कालञ्च कालसूत्रके । ब्राह्मणी पच्यते तत्र भक्षिता क्रिमिभिः ध्रुवम्॥
ततश्चण्डालयोनौ च लब्ध्वा जन्म च ब्राह्मणी। शूद्रश्च कुष्ठी भवति ज्ञातिभिः परिवर्जितः॥

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो विरराम च शौनक । गृहिणी तस्य पुत्रकामी शुक्लकाञ्चीमनुव्रता ॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन पथा याति च मेनका । तस्या रूपं स्तनं दृष्ट्वा मुनेर्वीर्यं पपात ह ॥
ऋतुस्नाता च गृहिणी पीत्वा तत्र गर्भं मुदा । मुनिं प्रणम्य प्रहृष्टा प्रययौ भर्तुरन्तिकम् ॥
गत्वा प्रणम्य दुर्मिलं कान्ता कान्तं मनोहरम् । सर्वं निवेदयामास वृत्तान्तं गर्भहेतुकम् ॥
पत्नीवचनतः श्रुत्वा प्रहृष्टवदनो द्विजः । उवाच कान्तां मधुरं परिणामसुखावहम् ॥३१॥

दुर्मिल उवाच ।

विप्रस्य वीर्यं त्वद्गर्भे वैष्णवस्य महात्मनः । वैष्णवो भविता बालः त्वञ्च भाग्यवती सती ॥

यद्गर्भे वैष्णवो जातो यस्य वीर्येण वा सति ! ।
तयोर्याति च वैकुण्ठं पुरुषाणां शतं शतम् ॥

तौ च विष्णुविमानेन रत्ननिर्मितेन च । यातौ वैकुण्ठनगरं जन्ममृत्युजराहरम् ॥३४॥
कस्यचिद् ब्राह्मणस्यैव गेहं गच्छ शुभानने । पश्चान्ममान्तिकं भद्रे यास्यसीति हरेः पुरम् ॥

इत्युक्त्वा गोपराजश्च स्नात्वा कृत्वा तु तर्पणम् ।
संपूज्याभीष्टदेवञ्च ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ ४१ ॥

अश्वानाञ्च चतुर्लक्षं गजानां लक्षमेव च । शतं मत्तगजेन्द्राणां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥४२॥
उच्चैःश्रवःपञ्चलक्षं रथानाञ्च सहस्रकम् । शकटानां त्रिलक्षञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥
गवां द्वादशलक्षञ्च महिषाणां त्रिलक्षकम् । त्रिलक्षं राजहंसानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥
पारावतानां लक्षञ्च शुकानाञ्च शतं मुने । लक्षञ्च दासदासीनां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ।
ग्रामाणाञ्च सहस्रञ्च नगराणां शतं शतम् । धान्यतण्डुलशैलञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥
शतकोटिं सुवर्णानां रत्नानाञ्च सहस्रकम् । मुद्राणां कोटिकलसं ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥
ददौ तैजसपात्राणां भूषणानामसंख्यकम् । तां स्त्रियं रत्नभूषाढ्यां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

राज्यं दत्त्वा महाराजोऽप्यन्तर्बाह्ये हरिं स्मरन् ।
जगाम बदरीं गोपो मनोगामी मुदान्वितः ॥ ५५ ॥

तत्र मासं तपः कृत्वा गङ्गातीरे मनोहरे । प्राणांस्तत्याज योगेन सद्यो दृष्टो महर्षिभिः ॥
च विष्णुविमानेन रत्नेन्द्रनिर्मितेन च । संयुक्तो विष्णुदूतैश्च वैकुण्ठञ्च जगाम ह ॥५३॥

तत्र प्राय हरेर्दास्यं हरिदासो बभूव सः। वृत्तान्तश्च कलावत्याः श्रूयतामिति शौनक॥
गते कलावती नाथे उच्चैश्च प्ररुरोद ह। यहौ प्राणांस्त्यक्तुकामा ब्राह्मणेनैव रक्षिता॥
ब्राह्मणोमातरित्युक्त्वा तां गृहीत्वा मुदान्वितः। जगाम रत्नपूर्णञ्च स्वगेहञ्च क्षणेन च॥
सा विप्रगेहे साध्वी च सुषाव तनयं वरम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥६१॥
तत्रस्था योषितः सर्वा ददृशुर्बालकं शुभम्। ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डजितं तं ब्रह्मतेजसा॥
कामदेवाधिकं रूपे चन्द्राधिकशुभाननम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्॥६३
हस्तापादादिललितं सुकपोलं मनोहरम्। पद्मचक्राङ्कितं पादपद्मं वाऽऽतुलमुज्ज्वलम्॥
करयुग्मं वाऽऽतुलञ्च रुदन्तञ्च स्तनार्थिनम्। योषितो वालकं दृष्ट्वा प्रययुः स्वाश्रमं मुदा।
पुत्रदारयुतो विप्रः प्रहृष्टश्च ननर्त्त ह। स वालो ववृधे तत्र शुक्लपक्षे यथा शशी॥६६॥
पुपोष ब्राह्मणस्ताञ्च सपुत्राञ्च यथा सुताम्॥ ६७॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे उपवर्हणजन्मकथनं नाम विंशोऽध्यायः।

---

# एकविंशोऽध्यायः

## उपवर्हणजन्मान्तरकथनम्।

सौतिरुवाच।

भूव काले वालश्च क्रमेण पञ्चहायनः। जातिस्मरो ज्ञानयुक्तः पूर्वमन्त्रः स्मृतः सदा॥१
यते सततं कृष्णयशोनामगुणादिकम्। क्षणं रोदिति नृत्येन पुलकाञ्चितविग्रहः॥२॥
कृष्णसम्बन्धिनीं गाथां शृणोति यत्र तत्र वै।
तत्सम्बन्धि पुराणञ्च तत्र तिष्ठति बालकः॥ ३॥
लिधूसरसर्वाङ्गो धूलिनैवेद्यमीप्सितम्। धूलिषु प्रतिमां कृत्वा धूलिना पूजयेद्धरिम्॥४॥

एकदाशिशुमाता च गच्छन्तीनिशिवर्त्मनि । ममार सर्पदष्टा च तत्क्षणं स्मरतीहरिम् ॥
सद्यो जगाम वैकुण्ठं विष्णुयानेन सा सती । विष्णुपार्षदसंयुक्ता सद्रत्ननिर्मितेन च ॥
प्रातर्बालो द्विजैःसार्द्धं प्रययौ विप्रमन्दिरात् । तत्त्वज्ञानं ददुस्तस्मैब्राह्मणाश्च कृपालवः ॥
ब्रह्मपुत्राःशिशुंत्यक्त्वा स्वस्थानं प्रययुः किल । महाज्ञानी शिशुस्तस्थौगङ्गातीरे मनोहरे ॥
तत्र स्नात्वा विप्रदत्तं विष्णुमन्त्रं जजाप सः । क्षुत्पिपासारोगशोकहरं वेदेषुदुर्लभम् ॥
महारण्ये च घोरे च अश्वत्थमूलसन्निधौ । कृत्वायोगासनं तस्थौ सुचिरं तत्रबालकः ॥

शौनक उवाच ।

कं मन्त्रं बालकः प्राप कुमारेण च धीमता । दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥

सौति उवाच ।

कृष्णेन दत्तो गोलोके कृपया ब्रह्मणे पुरा । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः ॥
तत्रब्रह्मा ददौभक्त्या कुमाराय च धीमते । कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज ॥
ओं श्री नमोभगवतेरासमण्डलेश्वराय । श्रीकृष्णाय स्वाहेति च मन्त्रोऽयंकल्पपादपः ॥
महापुरुषस्तोत्रश्च पूर्वोक्तं कवचश्चयत् । अस्यैवयौगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च ॥३३॥
तेजोमण्डलरूपे च सूर्यकोटिसमप्रभे । योगिभिर्वाञ्छितं ध्यानैर्योगैःसिद्धगणैःसुरैः ॥
ध्यायन्ते वैष्णवारूपं तदभ्यन्तरसन्निधौ । अतीवकमनीयां निर्वचनीयं मनोहरम् ॥
नवीनजलदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्-पार्वणचन्द्रास्यं पक्वबिम्बाधिकाधरम् ॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् ।
सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तावलम्बनेन च ॥ ३५ ॥
कोटि-कन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम् । चन्द्रलक्षप्रभाजुष्टं पुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् ॥
त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं द्विभुजं पीतवाससम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम् ॥ ३७ ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । मयूरपुच्छचूडश्च रत्नमालाविभूषितम् ॥३८॥
शोभितं जानुपर्य्यन्तं मालतीवनमालया । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम् ॥ ३९॥
मणिनाकौस्तुभेन्द्रेणवक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् । वीक्षितं गोपिकाभिश्चशश्वद्वङ्किमलोचनैः ॥
स्थिरयौवनयुक्ताभिर्वेष्टिताभिश्च सन्ततम् । भूषणैर्भूषिताभिश्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥

# द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

## ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनम् ।

सौतिरुवाच ।

कतिकल्पान्तरेऽतीतेस्रष्टुःसृष्टिविधौपुनः । मरीचिमिश्रैर्मुनिभिःसार्द्धं कण्ठात् बभूवसः ॥
विधेर्नरदनाम्नश्च कण्ठदेशात् बभूव सः । नारदश्चेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना ॥
यः पुत्रश्चेतसोधातुर्बभूव मुनिपुङ्गवः । तेन प्रचेता इति च नामचक्रे पितामहः ॥ ३ ॥
बभूव धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपार्श्वतः । सर्वकर्मणि दक्षश्च तेनदक्षः प्रकीर्त्तितः ॥
वेदेषु कर्द्दमः शब्दश्छायायां वर्त्तते स्फुटः । बभूव कर्द्दमात् बालःकर्द्दमस्तेनकीर्त्तितः ॥
तेजोभेदे मरीचिश्चवेदेषु वर्त्ततेस्फुटम् । जातः सद्योऽतितेजस्वीमरीचिस्तेनकीर्त्तितः ॥
क्रतुसंघश्च बालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना । ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयते ॥
प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्चबालकः । इरस्तेजस्विवचनोऽप्यङ्गिरास्तेनकीर्त्तितः ॥
अतितेजस्विनि भृगुर्वर्त्तते नाम्नि शौनक ! ।
जातः सद्योऽतितेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्त्तितः ॥ ६ ॥
बालोऽप्यरुणवर्णश्च जातःसद्योऽतितेजसा । प्रज्वलन्नूर्द्ध्वतपसाचारुणिस्तेनकीर्त्तितः ॥
हंसा आत्मवशायस्य योगेन योगिनोध्रुवम् । बालःपरमयोगीन्द्रस्तेनहंसी प्रकीर्त्तितः ॥
वशीभूतश्चशिष्यश्च जातःसद्यो हि बालकः । अतिप्रियश्चधातुश्च वशिष्ठस्तेन कीर्त्तितः ॥
सन्ततं यस्य यत्नश्च तपःसु बालकस्य च । प्रकीर्त्तितो यतिस्तेन संयतः सर्वकर्मसु ॥
पुलस्तपःसु वेदेषु वर्त्तते हः स्फुटेऽपि च । स्फुटस्तपः समूहश्च पुलहस्तेन बालकः ॥
पुलस्तपः समूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम् । तपःसंघस्वरूपश्च पुलस्त्यस्तेन बालकः ॥
त्रिगुणायांप्रकृत्यां त्रिविष्णावश्चप्रवर्त्तते । तयोर्भक्तिःसमायस्यतेनबालोऽत्रिरुच्यते ॥
जटावह्निशिखारूपाः पञ्चसन्ति च मस्तके । तपस्तेजोभवायस्य सच पञ्चशिखःस्मृतः ॥
अपान्तरतमे देशे तपस्तेपेऽन्यजन्मनि । अपान्तरतमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्त्तितम् ॥

स्वर्गं नरः समाप्नोति [illegible] प्रयत्नतः ।

ऊर्द्धं [illegible] तानि [illegible] प्रकीर्तितः ॥ १८ ॥

[illegible] बालो नीतिमान् सततं मुने । [illegible] प्रकीर्तितः

कोपकाले [illegible] रुद्रैकादश स्मृताः । [illegible] रुद्राश्च कोपितास्तेन हेतुना

शौनक उवाच ।

रुद्रश्चैकतमो बालो महेशानि मे भ्रमः । भवान् पुराणतत्त्वज्ञः सन्देहं छेत्तुमर्हसि ॥२

सौतिरुवाच ।

विष्णुः सत्त्वगुणः पाता ब्रह्मास्त्रष्टा रजोगुणः । तमोगुणास्ते रुद्राश्च दुर्निवाराश्च शङ्कराः ।

कालाग्निरुद्रः संहर्ता तेष्वेकः शङ्करांशकः । शुद्धसत्त्वस्वरूपश्च शिवश्च शिवदः सताम् ॥

अन्ये कृष्णस्य च कलास्तदंशौ विष्णुशङ्करौ । सर्वांसत्त्वस्वरूपौ तौ परिपूर्णतमस्य च ॥

उक्तरुद्रोद्भवेकाले कथं विस्मरसि द्विज । मायया मोहिता सर्वे मुनीनाञ्च मतिभ्रमः ॥

सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवांश्चतुर्थो ब्रह्मणः सुतः ॥२६॥

ब्रह्मास्रष्टुं पूर्वपुत्रानुवाच ते न सेहिरे । तेनप्रकोपितोधाता रुद्राः कोपोद्भवा मुने ॥

सनकश्चसनन्दश्च तौ द्वावानन्दवाचकौ । आनन्दितौचबालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौसदा ॥

सनातनश्चश्रीकृष्णो नित्यः पूर्णतमःस्वयम् । तद्भक्तस्तत्समःसत्यंतेन बालःसनातनः ॥

सनत्तु नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः । सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः ॥ ३० ॥

ब्रह्मणो बालकानाञ्च व्युत्पत्तिः कथिता मुने ।

साम्प्रतं नारदाख्यानं श्रूयताञ्च यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे ब्रह्मपुत्रव्युत्पत्तिकथनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

---

# त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

## ब्रह्मनारदसंवादवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

ब्रह्मा सृष्टिविधानेन नियोज्य सर्वबालकान् । नारदं प्रेरयामास सृष्टिं कर्तुञ्च शौनक ॥
हितं सत्यं वेदसारं परिणामसुखावहम् । उवाच नारदं ब्रह्मा वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

एहि वत्स कुलश्रेष्ठ नारद प्राणवल्लभ । ज्ञानदीपशिखाज्ञानतिमिरक्षयकारक ॥ ३ ॥
सर्वेषामपि वन्द्यानां जनकः परमो गुरुः । विद्यादाता मन्त्रदाता द्वौ समौ च पितुःपरौ
यथाहं जनकः पुत्रः विद्यादाता च पालकः । ममाज्ञया च मत्प्रीत्या कुरु दारपरिग्रहम् ॥

स च शिष्यः सोऽपि पुत्रो यश्चाज्ञां पालयेद्गुरोः ।
न क्षेमं तस्य मूढस्य यो गुरोरवचस्करः ॥ ६ ॥
स पण्डितः स च ज्ञानी स क्षेमी स च पुण्यवान् ।
गुरोर्वचस्करो यो हि क्षेमं तस्य पदे पदे ॥ ७ ॥

सर्वेषामाश्रमाणाञ्च प्रधानः पुण्यवान् गृही । स्त्रीपुत्रपौत्रयुक्तञ्च मन्दिरं तपसः फलम्
पितरः पूर्वकाले च तिथिकाले च देवताः । सर्वे गृहस्थमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कुर्वन्ति गृहिणः सदा । इह पतन् सुखं पुण्यं स्वर्गभोगःपरत्र च
जीवन्मुक्तो गृहस्थश्च स्वधर्मपरिपालकः । यशस्वी पुण्यवांश्चैव कीर्तिमान्धनवान्सुखी

यशस्वी कीर्तिमान् यो हि मृतो जीवति सन्ततम् ।
यशः कीर्तिविहीनो हि जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ १२ ॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच विनयं भीतः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः ॥

नारद उवाच ।

एकदा वाग्विरोधेन चोभयोस्तातपुत्रयोः । हानिर्बभूव दैवेन महती वायराम्करी ॥१४॥
त्वया प्राप्तश्च त्वन्शापान्गान्धर्वंशौद्रमेव च । जन्मकर्म च मन्शापान्त्यमपूज्योभवेमव

६—

बभूव शापो मुक्तो मे काले ते मन्त्रिता विधे । दोषाय कल्पते शास्त्रविरोधो न
स पिता स गुरुर्बन्धुः स पुत्रः स महीश्वरः । यः श्रीकृष्णपादपद्मे दृढां भक्ति
असद्वर्त्मनि चाज्ञानाद् गच्छन्ति यदि बालकाः । निवर्तयति तानेव स पिताकरु

कारयित्वा कृष्णपादे भक्तित्यागश्च यः पिता ।
अन्यस्मिन् विषये पुत्रं स किं हन्त प्रवर्तयेत् ॥ १९ ॥

दारग्रहो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च । नरःस्वर्गमतिमुक्तिकर्मणां व्यव

योषितस्त्रिविधा ब्रह्मन् गृहिणां मूढचेतसाम् ।
साध्वी भोग्या च कुलटास्ताः सर्वाः स्वार्थतत्पराः ॥ २१ ॥

परलोकभिया साध्वी तथेहयशसात्मनः । कामस्नेहाच्च कुरुते भर्तुः सेवाञ्च स
भोग्याभोगार्थिनीशश्वत् कामस्नेहेनकेवलम् । कुरुते कान्तसेवाञ्च नच भोगा
वस्त्रालङ्कारसम्भोगं सुस्निग्धाहारमुत्तमम् । यावन्नप्राप्नोति सा भोग्यातावच्चरा
कुलाङ्गारसमानारी कुलटा कुलनाशिनी । कपटात् कुरुते सेवां स्वामिनो न च
सदा पुंयोगमाशंसुर्मनसा मदनातुरा । आहारादधिकं जारं प्रार्थयन्ती नवं नवम्
जारार्थे स्वपतिं तातहन्तुमिच्छति पुंश्चली । तस्यांयोविश्वसेन्मूढोजीवनंतस्यनि
कथितायोषितःसर्वाःउत्तमाधममध्यमाः । स्वात्मारामाविजानन्तिमनस्तासांनप
हृदयं क्षुरधाराभं शरत्पद्मोत्सवं मुखम् । सुधासमं सुमधुरं वचनं स्वार्थसिद्धये
प्रकोपे विषतुल्यञ्च विश्वासे सर्वनाशनम् । दुर्ज्ञेयं तदभिप्रायं निगूढं कर्म केवल
सदा तासामविनयः प्रबलं साहसं परम् । दोषोत्कर्षो छलोत्कर्षः शश्वन्मायाद्
पुंसश्चाष्टगुणः कामःशश्वत्कामोजगद्गुरो । आहारोद्विगुणोनित्यंनैष्ठुर्यंश्चचतु
कोपः पुंसः षड्गुणश्च व्यवसायश्च निश्चितम् । यत्रेमे दोषनिवहाः कास्था तत्र पि
का क्रीडा किं सुखं पुंसो विण्मूत्रपूयवेश्मनि । तेजः प्रणष्टं सम्भोगे दिवालापेयश
धनक्षयोऽतिसंप्रीतौ चात्यासक्तौ वपुःक्षयः । साहित्ये पौरुषं नष्टं कलहे मान्यत
विश्वासे ब्रह्मन्नारीषु किंसुखम् । यावद्धनी चतेजस्वीतावच्छ्रीकोयोग्य

गिणं निर्द्धनं वृद्धं योषिद्‌ या प्रेक्षते प्रियम् । लोकाचारभयात्तस्मै दद्यात्याहारमल्पकम्
इत्येवं कथितं सर्वं ब्रह्मन्नात्मागमो यथा ॥ ३८ ॥
सर्वं जानासि सर्वज्ञ स्वात्मारामेश्वरो भवान् ।
अनुग्रहं कुरु विभो ! विदायं देहि साम्प्रतम् ।
कृष्णभक्तिं प्रार्थयामि त्वयि धत्स्वतरोः परे ॥ ३९ ॥
त्युक्त्वा नारदस्तत्र धृत्वा तातपदाम्बुजम् । आज्ञां ययाचे पितरं गन्तुं तपसि मङ्गले ॥
कृताञ्जलियुतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः । कृत्वा प्रदक्षिणं नत्वा ब्रह्माणं गन्तुमुद्यतः
च्छन्तं तनयं दृष्ट्वा विधाता जगतो मुने । करोदोच्चैर्मुक्तकण्ठं महासांसारिको यथा ॥
रे धृत्वा समालिङ्ग्य चुचुम्ब च पुनःपुनः । चिरं वक्षसि कृत्वा च वासयामास तत्रानुनि
स्वात्मारामेश्वरो ब्रह्मा योगिन्द्राणां गुरोर्गुरुः ।
भेदं सोढुं न शशाक विच्छेदो दुःसहो नृणाम् ॥ ४३ ॥
थातरः पुत्रभेदेन मोहितो विष्णुमायया । शोकार्त्तो पद्मजस्तत्र सुतं सम्बोध्य शौनक
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे ब्रह्मनारदसंवादे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

---

# चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

## नारदं प्रति दारपरिग्रहार्थं ब्राह्मण उपदेशः ।

श्रीब्रह्मोवाच ।

त्स गच्छ मदादेशात्किमेभिः संसारकर्मणि । अहं वदामि गोलोके विप्रानुं कृष्णमीश्वरम्
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो वैराग्यो चतुर्थपुत्र एव च ॥ २ ॥
तो हंसी यातिर्जाता वोढुः पञ्चशिखस्तथा । पुत्रास्तापिनतरे किं मे संसारकर्मणि
लयश्चरो मरीचिर्मे अङ्गिराश्च भृगुस्तथा । रुचिरत्रिः कर्दमश्च प्रचेताश्च क्रतुर्मनुः ॥

शिष्टो वशगः शश्वत् सर्वेषु च सुतेषु च । अन्येविवेकिनोऽसाध्याक्रिमेसंसारकर्मणि
निबोध वत्स वक्ष्यामि वेदोक्तं वचनं शुभम् । पारम्पर्य्यक्रमपरं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥६॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च सर्वे वाञ्छन्तिपण्डिताः । वेदप्रणिहिताश्चेतान्समासुत्वप्रशंसितान्
वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्य्ययः ॥ ७ ॥
आदौ विप्रो यज्ञसूत्रं परिधाय सुखं सुखे । समधीत्य ततो वेदान् ददाति गुरुदक्षिणम्
ततः प्रहृष्टकुलजां सुविनीतां समुद्वहेत् ॥ ६ ॥
सा साध्वी कुलजाया च पतिसेवासु तत्परा ।
सद्वंशे दुर्विनीता च प्रभवेन्न कदाचन । आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः ॥
असद्वंशप्रसूता या पित्रोर्दोषेण नारद । दुर्विनीता च सा दुष्टा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु ॥
न वत्स दुष्टाः सर्वाश्च योषितः कमलाकलाः । स(स्व)र्वेश्यांशाश्च कुलटा असद्वंशसमुद्भवाः
निर्गुणं स्वामिनं साध्वी सेवते च प्रशंसति । न सेवते च कुलटा प्रियंनिन्दतिसद्गुणम्
साधुः सद्वंशजां कन्यां प्रयत्नेन परिग्रहेत् । तस्यां पुत्रान् समुत्पाद्य वृद्धस्तुतपसे व्रजेत्
वरं हुतवहे वासः सर्पवक्त्रे च कण्टके । एतेभ्यो दुःखदो वासःस्त्रिया दुर्मुखया सह
त्वमधीतो मयावेदो मह्यञ्च गुरुदक्षिणाम् । पुत्र देहीदमेवेह कुरु दारपरिग्रहम् ॥ १६ ॥
वत्स ! त्वं कुलजाताञ्च पूर्वपत्नीञ्च मालतीम् । विवाहं कुरु कल्याण कल्याणेवदिनात्मजे
मनुवंशोद्भवस्येद सत्रपस्य गृहे सती । त्वत्कृते जन्म लब्ध्वा च कुरुते भारते तपः ॥
महत्तं कुरुत्वा गजमालाञ्च कमलाकलाम् । भारते न भवेद्दु कथं जनानां तपसः फलम् ॥
भार्य्याभवेद्दु गृहालोके पानग्रन्थस्ततःपरम् । तत्कृत्यपस्त्वोमोक्षाय वत्सपरः श्रुतौश्रुतः ॥
वैष्णवानां हरेरर्चा तपस्या च श्रुतौ श्रुता ॥ २१ ॥
वैष्णव त्वं गृहे तिष्ठ कुरु कृष्णपदार्चनम् । अन्तर्यामी हरिर्यस्य तस्य किं तपसा सुत ॥
नान्तर्यामीहरिर्यस्य तस्य किं तपसा वृथा । तपसा हरिराराध्यो नान्यः कश्च न विद्यते
यत्र तत्र कृतं कृष्णसेवनं परमं तपः । वत्स ! मद्वचनेनैव गृहे तिष्ठ हरिं भज ॥ २४
गृहाश्रम मुनिश्रेष्ठगृहीणां सर्वदासुखम् । कामिन्यासुख सम्भोगाःस्वर्गभोगात् सुदुर्लभ
[illegible] मुमुक्षवः । सर्वेभ्यःसुखात् स्त्रीणासुखसारं सुखं परम् ॥

ततः सुखतमंपुत्र दर्शनं स्पर्शनं मुने । सर्वेभ्यः प्रेयसी कान्ता प्रिया तेन प्रकीर्त्तिता ॥
पुत्रप्रयोजनाकान्ता शतकान्ताप्रियःसुतः । नास्तिपुत्रात्परो वन्धुर्नास्तिपुत्रात्परःप्रियः
सर्वेभ्यो जयमन्विच्छेत् पुत्रादेकात् पराजयम् ।
न चात्मनि प्रियोऽर्थश्च तस्मादपि प्रियः सुतः ॥ २६ ॥
अतः प्रियतमे पुत्रे न्यसेदात्मपरं धनम् । इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा विरराम च शौनक ॥३०

नारद उवाच

उवाच वचनं तातं नारदो ज्ञानिनां वरः । स्वयं विज्ञाय सर्वार्थं स्वपुत्रं वेददर्शने ॥
प्रवर्त्तयत्यसन्मार्गे स दयालुः कथं पिता ॥ ३१ ॥
जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारमिति नश्वरम् । जलरेखायथा मिथ्या तथा ब्रह्मन्जगत्त्रयम् ॥
विहाय हरिदास्यञ्च विषये यन्मनश्चलन् । दुर्लभं मानवं जन्म वभूव तस्य निष्फलम् ॥
का वा कस्य प्रिया पुत्रो वन्धुः को वा भवार्णवे ।
कर्मोर्मिभिर्योजना च तदपायो वियोजना ॥ ३४ ॥
सुकर्मकारयेद् योहितमित्रं स पिता गुरुः । विबुद्धिकारयेद् योहिसरिपुश्च कथंपिता ।
इत्येवं कथितं तात ! वेदवीजं यथागमम् । ध्रुवं तथापि कर्त्तव्यं तवाज्ञापरिपालनम् ॥
आदौ यास्यामि भगवन्नरनारायणाश्रमम् । नारायणकथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंग्रहम् ॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्विरराम पितुः पुरः । पुष्पवृष्टिस्तदुपरि तत्क्षणेन वभूव ह ॥३८॥
क्षणं पितुः पुरः स्थित्वा नारदो मुनिसत्तमः । उवाच च पुनर्वेदं वचनं मङ्गलप्रदम् ॥३६

श्रीनारद उवाच ।

देहि मे कृष्णमन्त्रञ्च यन्मनोवाञ्छितं मम । तद्व्रतान्निविच यज्ज्ञानं यत्र तद्गुणवर्णनम्
ततः पश्चात् करिष्यामि त्वत्प्रीत्या दारसंग्रहम् ।
मानसे परिपूर्णे च कार्य्यं कर्त्तुं पुमान् सुखी ॥ ४१ ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः कमलोद्भवः । उवाच पुनरेवेदं पुत्रं ज्ञानविदां वरः ॥ ४२॥

ब्रह्मोवाच ।

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः । विविक्ताश्रमिणाश्चैव न पुत्र सुखदायकः ॥

निषेकाल्लभ्यते मन्त्री गुरुर्भर्ता च कामिनी । विद्या सुखमयं दुःखं कुर्वीत स्वेच्छयानव ।
महेश्वरस्तव गुरुः प्राक्तनो नः पुरातनः । गच्छ वत्स शिवं शान्तं शिवदं ज्ञानिनां गुरुम् ।
तत्रैव भगवन्मन्त्रं ज्ञानं लब्ध्वा पुरातनात् । नारायणकथां श्रुत्वा शीघ्रमागच्छ मद्गृहम् ।
इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम च शौनक । प्रणम्य पितरं मनसा शिवलोकं ययौ मुनिः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौति-शौनकसंवादे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

---

## पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

### नारदकृतशिवस्तुतिः शिवनारदसम्मिलनञ्च ।

सौतिरुवाच ।

क्षणेन विप्रवरो मुदान्वितो जगाम शम्भोः सदनं मनोहरम् ।
ऊर्ध्वं ध्रुवाद् योजनलक्षमीप्सितं रत्नेन निर्माणकृतञ्च शूलिना ॥ १ ॥
निराश्रये योगबलेन शम्भुना धृतं विचित्रं विविधालयान्वितम् ।
दृष्टं स्वपुण्याशयसाधकैर्वरै-र्मुनीन्द्रसारैर्ज्वलितं दिवानिशम् ॥ २ ॥
मयूखशून्यं रविचन्द्रयोर्मुने हुताशनैर्वेष्टितमेव केवलम् ।
प्राकाररूपैरतिरिक्तवर्द्धितै-स्त्वैरसंख्यप्रमितैः शिखोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥
पुरं परं योजनलक्षविस्तृतं त्रिकोटिरत्नेन्द्रगृहान्वितं सदा ।
विराजितं हीरकसारनिर्मितै-श्चित्रैर्विचित्रैर्विविधैर्मनोहरैः ॥ ४ ॥
माणिक्यमुक्तामणिदर्पणैर्युतं न स्वप्नदृष्टं द्विज विश्वकर्मणः ।
आकल्पमेकैः शिवसेवितैर्जनै-र्निषेवितं सन्ततमेव शौनक ॥ ५ ॥
सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटिलक्षकैस्त्रिकोटिलक्षैश्च युतं स्वपार्षदैः ।
युक्तं त्रिलक्षैर्विकटैश्च भैरवैः क्षेत्रैश्चतुर्लक्षशतैश्च वेष्टितम् ॥ ६ ॥
सुरद्रुमैर्वेष्टितमेव सन्ततं मन्दारवृक्षप्रवरैः सुपुष्पितैः ।
[illegible] ॥ ७ ॥

दृष्ट्वा मुनिर्विस्मयमाप मानसे किमत्र चित्रं बुधियोगिनां गुरौ।
लोकं त्रिलोकाद्य विलक्षणं परं भीमृत्युरोगार्त्तिजराहरं वरम् ॥ ८ ॥
दूरे सभामण्डलमध्यगं शिवं ददर्श शान्तं शिवदं मनोहरम्।
पञ्चत्रिनेत्रं विधुपञ्चवक्त्रकं गङ्गाधरं निर्मलचन्द्रशेखरम् ॥ ९ ॥
प्रतप्तहेमाभजटाधरं विभुं दिगम्बरं शुभ्रमनन्तमक्षरम्।
मन्दाकिनीपुष्करबीजमालया कृष्णेति नामैव मुदा जपन्तम् ॥ १० ॥
सुनीलकण्ठं भुजगेन्द्रमण्डितं योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमुनीन्द्रवन्दितम्।
सिद्धेश्वरं सिद्धिविधानकारणं मृत्युञ्जयं कालयमान्तकारकम् ॥ ११ ॥
प्रसन्नहास्यास्यमनोहरं परं विश्वोद्भवानां शिवदं वरप्रदम्।
सदाशुतोषं भवरोषवर्जितं भक्तप्रियं भक्तजनैकबन्धुम् ॥ १२ ॥
गत्वा समीपं मुनिरेव शूलिनं ननाम मूर्ध्ना पुलकाङ्कविग्रहम्।
वीणां त्रितन्त्रीं क्वणयन् पुनर्जगौ कृष्णं प्रतुष्टाव कलहंसकण्ठः ॥ १३ ॥
दृष्ट्वा मुनीन्द्रप्रवरञ्च सस्मितं विधेः सुतं वेदविदां वरिष्ठम्।
योगीन्द्रसिद्धेन्द्रमहर्षिभिः सह जवेन पीठादुदतिष्ठदीश्वरः ॥ १४ ॥
ददौ च तस्मै मुनये ससम्भ्रममालिङ्गनञ्चाशिषमासनादिकम्।
पप्रच्छ भद्रं गमनप्रयोजनं तपोधनं तं तपसाञ्च शौनक ॥ १५ ॥
सद्रत्नसिंहासनसुन्दरेव रे चोवास शम्भुर्वरपार्षदैः सह।
नोवास स्रष्टुस्तनयः पुटाञ्जलिस्तुष्टाव भक्त्या प्रणतः प्रभुं द्विज ॥ १६ ॥
गन्धर्वराजेन कृतेन नारदो वेदोक्तस्तोत्रेण शुभप्रदेन च।
स्तुत्वा प्रणामं पुनरेव हर्षा भवाग्रयोवास भवस्य वामतः ॥ १७ ॥
चकार तत्रैव निवेदनं शिवे मनोऽभिलाषं भवकामपूरके।
श्रुत्वा मुनेस्तद्वचनं कृपानिधिर्द्रुतं प्रतिज्ञां प्रचकार योगिनि ॥ १८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे शिवनारदसम्मिलनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

# षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

## शिवोक्ताह्निकाचारवर्णनम् ।

सौतिरुवाच ।

ोक्तञ्च कथनं मन्त्रं पूजाविधिं परम् । श्रुतं भगवते देवर्षिर्नारदश्च मानसेन च ॥
वश्च कथनं मन्त्रं ध्यानपूजाविधानकम् । सम्प्राप्य नारायणात्सर्वं नियमे महेश्वरः ॥
प्राप्य मुनिश्रेष्ठः परिपूर्णमनोरथः । उवाच प्रणतो नम्रा गुरुं प्रणतवत्सलम् ॥

नारद उवाच ।

दिकं ब्राह्मणानाञ्च यद् वेदविहितं परं । स्वधर्मपालनं नित्यं यतो भवति नित्यशः ॥३॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

ाप्य ब्राह्मे मुहूर्ते ब्रह्मरन्ध्रस्थपङ्कजे । सूक्ष्मे सहस्रपत्रे च निर्मले ग्लानिवर्जिते ॥४
वासं परित्यज्य गुरुंतत्रैव चिन्तयेत् । ध्यानमुद्राकरं प्रीतं सस्मितं शिष्यवत्सलम् ॥
प्रसन्नवदनं शान्तं परितुष्टं निरन्तरम् । साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपञ्च शिष्याणांचिन्तयेत्सदा ॥
त्वा त्वद्गुरुमादाय हृत्पद्मे निर्मले सिते । सहस्रपत्रे विस्तीर्णे देवमिष्टं विचिन्तयेत् ॥
य देवस्य यद्ध्यानं यद्रूपं तद्विचिन्तयेत् । गृहीत्वा तदनुज्ञाञ्च कर्त्तव्यं समयोचितम् ॥
ीध्यात्वा गुरुंनत्वा संपूज्य विधिपूर्वकम् । पश्चात्तदाज्ञामादाय ध्यायेदिष्टंप्रपूजयेत् ॥१०
प्रदर्शितो देवो मन्त्रपूजाविधिर्जपः । न देवेन गुरुर्दृष्टस्तस्मात् देवात् गुरुः परः ॥
ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुः प्रकृतिरीशाद्या गुरुश्चन्द्रोऽनलो रविः ॥१२
र्वायुश्च वरुणो गुरुर्माता पिता सुहृत् । गुरुरेव परं ब्रह्मन्नास्ति पूज्यो गुरोः परः ॥
भीष्टदेवरुष्टे च समर्थो रक्षणे गुरुः । न समर्था गुरौ रुष्टे रक्षणे सर्वदेवताः ॥१४॥
स्य तुष्टो गुरुः शश्वज्जयस्तस्य पदे पदे । यस्य रुष्टो गुरुस्तस्य सर्वनाशश्च सर्वदा
संपूज्य गुरुं देवं यो मूढः पूजयेद् भ्रमात् । ब्रह्महत्याशतंपापंलभतेनात्र संशयः ॥१६
ेदे च भगवानित्युवाच हरिः स्वयम् । तस्मादभीष्टदेवाच्च गुरुः पूज्यतमः परः ॥

रुमिष्टंस्वयंध्यात्वास्तुत्वाचसाधकोमुने । वेदोक्तस्थलमासाद्यविण्मूत्रमुत्सृजेन्मुदा ॥
लं जलसमीपञ्च सरन्ध्रं प्राणिसन्निधिम् । देवालयसमीपञ्च वृक्षमूलञ्च वर्त्म च ॥१६
क्षेत्कर्षस्थलञ्चैव शस्यक्षेत्रञ्च गोष्ठकम् । नदीकन्दरगर्भञ्च पुष्पोद्यानञ्चपङ्किलम् ॥२०
मायमन्तरञ्चैव नृणां गृहसमीपकम् । शङ्कुं सेतुं शरवनं श्मशानंवह्निसन्निधिम् ॥२१
ड्डास्थलं महारण्यं मञ्चकाधःस्थलंतथा । वृक्षच्छायानुतंस्थानमन्तःप्राण्यवपर्णकम् ॥
ारस्थानं कुशस्थानं वल्मीकस्थानमेव च । वृक्षारोपणभूमिञ्चकार्य्यार्थञ्चपरिष्कृतम् ॥
न् सर्वं परित्यज्य सूर्य्यतापविवर्जितम् । कृत्वा गर्त्तं पुरीषञ्च मूत्रञ्च परिवर्जयेत् ॥
यमूत्रोत्सर्गञ्चदिवाकुर्य्यादुदङ्मुखः । पश्चिमाभिमुखोरात्रौसन्ध्यायांदक्षिणामुखः ॥

मौनी भूत्वा च निःश्वासं यथा गन्धो न सञ्चरेत् ।
त्यक्त्वा मृदा समाच्छाद्य शौचं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ २६ ॥

॥ तु लोष्ट्रशौचञ्च जलशौचं ततः परम् । मृद्युक्तं तज्जलञ्चैव तत्प्रमाणंनिशामय ॥
लिङ्गे मृदं दद्याद् वामहस्ते चतुष्टयम् । उभयोर्द्वस्तयोर्द्वेतुमूत्रशौचंप्रकीर्त्तितम् ॥२८
मूत्रशौचञ्च द्विगुणं मैथुनानन्तरं यदि । मैथुनानन्तरे शौचं मूत्रशौचं चतुर्गुणम् ॥ २६ ॥
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश । उभयोः सप्त दातव्याः पादः षड्भिः शुध्यति ॥
पुरीषशौचंविप्राणांगृहिणामिदमेवच । विधवानाञ्च द्विगुणं शौचमेवं प्रकीर्तितम् ॥३१॥
यतीनां वैष्णवानाञ्च ब्रह्मचर्य्यब्रह्मचारिणाम् । चतुर्गुणञ्च गृहिणां तेषां शौचंप्रकीर्त्तितम् ॥
नी यावदुपनीयेत द्विजः शूद्रस्तथाङ्गना । गन्धलेपक्षयकरं तेषां शौचं प्रकीर्त्तितम् ॥३३
शौचं क्षत्रविशोश्चैव द्विजानांगृहिणांसमम् । द्विगुणंवैष्णवादीनांमुनीनांपरिकीर्त्तितम्
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं शौचं शुद्धिमभीप्सता । प्रायश्चित्तं प्रयुञ्जेत विहितातिक्रमेकृते ॥
शौचं तन्नियमं मत्तः सावधानं निशामय । मृत्शौचेचशुचिर्विप्रोऽप्यशुचिश्चव्यतिक्रमे ॥
वल्मीकामूषिकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा । शौचावशिष्टांगेहाचनद्याल्लेपसम्भवाम् ॥
अन्तःप्राण्यवपर्णाञ्चहलोत्खातांविशेषतः । कुशमूलोत्थिताञ्चैवदूर्वामूलोत्थितान्तथा ॥
अश्वत्थमूलार्जिताञ्च तथैवशयनोत्थिताम् ।
चतुष्पथाच्च गोष्ठाच्च गौष्पदानांतथैव च । शस्यस्थलानां क्षेत्राणामुद्यानानांमृदंत्यजेत्

स्नातो वाप्यथवाऽस्नातो विप्रः शौचेन शुध्यति । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु

कृत्वा शौचमिदं विप्रो मुखं प्रक्षालयेत् सुधीः ॥४१॥

भाद्रे षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं विधाय च । दन्तकाष्ठेन दन्तांश्च तत्पश्चात् परिमार्जयेत्।
पुनः षोडशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् । दन्तमार्जनकाष्ठानां नियमं शृणु नारद ! ॥४३॥
निरूपितं सामवेदे हरिणा चाह्निकक्रमे । अपामार्गं सिन्धुवारमाम्रञ्च करवीरकम् ॥४
खादिरञ्च शिरीषञ्च जातिपुन्नागशालकम् । अशोकमर्जुनञ्चैव क्षीरिवृक्षं कदम्बकम् ॥४
जम्बूकं बकुलं चोड्रं पलाशञ्च प्रशस्तकम् । बदरीं पारिभद्रञ्च मन्दारं शाल्मलिं तथा ॥४

वृक्षं कण्टकयुक्तञ्च लतादिपरिवर्जितम् ॥ ४७ ॥

पिप्पलञ्च पियालञ्च तिन्तिडीकञ्च ताड़कम् । खर्जूरं नारिकेलञ्च तालञ्च परिवर्जितम्।
दन्तशौचविहीनश्च सर्वशौचविहीनकः । शौचहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥४

कृत्वा शौचं शुचिर्विप्रो धृत्वा धौते च वाससी ।

प्रक्षाल्य पादमाचम्य प्रातः सन्ध्यां समाचरेत् ॥ ५० ॥

एवं त्रिसन्ध्यं सन्ध्याञ्च कुरुते कुलजो द्विजः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु त्रिसन्ध्यं यः समाचरेत्
त्रिसन्ध्यहीनोऽप्यशुचिरनर्हः सर्वकर्मसु । यद्दह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्।
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिःकार्य्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मत
पूर्वां सन्ध्यां परित्यज्य मध्यमां पश्चिमां तथा । ब्रह्महत्यामात्महत्यां प्रत्यहं लभते द्विज
एकादशीविहीनो यः सन्ध्याहीनश्च यो द्विजः । स गच्छेत् कालसूत्रं यथा हि वृषलीपतिः।
विधाय प्रातः सन्ध्याञ्च गुरुमिष्टं सुरं रविम् । ब्रह्माणमीशं विष्णुञ्च मायां पद्मां सरस्वतीं
प्रणम्य गुरुमाज्यञ्च दर्पणं मधुकाञ्चनम् । स्पृष्ट्वा स्नानादिकं काले कुर्य्यात् साधकसत्तम
पुष्करिण्यान्तु वाप्यान्तु यद्वा स्नानं समाचरेत् । समुद्धृत्य पञ्चपिण्डान् नदीधर्मी विचक्षण
नद्यां नदे च न्द्रेया तीर्थेषा स्नानमाचरेत् । कुर्य्यात् स्नात्वा तु सङ्कल्पं ततः स्नानं पुनर्मुने
श्रीकृष्णप्रीतिकामश्च वैष्णवानां महात्मनाम् । सङ्कल्पो गृहीणाञ्चैव कृतपातकनाशनम्
कि[illegible] तु सङ्कल्पं मृदं गात्रे प्रलेपयेत् । वेदोक्तमन्त्रेणानेन देहशुद्धिं कृतेन च ॥
[illegible] विष्णुकान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रमोचय ॥६३
पुण्यंदेहिमहाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम्। इत्युक्त्वाच जले नाभिप्रमाणे मन्त्रपूर्वकम्।
चतुर्हस्तप्रमाणाञ्च कृत्वा मण्डलिकां शुभाम्। तीर्थान्यावाहयेत्तत्र हस्तंदत्वा तपोधन

यानि यानि च तीर्थानि सर्वाणि कथयामि ते॥ ६६ ॥

गङ्गेच यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिंकुरु॥
नलिनीनन्दिनी सीतामालिनी च महापथा। विष्णुपादार्घ्यसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी॥
पद्मावतीभोगवती स्वर्णरेखाच कौशिकी। दक्षापृथ्वीचसुभगा विश्वकाया शिवामृता॥

विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसाधिनी।

क्षेमा च वैष्णवी शान्ता शान्तिदा गोमती सती॥ ७० ॥

सावित्रीतुलसीदुर्गा महालक्ष्मीःसरस्वती। कृष्णप्राणाधिकाराधा लोपामुदादितीरतिः।
अहल्या चादितीः संज्ञास्वधा स्वाहाप्यरुन्धती। शतरूपा देवहूतीत्येवमाद्याःस्मरेत्सुधीः
स्नात्वास्नात्वा महापूतः कुर्य्यात्तु तिलकं बुधः। बाहोर्मूले ललाटे च कण्ठदेशेच वक्षसि
स्नानंदानं तपो होमं दैवञ्च पितृकर्मसु। तत् सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना॥

ब्राह्मणस्तिलकं कृत्वा कुर्य्यात् सन्ध्याञ्च तर्पणम्।

नमस्कृत्य सुरान् भक्त्या गृहं गच्छेन्मुदान्वितः॥ ७५ ॥

प्रक्षाल्य पादं यत्नेन धृत्वा धौतेच वाससी। मन्दिरं प्रविशेत् प्राज्ञ इत्याहहरिरेव च॥
येनापादौचप्रक्षाल्य स्नात्वा विशतिमन्दिरम्। तस्य स्नानादिकं नष्टं जपहोमञ्चपञ्चमम्।
परिधायस्निग्धवस्त्रं गृहञ्चप्रविशेद् गृही। रुष्टालक्ष्मीर्गृहाद्याति शापंदत्त्वासुदारुणम्।
ऊर्द्ध्वंजङ्घेचयो विप्रः पादौ प्रक्षालयेत् यदि। तावद्भवतिचाण्डलो यावद् गङ्गान पश्यति
उपविश्यासनेब्रह्मन्नाचम्य साधकःशुचि। पूजांकुर्य्यात्तु वेदोक्तं भक्तियुक्तोहि संयतः॥
शालग्रामे मणौ मन्त्रे प्रतिमायां जले स्थले। गोपृष्ठेवा गुरौ विप्रे प्रशस्तमर्चनं हरेः॥
सर्वप्रशस्ता पूजा च शालग्रामे च नारद। सुराणामेव सर्वेषां यत्राधिष्ठानमेव च। ८२।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। शालग्रामोदकेनैव योऽभिषेकं समाचरेत्॥८३
शालग्रामेजलं भक्त्या नित्यमश्नातियो नरः। जीवन्मुक्तःसच भवेद् यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम्

लग्रामशिलाचक्रं यत्र तिष्ठति नारद । सचक्रो भगवांस्तत्र सर्वतीर्थानि निश्चितम्॥
। यो हि मृतो देही ज्ञानाज्ञानेन दैवतः । रत्ननिर्माणयानेन स याति श्रीहरेः पदम्॥८८
लग्रामं विनाप्यत्रकः साधुः पूजयेद्धरिम् । कृत्वा तत्र हरेः पूजां परिपूर्णं फलं लभेत्॥
ाधारश्च कथितः श्रूयतां पूजनक्रमः । हरेः पूजां बहुमतां कथयामि यथागमम्॥८८

कश्चिद् ददाति हरये चोपचारांश्च षोडश ।
सुन्दराणि पवित्राणि नित्यं भक्त्या च वैष्णवः ॥ ८६ ॥

चिद् द्वादश द्रव्याणि पञ्चवस्तूनि कश्चन । येषामेव यथाशक्तिर्भक्तिमूलञ्च पूजने ॥९०॥
ासनं वसनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् । पुष्पं चन्दनधूपञ्च दीपनैवेद्यमुत्तमम्॥ ९१॥

गन्धं माल्यञ्च शय्याञ्च ललितां सुविलक्षणाम् ।
जलमन्नञ्च ताम्बूलं साधारं देयमेव च ॥ ९२ ॥

न्धान्नतल्पताम्बूलं विनाद्रव्याणि द्वादश । पाद्यार्घ्यजलं नैवेद्य पुष्पाण्येतानि पञ्च च
र्वाण्येतानि मूलेन दद्यात् साधकसत्तमः । गुरूपदिष्टं मूलञ्च प्रशस्तं सर्वकर्मसु ॥९४॥
ादौ कृत्वा भूतशुद्धिं प्राणयामं ततः परम् । अङ्गप्रत्यङ्गन्यासञ्च मन्त्रन्यासं ततःपरम्॥
र्णन्यासं विनिर्वर्त्य चार्घ्यपात्रं विनिर्दिशेत् । त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र कूर्मं प्रपूजयेत्॥
ादिकापूर्य शङ्खञ्च तत्र संस्थापयेद् द्विजः । जलं संपूज्य विधिवत्तीर्थान्यावाहयेत्तत॥
[ोपकरणं तेन जलेन क्षालयेत् पुनः । ततोगृहीत्वा पुष्पञ्च कृत्वायोगासनं शुचि॥

ध्यानेन गुरुदत्तेन ध्यायेत् कृष्णमनन्यधीः ।
ध्यात्वा पाद्यादिकं सर्वं दद्यान्मूलेन साधकः ॥ ६६ ॥

ङ्गप्रत्यङ्गदेवञ्च तन्त्रोक्तं पूजयेद्धरिम् । मूलं जप्त्वा यथाशक्ति देवमन्त्रं विसर्जयेत्॥
त्योपहारं विविधं स्तुत्वा च कवचं पठेत् । ततःकृत्वापरीहारं मूर्ध्ना च प्रणमेद्भुवि॥
त्वा च देवपूजाञ्च मंकुर्याद्विचक्षणः । श्रौतस्मार्त्तादियुक्तश्च बलिंदद्यात्ततो मुने॥
नित्यश्राद्धं यथाशक्तिदानं वित्तानुरूपकम् । कृत्वा कृती च विहरेत् सम्पत्प्रभृतोऽशुभ॥

इति ते कथितं सर्वं वेदोक्तं सूत्रमुत्तमम् ।
आह्निकञ्च च विप्राणां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १०४ ॥

[illegible] महापुराणे ब्रह्मखण्डे शिवनारदसंवादे आह्निकप्रकरणकथनं नाम
षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

# सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

## नराणां भक्ष्याभक्ष्य-कर्तव्याकर्तव्यकथनम् ।

नारद उवाच ।

भक्ष्यं किं चाप्यभक्ष्यञ्च द्विजानां गृहिणां प्रभो ।
यतीनां वैष्णवानाञ्च विधवाब्रह्मचारिणाम् ॥ १ ॥
किं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यमभोग्यं भोग्यमेव वा । सर्वं कथय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वकारणम् ॥

महादेव उवाच ।

कश्चित्तपस्वी विप्रश्चनिराहारी चिरंमुनिः । कश्चित् समीरणाहारीफलाहारी च कश्चन ॥
अन्नाहारी यथाकाले गृही च गृहिणीयुतः ।
येषामिच्छा च या ब्रह्मन् रुचीनां विविधा गतिः ॥ ४ ॥
वैष्णवान्नं ब्राह्मणानां प्रशस्तं गृहिणां सदा । नारायणोच्छिष्टमिष्टमनिवेद्यमभक्षकम् ॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । विण्मूत्रं सर्वपापोक्तमन्नञ्च हरिवासरे ॥
ब्राह्मणः कामतोऽन्नञ्च यो भुङ्क्ते हरिवासरे ।
त्रैलोक्यजनितं पापं सोऽपि भुङ्क्ते न संशयः ॥ ७ ॥
भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यञ्च नारद । गृहिभिर्ब्राह्मणैरन्नं संप्राप्ते हरिवासरे ।८।
यो शैवश्च शाक्तश्च ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । प्रयातिकालसूत्रञ्च भुक्त्वा च हरिवासरे ॥
कृमिभिः शालमानैश्च भक्षितस्तत्र तिष्ठति । विण्मूत्रभोजनं कृत्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश
अष्टमी दिने रामनवमी दिवसेहरेः । शिवरात्रौ च योभुङ्क्तेसोऽपिद्विगुणपातकी ॥
उपवासासमर्थश्च फलमूलजलं पिबेत् । नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चात्मघातकः ॥१२॥
यदुभुङ्क्तेहविष्यान्नंविष्णोर्नैवेद्यमेवच । न भवेत्प्रत्यवायी स चोपवासफलंलभेत् ॥
एकादश्यामनाहारं गृही विप्रश्च भारते । स च तिष्ठति वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥
गृहिणां शैवशाक्तानामिदमुक्तञ्च नारद । विशेषतो वैष्णवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥

रवौ श्राद्धे व्रताहे च दुष्टं स्त्री तिलतैलकम् ।
मांसञ्च रक्तशाकञ्च कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥ ३८ ॥

नेषिद्धं शयने चैव कूर्ममांसञ्च प्रोक्षितम् । निषिद्धं सर्ववर्णानां दिवा स्वस्त्रीनिषेवणम् ।
ात्रौ च दधिभक्ष्यञ्च शयनं सन्ध्ययोर्दिने । रजःस्वलास्त्रीगमनमेतन्नरककारणम् ॥४०॥
जःस्वलावीरान्नञ्च पुंश्चल्यन्नमभक्षकम् । शूद्राणां याजकान्नञ्च शूद्रश्राद्धान्नमेव च ॥
मभक्ष्यान्नञ्च विप्रर्षे! यदन्नं वृषलीपतेः । ब्रह्मन् वार्द्धुषिकान्नञ्च गणकान्नमभक्ष्यकम् ।
ग्रदानिद्विजान्नञ्च चिकित्साकारकस्य च । हस्ताद्विप्राहृतं तैलमग्राह्यञ्चाप्यभक्षणम् ।
ले मृगे भाद्रपदे मांसं गोमांसतुल्यकम् । अमायां कृत्तिकायाञ्च द्विजैः क्षौरं विवर्जितम् ।
त्वा तु मैथुनं क्षौरं यो देवांस्तर्पयेत् पितॄन् । रुधिरं तद्भवेत्तोयं दाता च नरकं व्रजेत् ।

यत् कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं यद्भोज्यं यदभोज्यकम् ।
सर्वं तुभ्यं निगदितं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४६ ॥

ति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे शिवनारदसंवादे कर्त्तव्या-
कर्त्तव्यकथनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः समाप्तः ।

---

# अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

## ब्रह्मनिरूपणम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं जगन्नाथ त्वत्प्रसादाज्जगद्गुरो । भवान् ब्रह्मस्वरूपञ्च वद ब्रह्मनिरूपणम् ॥१॥
ब्रह्मो किं ब्रह्म साकारं किं निराकारमीश्वरम् । किं तद्विशेषणं किं वाप्यविशेषणमेव च ।
किं वा दृश्यमदृश्यं वा लिप्तं देहिषु किं न वा । किं वा तल्लक्षणं शास्त्रे वेदे वा किं निरूपणम् ।
ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिः किं वा ब्रह्मस्वरूपिणी । ब्रह्मनिर्लक्षणं किं वा सारभूतं श्रुतीप्सितम् ।
कस्य सृष्टौ च प्राधान्यं द्वयोर्मध्ये परं परम् । विचार्य्य मनसा सर्वं सर्वज्ञपदमाप्नुयात् ॥

रदस्य वचः श्रुत्वा पञ्चवक्त्रः प्रहस्य च । भगवान् वक्तुमारेभे परं ब्रह्मनिरूपणम्॥

महादेव उवाच ।

दु यत् पृष्टं त्वया वत्स निगूढं ज्ञानमुत्तमम् । सुदुर्लभञ्च वेदेषु पुराणेषु च नारद॥
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शेषो धर्मो महान् विराट् ।
सर्वं निरूपितं ब्रह्मन्नस्माभिः श्रुतिभिर्न वा ॥ ८ ॥

द्विशेषणयुक्तस्य दृश्यं प्रत्यक्षमेव च । तन्निरूपितमस्माभिर्यद्वेदे वेदविदां वर ॥ १॥
कुण्ठे च पुरा पृष्टे धर्मेण ब्रह्मणा मया । यदुवाच हरिः किञ्चिन्निबोध कथयामि ते
ारभूतस्य तत्त्वानामज्ञानान्धकलोचनम् । द्वैधभ्रमतमोध्वंसज्ञानप्रदीपकम् ॥ ११ ॥
रमात्मस्वरूपञ्च परं ब्रह्म सनातनम् । सर्वदेहस्थितं साक्षिस्वरूपं देहिकर्मणाम् ॥१२॥
ाणाः पञ्च स्वयं विष्णुर्मनो ब्रह्माप्रजापतिः । सर्वज्ञानस्वरूपोऽहंशक्तिःप्रकृतिरीश्वरी ।
ात्माधीना वयं सर्वे स्थिते तस्मिंश्च संस्थिताः । गते गताश्च परमे नारदेवमिवानुगाः
ीवस्तत्प्रतिबिम्बश्च स च भोगी च कर्मणाम् । यथार्कचन्द्रयोर्बिम्बो जलपूर्णघटेषु च
बिम्बौ घटेषु भग्नेषु प्रलीनश्चन्द्रसूर्ययोः । तथा सृष्टौ च भग्नायांजीवो ब्रह्मणि लीयते
एकमेव परं ब्रह्म शेषे वत्स भवक्षये । वयं प्रलीनास्तत्रैव जगदेतच्चराचरम् ॥ १७ ॥
तच्च ज्योतिःस्वरूपञ्च मण्डलाकारमेव च । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डकोटिकोटिसमप्रभम् ।
आकाशमिव विस्तीर्णं सर्वव्यापकमव्ययम् । सुखदृश्यं यथा चन्द्रबिम्बं योगिभिरेव च
वदन्ति योगिनस्तत्तु परं ब्रह्म सनातनम् । दिवानिशञ्च ध्यायन्ते सत्यं तत् सर्वमङ्गलम्
निरीहञ्च निराकारं परमात्मनमीश्वरम् । स्वेच्छामयं स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम् ।
परमानन्दरूपञ्च परमानन्दकारणम् । परं प्रधानं पुरुषं निर्गुणं प्रकृतेः परम् ।
तत्रैव लीना प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी ॥ २२ ॥

यथाग्नौ दाहिका शक्तिः प्रभा सूर्ये यथा मुने । यथा दुग्धे च धावल्यंजलेशैत्यंयथैव च
यथा शब्दश्च गगने यथा गन्धः क्षितौ सदा । तथाहि निर्गुणं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिस्तथा
सृष्ट्युन्मुखे न तद्ब्रह्मचांशेन पुरुषः स्मृतः । स एवसगुणोवत्स! प्राकृतोविषयीस्मृतः
सा च तत्रैव त्रिगुणा परा छायामयी स्मृता ॥ २६ ॥

यथा मृदा कुलालश्च घटं कर्त्तुं क्षमः सदा । तथाप्रकृत्या तद्ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं क्षमो मुने ।
स्वर्णेन कुण्डलं कर्त्तुं स्वर्णकारः क्षमो यथा । तथा ब्रह्म तयासार्द्धं सृष्टिं कर्त्तुमिहेश्वरः ।
कुलालसृष्टा न च मृन्नित्या एव सनातनी । न स्वर्णकारसृष्टं तत्स्वर्णञ्च नित्यमेव च ।
नित्यं तत् परमं ब्रह्म नित्या च प्रकृतिः स्मृता ।
द्वयोः समञ्च प्राधान्यमिति केचिद्वदन्ति हि ॥ ३० ॥
...दं स्वर्णं समाहर्त्तुं कुलालस्वर्णकारकौ । न समर्थौ च मृत्स्वर्णं तयोराहरणे क्षमम् ॥
...स्मात्तद्ब्रह्म प्रकृतेः परमेव च नारद ! । इति केचिद्वदन्त्येव द्वयोश्च नित्यता ध्रुवम् ॥
...चिद्वदन्ति तद्ब्रह्म स्वयञ्च प्रकृतिः पुमान् । ब्रह्मातिरिक्ता प्रकृतिर्वदन्तीति च केचन ।
...द्ब्रह्म परमं धाम सर्वकारणकारणम् । तद्ब्रह्मलक्षणं ब्रह्मन्निदं किञ्चित् श्रुतौश्रुतम् ॥
...ह्मात्मा च सर्वेषां निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम् । सर्वव्यापी च सर्वादिलक्षणञ्च श्रुतौश्रुतम् ।
...द्ब्रह्मशक्तिः प्रकृतिः सर्वबीजस्वरूपिणी । यतस्तच्छक्तिमद्ब्रह्म चेदं प्रकृतिलक्षणम् ॥
तेजोरूपञ्च तद्ब्रह्म ध्यायन्ते योगिनः सदा ।
...णवास्तन्न मन्यन्ते मद्भक्ताः सूक्ष्मबुद्धयः । तत्तेजः कस्य चाश्चर्यं ध्यायन्तेपुरुषंविना ॥
...रणेन विना कार्यं कुतो वा प्रभवेद्ध्रुवे । ध्यायन्ते वैष्णवास्तस्मात्तत्र रूपं मनोहरम् ॥
...च्छामयस्य पुंसश्च साकारस्यात्मनः सदा । तत्तेजो मण्डलाकारैःसूर्य्यकोटिसमप्रभे ॥
...यं स्थूलञ्च प्रच्छन्नंगोलोकाभिधमेव च । लक्षकोटियोजनञ्च चतुरस्रं मनोहरम् ॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणैर्गोपीनामावृतं सदा ।
...यं वर्त्तुलाकारं यथैव चन्द्रमण्डलम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं निराधारञ्च स्वेच्छया ॥
...र्व्वञ्च नित्यवैकुण्ठात्पञ्चाशत्कोटियोजनम् । गोगोपगोपीसंयुक्तंकल्पवृक्षसमन्वितम्
...धेनुभिराकीर्णं रासमण्डलमण्डितम् । वृन्दावनवनाच्छन्नं विरजावेष्टिनं मुने ॥४३॥
...शृङ्गं शतशृङ्गैः सुदीप्तं दीप्तमीप्सितम् । लक्षकोटिपरिमितैराश्रमैः सुमनोहरैः ॥४४॥
शतमन्दिरसंयुक्तमाश्रमं सुमनोहरम् ॥ ४५ ॥
...रपरिखायुक्तंपारिजातवनान्वितम् । कौस्तुभेन्द्रेण मणिना निर्माणकलसोज्ज्वलैः
...सारविनिर्माणसोपानसंघसुन्दरैः । मणीन्द्रसारनिर्माणैः कपाटदर्पणान्वितैः ॥४७॥

नानाचित्रविचित्राढ्यं राश्रमञ्च सुसंस्कृतम् । षोडशद्वारसंयुक्तं सुदीप्तं रत्नदीपकैः ॥
रत्नसिंहासने रम्ये ह्यमूल्यरत्ननिर्मिते । नानाचित्रविचित्राढ्ये वसन्तमीश्वरंवरम् ॥
नवीननीरदश्यामं किशोरवयसं शिशुम् । शरन्मध्याह्नमार्त्तण्डप्रभामोचनलोचनम् ॥
शरत्पार्वणपूर्णेन्दुशोभाच्छादनमाननम् । कोटिकन्दर्पलावण्यलीलानिन्दितसुन्दरम् ।
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । सस्मितं मुरलीहस्तं सुप्रशस्तं सुमङ्गलम् ॥
वह्निसंस्कारपीतांशुयुगलेन समुज्ज्वलम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं कौस्तुभेन विराजितम् ।
आजानुमालतीमालावनमालाविभूषितम् । त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं मणिमाणिक्यभूषितम् ।
मयूरपुच्छचूडञ्च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकेयूरवलयरत्नमञ्जीररञ्जितम् ॥ ५५
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलसुशोभितम् । मुक्तापङ्क्तिविनिन्दैकदशनंसुमनोहरम् ॥
पक्वबिम्बाधरौष्ठञ्च नासिकोन्नतशोभनम् । वीक्षितंगोपिकाभिश्चवेष्टिताभिश्चसन्ततम्
स्थिरयौवनयुक्ताभिः सस्मिताभिश्च सादरम् । भूषिताभिश्च सद्रत्ननिर्माणभूषणेन च
सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च मुनिभिर्मानवेन्द्रकैः । ब्रह्माविष्णुशिवानन्तधर्माद्यैर्वन्दितंमुदा ॥
भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकातरम् । रासेश्वरंसुरसिकं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥
एवंरूपमरूपं तं ध्यायन्ते वैष्णवा मुने । सततं ध्येयमस्माकं परमात्मानमीश्वरम् ॥
अक्षरं परमं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । स्वेच्छामयं निर्गुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥
सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वज्ञं सर्वमेव च । सर्वेश्वरं सर्वपूज्यं सर्वसिद्धिकरप्रदम् ॥
स एव भगवानादिर्गोलोके द्विभुजः स्वयम् । गोपवेशश्च गोपालैः पार्षदैः परिवेष्टितः
परिपूर्णतमः श्रीमान् श्रीकृष्णो राधिकेश्वरः । सर्वान्तरात्मा सर्वत्र प्रत्यक्षः सर्वगः स्मृतः
कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चात्मवाचकः । सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥
कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चादिवाचकः । सर्वादिपुरुषो व्यापी तेन कृष्णः प्रकीर्तितः
स एवांशेन भगवान् वैकुण्ठे च चतुर्भुजः । चतुर्भुजैः पार्षदैस्तैरावृतः कमलापतिः ॥
एव कलया विष्णुः पाता च जगतां प्रभुः । श्वेतद्वीपे सिन्धुकन्यापतिरेव चतुर्भुजः
[illegible] सर्वं परं ब्रह्मनिरूपणम् । अस्माकं चिन्तनीयञ्च सेव्यं वन्द्यमीप्सितम् ।
[illegible] शङ्करश्च विरराम च शौनक । गन्धर्वराजस्तोत्रेण तुष्टाव तञ्च नारदः ॥

मुनिस्तोत्रेण सन्तुष्टो भगवानादिरच्युतः । ज्ञानं मृत्युञ्जयस्तस्मै प्रददौ परमीप्सितम् ॥
तं प्रणम्य मुनीन्द्रश्च प्रहृष्टवदनेक्षणः । तदाज्ञया पुण्यरूपं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ७३ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारदप्रस्थानं नामाष्टा-
विंशतितमोऽध्यायः ।

---

## ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

### नारायणं प्रति नारदप्रश्नः ।

सौतिरुवाच ।

दर्शाश्रममाश्चर्यं देवर्षिर्नारदस्तथा । ऋषिर्नारायणस्यैव बदरीवनसंयुतम् ॥ १ ॥
नावृक्षफलाकीर्णं पुंस्कोकिलरुतश्रुतम् । शरभेन्द्रैः केशरीन्द्रैर्व्याघ्रौघैः परिवेष्टितम् ॥
षीन्द्रस्य प्रभावेण हिंसाभयविवर्जितम् । महारण्यमगम्यञ्च स्वर्गाधिकमनोहरम् ॥ ३ ॥
सिद्धेन्द्राणांमुनीन्द्राणामाश्रमाणांत्रिकोटिभिः । आवृतं चन्दनारण्यपारिजातवनान्वितम् ॥
दर्श तमृषीन्द्रञ्च सभामध्ये मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च वसन्तं योगिनां गुरुम् ॥
पन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् । प्रणनाम च तं दृष्ट्वा ब्रह्मपुत्रश्च शौनक ॥ ६ ॥
त्थाय सहसाऽऽलिङ्ग्य युयुजे परमाशिषम् । पप्रच्छ कुशलं स्नेहाद्वकारातिथिपूजनम् ॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारदम् । निवसन्नासने रम्ये धर्म्मं धर्मविवर्जिनः ॥ ८ ॥
वाच तमृषिश्रेष्ठं भगवन्तं सनातनम् । अधीनरेशान् सर्वांश्च पितुःस्थाने सुदुर्गमान् ॥
नं सम्प्राप्य योगीन्द्रान्मन्त्रञ्च शङ्कराद्विभो । मनो मे न हि तृप्तो निर्दुर्निवाराञ्चञ्चलम् ॥
! मयानस्पदाब्जं मनसाप्रेरितेन च । किञ्चिज्ज्ञानविशेषञ्च लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥
यत्र कृष्णगुणाख्यानं जन्ममृत्युजराहरम् ॥ १२ ॥
रविष्णुशिवाद्याश्च सुरेन्द्राश्च सुरा विभो । कं चिन्तयन्ति मुनयो मनवश्च विचक्षणाः ॥
स्मात् सृष्टिश्च प्रभवेत् कुत्र वा विप्रलीयते । कोवा सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वकारणकारकः ॥

तस्योऽवरस्य किं रूपं कर्म वा किं जगत्पते । निवास्यं मनसाम्नं तद्वद्वान् वक्तु

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भगवान्मुनिः ।
कथां कथितुमारेभे पुण्यां भुवनपावनीम् ॥ १६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे नारायणं प्रति नार
नाम ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## त्रिंशत्तमोऽध्यायः

### श्रीनारायणकृतः स्तवः ।

श्रीनारायण उवाच ।

लम्बोदरो हरिरुमापतिरीशशेषा ब्रह्मादयः सुरगणा मनवो मुनीन्द्राः ।
वाणी शिवा त्रिपथगा कमलादिका या सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ १ ॥
संसारसागरमतीवगभीरघोरं दावाग्निसर्पपरिवेष्टितवेष्टिताङ्गम् ।
संलङ्घ्य गन्तुमभिवाञ्छति यो हि दास्यं सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ २ ॥
गोवर्द्धनोद्धरणकीर्त्तिरतीवखिन्ना भूर्धारिता च दशनाग्रकरेण छिन्ना ।
विश्वानि लोमविवरेषु विभर्त्तुरादेः सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ३ ॥
गोपाङ्गनावदनपङ्कजषट्पदस्य रासेश्वरस्य रसिकारमणस्य पुंसः ।
वृन्दावने विहरतो व्रजवेशविष्णोः सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम् ॥ ४ ॥
चक्षुर्निमेषपतितो जगतां विधाता तत्कर्म वत्स कथितं भुवि कः समर्थः ।
स प्रश्नोऽपि नारदमुने परमादरेण सञ्चिन्तनं कुरु हरेश्चरणारविन्दम् ॥ ५ ॥
तस्य कलाकलांशाः कलाकलांशा मनवो मुनीन्द्राः ।
भवपारमुख्या महान् विराड्यस्य कलाविशेषः ॥ ६ ॥
शार्ङ्गः शिरसः प्रदेशे विभर्त्ति सिद्धार्थसमञ्च विश्वम् ।

कूर्मे च शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः ॥ ७ ॥
गोलोकनाथस्य विभोर्यशोऽमलं श्रुतौ पुराणे न हि किञ्चन स्फुटम्।
न पद्ममुख्याः कथितुं समर्थाः सर्वेश्वरं तं भज पद्ममुख्यम् ॥ ८ ॥
विश्वेषु सर्वेषु च विश्वधाम्नः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुरुद्राः।
तेषाञ्च संख्याः श्रुतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज ॥ ९ ॥
करोति सृष्टिं स विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसूम्।
ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां श्रीं प्रकृतिं भजन्ति ॥ १० ॥
ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना यथा च सृष्टिं कुरुते सनातनः।
स्त्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिताः ॥ ११ ॥
नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च।
आत्मेश्वरश्चापि यथा च शक्तिमांस्तया विना स्रष्टुमशक्त एव ॥ १२ ॥
गत्वा विवाहं कुरु वत्स साम्प्रतं कर्त्तुं प्रयुक्तश्च पितुर्निदेशम्।
गुरोर्निदेशं प्रतिपालकोभवेत् सर्वत्रपूज्यो विजयी च सन्ततम् ॥ १३ ॥
[?]पत्नीं पूजयेद् योहि वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। प्रकृतिस्तस्यसन्तुष्टा यथाकृष्णो द्विजार्चने ॥
[?] च योषित्स्वरूपा च प्रतिविश्वेषु मायया। योषितामपमानेन पराभूता च सा भवेत्।
[?]व्या स्त्री पूजिता येन पतिपुत्रवती सती। प्रकृतिः पूजिता तेन सर्वमंगलदायिनी ॥
[?]प्रकृतिरेका सा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी। सृष्टौ पञ्चविधा सा च विष्णुमाया सनातनी ॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या कृष्णस्य परमात्मनः।
सर्वासां प्रेयसी कान्ता सा राधा परिकीर्त्तिता ॥ १८ ॥
[?]रायणप्रियालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी। रागाधिष्ठातृदेवी या साचपूज्या सरस्वती ॥
[?]ावित्री वेदमाता च पूज्यरूपा विधेः प्रिया। शङ्करस्यप्रियादुर्गा यस्याः पुत्रोगणेश्वर ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे सौतिशौनकसंवादे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

ब्रह्मखण्डं समाप्तम्।

# अथ द्वितीयं प्रकृतिखण्डम्

## प्रथमोऽध्यायः ।

### प्रकृतिचरितमुख्यम् ।

नारायण उवाच ।

गणेशजननीदुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती । सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधास्मृता
आविर्बभूव सा येन कथासा ज्ञानिनां वर । किंचा तल्लक्षणं वत्स ! को वा वक्तुं क्षमो भवे
किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यत् श्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥ ३ ॥
प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।
गुणे प्रकृष्टसत्त्वे च प्रशब्दो वर्त्तते श्रुतौ । मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः।
त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता । प्रधानसृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते ।
प्रथमे वर्त्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः । सृष्टेराद्या च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता।
योगेनात्मासृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः । पुमांश्च दक्षिणार्द्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृतिःस्मृता।
साचब्रह्मस्वरूपाच माया नित्यसनातनी । यथात्मा च यथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिकास्मृता।
अतएव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते । सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् पश्यति नारद॥
स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया । साविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तदाज्ञया पञ्चविधा सृष्टिकर्मणि भेदतः । अथ भक्तानुरोधाद् वा भक्तानुग्रहविग्रहा॥
गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया । नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी॥
[illegible] सा ब्रह्मरूपसनातनी ॥१४॥

बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः ।

जातिः क्षान्तिश्च शान्तिश्च कान्तिर्भ्रान्तिश्च चेतना ॥ १८ ॥

तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माया च कीर्तिता । सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम् । गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्ताया अपरां च निशामय ॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा च परमात्मनः । सर्वसम्पत्स्वरूपा या तदधिष्ठातृदेवता ॥
कान्ता दान्तातिशान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला । लोभमोहकामरोषमदाहङ्कारवर्जिता ॥
भक्तानुरक्ता पत्युश्च सर्वाभ्यश्च पतिव्रता । प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्री प्रियंवदा ॥२०॥
सर्वसस्यात्मिका देवी सर्वजीवनरूपिणी । महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवारता सदा ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु । गृहे च गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा ॥
सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा । प्रीतिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च ॥२१॥
वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहाङ्कुरा । दयामयी भक्तमाता भक्तानुग्रहकातरा ॥२२॥
चपले चपला भक्तसम्पदो रक्षणाय च । जगज्जीवन्मृतं सर्वं यया देव्या विना मुने ॥
शक्तिर्द्वितीया कथिता वेदोक्ता सर्वसम्मता । सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तो निशामय ॥
वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिदेवता परमात्मनः । सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती ॥
सुबुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा सताम् । नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकल्पनाप्रदा ॥
व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसन्देहभञ्जिनी । विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी ॥
सर्वसङ्गीतसन्धानतालकारणरूपिणी । विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वेषु जीविनाम् ॥२३॥

व्याख्यामुद्राकरा शान्ता वीणापुस्तकधारिणी ।

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या सुशीला श्रीहरिप्रिया ॥ २४ ॥

हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा । जपन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया ॥२५॥
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनाम् । सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा ॥
देवी तृतीया गदिता श्रुत्युक्ता जगदम्बिका । यथागमं यथाकिञ्चिदपरां सन्निबोध मे ॥२७॥

माता चतुर्णां वेदानां वेदाङ्गानां च छन्दसाम् ।

सन्ध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणां च विचक्षणा ॥ २८ ॥

ज्ञातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी । ब्राह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता ॥
त्पादरजसां पूतं जगत् सर्वज्ञ नारद । देवी चतुर्थी कथिता पञ्चमीं वर्णयामि ते
प्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी । प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाभ्यः सुन्दरी परा ॥४
र्वसौभाग्ययुक्ता च मानिनी गौरवान्विता । वामार्द्धाङ्गस्वरूपा च गुणेन तेजसा समा ॥
वरा सर्वभूता परमाद्या सनातनी । परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता ॥४४॥
सक्रीडाधिदेवी च कृष्णस्य परमात्मनः । रासमण्डलसंभूता रासमण्डलमण्डिता ॥
सेश्वरी सुरसिका रासवासनिवासिनी । गोलोकवासिनी देवी गोपीवेशविधायिका
माह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी । निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी ॥४६
रीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहविग्रहा । वेदानुसारध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः ॥४७॥
ष्टदृष्टा सहस्रेषु सुरेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ४८ ॥
टिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहा । श्रीकृष्णभक्तदास्यैकदात्रिका सर्वसम्पदाम् ॥४९
वतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या । यत्पादपद्मसंस्पर्शपवित्रा च वसुन्धरा ॥ ५० ॥
ह्मादिभिरदृष्टा या सर्वदृष्टा च भारते । स्त्रीरत्नसारसंभूता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥

तथा घने नवघने लोला सौदामिनी मुने ॥ ५१ ॥

ष्टि वर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा । यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये ॥

न च दृष्टश्च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा ॥ ५२ ॥

नैव तपसा दृष्टा भुवि वृन्दावने वने । कथिता पञ्चमी देवी सा राधा परिकीर्त्तिता ॥
शरूपा कलारूपा कलांशांशसमुद्भवा । प्रकृतेः प्रतिविश्वेषु देवी च सर्वयोषितः ॥५४॥
रिपूर्णतमाः पञ्चविधा देव्यश्च कीर्त्तिताः । या या प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय ॥
धानांशस्वरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । विष्णुविग्रहसंभूता द्रवरूपा सनातनी ॥५६॥
पिपापेध्मदाहाय ज्वलदिन्धनरूपिणी । दर्शनस्पर्शस्नानपाने निर्वाणपददायिनी ॥ ५७ ॥
लोकस्थानप्रस्थानसुसोपानस्वरूपिणी । पवित्ररूपा तीर्थानां सरिताञ्च परा वरा ॥

शम्भुमौलिजटामेरुमुक्तापङ्क्तिस्वरूपिणी ॥ ५८ ॥

पःसम्पादिनी सद्यो भारते च तपस्विनाम् । शङ्खपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी ॥

निर्मला निरहङ्कारा साध्वी नारायणप्रिया ॥ ६१ ॥
प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी । विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती ॥
तपः सङ्कल्पपूजादिसद्यः सम्पादनी मुने । सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा ॥
दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्च सद्योनिर्वाणदायिनी । कलौ कलुषशुष्केध्मदहनायाग्निरूपिणी ॥६२
यत्पादपद्मसंस्पर्शात् सद्यः पूता वसुन्धरा । यत्स्पर्शदर्शनमिच्छन्ति तीर्थानि चात्मशुद्धये ॥
यया विना च विश्वेषु सर्वं कर्मातिनिष्फलम् ।
मोक्षदा च मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदा ॥ ६४ ॥
कल्पवृक्षस्वरूपा च भारते वृक्षरूपिणी । त्राणाय भारतानाञ्च प्रजानां परदेवता ॥
प्रधानांशस्वरूपा च मनसा कश्यपात्मजा । शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा ॥
नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता । नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी ॥
नागेन्द्रगणयुक्ता सा नागभूषणभूषिता । नागेन्द्रवन्दिता सिद्धयोगिनी नागवासिनी ॥
विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णुपूजापरायणा । तपः स्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी ।
दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च तपस्तप्तं यया हरेः । तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते ॥
सर्वमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा । ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा ॥ ७१॥
जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णांशस्य पतिव्रता । आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम् ।
प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद । मातृकासु पूज्यतमा साच षष्ठी प्रकीर्त्तिता ।७३
शिशूनां प्रतिविश्वेषु प्रतिपालनकारिणी । तपस्विनी विष्णुभक्ता कार्त्तिकेयस्य कामिनी ।
षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्त्तिता । पुत्रपौत्रप्रदात्री च धात्री च जगतां सदा ।७५
सुन्दरी युवती रम्या सततं भर्त्तुरन्तिके । स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी ॥
जा द्वादशमासेषु यस्याः षष्ठ्यास्तु सन्ततम् । पूजा च सूतिकागारे परषष्ठदिने शिशोः ॥
कविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी । शश्वन्नियमिता चैषा नित्या काम्याप्यतःपरा ।
तृरूपा दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी । जले स्थले चान्तरीक्षे शिशूनां स्वप्नगोचरा ॥
धानांशस्वरूपा या देवी मङ्गलचण्डिका । प्रकृतेर्मुखसंभूता सर्वमङ्गलदा सदा ॥८० ॥
ष्टौ मङ्गलरूपा च संहारे कोपरूपिणी । तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैःपरिकीर्त्तिता ॥

...तिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता । पञ्चोपचारैर्भक्त्या च योगिभिः परिपूजिता ॥८
सुवर्णाश्रयनैःवर्ग्ययशोमङ्गलदायिनी । शोकसन्तापसार्तिदुःखदारिद्र्यनाशिनी ॥८
...रितुष्टा सर्वस्याज्ञाप्रदात्री सर्वयोषिताम् । यथांशेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी ॥
प्रधानांशस्वरूपा च कालीकमललोचना । दुर्गाललाटसम्भूता रणे शुम्भनिशुम्भयोः ॥८
दुर्गार्धांशस्वरूपा च गुणेन तेजसा समा । कोटिसूर्यप्रभामुष्टपुष्टजाज्वल्यविग्रहा ॥८
प्रधाना सर्वशक्तीनां वरा बलवती परा । सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा सिद्धियोगिनी ॥
कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः । कृष्णभावनया शश्वत् कृष्णवर्णा सनातनी ॥
संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्ता निःश्वासमात्रतः । रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकरक्षया ॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च दातुं शक्ता च पूजिता । ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः ।
प्रधानांशस्वरूपा च प्रकृतेश्च वसुन्धरा । आधारभूता सर्वेषां सर्वशस्यप्रसूतिका ॥६१॥
रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया । प्रजादिभिः प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा ॥
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसम्पद्विधायिनी । यया विना जगत् सर्वं निराधारं चराचरम् ॥

प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर ।
यस्य यस्य च या पत्न्यस्ता सर्वा वर्णयामि ते ॥ ६४ ॥

स्वाहादेवी वह्निपत्नी त्रिषु लोकेषु पूजिता । यया विना हविर्दत्तं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः ।
दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता । यया विना हि विश्वेषु सर्वं कर्मैव निष्फलम् ।
स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः । पूजिता पितृदानञ्च निष्फलञ्च यया विना ।
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता । आदानञ्च प्रदानञ्च निष्फलञ्च यया विना ।
पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले । यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च ।
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वन्दिता सदा । यया विना न सन्तुष्टाः सर्वलोकाश्च सर्वतः ।
ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः । सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना ।
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता । सर्वे लोका अधैर्याश्च जगत्सु च यया विना ।
[illegible] सुशीला सर्वपूजिता । समुन्मत्ताश्च रुष्टाश्च सर्वे लोका यया विना ।
[illegible] कामपत्नी रतिः सती । केलिकौतुकहीनाश्च सर्वे लोका यया विना ।

सन्तोषपत्नी सती तुष्टिःपूजिता जगतांप्रिया । ययाविना भवेल्लोको वन्धुता रहितःसदा।
मोहपत्नीदयासाध्वीपूजिता च जगत्प्रिया। सर्वेलोकाश्च सर्वत्र निष्फलाश्च ययाविना।
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पुण्यरूपा च पूजिता । यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतसमं मुने ।
सुकर्मपत्नी कीर्त्तिश्चधन्यामान्या च पूजिता । ययाविना जगत् सर्वं यशोहीनंमृतंयथा ।
क्रिया उद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसम्मता । ययाविना जगत् सर्वमुच्छन्नमिव नारद ।
अधर्मपत्नी मिथ्यासा सर्वधूर्त्तैश्च पूजिता। ययाविनाजगत् सर्वमुच्छन्नंविधिनिर्मितम्।
सत्ये अदर्शनाया च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी । अर्द्धावयवरूपा च द्वापरे संवृता हि या।
कलौमहाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिकाबलात्। कपटेन समं भ्राता भ्रमत्येव गृहे गृहे।

शान्तिर्लज्जा च भार्य्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते ।
याभ्यां विना जगत् सर्वमुन्मत्तमिव नारद ॥ ११३ ॥
ज्ञानस्य तिस्रो भार्य्याश्च बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा ।
याभिर्विना जगत् सर्वं मूढं मृतसमं सदा ॥ ११४ ॥

मूर्त्तिश्चधर्मपत्नी स्या कान्तिरूपा मनोहरा । परमात्मा च विश्वौघानिराधारायथाविना ।
सर्वत्रशोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्त्तिमतीसती । श्रीरूपामूर्त्तिरूपा च मान्या धन्या च पूजिता।
कालाग्निरुद्रपत्नीचनिद्रासासिद्धयोगिनाम् ।सर्वलोकाःसमाच्छन्ना मायायोगेनरात्रिषु।

कालस्य तिस्रो भार्य्याश्च सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च ।
याभिर्विना विधात्रा च संख्यां कर्त्तुं न शक्यते ॥ ११८ ॥

क्षुत्पिपासेलोभभार्य्येधन्येमान्येचपूजिते । याभ्यांव्याप्तंजगत्क्षोभयुक्तंचिन्तितमेवच ।
प्रभावदाहिकाचैव द्वे भार्य्येतेजसस्तथा। याभ्यांविनाजगत्स्रष्टुंविधाता च न ईश्वरः ।
कालकन्येमृत्युजरेप्रज्वरस्य प्रिये प्रिये। याभ्यांजगत् समुच्छन्नं विधात्रानिर्मितेविधौ।

निद्रा कन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये ।
याभ्यां व्याप्तं जगत् सर्वं विधिपुत्रविधेर्विधौ ॥ १२२ ॥
वैराग्यस्य च द्वे भार्य्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते ।
याभ्यां शश्वत् जगत् सर्वं जीवन्मुक्तमिदं मुने ॥ १२३ ॥

देतिर्देवमाता च सुरभिश्च गवां प्रसूः । दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः ॥
युक्ताः सृष्टिविधौ एताश्च प्रकृतेः कलाः । कलाश्चान्याः सन्ति बह्व्यस्तासु काश्चिन्निबोध मे ।
हिणी चन्द्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी । शतरूपा मनोर्भार्या शचीन्द्रस्य च गेहिनी ॥
ारा बृहस्पतेर्भार्या वशिष्ठस्याप्यरुन्धती । अहल्या गौतमस्त्री साप्यनसूयात्रिकामिनी ॥
हूती कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी । पितॄणां मानसी कन्या मेनका साम्बिकाप्रसूः ॥
ामुद्रा तथाहूती कुबेरकामिनी तथा । वरुणानी यमस्त्री च बलेर्विन्ध्यावलीति च ॥
न्ती च दमयन्ती च यशोदा देवकी सती । गान्धारी द्रौपदी शैब्या सावित्री सत्यवत्प्रिया ॥
भानुप्रियासाध्वी राधामाता कलावती । मन्दोदरी च कौशल्या सुभद्रा कैकयी तथा ॥
ती सत्यभामा च कालिन्दी लक्ष्मणा तथा । जाम्बवती नाग्नजिती मित्रविन्दा तथापरा ॥
क्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्त्तिता । कला योजनगन्धा च व्यासमाता महासती
णपुत्री तथोषा च चित्ररेखा च तत्सखी । प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती ॥
णुका च भृगोर्माता हलिमाता च रोहिणी । एकानंशा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सती ॥
ह्व्यः सन्ति कलाश्चैवं प्रकृतेरेव भारते । याया श्च ग्रामदेव्यस्ताः सर्वाश्च प्रकृतेः कला ॥
लांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः । योषितामपमानेन प्रकृतेश्च पराभवः ॥१३७
ह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती । प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालङ्कारचन्दनैः ॥
मारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता ॥
र्वाः प्रकृतिसम्भूता उत्तमाधममध्यमाः । सत्त्वांशाश्चोत्तमाः ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः

मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्त्तिताः ।
सुखसम्भोगवश्याश्च स्वकार्य्यतत्पराः सदा ॥ १४१ ॥

धमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसम्भवाः । दुर्मुखाः कुलटा धूर्त्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रियाः
थिव्यां कुलटायाश्च स्वर्गे चाप्सरसांगणाः । प्रकृतेस्तमसश्चांशाःपुंश्चल्यःपरिकीर्त्तिताः
वं निगदितं सर्वं प्रकृतेः परिकीर्त्तनम् । ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रेचभारते
ूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । द्वितीये रामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना ॥
जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता ।

ो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया । जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम् ॥
गेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः । बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद ।
क्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमे परिपूजिता । त्रिषु लोकेषु तत्पश्चात् देवतामुनिमानवैः ।१४१।
ावित्री चापि प्रथमे भक्त्या च परिपूजिता । तत्पश्चात् त्रिपुलोकेषु देवतामुनिमानवैः
ादौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता । तत्पश्चात् त्रिषु लोकेषु देवतामुनिमानवैः ॥
थमे पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले । पौर्णमास्यां कार्त्तिकस्य कृष्णेनपरमात्मना
ोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः । गवां गणैःसुरगणैस्तत्पश्चात्मायया हरेः
दा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिर्मनुभिस्तथा । पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा ॥
थिव्यां प्रथमे देवी सयज्ञेन च पूजिता । शङ्करेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते ।१५५।
त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः । पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सुरैः
ला या याः सुसंभूता पूजितास्ताश्च भारते । पूजिताग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने ॥
त्वं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम् । यथागमं लक्षणञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
ति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे प्रकृतिचरितसूत्रं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

—०—

## द्वितीयोऽध्यायः ।

### देवदेव्युत्पत्तिः ।

नारद उवाच ।

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं विभो ! । विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि
सृष्टेराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह । कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदांवर ।२।
भूता या याश्च कलया तया त्रिगुणया भवे ।
व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि सांप्रतम् ॥ ३ ॥
तासां जन्मानुकथनं ध्यानं पूजाविधिं परम् । स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यंवर्णय मङ्गलम्

श्रीनारायण उवाच।

नित्यात्मा च नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा।

विश्वानां गोकुलं नित्यं नित्यो गोलोक एव च ॥ ९ ॥

तदेकदेशो वैकुण्ठो लम्बभागः स नित्यकः। तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीना स्न

यथाग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभाप्रभा रवौ। शश्वद्युक्ता नभिन्नासा तथा प्रकृति

विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः। विना मृदा कुलालो हि घटं कर्तुं न

न हि क्षमस्तथा ब्रह्म सृष्टिं स्रष्टुं तया विना। सर्वशक्तिस्वरूपा सा तया च शक्तिम

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रमवाचकः। तत्स्वरूपा तयोर्दात्री या सा शक्तिः प्रक

समृद्धिबुद्धिसम्पत्तियशसां वचनो भगः। तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सद

तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते।

स च स्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः ॥ १२ ॥

तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा। वदन्ति ते परं ब्रह्म परमात्मानमीश्व

अदृष्टं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्। सर्वदं सर्वरूपान्तमरूपं सर्वपोषकम् ॥

वैष्णवास्तं न मन्यन्ते तद्भक्ताः सूक्ष्मदर्शिनः। वदन्तीति कस्य तेजस्तेजस्विनं

तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्मतेजस्विनं परम्। स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारण

अतीवसुन्दरं रम्यं विभ्रतं सुमनोहरम्। किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम्

नवीननीरदाभासं रासैकश्यामसुन्दरम्। शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ॥

मुक्तासारविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम्। मयूरपुच्छचूडञ्च मालतीमाल्यमण्डित

सुनसं सस्मितं शश्वद्भक्तानुग्रहकातरम्। ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम्

द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्। सर्वाधारञ्च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम् ॥

सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वं स्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम्। परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धिदं सिद्धिकारण

शश्वदेकरूपं सनातनम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं पर

कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजवाचकः । सर्वे बीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥२६
असंख्यब्रह्मणां पातेकालेऽतीतेऽपिनारद । यद्गुणानांनास्तिनाशस्तत्समानोगुणेनच ॥
स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षुरेक एव च । सृष्ट्योन्मुखस्तदंशेन कालेनप्रेरितः प्रभुः ॥
स्वेच्छामयःस्वेच्छयाचद्विधारूपोबभूवह । स्त्रीरूपावामभागांशाद्दक्षिणांशःपुमान्स्मृतः॥
तां ददर्श महाकामी कामाधारः सनातनः । अतीवकमनीयाञ्च चारुचम्पकसन्निभाम् ॥
चन्द्रबिम्बविनिन्द्यैकनितम्बयुगलां पराम् । सुचारुकदलीस्तम्भनिन्दितश्रोणिसुन्दरीम् ॥
श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम् । पुष्ट्या युक्तांसुललितांमध्यक्षीणांमनोहराम् ॥
अतीवसुन्दरींशान्तांसस्मितांवक्रलोचनाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥
शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यांपिबन्तींसन्ततंमुदा । कृष्णस्यमुखचन्द्रञ्चचन्द्रकोटिविनिन्दितम् ॥
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनबिन्दुना । समं सिन्दूरबिन्दुञ्च भालमध्येचबिभ्रतीम्॥
वङ्किमं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् । रत्नेन्द्रसारहारञ्च दधतीं कान्तकामुकीम् ॥
कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टशोभासमन्विताम् । गमने च राजहंसगजखञ्जनगञ्जनीम् ॥ ३७ ॥
दृष्टिमात्रं तया सार्द्धं रासेशो रासमण्डले । रासोल्लासेषु रहसि रासक्रीडां चकार ह ॥
नानाप्रकारशृङ्गारं शृङ्गारो मूर्त्तिमानिव । चकार सुखसम्भोगं यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥
ततः सचपरिश्रान्तस्तस्यायोनौजगत्पिता । चकारवीर्य्याधानञ्चनित्यानन्दःशुभक्षणे ॥
गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत । निःससारश्रमजलंश्रान्तायास्तेजसाहरेः ॥
महाक्रमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च बभूव ह । तदाधारश्रमजलं तत् सर्वं विश्वगोलकम् ॥
स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह । निःश्वासवायुःसर्वेषांजीविनाञ्चभवेषुच॥
बभूवमूर्त्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा । तत्पत्नीसाचतत्पुत्राः प्राणाःपञ्चचजीविनाम् ॥
प्राणोऽपानः समानश्चैवोदानो व्यान एव च । बभूवुरेवतत्पुत्राअधःप्राणाश्चपञ्च च ॥
धर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान् । तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा ॥
अथ सा कृष्णशक्तिश्च कृष्णाद्गर्भं दधार ह । शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा ॥
कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया ।
कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत् कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ॥४८॥

मन्वन्तरातीतकालेऽतीतेऽपि सुन्दरी । सुषाव डिम्बंस्वर्णाभंविश्वाधारालयंपरम् ॥
। डिम्बञ्च सा देवी हृदयेन विभूषिता । उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डं गोलके जले ॥
। कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह । शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणञ्चयथोचितम् ॥
ोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे । भवत्वमनपत्यापिचाद्यप्रभृतिनिश्चितम् ॥
यास्त्वदंशरूपा चभविष्यन्तिसुरस्त्रियः । अनपत्याश्चताःसर्वास्त्वत्समानित्ययौवनाः ॥
स्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात् सहसा ततः । आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा ॥
वस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी । रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता ॥५५॥
। कालान्तरे सा च द्विधारूपाबभूव ह । वामार्द्धाङ्गाचकमलादक्षिणार्द्धाच्चराधिका ॥
स्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह । दक्षिणार्द्धश्च द्विभुजो वामार्द्धश्च चतुर्भुजः ॥
व वाणीं श्रीकृष्णस्त्वमस्य कामिनी भव । अत्रैवमानिनीराधानैवभद्रं भविष्यति ॥
लक्ष्मीञ्च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च । स जगामचवैकुण्ठंताभ्यांसार्द्धंजगत्पतिः ॥
पत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसम्भवा । भूता नारायणाङ्गाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः ॥
सा वयसा रूपगुणाभ्याञ्च समा हरेः । बभूवुःकमलाङ्गाच्चदासीकोट्यश्च तत्समाः ॥
गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतोमुने । भूताश्चासंख्यगोपाश्चवयसातेजसा समाः ॥
ग च गुणेनैव वेशेन विक्रमेण च । प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः ॥
ाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः । राधातुल्याश्च सर्वास्ताःराधातुल्याःप्रियंवदाः
भूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः । अनपत्याश्चताः सर्वाः पुंसःशापेन सन्ततम्
स्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः । आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥
नारायणीशानी सर्वशक्तिस्वरूपिणी । बुद्ध्यधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः
नां वीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सूर्य्यकोटिसमप्रभा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता ॥ ६६॥
नाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥
ाधांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः । सर्वविश्वस्थिता लोका मोहितामायवायया
सर्वैश्वर्यप्रदात्री न कामिनां गृहवासिनाम् । कृष्णभक्तिप्रदात्रीवैष्णवानाञ्च वैष्णवी

मुमुक्षूणां मोक्षदात्रीसुखिनांसुखदायिनी । स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीःसागृहलक्ष्मीर्गृहेष्वसौ
तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपासा नृपेषु च । या चाग्नौदाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे
शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मेषु च सुशोभना । सर्वशक्तिस्वरूपा या कृष्णे परमात्मनि ॥

यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत् ।
यया विना जगत् सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम् ॥ ७६ ॥

या च संसारवृक्षस्य बीजरूपासनातनी । स्थितिरूपा बुद्धिरूपा फलरूपा च नारद ॥

क्षुत्पिपासा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः ।
शान्तिर्लज्जा तुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी ॥ ७८ ॥

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह । रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः । पद्मनाभो नाभिपद्मान्निःससार पुमान् मुने ॥
कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः । चतुर्मुखस्तं तुष्टाव प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा ॥
सुन्दरी सुन्दरीश्रेष्ठा शतचन्द्रसमप्रभा । वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता ॥ ८२ ॥
रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम् । उवास स्वामिना सार्द्धं कृष्णस्य पुरतोमुदा
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः । वामार्द्धाङ्गीमहादेवोदक्षिणोगोपिकापतिः
शुद्धस्फटिकसङ्काशः शतकोटिरविप्रभः । त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्मधरो हरः ॥८५ ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभजटाभारधरः परः । भस्मभूषणगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः ॥ ८६ ।
दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्पभूषणभूषितः । बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम् ।
प्रजपन् पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्
कारणं कारणानाञ्च सर्वमङ्गलमङ्गलम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरंपरम् ॥८६।
संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं जातोमृत्युञ्जयाभिधः । रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेःपुरः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे देवदेव्युत्पत्तिर्नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।

---

## तृतीयोऽध्यायः

### डिम्भनिर्णयवर्णनम् ।

श्रीनारायण उवाच ।

अथ डिम्भोजले तिष्ठन् यावद्वै ब्रह्मणो वयः । ततः स काले सहसा द्विधाभूतो बभूव सः ॥
तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः । क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनान्धः पीडितः क्षुधा ॥
पितृमातृपरित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः । ब्रह्माण्डासंख्यनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत् ॥
स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपिनाम्नादेवोमहाविराट् । परमाणुर्यथासूक्ष्मात्परःस्थूलात्तथाप्यसौ ॥
तेजसांषोडशांशोऽयंकृष्णस्यपरमात्मनः । आधारोऽसंख्यविश्वानांमहाविष्णुश्चप्राकृतः ॥
प्रत्येकं लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च । अद्यापितेषांसंख्यांचकृष्णोवक्तुंनहिक्षमः ॥
संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां न कदाचन । ब्रह्मविष्णुशिवादीनांतथासंख्यानविद्यते ॥
प्रतिविश्वेषुसन्त्येवंब्रह्मविष्णुशिवादयः । पातालाद्ब्रह्मलोकान्तंब्रह्माण्डंपरिकीर्त्तितम् ॥
तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद् बहिरेव सः । सचसत्यस्वरूपश्चशश्वन्नारायणोयथा

तदूर्ध्वं चैव गोलोकः पञ्चाशत् कोटियोजनात् ।
नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाप्ययम् ॥१०॥

सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता । ऊनपञ्चाशदुपद्वीपासंख्यशैलवनान्विता ॥ ११॥
तदूर्ध्वं सप्त चस्वर्लोकाब्रह्मलोकसमन्विताः । पातालानिचसप्ताधश्चैवंब्रह्माण्डमेवच ॥
तदूर्ध्वं धरायाभूर्लोकोभुवर्लोकस्ततःपरः । स्वर्लोकस्तुततःपश्चान्महर्लोकस्ततोजनः ॥
ततःपरस्तपोलोकःसत्यलोकस्ततःपरः । ततःपरोब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चननिर्मितः ॥ १४ ॥
एवं सर्वं कृत्रिमञ्च धराभ्यन्तर एव च । तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद ॥ १५ ॥
जलबुद्बुदवत्सर्वंविश्वसंघमनित्यकम् । नित्यौगोलोकवैकुण्ठौसत्यौशश्वदकृत्रिमौ ॥
लोमकूपेचब्रह्माण्डंप्रत्येकमस्यनिश्चितम् । एषांसंख्यांनजानातिकृष्णोऽन्यस्यापिकाकथा ।
प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः । तिस्रः कोट्यःसुराणाञ्चसंख्यासर्वत्रपुत्रक ॥
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः । भुविवर्णाश्चचत्वारोऽधोनागाश्चराचराः ॥
अथ कालेन स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः । डिम्बान्तरञ्च शून्यञ्च न द्वितीयं कथञ्चन ॥

चिन्तामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः । ज्ञानं प्राप्य तदादध्यौकृष्णःपरमपूरुषम् ॥
ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । नवीननीरदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥२२
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकारकम् । जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम् ॥
वरं तस्मै ददौ तुष्टो वरेशः समयोचितम् । मत्समो ज्ञानयुक्तश्चक्षुत्पिपासाविवर्जितः ॥

ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि ।

निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदोवरः । जरामृत्युरोगशोकपीड़ादिपरिवर्जितः ॥२५
इत्युक्त्वा तद्दक्षकर्णे महामन्त्रं षड़क्षरम् । त्रिः कृत्वा प्रजजापादौवेदाङ्गमवरं परम् ॥२६
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम् । वह्निजायान्तमिष्टञ्च सर्वविघ्नहरं परम् ॥२७
मन्त्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै प्रभुः । श्रूयतां तद्ब्रह्मपुत्र निबोधकथयामि ते ॥
प्रतिविश्वे यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः । षोड़शांशंविषयिणोविष्णोःपञ्चदशास्यवै ॥
निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च । नैवेद्येन च कृष्णस्य नहिकिञ्चित्प्रयोजनम् ।
यद्दु ददाति च नैवेद्यं यस्मै देवाय यो जनः । सचखादतितत्सर्वंलक्ष्मीदृष्ट्या पुनर्भवेत् ॥
तञ्च मन्त्रं वरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः । वरमन्यं किमिष्टन्ते तन्मे ब्रूहि ददामिते ॥३
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच महाविराट् । अवदन्तो बालकस्तत्र वचनंसमयोचितम् ॥

महाविराट् उवाच ।

वरं मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला । सन्ततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरञ्चवा ॥
त्वद्भक्तियुक्तोयोलोकेजीवन्मुक्तःससन्ततम् । त्वद्भक्तिहीनोमूर्खश्चजीवन्नपिमृतोहि सः ॥
किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च । व्रतेनैवोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया ॥ ३६ ॥
कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा । येनात्मना जीवितश्च तमेवनहि मन्यते ॥३
यावदात्माशरीरेऽस्तितावत्सशक्तिसंयतः । पश्चाद्यान्तिगतेतस्मिन्नस्वतन्त्राश्चशक्तयः ॥
स च त्वञ्चमहाभागसर्वात्माप्रकृतेःपरः । स्वेच्छामयश्चसर्वाद्योब्रह्मज्योतिः सनातनः ॥
इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद । उवाच कृष्णःप्रत्युक्तिमधुरां श्रुतिसुन्दरीम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाहं त्वं तथा भव । ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्तेनभविष्यति ॥

ांशेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वञ्च पुत्र विराड् भव । त्वन्नाभिपद्मेब्रह्माचविश्वस्रष्टाभविष्यति ॥
लाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्रश्चैकादशैव तु । शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसंहरणाय वै ॥४२
ालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः । पाताविष्णुश्च विषयीक्षुद्रांशेनभविष्यति॥
द्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे । ध्यानेन कमनीयं मांनित्यंद्रक्ष्यसिनिश्चितम्॥
ातरं कमनीयाङ्गममवक्षःस्थलस्थिताम् । यामिलोकंतिष्ठवत्सेत्युक्त्वासोऽन्तरधीयत॥
त्वा स्वलोकं ब्रह्माणं शङ्करं स उवाच ह । स्रष्टारं स्रष्टुमीशञ्च संहर्त्तारञ्चतत्क्षणम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

ृष्टिं स्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवोभव । महाविराड्लोमकूपे क्षुद्रस्यचविधेःशृणु ॥
च्छ वत्स महादेवं ब्रह्मभालोद्भवो भव । अंशेन च महाभाग स्वयञ्च सुचिरं तपः ॥
्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुतः । जगामनत्वातंब्रह्माशिवश्चशिवदायकः ॥
हाविराड्लोमकूपे ब्रह्माण्डगोलके जले । स बभूव विराट् क्षुद्रोविराडंशेनसाम्प्रतम् ॥
यामो युवा पीतवासाःशयानोजलतल्पके । ईषद्धास्यःप्रसन्नास्योविश्वरूपीजनार्दनः ॥
ाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः । संभूय पद्मदण्डञ्च बभ्राम युगलक्षकः ॥ ५२ ॥
न्तं जगाम दण्डस्य पद्मनाभस्य पद्मजः । नाभिजस्य च पद्मस्यचिन्तामापपितामहः ॥
्यानं पुनरागत्य ददर्श कृष्णपदाम्बुजम् । ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा ॥
ानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकावृते । यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तञ्च तन् परमीश्वरम्॥५६
कृष्णञ्चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम् । तं संस्तूय वरं प्रापततःसृष्टिंचकारसः ।
भूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः । ततो रुद्राः कपालाद्य शिवांशैकादशस्मृताः ॥
ूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः । चतुर्भुजश्च भगवान्श्वेतद्वीपनिवासकृत् ॥
द्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्म विश्वं ससर्ज सः । स्वर्गंमर्त्यंञ्चपातालंत्रिलोकंसचराचरम् ॥
ंसर्वेलोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च । प्रतिविश्वे क्षुद्रविराट् ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥६१
येयं कथितं वत्स कृष्णसङ्कीर्त्तनं शुभम् । सुखदंमोक्षदंसारं किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
ति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डेनारायणनारदसंवादेविश्वनिर्णयवर्णनंनाम
तृतीयोऽध्यायः ।

## चतुर्थोऽध्यायः

### सरस्वतीपूजाविधानं मन्त्रश्च ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वमपूर्वञ्च त्वत्प्रसादात् सुधोपमम् । अधुना प्रकृतीनाञ्च व्यासं वर्णय पूजनम् ॥
कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रकाशिता ।
केन वा पूजिता कावा केन का वा स्तुता मुने ॥ २ ॥
कवचंस्तोत्रमन्त्रञ्च प्रभावंचरितंशुभम् । काभिःकाश्चोवरो दत्तस्तन्मेव्याख्यातुमर्हसि॥

नारायण उवाच ।

गणेशजननीदुर्गाराधा लक्ष्मीःसरस्वती । सावित्रीचसृष्टिविधौ प्रकृतिःपञ्चधास्मृता ॥
आसीत् पूजा प्रसिद्धाच प्रभावः परमाद्भुतः । सुधोपमञ्च चरितं सर्वमङ्गलकारणम् ॥
प्रकृत्यंशाःकलायाश्च तासाञ्च चरितंशुभम् । सर्वंवक्ष्यामिते ब्रह्मन् सावधानं निशामय॥
वाणी वसुन्धरागङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका । तुलसीमनसा निद्रास्वाहास्वधाच दक्षिणा ॥
तेजसा मन्समास्ताश्च रूपेण च गुणेन च ॥ ८ ॥
संक्षेपमासाञ्चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् । जीवकर्मविपाकञ्च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥
दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितंमहत् । तच्च पश्चात् प्रवक्ष्यामि संक्षेपंक्रमतःशृणु॥
आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता । यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः॥
आविर्भूतायदा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः । इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥
स च विज्ञाय तद्भावंसर्वज्ञः सर्वमातरम् । तामुवाच हितंसत्यं परिणामसुखावहम् ॥१३

श्रीकृष्ण उवाच ।

भज नारायणं साध्वि ! मदंशञ्च चतुर्भुजम् । युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तञ्च मत्समम् ॥
कामदंकामिनीनाञ्च तासाञ्च कामपूरकम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलालङ्कृतमीश्वरम् ॥
कान्तेकान्तञ्चमांकृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि । त्वत्तोबलवतीराधा नतेभद्रंभविष्यति ।

पापमात्मकलान्यानि । ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः । कर्मणा मनसा वाचा नित्यं द्विस्थयमनीश्वरः ॥
र्वेशः सर्वशास्ताहं सर्वां रक्षितुमक्षमः । तेजसा मत्समा साध्वि रूपेण च गुणेन च ॥
णाधिष्ठातृदेवीमा प्राणाधिक्यनुरक्षमः । प्राणतोऽपि प्रियः पुत्र केशवोऽयं सन्निकथन ॥
भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति । पतिं लक्ष्मीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम् ॥
भमोहकामक्रोधमानहिंसाविवर्जिता । तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च ।
ासार्द्धं भव त्याः सुखं कालं प्रयास्यति । गौरवं समभागं तुल्यं करिष्यति पतिर्द्वयोः ॥
तिविश्वेषु ते पूजा महती तु मुदान्विताः । माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि ॥
तथा मनवो देवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः । सन्तश्च योगिनः सिद्धा नागगन्धर्वकिन्नराः ॥
दरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे यथाविधि । भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचारांश्च षोडश ॥
ण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च । जितेन्द्रियाः संयताश्च घटे च पुस्तकेऽपि च ॥
चा सुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम् । कवचं ते ग्रहीष्यन्ति कण्ठे वा दक्षिणे भुजे ॥
ठिष्यन्ति च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते । इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजितः ।
स्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ।२१।
देवाश्च मनवो नृपाश्च मानवादयः । बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥

नारद उवाच ।

ाविधानं स्तवनं ध्यानं कवचमीप्सितम् । पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पञ्च चन्दनादिकम् ॥
वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम । वर्द्धते साम्प्रतं शश्वत् किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि काण्वशाखोक्तपद्धतिम् ।
जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम् ॥ ३३ ॥

स्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च । पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वा तत्राह्नि संयतः शुचिः ॥
वा नित्यक्रियां कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः । संपूज्य देवषट्कञ्च नैवेद्यादिभिरेव च ॥
[illegible] । संपूज्य संयतोऽग्रे च ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥
[illegible] ध्यात्वावाहनपूर्वकः । ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारेण पूजयेद्व्रती ॥

पूजोपयुक्तंनैवेद्यं यद्यद्वेदे निरूपितम् । वक्ष्यामिसाम्प्रतं किञ्चिद्यथाधीतंयथागमम् ॥
नवनीतं दधिक्षीरं लाजाश्च तिललड्डुकम् । इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ॥४०॥
स्वस्तिकंशर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम् । अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकंशुक्लमोदकम् ॥
घृतसैन्धवसंस्कारैर्हविष्यान्नैश्च व्यञ्जनैः । यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंस्कृतम् ॥४१॥
पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्य च । परमान्नञ्च सघृतंमिष्टान्नञ्च सुधोपमम् ॥
नारिकेलं तदुदकं केशरं मूलमार्द्रकम् । पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम् ॥
कालदेशोद्भवं पक्वफलं शुक्लं सुसंस्कृतम् ॥ ४२ ॥
सुगन्धि शुक्लपुष्पञ्च सुगन्धि शुक्लचन्दनम् । नवीनशुक्लवस्त्रञ्च शङ्खञ्च सुमनोहरम् ॥
माल्यञ्च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारञ्च भूषणम् ॥ ४३ ॥
यद् दृष्टञ्च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम् । तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम् ॥
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम् । कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ॥४६॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां सुमनोहराम् । रत्नसारेन्द्रनिर्माणवरभूषणभूषिताम् ॥४७॥
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः । वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः ॥
एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः । संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ॥
येषाञ्चेयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने । विद्यारम्भे च सर्वेषां वर्षान्ते पञ्चमीदिने ॥५०॥
सर्वोपयुक्तो मूलश्च वैदिकाष्टाक्षरः परः । येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च ॥
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च ॥ ५१ ॥
श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा । लक्ष्मीमायादिकश्चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥ ५२ ॥
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः । प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि । चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ॥
भृगवे च ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे । आस्तीकाय जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ॥
विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥ ५४ ॥
शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुने । सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च ॥
शेषः पाणिनये चैव भरद्वाजाय धीमते । ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥ ५५ ॥

तुर्लक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । यदिस्यात् सिद्धमन्त्रोहि बृहस्पतिसमोभवेत्॥
घचंशृणु विप्रेन्द्र यद् दत्तं विधिना पुरा । विश्वश्रेष्ठं विश्वजयं भृगवे गन्धमादने ॥

भृगुरुवाच ।

ह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद । सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥ ६० ॥
रस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो । अजातयातयमन्त्राणां समूहसंयुतं परम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

णु वत्स प्रवक्ष्यामिकवचं सर्वकामदम् । श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥
क्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने । रासेश्वरेण विभुना रासेन रासमण्डले ।६३।
र्तीवगोपनीयञ्च कल्पवृक्षसमं परम् । अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥६४
द्धृत्वापठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः । यद्धृत्वा भगवान् शुक्रःसर्वदैत्येषु पूजितः।

पठनाद्धारणाद् वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मुनिः ।
स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद् धृत्वा सर्वपूजितः ॥ ६६ ॥
कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः ।
ग्रन्थञ्चकार यद् धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम् ॥ ६७ ॥

त्वा वेदविभागञ्च पुराणान्यखिलानि च । चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनःस्वयम् ।
तातपश्च संवर्त्तो वशिष्ठश्च पराशरः । यद् धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥
ष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चास्तीको देवलस्तथा । जैगीषव्योऽथजाबालिर्यद्धृत्वासर्वपूजितः
वचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेष प्रजापतिः । स्वयं बृहस्पतिश्छन्दो देवो रासेश्वरः प्रभुः
र्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च । कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरोमे पातुसर्वतः । श्रीं वाग्देवतायैस्वाहा भालं मे सर्वदावतु

ॐ सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तरम् ।
ॐ श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु ॥ ७३ ॥
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु ।
ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा श्रोष्ठं सदावतु ॥ ७५ ॥

ओं श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपंक्तीःसदावतु । ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो ममकण्ठंसदावतु
ओं श्रीं ह्रीं पातुमे ग्रीवांस्कन्धंमे श्रीसदावतु । श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहावक्षःसदावतु

ओं ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ।
ओं ह्रीं ह्रीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदावतु ॥ ७८ ॥

सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु । ओं रागाधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥

ओं सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु ।
ओं ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु ॥ ८० ॥

ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा । सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु ॥

ओं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदावतु ।
कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु ॥ ८२ ॥

सदाम्बिकायै स्वाहावायव्ये मां सदावतु । ओं गद्यपद्यवासिन्यैस्वाहामामुत्तरेऽवतु
सर्वशास्त्रवासिन्यैस्वाहैशान्यां सदावतु । ओंह्रींसर्वपूजितायैस्वाहाचोर्ध्वंसदावतु

ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदावतु ।
ओं ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ॥ ८५ ॥

ते ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपिणम् ॥
रा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने । तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्
रुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः
ञ्चलक्षजपेनैव सिद्धन्तु कवचं भवेत् । यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्
हावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् । शक्नोति सर्वं जेतुं स कवचस्य प्रसादतः
दं ते काण्वशाखोक्तं कथितं कवचं मुने । स्तोत्रं पूजाविधानञ्च ध्यानञ्च वन्दनं तथा
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे सरस्वतीकवचं नाम

चतुर्थोऽध्यायः ।

# पञ्चमोऽध्यायः

## याज्ञवल्क्योक्तवाणीस्तवः ।

नारायण उवाच ।

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् । महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा
गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह । तदा जगाम दुःखार्त्तो रविस्थानञ्च पुण्यदम्
संप्राप्य तपसा सूर्यं कोणार्के दृष्टिगोचरे । तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद स पुनः पुनः
सूर्यस्तं पाठयामास वेदवेदाङ्गमीश्वरः । उवाच स्तुहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतं
तमित्युक्त्वा दीननाथोऽन्तर्धानं चकार सः । मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकन्धर

याज्ञवल्क्य उवाच ।

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हतचेतसम् । गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनञ्च दुःखितम् ॥
ज्ञानं देहि स्मृतिं देहि विद्यां विद्याधिदेवते । प्रतिष्ठां कवितां देहि शक्तिं शिष्यप्रबोधिकाम्
ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिञ्च सत्‌शिष्यं सुप्रतिष्ठितम् । प्रतिभां सत्समायाञ्च विचारक्षमतां शुभाम्
लुप्तं सर्वं दैववशान्नवीभूतं पुनः कुरु । यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ॥ ६ ॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी । सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः
यया विना जगत् सर्वं शश्वद्‌जीवन्मृतं सदा । ज्ञानाधिदेवी यातस्यैसरस्वत्यै नमोनमः
यया विना जगत्सर्वं मूकमुन्मत्तवत् सदा । वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनमः
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा । वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः ।
विसर्गविन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च । तदधिष्ठात्री या देवी भारत्यै ते नमो नमः ॥

यया विनात्र संख्याकृत् संख्यां कर्त्तुं न शक्यते ।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥ १५ ॥

व्याख्यास्वरूपा यादेवीव्याख्याधिष्ठातृदेवता । भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यैदेव्यैनमोनमः
स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी । प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै । बभूव जड़वत् सोऽपि सिद्धान्तंकर्तुमक्षमः

तदा जगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः । उवाच सततं स्तोत्रं वाणीमितिप्रजापतिम्
स च तुष्टाव त्वां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः । चकारत्वत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्
यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा । बभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्त्तुमक्षमः
तदा त्वाञ्च स तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया । ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्
व्यासः पुराणसूत्रञ्च पप्रच्छ वाल्मिकं यदा । मौनीभूतः स सस्मारत्वामेवंजगदम्बिकाम्
तदा चकार सिद्धान्तं मद्वरेण मुनीश्वरः । संप्राप निर्मलं ज्ञानं प्रमादध्वंसकारणम् ॥
पुराणसूत्रं श्रुत्वा स व्यासः कृष्णकुलोद्भवः । त्वां सिषेव दध्यौ च शतवर्षञ्च पुष्करे ॥
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य स कवीन्द्रो बभूव ह ॥ २५ ॥

तदा वेदविभागञ्च पुराणानि चकार ह । यदा महेन्द्रे पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं शिवाशिवम् ॥
क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तस्यैज्ञानं ददौ विभुः । पप्रच्छशब्दशास्त्रञ्च महेन्द्रश्चबृहस्पतिम्
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च स त्वां दध्यौ च पुष्करे । तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यंवर्षसहस्रकम्
उवाच शब्दशास्त्रञ्च तदर्थञ्च सुरेश्वरम् ॥ २८ ॥
अध्यापिताश्च यैः शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ॥ २९ ॥
ते च त्वां परिसंचिन्त्य प्रवर्त्तन्ते सुरेश्वरि ।

त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रमनुमानवैः । दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः
जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः । यां स्तोतुं किमहं स्तौमितामेकास्येनमानवः
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः । प्रणनाम निराहारो ररोद च मुहुर्मुहुः ॥
तदा ज्योतिःस्वरूपासातेनादृष्टाप्युवाच तम् । सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वावैकुण्ठञ्चजगामह
याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रं यः संयतः पठेत् । सुकवीन्द्रोमहावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत्
महामूर्खश्च दुर्मेधो वर्षमेकञ्च यः पठेत् । स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद्ध्रुवम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे याज्ञवल्क्योक्तवाणी-
स्तवो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

## षष्ठोऽध्यायः

### सरस्वत्युपाख्यानम् सर्वासां कलहश्च ।

नारद उवाच ।

रस्वती सा वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके । गङ्गाशापेन कलया कलहाद्भारतेसरित् ॥
ण्यदा पुण्यजननी पुण्यतीर्थस्वरूपिणी । पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने ॥
पस्विनां तपोरूपा तपस्याकाररूपिणी । कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी ॥३॥
ाने सरस्वतीतोये मृतं यैर्मानवैर्भुवि । तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि ॥४॥
ारतेकृतपापी च स्नात्वा तत्रावलीलया । मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेवसेच्चिरम् ।
तुर्दश्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये । व्यतीपातेचग्रहणेऽन्यस्मिन् पुण्यदिनेऽपिच ।
ानुपङ्गेन यः स्नाति हेलयाश्रद्धयापिवा । सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि ॥७॥
रस्वतीमन्त्रकश्च मासमेकन्तु यो जपेत् । महामूर्खः कवीन्द्रश्च सभवेन्नात्र संशयः ।
नेत्यं सरस्वतीतोये यः स्नाति मुण्डयेन्नरः । न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः ॥
त्येवं कथितं किञ्चिद्भारतीगुणकीर्त्तनम् । सुखदं मोक्षदं सारं किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ।
ारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः । पुनः पप्रच्छ सन्देहच्छेदं शौनक सत्वरम् ।

नारद उवाच ।

कथं सरस्वती देवी गंगाशापेन भारते । कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित् ।१२
श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्द्धते कौतुकं मम । कथामृतानां नो तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते ॥
कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम् ।
शान्तसत्त्वस्वरूपा च पुण्यदा सर्वदा नृणाम् ॥ १४ ॥
तेजस्विन्योर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम् । सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

... वक्ष्यामि कथामेतांपुरातनीम् । यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते ।
... सरस्वतीगङ्गाश्रिस्रोभार्याहरेरपि । प्रेम्णासमास्तास्तिष्ठन्तिसततंहरिसन्निधौ ।

चकारसैकदागङ्गाविष्णोर्मुखनिरीक्षणम् । सस्मितातिसकामा च सकटाक्षं पुनःपुनः ॥
विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं मुदा । क्षमाञ्चकार तद्दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती ।
बोधयामास तां पद्मा सत्वरूपा च सस्मिता ।
क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह ॥ २० ॥
उवाच गङ्गां भर्त्तारं रक्तास्या रक्तलोचना । कम्पिता कोपवेगेनशश्वत्प्रस्फुरिताधरा ॥

सरस्वत्युवाच ।

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्त्तुः कामिनीः प्रति । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्यच ।
ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायान्ते गदाधर । कमलायाञ्च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयिप्रभो ।
गङ्गायाः पद्मया सार्द्धं प्रीतिश्चापि सुसम्मता । क्षमाञ्चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया ॥
किं जीवनेन मेऽत्रैवदुर्भगायाश्चसाम्प्रतम् । निष्फलंजीवनंतस्या या पत्युः प्रेमवञ्चिता ।
त्वां सर्वेशं सत्वरूपं ये वदन्ति मनीषिणः । ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्तिमर्तितव ।
सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम् ।
मनसा स समालोच्य प्रजगाम बहिः सभाम् ॥ २७ ॥
गते नारायणे गंगामुवाच निर्भयं रुषा । रागाधिष्टातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुःसहम् ॥
हे निर्लज्जे सकामे त्वं स्वामिगर्वं करोषि किम् ।
अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि ॥ २६ ॥
मानचूर्णं करिष्यामि तवाद्यहरिसन्निधौ । किं करिष्यति ते कान्तो ममैवकान्तवल्लभे ।
इत्येवमुक्त्वा गंगायाः केशं ग्रहीतुमुद्यता । वारयामास तां पद्मा मध्यदेशस्थिता सती ॥
शशाप वाणी तां पद्मां महाकोपवती सती । वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः ॥
विपरीतं यतो दृष्ट्वा किञ्चिन्न वक्तुमर्हसि । सन्तिष्ठसि सभामध्येयथावृक्षो यथासरित्॥
शापं श्रुत्वा च सा देवी न शशापचुकोपन । तत्रैवदुःखितातस्थौवाणींधृत्वाकरेणच ॥
अत्युद्धताञ्च तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताननां । उवाच गङ्गा तां देवीं पद्माञ्चपद्मलोचना ॥

गङ्गोवाच ।

त्वमुत्सृज महोग्राञ्च पद्मे किं मे करिष्यति । वाग्दुष्टावागधिष्ठात्रीदेवीयंकलहप्रिया॥

गङ्गाशापेन सा वाणी यदि यास्यति भारतम् ।
कला शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं मम ॥ ८० ॥

ता वाणी ब्रह्मसदनं गङ्गा या शिवमन्दिरम् । गन्तुंवदसि हे नाथ! तत्क्षमस्ववचनं वचः
इत्युक्त्वा कमलाकान्तपदं धृत्वा ननाम च । स्वकेशैर्वेष्टयित्वा च रोद च पुनः पुनः॥
उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि । ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकारकः॥

नारायण उवाच ।

त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यञ्च सुरेश्वरि । समताञ्च करिष्यामि शृणु तत्क्रममेवच॥
भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारतम् । अर्द्धांशा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे॥
भगीरथेन नीता सा गङ्गा यास्यति भारतम् । पूतं कर्त्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतुमद्गृहे॥
तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिंप्राप्स्यतिदुर्लभम् । ततःस्वभावतः पूताप्यतिपूता भविष्यति॥
कलांशांशेन त्वं गच्छ भारते कमलोद्भवे । पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी ॥८८
कलेः पञ्चसहस्रे च गतेवर्षेचमोक्षणम् । युष्माकंसरितांभूयोमद्गृहेचागमिष्यथ ॥८९॥
सम्पदां हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम् । विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मे भवेद्भवे॥
मन्मन्त्रोपासकानाञ्चसतांस्नानावगाहनात्। युष्माकंमोक्षणंपापान्पापिदत्ताघस्पर्शनात्
पृथिव्यांयानितीर्थानिसन्त्यसंख्यानि सुन्दरि । भविष्यन्तिचपूतानिमद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
मन्मन्त्रोपासका भक्ता भ्रमन्ति भारतेसति । पूतं कर्त्तुं भारतञ्चसुपवित्रां वसुन्धराम्॥
मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च । तत्स्थानञ्चमहातीर्थंसुपवित्रंभवेद्ध्रुवम्॥
स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नोगुरुतल्पगः । जीवन्मुक्तोभवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽप्यनास्तिकः । नरघातीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
असिजीवी मसिजीवी धावकः शूद्रयाजकः । वृषवाहोभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः । स्थाप्यहारीभवेत्पूतोमद्भक्तस्पर्शनात्॥
ऋणग्रस्तो वार्द्धुषिको जारजः पुंश्चलीपतिः । पूतश्च पुंश्चलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
: सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः । अदीक्षितो भवेत् पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥
मद्भक्तनिन्दकस्तथा । अनिवेद्यभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात्॥

मातरं पितरं भार्य्यां भ्रातरं तनयं सुताम् । गुरोः कुलञ्च भगिनीं वंशहीनञ्च बान्धवम् ॥
श्वश्रूञ्च श्वशुरञ्चैव यो न पुष्णाति नारद । स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥
देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः । लाक्षालोहरसानाञ्च विक्रेता दुहितुस्तथा ॥१०४॥
महापातकिनश्चैते शूद्राणां शवदाहकः । भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥१०५॥

लक्ष्मीरुवाच ।

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकारक । येषां सन्दर्शनस्पर्शात् सद्यः पूता नराधमाः ॥
हरिभक्तिविहीनाश्च महाहङ्कारसंयुताः । स्वप्रशंसारता धूर्त्ताः शठाश्च साधुनिन्दकाः ॥
पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात् । येषाञ्च पादरजसा पूता पादोदकान्मही ॥
येषां सन्दर्शनं स्पर्शं देवा वाञ्छन्ति भारते । सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः ॥
न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनन्त्युरुकालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो ॥

सौतिरुवाच ।

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः । निगूढतत्त्वं कथितुमपि तेषामुपचक्रमे ॥

श्रीनारायण उवाच ।

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः । पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भक्तिमुक्तिदम् ॥
सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च । त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय ॥
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविशति । वदन्ति वेदवेदाङ्गास्तं पवित्रं नरोत्तमम् ॥
पुरुषाणां शतं पूर्वं पूतं तज्जन्ममात्रतः । स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणम् ॥
यैः कश्चिद् यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जन्मसु । जीवन्मुक्तास्ते च पूता यान्ति काले हरेः पदम् ॥
मद्भक्तियुक्तो मत्पूजानियुक्तो मद्गुणान्वितः । मद्गुणश्रावणीयश्च मन्निविष्टश्च सन्ततम्
मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः । सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च ॥
न वाञ्छन्ति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने ॥
इन्द्रत्वञ्च मनुत्वञ्च देवत्वञ्च सुदुर्लभम् । स्वर्गराज्यादिभोगञ्च स्वप्नेऽपि न हि वाञ्छति ॥
ब्रह्माण्डानि विनश्यन्ति देवा ब्रह्मादयस्तथा । कल्याणभक्तियुक्तश्च मद्भक्तो न प्रणश्यति ॥

भ्रमन्ति भारते भक्तालब्ध्वाजन्मसुदुर्लभम् । तेऽपिशान्तिमहीभृद्यानदान्नीर्धममल्न
इत्येतत् कथितं सर्वं कुरु पश्चे यथोचितम् । तदाज्ञानाश्च गाश्चकूर्देस्मिन्गौ सुगाम
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे सरस्वत्युपाख्याने
षष्ठोऽध्यायः ।

---

## सप्तमोऽध्यायः ।

### कालकालेश्वरगुणनिरूपणम् ।

नारायण उवाच ।

सरस्वती पुण्यक्षेत्रे आजगाम च भारतम् । गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौहरेःपदम्
भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणःप्रिया । वागधिष्ठातृदेवीसातेनवाणीचकीर्त्तिता
सर्वंविश्वं परिव्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते । हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्नासरस्वती
सरस्वती नदी साच तीर्थरूपातिपावनी । पापिपापेध्मदाहाय जलदग्निस्वरूपिणी ॥ ४
पश्चाद्भगीरथानीता महीं भागीरथी शुभा । समाजगाम कलया वाणीशापेन नारद ॥५
तत्रैव समये ताञ्च दधार शिरसा शिवः । वेगं सोढुमशक्तायाः भुवः प्रार्थनया विभुः ॥
पद्माजगाम कलया साच पद्मावती नदी । भारतं भारतीशापात् स्वयंतस्थौ हरेःपदम्
ततोऽन्ययासा कलया ललाभजन्मभारते । धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्यातातुलसीतिच
पुरा सरस्वतीशापात्तत्पश्चाद्धरिशापतः । बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी ॥६
कलेः पञ्चसहस्रञ्च वर्षं स्थित्वाच भारते । जग्मुस्तत्र सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम् ।
यानिसर्वाणितीर्थानिकाशीवृन्दावनं विना । यास्यन्तिसार्द्धंताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञयाहरेः ।
शालग्रामो हरेर्मूर्त्तिर्जगन्नाथश्च भारतम् । कलेर्दशसहस्रान्ते ययौ त्यक्त्वा हरेः पदम् ॥
वैष्णवाश्च पुराणानि शङ्खाश्च श्राद्धतर्पणम् । वेदोक्तानिच कर्माणि ययुस्तैः सार्द्धमेव ।
हरिपूजा हरेर्नाम तत्कीर्त्तिगुणकीर्त्तनम् । वेदाङ्गानिच शास्त्राणि ययुस्तैः सार्द्धमेवच ॥

सत्यञ्च सत्यं धर्मश्च वेदाश्च ग्राम्यदेवताः । व्रतं तपस्यानशनं युगुस्तैः सार्द्धमेव च ॥
वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकापट्यसंयुताः । तुलसीवर्जिता पूजा भविष्यति ततःपरम् ।
एकादशीविहीनाश्च सर्वे धर्मविवर्जिताः । हरिप्रसङ्गविमुखाः भविष्यन्ति ततः परम् ॥
शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसंयुताः । चौराश्च हिंसकाःसर्वे भविष्यन्तिततःपरम्

पुंसां भेदश्च स्त्रीभेदो विवाहो वापि निर्णयः ।
स्वस्वामिभेदो वस्तूनां न भविष्यति तत्परम् ॥ १६ ॥

सर्वेजनाः स्त्रीवशाश्च पुंश्चल्यश्चगृहेगृहे । तर्जनैर्भर्त्सनैःशश्वत् स्वामिनं ताडयन्तिच ॥
गृहेश्वरीचगृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः । चेटीभृत्यसमौ वध्वाः श्वश्रूश्चश्वशुरस्तथा॥

कर्त्तारो बलिनो गेहे योनिसम्बन्धिबान्धवाः ।
विद्यासम्बन्धिभिः सार्द्धं सम्भाषोऽपि न विद्यते ॥ २२ ॥

यापरिचितालोकास्तथा पुंसश्चयान्धशः । सर्वकर्माक्षमाःपुंसो योषितामाज्ञयाविना।
च्छाशास्त्रंपठिष्यन्तिम्लेच्छशास्त्राणिविहायच । म्लेच्छवंशविशांवंशाःशूद्राणांसेवकाःकली
सूपकारा भविष्यन्ति धावका वृषवाहकाः । सत्यहीना जनाः सर्वे शस्यहीनाचमेदिनी॥
फलहीनाश्चतरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः । क्षीरहीनास्तथागावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम् ॥
दम्पतीप्रीतिहीनौ च गृहिणः सुखवर्जिताः । प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः ॥
जलहीना नदाः नद्यो दीर्घिकाः कन्दरादयः । धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एवच।
लक्षेषुपुण्यवान् कोऽपितिष्ठतिततःपरम् । कुत्सिताविकृताकारानरा नार्य्यश्चबालकाः॥
कुवार्त्ताःकुत्सितशब्दा भविष्यन्ति ततःपरम् । केचिद्ग्रामाश्च नगरा नरशून्याभयानकाः।
केचित् स्वल्पकुटीरैश्च नरैश्च समन्विताः । अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषुच ॥
अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः । शस्यानिच भविष्यन्ति तडागेषु नदीषुच ॥
प्रशस्तानिच क्षेत्राणि शस्यहीनान्यतः परम् । हीनाः प्रशस्ता धनिनो धर्मकर्मसमन्विताः ॥
प्रशस्तवंशजाहीना भविष्यन्ति कलौयुगे । अलीकवादिनो धूर्त्ताः शठाश्चसत्यवादिनः॥
पापिनः पुण्यवन्तश्चाप्यशिष्टाः शिष्टा एवच। जितेन्द्रिया लम्पटाश्च पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः
तपस्विनः पातकिनो विष्णुभक्ता अवैष्णवाः । अहिंसका दयायुक्तश्चौराश्च नरघातिनः

सुवेशधरा धूर्त्ता निन्दन्त्युपहसन्ति च । भूतादिसेवानिपुणा जनानां मन्दकारिणः ॥
जितास्तेभविष्यन्ति वस्त्रकाशनदुर्बलाः । वामना व्याधियुक्ताश्चनरानार्यश्चसर्वतः ॥
स्पायुषो जरायुक्ता यौवनेषु कलौ युगे । पलिताः षोडशे वर्षे महावृद्धास्तुविंशतौ ।
ष्टवर्षाच युवती रजोयुक्ताच गर्भिणी । वत्सरान्ते प्रसूता स्त्री षोडशेन जरान्विता ॥
ताःकाश्चित् सहस्रेषुवन्ध्याश्चापिकलौयुगे । कन्याविक्रयिणः सर्ववर्णाश्चत्वारएवच ॥
मातृजायावधूनाश्च जारोपार्जनभक्षकाः । कन्यानां भगिनीनाञ्च जारोपार्जनजीविनः ॥
रेर्नामविक्रयिणो भविष्यन्ति कलौयुगे । स्वयमुत्सृज्य दानञ्च कीर्त्तिवर्द्धनहेतवे ॥
नपश्चान्मनसालोच्य स्वयमुलङ्घयिष्यति । देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च ॥
स्वदत्तांपरदत्तां वा सर्वमुलङ्घयिष्यति । कन्याकागामिनःकेचित् केचिच्च श्वश्रूगामिनः ॥
केचिद् वधूगामिनश्च केचिच्च सर्वगामिनः । भगिनीगामिनःकेचित् सपत्नीमातृगामिनः ।
भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौयुगे । अगम्यागमनञ्चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे ॥४९
आत्मयोनिंपरित्यज्य विहरिष्यन्तिसर्वतः । पत्नीनांनिर्णयोनास्ति भर्तृणाञ्चकलौयुगे ॥
प्रजानाञ्चैव ग्रामाणां वस्तूनाञ्च विशेषतः । अलीकवादिनः सर्वेसर्वे चौराश्च लम्पटाः ॥
परस्परं हिंसकाश्च सर्वेच नरघातिनः । ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्तिच पापिनः ॥५०
लाक्षालौहरसानाञ्च व्यापारं लवणस्यच । वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः ॥
शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वेच वृषलीरताः । पञ्च यज्ञपरित्यक्ताः कुहूरात्रौच भोजिनः ॥५२॥
यज्ञसूत्रविहीनाश्च सन्ध्याशौचविहीनकाः ॥ ५३ ॥
पुंश्चलीचार्यका वृद्धा कुट्टनीचरजस्वला । विप्राणां रन्धनागारे भविष्यन्तिचपाचिका ।
अन्नानांनिर्णयो नास्ति योनीनाञ्चविशेषतः । आश्रमाणांजनानाञ्चसर्वे म्लेच्छाःकलौयुगे
एवं कलौसंप्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमया भवे । हस्तप्रमाणे वृक्षे चाङ्गुष्ठमाते च मानवे ॥५५॥
विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्की भविष्यति । नारायणकलांशश्च भगवान् बलिनां वरः ॥
[illegible] । म्लेच्छशून्याञ्च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति ॥
[illegible] कृत्वा [illegible] । [illegible] दस्युशून्या भविष्यति ।
[illegible] वर्णाप्रमाणयुता मही । [illegible] भविष्यति ॥

ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयं मुने । प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समातेषाञ्च तेजसा ॥

कलौ गते च दुर्द्धर्षे संप्रवृत्ते कृते युगे ।
तपःसत्यसमायुक्तो धर्मपूर्णो भविष्यति ॥ ६२ ॥

तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि । पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे ॥
राजानः क्षत्रियाः सर्वे विप्रभक्ताःस्वधर्मिणः । प्रतापवन्तोधर्मिष्ठाःपुण्यकर्मरताःसदा ॥
वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः ।शूद्राश्चपुण्यशीलाश्चधर्मिष्ठाविप्रसेविनः॥
विप्रक्षत्रविशां वंशा विष्णुयज्ञपरायणाः । विष्णुमन्त्ररताःसर्वे विष्णुभक्ताश्चवैष्णवाः ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा धर्मज्ञा ऋतुगामिनः । लेशो नास्ति ह्यधर्माणां धर्मपूर्णे कृते युगे ॥
धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे स्मृतः । कलौ प्रवृत्ते चैकपात्सर्वलुप्तस्ततः परम् ॥
वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः । यथा द्वादशमासाश्चऋतवश्चषडेवच ॥
द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम् । चतुर्भिः प्रहरैरात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा ॥
शतत्रये षष्ट्यधिके नराणाञ्च युगे गते । दैवताञ्च युगो ज्ञेयः कालसंख्याविदां मतः ॥
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । मन्वन्तरसमं ज्ञेयञ्चेन्द्रायुः परिकीर्त्तितम् ॥
अष्टाविंशतिमे चन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम् । अष्टोत्तरे वर्षशते गते पातश्च ब्रह्मणः ॥७३॥
प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्राऽदृष्टा वसुन्धरा । जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
ऋषयो जीविनः सर्वे लीनाः कृष्णे परात्परे । तत्रैव प्रकृतिर्लीना तेन प्राकृतिको लयः ॥
लये प्राकृतिकेऽतीते पाते च ब्रह्मणो मुने । निमेषमात्रः कालश्च कृष्णस्य परमात्मनः ॥
एवंनश्यन्तिसर्वाणिब्रह्माण्डान्यखिलानि च । स्थितौगोलोकवैकुण्ठौश्रीकृष्णश्चसपार्षदः
निमेषमात्रः प्रलयो यत्र विश्वं जलप्लुतम् । निमेषानन्तरे काले पुनः सृष्टिः क्रमेण वै ॥
एवंकतिविधासृष्टिर्लयःकतिविधोऽपि वा । कतिकृत्वोगतायातःसंख्यांजानातिकःपुमान् ।
सृष्टीनाञ्चलयानाञ्चब्रह्माण्डानाञ्चनारद । ब्रह्मादीनाञ्चब्रह्माण्डेसंख्यांजानातिकःपुमान् ॥
ब्रह्माण्डानाञ्च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः । सर्वेषां परमात्मा च श्रीकृष्णःप्रकृतेः परः ॥

ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट् ।
तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रस्तस्यांशा प्रकृतिःस्मृता ॥८२॥

स च कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्चचतुर्भुजः । चतुर्भुजश्चवैकुण्ठेगोलोकेद्विभुजःस्वयम् ॥
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत् । यद्‌ यत् प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेवच ॥
एवं विद्धि सृष्टिहेतुं सत्यं नित्यं सनातनम् । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्लिप्तं निर्गुणंपरम् ॥
निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीवकमनीयञ्च नवीननीरदप्रभम् ॥८६॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं गोपवेशं किशोरकम् । सर्वज्ञं सर्वसेव्यञ्चपरमात्मनमीश्वरम् ॥८७॥
करोति ब्रह्मा ब्रह्माण्डंज्ञानात्माकमलोद्भवः । शिवोमृत्युञ्जयश्चैवसंहर्त्तासर्वतत्त्ववित् ॥
यस्य ज्ञानाद्‌ यत्तपसासर्वेशस्तत्समोमहान् । महाविभूतियुक्तश्चसर्वज्ञःसर्वदा स्वयम् ॥
सर्वव्यापीसर्वपाताप्रदातासर्वसम्पदाम् । विष्णुःसर्वेश्वरःश्रीमान्यस्यज्ञानाज्जगत्पतिः ॥
महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमतीश्वरी । यज्ज्ञानाद्‌ यस्यतपसायद्भक्त्यायस्यसेवया ॥
सावित्री वेदमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता । सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी ॥
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेशं प्राप या पतिम् । सर्वस्तुता च सर्वज्ञादुर्गादुर्गतिनाशिनी ॥
कृष्णवामांशसम्भूताकृष्णप्रेमाधिदेवता । कृष्णप्राणाधिकाप्रेम्णाराधिकाकृष्णसेवया ॥
सर्वाधिकञ्च रूपञ्च सौभाग्यमानगौरवम् । कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वंपापसेवया ॥
तपश्चकार सा पूर्वं शतशृङ्गे च पर्वते । दिव्यं युगसहस्रञ्च निराहारा च क्लिश्यति ॥९६
कृशां निःश्वासरहितां दृष्ट्वा चन्द्रकलोपमाम् । कृष्णोवक्षःस्थलेकृत्वारुरोदकृपयाविभुः ॥
वरं तस्यैददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम् । मम वक्षःस्थले तिष्ठ मयितेभक्तिरस्त्विति ॥
सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णा च गौरवेण च । त्वं मेश्रेष्ठाचप्रेज्येष्ठाचसर्वष्ठायोषिताम् ॥
वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया । सन्ततं तवसाध्योऽहंवाध्यश्चप्राणवल्लभे ॥
इत्युक्त्वा जगतां नाथश्चकार चेतनां ततः । सपत्नीरहितां ताञ्च चकार प्राणवल्लभाम् ॥
येषां या याश्च देव्यश्च पूजितास्तस्यसेवया । तपस्यायादृशीयासांतासांतादृक्फलंमुने ॥
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तपस्तप्त्वा हिमालये । दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्याबभूव ह ॥
सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने । लक्षवर्षञ्च दिव्यञ्च सर्ववन्द्या बभूव सा ॥१०४
[illegible] दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे । सर्वसम्पत्प्रदात्री च बभूव तस्य सेवया ॥
[illegible] मलये तप्त्वा द्विजपूज्या बभूवसा । षष्टिवर्षसहस्रञ्चदिव्यंध्यात्वाचतत्पदम् ॥

शतमन्वन्तरं ततं शङ्करेण पुरा विभो ।
शतमन्वन्तरञ्चैव ब्रह्मणा तस्य भक्तितः । शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह ॥
शतमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा पूज्यो बभूव ह । मन्वन्तरन्तपस्तेपे शेषो भक्त्या च नारद ॥
मन्वन्तरञ्च सूर्यश्च शक्रश्चन्द्रस्तथैव च ॥ १०६ ॥
दिव्यं सतयुगञ्चैव वायुस्तप्त्वा च भक्तितः । सर्वप्राणःसर्वपूज्यःसर्वाधारोबभूवसः ॥
एवं कृष्णस्य तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः । मुनयो मानवा भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः
एवं ते कथितं सर्वं पुराणञ्चतथागमम् । गुरुवक्त्राद्यथाज्ञातंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारद-संवादे कालकालेश्वरगुण-निरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

---

## अष्टमोऽध्यायः

### पृथिव्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

हरेर्निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च । तस्य पाते प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्त्तितः ॥१॥
प्रलये प्राकृते चोक्तं तत्रादृष्टा वसुन्धरा । जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाहराविति ॥
वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा सा च तिष्ठति । सृष्टेर्विधानसमये साविर्भूता कथं पुनः ॥३॥
कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रयाजया । तस्याश्च जन्मकथनंवदमङ्गलकारणम् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म कृष्णादिति श्रुतिः ।
आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च ॥५॥
श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलमङ्गलम् । विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्द्धनम् ॥ ६ ॥
अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा । बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतं शृणु ॥ ७ ॥

उवास सा पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा । आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा संवृतेति
तयोर्जीवनकालेन प्रत्यक्षा सा भवेत् स्फुटम् । ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरं तयोः ॥
मेदिनीति च विख्यातेत्युक्ता मेदिनीमतं शृणु । जलधौता कृता पूर्वं वर्द्धिता मेदसा
कथयामि च तज्जन्म सार्थकं सर्वसम्मतम् । पुराश्रुतञ्च श्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे
महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम् । मलो बभूव कालेन सर्वाङ्गव्यापको ध्रुव
स च प्रविष्टः सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च । कालेन महता तस्मात् बभूव वसुधा मुने
प्रत्येकं प्रतिलोम्नाञ्च कूपेषु सा स्थिता स्थिरा । आविर्भूता तिरोभूता सजला च पुनः पु
आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलात् पर्यवस्थिता । प्रलये च तिरोभूता जलाभ्यन्तरवस्थिता

प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता ।
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपमिता सती ॥ १९ ॥

हिमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तथानया ॥१
पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता । काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सर्वदुर्गसमन्विता ॥१
पातालाः सप्त तदधस्तदूर्ध्वं ब्रह्मलोककः । ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वविश्वञ्च तत्र वै ॥

एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि वै ।
ऊर्ध्वं गोलोकवैकुण्ठौ नित्यौ विश्वपरौ च तौ ॥ २० ॥
नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि च ।
प्रलये प्राकृते ब्रह्मन् ब्रह्मणश्च निपातने ॥ २१ ॥

महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना । नित्ये स्थितः स प्रलये काष्ठाकाशेश्वरैः सह
अधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः । मनुभिर्मुनिभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च ॥२३
गोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसम्मता । तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयः सुयशा मङ्गलात्मज

नारद उवाच ।

केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही । वाराहेण च वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती ॥
पूजाविधानश्चाप्यधश्चोद्धरणक्रमम् । मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म व्यासं वद प्रभो

नारायण उवाच ।

दे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा । उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥
तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथार्णवे । तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वविश्वं मनोहरम् ॥२८
दधिदेवीञ्च सकामां कामुको हरिः । वराहरूपी भगवान् कोटिसूर्यसमप्रभः ॥
रतिकरीं शय्यां मूर्त्तिञ्च सुमनोहराम् । क्रीडाञ्चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ।
म्भोगसंस्पर्शात् मूर्च्छां सम्प्राप सुन्दरी । विदग्धयाविदग्धेनसङ्गमोऽपिसुखप्रदः
स्तदङ्गसंश्लेषाद् बुबुधे न दिवानिशम् । वर्षान्तेचेतनांप्राप्यकामीतल्याजकामुकीम्
ञ्च वाराहं दधार चावलीलया । पूजाञ्चकार भक्त्या च ध्यात्वाच धरणीं सतीम्
श्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः । वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः संपूज्योवाच तां हरिः ॥

महावराह उवाच ।

गा भव शुभे सर्वैः संपूजिता शुभम् । मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च मानवादिभिः
चित्यागदिने गृहारम्भप्रवेशने । वापीतडागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि ॥३६॥
ां करिष्यन्ति मद्वरेण सुरादयः । मूढ़ा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकञ्च ते ॥

वसुधोवाच ।

र्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया । लीलामात्रेण भगवन् विश्वञ्च सचराचरम् ॥
क्तं हरेरर्च्यां शिवलिङ्गं शिलान्तथा । शङ्खं प्रदीपं रत्नञ्च माणिक्यंहीरकंमणिम्
। पुष्पञ्च पुस्तकं तुलसीदलम् । जपमालां पुष्पमालां कर्पूरञ्च सुवर्णकम् ॥४०॥
। चन्दनञ्च शालग्रामजलन्तथा । एतान् वोढुमशक्ताहं क्लिष्टा च भगवन् शृणु

श्रीभगवानुवाच ।

ानि ये मूढ़ा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि । ते यास्यन्तिकालसूत्रंदिव्यंवर्षशतं त्वयि
रा भगवान् विरराम च नारद । बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः ॥४३ ॥
पृथिव्याश्च ते सर्वे चाज्ञया हरेः । काण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुः स्तवनेन च
रत्नेण नैवेद्यादिकमेव च । संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह ॥४४॥

नारद उवाच ।

किं ध्यानं स्तवनं किं वा तस्य मूलञ्च किं वद । गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं

नारायण उवाच ।

आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता । ततो हि ब्रह्मणा पश्चात् ततश्च पृथुना
ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्नारदादिभिः । ध्यानञ्च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नार
ओं ह्रीं श्रीं वां वसुधायै स्वाहा । इत्यनेन मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ॥ ४
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । चन्दनोक्षिप्तसर्वाङ्गीं सर्वभूषणभूषिता
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिता भवेत् । स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र काण्वशाखोक्तमे

विष्णुरुवाच ।

यज्ञशूकरजाया च जयं देहि जयावहे । जये जये जयाधारे जयशीले जयप्रदे ॥ ५३
सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते । सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे ॥ ५४
सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे । सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे
मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गल्यमङ्गलप्रदे । मङ्गलार्थे मङ्गलांशे मङ्गलं देहि मे भवे ॥ ५६
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे । भूमिपाहङ्काररूपे भूमिं देहि च भूमिदे ॥ ५७
इदं स्तोत्रंमहापुण्यं तां संपूज्यच यः पटेत् । कोटि कोटि जन्मजन्मसमवेतुभूमिपेश्वर
भूमिदानहृत्तं पुण्यं लभते पठनाज्जनः । भूमिदानहरात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः
भूमौ वीर्य्यत्यागपापात् भूमौ दीपादिस्थापनात् । पापेनमुच्यते प्राज्ञःस्तोत्रस्य पठनान्मुने
अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे पृथिव्युपाख्याने पृथिवीस्तोत्रं नाम
अष्टमोऽध्यायः ।

# नवमोऽध्यायः

## भूमिदानफलंतद्धरणपापञ्च ।

नारद उवाच ।

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन यत् । परभूमौ श्राद्धरूपं कूपे कूपदजं तथा ॥ १ ॥
अम्बुवाचीभूखननबीजत्यागजमेव च । दीपादिस्थापनात् पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः ॥
अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत् प्रश्नतः परम् । यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदांवर ॥३।

नारायण उवाच ।

वितस्तिमात्रं भूमिञ्च योददाति च भारते । सन्ध्यापूतायविप्राय सयातिविष्णुमन्दिरम्
भूमिञ्च सर्वशस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति यः । भूमिरेणुप्रमाणञ्च वर्षं विष्णुपदे स्थितिः
ग्रामं भूमिञ्च धान्यञ्च यो ददात्याददाति यः । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौचोभौवैकुण्ठवासिनौ
भूमिं दातुञ्च यत्काले यः साधुश्चानुमोदते । स प्रयातिचवैकुण्ठं मित्रगोत्रसमन्वितः ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । स तिष्ठति कालसूत्रं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥८॥
तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः । पुत्रहीनो दरिद्रश्च अन्ते याति च रौरवम् ॥६॥
गवीमार्गं विनिष्कृष्य यश्च शस्यं ददाति सः । दिव्यं वर्षशतंचैवकुम्भीपाकेच तिष्ठति ॥
गोष्ठं तड़ागं निष्कृष्य मार्गं शस्यं ददाति यः । सचतिष्ठत्यसीपत्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
परकीयतड़ागे च पङ्कमुद्धृत्य चोत्सृजेत् । रेणुप्रमाणवर्षञ्च ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥१२॥
पिण्डं पित्रे भूमिभर्त्तुर्न प्रदाय च मानवः । श्राद्धं करोतियोमूढ़ोनरकंयातिनिश्चितम् ॥
भूमौ प्रदीपं योऽर्पयतिसोऽन्धःसप्तजन्मसु । भूमौशङ्खञ्चसंस्थाप्यकुष्ठंजन्मान्तरैलभेत् ॥
मुक्तामाणिक्यहीरञ्च सुवर्णञ्च मणिन्तथा । यश्च संस्थापयेद्भूमौ दरिद्रःसप्तजन्मसु ॥
शिवलिङ्गं शिलामर्च्यां यश्चार्पयति भूतले । शतमन्वन्तरं यावत् कृमिभक्षे स तिष्ठति॥
शूकं मन्त्रं शिलातोयं पुष्पञ्च तुलसीदलम् । यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरकं युगम् ॥
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनान्तथा । योमूढ़श्चार्पयेद्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम् ॥

मुने कम्पनकल्पश्च स्थाने पृथ्वीकरम् । सर्वसाध्य पृथ्वीं सर्के सर्वसम्पत्प्रदायिनि ॥
पुण्यदं मङ्गलपदं पृथ्वीं संरक्ष्यैतेन् मे: । स सर्वत्रिपदांशी स सर्वत्र जगन्माता भवेत् ॥
प्रदत्तपापसंघं यान्ति मे स्मरे ध्रुवम् । इति स्तुत्वा महापूर्वं पूजयेत् सर्वसौख्यद. ॥२१॥
सर्वसम्पत्तं भूमिसंतोषनादि विष्कृति । स याति सर्वत्र नरकः सर्वसंपत्तु ॥२३॥
भूपते सहसे यो हि करोति लक्षपूर. । ब्रह्मालोकसहस्रांशोपाद्धृतजलैरेव ध्रुवम् ॥
गन्धं मत्र सर्वेषां भूमिदेवि प्रकाशिता । वसुम्बरे यो सृजति वसुधा स वसुन्धरा ॥
होमेऽपि च या सदा सा पवित्री प्रतिपालिता । सदा प्रतिपालयत्सर्वैः स्तवनीयासुरा ॥
द्रव्या सवादिजलनिधोत्थितात्मनिशा । महत्स्पर्शसंयानिधिनिर्गीता सर्वालिना ॥
मधुकैटभमेदसा मेदिनी निःसृतायतः । विस्तरत्वा महत्त्वाच्च मेदिन्याख्यातलक्षणः ॥
पृथ्वी पृथुकन्यात्वाद् विस्तृतत्वान्महामुने ॥ २८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे पृथिव्युपाख्यानं नाम नवमोऽध्यायः ।

---

## दशमोऽध्यायः ।

### गङ्गोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

ुतं पृथिव्युपाख्यानं अतीवसुमनोहरम् । गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदां वर ॥१॥
ारतं भारतीशापादाजगाम सुरेश्वरी । विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीसती ॥२॥
त्थं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा । तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम् ॥

नारायण उवाच ।

ाजराजेश्वरः श्रीमान् सगरः सूर्यवंशजः । तस्य भार्या च वैदर्भी शैब्या चद्वे मनोहरे ॥
: सत्येष्टः सत्यवाक् सत्यभावनः । सत्यधर्मविचारज्ञः परं सत्ययुगोद्भव ॥

एककन्या चैकपुत्रो बभूव सुमनोहरः । असमञ्जा इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्द्धनः ॥६.
अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी । बभूव गर्भस्तस्याश्च शिवस्य च वरेण च ॥
गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषाव सा । तद्दृष्ट्वाचशिवंध्यात्वारुरोदोच्चैःपुनःपुनः ॥
शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह । चकार संविभज्यैतत् पिण्डं षष्टिसहस्रधा ॥६
सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभाशुष्ककलेवराः ॥ १० ॥
कपिलस्य कोपदृष्ट्या बभूवुर्भस्मसाच्च ते । राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम मरणं शुचा ॥
तपश्चकारासमञ्जा गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१२॥
दिलीपस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ययौ लोकान्तरं नृपः ॥
अंशुमांस्तस्य पुत्रश्च गङ्गानयनकारणम् । तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः ॥१४
भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः । वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः ॥
तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणम् । ददर्श कृष्णं हृष्टास्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१६
द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेशकम् । परमात्मानमीशञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥१७॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्युतम् ॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपञ्च निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम् ॥१६
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २० ॥

[...]ष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः । लीलया च वरं प्राप्य वाञ्छितं वंशतारणम् ॥
[...]त्राजगाम गङ्गा सा स्मरणात् परमात्मनः । तं प्रणम्यप्रतस्थौचतत् पुरःसंपुटाञ्जलिः ॥
[...]चाव भगवांस्तत्र तां दृष्ट्वा सुमनोहराम् । कुर्वती स्तवनं दिव्यं पुलकाञ्चितविग्रहाम् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

[...]रतं भारतीशापात् गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि । सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया ॥
[...]स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मममन्दिरम् । बिभ्रतो दिव्यमूर्त्तिं ते दिव्यस्यन्दनगामिनः
[...]पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः । समुच्छिद्यकर्मभोगं कृतं जन्मनि जन्मनि ॥
[...]दिव्यार्जितं पापं भारते यत् कृतं नृणाम् । गङ्गायाः स्पर्शवातेन नश्यति[...]श्रुतम् ॥
[illegible] स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः । [illegible]

मौपलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम् । शतकोटिजन्मपापं नश्यतीतिश्रुतौ श्रुतम्
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
जन्मासंख्यार्जितान्येवकामतोऽपिकृतानि च । तानिसर्वाणिनश्यन्तिमौपलस्नानतोनृणाम्
पुण्याहस्नानजं पुण्यं वेदा नैव वदन्ति च । केचिद्वदन्ति ते देवि ! फलमेव यथागमम्।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च । सामान्यदिवसस्नानंसङ्कल्पं शृणु सुन्दरि।
पुण्यं दशगुणञ्चैव मौपलस्नानतः परम् । ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने ॥३२॥
अमायाञ्चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने । ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे।
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च । अक्षयायाञ्च तत्तुल्यं नैतद्वेदे निरूपितम्॥
असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम् । सामान्यदिवसस्नानात् स्नानाच्छतगुणंफलम्॥
मन्वन्तरायां देवेशि युगाद्यायां तथैव च । तथाप्यशोकाष्टम्याञ्च नवम्याञ्च तथा हरेः॥
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभे । दशहरादशम्याञ्च युगादिसमं फलम्
नन्दासमञ्च वारुण्यां महत्पूर्वं चतुर्गुणम् । ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति ॥
पुण्यंकोटिगुणं चैवसामान्यस्नानतो हि यत् । चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः
पुण्योऽप्यर्द्धोदये काले ततः शतगुणं फलम् । सर्वेषामेवसङ्कल्पोवैष्णवानां विपर्ययः
फलसन्धानरहिता जीवन्मुक्ताश्च वैष्णवाः । मन्त्रीनिभक्तिकामास्तेसर्वदासर्वकर्मसु
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रविश्यति । जीवन्मुक्तं वैष्णवन्तं वेदाःसर्वेवदन्ति
पुरुषाणां शतं पूर्वं पैतृकञ्च परं शतम् । मातामहस्य च शतं मातरं मातृमातरम् ॥४३॥
भगिनीं भ्रातरञ्चैव भागिनेयञ्च मातुलम् । श्वश्रूञ्च श्वशुरञ्चैव गुरुपत्नीं गुरोः सुतम्॥
गुरुञ्च स्नानदातारं मित्रञ्च सहचारिणम् । भृत्यं शिष्यंतथाचेटींप्रजाः स्वाश्रमसन्निधौ॥
उद्धरेदात्मना सार्द्धं मन्त्रग्रहणमात्रतः । मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४६॥
तस्य संस्पर्शनात् पूतं तीर्थञ्च भुवि भारतम् । तस्यैव पादरजसा सद्यःपूतावसुन्धरा॥
पादोदकपतत्स्थानं तीर्थमेव भवेद् ध्रुवम् ॥ ४७ ॥
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोरनिवेदितम् । वैष्णवाश्च न खादन्तिनैवेद्यभोजिनःसदा॥
[illegible] नित्यं ये भुञ्जते नराः । पूतानि सर्वतीर्थानि तेषाञ्च स्पर्शनाद्दहो॥

विष्णोः पादोदकं पुण्यं नित्यं ये भुञ्जते नराः। तेषां सन्दर्शनमात्रेण पूतश्च भुवनत्रयम्
विष्णोः सुदर्शनं चक्रं शतनं तांश्च रक्षति ॥ ५१ ॥
मद्गुणश्रवणाद् ये च पुलकाङ्कितविग्रहाः। गद्गदाः साश्रुनेत्रास्तेनराश्चवैष्णवोत्तमाः ॥
पुत्रादपि परः स्नेहो मयि येषां निरन्तरम्। गृहाद्याश्रमचिन्त्यस्तास्तेनरावैष्णवोत्तमाः ॥
आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं मत्तः सर्वं चराचरम्। सर्वेषामहमात्मेश इतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥
असंख्यकोटिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रलये मयिलीयन्तेचेतिज्ञा वैष्णवोत्तमाः ॥
तेजःस्वरूपं परमं भक्तानुग्रहविग्रहम्। स्वेच्छामयं निर्गुणञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥५६॥
सर्वे प्राकृतिकामत्तःआविर्भूतास्तिरोहिताः। इतिजानन्तियेदेवि ! तेनरावैष्णवोत्तमाः ॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः। उवाच तं त्रिपथगा भक्तिनम्रात्मकन्धरा ॥

गङ्गोवाच।

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापनः पुरा। तवाज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम् ॥
दास्यन्ति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च। तानिमेकेननश्यन्तितदुपायंवदप्रभो ॥
कतिकालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते। कदा यास्यामि सर्वेश तद्विष्णोः परमंपदम् ॥
ममान्यद्वाञ्छितं यद् यत् सर्वंजानासिसर्ववित्। सर्वान्तरात्मन्सर्वज्ञतदुपायंवदप्रभो ॥

श्रीकृष्ण उवाच।

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि। पतिस्ते रुद्ररूपोऽयं लवणोदोभविष्यति ॥
ममैवांशसमुद्रश्च त्वञ्च लक्ष्मीस्वरूपिणी। विदग्धायाविदग्धेनसङ्गमो गुणवान् भुवि ॥
यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते। सौभाग्यं तव तास्वेव लवणोदस्य सौरते
अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम्। वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि ॥
नित्यं वारिधिना सार्द्धं करिष्यसिरहोरतिम्। त्वमेवरसिकादेवीरसिकेन्द्रेणसंयुता ॥
त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रेणभगीरथकृतेनच। भारतस्थाजनाःसर्वेपूजयिष्यन्तिभक्तितः ॥
कौथुमोक्तेनध्यानेनध्यात्वात्वांपूजयिष्यति। यःस्तौतिप्रणमेन्नित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत्
गंगागंगेति यो ब्रूयात् योजनानांशतैरपि। मुच्यतेसर्वपापेभ्योविष्णुलोकंसगच्छति ॥
सहस्रपापिनां स्नानाद् यत्पापं ते भविष्यति। मद्भक्तैकदर्शनेन तदेव हि विनश्यति ॥७१

पितान्तु सहस्राणां ब्रह्मणां गणन । मन्मन्त्रोपासक.स्नानात्पापं विन्दति ॥७८
श यत्र भवेद् गंगे मत्प्रागुणकीर्तनम् । सद्यैव स्नानमितुं र्ं करिष्यसि मनीतनम् ॥
दं भगिन्द्रैःश्रोतृभिःसम्यक्पादिभिःशुभे । मत्पूर्वात्मधीरनर्यागत्रमद्गुणकीर्तनम्।
ःपुण्यस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी । रेणुप्रमाणवर्षाञ्च स गोलके वसेद् ध्रुवम् ॥७९
नेन त्वयि येऽत्र प्राणांस्त्यजति मत्पूर्वकम् । मत्पुण्यजन्तिप्रापात्प्रभवेत्स्वरितैःपदम् ॥
देवप्रयागरूपे च भविष्यसि हरेश्विरम् । त्वं प्राकृतिकाभिनद्रूपाकृतिमनान्यमन्यकम् ॥
स्य मत्पुण्येन सनशयस्यपविचित्वरेण । प्रयातिसनवैकुण्ठंयावदस्थिस्थितिस्त्वयि।
यच्यूर्द तत: कृत्वागोत्रविश्वास्यचन्द्रकम् । तस्मैदद्यामिसारूप्यंकरोमितत्रपार्षदम् ॥

अज्ञानात्याञ्जलस्पर्शाद् यदि प्राणान् समुत्सृजेत् ।
तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तत्र पार्षदम् ॥ ८० ॥

त्यप्रयागृजेत् प्राणांस्त्वधामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मैददामि सारूप्यममंवयमलयंलयम्।
त्यप्रयात्यजेत्प्राणानज्ञामस्मृतिपूर्वकम् । तस्मैददामिसालोक्यंयावद्ब्रह्मणो वयः।
र्येऽप्यतीर्थेमरणेविशेषो नास्तिकश्चन । मन्मन्त्रोपासकानाञ्च नित्यंनैवेद्यभोजिनाम्।
ं कर्त्तुं स शक्तो हि लीलया भुवनत्रयम् । रत्नेन्द्रसाग्यानेन गोलोकं स प्रयाति च ॥
दृतवान्धवा ये ये ते ते पुण्यधियः शुभे । ते यान्ति रत्नयानेन गोलोकञ्च सुदुर्लभम् ॥
ा तत्र मृता ये च ज्ञानाज्ञानेन वा सति ।। जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तसन्निधानतः ।
युक्त्वाश्रीहरिस्ताञ्चतमुवाचभगीरथम् । स्तौहिगङ्गामिमांभक्त्यापूजांकुर्वितिसाम्प्रतम्
गीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः । कौथुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेण च पुनःपुनः ॥
नाम च श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम् । भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्धानं चकार ह ॥

नारद उवाच ।

न ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च । पूजाञ्चकार नृपतिर्वद वेदविदां वर ॥ ६० ॥

श्रीनारायण उवाच ।

त्वानित्यक्रियांकृत्वाधृत्वाधौतेचवाससी । सम्पूज्यदेवषट्कञ्चसंयतोभक्तिपूर्वकम्।
गेशंदिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । सम्पूज्य देवषट्कञ्च सोऽधिकारीचपूजने।

शं विघ्ननाशाय निष्पापाय दिवाकरम्। वह्निं स्वशुद्धये विष्णुं मुक्तये पूजयेन्न
शंज्ञानायज्ञानेशं शिवाञ्च बुद्धिवृद्धये। सम्पूज्यैतल्लभेत् प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्य
शयनेन तद्ध्यानं शृणु नारद तत्त्वतः। ध्यानञ्च कौथुमोक्तञ्च सर्वपापप्रणाशन
तचम्पकवर्णाभां गङ्गां पापप्रणाशिनीम्। कृष्णविग्रहसम्भूतां कृष्णतुल्यांपरांस
हेशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्। शरत्पूर्णेन्दुशतकप्रभायुष्टकलेवराम् ॥ १

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
नारायणप्रियां शान्तां सन्सौभाग्यसमन्विताम् ॥ १८ ॥

भ्रतीं कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुताम्। सिन्दूरबिन्दुललितां सार्द्धं चन्दनबिन्
स्तूरीपत्रकं गण्डे नानाचित्रसमन्वितम्। पक्वबिम्बविनिन्द्यैकचार्वोष्ठपुटमुक्ता
क्तापंक्तिप्रभायुष्टदन्तपंक्तिमनोहराम्। सुचारुवक्त्रनयनां सकटाक्षमनोरमाम् ॥ १
ठिनंश्रीफलाकारस्तनयुग्मंसपत्रकम्। बृहच्छ्रोणीसुकठिनांरम्भास्तम्भविनिन्दि
थलपद्मप्रभायुष्टपादपद्मयुगं वरम्। रत्नपादकसंयुक्तं कुङ्कुमाक्तं सयावकम् ॥ १
वेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम्। सुरसिद्धमुनीन्द्रैश्च दत्तार्घ्यसंयुतं सदा ॥
पस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणीसंयुतम्। मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां स्वर्गभोगदम्
रां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकातराम्। श्रीविष्णोःपददात्रीञ्च भजे विष्णुपदींस
त्यनेनच ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम्। दत्त्वा संपूजयेद् ब्रह्मन्नुपहारांश्च
आसनंपाद्यमर्घ्यञ्च स्नानीयञ्चानुलेपनम्। धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं ज
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्। मनोहरं सुतल्पञ्च देयान्येतानिषोडश
दत्वाभक्त्याच प्रणमेत् संस्तूयसंपुटाञ्जलिः। संपूज्यैवं प्रकारेण सोऽश्वमेधफलं
स्तोत्रञ्चकौथुमोक्तञ्च संवादंविष्णुब्रह्मणोः। शृणुनारद वक्ष्यामि पापघ्नञ्चशुभप्र

श्रीब्रह्मोवाच।

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्प्रभो।
विष्णोः विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥ १२॥

श्रीनारायण उवाच।

शिवसंगीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गद्रवोद्भवाम्। राधाङ्गद्रवसम्भूतां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
यज्जन्मसृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले। सन्निधाने शङ्करस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
गोपैर्गोपीभिराकीर्णेशुभे राधामहोत्सवे। कार्त्तिकीपूर्णिमाजातां तांगङ्गांप्रणमाम्यहम्।
कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः। समावृता या गोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। समावृता या वैकुण्ठं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
त्रिंशल्लक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा। आवृता ब्रह्मलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥
त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः। आवृता शिवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
षड्योजनविस्तीर्णा या दैर्घ्ये दशगुणा ततः। मन्दकिनी येन्द्रलोकंतां गङ्गां पणमाम्यहम्।
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता ध्रुवलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये चषड्गुणा ततः। आवृता चन्द्रलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्
षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः। आवृता सूर्य्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्येचषड्गुणा ततः। आवृता सत्यलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।

दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता या तपोलोकं तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ १२५॥

सहस्रयोजना या च दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः। आवृता जनलोकं या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
सहस्रयोजना यासा दैर्घ्ये सप्तगुणाततः। आवृतायाच कैलासं तां गङ्गांप्रणमाम्यहम्।
पाताले याभोगवतीविस्तीर्णादशयोजना। ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्।
क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततःक्षीणानकुत्रचित्। क्षितौचालकनन्दायातांगंगांप्रणमाम्यहम्।
सत्ये या क्षीरवर्णाच त्रेतायामिन्दुसन्निभा। द्वापरे चन्दनाभाच तांगंगांप्रणमाम्यहम्।
जलप्रभा कलौ या च नान्यत्रपृथिवीतले। स्वर्गेच नित्यंक्षीराभा तां गंगांप्रणमाम्यहम्।
यस्याः प्रभावमतुलं पुराणे च श्रुतौ श्रुतः। या पुण्यदापापहर्त्रींतांगङ्गां प्रणमाम्यहम्
[illegible] पाणिनाञ्च पितामह। ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत्
[illegible] गङ्गास्तवैकविंशतिम्। स्तोत्रकञ्च परमं पावनं पुण्यजीवकम्॥

नित्यं यो हि पठेद् भक्त्या संपूज्य च सुरेश्वरीम् ।
अश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः ॥ १३५ ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनोलभेत्प्रियाम् । रोगान्मुच्येतरोगीचबद्धोमुच्येतबन्धनात्
अस्पष्टकीर्त्तिः सुयशामूर्खोभवतिपण्डितः । यः पठेत् प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदंशुभम्
शुभं भवेत्तु दुःस्वप्नं गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥ १३८ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

नारायण उवाच ।

भगीरथोऽनयासतुत्या स्तुत्वा गङ्गाञ्चनारद । जगामतां गृहीत्वाच यत्र नष्टाश्चसागराः ॥
वैकुण्ठंते ययुस्तूर्णं गङ्गायाःस्पर्शवायुना । भगीरथेनसा नीता तेन भागीरथी स्मृता ॥
इत्येवंकथितं सर्वं गङ्गोपाख्याननमुत्तमम् । पुण्यदंमोक्षदं सारं किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ।

नारद उवाच ।

शिवसङ्गीतसंमुग्धे श्रीकृष्णे द्रवतां गते । द्रवताञ्च गतायाञ्च राधायां किं बभूव ह ॥
तत्रस्थाश्चजना ये ये ते च किं चक्रुरुत्तमम् । एतत् सर्वं सुविस्तीर्णं कृत्वावक्तुमिहार्हसि ।

नारायण उवाच ।

कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्च राधायाःसुमहोत्सवे । कृष्णःसंपूज्यतां राधामुवासरासमण्डले ।
कृष्णेन पूजितां तान्तु संपूज्य हृष्टमानसाः । ऊषुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः सनकादयः ॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसंगीतञ्च सरस्वती । जगौसुन्दरतानेन वीणयाच मनोहरम् ॥१४६
तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै रत्नेन्द्रसारहारकम् । शिरोमणीन्द्रसारञ्च सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम् ॥
कृष्णः कौस्तुभरत्नञ्च सर्वरत्नात् परं परम् । अमूल्यरत्ननिर्माणहारसारञ्च राधिका ॥
नारायणश्च भगवान् वनमालां मनोहराम् । अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्ष्मीर्मकरकुण्डलम् ॥
विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी । दुर्गा नारायणीशानी विष्णुभक्तिं सुदुर्लभाम् ।
धर्मबुद्धिञ्च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे । वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरम् ॥१५१
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः । जगौ श्रीकृष्णसंगीतं रासोल्लाससमन्वितम् ॥
मूर्च्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा । क्षणेन चेतनां प्राप्य दद्दृशू रासमण्डलम्
स्थलंसर्वं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम् । अत्युच्चैरुरुदुः सर्वे गोपागोप्यःसुराद्विजाः ॥

न ब्रह्मा सुषुपे सर्गमेवमभीप्सितम् । गतश्च राधया सार्द्धं श्रीकृष्णोऽन्तर्दधाविति ॥
ब्रह्माद्याः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् । स्वमूर्त्तिदर्शनं विभो वाञ्छितं वरमेव नः १९६
हिमध्यन्तरेतत्र वाग् बभूवाशरीरिणी । तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरान्विताम् ॥
त्माहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा । ममाप्यन्याश्च ते देवा देहेन च विभावर्याः ॥
ति मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः । मन्मन्त्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यन्ति मत्पदम् ॥
न द्रष्टुश्च सुव्यग्रा यूयं यदि सुरेश्वराः । करोति शम्भुस्तत्रैव मदीयं वाक्यपालनम् ।
विधाता त्वं ब्रह्मसाक्षी कुरु जगद्गुरो । कर्तुं शास्त्रविशेषश्च वेदाङ्गं सुमनोहरम् ।
येमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः । स्तोत्रैश्च कवचैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः ॥१९२
मन्त्रकवचस्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपय । भवन्तिविमुखा येन जनानां तत् करिष्यति ।
स्त्रेषुशतेष्वेकोमन्मन्त्रोपासको भवेत् । ते ते जना मन्त्रपूताश्चागमिष्यन्ति मत्पदम् ॥
यथाचभविष्यन्ति सर्वे गोलोकवासिनः । निष्फलंभविता सर्वं ब्रह्माण्डश्चैवब्रह्मणः ॥
ाःपञ्चप्रकाराश्चयुक्ताः सृष्टुर्भवेभवे । पृथिवीवासिनःकेचित् केचित्स्वर्गनिवासिनः ॥
ोनिवासिनःकेचित्ब्रह्मलोकनिवासिनः । केचिद्वावैष्णवाःकेचिन्ममलोकनिवासिनः ।
कर्त्तुं महादेवः करोतु देवसंसदि । प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्त्तिञ्च द्रक्ष्यसि ॥
वमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः । तद् दृष्ट्वा च जगन्नाथस्तमुवाच शिवं मुदा १९६
णोवचनंश्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः । गङ्गातोयं करे धृत्वा स्वीकारञ्च चकारसः ॥
युक्तंविष्णुमायाद्यैर्मन्त्राद्यैः शास्त्रमुत्तमम् । वेदसारंकरिष्यामि कृष्णाज्ञापालनायव ॥
ङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः । सयाति कालसूत्रञ्च यावद्वै ब्रह्मणो वयः ॥
युक्ते शङ्करे ब्रह्मन् गोलोकेश्वरसंसदि । आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सह तत्परः ॥
तं दृष्ट्वा च संहृष्टाःसंस्तूय पुरुषोत्तमम् । परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम्
ालेन शम्भुर्भगवान् शास्त्रदीपं चकारसः । इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यञ्च सुदुर्लभम्
ा एवं द्रवरूपा या गङ्गा गोलोकसम्भवा । राधाकृष्णाङ्गसम्भूता भक्तिमुक्तिफलप्रदा
थानेस्थानेस्थापितासा कृष्णेन परमात्मना । कृष्णस्वरूपा परमा सर्वब्रह्माण्डपूजित

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गङ्गोपाख्यानं
नाम दशमोऽध्यायः ।

# एकादशोऽध्यायः

## गङ्गारूपमोहितं कृष्णं प्रति राधाया उपालम्भः ।

नारद उवाच ।

कलेः पञ्चसहस्रे सा समतीते सुरेश्वरी । क्व गता सा महाभागा तन्मे व्याख्यातुम॰ २ ॥

नारायण उवाच ।

भारतं भारतीशापात् समागत्येश्वरेच्छया । जगाम तत्र वैकुण्ठं शापान्ते पुनरेव सा ॥
भारतं भारती त्यक्त्वा जगाम तं हरेः पदम् । पद्मावती च शापान्ते गंगायाश्चैव नारद ॥
गंगा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्रः प्रिया हरेः ।
तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्रः कीर्तिताः श्रुतौ ॥ ४ ॥

नारद उवाच ।

पूर सा मुनिश्रेष्ठ गंगा नारायणप्रिया । अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥

श्रीनारायण उवाच ।

रायभूत गोलोके सा गंगा द्रवरूपिणी । राधाकृष्णाङ्गसम्भूता तदंशा तत्स्वरूपिणी ।
धाधिष्ठातृरूपा या रूपेणाप्रतिमा भुवि । नवयौवनसम्पन्ना रत्नाभरणभूषिता ॥ ७ ॥
च्याह्नपद्मास्यासस्मिता सुमनोहरा । तप्तकाञ्चनवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा ॥ ८ ॥
प्रभातिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी । सुपीनकठिनश्रोणी सुनितम्बयुगं परम् ॥
पीनं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम् । सुचारुनेत्रयुगलं सकटाक्षं सुवङ्किमम् ॥१०॥
वं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् । सिन्दूरबिन्दुललितं सार्द्धं चन्दनबिन्दुभिः ॥
रीपत्रिकायुक्तं गण्डयुग्मं मनोहरम् । बन्धूककुसुमाकारमधरोष्ठं सुन्दरम् ॥१२॥
ाडिम्बबीजाभदन्तपंक्तिसमुज्ज्वलाम् । वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती ॥
सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुवास सलज्जिता ।
वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम् ।
निमेषरहिताभ्यां च पिबन्ती सततं मुदा ॥ १४ ॥

मधुरास्यवदना हर्षोत्फुल्लसद्‌मलोचना । मूर्च्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा ॥ १५ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका । गोपीत्रिंशत्कोटियुता कोटिचन्द्रसमप्रभा
कोपेन रक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना । श्वेतचम्पकवर्णाभा गजेन्द्रमन्दगामिनी ॥ १७ ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभरणभूषिता ॥ १८ ॥
अमूल्यरत्नखचितं हारममूल्यं वह्निशौचकम् । पीतामधरवस्त्रयुगलं नीवीयुक्तञ्च बिभ्रती ॥ १९
स्थलपद्मप्रभाजुष्टकोमलञ्च सुरञ्जितम् । कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यस्यन्ती पदाम्बुजम् ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानादवरुह्य च । सेव्यमाना च सर्वाभिः श्वेतचामरवायुना ॥ २१
कस्तूरीविन्दुभिर्युक्तं चन्दनेन्दुसमन्वितम् । दीप्तदीपप्रभाकारं सिन्दूरबिन्दुसुन्दरम् ॥
दधती भालमध्ये च सीमन्ताधस्तथोज्ज्वले । पारिजातप्रसूनानां मणियुक्तं सुबङ्किमम्
सुचारुकबरीभारं कम्पयन्ती च कम्पिता । सुचारुनासासंयुक्तमोष्ठं कम्पयती रुषा ॥
गत्वोवास कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने वरे । सखीनाञ्च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः सभा
ताञ्च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ कृष्णः सादरपूर्वकम् । संभाष्य मधुराभाषैः सस्मितश्चससंभ्रमः
प्रणेमुरभिसंत्रस्ता गोपा नम्रात्मकन्धरा । तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः ॥
उत्थाय गङ्गा सहसा सम्भाषाञ्च चकार सा । कुशलं परिपप्रच्छ भीतातिविनयेन च ॥
नम्रभावस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । ध्यानेन शरणापन्नाश्रीकृष्णचरणाम्बुजे
तद्धृत्पद्मस्थितः कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ । बभूवस्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च
ऊर्ध्वसिंहासनस्थाञ्चराधां गङ्गा ददर्श सा । सुस्निग्धांसुखदृश्याञ्चज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा
असंख्यब्रह्मणामाद्यां चादिसृष्टिं सनातनीम् । यथा द्वादशवर्षीयां कन्याञ्च नवयौवनाम्
विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च । शान्ताकान्तामनन्तान्तामाद्यन्तरहितां सतीम्

शुभां शुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम् ।
सौन्दर्ये सुन्दरीश्रेष्ठां सर्वासु सुन्दरीषु च ॥ ३४ ॥

कृष्णार्द्धाङ्गां कृष्णसमांतेजसावयसात्विषा । पूजिताञ्चमहालक्ष्मीं महालक्ष्मीश्वरेण च
समामीशस्य सुप्रभाम् । सखीदत्तं भुक्तवतीं ताम्बूलमन्यदुर्लभम्
मानिनीम् । कृष्णप्राणाधिदेवीञ्च प्राणप्रियतमांरमाम्

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी। निमेषरहिताभ्याञ्च लोचनाभ्यां पपौव ताम्
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा। वाचा मधुरयाशान्ता विनीता सस्मिता मुने

राधिकोवाच।

केयं प्राणेशकल्याणीसस्मितात्वन्मुखाम्बुजम्। पश्यन्ती सततंपार्श्वे सकामारक्तलोचना
मूर्च्छां प्राप्नोतिरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा। वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः

त्वञ्चापि मां सन्निरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा।
मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी ॥ ४२ ॥

त्वमेव चेवं दुर्वृत्तंवारंवारंकरोषि च। क्षमां करोमिप्रेम्णा च स्त्रीजातिःस्निग्धमानसा
संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद्गच्छ लम्पट। अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यतिव्रजेश्वर
दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने। क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो ॥
त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा। देहं सन्त्यज्य विरजा नदीरूपा बभूव सा
कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्येचतुर्गुणा। अद्यापि विद्यमानासातव सत्कीर्तिरूपिणी
गृहं मयि गतायाञ्च पुनर्गत्वा तदन्तिकम्। उच्चैरुरोसीर्विरजे विरजेति च संस्मरन् ॥

तदा तोयात् समुत्थाय सा योगात् सिद्धयोगिनी।
सालङ्कारा मूर्त्तिमती ददौ तुभ्यञ्च दर्शनम् ॥ ४६ ॥

ततस्ताञ्च समाश्लिष्य वीर्य्याधानं कृतं त्वया। ततो बभूवुस्तस्याञ्च समुद्राः सप्तएव च
दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने। सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानंकृतंत्वया
शोभादेहं परित्यज्य जगाम चन्द्रमण्डलम्। ततस्तस्याः शरीरञ्च स्निग्धं तेजो बभूव ह
संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता। रत्नाय किञ्चित् स्वर्णाय किञ्चिन्मणिवराय च

किञ्चित् स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः किञ्चिद्राज्ञे च किञ्चन।
किञ्चित् प्रकृष्टवस्त्रेभ्यो रौप्येभ्यश्चापि किञ्चन ॥ ५५ ॥

किञ्चिच्चन्दनपङ्केभ्यस्तोयेभ्यश्चापि किञ्चन। किञ्चित्किसलयेभ्यश्चपुष्पेभ्यश्चापिकिञ्चन
किञ्चित् फलेभ्यः शस्येभ्यः सुपक्वेभ्यश्चकिञ्चन। नृपदेवगृहेभ्यश्चसंस्कृतेभ्यश्च किञ्चन
दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने। सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानंकृतं त्वया

प्रभादेहं परित्यज्य जगाम सूर्यमण्डलम् । तताप्स्याः शरीरञ्च श्रीखण्डं तेजो बभूव ह॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा । विसृज्य चक्षुषोर्देवं लज्जया तद्गुणेन च
हुताशनाय किञ्चिच्च नृपेभ्यश्चापि किञ्चन । किञ्चित् पुरन्दरेभ्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन
किञ्चिद्रत्नसुवर्णेभ्यश्च नागेभ्यश्चापि किञ्चन । ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किञ्चन
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्तेभ्यो यशस्विभ्यश्च किञ्चन । तपद्रत्नावसरेभ्यः पूर्वं रोदितुमुद्यतः

शान्त्या गोप्या युतस्त्वञ्च दृष्टोऽत्र रासमण्डले ।
वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः ॥ ६३ ॥

रत्नप्रदीपैर्युक्तश्च रत्ननिर्माणमन्दिरे । रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह ॥ ६४ ॥
त्वया दत्तञ्च ताम्बूलं भुक्तवन्त्यागुरस्य च । तया दत्तञ्च ताम्बूलं भुक्तवांस्त्वं पुरा विभो॥
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया । शान्तिर्देहं परित्यज्य भियालीनाद्य विभो ॥
ततस्तस्याः शरीरञ्च गुणश्रेष्ठं बभूव ह । संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा ॥
विश्वे विषयिणे किञ्चित् सत्त्वरूपाय विष्णवे । शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किञ्चिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो ॥
त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन । तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किञ्चन ॥
मया पूर्वञ्च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमया सह । सुवेशयुक्तो माल्यवान् गन्धचन्दनसंयुतः ॥
रत्नभूषितया गन्धचन्दनोक्षितया तया । सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनसंयुते ॥ ७१ ॥
श्लिष्टोऽभून्निद्रया सद्यः सुखेन नवसंगमात् । मया प्रबोधिता सा च भवांश्च स्मरणं कुरु ॥
गृहीतं पीतवस्त्रं ते मुरली च मनोहरा । वनमाला कौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम् ॥
पश्चात् प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो । लज्जया कृष्णवर्णोऽभूद्द्यापि च भवान् प्रभो ॥
क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता । ततस्तस्याः शरीरञ्च गुणश्रेष्ठं बभूव ह ॥ ७४ ॥
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा च रुदता पुरा । किञ्चिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन ॥
धर्मिष्ठेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किञ्चन । तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किञ्चन ॥
एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि । त्वद्गुणञ्च बहुतरं जानामि चापरं प्रभो ॥

सा राधा रक्तपङ्कजलोचना । गंगां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम् ॥
गंगा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी ।

तिरोभूय सभामध्यात् स्वजलंप्रविवेश सा ॥ ८० ॥
राधायोगेनविज्ञायसर्वत्रावस्थिताञ्जनाम् । पानं कर्त्तुं समारेभेगण्डूषात्सिद्धयोगिनी ॥
गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी । श्रीकृष्णचरणाम्भोजे विवेश शरणं ययौ ॥
गोलोकञ्चैव वैकुण्ठं ब्रह्मलोकादिकं तथा । ददर्श राधासर्वत्रनैवगङ्गां ददर्श सा ॥८३॥
सर्वतो जलशून्यश्च शुष्कपङ्कजगोलकम् । जलजन्तुसमूहैश्चैवमृतदेहैः समन्वितम् ॥८४
ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः । मनवो मानवाः सर्वे देवाःसिद्धास्तपस्विनः ॥
गोलोकञ्चसमाजग्मुः शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः । सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेःपरम् ॥
वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम् । वरेशञ्च वरार्हञ्च सर्वेषां प्रवरं प्रभुम् ॥ ८७ ॥
निरीहञ्च निराकारं निर्लिप्तञ्च निराश्रयम् । निर्गुणञ्च निरुत्साहं निर्व्यूहञ्च निरञ्जनम् ॥
स्वेच्छामयञ्च साकारं भक्तानुग्रहविग्रहम् । सत्यस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम् ॥
परं परेशं परमं परमात्मनमीश्वरम् । प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥९०॥
सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाञ्चितविग्रहाः । सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परं हरिम् ॥
ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥९२॥
सेव्यमानञ्च गोपालैः श्वेतचामरवायुना । गोपालिकानृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितंमुदा ॥
परितो व्यावृतं शश्वद्गोपैश्च शतकोटिभिः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् ॥९४
नवीननीरदश्यामं किशोरं पीतवाससम् । यथाद्वादशवर्षीयबालं गोपालरूपिणम् ॥९५॥
कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् । स्वतेजसा परिवृतं सुखाद्दृश्यं मनोहरम् ॥९६॥
कोटिकन्दर्पसौन्दर्यलीलालावण्यधामकम् । दृश्यमानञ्चगोपीभिःसस्मिताभिश्चसन्ततम्
भूषणैर्भूषिताभिश्च रत्नेन्द्रसारनिर्मितैः । पिबन्तीभिर्लोचनाभ्यां मुखचन्द्रं प्रभोर्मुदा ॥
प्राणाधिकप्रियतमाराधावक्षःस्थलस्थितम् । तया प्रदत्तं ताम्बूलंभुञ्जन्तंसुवासितम् ॥
परिपूर्णतमं रासे ददृशुः सर्वतः सुराः ॥९९॥
मुनयो मानवाः सिद्धास्तपसा च तपस्विनः । प्रहृष्टमानसाः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्
परस्परं समालोच्य ते समूचुश्चतुर्मुखम् । निवेदितुं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम् ॥
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृष्णस्य दक्षिणे । वामतोवामदेवञ्चजगामकृष्णसन्निधिम् ॥

परमानन्दयुक्तञ्च परमानन्दरूपकम् । सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमण्डले ॥१०३॥
सर्वं समानवेशञ्च समानासनसंस्थितम् ॥१०४॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम् । मयूरपुच्छचूडञ्च कौस्तुभेन विराजितम् ॥१०५
*अतीवकमनीयञ्च सुन्दरं शान्तविग्रहम् । गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा ॥१०६*
वाससा यशसाकृत्या मूर्त्या भङ्गिमया समम् । परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्
कं सेव्यं सेवकं कं वा दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः । क्षणंतेजःस्वरूपञ्च रूपराशियुतं क्षणम् ॥
एकमेव क्षणं कृष्णं राधया सहितं परम् । प्रत्येकासनसंस्थञ्च तया च सहितंक्षणम् ॥
राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपकलत्रकम् । किं स्त्रीरूपञ्च पुंरूपं विधाता ध्यातुमक्षमः ॥
*हृत्पद्मस्थञ्च श्रीकृष्णं धाता ध्यानेन चेतसा । चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा ॥*
ततः स चक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया । ददर्श कृष्णमेकञ्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥
स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम् । पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुश्च पुनश्च ते ॥
विज्ञाय तदभिप्रायं तानुवाच सुरेश्वरः । सर्वात्मा सर्वयज्ञेशः सर्वेशः सर्वभावनः ॥११४

श्रीभगवानुवाच ।

आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते । इहागच्छ महादेव शश्वत् कुशलमस्तु वः ॥
आगताःस्थमहाभागागङ्गानयनकारणात् । गङ्गामच्चरणाम्भोजे भयेन शरणंगता ॥११६
राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्सन्निधानतः । दास्यामीमां यदि यूयं कुरुत निर्भयाम्
श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितःकमलोद्भवः । तुष्टाव सर्वाराध्यां तां राधां श्रीकृष्णपूजिताम्
वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकन्धरः । धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः ॥

ब्रह्मोवाच ।

गंगा त्वदङ्गसम्भूता प्रभोश्च रासमण्डले । द्रवरूपा च सा जाता मुग्धयोः शङ्करस्वरात् ॥
कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशीप्रिया । त्वन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम् ॥
भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठेशश्चतुर्भुजः । भूगतायाः कलायाश्च लवणोदश्च वारिधिः ॥
गोलोकस्थायाश्च या राधा सर्वत्रस्था तथाम्बिके । सदाम्बिका त्वं देवेशि सर्वदा त्वात्मजा ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता । बहिर्भूय सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रतः ॥

तत्रैव संवृता शान्ता तस्थौ तेषाञ्च मध्यतः । उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता ॥
तत्तोयं ब्रह्मणाकिञ्चित्स्थापितञ्चकमण्डलौ । किञ्चिद्दधारशिरसिचन्द्रार्द्धचन्द्रशेखरः ॥
गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः । तत्स्तोत्रं कवचंपूजाविधानं ध्यानमेव च ॥
सर्वं तत् सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा । गङ्गा तामेव संपूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सती ॥
लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तुलसी विश्वपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रोयोषितोमुने ॥
अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणंसमुवाचह । सर्वकालस्यवृत्तान्तं दुर्बोध्यमविपश्चिताम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर । शृणुकालस्यवृत्तान्तं यदतीतं निशामय ॥
यूयञ्च येऽन्यदेवाश्च मुनयो मनवस्तथा । सिद्धास्तपस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः ॥
ते ते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते । जलप्लुतं सर्वविश्वमागतं प्राकृते लये ॥
ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते लीना अधुना मयि । वैकुण्ठञ्चविनासर्वंसजलंपश्यपद्मज ॥
गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम् । स्वब्रह्माण्डं विरच्य पश्चाद्गङ्गाच यास्यति ॥
एवमन्येषु विश्वेषु सृष्ट्वा ब्रह्मादिकं पुनः । करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रंसुरैःसह ॥
भवत्सुयोर्निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्तिचवेधसः ॥
इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरं मुने । देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः ॥
गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके । ब्रह्मलोकेतथान्यत्रयत्रतत्रपुरा स्थिता ॥
तत्रैव सा गता गङ्गा चाज्ञयापरमात्मनः । निर्गताविष्णुपादाब्जात्तेनविष्णुपदीस्मृता॥
इत्येवं कथितं सर्वं गंगोपाख्यानमुत्तमम् ।
सुखदं मोक्षदं सारं किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ॥ १४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद संवादे गंगोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ।

# द्वादशोऽध्यायः

## गङ्गाया विवाहः ।

नारद उवाच ।

लक्ष्मीः सरस्वती गंगा तुलसी लोकपावनी । एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रियाः इति
गंगा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया । कथं सा तस्य पत्नी न बभूवेति न च श्रुतम्

नारायण उवाच ।

गंगा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाज्जगतांविधिः । गत्वोवाच तत्सार्द्धं प्रणम्य जगदीश्वरम्

ब्रह्मोवाच ।

राधाकृष्णांगसम्भूता या देवी द्रवरूपिणी । तदधिष्ठातृदेवीयं रूपेणा प्रतिमा भुवि ॥
नवयौवनसम्पन्ना सुशीला सुन्दरी वरा । शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहङ्कारवर्जिता ॥
तदंगसम्भवा नान्यं वृणोतीयञ्च तं विना । तत्रापि मानिनी राधा महातेजस्विनी वरा
समुद्यता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम् । विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः
सर्वे विशुष्कं गोलोकं दृष्ट्वाहमगमन्तदा । गोलोकं यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तप्राप्तये

सर्वान्तरात्मा सर्वं नो ज्ञात्वाभिप्रायमेव च ।
वहिश्चकार गङ्गाञ्च पादांगुष्ठनखाग्रतः ॥ ६ ॥

त्वास्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम् । संप्रणम्य च राधेशं गृहीत्वात्रागमं विभो
गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम् । सुरेश्वरस्त्वं रसिक रसिका रसभावतः ।

एवं रत्नं पुंसु देवेषु स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियंसती ।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ १२ ॥

उपस्थिताञ्च यः कन्यां न गृह्णातिमदेन च । तं विहायमहालक्ष्मीरुष्टायाति न संशयः ।

यो भवेत् पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते ।
सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः ॥ १४ ॥

त्वमेव भगवानाद्यो निर्गुणः प्रकृतेः परः । अर्द्धाङ्गो द्विभुजः कृष्णोऽप्यर्द्धांगेन चतुर्भुजः

कृष्णवामांशसम्भूता बभूवराधिका पुरा । दक्षिणांशास्वयंसाच वामांशा कमला यथा
तेन त्वां सा वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसम्भवा । एकांगश्चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषः ।

इत्येवमुक्त्वा धाता च तां समर्प्य जगाम सः ।
गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम् ॥ १८ ॥

त्वां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । रेमे रमापतिस्तत्र गंगया सहितोमुदा ।

गां पृथ्वीञ्च गता यस्मात् स्वस्थानं पुनरागता ।
निर्गता विष्णुपादाच्च गङ्गा विष्णुपदी स्मृता ॥ २० ॥

च्छां सम्प्राप सा देवी नवसंगममात्रतः । रसिका सुखसम्भोगाद्रसिकेश्वरसंयुता
दृष्ट्वा दुःखिता वाणी सा पद्मेर्याचिवर्जिता । नित्यमीर्ष्यतितांवाणीनचगङ्गासरस्वती
ङ्गया सहितस्यैव तिस्रो भार्य्या रमापतेः । सार्द्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रस्तां बभूविरे
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गङ्गोपाख्यानं नाम
द्वादशोऽध्यायः ।

---

# त्रयोदशोऽध्यायः

## तुलस्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह । तुलसी कुत्रसम्भूताकावासापूर्वजन्मनि ॥
कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्यातपस्विनी । केनवातपसासावसंप्रापप्रकृतेः परम् ।
निर्विकल्पं निरीहञ्च सर्वसाक्षिस्वरूपकम् । नारायणं परं ब्रह्म परमात्मनमीश्वरम् ॥३॥
सर्वाराध्यञ्च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम् । सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम् ॥४॥
कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह । कथं साप्यसुरग्रस्ता संबभूव तपस्विनी ॥ ५ ॥
सन्दिग्धं मे मनो लोलं प्रेरयेन्मां मुहुर्मुहुः । छेत्तुमर्हसि सन्देहं सर्वसन्देहभञ्जनं ॥ ६ ॥

नारायण उवाच ।

मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान् वैष्णवः शुचिः । यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः ॥
तत्पुत्रो धर्मसावर्णिर्विष्णुर्वैष्णवः शुचिः । तत्पुत्रो विष्णुसावर्णिर्वैष्णवश्च जितेन्द्रियः ।
तत्पुत्रो देवसावर्णिः विष्णुव्रतपरायणः । तत्पुत्रो राजसावर्णिः महाविष्णुपरायणः ॥
वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः । यस्याश्रमे स्वयं शम्भुरासीद्देवयुगत्रयम् ॥१०॥
पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिन् शिवस्य च । न च नारायणं मेने न च लक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥
पूजाञ्च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः । भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तो बभञ्ज ह ॥
माघे सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः । यज्ञञ्च विष्णुपूजाञ्च निनिन्द न चकार सः ॥
न कोऽपि देवो भूपेन्द्रं शशाप शिवकारणात् । भ्रष्टश्रीर्भव भूपेति शशाप तं दिवाकरः ॥
शूलं गृहीत्वा तं सूर्यं दधार शङ्करः स्वयम् । पित्रा सार्द्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥
शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा । ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठञ्च ययौ भिया ॥
शूलं गृहीत्वा तं सूर्यं दधार शङ्करः स्वयम् । ब्रह्मकश्यपमार्तण्डाः संत्रस्ताः शुष्कतालुकाः ।
नारायणञ्च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया । मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः ॥
सर्वं निवेदनञ्चक्रुर्भयस्य कारणं हरेः ॥१६॥
नारायणश्च कृपया तेभ्यो हि अभयं ददौ । स्थिरा भवत हे भीता भयं किं वो मयि स्थिते ॥
स्मरन्ति ये यत्र तत्र मां विपत्तौ भयान्विताः । तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः ॥
पाताहं जगतां देवाः कर्ताहं सततं सदा । स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः ॥२२॥
शिवोऽहं त्वमहञ्चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः । विधाय नानारूपञ्च करोमि सृष्टिपालनम् ।
यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः ।
अद्यप्रभृति वो नास्ति मद्वरात् शङ्कराद्भयम् ॥ २४ ॥
आशुतोषः स भगवान् शङ्करश्च सतां गतिः । भक्ताधीनश्च भक्तेशो भक्तात्मा भक्तवत्सलः ।
सुदर्शनं शिवश्चैव मम प्राणाधिकप्रियौ । ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः ।
स्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटिञ्च लीलया । कोटिञ्च ब्रह्मणामेवं किमसाध्यं च शूलिनः ।
[illegible] । मन्नाम मद्गुणं भक्त्या पंचवक्त्रेण गीयते ।

त्वं चिन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम् । ये यथामां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम्
स्वरूपो भगवान् शिवाधिष्ठातृदेवकः । शिवी भवतितस्माच्चशिवंतेन विदुर्बुधाः ।
अन्तरे तत्राजगाम शङ्करः स्वयम् । शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपंकजलोचनः ।३१।
द्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः । ननामभक्त्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम् ।
हासनस्थञ्च रत्नालङ्कारभूषितम् । किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम् ॥
नवीननीरदश्यामं सुन्दरञ्च चतुर्भुजम् ।
चतुर्भुजैः सेवितञ्च श्वेतचामरवायुना ॥ ३४ ॥
र्चितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससा । लक्ष्मीप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तञ्च नारद ॥ ३५॥
रीनृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा । ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥३६
म महादेवो ब्रह्माणञ्च ननाम सः । ननाम सूर्यो भक्त्या च संत्रस्तश्चन्द्रशेखरम् ॥
श्च महामत्तया तुष्टाव च ननाम च । शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने ॥
तं सुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम् । श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः ॥
सत्त्वसंसर्गात् प्रसन्नं सस्मितंमुदा । स्तूयमानं पञ्चवक्त्रैः परं नारायणं विभुम्
। प्रसन्नात्मा प्रसन्नं सुरसंसदि । पीयूषतुल्यं मधुरं वचनं सुमनोहरम् ॥ ४१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पुपहास्यञ्चशिवप्रश्नं शिवेशिवम् । लौकिकंवैदिकंप्रश्नं त्वांपृच्छामितथापिशम् ॥
ञ्ञदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । सम्पत्प्रश्नं तपःप्रश्नमयोग्यं त्वाञ्च साम्प्रतम् ।
वे सर्वेशे ज्ञानं पृच्छामि किं वृथा । निरापदि विपत्प्रश्नमलं मृत्युञ्जये हरे ॥
गाधनं प्रश्नमलं स्वाश्रयमागमे । आगतोऽसिकथं ब्रह्म इत्येवं वद कारणम् ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

नु मद्भक्तं मम प्राणाधिकप्रियम् । सूर्यः शशाप इतिमे कारणं त्रासकोपयोः ॥
त्यशोकेन सूर्यं हन्तुं समुद्यतः । स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च सूर्यश्च विधिस्त्वयि ।
शरणापन्ना ध्यानेन वचसापि या । निरापदस्ते निःशङ्काजरामृत्युश्च तैर्जितः।
शरणापन्नास्तत्फलं किंवदामिभोः । हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदासदा॥

किं मे भक्तस्य भविता सत्यं ब्रूहि जगत्प्रभो । श्रीहत्वयांस्य मृत्युस्य सूर्यशापेनहेतुना
श्रीभगवानुवाच ।
कालोऽतिबलो दैवेन गुणानामेकविरतिः । वैकुण्ठे घटिकार्द्धेन शीघ्रं यायां नृपालयम्
नृपध्वजो मृतः कालात् दुर्निवार्य्यात सुदारुणात् ।
हंसध्वजश्च तत्पुत्रो मृतःसोऽपि श्रिया हतः ॥ ५२ ॥
तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ । हतश्रियौ सूर्यशापात्तौ च परमवैष्णवौ
राज्यभ्रष्टौश्रियाभ्रष्टौ कमलातापसावुभौ । तयोश्चभार्य्ययोर्लक्ष्मीः कलयावजनिष्यति
सम्पद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः । मृतस्ते सेवकःशम्भो गच्छयूयश्च गच्छ
इत्युक्त्वाच सलक्ष्मीकः सभातोऽप्यन्तरं गतः । देवाजग्मुश्च संहृष्टाः स्वाश्रमं परमंमु
शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमं ययौ ॥ ५७ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
त्रयोदशोऽध्यायः ।

---

## चतुर्दशोऽध्यायः

### वेदवत्याश्चरित्रम् ।

नारायण उवाच ।
लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने । वरमिष्टञ्च प्रत्येकं संप्रापतुरभीप्सितम् ।
महालक्ष्म्या वरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः । धनवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ २
कुशध्वजस्यपत्नी च देवी मालावतीसती । सासुषावच कालेन कमलांशांसुतांसतीम् ।
साच भूमिष्ठमात्रेण ज्ञानयुक्ता बभूव ह । कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहे ।
वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका । तस्मात्ताञ्च वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः ।



जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम्। सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा ॥ ६ ॥
एकमन्वन्तरञ्चैव पुष्करैव तपस्विनी। अत्युग्राञ्च तपस्याञ्च लीलया च चकार सा॥७॥
तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता। शुश्राव खे च सहसा सा वाचमशरीरिणीम् ॥
जन्मान्तरेतेभर्त्ता च भविष्यतिहरिःस्वयम्। ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसिसुन्दरि
इति श्रुत्वा तु सा रुष्टा चकार च पुनस्तपः। अतीवनिर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने ॥१०
तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वास्य समुवाससा। ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम् ॥
दृष्ट्वा सातिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौकिल। सुस्वादुफलमूलञ्च जलञ्चापि सुशीतलम्
तच्च भुक्त्वासपापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः। चकारप्रश्नमितितांकात्वं कल्याणि चेति च
ताञ्चदृष्ट्वा वरारोहा पीनोन्नतपयोधराम्। शरत्पद्मोत्सवास्याञ्च सस्मितांसुदतींसतीम्॥
मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीड़ितः। तां करेण समाकृष्य शृङ्गारं कर्त्तुमुद्यतः ॥
सा सती कोपदृष्ट्याच स्तम्भितं तञ्चकार ह। शशाप च मदर्थे त्वं विलङ्घसि सबान्धवः
स्पृष्टाहञ्च त्वया कामाद्विसृजाम्यवलोकय। स जड़ो हस्तपादैश्च किञ्चद्वक्तुं न च क्षमः॥
तुष्टाव मनसा देवीं पद्मांशां पद्मलोचनाम्। सा तत्स्तवेन सन्तुष्टा प्रकृतं तच्चकार ह ॥
इत्युक्त्वा साच योगेन देहत्यागं चकार ह। गङ्गायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणोययौ
अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वा मयाधुना। इति संचिन्त्य संस्मृत्य विललाप पुनः पुनः
सा च कालान्तरे साध्वी बभूवजनकात्मजा। सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणोहतः
महातपस्विनी साच तपसा पूर्वजन्मनः। लेभे रामञ्च भर्त्तारं परिपूर्णतमं हरिम् ॥ २२॥
संप्राप्य तपसाराध्य स्वामिनञ्च जगत्पतिम्। सा रमा सुचिरं रैमे रामेण सह सुन्दरी।
जातिस्मरा च स्मरति तपसश्च क्रमं पुरा। सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखञ्चापि सुखं लभेत्
नानाप्रकारविभवञ्चकार सुचिरं सती। सम्प्राप्य सुकुमारन्तमतीवनवयौवनम् ॥ २५ ॥
गुणिनं रसिकं शान्तं कान्तवेशमनुत्तमम्। स्त्रीणां मनोज्ञं सुचिरं तथा लेभेयथेप्सितम्
पितृसत्यपालनार्थं सत्यसन्धो रघूत्तमः। जगाम काननं पश्चात् कालेन च बलीयसा॥
तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च। ददर्श तत्र वह्निञ्च विप्ररूपधरं हरिः ॥ २८॥
रामं दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह। उवाच किञ्चिद् सत्येष्टं सत्यं सत्यपारायणः

वह्निरुवाच।

भगवन् श्रूयतां वाक्यं कालेन यदुपस्थितम्। सीताहरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः॥ दैवञ्च दुर्निवार्य्यञ्च न च दैवात्परं बलम्। मत्प्रसूं मयि संन्यस्य छायां रक्षान्तिकेऽधुना॥ दास्यामि सीतां तुभ्यञ्च परीक्षासमये पुनः। देवैः प्रस्थापितोऽहञ्च न च विप्रो हुताशनः॥ रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम्। स्वीचकार च स्वच्छन्दं हृदयेन विदूयता॥ वह्निर्योगेन सीताया मायासीतां चकार ह। तत्तुल्यगुणरूपां तां ददौ रामाय नारद॥

सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषिध्य च।
लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा॥ ३५॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कनकं मृगम्। सीता तं प्रेरयामास तदर्थं यत्नपूर्वकम्॥३६॥ संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने। स्वयं जगाम हन्तुं तं विव्याध सायकेन च॥ लक्ष्मणेति च शब्दञ्च कृत्वा च मायया मृगः। प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन्॥ मृगरूपं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च। रत्ननिर्माणयानेन वैकुण्ठं स जगाम ह॥३९॥ वैकुण्ठद्वारे द्वार्य्यासीत् किङ्करो द्वारपालयोः। जयाविजययोश्चैव बलवांश्च जिताभिधः॥ शापेन सनकादीनां सम्प्राप्य राक्षसीं तनुम्। पुनर्जगाम तद्द्वारमादौ स द्वारपालयोः॥ अथ शब्दञ्च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम्। सीता तं प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसन्निधौ॥ गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः। सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया॥ विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम्। तूर्णञ्च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः॥ मूर्च्छां सम्प्राप्य सुचिरं विललाप भृशं पुनः। पुनर्बभ्राम गहने तदन्वेषणपूर्वकम्॥४५॥ काले संप्राप्य तद्वार्तां पक्षिद्वारा नदीतटे। सहायं वानरं कृत्वा बबन्ध सागरं हरिः॥ लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च। सबान्धवं रावणञ्च सीतां सम्प्राप दुःखिताम्॥ ताञ्च वह्निपरीक्षाञ्च कारयामास सत्वरम्। हुताशनस्तत्र काले वास्तवीं जानकीं ददौ॥ उवाच छाया वह्निञ्च रामञ्च विनयान्विता। करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे॥

वह्निरुवाच।

उ तपसे देवि ! पुष्करञ्च सुपुण्यदम्। कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यति

सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः । दिव्यं त्रिलक्षवर्षञ्च स्वर्गे लक्ष्मीर्बभूव
सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा । कामिनी पाण्डवानाञ्च द्रौपदी द्रुपदात्म
कृते युगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा । त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मज
तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा । त्रिहायणीति सा प्रोक्ता विद्यमाना युग

नारद उवाच ।

प्रियाः पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुङ्गव । इति मे चित्तसन्देहं भञ्ज सन्देहभञ्जन ॥

नारायण उवाच ।

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं संप्राप नारद । रूपयौवनसम्पन्ना छाया च बहुचिन्ति
रामाग्न्योराज्ञया तप्त्वा ययाचे शङ्करं वरम् । कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुन
पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन । पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारञ्चकार
शिवस्तत्प्रार्थनं श्रुत्वा सस्मितो रसिकेश्वरः । प्रिये तव प्रियाः पञ्च भवन्तीतिव
तेन सा पाण्डवानाञ्च बभूव कामिनी प्रिया । इत्येवं कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तव

अथ संप्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम् ।
विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वाऽयोध्यां ययौ पुनः ॥ ६१ ॥

एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यञ्च भारते । जगाम सर्वलोकैश्च सार्द्धं वैकुण्ठमेव
कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा । कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाश
सततं मूर्त्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च । सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती
कुशध्वजसुताख्यानमुक्तं संक्षेपतस्तव । धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्यान
वेदवतीप्रस्तावे चतुर्दशोऽध्यायः ।

# पञ्चदशोऽध्यायः

## धर्मध्वजपत्न्यां माधव्यां तुलस्या जन्म ।

### नारायण उवाच ।

धर्मध्वजस्य पत्नी च माधवीति च विश्रुता । नृपेण सार्धं सा रामा रेमे च गन्धमादने
शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गी पुष्पचन्दनवायुना ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी रत्नभूषणभूषिता । कामुकी रसिकश्रेष्ठा रसिकेन च संयुता ॥ ३ ॥
सुरतेर्विरतिर्नास्ति तयोः सुरतविज्ञयोः । गतं वर्षशतं दैवं तौ न ज्ञातौ दिवानिशम् ।

ततो रजोमतिं प्राप्य सुरताद्विरराम सः ।
कामुकी सुन्दरी किञ्चिन् न च तृप्तिं जगाम सा ॥ ५ ॥

दधार गर्भं सा सद्यो दैवाब्दशतकं सती । श्रीगर्भा श्रीयुता सा च संबभूव दिने दिने ।
शुभक्षणे शुभदिने शुभयोगेन संयुते । शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिगृहान्विते ॥ ७ ॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्च सितवारे च पद्मजे । सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं सुमनोहराम् ॥
पादपद्मयुगे चैव पद्मरागविराजिताम् । राजराजेश्वरीलक्ष्मीं सर्वाङ्गभंगिमायुताम् ॥
राजलक्ष्मीलक्ष्मयुक्तां राजलक्ष्म्यधिदेवताम् । शरत्पार्वणचन्द्राभ्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्
पक्वबिम्बाधरोष्ठीञ्च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम् । हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिमनोरमाम्
तदधस्त्रिवलीयुक्तां नितम्बयुग्मवर्त्तुलाम् । शीते सुखोष्णसर्वाङ्गीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम्
श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमण्डलाम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां सुन्दरीष्वेकसुन्दरीम्
नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः । तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदन्ति पुराविदः ।
सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्या स्त्रीप्रकृतिर्यथा । सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम् ।१५।
तत्र दैवाब्दलक्षञ्च चकार परमन्तपः । मम नारायणस्वामी भवितेति च निश्चिता ।१६।

ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयावस्था च प्रावृषि ।
श्मशानस्था वृष्टिधारां सहन्तीति दिवानिशम् ॥ १७ ॥

विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा । त्रिंशत्शतसहस्राब्दं पत्राहारा तपस्विन
चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वायुहारा कृशोदरी । ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव स
निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः । समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रम
चतुर्मुखञ्च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम् । तामुवाच जगत्कर्त्ता विधाता जगताम

ब्रह्मोवाच ।

वरं वृणुष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम् । हरिभक्तिञ्च मुक्तिं वाप्यजरामरताम

तुलस्युवाच ।

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम् ।
सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम साम्प्रतम् ॥ २३ ॥
अहं च तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा ।
कृष्णप्रिया किङ्करी च तदंशा तत्सखी प्रिया ॥ २४ ॥

गोविन्देन सहासक्तामतृप्तां माञ्च मूर्च्छिताम् । रासेश्वरीसमागत्य ददर्श रासमण्ड
गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुषान्विता । याहित्वं मानवींयोनिमित्येवञ्चपि
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं त्वं चतुर्भुजम् । लभिष्यसितपस्तप्त्वाभारतेब्रह्मणो
इत्येवमुक्त्वादेवेशोऽप्यन्तर्धानंचकारसः । देव्या भियातनुंत्यक्त्वालब्धंजन्ममयाभु
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम् । साम्प्रतं लब्धुमिच्छामि वरमेवञ्च देहि

ब्रह्मोवाच ।

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः । तदंशश्चातितेजस्वी लेभे जन्म भा
साम्प्रतं राधिकाशापद्दनुवंशसमुद्भवः । शङ्खचूड़ इति ख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्
गोलोकेत्वां पुरादृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः । विलङ्घितुं न शशाकराधिकायाः प्रभा
सचजातिस्मरस्तत्त्वा त्वांल्लाभवरेणच । ज्ञातिस्मरापित्वमपिसर्वं ज्ञानासिसुन्
अधुनातस्यपत्नी च भव भाविनिशोभने । पश्चान्नारायणं कान्तं शान्तमेव लभिष
शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः । भविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपा
प्रधानासर्वपुष्पाणांविष्णुप्राणाधिकाभवेत् । त्वयाविनाचसर्वेषांपूजाचविफलाभ

वृन्दावनेवृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीतिच । तन्पत्रैर्गोपिकागोपाः पूजयिष्यन्तिमाधवम
वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्द्धं कृष्णेन सन्ततम् । विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दं मद्वरेण च
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा । प्रणनाम च ब्रह्माणं तञ्च किञ्चिदुवाच ह

तुलस्युवाच ।

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे । सत्यंब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भु
भग्नसाहञ्च गोविन्दे दैवात् शृङ्गारभङ्गतः । गोविन्दस्यैव वचनात् प्रार्थयामिचतुर्भुजम
तत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम् । ध्रुवमेवं लभिष्यामि राधाभीति प्रमोचय

ब्रह्मोवाच ।

गृहाण राधिकामन्त्रं ददामि षोड़शाक्षरम् । तस्याश्च प्राणतुल्यात्वं मद्वरेणभविष्यसि
शृङ्गारंयुवयोर्गोप्यमाज्ञास्यतिचराधिका । राधासमात्वं शुभगागोविन्दस्यभविष्यसि
इत्येवमुक्त्वादत्त्वाच देव्याश्च षोड़शाक्षरम् । मन्त्रंतस्यै जगद्धाता स्तोत्रञ्चकवचंपरम्॥
सर्वं पूजाविधानञ्च पुरश्चर्याविधिक्रमम् । परं शुभाशिषं कृत्वा सोऽन्तर्द्धानञ्चकारह॥
सा च ब्रह्मोपदेशेन पुण्ये बदरिकाश्रमे । जजाप परमं मन्त्रं यदिदं पूर्वजन्मतः ॥ ४१ ॥
दिव्यं द्वादशवर्षञ्च पूजाञ्चैव चकार सा । बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रत्यादेशमाप च॥
सिद्धे तपसि मन्त्रेच वरं प्राप्य यथेप्सितम् । बुभुजे च महाभागं यद्विश्वेषु सुदुर्लभम् ।
प्रसन्नमानसादेवी तत्याज तपसः क्लमम् । सिद्धे फले नराणाञ्च दुःखञ्च सुखमुत्तमम्॥
भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनञ्च चकार सा । तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
तुलसीवरप्रदानं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

---

# षोड़शोऽध्यायः

## तुलस्या सह शङ्खचूड़स्य मेलनं कथोपकथनञ्च ।

नारायण उवाच ।

तुलसी परितुष्टा च सुखापहृष्टमानसा । नवयौवनसम्पन्ना प्रशंसन्ती वराङ्गना ॥
चिक्षेप पञ्चबाणश्च पञ्चबाणांश्च तां प्रति । पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचर्चित
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी कम्पितारक्तलोचना । क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप
क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्द्रां सुखावहाम् । क्षणं सा दाहनं प्राप क्षणं प्राप प्रमत्त
क्षणंसाचेतनांप्रापक्षणं प्रापविषण्णताम् । उत्तिष्ठन्तीक्षणंतल्पाद् गच्छन्तीनिकटंक्ष
भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगाद्विवसन्ती क्षणं पुनः । क्षणमेव समुद्वेगात् सुष्वाप पुनरेव स
पुष्पचन्दनतल्पञ्च तद् बभूवातिकण्टकम् । विषमाहारसुस्वादु दिव्यरूपं फलंजल
निलयश्च निराकारः सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः । सिन्दूरपत्रकञ्चैव व्रणतुल्यञ्च दुःखदम्
क्षणं ददर्श तन्द्रायां सुवेशं पुरुषं सती । सुन्दरञ्च युवानञ्च सस्मितं रसिकेश्वरम् ।
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । आगच्छन्तं माल्यवन्तं पश्यन्तं तन्मुखाम्बु
कथयन्तं रतिकथां चुम्बन्तमधरं मुहुः । शयानवन्तं तल्पे च समाश्लिष्यन्तमालिङ्ग
पुनरेव तु गच्छन्तमायच्छन्तं वसन्तकम् । कान्त क्व यासि प्राणेश तिष्ठेत्येवमुवाच
पुनः स्वचेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः । एवं तपोवने सा च तस्थौ तत्रैव ना

शङ्खचूड़ो महायोगी जैगीषव्यान्मनोरमम् ।
कृष्णस्य मन्त्रं सम्प्राप्य कृत्वा सिद्धिन्तु पुष्करे ॥ १४ ॥

कवचञ्च गले बद्ध्वा सर्वमङ्गलमङ्गलम् । ब्रह्मणश्च वरं प्राप्य यत्तन्मनसि वाञ्छि
आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीञ्च समाययौ ॥ १६ ॥

आगच्छन्तं शङ्खचूड़ं ददर्श तुलसी मुने । नवयौवनसम्पन्नं कामदेवसमप्रभम् ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्

रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥२१॥
पारिजातप्रसूनानां माल्यवन्तञ्च सस्मितम् । कस्तूरीकुङ्कुमयुतं सुगन्धिचन्दनान्वितम् ।
सा दृष्ट्वा सन्निधाने तं मुखमाच्छाद्य वाससा । सस्मितालं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनः पुनः
बभूवातिनम्रमुखी नवसङ्गमलज्जिता । कामुकी कामबाणेन पीडिता पुलकान्विता ॥२२
पिबन्ती तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्याञ्च सन्ततम् । ददर्श शङ्खचूडश्च कन्यामेकां तपोवने॥

पुष्पचन्दनतल्पस्थां वसन्तीं वाससावृताम् ।
पश्यन्तीं तन्मुखं शश्वत् सस्मितां सुमनोहराम् ॥ २४ ॥

सुपीनकठिनश्रोणीं पीनोन्नतपयोधराम् । मुक्तापङ्क्तिप्रभामुष्टदन्तपङ्क्तिसुबिभ्रतीम् ॥
पक्वबिम्बाधरोष्ठीञ्च सुनासां सुन्दरीं वराम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभां शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥
स्वतेजसा परिवृतां सुखदृश्यां मनोरमाम् । कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनबिन्दुना

सिन्दूरबिन्दुना शश्वत् सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम् ।
निम्ननाभिगभीराञ्च तदधस्त्रिवलीयुताम् ॥ २८ ॥

करपद्मतलारक्तां नखचन्द्रैर्विभूषिताम् । स्थलपद्मप्रभायुक्तं पादपद्मञ्च बिभ्रतीम् ॥ २९ ॥
आरक्तवर्णं ललितमलक्तकसमप्रभम् । ऊर्द्ध्वपद्मस्थलपद्मपद्मराजविराजिताम् ॥ ३० ॥
शरदिन्दुविनिन्द्यैकनखेन्दुराजिराजिताम् । अमूल्यरत्ननिर्माणपाशकावलिसंयुताम् ॥३१

मणीन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम् ॥ ३२ ॥

दधतीं कवरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम् । अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिरूपिणा ॥३३॥
चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिताम् । रत्नेन्द्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलोज्ज्वलाम्
रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषिताम् । रत्नाङ्गुरीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्यावलिराजिताम् ॥ ३५ ॥
दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुदतींसतीम् । उवास तत्समीपे च मधुरंतामुवाच सः

शङ्खचूड उवाच ।

का त्वमत्र कस्य कन्या धन्ये मान्ये सुयोषिताम् ।
का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि ॥ ३७ ॥

स्वर्गभोगादिसारेति विहारे हाररूपिणि । संसारदारसारे च मायाधारे मनोहरे ॥३८॥

जगद्विलक्षणे क्षामे मुनीन्द्रमोहकारिणि । मौनीभूते किङ्करं मां सम्भाषां कुरु सुन्दरि॥
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना । सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा॥

तुलस्युवाच ।

धर्मध्वजसुताऽहञ्च तपस्यायां तपोवने । तपस्विनीह तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम्
कामिनीकुलजाताञ्च रहस्ये कामिनीं सतीम् । न पृच्छतिकुले जात एवमेव श्रुतौ श्रुतम्
लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः। येनाश्रुतःश्रुतेरर्थःसकामीच्छतिकामिनीम्
आपातमधुरामन्ते अन्तकां पुरुषस्य ताम् । विषकुम्भाकाररूपाममृतास्याञ्च सन्ततम् ॥
हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम् । स्वकार्य्यपरिनिष्पन्नतत्परां सततं सदा ॥
कार्य्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा । स्वान्तर्मलिनरूपाञ्च प्रसन्नवदनेक्षणाम् ॥
श्रुतौ पुराणे यासाञ्च चरित्रमनिरूपितम् । तासु को विश्वसेत् प्राज्ञो ह्यप्राज्ञ इवसर्वदा
तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयन्तीं नवं नवम् । दृष्ट्वा सुवेशं पुरुषमिच्छन्तीं हृदये सदा॥
बाह्ये स्वात्मसतीत्वञ्च ज्ञापयन्तीं प्रयत्नतः । शश्वत्कामाञ्चरामाञ्चकामाधारांमनोहराम्
बाह्ये छलाच्छादयन्तीं स्वान्तर्मैथुनलालसाम् ।
कान्तं ग्रसन्तीं रहसि बाह्येऽतीवसुलज्जिताम् ॥ ५० ॥

मानिनींमैथुनाभावेकोपिनींकलहाङ्कुराम् । संभीतांभूरिसम्भोगात् स्वल्पमैथुनदुःखिताम्
सुमिष्टान्नात् शीततोयादाकांक्षन्तीचमानसे । सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा
सुतात् परमतिस्नेहं कुर्वन्ती रतिकर्त्तरि । प्राणाधिकप्रियतमं सम्भोगकुशलं प्रियम् ॥
पश्यन्तीं रिपुतुल्यञ्च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम् । कलहं कुर्वती शश्वत् येन सार्द्धंसुकोपनाम्
वचसा भक्षयन्तीं तं वल्मीका इव गोरजः । दुःसाहसस्वरूपाञ्च सर्वदोषाश्रयां सदा ॥
शश्वत्कपटरूपाञ्चसर्वदोषाश्रयांसदा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनांदुस्त्याज्यांमोहरूपिणीम् ।
तपोमार्गार्गलां शश्वन्मुक्तिद्वारकवाटिकाम् ॥ ५७ ॥

हरेर्भक्तिव्यवहितां सर्वमायाकरण्डिकाम् । संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणीम् ॥
इन्द्रजालस्वरूपाञ्चमिथ्यावादिस्वरूपिणीम् । बिभ्रतीं बाह्यसौन्दर्य्यंमध्याङ्गमतिकुत्सितम्
नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम् । दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रक्ताक्तमसंस्कृतम् ।।६०॥

मायारूपं मायिनाञ्च विधिना निर्मितं पुरा । विषरूपं मुमुक्षूणामदृश्याञ्चैव स
इत्युक्त्वा तुलसी तत्र विरराम च नारद । सस्मितः शङ्खचूड़श्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ।

शङ्खचूड़ उवाच ।

त्वयायत्कथितं देविनच सर्वमलीककम् । किञ्चित्सत्यमलीकञ्चकिञ्चिन्मत्तोनि
निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपंसर्वमोहनम् । कृत्यारूपं वास्तवञ्च प्रशंस्यञ्चाप्रशं

लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिकम् ।
सृष्टिसूत्रस्वरूपञ्चाप्याद्यं स्रष्ट्रा तत् तु विनिर्मितम् ॥ ६९ ॥

एतासामंशरूपं यत् स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम् । तत् प्रशंस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलका
शतरूपा देवहूती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा । छायावती रोहिणी च वरुणानी शची
कुवेरवायुपत्नी साप्यदितिश्च दितिस्तथा । लोपामुद्रानसूया च कैटभी तुलसी त
अहल्यारुन्धती मेना तारा मन्दोदरी परा । दमयन्ती वेदवती गङ्गा च मनसा त
पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुन्धरा । षष्ठीमङ्गलचण्डीचमूर्त्तिश्चधर्मका

स्वस्तिः श्रद्धा च कान्तिश्च तुष्टिः कान्तिस्तथापरा ।
निद्रा तन्द्रा क्षुत् पिपासा सन्ध्या रात्रिर्दिनानि च ॥ ७१ ॥

सम्पत्तिर्धृतिर्कीर्त्तयश्च क्रियाशोभाप्रभांशिकम् । यत् स्त्रीरूपञ्च सम्भूतमुत्तमं तद्युगे
शून्यास्वरूपं तद् यत्तु स्वर्वेश्यादिकमेव च । तदप्रशंस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च
सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तच्च शुद्धं स्वभावतः । तदुत्तमञ्च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम्
तद् वास्तवञ्च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः । रजोरूपं तमोरूपं कृत्यासु द्विविधं स्मृ
स्थानाभावात् क्षणाभावान्मध्यवृत्तेरभावतः । देहक्लेशेन रोगेण सत्संसर्गेण सुन्दरि
बहुगोष्ठावृतेनैव रिपुराजभयेन च । रजोरूपस्य साध्वीत्वमेतेनैवोपजायते ॥ ७७
इदं मध्यमरूपञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः । तमोरूपं दुर्निवार्य्यमधमं तद् विदुर्बुधाः ॥७८

न पृच्छति कुले जातः पण्डितश्च परस्त्रियम् ॥ ७९ ॥

आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना । गान्धर्वेणविवाहेनत्वांग्रहीष्यामिशोभ
अहमेव शङ्खचूड़ो देवविद्रावकारकः । दनुवंशोद्भवो विश्वे सुदामाहं हरेः पुरे ॥ ८१

मत्स्मरस्तु गोपेषु गोगोपीपार्षदेषु च । अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः ॥८२॥
जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः । जातिस्मरा त्वं तुलसी संसक्ता हरिणा पुरा

त्वमेव राधिकाकोपात् जातासि भारते भुवि ।
त्वां सम्भोक्तुमिच्छुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः ॥ ८४ ॥

इत्येवमुक्त्वा स पुमान् विरराम महामुने । सस्मिता तुलसी हृष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥८५

तुलस्युवाच ।

एवंविधो बुधो विश्वे बुधेषु च प्रशंसितः । कान्तमेवंविधंकान्ता शश्वदिच्छति कामतः ।
त्वयाहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता । स निन्दितश्चाप्यशुचिर्यःपुमांश्च स्त्रिया जितः
निन्दन्ति पितरोदेवाबान्धवास्स्त्रीजितंजनम् । स्त्रीजितंमनसामाताप्यपिताभ्राताच निन्दति.
शुध्येद् विप्रो दशाहेन जातके मृतके तथा । भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः ८९॥
शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्वर्णसङ्करः । अशुचिः स्त्रीजितः शुद्धश्चितादाहनकालतः ९०॥
न गृह्णन्तीच्छयातस्य पितरःपिण्डतर्पणम् । न गृह्णन्तीच्छया देवास्तस्य पुष्पजलादिकम्
किं तस्य ज्ञानतपसा जपहोमप्रपूजनैः । किं विद्यया वा यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनोहृतम् ।
विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वञ्च परीक्षितः । कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनी वरम् ।
वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा । दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च ॥
अत्यन्तकोपयुक्ताय चात्यन्तदुर्मुखाय च । पङ्गुलायाङ्गहीनाय चान्धाय बधिराय च ॥
जडायचैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने । ब्रह्महत्यांलभेत् सोऽपियः स्वकन्यांददाति च ॥
शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च । वैष्णवायसुतां दत्त्वा दशवाजिफलंलभेत् ।
यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयंयदि । विपदा धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति ।
कन्यामूत्रपुरीषञ्च तत्र भक्षति पातकी । कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥९९॥
तदन्ते व्याधयोनौ च लभते जन्मनिश्चितम् । विक्रीणाति मांसभारं वहत्येवदिवानिशम् ।
इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोवने । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा तयोरन्तिकमाययौ ॥१०१
मूर्ध्ना ननाम तुलसी शङ्खचूडश्च नारद । उवास तत्र देवेशश्चोवाच च तयोर्हितम् ॥

किं करोमि [illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible]
यथा धरा धराहे च यथा मेना हिमालये । [illegible]
रोहिणीव यथा चन्द्रे यथा कामे [illegible] । [illegible]
यथाहल्या गौतमे च देवहूती च कर्दमे । [illegible]
यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने । [illegible]
देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती । [illegible]
अनेन सार्द्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि । [illegible]
पश्चात् प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेव च । [illegible]
इत्येवमाशिषं कृत्वा स्वालयं प्रययौ विधिः । [illegible]
स्वर्गे दुन्दुभिवाद्यञ्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह । स रेमे रमया सार्द्धं [illegible]
मूर्च्छां सम्प्राप तुलसी नवसङ्गमसंगता । निमग्ना निर्जने [illegible]
चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम् । कामशास्त्रे [illegible]
अंगप्रत्यंगसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम् । [illegible]
[illegible] सर्वजन्तुविवर्जिते । [illegible]

दन्तौष्ठपुटके ददौ दशनदंशनम् । तद्गण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम् ॥ १२६॥
विरतौ तौ च समुत्थाय परस्परम् । सुवेशश्चक्रतुस्तत्र यत्तन्मनसि वाञ्छितम् ॥
ृकचन्दनेन सा तस्मै तिलकं ददौ । सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम् १२८
सितञ्च ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी । पारिजातस्य कुसुमं माल्यञ्चैव सुशोभनम् ।
यरत्ननिर्माणमङ्गुरीयकमुत्तमम् । सुन्दरञ्च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१३०॥
तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनःपुनः । ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम्
ततान्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां पपौ पुनः । निमेषरहिताभ्याञ्च सकटाक्षञ्च सुन्दरम् ॥
ताञ्च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम् । सस्मितं वाससाच्छन्नं ददर्श मुखपङ्कजम् ।
य कठिने गण्डे बिम्बोष्ठे पुनरेव च । ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतञ्च यत् ॥
तदाहृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु विश्रुताम् ॥ १३४॥
ञ्जीरयुग्मञ्च स्वाहायाश्च हृतञ्च यत् । केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैवकुण्डलम् ।
यकरत्नानि रत्याश्च वरभूषणम् । शङ्खं सुरुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा ॥१३६॥
पीठकश्रेणीं शय्याञ्चापि सुदुर्लभाम् । भूषणानि च दत्वा च परीहारञ्चकार ह ॥
कवरीभारं तस्याश्च माल्यसंयुतम् । सुचित्रं पत्रकं गण्डे जयलेखसमं तथा ॥
त्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना । परितः परितश्चित्रैः सार्द्धं कुङ्कुमबिन्दुभिः ॥
दीपाकारञ्च सिन्दूरतिलकं ददौ । तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिन्दिते ॥१४०॥
क्तकरागञ्च नखरेषु ददौ मुदा । स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्तं सरागञ्चरणाम्बुजम् ॥
! तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनःपुनः । रत्ननिर्माणयानेन ताञ्च कृत्वा स्ववक्षसि॥
तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानान्तरं ययौ ॥१४२॥
वनिलये शैले शैले वने वने । स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्यानेऽतिनिर्जने ॥
कन्दरे सिन्धुतीरे च सुन्दरे वने । पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे ॥ १४४ ॥
लिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे । मधौ मधुकराणाञ्च मधुरध्वनिनादिते ॥१४५
न्दे सुपवने नन्दने गन्धमादने । देवोद्याने देववने चित्रे चन्दनकानने ॥१४६॥
ां केतकीनां माधवीनाञ्च माधवे । कुन्दानां मालतीनाञ्च कुमुदाम्भोजकानने ।

कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने घने । निर्जने काञ्चनीस्थाने धन्ये काञ्चनपर्वते ॥१
काञ्चीवने किञ्जके कञ्चके काञ्चनाकरे । पुष्पचन्दनतल्पेच पुंस्कोकिलरुतश्रुते ॥१४
पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना । कामुक्या कामुकः कामात् स रेमे रामया स
न तृप्तो दानवेन्द्रश्च तृप्तिर्नैव जगाम सा । हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः
तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः । रम्यक्रीडालयं कृत्वा विजहार पुनस्ततः
एवं संबुभुजे राज्यं शङ्खचूड़ः प्रतापवान् । एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो बली ॥१५
देवानामसुराणाञ्च दानवानाञ्चसन्ततम् । गन्धर्वाणां किन्नराणांराक्षसानाञ्चशास्तिदः
हताधिकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा ॥ १५५ ॥
पूजाहोमादिकंतेषां जहार विषयंबलात् । आश्रयंचाधिकारञ्च शस्त्रास्त्रभूषणादिकम्
निरुद्यमाः सुराः सर्वेचित्रपुत्तलिका यथा । तेच सर्वे विषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभा
वृत्तान्तं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः । तदा ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं जगाम शङ्करालयम्
सर्वं संकथयामास विधाता चन्द्रशेखरम् । ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्द्धं वैकुण्ठञ्चजगाम है
सुदुर्लभं परं धाम जरामृत्युहरं परम् । सम्प्राप्य वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो ॥ १६०॥
ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान् । शोभितान् पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥
वनमालान्वितान् सर्वान् श्यामसुन्दरविग्रहान् । शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान् ॥
सस्मितान्पद्मवक्त्रांश्चपद्मनेत्रान्मनोहरान् । ब्रह्मातान्कथयामासवृत्तान्तं गमनार्थकम् ॥
तेऽनुज्ञाञ्च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया ॥ १६४ ॥
एवञ्च षोड़शद्वाराणिरिक्ष्य कमलोद्भवः । देवैः सार्द्धं तानतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम् ॥
देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः । नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः ॥१६६
पूर्णेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्रां मनोहराम् । मणीन्द्रसारनिर्माणांहीरासारसुशोभिताम् ॥
अमूल्यरत्नरचितांरचितांस्वेच्छयाहरेः । माणिक्यमालाजालाढ्यांमुक्तापंक्तिविभूषिताम्॥
मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः ।
...श्चत्रैरेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम् । पद्मरागेन्द्ररचितैरचितांपद्मराजिभिः ॥१६९
... स्यमन्तकविनिर्मितैः । पट्टसूत्रग्रन्थियुतैश्चारुचन्दनपल्लवैः ॥१७०॥

इन्द्रनीलमणिस्तम्भैर्वेष्टितां सुमनोरमाम् । सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम् ॥
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम् । कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च सुगन्धिचन्दनद्रवैः ॥
सुसंस्कृतान्तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना । विद्याधरीसमूहानां सङ्गीतैश्च मनोहराम् ॥
सहस्रयोजनायामां परिपूर्णाञ्च किङ्करैः । ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शङ्करैश्च सुरैः सह ॥१७४
वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुंतारकावृतम् । अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥१७५
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं च चतुर्भुजम् ॥१७६
नवीननीरदश्यामं सुन्दरं सुमनोहरम् । अमूल्यरत्ननिर्माणसर्वभूषणभूषितम् ॥१७७॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं बिभ्रन्तं केलिपङ्कजम् । पुरतो नृत्यगीतञ्च पश्यन्तं सस्मितं मुदा ॥
शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् । भक्तप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम् ॥
गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः । सर्वैश्च स्तूयमानञ्च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः ॥
एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं विभुम् । ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा ॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राः सगद्गदाः । भक्त्यापरमयाभक्काभीतानम्रात्मकन्धराः ॥
पुटाञ्जलियुतो भूत्वा विधाता जगतामपि । वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः ॥
हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित् । प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यञ्च मनोहरम् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शङ्खचूड़स्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज । मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा ॥
सुराः शृणुत तत्सर्वमितिहासं पुरातनम् । गोलोकस्यैवचरितं पापघ्नं पुण्यकारणम् ॥
सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम । स प्राप दानवींयोनिंराधाशापात् सुदारुणात् ॥
तत्रैकदाहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम् । विहाय मानिनीं राधांममप्राणाधिकांपराम् ॥
सा मां विरजया सार्द्धं विज्ञाय किङ्करीमुखात् । पश्चात्क्रुधासाजगाममांददर्शचतत्रच ॥
विरजाञ्च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम् । पुनर्जगामसारुष्टास्वालयंसखीभिः सह ।
मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदामसहितं पुरा । भृशं मां भर्त्सयामासमौनीभूतञ्च सुस्थिरम् ॥
तच्छ्रुत्वा च सुमहांश्च सुदामातां चुकोप ह । सचतांभर्त्सयामासकोपेनममसन्निधौ ॥
तच्छ्रुत्वा सा कोपयुक्ता रक्तपङ्कजलोचना । बहिष्कर्तुंचकाराज्ञां संत्रस्ताममसंसदि ॥

सर्वात्मनः समुत्पन्नौ सूर्यातं तेजसोऽग्रजम्। वहिश्च कारं तं सूर्यं जगाम ब्रह्मणः पुनः॥
सा च तत्सुतनं धृत्वा समाप्ता शासनम्। गांहि रे दानवोऽयं निमित्तोऽनाशकं धनः॥
तं गच्छन्तं शासनश्च स्वर्गं तां प्रणम्य च। यास्यामास मा मुदा स्वर्गा कृपया पुनः॥
हे वत्स! मिथुनागच्छ शर्मात्तिघुनः पुनः। समुपार्थंगतः प्राप जगाम सान्तर्धिमितः॥
गोप्यश्च नः मुदः सर्वा गोपा स्वैर्निमुदः स्थिताः। तेनरं गणिकानामित्यत्र भाद्रयोर्विजनाम॥
भायास्यन्निश्चयार्थेन रत्नशालाम्यपालनम्। सुदामनन्तमिहागच्छेत्गुणानमा निवासिनः॥
गोलोकस्य क्षणार्धेन नैकमन्वन्तरं भवेत्। पृथिव्यां जगाम धातरिगेव पवनंभुवन्॥
स एव शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति। महाबलिष्ठो योगीशः सर्वमायाविशारदः॥
मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम्। शिवः करोतु संहारं मम शूलेन दानवम्॥
ममैव कवचं कण्ठे सर्वमङ्गलमङ्गलम्। बिभर्ति दानवः शश्वत्संसारविजयी ततः॥२०॥
तत्र ब्रह्मन् स्थिते कण्ठे न कोऽपि हिंसितुं क्षमः। मयाऽऽश्चाहिकरिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च॥
सतीत्वभङ्गस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति। तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया॥
तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम्। तत्क्षणेनैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः॥
पश्चात् सा देहमुत्सृज्य भविष्यति प्रिया मम। इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हरायच॥
शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरं मुदा। भारतञ्च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः॥२८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे षोडशोऽध्यायः।

---

## सप्तदशोऽध्यायः।

### शिवेन सह शङ्खचूडस्य युद्धार्थं पुष्पदन्तप्रेरणम्।

नारायण उवाच।

[illegible] : संनियोज्य संहारे दानवस्य च। जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं महामुने॥
[illegible] वटमूले मनोहरे। तत्र तस्थौ महादेवो देवनिस्तारहेतवे॥२॥

दूतं कृत्वा पुष्पदन्तं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम् । शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकं मुदा ॥
स चेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं वरम् । महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम् ॥४॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद्द्विगुणंमुने । स्फाटिकाकारमणिभिर्निर्माणमणिवेष्टितम् ।
सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम् ॥५॥
ज्वलदग्निनिभैः शश्वज्ज्वलितं रत्नकोटिभिः । युक्तञ्च वीथिशतकैर्मणिवेदिसमन्वितैः ॥
परितो वणिजां संघैर्नानावस्तुविराजितैः । सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्चविचित्रितैः ॥
भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः । गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं वरम् ॥८॥
अतीववलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम् । ज्वलदग्निशिखाभिश्च परिखाभिश्चतसृभिः ॥
सुदुर्गमञ्च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम् । अत्युच्चैर्गगनस्पर्शैर्मणिप्राचीरवेष्टितम् ॥१०॥
राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितैः । रत्नकृत्रिमपद्माढ्यैः रत्नदर्पणभूषितैः ।
मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमन्दिरैः ॥११॥
शोभितं रत्नसोपानैः रत्नस्तम्भविराजितैः ।
रत्नचित्रकपाटाढ्यैः सद्रत्नकलशान्वितैः । रत्नेन्द्रचित्रराजिभिः सुदीप्ताभिर्विराजितैः
परितो रक्षितं शश्वद्दानवैः शतकोटिभिः ।
दिव्यास्त्रधारिभिः शूरैर्महाबलपराक्रमैः । सुन्दरैश्च सुवेशैश्च नानालङ्कारभूषितैः ॥१३॥
तान् दृष्ट्वा पुष्पदन्तोऽपि वप्रद्वारं ददर्श सः । द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तञ्च सस्मितम्
तिष्ठन्तं पिङ्गलाक्षञ्च ताम्रवर्णं भयङ्करम् । कथयामास वृत्तान्तं जगाम तदनुज्ञया ॥१५
अतिक्रम्य नवद्वारं जगामाभ्यन्तरं पुरम् । न कैश्च रक्षितं श्रुत्वा दूतत्वं रणस्य च ॥१६
गत्वा सोऽभ्यन्तरं द्वारं द्वारपालमुवाच ह । रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयितुमीश्वरम् ॥
स च तं कथयित्वा च दूतं गन्तुमुवाच ह । स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श सुमनोहरम् ॥
सभामण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासनस्थितम् । मणीन्द्ररचितं चित्रं रत्नदण्डसमन्वितम् ॥
रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तं शोभितं सदा ।
भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम् ॥ २० ॥
सेवितं पार्षदगणैश्रंजनैः श्वेतचामरैः । सुवेशं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम् ॥ २१ ॥

माल्यानुलेपनं सूक्ष्मवस्त्रञ्च दधतं मुने। दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेशैश्च त्रिकोटिभिः॥
शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रधारिभिः। एवंभूतञ्च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः॥२३
उवाच रणवृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च॥ २४॥

पुष्पदन्त उवाच।

राजेन्द्र शिवदूतोऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो। यदुक्तं शङ्करेणैव तद् ब्रवीमि निशामय॥
राज्यं देहि च देवानामधिकारञ्च साम्प्रतम्। देवाश्च शरणापन्ना देवेशे श्रीहरौ परे॥२६
दत्त्वा त्रिशूलं हरिणा तव प्रस्थापितः शिवः। चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः॥
विषयं देहि तेषाञ्च युद्धं वा कुरु निश्चितम्। गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुं तद्भवान् वक्तुमर्हति॥
दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च। प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वञ्च गच्छेत्युवाच ह
स गत्वोवाच तूर्णं तं वटमूलस्थमीश्वरम्। शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं यत् परिच्छदम्॥
एतस्मिन्नन्तरे स्कन्द आजगाम शिवान्तिकम्। वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः
विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकम्पनः।
विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः॥ ३२॥
कपिलाक्षो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः॥ ३३॥
कालङ्कटो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः। बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा
अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादशाः स्मृताः। वसवो वासवाद्याश्च आदित्या द्वादश स्मृताः
हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ। कुबेरश्च यमश्चैव जयन्तो नलकूबरः॥३६
वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मङ्गलस्तथा। धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्यवान्॥
उग्रदंष्ट्रा चोग्रचण्डा कोटरी कैटभी तथा। स्वयं शतभुजा देवी भद्रकाली भयङ्करी॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता। रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना॥३९
नृत्यन्ती च हसन्ती च गायन्ती सुस्वरं मुदा। अभयं ददती भक्तमभया सा भयं रिपुम्
बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम्। खर्परं वर्तुलाकारं गभीरं योजनायतम्
त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिञ्च योजनायताम्। शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शरांश्चापं भयङ्करम्॥
मुद्गरं वज्रं खड्गं फलकमुज्ज्वलम्। वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वह्निञ्च नागपाशकम्॥

नारायणास्त्रं ब्रह्मास्त्रं गान्धर्वं गारुडं तथा । पार्जन्यञ्च पाशुपतं जृम्भणास्त्रञ्च पार्वतम्
माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं सम्मोहनन्तथा । अव्यर्थमस्त्रशतकं दिव्यास्त्रशतकं परम् ॥
आगत्य तत्र तस्थौ सा योगिनीनां त्रिकोटिभिः ।
सार्द्धं वै डाकिनीनाञ्च विकटानां त्रिकोटिभिः ॥ ४६ ॥
भूताःप्रेताः पिशाचाश्च कुष्माण्डाब्रह्मराक्षसाः । वेतालाश्चैव यक्षाश्चराक्षसाश्चैवकिन्नराः
ताभिश्चैव सह स्कन्दः प्रणम्य चन्द्रशेखरम् । पितुः पार्श्वे सभायाञ्चसमुवासभवाज्ञया
अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान् । उवाच तुलसीं वार्त्तां गत्वाभ्यन्तरमेव च ॥
रणवार्त्ताञ्च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता

तुलस्युवाच ।

हे प्राणनाथ हे बन्धो तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम् । हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवनंक्षणम्
भुङ्क्ष्व जन्मसमाधानं यद्वै मनसि वाञ्छितम् ।
पश्यामि त्वां क्षणं किञ्चिल्लोचनाभ्यां पिपासिता ॥ ५२ ॥
आन्दोलयन्ति प्राणा मे मनोदग्धञ्च सन्ततम् । दुःस्वप्नञ्च मया दृष्टश्चाद्यैव चरमे निशि
तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः । उवाच वचनं प्राज्ञोहितं सत्यंयथोचितम्

शङ्खचूड़ उवाच ।

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबन्धने । शुभं हर्षं सुखं दुःखं भयं शोकममङ्गलम् ॥५५
काले भवन्ति वृक्षाश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः । क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः
ते सर्वे फलिनः काले काले कालं प्रयान्ति च ।
भवन्ति काले भूतानि काले कालं प्रयान्ति च ॥ ५७ ॥
काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि ॥ ५८ ॥
काले सृजति स्रष्टा च पाता पाति च कालतः । संहर्त्ता संहरेत् कालेसञ्चरन्तिक्रमेणते
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतेः परः । स्रष्टा पाता च संहर्त्ता स कृत्स्नांशेन सर्वदा
काले स एव प्रकृतिंनिर्माय स्वेच्छया प्रभुः । निर्माय प्राकृतान्सर्वान्विश्वस्थांश्चराचरान्
आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं सर्वं कृत्रिममेव च । प्रभवन्ति च कालेन नश्यत्यपि हि नश्वरम् ॥

भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् । सर्वेशं सर्वरूपञ्च सर्वात्मानमधीश्वरम् ॥
जलं जलेन सृजति जलं पाति जलेन यः । हरेज्जलं जलेनैव तं कृष्णं भज सुन्दरम् ॥
यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च सन्ततम् । यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम् ॥
यथाक्षणं वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु । यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति भीतवत् ॥
मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम् । विधेर्विधातारं धातुश्च पालकं भजे ॥
संहर्तारञ्च संहर्तुं स्तं कृष्णं शरणं व्रज । कोऽत्र बन्धुश्च केषां वा सर्वबन्धुं भज प्रिये ॥
अहं को वा च त्वं काया विधिना योजितः पुरा । त्वया सार्द्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः ॥
अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ च न पण्डितः । सुखं दुःखं भ्रमत्येव चक्रनेमिक्रमेण च ॥
नारायणं तं सर्वेशं कान्तं प्राप्स्यसि निश्चितम् । तपः कृतं यदर्थं च पुरा वदरिकाश्रमे ॥
मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणश्च वरेण हि । हरेरर्थे तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि ॥
वृन्दावने च गोविन्दं गोलोके त्वं लभिष्यसि । अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम् ॥

तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वञ्च त्वां च द्रक्ष्यामि सन्ततम् ।
आगमं राधिकाशापात् भारतञ्च सुदुर्लभम् ॥ ७४ ॥

पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये । त्वं हि देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च ॥
तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कान्ते कातरा भव । इत्युक्त्वा च दिनान्ते च तया सार्द्धं मनोहरे ॥
सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते । नानाप्रकारविभवे चचार रत्नमन्दिरे ॥ ७७ ॥
रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम् । निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ॥

कृत्वा वक्षसि कान्तां तां रुदन्तीमतिदुःखिताम् ।
कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे ॥ ७६ ॥

पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित् । पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भाण्डीरे तत्त्वमुत्तमम् ॥
स च तस्यै ददौ तच्च सर्वशोकहरं परम् । ज्ञानं संप्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥
[illegible]श्चकार हर्षेण सर्वं मत्वातिनश्वरम् । तौ दम्पती च क्रीडार्त्तौ निमग्नौ सुखसागरे ॥
[illegible] मूर्च्छितौ निर्जने मुने । अङ्गप्रत्यङ्गसंयुक्तौ सुस्नातौ सुरतोत्सुकौ ॥
[illegible] च तथा तौ द्वौ चार्द्धनारीश्वरौ यथा । प्राणेश्वरञ्च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम् ॥

प्राणाधिकाञ्च तां मेने राजा प्राणाधिकेश्वरीम् ।
तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तन्द्रितौ सुन्दरौ समौ ॥ ८५ ॥
वेशौ सुखसम्भोगादचेष्टौ सुमनोहरौ । क्षणं सचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसा
कथां मनोहरां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः ॥ ८६ ॥
उक्तवन्तौ च ताम्बूलं प्रदत्तं च परस्परम् ॥ ८७ ॥
रस्परं सेवितौ च सुप्रीत्या श्वेतचामरैः । क्षणं शयानौ सानन्दौ वसन्तौ च क्ष
णं केलिनियुक्तौ च रसभावसमन्वितौ । सुरतेर्विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपण्डि
सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ ॥ ९० ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्य
तुलसीशङ्खचूडसम्भोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

---

# अष्टादशोऽध्यायः

## शिवेन सह युद्धार्थं शङ्खचूडस्य कथोपकथनम् ।

नारायण उवाच ।

श्रीकृष्णंमनसाध्यात्वा राजा कृष्णपरायणः । ब्राह्मेमुहूर्त्तउत्थाय पुष्पतल्पात्मन
रात्रिवासःपरित्यज्यस्नात्वामङ्गलवारिणा । धौतेचवाससीधृत्वाकृत्वातिलकमुज्ज
चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववन्दनम् । दध्याज्यं मधु लाजश्च ददर्श वस्तु मङ्गल
रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठञ्च काञ्चनम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यञ्च
अमूल्यरत्नं यत्किञ्चिन् मुक्तामाणिक्यहीरकम् । ददौ विप्राय गुरवे यात्रामङ्गलहे
गजरत्नमश्वरत्नं धेनुरत्नं मनोहरम् । ददौ सर्वं दरिद्राय विप्राय मङ्गलाय
भाण्डाराणां सहस्रञ्च नगराणां त्रिलक्षकम् । ग्रामाणां शतकोटिञ्च ब्राह्मणेभ्यो
पुत्रं कृत्वा राजेन्द्रे सुचन्द्रं दानवेषु च । पुत्रे समर्प्य भार्यांश्च राज्यञ्च सर्वस्व

प्रजानुजग्मुंगश्च माण्डाग्न्याहुतादिकम् । स्वयं रणस्तयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह
भृत्यद्वारा प्रजेपेण चकार सैन्यसञ्चयम् । अश्वानाञ्च त्रिलक्षेण गजलक्षेण हस्ति
रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः । त्रिकोटिभिर्चर्मिणाञ्च शूलिनाञ्च त्रिको
कृता सैनापतिमिता दानवेन्द्रेण नारद । तस्यां सैनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः
महारथः सविज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे । त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधि
त्रिंशदक्षौहिणीः पात्रभाण्डौघञ्च चकार ह । बहिर्बभूव शिविरान्मनसा श्रीहरिं स्मर
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमारुरोह सः । गुरुवर्गान् पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिक
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः । सिद्धाश्रमञ्च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रञ्च नाम
कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यक्षेत्रञ्च भारते । पश्चिमोदधि पूर्वे च मलयस्य च पश्चि
श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे । पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा त
शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा ॥ १८ ॥

लवणोदप्रियाभार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता । शुद्धस्फटिकसङ्काशा भारते च सुपुण्य
शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात् । गोमन्तं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोद
तत्र गत्वा शङ्खचूड़ो ददर्श चन्द्रशेखरम् । वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥
कृत्वा योगासनं स्थित्वा मुद्रायुक्तञ्च सस्मितम् । शुद्धस्फटिकसङ्काशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेज
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं जटाजालञ्च बिभ्रतम् ॥२
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रञ्च नागयज्ञोपवीतिनम् । मृत्युञ्जयं मृत्युमृत्युं विश्वमृत्युकरं परम्
भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोरमम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारणम् । विश्वनाथं विश्वरूपं विश्वबीजञ्च विश्वजम्
विश्वम्भरं विश्ववरं विश्वसंहारकारणम् । कारणं कारणानाञ्च नरकार्णवतारणम् ॥
ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् । अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ॥ २

शिरसाप्रणनाम सः । वामतो भद्रकालीञ्च स्कन्दञ्च तत् पुरःस्थित
काली स्कन्दश्च शङ्करः । उत्तस्थुर्दानवं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः
ग्रं स्तवमाप्नुतम् । राजा कृत्वा च सम्भाषामुवास शिवसन्निधौ

प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ॥ ३२ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

वेधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् । मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवश्चापि धार्मिकः ।
कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः । दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश
तास्वेका च दनुः साध्वी तत् सौभाग्येन च वर्द्धिता ।
चत्वारिंशद्दनोः पुत्राः दानवास्तेजसोज्ज्वलाः ॥३५॥
तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः । तत्पुत्रो धार्मिको दंभो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।
जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम् । शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम् । पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वपि तु धार्मिकः ॥
अधुना राधिकाशापात् भारते दानवेश्वरः । आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं भ्रमं मेने च वैष्णवः ॥
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यैकत्वं हरेरपि । दीयमानं न गृह्णन्ति वैष्णवाः सेवनं विना ॥
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः । इन्द्रत्वं वा कुबेरत्वं न मेने गणनासु च ॥
कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे । देहि राज्यञ्च देवानां मत्प्रीतिं कुरु भूमिप ।
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु स्वेपदे । अलं भ्रातृविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः ।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । ज्ञातिद्रोहस्य पापस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्
स्वसम्पदाञ्च हानिञ्च यदि राजेन्द्र मन्यसे ।
सर्वावस्थासु समता केषां याति च सर्वदा ॥ ४५ ॥
ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सति । आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभवेदीश्वरेच्छया ॥
ज्ञानं बुद्धिश्च तपसा स्मृतिर्लोकस्य निश्चितम् । करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च
परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रयः सदा । त्रिभागः सोऽपि त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः
एकभागः कलेः पूर्वे तद्ध्रासश्च क्रमेण च । कलामात्रं कलेः शेषे कुहां चन्द्रकला यथा
यादृक्तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक् शिशिरे पुनः । दिने च यादृङ्मध्याह्ने सायंप्रातर्न तत्समम्
उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च । प्रकाण्डतां च तत्पश्चात् कालेऽस्तं पुनरेव सः
दिने प्रच्छन्नतां याति काले च दुर्दिने घने । राहुग्रस्ते कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम् ॥

इयं ते महती लज्जा स्पर्द्धास्माभिः सहाधुना । ततोऽधिकाच्चसमरे कीर्त्तिहानिःपराजये
शङ्खचूड़वचः श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः । यथोचितं सुमधुरमुवाच दानवेश्वरम् ॥

श्री महादेव उवाच ।

युष्माभिः सह युद्धं मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः । का लज्जा महती राजन्नकीर्त्तिर्वा पराजये
युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च । हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप ॥७८ ॥
हिरण्याक्षस्य युद्धञ्च पुनस्तेन गदाभृता । त्रिपुरैः सह युद्धञ्च मया चापि पुराहृतम् ॥
सर्वेश्वर्य्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह । सह शुम्भादिभिः पूर्वं समरं परमाद्भुतम्
पार्षदप्रवरस्त्वञ्च कृष्णस्य परमात्मनः । ये ये हताश्च ते दैत्या नहि केऽपित्वया समाः
का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वयासह । सुराणां शरणस्यैव प्रेषितस्य हरेरहो ॥
देहि राज्यञ्च देवानां वाग्व्ययेकिंप्रयोजनम् । युद्धं त्वं कुरुमत्सार्द्धमितिमेनिश्चितंवचः
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद । उत्तस्थौ शङ्खचूड़श्च स्वामात्यैः सह सत्वरः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
शिवशङ्खचूड़संवादेऽष्टादशोऽध्यायः ।

---

## ऊनविंशोऽध्यायः

### देवानां सह शङ्खचूड़स्य युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेन्द्रः प्रतापवान् । समारुरोह यानञ्च स्वामात्यैः सह सत्वरः
बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दस्य शक्तिपीड़या । नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ॥
स्कन्दस्योपरि तत्रैव समरे च भयङ्करे । स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महदद्भुतमुल्बणम् ॥ ३ ॥
दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिकंलयम् । राजा विमानमारुह्य शरवर्षञ्चकारह ॥ ४ ॥
नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्षणं यथा । महान् घोरान्धकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव ह ॥

देवाः प्रदुद्रुवुर्भयेन सर्वे महेन्द्रादयस्तदा । एक एव कार्त्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि ॥
पर्वतानाञ्च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा । शश्वच्चकार वृष्टिञ्च दुर्वाराञ्च भयङ्करीम् ।
नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रच्छन्नः शिवनन्दनः । नीहारेण च सान्द्रेण संछन्नो भास्करो यथा ।
धनुश्चिच्छेद स्कन्दस्य दुर्वहञ्च भयङ्करम् । बभञ्ज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीडकान् ।
मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः । शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षसि घातिनीम् ।
क्षणं मूर्च्छां च संप्राप्य संलभ्य चेतनां पुनः । गृहीत्वा यानमनुदिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं यानमारुह्य कार्त्तिकः । शस्त्रमस्त्रं गृहीत्वा च चकार रणमुल्बणम् ॥
सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा । सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः
वह्निं निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान् । रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया ॥
सन्नाहं सारथिञ्चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम् । चिक्षेप शक्तिमुल्काभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि
मूर्च्छां संप्राप्य राजा च संलभ्य चेतनां पुनः । आरुह्य वै यानमन्यं धनुर्जग्राह सत्वरः
चकार शरजालञ्च मायया मायिनांवरः । गुहञ्चाच्छाद्य समरे शरजालेन नारद ॥१७॥
जग्राह शक्तिमव्यर्थां शतसूर्यसमप्रभाम् । प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोश्च तेजसावृताम्
चिक्षेप ताञ्च कोपेन महावेगेन कार्त्तिके । पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला ॥

मूर्च्छां संप्राप शक्त्या च कार्त्तिकेयो महाबलः ।
काली गृहीत्वा तं क्रोड़े निनाय शिवसन्निधौ ॥ २० ॥

शिवस्तञ्चापि ज्ञानेन जीवयामास लीलया । ददौ बलमनन्तञ्च सचोत्तस्थौ प्रतापवान् ॥
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः । दानवेन्द्रैः ससैन्यैश्च युद्धारम्भो बभूव ह ॥
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धञ्च वृषपर्वणा । भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः ।
दम्भेन सह चन्द्रश्च चकार समरं परम् । कालेश्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः ॥
कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च । भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ॥२५॥
कलविङ्केन वरुणश्चञ्चलेन समीरणः । बुधश्च घृतपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः ॥ २६ ॥
जयन्तो रत्नसारेण वसवोवर्चसांगणैः । अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूवरः ॥
धनुर्द्धरेण धर्मश्च मण्डूकाक्षेण मंगलः । शोभाकरेणैवेशानः पीठरेण च मन्मथः ॥२८॥

उल्कामुखेन धूम्रेण खड्गेनापि ध्वजेन च । काञ्चीमुखेन पिण्डेन धूम्रेण सह नन्दिना ।
विश्वेन च पलाशेन चादित्या युयुधुः परम् । एकादश महारुद्राश्चैकादशभयङ्करैः ॥
महामारी च युयुधे चोग्रदण्डादिभिः सह । नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह ॥
युयुधुश्च महद् युद्धे प्रलये च भयङ्करे । वटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च ॥
सर्वे च युयुधुः सैन्यासमूहाः सततं मुने । रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह ॥
उवास शङ्खचूड़श्च रत्नभूषणभूषितः । शङ्करस्य च योधाश्च युद्धे सर्वे पराजिताः ॥
देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविक्षताः । चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ ॥
बलञ्च स्वगणानांवै वर्द्धयामास तेजसा । स्वयमेवन्तु युयुधे दानवानां गणै सहः ।
अक्षौहिणीनां शतकं समरेस जघान ह । खर्परं पातयामास काली कमललोचना ॥३७॥
पपौ रक्तं दानवानां क्रुद्धा सा शतखर्परम् । दशलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षंच घोटकम् ॥
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया । कबन्धानां सहस्रञ्च ननर्त्त समरे मुने ॥ ३६ ॥
स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविक्षताः । भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महाबलपराक्रमाः ॥
वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कनः । स्कन्दे न सार्द्धं युयुधुस्ते च सर्वे क्रमेण च
काली जगाह समरं ररक्ष कार्त्तिकंशिवः । वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ॥
सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः । राज्यभाण्डाश्च बहुशः शतकोटिर्बलाहकाः ॥
सा च गत्वा च संग्रामं सिंहनादंचकारह । देव्याश्च सिंहनादेन प्राप्तमूर्च्छाश्चदानवाः ॥
अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः । दृष्ट्वा पपौ च माध्वीकं ननर्त्त रणमूर्द्धनि ॥
उग्रदंष्ट्रा चोग्रचण्डा कौट्टरी च पपौमधु । योगिनीनां डाकिनीनां गणाःसुरगणादयः ।
दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूड़ः शीघ्रमाजि समाययौ । दानवाश्च भयंप्रापू राजातेभ्योऽभयंददौ ।

काली चिक्षेप वह्निश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
राजा निर्वापयामास पार्जन्येनावलीलया ॥ ४८ ॥

चिक्षेप वारुणं सा च तत्तीव्रं महदद्भुतम् । गान्धर्वेण च चिच्छेद दानवेन्द्रश्च लीलया ।
माहेश्वरं प्रचिक्षेप कालीवह्निशिखोपमम् । राजा जघानतच्छीघ्रं वैष्णवेनावलीलया ॥
नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । राजा ननाम तं दृष्ट्वा चावरुह्य रथादहो ॥

ऊर्ध्वं जगाम तच्छास्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम् । पपात शङ्खचूडश्च मनसा न स्मरन्हरिम्
प्रत्यास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम् ॥ ५२ ॥
प्रत्यास्त्रेणमहाराजा निर्वाणञ्च चकार ह । चिक्षेपान्यद् दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम्
राजा दिव्यास्त्रजालेन निर्वाणञ्च चकार ह । देवी चिक्षेप शक्तिञ्च यत्नतो योजनायताम् ॥
राजा तीक्ष्णास्त्रजालेन शतखण्डं चकार ह । जग्राह मन्त्रपूर्वञ्च देवी पाशुपतं तदा ॥
निक्षेप्तुं सा निषिद्धा च वाग्बभूवाशरीरिणी । मृत्युः पाशुपतेनास्ति नृपस्य च महात्मनः ॥
यावदस्त्येव कण्ठेऽस्य कवचञ्च हरेरिति । यावत् सतीत्वमस्तीति सत्याश्च नृपयोषितः
तावदस्य जरामृत्यु नास्तीति ब्रह्मणो वरः । इत्याकर्ण्य भद्रकाली न तच्चिक्षेप सा सती ।
शतलक्षं दानवानां जग्राहलीलया क्षुधा । भक्षितुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयङ्करी ॥ ५९ ॥
दिव्यास्त्रेणसुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः । खड्गं चिक्षेपसा देवी ग्रीष्मसूर्योपमंपरम् ॥
दिव्यास्त्रेण दानवेन्द्रः शतखण्डं चकार सः । पुनर्भक्षितुं महादेवी वेगेनच जगाम तम् ॥
निवारयामासच तां सर्वसिद्धेश्वरो वरः । वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ताभयङ्करी ॥ ६२
बभञ्जाथ रथं तस्य जघान सारथिं सती । सा च शूलञ्च चिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥
वामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडश्च लीलया । मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः ॥ ६४
बभ्रामच व्यथया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप ह । क्षणेनचेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान् ।
न चकार बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम् । देव्याश्चास्त्रञ्च चिच्छेद जग्राहच स्वतेजसा
नास्त्रं चिक्षेप तां भक्त्या मातृबुद्ध्या च वैष्णवः ॥ ६७ ॥
गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः । ऊर्ध्वं च प्रेरयामास महावेगेन कोपतः ॥
ऊर्ध्वात् पपात वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान् ॥ ६८ ॥
निपत्यचसमुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् । रत्नेन्द्रसारनिर्माणं विमानान्यं मनोहरम् ।
आरुरोह हर्षयुक्तो न विभ्रान्तो महारणे ॥ ६९ ॥
दानवानाञ्च क्षतजं मांसञ्च विपुलं क्षुधा ॥ ७० ॥
पीत्वाभुक्त्वाभद्रकाली जगामशङ्करान्तिकम् । उवाचरणवृत्तान्तं पौर्वापर्यं यथाक्रमम् ।
श्रुत्वा जहास शम्भुश्च दानवानां विनाशनम् । लक्षञ्च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना ॥

उद्वृत्तं भूभृता सार्द्धं तदन्यं भुवनेश्वर । संग्रामे दानवेन्द्रञ्च हन्तुं पाशुपतेन वै ॥७३॥
अवध्यस्तव राजेति वाग् बभूवाशरीरिणी ।
राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः ॥७४॥
न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम् ॥७५॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने कालीशङ्खचूडयुद्धे ऊनविंशोऽध्यायः ।

---

# विंशतितमोऽध्यायः

## शिवशङ्खचूडयुद्धम् ।

नारायण उवाच ।

शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः । ययौ स्वयञ्च समरं स्वगणैः सह नारद ॥१॥
शङ्खचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च । ननाम परया भक्त्या दण्डवत् पतितो भुवि ॥
तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः । तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम् ॥३॥
शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दं बभूव ह । न बभूवतुर्ब्रह्मन्तयोर्जयपराजयौ ॥४॥
न्यस्तशस्त्रश्च भगवान् न्यस्तशस्त्रश्च दानवः । रथस्थः शङ्खचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः ॥
दानवानाञ्च शतकमुद्धृतञ्च बभूव ह । रणे ये ये मृताः शम्भुर्जीवयामास तान् विभुः ॥
ततो विष्णुर्महामायावृद्धब्राह्मणरूपधृक् । आगत्य च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम् ॥७॥

वृद्धब्राह्मण उवाच ।

देहि भिक्षाञ्च राजेन्द्र मह्यं विप्राय याचनम् । त्वं सर्वसम्पदां दाता यन्मे मनसि वाञ्छितम् ॥
निरीहाय च वृद्धाय तृषिताय तुराय च । पश्चात् त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यञ्च कुर्विति ॥
ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः । कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचेति मायया ॥
तत् श्रुत्वा दानवेन्द्रो ददौ कवचमुत्तमम् । गृहीत्वा कवचं दिव्यं जगाम हरिरेव च ॥

शङ्खचूड़स्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति । गत्वा तस्यां मायया च वीर्य्याधानञ्चक
अथ शम्भुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति । ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकप्रभमुज्ज्वल
नारायणाधिष्ठिताग्रंब्रह्माधिष्ठितमध्यगम् । शिवाधिष्ठितमूलञ्चकालाधिष्ठितधार
किरणावलिसंयुक्तं प्रलयाग्निशिखोपमम् । दुर्निवार्य्यञ्च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघात
तेजसा चक्रतुल्यञ्च सर्वशस्त्रविघातकम् । शिवकेशवयोरन्यं दुर्वहञ्च भयङ्करम् ॥
धनुः सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम् । सजीवं ब्रह्मरूपञ्च नित्यरूपमनिर्मितम्
संहर्त्तुं सर्वब्रह्माण्डमलञ्च हावलीलया । विक्षेप घूर्णनं कृत्वा शङ्खचूड़े च नारद
राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणाम्बुजम् । ध्यानञ्चकारभक्त्याचकृत्वायोगासनं
शूलञ्च भ्रमणं कृत्वा पपातदानवोपरि । चकार भस्मसात्तञ्च सरथञ्चावलीलया ।
राजा धृत्वा दिव्यरूपं किशोरगोपवेशकम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः । गोलोकादागतं यानमारुह्य तत् पुरं य
गत्वा ननाम शिरसा राधामाधवयोर्मुने । भक्त्या तच्चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने ध

सुदामानं तौ च दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ ॥२३॥

तदा च चक्रतुः क्रोड़े स्नेहेन परिसंप्लुतौ । अथ शूलञ्च वेगेन प्रययौ शूलिनः कर
शङ्खस्तेन शूलेन शूलपाणिर्बभूव सः । स शिवस्तेन शूलेन दानवस्यास्थिजालक
प्रेम्णा च प्रेरयामास लवणोदे च सागरे । अस्थिभिः शङ्खचूड़स्य शङ्खजातिर्बभूव
नानाप्रकाररूपा च शश्वत् पूता सुरार्चने । प्रशस्तंशङ्खतोयञ्चदेवानां प्रीतिदं परम् ।
तीर्थतोयस्वरूपञ्च पवित्रं शम्भुना विना । शङ्खशब्दो भवेद् यत्रतत्रलक्ष्मीश्च सुस्थिर
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शङ्खवारिणा । शङ्खे हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्ततो हरि

तत्रैव सततं लक्ष्मीर्दूरीभूतममङ्गलम् ।

स्त्रीणाञ्चशङ्खध्वनिभिःशूद्राणाञ्चविशेषतः । भीताकुष्टाविनिश्यन्ति [illegible]

शिवश्च दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम सः ॥३१॥

प्रहृष्टो वृषमारुह्य स्वगणैश्च समावृतः । सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुता ॥३

[illegible] ॥

प्रशसंसुः सुरास्तत्र मुनीन्द्रप्रवरादयः ॥३४॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने शङ्खचूड़वधप्रस्तावो नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

---

## एकविंशतितमोऽध्यायः

### तुलसीवृक्षस्य तत्पत्राणाञ्च माहात्म्यम् ।

नारद उवाच ।

नारायणश्च भगवन् वीर्य्याधानञ्चकार ह । तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥
नारायणश्च भगवान् देवानां साधनेन च । शङ्खचूड़स्य रूपेण रेमे तद्रमया सह ॥२॥
शङ्खचूड़स्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया । पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तुलसीगृहम् ॥३॥
दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ । जयशब्दरवद्वाराबोधयामास सुन्दरीम् ॥४
तच्छ्रुत्वा सा च साध्वी च परमानन्दसंयुता । राजमार्गं गवाक्षेण ददर्श परमादरात् ॥
ब्राह्मणेभ्योधनंदत्त्वाकारयामासमङ्गलम् । वन्दिभ्योभिक्षुकेभ्यश्चवाचिकेभ्योधनंददौ ॥
अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ । अमूल्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम् ॥७॥
दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं शान्तं कान्ता मुदान्विता । तत्पादं क्षालयामासननामचररोदच ॥
रत्नसिंहासने रम्ये वासयामासकामुकी । ताम्बूलञ्च ददौ तस्मै कर्पूरादि सुवासितम् ॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफला क्रिया । शरणागतश्चप्राणेशंपश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे ॥
सस्मिता सकटाक्षञ्च सकामा पुलकाञ्चिता । पप्रच्छ रणवृत्तान्तंकान्तंमधुरया गिरा ॥

तुलस्युवाच ।

असंख्यविश्वसंहर्त्ता सार्द्धमाजौ तव प्रभो । कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे ॥
तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः । शङ्खचूड़स्य रूपेण तामुवाचानृतं वचः ॥१३॥

श्रीहरिरुवाच ।

आवयोः समरं कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह । नाशो बभूव सर्वेषां दानवानाञ्च कामिनि ॥
प्रीतिश्च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः । देवानामधिकारश्च प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा ॥
मया गतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः । इत्युक्त्वा जगतां नाथ शयनञ्च चकार ह ॥
रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद । सा साध्वी सुखसम्भोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ॥
सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच ह ॥१८॥
ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम् । नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् ॥१९॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससा ॥२०॥
तं दृष्ट्वा कामिनी कामान्मूर्च्छां संप्राप्य लीलया । पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनःसातमुवाच ह ॥

तुलस्युवाच ।

हे नाथ ! ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च । छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामीत्वयाहतः ॥
पाषाणसदृशस्त्वञ्च दयाहीनो यतः प्रभो । तस्मात्पाषाणरूपस्त्वंभुवि देवभवाधुना ॥
ये वदन्ति दयासिन्धुं त्वान्ते भ्रान्ता न संशयः । भक्तो विनापराधेनपरार्थेच कथंहतः ॥
दुर्वृत्त त्वञ्च सर्वज्ञो न जानासि परव्यथाम् ।
अतस्त्वमेकजनुषि स्वमेव विस्मरिष्यति ॥ २५ ॥
इत्युक्त्वा च महासाध्वी निपत्य चरणे हरेः । भृशंरुरोद शोकार्त्ता विललापमुहुर्मुहुः ॥
तस्याश्च करुणां दृष्ट्वा करुणामयसागरः । नारायणस्तां बोधयितुमुवाचकमलापतिः ।

श्रीभगवानुवाच ।

तपस्त्वया कृतं साध्वि मदर्थे भारते चिरम् । त्वदर्थे शङ्खचूड़श्च चकार सुचिरं तपः ॥
कृत्वा त्वां कामिनीं कामी विजहार च तत् फलात् ।
अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम् ॥ २६ ॥
इदं शरीरंत्यक्त्वा च दिव्यं देहं विधाय च । रासे मे रमया सार्द्धं त्वं रमा सदृशीभव ।
इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता । पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्या भवतु भारते ॥
तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति । तुलसीकेशसम्भूता तुलसीतिच विश्रुता ॥

त्रिलोकेषु च पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने। प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम सन्निधौ। भवन्तु तुलसीवृक्षा वराःपुष्पेषुसुन्दरि।
गोलोके विरजा तीरे रासे वृन्दावने भुवि। भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥
माधवी केतकी कुन्दमल्लिका मालतीवने। भवन्तु तरवस्तत्र पुण्यस्थानेषु पुण्यदाः॥
तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे। अधिष्ठानन्तु तीर्थानां सर्वेषाञ्च भविष्यति॥
तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनप्राप्तो यश्च वरानने॥ ३८॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्नभवेद्धरेः। या च तुष्टिर्भवेन्नॄणां तुलसीपत्रदानतः॥४०॥
गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः। तुलसीपत्रदानेन तत्फलं लभते सति॥ ४१॥

तुलसीपत्रतोयञ्च मृत्युकाले च यो लभेत्।
स मुच्यतेसर्वपापात् विष्णुलोकं स गच्छति॥ ४२॥

नित्यंयस्तुलसीतोयंभुङ्क्तेभक्त्या च यो नरः। स एव जीवन्मुक्तश्चगङ्गास्नानफलंलभेत्
नित्यं यस्तुलसीं दत्वा पूजयेन्माञ्चमानवः। लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभतेनात्र संशयः॥

तुलसीं स्वकरे धृत्वा देहे धृत्वा च मानवः।
प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति॥ ४५॥

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभतेनिश्चितंफलम्॥
तुलसीं स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति। स याति कालसूत्रञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
करोतिमिथ्याशपथंतुलस्यायो हि मानवः। स यातिकुम्भीपाकञ्चयावदिन्द्राश्चतुर्दश।
तुलसीतोयकणिकां मृत्युकालेच यो लभेत्। रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं स प्रयाति च
पूर्णिमायाममायाञ्चद्वादश्यांरविसंक्रमे। तैलाभ्यङ्गेचास्नातेचमध्याह्ने निशिसन्ध्ययोः॥
अशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासान्वितेनराः। तुलसींयेचछिन्दन्तितेछिन्दन्तिहरेःशिरः।
त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति। श्राद्धे व्रते वा दाने वा प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धन्तु तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥ ५२॥
वृक्षाधिष्ठात्रीदेवी या गोलोकेच निरामये। कृष्णेनसार्द्धंरहसि नित्यक्रीड़ां करिष्यति।

छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्त्तुले च महाश्रियः । दुःखञ्च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम् ॥
विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरेव च । लग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणंध्रुवम् ॥
व्रतं दानंप्रतिष्ठा च श्राद्धञ्चदेवपूजनम् । शालग्रामशिलायाश्चैवाधिष्ठानात् प्रशस्तकम् ।
सः स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत् ।
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रादक्षिण्ये भुवो यथा । सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेष्वनशनेषु च ॥८२॥

तस्य स्पर्शञ्च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च ।
जीवन्मुक्तो महापूतो भवेदेव न संशयः ॥ ८३ ॥

पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति । तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात् ।
शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः । सुरेप्सितंप्रसादञ्चजन्ममृत्युजराहरम् ।

तस्य स्पर्शञ्च वाञ्छन्ति तिर्थानि निखिलानि च ।
जीवन्मुक्तो महापूतोऽत्यन्ते याति हरेः पदम् ॥ ८६ ॥

तत्रैव हरिणासार्द्धमसंख्यंप्राकृतं लयम् । पश्यत्येव हि दास्ये च निर्मुक्तोदास्यकर्मणि ।
यानिकानि च पापानिब्रह्महत्यादिकानि च । तञ्च दृष्ट्वा भियायान्तिवैनतेयमिवोरगाः ।
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा । पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तारस्तस्य जन्मनः ।
शालग्रामशिलातोयंमृत्युकाले च योलभेत् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकंसगच्छति
निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगाद्विमुच्यते । विष्णुपादे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः ॥
शालग्रामशिलांधृत्वांमिथ्यावादंवदेत्तु यः । स याति कूर्मदंष्ट्रञ्च यावद्वै ब्रह्मणोवयः ।
शालग्रामशिलांस्पृष्ट्वास्वीकारंयो न पालयेत् । स प्रयात्यसिपत्रञ्चलक्षमन्वन्तराधिकम्
तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामेकरोति यः । तस्यजन्मान्तरेकालेस्त्रीविच्छेदोभविष्यति
तुलसीपत्रविच्छेदंशङ्खे योहिकरोति च । भार्य्याहीनोभवेत्सोऽपि रोगीचसप्तजन्मसु
शालग्रामञ्च तुलसीं शङ्खमेकत्र एव च । यो रक्षतिमहाज्ञानी स भवेत् श्रीहरिप्रियः ।

सकृदेव हि यो यस्यां वीर्य्याधानं करोति च ।
तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम् ॥ ६७ ॥

त्वं प्रिया शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि । शङ्खेन सार्द्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तव ॥

त्युनवाश्रीहरिस्तस्याञ्चविरराम स सादरम् । सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं दधार ह ।
यथाश्रीश्च तथा सा च्याप्युवासहरिवक्षसि । प्रजगाम तया सार्द्धं वैकुण्ठं कमलापतिः ।
लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद । हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च ॥
सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गण्डकी नदी । हरेरंशेन शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम् ॥
कुर्वन्ति तत्र कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने । जले पतन्ति यायाश्चजलदाभाश्चनिश्चितम् ।
स्थलस्थाः पिगला ज्ञेयाश्चोपतापाद्रवेरिति । इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तुलस्युपाख्याने
एकविंशतितमोऽध्यायः ।

---

# द्वाविंशतितमोऽध्यायः

## तुलसी पूजा विधानम् ।

नारद उवाच ।

तुलसी च जगत्पूज्या पूता नारायणप्रिया । तस्याः पूजाविधानञ्चस्तोत्रंकिनश्रुतं मया
केन पूज्या स्तुता केन पुरा प्रथमतो मुने । तव पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो ॥

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य गरुड़ध्वजः । कथां कथितुमारेभे पुण्यरूपां पुरातनीम् ॥

नारायण उवाच ।

हरिः संप्राप्य तुलसीं रेमे च रमया सह । रमासमानां सौभाग्यां चकार गौरवेण च
सेहे लक्ष्मीश्च गङ्गा च तस्याश्च नवसङ्गमम् । सौभाग्यं गौरवं कोपाश्चसेहेच सरस्वती
सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ । व्रीड़या स्वापमानाच सान्तर्द्धानंचकार ह
सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनी सिद्धयोगिनी । बभूवादर्शनं कोपात् सर्वत्र च हरेरहो ।४॥
न्हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम् । तदनुज्ञानं गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्

तत्र गत्वा च स्नात्वा च तुलस्यां तुलसीं सतीम् ॥ १० ॥

पूजयामास तां ध्यात्वा स्तोत्रं भक्त्या चकार सः । लक्ष्मीमायाकामवाणीबीजपूर्वं दशाक्षरम् ॥

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा ।

वृन्दावनीति ङेऽन्तं च वह्निजायान्तमेव च । अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन नारद ॥ ११ ॥

पूजयेच्च विधानेन सर्वसिद्धिं लभेन्नरः । घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च ॥ १२ ॥

नैवेद्येन च पुष्पेण चोपहारेण नारद । हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाविर्भूय महीरुहात् ॥ १३ ॥

प्रसन्ना चरणाम्भोजे जगाम शरणं शुभम् । वरं तस्मै ददौ विष्णुर्जगत्पूज्या भवेति च ॥

अहं त्वां धारयिष्यामि स्वमूर्ध्नि वक्षसीति च । सर्वे त्वां धारयिष्यन्ति स्वमूर्ध्नि सुरादयः ॥

इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः ॥ १६ ॥

नारद उवाच ।

किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधिक्रमम् ।

तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

नारायण उवाच ।

अन्तर्हितायां तस्यां च गत्वा च तुलसीवनम् । हरिः संपूज्य तुष्टाव तुलसीं विरहातुरः ॥ १८

श्रीभगवानुवाच ।

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च । विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम् ॥

पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने । तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम् ॥

असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम् । तेन विश्वपूजिताख्यां जगत्पूज्यां भजाम्यहम् ॥

असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि यया सदा । तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम् ॥

देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना । तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः ॥

विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद्ध्रुवम् । नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भविता हि मे ॥

यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च ।

तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम् ॥ २५ ॥

कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती । तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम् ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तत्र तस्थौ रमापतिः । ददर्श तुलसीं साक्षात्पादपद्मे नतांसतीम्
रुदन्तीमभिमानेन मानिनीं मानपूजिताम् । प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रंवासयामास वक्षसि
भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयञ्च ययौहरिः । भारत्यासहतत्प्रीतिंकारयामाससत्वरम्
वरं विष्णुर्ददौ तस्यै विश्वपूज्याभवेतिच । शिरोधार्य्यांचसर्वेषांवन्द्यामान्याममेतिच
विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूवह । भारतीतांसमाश्लिष्यवासयामाससन्निधौ
लक्ष्मीर्गङ्गा सस्मिता तां समाश्लिष्य च नारद । गृहं प्रवेशयामास विनयेनसतीं तदा
वृन्दांवृन्दावनींविश्वपावनींविश्वपूजिताम् । पुष्पसारांनन्दिनींचतुलसींकृष्णजीवनीम्
एतन्नामाष्टकञ्चैतत् स्तोत्रं नामार्थसंयुतम् । यःपठेत्ताञ्चसंपूज्यसोऽश्वमेधफलं लभेत्॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्चतुलस्याजन्ममङ्गलम् । तत्र तस्याश्च पूजा च विहिताहरिणा पुरा॥
तस्यांयःपूजयेत्ताञ्चभक्तयाचविश्वपावनीम् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति॥
कार्त्तिके तुलसीपत्रं विष्णवेयोददातिच । गवामयुतदानस्य फलमाप्नोति निश्चितम्॥

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत् प्रियाम् ।
बन्धुहीनो लभेत् बन्धुं स्तोत्रस्मरणमात्रतः ॥ ३८ ॥

रोगीप्रमुच्यतेरोगाद्बद्धोमुच्येतबन्धनात् । भयान्मुच्येतभीतस्तुपापान्मुच्येतपातकी॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिंशृणु । त्वमेववेदजानासिकाण्वशाखोक्तमेवच॥
यद्वृक्षे पूजयेत्ताञ्चभक्तयाचावाहनंविना । ध्यात्वाषोड़शोपचारैःध्यानंपातकनाशनम्॥
तुलसींपुष्पसाराञ्चसतींपूज्यांमनोहराम् । कृत्स्नपापेन्धदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम्॥
पुष्पेषु तुलनाप्यस्या नासीद्देवीषु वा मुने । पवित्ररूपा सर्वासु तुलसीसाचकीर्त्तिता॥

शिरोधार्य्याञ्च सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम् ।
जीवन्मुक्तां मुक्तिदाञ्च भजे तां हरिभक्तिदाम् ॥ ४४ ॥

इति ध्यात्वाचसंपूज्यस्तुत्वाचप्रणमेद्बुधः । उक्तंतुलस्युपाख्यानंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादेतुलस्युपाख्यानं नाम
द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

# त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

## सावित्र्युपाख्यानम्।

नारद उवाच।

ुपाख्यानमिदं श्रुतमीश सुधोपमम्। यत्तु सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥
न समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतिप्रसूः। केन वा पूजिता देवी प्रथमे कैश्च वा परे।

नारायण उवाच।

वेदजननी पूजिता प्रथमे मुने। द्वितीये च देवगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः॥३॥
ाश्वपतिः पूर्वं पूजयामास भारते। तत्पश्चात् पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च।

नारद उवाच।

ोऽश्वपतिर्ब्रह्मन्केन वा तेन पूजिता। सर्वपूज्या च सावित्री तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।

नारायण उवाच।

महाराजा बभूवाश्वपतिर्मुने। वैरिणां बलहर्त्ता च मित्राणां दुःखनाशनः॥६॥
ास्य महाराज्ञी महिषी धर्मचारिणी। मालतीति च सा ख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः॥
ाज्ञी महासाध्वी वशिष्ठस्योपदेशतः। चकाराराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद॥
ां न सा प्राप महिषी न ददर्श ताम्। गृहं जगाम सा दुःखाद्धृदयेन विदूयता॥
ां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै। सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा॥
ार तत्रैव संयतः शतवत्सरम्। न ददर्श च सावित्रीं प्रत्यादेशो बभूव ह॥११॥
ाकाशवाणीञ्च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम्। गायत्री दशलक्षञ्च जपं कुर्विति नारद॥
न्नन्तरे तत्र प्रजगाम पराशरः। प्रणनाम नृपस्तञ्च मुनिर्नृपमुवाच ह॥ १३॥

पराशर उवाच।

ाध गायत्र्याः पापं दिनकृतं हरेत्। दशधा प्रजपान्नृणां दिवारात्र्यघमेव च॥
च जपाधेयं पापं मासार्जितं परम्। सहस्रधा जपाधेयं कल्मषं वत्सरार्जितम्॥
मकृतं पापं दशलक्षं त्रिजन्मनः। सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षो विनश्यति॥ १६॥

करोति मुक्तिं विप्राणां जपोदशगुणस्ततः। करंसर्पफणाकारंकृत्वातुऊर्ध्वमुद्रितम् ॥
आनम्रमूर्द्ध्वमचलं प्रजपेत् प्राङ्मुखोद्विजः। अनामिकामध्यदेशादधोवामक्रमेणच ॥
तर्जनीमूलपर्य्यन्तं जपस्यैषः क्रमः करे। श्वेतपङ्कजवीजानांस्फाटिकानाञ्च संस्कृताम् ॥

कृत्वा वा मालिकां राजन् जपेत्तीर्थे सुरालये।
संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रसप्तसु संयतः ॥ २० ॥
कृत्वा गोरोचनाक्ताञ्च गायत्र्या स्नापयेत् सुधीः।
गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

अथवा पञ्चगव्येन स्नाता माला च संस्कृता। अथ गङ्गोदकेनैवस्नातावातिसुसंस्कृता ॥
एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु। साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रींत्रिजन्मपातकक्षयात् ॥
नित्यं नित्यं त्रिसन्ध्यञ्चकरिष्यसिदिनेदिने। मध्याह्नेचापिसायाह्नेप्रातरेवशुचिःसदा ॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदह्ना कुरुते कर्म न तस्यफलभाग् भवेत् ॥
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्तेयश्चपश्चिमाम्। सशूद्रवद्वहिष्कार्य्यःसर्वस्माद्द्विजकर्मणः।
यावज्जीवनपर्य्यन्तं यस्त्रिसन्ध्यांकरोतिच। सचसूर्य्यसमोविप्रस्तेजसातपसासा ॥२७॥
तत्पादपद्मरजसा सद्यः पूतावसुन्धरा। जीवन्मुक्तःस तेजस्वी सन्ध्यापूतोहि योद्विजः।
तीर्थानिच पवित्राणि तस्य स्पर्शनमात्रतः। ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः।
न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरःपिण्डतर्पणम्। स्वेच्छयाचद्विजातेश्च त्रिसन्ध्यरहितस्यच ॥
विष्णुमन्त्रविहीनश्च त्रिसन्ध्यरहितो द्विजः। एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः ॥
नित्यं नैवेद्यभोजीच धावको वृषवाहकः। शूद्रान्नभोजी विप्रश्च विषहीनो यथोरगः ॥
शवदाहीच शूद्राणां यो विप्रो वृषलीपतिः। शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः ॥
शूद्राणाञ्चप्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः। असिजीवीमसिजीवी विषहीनोयथोरगः।
योविप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नानान्नभोजकः। भगजीवी वार्द्धुषिको विषहीनोयथोरगः।
यः कन्याविक्रयी विप्रोयो हरेर्नामविक्रयी। यो विद्याविक्रयीभूप विषहीनो यथोरगः।
सूर्य्योदयेचद्विर्भोजी मत्स्यभोजीचयोद्विजः। शिलापूजादिरहितो विषहीनोयथोरगः ॥
-न्नु[illegible] -सर्वं पूजाविधिक्रमम्। नामुयाञ्च च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम्

दत्त्वा सर्वं नृपेन्द्राय प्रययौ स्वालयं मुनिः । राजा सम्पूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च

नारद उवाच ।

किं वा ध्यानञ्च सावित्र्याः किं वा पूजाविधानकम् ।
स्तोत्रमन्त्रञ्च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः ॥ ४० ॥

नृपः केन विधानेन संपूज्य श्रुतिमातरम् । वरञ्च किं वा संप्राप वद सोऽश्वपतिर्नृपः ॥

नारायण उवाच ।

ज्येष्ठे कृष्णत्रयोदश्यां शुद्धे काले च संयतः । व्रतमेव चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत् ।
व्रतं चतुर्दशाब्दञ्च द्विसप्तफलसंयुतम् । दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं तथा ॥ ४२ ॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतञ्च भोज्यञ्च विधिपूर्वकम् । संस्थाप्य मङ्गलघटं फलशाखासमन्वितम् ।
गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । संपूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाह्य मुने ॥
शृणु ध्यानञ्च सावित्र्या माध्यन्दिनेरितम् । स्तोत्रं पूजाविधानञ्च मन्त्रञ्च सर्वकामदम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रसमसुप्रभाम् ॥ ४७
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहकातराम् ॥ ४८
सुखदां मुक्तिदां शान्तां कान्तां च जगतां विधेः । सर्वसम्पत्स्वरूपाञ्च प्रदात्रीं सर्वसम्पदाम् ।
वेदाधिष्ठातृदेवीञ्च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम् । वेदबीजस्वरूपाञ्च भजे त्वां वेदमातरम् ॥ ५० ॥
ध्यात्वा ध्यानेन चानेन दत्त्वा पुष्पं स्वमूर्द्धनि । पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद्व्रती ।
दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तमन्त्रपूर्वकम् । संपूज्य स्तुत्वा प्रणमेद्देवीं विधानतः ॥
आसनं पाद्यमर्घ्यञ्च स्नानीयञ्चानुलेपनम् । धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम् ॥
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम् । मनोहरं सुतल्पञ्च देयान्येतानि षोडश ॥ ५३ ॥
दारुसारविकारञ्च हेमादिनिर्मितं तथा । देवाधारं पुण्यदञ्च मया तुभ्यं निवेदितम् ।
तीर्थोदकञ्च पाद्यञ्च पुण्यदं प्रीतिदं महत् । पूजाङ्गभूतं शुद्धञ्च मया भक्त्या निवेदितम् ॥
पवित्रकमर्घ्यञ्च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् । पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥
सुगन्धिधात्रीतैलञ्च देहसौन्दर्यकारणम् । मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥
मलयाचलसम्भूतं देहशोभाविवर्द्धनम् । सुगन्धियुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम् ॥

गन्धद्रव्योद्भवः पुण्यः प्रीतिदो दिव्यगन्धदः। मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥
जगतां दर्शनीयञ्च दर्शनं दीप्तिकारणम्। अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम्॥
तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्। पुण्यदं स्वादुरूपञ्च नैवेद्यं प्रति गृह्यताम्॥
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्। तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैव मया भक्त्या निवेदितम्॥
सुशीतलं वासितञ्च पिपासानाशकारणम्। जगतां जीवरूपञ्च जीवनं प्रतिगृह्यताम्॥
देहशोभास्वरूपञ्च सभाशोभाविवर्द्धनम्। कार्पासजञ्च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्॥
काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीयुतं श्रीकरं सदा। सुखदं पुण्यदं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥
नानापुष्पविनिर्माणं बहुशोभासमन्वितम्। प्रीतिदं पुण्यदञ्चैव माल्यञ्च प्रतिगृह्यताम्॥
सर्वमङ्गलरूपश्च सर्वमङ्गलदो वरः। पुण्यप्रदश्च गन्धाढ्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम्॥
शुद्धं शुद्धिप्रदञ्चैव शुद्धानां प्रीतिदं महत्। रम्यमाचमनीयञ्च मया दत्तं प्रगृह्यताम्॥
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम्। सुखदं पुण्यदञ्चैव सुतल्पं प्रतिगृह्यताम्॥
नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्। फलस्वरूपं फलदं फलञ्च प्रतिगृह्यताम्॥
सिन्दूरञ्च वरं रम्यं भालशोभाविवर्द्धनम्। भूषणं भूषणानाञ्च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥
विशुद्धग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्। पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रञ्च गृह्यताम्॥
द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत् सुधीः। ततः प्रणम्य विप्राय दद्याद्वै दक्षिणा
सावित्रीति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च। लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदु
माध्यन्दिनोक्तं स्तोत्रञ्च सर्ववाञ्छाफलप्रदम्। विप्रजीवनरूपञ्च निबोध कथयामि ते
कृष्णेन दत्ता सावित्री गोलोके ब्रह्मणे पुरा। न याति सा तेन सार्द्धं ब्रह्मलोकञ्च नार
ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम्। तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणञ्चकमे स

ब्रह्मोवाच।

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि। नारायणात् समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि
तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि। द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि। सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि।
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे। सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥

यमस्तज्जीवपुरुषं वृद्धाङ्गुष्ठसमं मुने। गृहीत्वा गमनञ्चक्रे तत्पश्चात् प्रययौ सती।
पश्चात्तां सुन्दरीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः। उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान्।

यम उवाच।

अहोक्वयासिसावित्रि गृहीत्वा मानुषींतनुम्। यदियास्यासिकान्तेन सार्द्धं देहंतदात्यज
गन्तुं मर्त्योन शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम्। देहश्च यमलोकश्च नश्वरंनश्वरः सदा।
भर्त्तुस्ते कालपूर्णश्च बभूव भारते सति। सकर्मफलभोगार्थं सत्यवान् याति मद्गृहम्।
कर्मणाजायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते। सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रपद्यते ॥१७॥
कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा। स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादि रहितोभवेत्।
स्वकर्मणासर्वसिद्धिममरत्वंलभेद्ध्रुवम्। लभेत्स्वकर्मणाविष्णोःसालोक्यादिचतुष्टयम्।
कर्मणा ब्राह्मणत्वञ्च मुक्तित्वञ्च स्वकर्मणा। सुरत्वञ्च मनुत्वञ्च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः॥
कर्मणाच मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वञ्च कर्मणा। कर्मणा क्षत्रियत्वञ्च वैश्यत्वञ्च स्वकर्मणा।
कर्मणा चैव शूद्रत्वमन्त्यजत्वं स्वकर्मणा ॥ २२ ॥
स्वकर्मणाचपुच्छत्वं लभते नात्रसंशयः। स्वकर्मणाजङ्गमत्वं स्थावरत्वं स्वकर्मणा॥
स्वकर्मणाच शैलत्वं वृक्षत्वञ्च स्वकर्मणा। स्वकर्मणा पशुत्वञ्चपक्षित्वञ्च स्वकर्मणा।
स्वकर्मणाक्षुद्रजन्तुः कृमित्वञ्चस्वकर्मणा। स्वकर्मणा च सर्पत्वं गन्धर्वत्वं स्वकर्मणा
स्वकर्मणाराक्षसत्वं किन्नरत्वंस्वकर्मणा। स्वकर्मणाचयक्षत्वं कुष्माण्डत्वंस्वकर्मणा।
स्वकर्मणाच प्रेतत्वं वैतालत्वं स्वकर्मणा। भूतत्वञ्चपिशाचत्वं डाकिनीत्वं स्वकर्मणा।
दैत्यत्वंदानवत्वञ्च असुरत्वंस्वकर्मणा। कर्मणापुण्यवान् जीवो महापापीस्वकर्मणा॥
कर्मणासुन्दरोऽरोगीमहारोगीस्वकर्मणा। कर्मणाचान्धःकाणश्च कुत्सितश्चस्वकर्मणा।
कर्मणानरकंयान्ति जीवाःस्वर्गंस्वकर्मणा। कर्मणाशक्रलोकञ्च सूर्य्यलोकं स्वकर्मणा॥
कर्मणा चन्द्रलोकञ्च वह्निलोकं स्वकर्मणा। कर्मणा वायुलोकञ्च कर्मणा वरुणालयम्।
तथापि कुबेरलोकञ्च नरोयाति स्वकर्मणा। कर्मणा ध्रुवलोकञ्च शिवलोकं स्वकर्मणा।
याति नक्षत्रलोकञ्च सत्यलोकं स्वकर्मणा। जनलोकं तपोलोकं महर्लोकं स्वकर्मणा॥
स्वकर्मणाच पातालं ब्रह्मलोकं स्वकर्मणा। कर्मणा भारतं पुण्यं सर्वेप्सितवरं परम्॥

कर्मणायाति वैकुण्ठंगोलोकञ्च निरामयम् । कर्मणा चिरजीवी च क्षणायुश्चस्वकर्मणा
कर्मणाकोटिकल्पायुः क्षीणायुश्चस्वकर्मणा । जीवसञ्चारमात्रायुर्गर्भे मृत्युःस्वकर्मणा ॥
इत्येवं कथितंसर्वं मयातत्त्वञ्चसुन्दरि । कर्मणाते मृतो भर्त्ता गच्छ वत्से यथासुखम् ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदसंवादे कर्मविपाके कर्मणः सर्वहेतुप्रदर्शनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

---

# पञ्चविंशोऽध्यायः

## कर्मविपाके सावित्री प्रश्नः ।

श्रीनारायण उवाच ।

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता । तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी ॥

सावित्र्युवाच ।

किंकर्मवाशुभं धर्मराजकिंवाऽशुभंनृणाम् । कर्म निर्मूलयन्त्येव केनवासाधुयोजनाः ।
कर्मणां बीजरूपःकः कोवा कर्मफलप्रदः । किं कर्म तद्भवेत् केनकोवा तद्धेतुरेवच ॥
कोवाकर्मफलंभुङ्क्ते कोवानिर्लिप्त एवच । कोवादेहीकश्चदेहः कोवात्र कर्मकारक ॥
किं विज्ञानं मनोबुद्धिः के वा प्राणाः शरीरिणाम् ।
कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः ॥ ५ ॥
भोक्ता भोजयिता कोवा को भोगः का च निष्कृतिः ।
को जीवः परमात्मा कः तन्मे व्याख्यातु मर्हसि ॥ ६ ॥

यम उवाच ।

वेदप्रणिहितं कर्म तन्मङ्गलं परम् । अवैदिकन्तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च ॥ ७ ॥
अहैतुकी विष्णुसेवा सङ्कल्परहिता सताम् । कर्मनिर्मूलरूपा च सा एव हरिभक्तिदा ॥
हरिभक्तो नरो यश्च स च मुक्तः श्रुतौ श्रुतम् । जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः

मुक्तिश्च द्विविधा साध्वि ! श्रुत्युक्ता सर्वसम्मता ।
निर्वाणपददात्री च हरिभक्तिप्रदा नृणाम् ॥ १८ ॥

हरिभक्तिस्वरूपाञ्च मुक्तिञ्चेच्छन्ति वैष्णवाः । अन्ये निर्वाणरूपाञ्च मुक्तिमिच्छन्ति साधवः । कर्मणो बीजरूपश्च सततं तत् फलप्रदः । कर्मरूपश्च भगवान् श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । सोऽपि तद्धेतुरूपश्च कार्यं तेन भवेत्सति । जीवः कर्मफलं भुङ्क्ते आत्मा निर्लिप्त एव । आत्मनः प्रतिबिम्बश्च देही जीवः स एव च । पाञ्चभौतिकरूपश्च देहो नश्वर एव च । पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च । एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टेः सृष्टिविधौ सती ।

कर्ता भोक्ता च देही च स्वात्मा भोजयिता सदा ।
भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च ॥ १९ ॥

सदसद्भेदसंज्ञञ्च ज्ञानं नानाविधं भवेत् । विषयाणां विभागानां भेदबीजञ्च कीर्तितम् । बुद्धिर्विवेचनारूपा सा ज्ञानदीपनी श्रुतौ । वायुभेदाश्च प्राणाश्च बलरूपाश्च देहिनाम् । इन्द्रियाणाञ्च प्रवरम् ईश्वराणां समूहकम् । प्रेरकं कर्मणाञ्चैव दुर्निवार्यञ्च देहिनाम् ।
अनिरूप्यमदृश्यञ्च ज्ञानभेदं मनः स्मृतम् ॥ २० ॥

लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वग्जिह्वादिकमिन्द्रियम् । अङ्गिनामङ्गरूपञ्च प्रेरकं सर्वकर्मणाम् । रिपुरूपं मित्ररूपं सुखदं दुःखदं सदा । सूर्यो वायुश्च पृथिवी वाण्याद्या देवताःस्मृताः प्राण देहादिभृत् यो हि स जीवः परिकीर्तितः । परमात्मा परंब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः पर कारणं कारणानाञ्च श्रीकृष्णो भगवान् स्वयम् । इत्येवं कथितं सर्वमयापृष्टंयथागमम्
ज्ञानिनां ज्ञानरूपञ्च गच्छ वत्से यथा सुखम् ॥ २१ ॥

सावित्र्युवाच ।

त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं बुधम् ।
यद् यत् करोमि प्रश्नञ्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥ २२ ॥

कां कां योनिंयाति जीवःकर्मणा केन वा यम । केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकंपितः केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद्गुरौ । केन वा कर्मणा रोगी चारोगी केन कर्मणा केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणः । केन वा कर्मणा दुःखी केनवाकर्मणा सुखी

अङ्गहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा । अन्धो वा कृपणो वापि प्रमत्तः केन क
क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चैव केन वा नरघातकः । केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतु
केन वा ब्राह्मणत्वञ्च तपस्वित्वञ्च केन वा । स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन व
गोलोकं केन वा ब्रह्मन् सर्वोत्कृष्टं निरामयम् । नरकं वा कतिविधं किंसंख्यं नामकि
को वा कं नरकं याति कियन्तं तेषु तिष्ठति । पापिनां कर्मणा केन को वा व्याधिः प्रज

यद्यदस्ति मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्या
यमसावित्रीसंवादे कर्मविपाके सावित्रीप्रश्नो नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

---

## षड्विंशोऽध्यायः

### कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनम् ।

नारायण उवाच ।

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः । प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकञ्च जीवि

यम उवाच ।

कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाधुना । ज्ञानं ते पूर्वविदुषां योगिनां ज्ञानिन
सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्रीकला सती । प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्सम
यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि । यथा राधा च श्रीकृष्णे सावित्री ब्रह्म
धर्मोरसि यथा मूर्तिः शतरूपा मनौ यथा । कर्दमे देवहूतिश्च वसिष्ठेऽरुन्धती
अदितिः कश्यपे चापि यथाऽहल्या च गौतमे । यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे रो
यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने । यथा स्वधा च पितृषु यथा संज्ञा दि
वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा । यथा धरा वराहे च देवसेना च का

सौभाग्या सुप्रिया त्वञ्च भव सत्यवति प्रिये । इति तुभ्यं वरं दत्तमपरञ्च यदी
शृणु देवि महाभागे सर्वं दास्यामि निश्चितम् ।

सावित्र्युवाच ।

सत्यवदौरसेनैव पुत्राणां शतकं मम । भविष्यति महाभाग वरमेतद् मदीप्सितम्
मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी । राज्यलाभो भवत्वेव वरमेयं मदीप्सि
अन्ते सत्यवता सार्द्धं यास्यामि हरिमन्दिरम् । समतीते लक्षवर्षे देहीमं मे जगत
जीवकर्मविपाकञ्च श्रोतुं कौतूहलञ्च मे । विश्वविस्तारबीजञ्च तन्मे व्याख्यातुमर्ह

यम उवाच ।

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव । जीवकर्मविपाकञ्च कथयामि निशाम
शुभानामशुभानाञ्च कर्मणां जन्म भारते । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सर्वत्र नान्यत्र भुञ्जते ज
सुरादैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः । नराश्च कर्मजनको न सर्वेसमजीवि
विशिष्टजीविनः कर्म भुञ्जते सर्वयोनिषु । विशेषतो मानवाश्च भ्रमन्ति सर्वयोनि
शुभाशुभं भुञ्जतेच कर्म पूर्वार्जितं परम् । शुभेन कर्मणा यान्ति ते स्वर्गादिकमेव
कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषुच । कर्म निर्मूलने मुक्तिःसा चोक्ता द्विविधाम
निर्वाणरूपासेवाच कृष्णस्य परमात्मनः । रोगी अकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्म

दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च निश्चितम् ।
अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कुत्सितेन च कर्मणा ॥ २१ ॥

सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेनकर्मणा । सामान्यंकथितं सर्वं विशेषंशृणुसुन्दर

सुदुर्लभं सुगोप्यञ्च पुराणे च श्रुतिष्वपि ॥ २३ ॥

दुर्लभा मानवीजातिः सर्वजातिषु भारते । सर्वाभ्योब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तःसर्वकर्म
विष्णुभक्तोद्विजश्चैवगरीयान् भारतेततः । निष्कामश्च सकामश्च वैष्णवोद्विविधःसा
सकामश्च प्रधानश्च निष्कामो भक्तएव । कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रव

स याति देहं त्यक्त्वा च पदं विष्णोर्निरामयम् ।
पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति ॥ २७ ॥

येसेवन्तेचद्विभुजं कृष्णमात्मानमीश्वरम् । गोलोकंयान्तिते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः।
ये च नारायणं भक्ताः सेवन्ते च चतुर्भुजम् । वैकुण्ठं यान्तिते सर्वे दिव्यरूपविधारिणः।
सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च । भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु।
कालेनतेचनिष्कामाभविष्यन्तिक्रमेणच । भक्तिश्चनिर्मलांबुद्धिंतेभ्योदास्यतिनिश्चितम्।
ब्राह्मणाद्वैष्णवादन्ये सकामाः सर्वजन्मसु । नतेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिता।
तीर्थाश्रिता द्विजायेच तपस्यानिरताः सति । येयान्ति ब्रह्मलोकञ्च पुनरायान्तिभारतम्।
स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारते। व्रजन्ति सूर्यलोकंते पुनरायान्ति भारतम्।
स्वधर्मनिरताविप्राःशैवाःशाक्ताश्चगाणपाः । तेयान्तिशिवलोकञ्चपुनरायान्तिभारतम्॥
येविप्रा अन्यदेवेष्टाः स्वधर्मनिरताः सति । तेगत्वा शक्रलोकञ्च पुनरायान्ति भारतम्।
हरिभक्ताश्चनिष्कामाः स्वधर्मरहिताद्विजाः । तेऽपियान्ति हरेर्लोकंक्रमाद्भक्तिबलाद्‌हो।
स्वधर्मरहिताविप्रा देवान्यसेविनः सदा । भ्रष्टाचाराश्चवालाश्चते यान्ति नरकंध्रुवम् ॥
स्वधर्मनिरताश्चैवं वर्णाश्चत्वार एव च । भवन्त्येव शुभस्यैव कर्मणःफलभागिनः ॥
स्वधर्मरहितास्ते च नरकं यान्तिहि ध्रुवम्। भारतेचभवन्त्येव कर्मणः फलभागिनः॥
स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च। कन्यांददाति विप्राय चन्द्रलोकं व्रजन्तिते।
वसन्ति तत्र ते साध्वि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। सालङ्कृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते।

सकामा यान्ति तल्लोकं न निष्कामाश्च वैष्णवाः ।
ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसन्धानवर्जिताः ॥ ४३ ॥

गव्यञ्चरजतं भार्य्यांवस्त्रं शस्यंफलं जलम् । ये ददत्येव विप्रेभ्यस्तल्लोकं हि व्रजन्तिच॥
वसन्ति ते च तल्लोकं यावन्मन्वन्तरं सति । कालञ्च सुचिरं वासं कुर्वन्ति तत्रतेजनाः ।
यो ददातिसुवर्णञ्च गाञ्च ताम्रादिकंसति । ते यान्तिसूर्य्यलोकञ्च शुचये ब्राह्मणाय च ॥
वसन्ति तत्रते लोके वर्षाणमयुतं सति । विपुले च चिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः ॥
ददाति भूमिंविप्रेभ्योधान्यानिविपुलानिच । सयातिविष्णुलोकञ्च श्वेतद्वीपमनोहरम् ॥
तत्रैव निवसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ । विपुलं विपुले वासं करोतिपुण्यवान्सति॥४६
गृहं ददाति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम् । ते यान्ति सुरलोकञ्च चिरंतत्रभवन्तिते ॥

गृहरेणुप्रमाणाब्दं दानं पुण्यदिने यदि । विपुलं विपुले धाम्नि कुर्वन्ति मानवाः सति ॥५१
यस्मै कस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः । स याति तस्य लोकञ्च रेणुमानाब्दमेव च ॥
सौधे चतुर्गुणं पुण्यं पूर्ते शतगुणं फलम् । प्रकृष्टेऽष्टगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः ॥
यो ददाति तडागञ्च सर्वभूताय भारते । स याति जनलोकञ्च वर्षाणामयुतं सति ॥५४
वाप्यां फलं शतगुणं प्राप्नोति मानवस्ततः । तथा सेतुप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत् ॥
धनुश्चतुःसहस्रेण दैर्घ्यं मानेन निश्चितम् । न्यूना या तावन्मानेन सा वापी परिकीर्तिता ॥
दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते । फलं ददाति द्विगुणं यदि सालङ्कृता भवेत् ॥
तत्फलञ्च तडागे च पङ्कोद्धारेण तत् फलम् । वाप्याश्च पङ्कोद्धारेण वापीतुल्यफलं लभेत् ॥
अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठाञ्च करोति यः । स याति तपसो लोकं वर्षाणामयुतं परम् ॥
पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये । स वसेद् ध्रुवलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥
यो ददाति विमानञ्च विष्णवे भारते सति । विष्णुलोके वसेत् सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम् ॥
चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम् । तस्यार्द्धं शिविकादाने फलमेव लभेद् ध्रुवम् ॥
यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमन्दिरम् । विष्णुलोके वसेत् सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम् ॥
राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते । वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते ॥६४
ब्राह्मणेभ्योऽपि देवेभ्यो दाने समफलं लभेत् । यद्दत्तं हि तद्भोक्तुर्न दत्तं नोपतिष्ठते ॥६५
भुक्त्वा स्वर्गादिकं सौख्यं पुनर्यान्ति च भारते । लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु ॥
भारते पुण्यवान् विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं परम् । पुनः सोऽपि भवेद्विप्रः न पुनः क्षत्रियादयः ॥
क्षत्रियो वापि वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च । तपसा ब्राह्मणत्वञ्च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम् ॥
स्वधर्मरहिता विप्रा नानायोनिं व्रजन्ति च । भुक्त्वा स्वकर्मभोगञ्च विप्रयोनिं लभेत् पुनः ॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥७०
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । देवतीर्थसहायेन कायव्यूहेन शुध्यति ॥७१
एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७२ ॥

ति [illegible] महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने
कर्मविपाके कर्मानुरूपस्थानगमनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

# सप्तविंशोऽध्यायः

## शुभकर्मविपाकप्रकथनम् ।

सावित्र्युवाच ।

प्रयान्ति स्वर्गमन्यञ्च येन येनेव कर्मणा । मानवाः पुण्यवन्तश्चतन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥

यम उवाच ।

यन्नदानञ्च विप्राय यः करोति च भारते । अन्नप्रमाणवर्षञ्च शक्रलोके महीयते ॥२॥

अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ।
नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित् ॥३॥
देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि ।
महीयते वह्निलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥ ४ ॥

यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम् । तल्लोममानवर्षञ्चवैकुण्ठेच महीयते॥५

चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम् । दानं नारायणक्षेत्रेफलंकोटिगुणं भवेत् ॥६॥

गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम् । वर्षाणामयुतञ्चैव चन्द्रलोके महीयते ॥७

श्च पयस्विनीदानं करोति ब्राह्मणाय च । तल्लोममानवर्षञ्च वैकुण्ठे च महीयते ॥ ८॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम् । महीयते स वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

यो ददाति ब्राह्मणाय छत्रञ्च सुमनोहरम् । वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये ॥

विप्राय पादुकायुग्मं यो ददाति च भारते । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतंसति॥११॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शय्यां दिव्यां मनोहराम् । महीयतेचन्द्रलोकेयावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

यो ददाति प्रदीपञ्च देवाय ब्राह्मणाय च । यावन्मन्वन्तरं सोऽपि ब्रह्मलोके महीयते ॥

सम्प्राप्य मानवीं योनिं चक्षुष्मांश्च भवेद्ध्रुवम् । नयातियमलोकञ्चतेनपुण्येन सुन्दरि ॥

करोति गजदानञ्च यो हि विप्राय भारते । यावदिन्द्रादिदेवम्यलोकेचार्द्धासने वसेत् ॥

भारते योऽश्वदानञ्च करोति ब्राह्मणाय च । मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

ष्टां शिविकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च । महीयतेविष्णुलोकेयावन्मन्वन्तरंसति ॥

यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम् । महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम् ॥
धान्याचलं यो ददाति ब्राह्मणाय च भारते । सच धान्यप्रमाणाब्दं विष्णुलोके महीयते ॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवीभवेत्सुखी। दातागृहीतातौद्वौचध्रुवंवैकुण्ठगामिनौ ॥
सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः । स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते॥२१॥
यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेद्धरेः । पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥२२॥
इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम् । निश्चितं निवसेत्तत्रशतमन्वन्तरावधि॥
फलमुत्तरफल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत् । कल्पान्तजीवीसभवेदित्याहकमलोद्भवः॥
तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते । तिलप्रमाणवर्षञ्च मोदतेविष्णुमन्दिरे ॥२५
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चिरजीवी भवेत्सुखी । ताम्रपात्रस्थदानेनद्विगुणञ्चफलंलभेत्॥
सालङ्कृताञ्चभोग्याञ्चसवस्त्रांसुन्दरींप्रियाम् । योददातिब्राह्मणायभारतेचपतिव्रताम्॥
महीयते चन्द्रलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश । तत्र स्ववेंश्यया सार्द्धंमोदतेच दिवानिशम् ॥
ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुतं सति । दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते ॥
ततो जन्मसहस्रञ्च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम् ।
सतीं सौभाग्ययुक्ताञ्च कोमलां प्रियवादिनीम् ॥३० ॥
ददाति सफलं वृक्षं ब्राह्मणाय च यो नरः । फलप्रमाणवर्षञ्च शक्रलोके महीयते ॥३१॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य लभते सुतमुत्तमम् । सफलानाञ्च वृक्षाणांसहस्रञ्चप्रशंसितम् ॥
केवलं फलदानञ्च ब्राह्मणाय ददाति यः । सुचिरं स्वर्गवासञ्च कृत्वायाति च भारतम् ।
नानाद्रव्यसमायुक्तं नानाशस्यसमन्वितम् । ददातियश्चविप्रायभारतेविपुलं गृहम् ॥३४॥
कुबेरलोके वसति स च मन्वन्तरावधि । ततः स्वयोनिं संप्राप्यमहांश्चधनवानभवेत् ॥
यो जनः शस्यसंयुक्तां भूमिञ्चरुचिरांसति । ददातिभक्त्याविप्रायपुण्यक्षेत्रेच या सति ॥
महीयतेसवैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम् । पुनः स्वयोनिं संप्राप्य महांश्चभूमिमानभवेत् ॥
तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम् । श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः ॥
लक्षमन्वन्तरं चैव वैकुण्ठे स महीयते ॥३९॥
सप्रजञ्च प्रशस्तञ्च ग्रामं दद्याद्द्विजातये ।
ततः स्वयोनिं संप्राप्य ग्रामाढ्यं लभेद् ध्रुवम् । न जहातिचतंपृथ्वीजन्मनांलक्षमेव च ॥

सप्रजं सुप्रकृष्टञ्च पक्वशस्यसमन्वितम् । नानापुष्करिणीवृक्षैः फलभोगसमन्वितम् ॥
नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि । महीयते स वैकुण्ठे दशलक्षेन्द्रकालकम् ॥४२
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य राजेन्द्रोभारतेभवेत् । नगराणाञ्च नियुतं लभते नात्र संशयः ॥
धरा तं न जहात्येव जन्मनां नियुतं ध्रुवम् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तो भवेदेवमहीतले ॥४४॥
नगराणाञ्च शतकं देशं यो हि द्विजायते । सुप्रकृष्टप्रजायुक्तं ददाति भक्तिपूर्वकम् ॥४५
वापीतड़ागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम् । महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि ॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य जम्बुद्वीपपतिर्भवेत् । परमैश्वर्य्यसंयुक्तो यथाशक्रस्तथा भुवि ॥
मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेवच । कल्पान्तजीवी स भवेद्राजराजेश्वरोमहान् ॥
स्वाधिकारं समग्रञ्च यो ददाति द्विजातये । चतुर्गुणं फलं चातो भवेत्तस्यन संशयः ॥
जम्बूद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणायपतिव्रते । फलं शतगुणञ्चातो भवेत्तस्य न संशयः ॥५०
सप्तद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानुसेविनः । सर्वेषां तपसां कर्त्तुः सर्वोपवासकारिणः ॥५१
सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च । अस्त्येव पुनरावृत्तिं र्नभक्तस्य हरेरहो ॥५२॥

असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यन्ति वैष्णवाः सति ।
निवसन्ति हि गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥५३॥

विष्णुमन्त्रोपासकश्च विहाय मानवीं तनुम् । बिभर्त्तिदिव्यरूपञ्च जन्ममृत्युजरापहम् ॥
लब्ध्वाविष्णोश्चसारूप्यंविष्णुसेवांकरोतिच । सचपश्यतिगोलोकेऽसंख्यंप्राकृतं लयम्
नश्यन्तिदेवाःसिद्धाश्चविश्वानिनिखिलानिच । कृष्णभक्तानतश्यन्तिजन्ममृत्युजराहराः ॥
कार्त्तिके तुलसीदानं करोतिहरये च यः । युगं पत्रप्रमाणञ्च मोदते हरिमन्दिरे ॥५७॥
पुनः स्वयोनिंसंप्राप्य हरिभक्तिं लभेत् ध्रुवम् । सुखीच चिरजीवीच स भवेद्भारते भुवि
घृतप्रदीपं हरये कार्त्तिके यो ददाति च । पलप्रमाणवर्षञ्च मोदते हरिमन्दिरे ॥ ५९ ॥

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिंलभेत् ध्रुवम् ।
महाधनाढ्यः स भवेच्चक्षुष्मांश्चैव दीप्तिमान् ॥ ६० ॥

माघे यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः । युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे ॥६१
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य विष्णुभक्तिंलभेद्ध्रुवम् । जितेन्द्रियाणांप्रवरःसभवेद्भारतेभुवि ॥

माघे यः स्नाति गङ्गायां प्रयागे चारुणोदये । वैकुण्ठेमोदतेसोऽपिलक्षमन्वन्तरावधि ॥
पुनःस्वयोनिं संप्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेत् ध्रुवम् । त्यक्त्वामानुषदेहंपुनर्यातिहरेःपदम् ।
नास्ति तत् पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले । करोति हरिदास्यञ्चलब्ध्वासारूप्यमेवच ॥

नित्यस्नायी च गङ्गायां स पूतः सूर्यवद् भुवि ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ॥ ६६ ॥

तस्यैव पादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा । मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥
पुनः स्वयोनिं संप्राप्य तपस्वीप्रवरोभवेत् । स्वधर्मनिरतःशुद्धोविद्वांश्चसुजितेन्द्रियः ॥
मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढंतपति भास्करे । भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम् ॥६९
मोदते स च वैकुण्ठेयावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुनः स्वयोनिंसंप्राप्यसुखीनिरुजोभवेत् ॥
वैशाखे हरये भक्त्या यो ददाति च चन्दनम् । युगषष्टिसहस्राणिमोदते विष्णुमन्दिरे ॥

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत् ॥७१॥

वैशाखे शक्तुदानञ्च यः करोति द्विजातये । शक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदतेविष्णुमन्दिरे ॥७२
करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । शतजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः
वैकुण्ठेमोदतेसोऽपियावदिन्द्राश्चतुर्दश । पुनःस्वयोनिंसंप्राप्यकृष्णभक्तिंलभेद्ध्रुवम् ।
इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः । मोदते शिवलोके च सप्तमन्वन्तरावधि ॥७५
शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः । पत्रप्रमाणञ्च युगं मोदते शिवमन्दिरे ।

पुनः स्वयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ।
विद्यावान् पुत्रवान् श्रीमान् प्रजावान् भूमिवान् भवेत् ॥७७॥

चैत्रमासेऽथवा माघे शङ्करं योऽर्चयेद्व्रती । करोतिनर्तनंभक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम्
मासं वाऽप्यर्द्धमासं वा दशसप्तदिनानि वा । दिनमानं युगं सोऽपि शिवलोकेमहीयते
श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते नरः । सप्तमन्वन्तरं यावन्मोदतेविष्णुमन्दिरे ॥८
पुनःस्वयोनिंसंप्राप्यरामभक्तिंलभेद्ध्रुवम् । जितेन्द्रियाणांप्रवरोमहांश्चधार्मिकोभवेत्
... ं महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च । महिषैश्छागलैर्मेषैरिक्षुकुष्माण्डकैस्तथा ॥८
... धूपदीपादिभिस्तथा । नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलैः ॥८२

शिवलोके वसेत्सोऽपिसप्तमन्वन्तरावधि। पुनःस्वयोनिंसंप्राप्यबुद्धिश्च निर्मलांलभेत् ॥
अचलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रादिवर्द्धिनीम्। महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः ॥
राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः ॥८५॥
भाद्रशुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीञ्च योऽर्चयेत् ॥ ८६ ॥
नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते। दत्त्वातस्यैप्रकृष्टानिचोपचाराणि षोड़श: ॥
वैकुण्ठे मोदतेसोऽपियावच्चन्द्रदिवाकरौ। पुनःस्वयोनिंसंप्राप्यराजराजेश्वरो भवेत् ॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायाञ्चकृत्वासुरासमण्डलम्। गोपानांशतकंकृत्वागोपीनांशतकंतथा ॥
शिलायां प्रतिमायां वा श्रीकृष्णंराधयासह। भारतेपूजयेद्दत्त्वाचोपचाराणिषोड़श: ॥
गोलोके च वसेत् सोऽपियावद्वैब्रह्मणोवयः। भारतंपुनरागत्यहरिभक्तिलभेद्ध्रुवम् ॥
क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरपि। देहं त्यक्त्वा च गोलोकंपुनरेवप्रयातिसः ॥
तत्र कृष्णस्य सारूप्यं संप्राप्य पार्षदोभवेत्। पुनस्तत्पतनंनास्तिजरामृत्युहरोमहान् ॥
शुक्लां वाऽप्यथवाकृष्णांकरोत्येकादशीव्रतम्। वैकुण्ठेमोदतेसोऽपियावद्वैब्रह्मणो वयः
भारतं पुनरागत्य हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम्। पुनर्यातिचवैकुण्ठंनतस्यपतनं भवेत् ॥८७॥
भाद्रे शुक्ले च द्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः। षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोकेमहीयते ॥८८
रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षतः। सम्पूज्यार्कंहविष्यान्नंयःकरोतिच भारते ॥
महीयते सोऽर्कलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ। भारतं पुनरागत्य चारोगीश्रीयुतो भवेत् ॥
ज्यैष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत्। महीयतेब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि ॥८९
पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः। चिरञ्जीवी भवेत्सोऽपिज्ञानवान्सम्पदायुतः ॥
माघस्य शुक्लपञ्चम्यांपूजयेद्यःसरस्वतीम्। संयतोभक्तितोदत्त्वाचोपचाराणिषोड़श: ॥
महीयते स वैकुण्ठे यावद् ब्रह्म दिवानिशम्। संप्राप्यचपुनर्जन्मसभवेत्कविपण्डितः ॥
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च। नित्यंजीवनपर्यन्तंभक्तियुक्तश्चभारते ॥
गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे। मोदते हरिणासार्द्धंक्रीड़ाकौतुकमङ्गलैः ॥
ततः पुनरिहागत्य विष्णुभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
ततः पुनरिहागत्यराजराजेश्वरो भवेत्। गोमांश्च पुत्रवान्विद्वान्ज्ञानवान्सर्वतःसुखी ॥

भोजयेद्‌ यो हि मिष्टान्नंब्राह्मणेभ्यश्चभारते । विप्रलोमप्रमाणाब्दंमोदतेविप
ततः पुनरिहागत्य ससुखीधनवान् भवेत् । विद्वान् सुचिरजीवीचश्रीमानतु
यो भक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते । युगनामप्रमाणञ्च विष्णुलोके
ततः पुनरिहागत्य विष्णभक्तिलभेद्‌ ध्रुवम् । यदि नारायणक्षेत्रे फलंकोटि
नाम्नां कोटिहरेर्यो हि क्षेत्रेनारायणे जपेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो
लभते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते । लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्यप
ः शिवं पूजयेन्नित्यंकृत्वालिङ्गञ्चपार्थिवम् । यावज्जीवनपर्य्यन्तंसयातिशिव
रुद्रां रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते । ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भार
शेलाञ्च योऽर्चयेन्नित्यंशिलातोयञ्च भक्षति । महीयतेसवैकुण्ठेयावद्वैब्रह्म
ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्ति सुदुर्लभम् । महीयते विष्णुलोके नतस्यपत
पांसि चैव सर्वाणि व्रतानिनिखिलानि च । कृत्वातिष्ठति वैकुण्ठेयावदिन्द्रश्च
ततो लब्ध्वा पुनर्जन्मराजेन्द्रोभारतेभवेत् । ततो मुक्तोभवेत्पश्चात् पुनर्जन्म
ः स्नाति सर्वतीर्थेपुभुविकृत्वाप्रदक्षिणम् । सचनिर्वाणतांयाति नतज्जन्मम
ण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधंकरोति च । अश्वलोमप्रमाणाब्दंशक्रस्यार्द्धासं
तुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः । नरमेधेऽश्वमेधार्द्धं गोमेधे च तदेव
त्रिष्टौ च तदर्द्धञ्च सुपुत्रंच लभेद्‌ध्रुवम् । लभते लाङ्गलेष्टौ च गोमेधसदृशंफलम
तुसमानञ्च विप्रेष्टौ वृद्धियागे च तत्फलम् । पद्मयज्ञेतदर्द्धञ्च फलमाप्नोति
रलोके च विशोकञ्च पश्चार्द्धं स्वर्गमश्नुते । विजये विजयी राजा स्वर्गंपद्मसम
जापत्ये प्रजालाभो भूवृद्धिर्भूतांभवेत् । इह राजश्रियं लब्ध्वा पश्चात्स्वर्गं

ऋद्धियागे महैश्वर्य्यं स्वर्गं पद्मसमं भवेत् ।

ष्णुयज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि । ब्रह्मणा च कृतः पूर्वं महासम्भार
कल्पद्रौ यत्र दुराराद्धुर्याः सन्ति । गोपुश्च नन्दिनं विप्राः नन्दी विप्रांश्चप
[illegible] यमश्च चन्द्रशेखरः । चकार विष्णुयज्ञञ्च पुरा दक्षप्रजापतिः

शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा । राजसूय सहस्राणां समृद्धया च क्रतुर्भवेत् ॥
राजसूयसहस्राणांफलमाप्नोतिनिश्चितम् । विष्णुयज्ञात्परोयज्ञोनास्तिवेदेफलप्रदः ॥
बहुकल्पान्तजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् । ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्योभवेदिह ।
देवानाञ्चयथाविष्णुर्वैष्णवानांयथाशिवः । शास्त्राणाञ्चयथावेदाआश्रमाणाञ्चब्राह्मणाः ।
तीर्थानाञ्च यथागङ्गा पवित्राणाञ्च वैष्णवाः । एकादशी व्रतानाञ्चपुष्पाणांतुलसीयथा ॥
नक्षत्राणां यथाचन्द्रःपक्षिणांगरुडोयथा । यथा स्त्रीणाञ्चप्रकृतिःआधाराणांवसुन्धरा ॥
शीघ्रगानाञ्चेन्द्रियाणां चञ्चलानांयथामनः । प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजेशानांप्रजापतिः ॥
वृन्दावनं वनानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा । श्रीमताञ्च यथा श्रीश्च विदुषाञ्चसरस्वती ॥
पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यनाञ्चराधिका । विष्णुयज्ञस्तथा वत्सेयज्ञेषुचमहानिति ॥
अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं लभते ध्रुवम् । सहस्रेण विष्णुपदं संप्राप्य पृथुरेव च ॥१३८॥
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । सर्वेषाञ्चव्रतानाञ्चतपसांफलमेवच ॥१३९॥
पाठश्चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा । फलं बीजमिदं सर्वं मुक्तिदंकृष्णसेवनम् ॥
पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः । निरूपितं सारभूतंकृष्णपादाम्बुजार्चनम् ॥१४१॥
तद्वर्णनञ्च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्त्तनम् । तत्स्तोत्रं स्मरणञ्चैववन्दनं जप एव च १४२
तत्पादोदकनैवेद्यभक्षणं नित्यमेव च । सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति ॥१४३॥
भज कृष्णं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् । गृहाणस्वामिनंवत्सेसुखं गच्छस्वमन्दिरम् ॥
एतत्ते कथितं सर्वं विपाकं कर्मणा नृणाम् । सर्वेप्सितं सर्वमतं परं तत्त्वप्रदं नृणाम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्री यमसंवादे सावित्र्युपाख्याने शुभकर्मविपाकप्रकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

---

पांशुभोजं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम् । उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं दण्डताडनम् ॥२१॥
जालबन्धं देहचूर्णं दलनं शोषणं दरम् । सर्पज्वालामुखं जिह्मं धूमान्धं नागवेष्टनम् ॥
कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च । नियुक्तैः किङ्करगणैर्वक्षितानि च सन्ततम् ।
दण्डहस्तैः शूलहस्तैः पाशहस्तैर्भयङ्करैः । शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैर्मदमत्तैश्च दारुणैः ॥ २२॥
तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्दुर्निवार्यैश्च सर्वतः । तेजस्विभिश्च निःशङ्कैस्ताम्रपिङ्गललोचनैः ॥२३
योगयुक्तैः सिद्धयोगैर्नानारूपधरैर्वरैः । आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजातिभिः ॥
स्वकर्मनिरतैः शैवैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः । अदृष्टैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धियोगिभिरेव च ॥
स्वधर्मनिरतैर्वापि विरतैर्वा स्वतन्त्रकैः । बलवद्भिश्च निःशङ्कैः स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः ॥
एतत्ते कथितं साध्वि कुण्डसंख्यानिरूपणम् । येषां निवासो यत् कुण्डं निबोध कथयामि ते ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने
यमसावित्रीसंवादे नरककुण्डसंख्यानं नामोनत्रिंशोऽध्यायः ।

---

## त्रिंशोऽध्यायः

### पापिनां नरकनिरूपणम् ।

यम उवाच ।

हरिसेवारतः शुद्धो योगी सिद्धो व्रती सति । तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं यतिः
कटुवाचा बान्धवांश्च बलत्वेन च यो नरः । दग्धान् करोति बलवान् वह्निकुण्डं प्रयाति सः
गात्रलोमप्रमाणाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने । पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रे दग्धस्त्रिजन्मनि
ब्राह्मणं तृषितं क्षुब्धं प्रततं गृहमागतम् । न भोजयति यो मूढस्तप्तकुण्डं प्रयाति सः ॥
[illegible]लोमप्रमाणाब्दं स्थित्वा तत्र च दुःखितः । ततस्थले वह्निकुण्डे पक्षी च सप्तजन्मसु
[illegible] श्राद्धवासरे । वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति यो हि मान[illegible]
[illegible] क्षारकुण्डञ्च सूत्रमानाब्दमेव च । स व्रजेद्रजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते ॥७

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कुण्डञ्च प्रयाति सः॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति। षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि॥६।
परकीयतडागे च तड़ागं यः करोति च। उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः १०॥
तद्रेणुमानवर्षञ्च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। भारते गोधिका चैव स भवेत् सप्तजन्मसु॥११
एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयातिसः। पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥
पूर्णमब्दशतञ्चैव सः प्रेतो भारते भवेत्। श्लेष्ममूत्रगरञ्चैव पूयं भुङ्क्ते ततःशुचिः॥
पितरं मातरञ्चैव गुरुं भार्य्यां सुतं सुताम्। यो न पुष्णात्यनाथञ्च गरकुण्डं प्रयाति सः
पूर्णमब्दसहस्रञ्च तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः॥१५
दृष्ट्वाऽतिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः। पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। इहैव लभतेचान्तेदूषिकाकुण्डमाव्रजेत्॥
पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। ततो नरो भवेद् भूमौ दरिद्रःसप्तजन्मसु॥१८॥
दत्त्वा द्रव्यञ्च विप्रायचान्यस्मैदीयतेयदि। सतिष्ठतिवसाकुण्डे तद्भोजीशतवत्सरम्॥
ततोभवेत् सचाण्डालस्त्रिजन्मनिततःशुचिः। कृकलासोभवेत्सोऽपिभारतेसप्तजन्मसु॥
ततो भवेन्मानवश्च दरिद्रोऽल्पायुरेव च॥२०॥
कामांसं कामिनी वापि कामिनो वापुमानथ। यः शुक्रंपाययत्येवशुक्रकुण्डं प्रयातिसः॥
पूर्णमब्दशतञ्चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति। योनिकृमिः शताब्दञ्चभवेद् भुवि ततः शुचिः॥
सन्ताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातञ्चकारयेत्। सचतिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजीशतवत्सरम्॥
ततो भवेद् व्याधजन्म सप्तजन्मसु भारते। ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण च॥
अश्रुस्रवन्तं गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा च गद्गदम्। श्रीकृष्णगुणसंगीते हसत्येवहियोनरः॥
स वसेदश्रुकुण्डे चतद्भोजीशतवत्सरम्। ततो भवेत् सचाण्डालोत्रिजन्मनिततःशुचिः॥
करोति खलतां शश्वदशुद्धहृदयो नरः। कुण्डंगात्रमलानाञ्च स च यातिदशाब्दकम्॥
ततः स गर्दभींयोनिमवाप्नोतित्रिजन्मनि। त्रिजन्मनिच शार्गालींततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम्
बधिरं यो हसत्येवनिन्दत्येव हि मानवः। स वसेत्कर्णविट्कुण्डेतद्भोजीशतवत्सरम्॥
ततो भवेत् स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु। सप्तजन्मस्वङ्गहीनस्ततः शुद्धिंलभेद्ध्रुवम्॥

लोमाल् स्वपालनार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः ।
मज्जाकुण्डे वसेत् सोऽपि तद्भोजी लक्षवर्षकम् ॥ ३१ ॥

ततो भवेत् स शशकोमीनश्चसप्तजन्मसु । एणादयश्चकर्मभ्यस्ततःशुद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥
स्वकन्यापालनंकृत्वाविक्रीणातिहियोनरः । अर्थलोभान्महामूढोमांसकुण्डंप्रयातिसः ॥
कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्रतिष्ठति । तञ्चकुण्डे प्रहारञ्च करोति यमकिङ्करः ॥३४॥
मांसभारं मूर्ध्निकृत्वारक्तधारांलिहेत्क्षुधा । ततो हि भारतेपापी कन्याविट्सुकृमिर्भवेत्
षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु । त्रिजन्मनि वराहश्चकुक्कुरःसप्तजन्मसु ॥३६॥
सप्तजन्मसु मण्डूको जलौका सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु काकश्चततःशुद्धिंलभेद्ध्रुवम् ॥
व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनाञ्च संयमे । न करोति क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु ॥
स च तिष्ठति कुण्डेषु नखादीनाञ्च सुन्दरि । तद्वेव दिनमानाब्दं तद्भोजीदण्डताड़ितः ॥
सकेशं पार्थिवं लिङ्गं यो वाऽर्चयति भारते । स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम् ॥
तदन्ते यावनीं योनिंप्रयातिहरकोपतः । शताब्दात् शुद्धिमाप्नोतिस्वकुलंलभतेध्रुवम् ॥
पितॄणां योविष्णुपदेपिण्डं नैवददाति च । स तिष्ठत्यस्थिकुण्डेचस्वलोमाब्दंमहोल्वणे ॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य खञ्जःसप्तसुजन्मसु । भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धोहि दण्डतः ॥
यः सेवते महामूढो गुर्विणीञ्च स्वकामिनीम् । प्रतप्तताम्रकुण्डेचशतवर्षंसतिष्ठति ॥४४॥
अवीरान्नञ्च यो भुङ्क्ते ऋतुस्नातान्नमेव च । लोहकुण्डे शताब्दञ्च सच तिष्ठतितापके ॥
स भवेद्रजकी योनिं वर्णकारोऽपि सप्तसु । महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
यो हि घर्माक्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत् । शतवर्षप्रमाणञ्च घर्मकुण्डे च तिष्ठति ॥४७॥
यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेव च । सच तप्तसुराकुण्डे शताब्दंतिष्ठति द्विजः ॥
ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु । शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम् ॥
वाग्दुष्टाकटुवाचायास्ताड़येत्स्वामिनंसदा । तीक्ष्णकण्टककुण्डेसातद्भोजीतत्रतिष्ठति ॥
ताड़िता यमदूतेन दण्डेन च चतुर्युगम् । ततःउष्ट्रीश्वा सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः ॥५१॥
विषेण जीवनं हन्ति निर्दयो यो हि पामरः । विषकुण्डेच तद्भोजी सहस्राब्दञ्चतिष्ठति ॥
ततोभवेन्नरघाती च व्रणी च सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततःशुद्धोभवेद्ध्रुवम् ॥

दण्डेन ताडयेद्यो हि वृषञ्च वृषवाहकः । भृत्यद्वारा स्वतन्त्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥
प्रतप्ततैलकुण्डे च स तिष्ठति चतुर्युगम् । गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम् ॥
दण्डेन हन्ति जीवं यो लौहेनापि वड़िशेन वा । दन्तकुण्डे वसेत् सोऽपि वर्षाणामयुतं सति ॥
ततः स्वयोनिं संप्राप्य चोदरव्याधिसंयुतः । जन्मनैकेन क्लेशेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
यो भुङ्क्ते च वृथामांसं मत्स्यभोजी च ब्राह्मणः । हरेर्नैवेद्यभोजी च कृमिकुण्डं प्रयाति सः ॥
स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततो भवेत् म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततो द्विजः ॥
ब्राह्मणः शूद्रयाजी यः शूद्रश्राद्धान्नभोजकः । शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डं व्रजेद्ध्रुवम् ॥
यावल्लोमप्रमाणाब्दं यजमानस्य सुव्रते । ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति ॥६१॥
ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु । महाशूली दरिद्रश्च ततः शुद्धः पुनर्द्विजः ॥६२॥
कृष्णपादमस्तकस्थं सर्पं हन्ति च यो नरः । स्वात्मलोमप्रमाणाब्दं सर्पकुण्डं प्रयाति सः ॥

सर्पेण भक्षितः सोऽपि यमदूतेन ताडितः ।
वसेच्च सर्पविड्भोजी ततः सर्पो भवेद्ध्रुवम् ॥ ६४ ॥

ततो भवेत् मानवश्चैवाल्पायुर्दद्रुसंयुतः । महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षितो ध्रुवम् ॥
विधिप्रदत्तजीवांश्च क्षुद्रजन्तूंश्च हन्ति यः । स दंशमशयोः कुण्डे जन्ममानाब्दकं वसेत् ॥
दिवानिशं भक्षितस्तैर्निराहारश्च शब्दरन् । हस्तपादादिबद्धश्च यमदूतेन ताडितः ॥६७॥
ततो भवेत् क्षुद्रजन्तुर्जातिश्च यावतां स्मृता । ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः ॥
यो मूढो मधु गृह्णाति हत्वा च मधुमक्षिकाः । स च गरलेकुण्डे जीविमानाब्दकं वसेत् ॥
भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताडितः । ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
दण्डं करोत्यदण्ड्ये च विप्रदण्डं करोति च । स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानाञ्च प्रयाति च ॥
स्वलोममानवर्षञ्च तत्र तिष्ठत्यहर्निशम् । शब्दरन् भक्षितस्तैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ।७२।
अर्थलोभेन यो भूपः प्रजादण्डं करोति च । वृश्चिकानाञ्च कुण्डेषु स्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥
ततो वृश्चिकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते । ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधियुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥
ब्राह्मणः शस्त्रधारी योऽप्यन्येषां धावको भवेत् । सन्ध्याहीनश्च मूढश्च हरिभक्तिविहीनकः ॥
स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कण्टकादिषु शरादिषु । विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः

कारागारे सान्धकारे निबध्नाति प्रजाश्च यः । प्रमत्तःस्वल्पदोषेण गोलकुण्डंप्रयातिम
तत्कुण्डं पक्वतोयानां सान्धकारं भयङ्करम् । तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुतंगोलकुण्डकम्
कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च । ततो भवेत् प्रजाभृत्यस्ततः शुद्धो नरो भुवि
सरोवरादुत्थितांश्च शफरादीन् हन्ति यः सति । नक्रकण्टकमानाब्दंनक्रकुण्डं प्रयाति सः
ततो नक्रादिजातिश्च भवेत्सप्तादिषु ध्रुवम् । ततः सद्योऽपि शुद्धो हि दण्डेनैव नरः पुनः
वक्षःश्रोणीस्तनास्यञ्च यः पश्यति परस्त्रियाः । कामेनकामुकीयां हि पुण्यक्षेत्रेच भारते
स वसेत्काककुण्डेच काकैश्च क्षुण्णलोचनः । ततःस्वलोममानाब्दं ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि
सप्तजन्मदरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी । भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक् ततः ॥
यो भारते ताम्रचौरो लौहचौरश्च सुन्दरि । स च लोमप्रमाणाब्दं वाजकुण्डं प्रयातिसः
तत्रैव वाजविड्भोजी वाजैश्च क्षुण्णलोचनः । ताड़ितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
भारते देवचौरश्च देवद्रव्यादिहारकः । सुदुष्करे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम् ॥
देहदग्धो हि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत् । ताड़ितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ ८८ ॥
रौप्यगव्यांशुकानाञ्च यश्चौरः सुरविप्रयोः । तप्तपाषाणकुण्डेचस्वलोमाब्दं वसेद्ध्रुवम् ॥
त्रिजन्मनिबकः सोऽपि श्वेतहंसस्त्रिजन्मनि । जन्मैकंशङ्खचिल्लश्चततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः
ततो रक्तविकारी च शूली च मानवो भवेत् । सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धोभवेन्नरः

रैत्यकांस्यादिपात्रञ्च यो हरेत् सुरविप्रयोः ।
तीक्ष्णपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम् ॥ ९२ ॥

स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु । ततोऽधिकाङ्गयुक्तश्च पादरोगी ततः शुचिः ॥
पुंश्चल्यन्नञ्च यो भुङ्क्ते पुंश्चलीजीव्यजीवनः । स्वलोममानवर्षञ्चलालाकुण्डे वसेद्ध्रुवम्
ताड़ितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततश्चक्षुःशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः ।९५।
म्लेच्छसेवी मसीजीवी योविप्रोभारते भुवि । सचतत्रमसीकुण्डेस्वलोमाब्दंवसेद्ध्रुवम्
ताड़ितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति । ततस्त्रिजन्मनि भवेद् कृष्णवर्णः पशुः सति
त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णसर्पस्त्रिजन्मनि । ततश्च तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
धान्यादिशस्यंताम्बूलंयोहरेत् सुरविप्रयोः । आसनञ्च तथा तल्पं चूर्णकुण्डंप्रयातिसः

ताब्दं तत्रनिवसेत् यमदूतेन ताड़ितः । ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि १०
तो भवेद् मानवश्च काशव्याधियुतो भुवि । वंशहीनो दरिद्रश्चैवाल्पायुश्च ततः शुचि
ः करोति विप्राणां हत्वा द्रव्यञ्च यो नरः । स वसेद्धक्रकुण्डे शताब्दंदण्डताड़ित
तो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि । व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचि
न्धवेषु च विप्रेषु करोति वक्रतां नरः । प्रयाति वज्रकुण्डञ्च वसेत्तत्र युगं सति ॥
तो भवेत् स वक्राङ्गो हीनांगः सप्तजन्मसु । दरिद्रो वंशहीनश्चभार्य्याहीनस्ततःशुचिः
वने कूर्ममांसञ्च ब्राह्मणो यो हि भक्षति। कूर्मकुण्डेवसेत् सोऽपिशताब्दंकूर्मभक्षितः
ो भवेत् कूर्मजन्म त्रिजन्मनि च शूकरः । त्रिजन्मनिबिड़ालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि ॥
तैलादिकञ्चैव यो हरेत् सुरविप्रयोः । स यातिज्वालाकुण्डञ्चभस्मकुण्डञ्चपातकी
ः स्थित्वा शताब्दञ्च स भवेत्तैलपायिका । सप्तजन्ममत्स्यरंगो मूषिकश्चततःशुचिः
न्धितैलं धात्रीञ्च गन्धद्रव्यं तथैव वा । भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः ॥
द्दुर्गन्धकुण्डे च दुर्गन्धञ्च लभेत् सदा । स्वलोममानवर्षञ्चततोदुर्गन्धिकाभवेत्
न्धिका सप्तजन्म मृगनाभिस्त्रिजन्मनि । सप्तजन्मसुगन्धिश्च ततो हि मानवोभवेत्
नैव सलत्वेन हिंसारूपेण वा सति । बली च यो हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम् ॥
वसेत्तप्तशूर्मौ च भवेत्तप्तो दिवानिशम् । तप्ततैले यथाजीवो दग्धो भ्रमति सन्ततम्
नसाच भवत्येव भोगदेहो न नश्यति । सप्तमन्वन्तरं पापी सन्ततस्तत्र तिष्ठति ॥
करोत्यनाहारो यमदूतेन ताड़ितः । षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिर्भारते ततः ।११६।
भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः । ततःस्वयोनिं संप्राप्य शुभकर्मा भवेत्पुनः
त्ति जीविनः खङ्गैर्दयाहीनः सुदारुणः । नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते ।११८
ापत्रे स वसेच्च यावदिन्द्राश्चतुर्दशः । तेषु चेद्ब्राह्मणानहन्ति शतमन्वन्तरं तदा ॥
ांगश्च भवेत्पापी खड्गधारेण सन्ततम् । अनाहारः शब्दकृच्च यमदूतेन ताड़ितः ॥
सञ्चासः शतजन्मानि भारते शूकरो भवेत् ।
कुक्कुरः शतजन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु ॥ १२१ ॥
श्च सप्तजन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मनि । जन्मसप्त गण्डकश्च महिषश्च त्रिजन्मनि

ग्रामं वा नगरं वापिदाहनंयः करोति च । क्षुरधारे वसेत् सोऽपिच्छिन्नांगस्त्रियुगं सति
ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमेन्महीम् । सप्तजन्ममेध्यभोजी खद्योतः सप्तजन्मसु
ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मसु । सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥
परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिन्दां करोति यः । परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिन्दकः ॥
सूचीमुखे स च वसेत्सूचीविद्धोयुगत्रयम् । ततो भवेद्वृश्चिकश्चसर्पश्चसप्तजन्मसु॥१२७
वज्रकीटः सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम् । ततोभवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः

गृहिणाञ्च गृहं भित्वा वस्तुस्तेयं करोति यः ।
गाश्च छागांश्च मेषांश्च याति गोधामुखञ्च सः ॥ १२९ ॥

ततो भवेत् सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः । त्रिजन्ममेषजातिश्च छागजातिस्त्रिजन्मनि
ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः । भार्य्याहीनोबन्धुहीनः सन्तापी च ततःशुचिः
सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं युगम् । ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः
हन्ति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नरांस्तथा । स याति गजदंशञ्च महापापी युगत्रयम् ॥
ताड़ितो यमदूतेन गजदन्तेन सन्ततम् । स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि ॥

गोजाति र्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥ १३४ ॥

जलं पिबन्तींतृषितां गां वारयति यो नरः । सच्छुश्रूषाविहीनश्च गोमुखं याति मानवः॥
नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम् । तत्र तिष्ठति सन्तप्तो यावन्मन्वन्तरावधि ॥
ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः । सप्तजन्मान्त्यजातिश्च ततःशुद्धो भवेन्नरः

गोहत्यां ब्रह्महत्याञ्च यः करोत्यातिदेशिकीम् ।
यो हि गच्छेदगम्याञ्च सन्ध्याहीनोऽप्यदीक्षितः ॥१३८॥

प्रतिग्रही च तीर्थेषु ग्रामयाजी च देवलः । शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः ॥
गोहत्यां ब्रह्महत्याञ्च स्त्रीहत्याञ्चकरोतियः । मित्रहत्यां भ्रूणहत्यां महापापीच भारते॥
कुम्भीपाके सच वसेत् यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ताड़ितो यमदूतेन चूर्णमानश्च सन्ततम् ॥
क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कण्टके । क्षणञ्च तप्ततैलेषु तप्ततोयेषु च क्षणम् ॥१४२
तप्तपाषाणे तप्तलौहे क्षणं ततः । गृध्रकोटिसहस्राणि शतजन्मानि शूकरः ॥

च सप्तजन्मानि सर्पश्च सप्तजन्मसु । षष्टिवर्षसहस्राणि ततश्च विट्कृमिर्भवेत् ॥
ततो भवेत् सव्रणो गलत्कुष्ठी दरिद्रकः ।
यक्ष्माग्रस्तो वंशहीनो भार्य्याहीनस्ततः शुचिः ॥ ४९ ॥

सावित्र्युवाच ।

हत्याचगोहत्याकिंविधापातिदेशिकी । कावानृणामगम्याचाकोवा सन्ध्याविहीनकः
दीक्षितःपुमान् कोवा कोवा तीर्थप्रतिग्रही । द्विजःकोवाग्रामयाजी कोवाविप्रश्चदेवलः
शूद्राणां सूपकारः कः प्रमत्तो वृषलीपतिः । एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदांवरः ॥

यम उवाच ।

कृष्णेच तदर्चायां मृण्मय्यां प्रकृतौ तथा । शिवेच शिवलिङ्गेवा सूर्ये सूर्यमणौतथा
णेशे वा तदर्चायामेवं सर्वत्र सुन्दरि । यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
गुरौ स्वेष्टदेवे वा जन्मदातरि मातरि । करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
ष्णवेष्वन्यभक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च । करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यांलभेत्तु सः ॥
ो मूढो विष्णुनैवेद्ये चान्यनैवेद्यके तथा । हरेः पादोदकेष्वन्यदेवेपादोदके तथा ॥
करोति समतां यो हि ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ १५३ ॥
र्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे । सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि ॥
ायया ऽनेकरूपे वाप्येक एव हि निर्गुणे । करोत्यन्येन समतां ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥
पेतृदेवार्चनां पौर्वापरां वेदविनिर्मिताम् ॥ यः करोति निषेधञ्च ब्रह्महत्यां लभेत्तुसः ॥
े निन्दन्ति हृषीकेशं तन्मन्त्रोपासकन्तथा । पवित्राणां पवित्रञ्च ब्रह्महत्यां लभन्तिते ॥
शेवं शिवस्वरूपञ्च कृष्णप्राणाधिकं प्रियम् । पवित्राणां पवित्रञ्च ज्ञानानन्दं सनातनम् ।
प्रधानं वैष्णवानाञ्चदेवानां सेव्यमीश्वरम् । ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यांलभन्तिते ।
ये निन्दन्ति विष्णुमायां विष्णुभक्तिप्रदां सतीम् ।
सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च प्रकृतिं सर्वमातरम् ॥ १६० ॥
सर्वदेवीस्वरूपाञ्च सर्वाद्यां सर्ववन्दिताम् । सर्वकारणरूपाञ्च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते ॥
कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं पुण्यदां पराम् । शिवरात्रिं तथाचैकादशीं वारं रवेस्तथा ॥

पञ्चपर्वाणिपुण्यानि ये न कुर्वन्ति मानवाः । लभन्तेब्रह्महत्यांते चाण्डालाधिकापि
अम्बुवाच्यां भूखननं जले शौचादिकञ्च ये । कुर्वन्ति भारते यन्से ब्रह्महत्यां लभन्ति

गुरुञ्च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम् ।
अनाथान् यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः ॥ १६५ ॥

विवाहो यस्य न भवेत् न पश्यति सुतञ्च यः । हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्
गामाहारञ्च कुर्वन्तंपिबन्तंयो निवारयेत् । याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्याञ्च लभेत्
दण्डैर्गांस्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहकः । दिनेदिने गवां हत्यां लभते नात्र संश
पादं ददातिवह्नौचगाश्च पादेनताडयेत् । गृहंविशेदधौताङ्घ्रिः स्नात्वा गोवधमालभेत्

यो भुङ्क्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धाङ्घ्रिरेव च ।
सूर्योदये च द्विर्भोजी स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ १७० ॥

अवीरान्नञ्चयोभुङ्क्तेयोनिर्जीवीचब्राह्मणः । यस्त्रिसन्ध्याविहीनश्चसगोहत्यांलभेद्ध्रुव
पितृंश्चपर्वकालेच तिथिकालेचदेवताम् । न सेवते तिथियोहि गोहत्यां सलभेद्ध्रुवम्
स्वभर्तरिचकृष्णेच भेदबुद्धिकरोतिया । कटूक्त्यातांडयेत् कान्तंसागोहत्यांलभेद्ध्रुवम्
गोमार्गंखननं कृत्वा ददते शस्यमेवच । तडागे वा तदूर्ध्वे वा स गोहत्यां लभेद्ध्रुव
प्रायश्चित्तंगोवधस्ययःकरोतिव्यतिक्रमम् । अर्थलोभादथाज्ञानात्सगोहत्यां लभेद्ध्रुवम्
राजके दैवके यत्नाद्गोस्वामी गां न पाययेत् । दुःखंददाति योमूढोगोहत्यांस लभेद्ध्रुवम्
प्राणिनं लङ्घयेद्द योहिदेवार्चायांस्तं जलम् । नैवेद्यंपुष्पमन्नञ्च,सगोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥
शश्वन्नास्तीतिवादीयोमिथ्यावादीप्रतारकः । देवद्वेषीगुरुद्वेषीस गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥
देवताप्रतिमांदृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणंसति । सम्भ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यांलभेद्ध्रुवम्

न दद्यात्याशिषं कोपात् प्रणताय च यो द्विजः ।
विद्यार्थिने च विद्याञ्च स गोहत्यां लभेद्ध्रुवम् ॥ १८० ॥

गोहत्याब्रह्महत्याचकथितातिदेशिकी । यथाश्रुतंसूर्यवक्त्रात्किंभूयःश्रोतुमिच्छसि ।

सावित्र्युवाच

वास्तवेचातिदेशेचसम्बन्धेपापपुण्ययोः । न्यूनाधिकेचकोभेदस्तन्मांव्याख्यातुमर्हसि ॥

यम उवाच

त्रापि वास्तवः श्रेष्ठोन्यूनातिदेशिकःसति । कुत्रातिदेशिकःश्रेष्ठोवास्तवोन्यूनएवच ॥
त्र वा समता साध्वि तयोर्वेदप्रमाणतः । करोतितत्रनास्थां यो गुरुहत्यांलभेत्तुसः ॥
ा परिचिते विप्रे विद्यामन्त्रप्रदातरि । गुरौ पितृत्वमारोपो वास्तवात् श्रेष्ठउच्यते ।
पेतुः शतगुणे माता मातुः शतगुणे तथा । विद्यामन्त्रप्रदाता च गुरुः पूज्यः श्रुतेर्मतः ॥
स्तो गुरुपत्नी च गौरवेण गरीयसी । यथेष्ट देवपत्नी चपूज्याचाभीष्टदेवता ॥१८७॥
प्रः शिवसमोयश्चविष्णुतुल्यपराक्रमः । राजातिदेशिकात्श्रेष्ठो वास्तवोगुणलक्षतः ॥
यं गङ्गासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः । ग्रहणे सूर्यशशिनोश्चात्रैवसमता तयोः ॥
ातिदेशिकहत्याया वास्तवश्च चतुर्गुणः । सम्मतः सर्वदेवानामित्याह कमलोद्भवः ॥
ातिदेशिकहत्याया भेदश्च कथितः सति । या या गम्यानृणामेव निबोध कथयामिते
चस्त्रीगम्या च सर्वेषामितिवेदेनिरूपिता । अगम्या च तदन्या या इतिवेदविदोविदुः ॥
ामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणुसुन्दरि । अन्यगम्याश्च या याश्च निबोध कथयामिते
ूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी । अन्यगम्या चनिन्द्या चलोके वेदेपतिव्रते ॥

शूद्रश्चेद् ब्राह्मणीं गच्छेद् ब्रह्महत्याशतं लभेत् ।
तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥१९५॥

यदि शूद्रांव्रजेद्विप्रोवृषलीपतिरेवसः । सभ्रष्टो विप्रजातेश्चचाण्डालात्सोऽधमःस्मृतः ॥
विष्ठासमश्च तत्पिण्डोमूत्रतुल्यञ्चतर्पणम् । तत्पितॄणां सुराणाञ्च पूजने तत्समंसति ॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यंसन्ध्याऽर्चातपसार्जितम् । द्विजस्यवृषलीभोगान्नश्यत्येवनसंशयः
ब्राह्मणश्च सुरापीति विड्भोजीवृषलीपतिः । हरिवासरभोजीचकुम्भीपाकं व्रजेद्ध्रुवम् ॥
गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीमातरं प्रसूम् । सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सति ॥
सोदरभ्रातृजायाञ्च मातुलानीं पितुप्रसूम् । मातुःप्रसूंतत्स्वसारंभगिनींभ्रातृकन्यकाम् ॥

शिष्याञ्च शिष्यपत्नीञ्च भागिनेयस्य कामिनीम् ।
भ्रातुः पुत्रप्रियाञ्चैवात्यगम्यामाह पद्मजः ॥ २०२ ॥

एतास्त्वेकामनेकां वा यो व्रजेन्मानवोऽधमः । समातृगामी वेदेषुब्रह्महत्याशतं लभेत् ॥

अकर्म्मार्होऽपि सोऽस्पृश्यो लोकेवेदेऽतिनिन्दितः ।
स याति कुम्भीपाकञ्च महापापी सुदुस्तरम् ॥ २०४ ॥
करोत्यशुद्धांसन्ध्याञ्चसन्ध्यांवानकरोतियः। त्रिसन्ध्यांवर्जयेद्योवासन्ध्याहीनश्चसद्विज
वैष्णवञ्च तथा शैवं शाक्तं सौरञ्च गाणपम् ।
योऽहङ्कारान्न गृह्णाति मन्त्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः ॥२०६॥
प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम् । तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भान्तरे वरे २०७
तत्र नारायणक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे हरेः पदे । वाराणस्यां वदर्य्याञ्च गङ्गासागरसङ्गमे ॥२०८॥
पुष्करे भास्करक्षेत्रे प्रभासे रासमण्डले । हरिद्वारे च केदारे सोमे वदरपावने ॥२०६॥
सरस्वती नदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने ।
गोदवर्य्याञ्च कौशिक्यां त्रिवेण्याञ्च हिमालये ॥२१०॥
एष्वन्यत्र यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः । स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाकं प्रयाति च ॥
शूद्रातिरिक्तयाजी यो ग्रामयाजी च कीर्त्तितः । तथा देवोपजीवी च देवलःपरिकीर्त्तितः ॥
शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः। सन्ध्यापूजाविहीनश्च प्रमत्तः पतितःस्मृतः ॥
उक्तं पूर्वप्रकरणे लक्षणं वृषलीपतेः । एतेमहापातकिनःकुम्भीपाकं प्रयान्ति ते ॥२१४॥
कुण्डान्यन्यानि ते यान्ति निबोध कथयामि ते ॥२१५॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादे पापीनरकनिरूपणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## एकत्रिंशोऽध्यायः

### सावित्र्युपाख्याने पापिकुण्डनिर्णयः ।

यम उवाच ।

हरिसेवां विना साध्वि न भवेत् कर्म्म खण्डनम् ।
शुभकर्म्म स्वर्गबीजं नरकञ्च कुकर्म्मणाम् ॥ १ ॥

पुंश्चल्यन्नञ्च यो भुङ्क्ते वेश्यान्नञ्च पतिव्रते । तांव्रजेत्तु द्विजोयोहिकालसूत्रंप्रयाति सः ॥
शतवर्षं कालसूत्रे स्थित्वा शूद्रो भवेद्ध्रुवम् । तत्रजन्मनिरोगीचततःशुद्धोभवेद्द्विजः ॥
पतिव्रताचैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता । तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चलीस्मृता ॥४
वेश्या च पञ्चमे षष्ठे युग्मी च सप्तमेऽष्टमे । अत ऊर्द्ध्वंमहावेश्यासाऽस्पृश्यासर्वजातिषु
यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि । युग्मीं वेश्यांमहावेश्यामवटोदंप्रयातिसः
शताब्दं कुलटागामीधृष्टागामी चतुर्गुणम् । षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामीगुणाष्टकम्
युग्मीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः । महावेश्यागामुकश्च ततः शतगुणं वसेत् ॥८
तदा हि सर्वगामीचेत्येवमाह पितामहः । तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यमदूतेन ताडितः ॥९॥
तित्तिरःकुलटागामीधृष्टागामीचवायसः । कोकिलःपुंश्चलीगामीवेश्यागामीवृकस्तथा ॥
युग्मीगामी शूकरश्च सप्तजन्मसु भारते । महावेश्यागामुकश्च श्मशाने शाल्मलिस्तरुः ॥
यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः । अरुन्तुदं स यात्येव चन्द्रमानाब्दमेवच ॥
ततो भवेन्मानवश्च उदरव्याधिसंयुतः । गुल्मयुक्तश्च काणश्चदन्तहीनस्ततः शुचिः ॥

वाक्प्रदत्तां हि कन्याञ्च पश्चादन्यस्मै ददाति च ।
स वसेत् पांशुभोजे च तद्भोजी च शताब्दकम् ॥१५॥

दत्तापहारी यः साध्वि पाशवेष्टं शताब्दकम् । निवसेत् शरशय्यायांयमदूतेन ताडितः ॥
न पूजयेद्योहिभक्त्याशिवलिङ्गञ्चपार्थिवम् । सयातिशूलिनःकोपात्शूलप्रोतंसुदारुणम् ॥
स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु । ततो भवेन्देवलश्चसप्तजन्मततःशुचिः ॥
करोति दण्डं यो विप्रंयद्भयात्कम्पते द्विजः । प्रकम्पनेवसेत्सोऽपिविप्रलोमाब्दमेवच ॥
प्रकोपवदना कोपात् स्वामिनं या च पश्यति । कटूक्तिञ्चवदत्येवातिचोल्कामुखञ्चसा
उल्कां ददाति वक्त्रे च सन्ततं यमकिङ्करः । दण्डेन ताडयेन्मूर्ध्नितल्लोमाब्दप्रमाणकम् ॥
ततो भवेन्मानवी चविधवासप्तजन्मसु । भुक्त्वादुःखञ्चवैधव्यंव्याधियुक्ता ततः शुचिः ॥
या ब्राह्मणी शूद्रभोग्यासान्धकूपंप्रयातिच । तप्तशौचोदकेध्वान्तेतदाहारादिवानिशम् ।
निवसेदतिसन्तप्ता यमदूतेन ताडिता । शौचोदके निमग्ना च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥
काकीजन्म सहस्राणि शतजन्मानि शूकरी । कुक्कुरीशतजन्मानिशृगालीसप्तजन्मसु ॥

पापवती सप्तजन्म चाण्डाली सप्तजन्मसु । ततोऽभिशस्ता शूद्री च सप्तजन्मसु भारते ॥
ततो भवेच्च रजकी सप्तजन्मा च पुंश्चली । ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धा भवे॥
वेश्या परोऽध्यनै न गुर्वी न दण्डताडने । जालरन्ध्रे महावेगकुण्डा देहचूर्णके
स्त्रैणयी कृते सैव धूमान्धकारेणभा । निरन्तरायतनायुता यमदूतेन ताडिता ।
निष्प्रभक्षणं तत्र यावन्मन्वन्तरं सति । ततो भवेत् विट्कृमिश्च पर्यन्तं ततः शु

ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत् क्षत्रियामपि क्षत्रियः ।
वैश्यो वैश्यां च शूद्रां च शूद्रो वापि व्रजेदपि ॥३०॥

स्वर्णं परदारी च फलं याति तथा सह । सुगन्धापूर्णायनप्तोदं निवसेद् द्वादशाब्दश्च
ततो विप्रो भवेत्कुष्ठरोगश्च क्षत्रियादयः । योनिश्चापि शुध्यन्तीत्येवमाह पितामह

क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेत् वैश्यो वापि पतिव्रते ।
मातृगामी भवेत् सोऽपि सूर्पं च नरकं व्रजेत् ॥३३॥

सूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः । प्रतप्तमूत्रभोजी च यमदूतेनताडितः ॥३४
तत्रैव यातनां भुंक्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दशाः । जन्मसप्तवराहश्च छागलश्च ततः शुचिः ॥
करेधृत्वाचतुलसींप्रतिज्ञांयोनपालयेत् । मिथ्यावाशपथंकुर्य्यात्सचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
गंगातोयं करे धृत्वा प्रतिज्ञां योनपालयेत् । शिलांवादेवप्रतिमांसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
दत्वा च दक्षिणंहस्तंप्रतिज्ञांयोनपालयेत् । स्थित्वादेवगृहेचापिसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
स्पृष्ट्वा च ब्राह्मणं गाश्च वह्निं विष्णुसमंसति । नपालयेत्प्रतिज्ञाञ्चसचज्वालामुखंव्रजेत् ॥
मित्रद्रोहीकृतघ्नश्चयोहिविश्वासघातकः । मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैवसचज्वालामुखं व्रजेत् ॥
एते तत्र वसन्त्येव यावदिन्द्राश्चतुर्दशाः । यथाङ्गारप्रदग्धाश्च यमदूतैश्च ताडिताः ॥४१
चण्डालस्तुलसीस्पर्शी सप्तजन्मततःशुचिः । म्लेच्छोगंगाजलस्पर्शीपञ्चजन्मततःशुचिः ॥
शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसुसुन्दरि । अर्चास्पर्शीव्रणकृमिर्जन्मसप्तततःशुचिः ॥
दक्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु । ततो भवेद्धस्तहीनो मानवश्च ततःशुचिः ॥४४
मिथ्यावादी देवगृहे देवलःसप्तजन्मसु । विप्रादिस्पर्शकारीचसोऽग्रदानीभवेद्ध्रुवम् ॥
भवन्ति मूकास्तेवधिराश्चत्रिजन्मनि । भार्य्याहीनावंशहीनाबुद्धिहीनास्ततःशुचिः ॥

मित्रद्रोही च नकुलःकृतघ्नश्चापिगण्डकः । विश्वासघातीव्याघ्रश्चसप्तजन्मसुभारते ४७।
मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैवभल्लूकःसप्तजन्मसु । पूर्वान्सप्तपरान्सप्तपुरुषान्हन्तिचात्मनः ॥
नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतोद्विजः । यस्यानास्थावेदवाक्येमन्दंहसतिसन्ततम् ॥
व्रतोपवासहीनश्चसद्वाक्यपरनिन्दकः । जिह्वे जिह्मो वसेत् सोऽपि शताब्दञ्च हिमोदके
जलजन्तुर्भवेत् सोऽपि शतजन्म क्रमेणच । ततोनानाप्रकारश्चमत्स्यजातिस्ततः शुचिः ॥
यः करोत्यपहारञ्च देवब्राह्मणयोर्धनम् । पातयित्वा स्वपुरुषान् दशपूर्वान् दशापरान् ॥
स्वयं याति च धूमान्धं धूमध्वान्तसमन्वितम् । धूमक्लिष्टोधूमभोजीवसेत्तत्रचतुर्युगम् ॥
ततो मूषिकजातिश्च शतजन्मानि भारते । ततो नानाविधाः पक्षिजातयःकृमिजातयः ॥
ततो नानाविधा वृक्षजातयश्च ततो नरः । भार्य्याहीनो वंशहीनोशवरोव्याधिसंयुतः ॥
ततो भवेत् स्वर्णकारः सुवर्णस्य वणिक् तथा । ततोयवनसेवीचब्राह्मणोगणकस्ततः ॥
विप्रोदैवज्ञोपजीवीवैद्यजीवीचिकित्सकः । लाक्षालौहादिव्यापारीरसादिविक्रयीच यः॥

स याति नागवेष्टञ्च नागैर्वेष्टित एव च ।
वसेत् स्वलोममानाब्दं तत्रैव नागदंशितः ॥ ५८ ॥

ततो भवेत् स गणको वैद्यश्चसप्तजन्मसु । गोपश्च कर्मकारश्च शङ्खकारस्ततः शुचिः ॥
प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते । अन्यानिचाप्रसिद्धानिक्षुद्राणितत्रसन्तिवै
सन्ति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः । भ्रमन्तितावत्संसारे न च ते स्वर्गभागिनः

यान्त्ययान्ति च स्वर्गञ्च मर्त्यञ्च न हि निर्वृताः ।

निर्वृतिं न हि लिप्स्यन्तिकृष्णसेवांविना नराः । स्वधर्मनिरताश्चापिस्वधर्मविरतास्तथा
गच्छन्तो मर्त्यलोकञ्च दुर्द्धर्षा यमकिङ्कराः । भीताः कृष्णोपासकाच्चवैनतेयादिवोरगाः
स्वदूतं पाशहस्तञ्च गच्छन्तं तं वदाम्यहम् । यास्यसीनि च सर्वत्र हरिभक्ताश्रमं विना
कृष्णमन्त्रोपासकानां नामानि च निकृन्तनम् । करोति नखराञ्जल्याचित्रगुप्तश्चभीतवत्

मधुपर्कादिकं ब्रह्मा तेषाञ्च कुरुते पुनः ॥ ६६ ॥

विलङ्घ्य ब्रह्मलोकञ्च गोलोकं गच्छतां सताम् । दुरितानिविनश्यन्तितेषांसंस्पर्शमात्रतः

यथा सुप्रज्वलद्वह्नौ काष्ठानि च तृणानि च ॥ ६७ ॥

प्राप्नोति मोहः संमोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत् ।
कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौततःसति । मृत्युः पलायतेरोगोजराशोकोभयन्तथा
कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च ॥ ६१ ॥
ये ये न यान्तियामीश्च कथितास्ते मया सति । शृणुदेहविवरणं कथयामि यथागमम्
पृथिवीवायुराकाशं तेजस्तोयमितिस्फुटम् । देहिनां देहबीजञ्च स्रष्टुः सृष्टिविधौ पर
पृथिव्यादि पञ्चभूतैर्यो देहोनिर्मितोभवेत् । सः कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदि
वृद्धाङ्गुष्ठप्रमाणेन यो जीवः पुरुषाकृतिः । बिभर्त्ति सूक्ष्मदेहञ्च तद्रूपं भोगहेतवे ॥ ७२
स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ यमालये । जले न नष्टो देहो वा प्रहारे सुचिरे कृते ।
न शस्त्रे च न चास्त्रे च सुतीक्ष्णे कण्टके तथा । तप्तद्रवे तप्तलौहे तप्तपाषाण एव च ।
प्रतप्तप्रतिमाश्लेषेऽप्यत्युच्चपतनेऽपि च । कथितं देवि वृत्तान्तं कारणञ्च यथागमम्
कुण्डानां लक्षणं सर्वं निबोध कथयामिते । अधुनादेविकल्याणिकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने
पापिकुण्डनिर्णयो नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## द्वात्रिंशोऽध्यायः

### यमसावित्रीसंवादवर्णनम् ।

सावित्र्युवाच ।

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । नानापुराणेतिहास-पञ्चरात्र-प्रदर्शक ॥ १ ॥
सर्वेषु सारभूतं यत् सर्वेष्टं सर्वसम्मतम् । कर्मच्छेदबीजरूपं प्रशंस्यं सुखदं नृणाम् ॥
यशःप्रदं धर्मदञ्च सर्वमंगलमंगलम् । येन यामीं न ते यान्ति यातनां भयदुःखदाम् ॥
[illegible] च न पश्यन्ति तत्र नैव पतन्ति च । न भवेद्येनजन्मादि तत्कर्म वद सुव्रत ॥
[illegible] कति सन्ति भिन्नानि च । केनरूपेण तत्रैव तिष्ठन्ति पापिनःसदा

स्वदेहे भस्मसाद्भूते यान्तिलोकान्तरं नराः । केन देहेन वा भोगंभुङ्क्ते वा शुभाशुभम्
सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति । देहो वा किंविधोब्रह्मन् तन्मेव्याख्यातुमर्हसि
सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन् । कथां कथितुमारेभे गुरुं नत्वा च नारद

यम उवाच ।

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु संहितासु च । पुराणेष्वितिहासेषु पञ्चरात्रादिकेषु च ॥ ९ ॥
अन्येषु सर्वशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुव्रते । सर्वत्सारभूतञ्च मङ्गलं कृष्णसेवनम् ॥१०॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकसन्तापतारणम् । सर्वमङ्गलरूपञ्च परमानन्दकारणम् ॥ ११ ॥
कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम् । भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम् ॥१२ ॥
गोलोकमार्गसोपानमविनाशिपदप्रदम् । सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभे ॥
कुण्डानि यमदूतञ्च यमञ्च यमकिङ्करान् । न हि पश्यन्तिस्वप्नेन श्रीकृष्णकिङ्कराःसति
हरिव्रतं ये कुर्वन्ति गृहिणः कर्मभोगिनः । ये स्नान्ति हरितीर्थे च नाश्नन्ति हरिवासरे ।
प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां पूजयन्ति च । न यान्तितेचघोराञ्च मम संयमनीं पुरीम्
त्रिसन्ध्यपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः । स्वधर्मनिरताःशान्ता नयान्तियममन्दिरम्
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे यमसावित्रीसंवादे
द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

### कुण्डानां मानलक्षणवर्णनम् ।

यम उवाच ।

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वकुण्डञ्च वर्त्तुलम् । अतीवनिम्नं पाषाणभेदैश्च खचितं सति ॥
न नश्वरञ्चाप्रलयं निर्मितञ्चेश्वरेच्छया । क्लेशदं पातकिनाञ्च नानारूपं तदालयम् ॥२
ज्वलदङ्गाररूपञ्च शतहस्तशिखान्वितम् । परितः क्रोशमानञ्च वह्निकुण्डं प्रकीर्त्तितम् ॥

मलकुण्डं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम् । रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि सन्ततम् ।
प्रतप्तोदकपूर्णञ्च हिंस्रजन्तुसमन्वितम् । महाघोरशब्दकारञ्च पापिसङ्घेन सङ्कुलम् ॥
प्रकुर्वता हाहाशब्दं प्रहारैर्घूर्णितेन च । क्रोशार्द्धमानं मद्दूतैस्ताडितेन च रक्षितम् ॥६॥
तप्तक्षारोदकैः पूर्णं नक्रैश्च परिवेष्टितम् । सङ्कुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम् ॥
त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मद्दूतैश्च ताडितैः । ज्वलद्भिरनाहारैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः ॥
विण्मूत्रैरेव पूर्णञ्च क्रोशमानञ्च कुत्सितम् । अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं व्याप्तं पापिभिरेव च
ताडितैर्ममदूतैश्च अनाहारैरुपद्रवैः । रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितम् ॥ १० ॥
तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च संकुलम् । युक्तं महापापिभिश्च तत्कीटैर्दंशितं सदा ॥

गव्यूतिमानं ध्वान्ताक्तं शब्दकृद्भिश्च सन्ततम् ।
मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः ॥ १२ ॥

श्लेष्मपूर्णं क्रोशमितं वेष्टितं वेष्टितैः सदा । तद्भोजिभिः पापिभिश्च तत्कीटैर्भक्षितैः सदा
क्रोशार्द्धं गरपूर्णञ्च गरभोजिभिरन्वितम् । गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च ॥
ताडितैर्ममदूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः । सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः ॥
नेत्रयोर्मलपूर्णञ्च क्रोशार्द्धं कीटसंयुतम् । पापिभिः संकुलं शश्वत् रुदद्भिः कीटभक्षितैः
वसारसेन पूर्णञ्च क्रोशतुर्यं सुदुःसहम् । तद्भोजिभिः पातकिभिर्व्याप्तं दूतैश्च ताडितैः
शुक्रपूर्णं क्रोशतुर्यं शुक्रकीटैश्च भक्षितैः । क्रन्दद्भिः पापिभिः शश्वत्संकुलं व्याकुलैर्भिया ॥
दुर्गन्धिरक्तपूर्णञ्च वापीमानं गभीरकम् । तद्भोजिभिः पापिभिश्च संकुलं कीटभक्षितैः ॥
पूर्णं नेत्राश्रुभिर्नॄणां वाप्यर्द्धं पापिभिर्युतम् । ताडितैर्ममदूतेन तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः ॥२०
नृणां गात्रमलैः पूर्णं तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् । ताडितैर्ममदूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः ॥

कर्णविट्परिपूर्णञ्च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् ।
वापीतुर्य्यप्रमाणञ्च रुदद्भिः कीटभक्षितैः ॥ २२ ॥

मज्जापूर्णं नराणाञ्च महादुर्गन्धि संयुतम् । महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम् ।
[illegible] स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः । पापिभिः सङ्कुलञ्चैव वापीमानं भयानकम्
[illegible] तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः । त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकैः

तुर्य्यप्रमाणञ्च नखादिकचतुष्टयम्। पापिभिः संकुलं शश्वन्ममदूतैश्च ताड़ितैः ॥
ाम्रकुण्डञ्च ताम्रपर्य्युन्मुखान्वितम्। ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा ॥
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः रुदद्भिः पापिभिर्युतम्।
गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताड़ितैः ॥ २८ ॥
ोहधारञ्च ज्वलदङ्गारसंयुतम्। लौहानां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैरावृतं सदा ॥२९॥
सर्वाश्लिष्टैश्च शश्वत् विचलितैर्भिया। रक्षरक्षेतिशब्दञ्च कुर्वद्भिर्दूतताड़ितैः ॥
ातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्। भयानकं ध्वान्तयुक्तं लौहकुण्डंप्रकीर्त्तितम्
डं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्द्धमेव च। तद्भोजिभिः पापिभिश्च व्याप्तंमद्दूतताड़ितैः॥
अधः शाल्मलिवृक्षस्य तीक्ष्णकण्टककुण्डकम्।
लक्षपौरुषमानञ्च क्रोशमानञ्च दुःखदम् ॥ ३३ ॥
धनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम् ॥ ३४ ॥
कण्टकैर्विद्धं महापातकिभिर्युतम्। वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च ममदूतैश्च ताड़ितैः ॥
ति शब्दञ्च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः। महाभयातिव्यग्रैश्च दण्डेन भग्नमस्तकैः।
प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैले जीविभिरेवच ॥ ३६ ॥
तक्षकादीनां पूर्वञ्च क्रोशमानकम्। तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताड़ितैः ॥
जपूर्णञ्च कीटादि परिवर्त्तितम्। तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं स्निग्धगात्रैश्च वेष्टितैः॥
प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतताड़ितैः। महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम् ॥
शस्त्रकुण्डं ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं भयानकम्।
शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रै लौहशस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥ ४० ॥
स्वरूपञ्च क्रोशतुर्य्यप्रमाणकम्। पातकिभिर्वेष्टितञ्च कुन्तविद्धैश्च वेष्टितम् ॥
दूतैश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः। कीटैः संभुज्यमानैश्च सर्पयानैर्भयङ्करैः ॥
श्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वान्तयुतं सति। महापातकिभिर्युक्तं भीतैश्च कीटभक्षितैः
रुदद्भिः क्रोशमानञ्च ममदूतेन ताड़ितैः ॥ ४२ ॥
च संयुक्तं क्रोशार्द्धं पूयसंयुतम्। तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं मम दूतेन ताड़ितैः ॥

द्विगव्यूतिप्रमाणञ्च हिमतोयप्रपूरितम् । तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम् ॥
सर्पवेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः । सङ्कुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥४६॥
कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णञ्च मशकादिभिः । सर्वं क्रोशार्द्धमानञ्च महापातकिभिर्युतम् ॥
हस्तपादादिभिर्बद्धैः क्षतैः क्षतजलोहितैः । हाहेति शब्दं कुर्वद्भिः प्रचलद्भिश्च सन्ततम् ॥
वज्रवृश्चिकयोः कुण्डं ताभ्याञ्च परिपूरितम् । वाप्यर्द्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः ।
कुण्डत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम् । तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्द्धं रक्तलोहितैः ॥
तप्तपङ्कोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम् । कीटैः सङ्कुलमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम् ।
वाप्यर्द्धं परिपूर्णञ्च जलस्थैः नक्रकोटिभिः । दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम् ॥

विण्मूत्रश्लेष्मभक्ष्यैश्च संयुक्तं शतकोटिभिः ॥ ५३ ॥
काकैश्च विकृताकारैर्धनुर्लक्षञ्च पापिभिः ॥ ५४ ॥

सञ्चालवाजयोः कुण्डं ताभ्याञ्च परिपूरितम् । भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च सन्ततम् ॥
धनुःशतं वज्रयुक्तं पापिभिः सङ्कुलं सदा । शब्दकृद्भिर्वज्रदग्धैरन्तर्ध्वान्तमयं सदा ॥५६॥
वाप्यर्द्धिगुणमानञ्च तप्तप्रस्तरनिर्मितम् । ज्वलदङ्गारसदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम् ॥५७॥
क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम् । महापातकिभिर्युक्तं क्षतं क्षतजलोहितैः ॥

दुर्गन्धि लालपूर्णञ्च तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युतम् ।
क्रोशमानं गभीरञ्च मम दूतैश्च ताडितैः ॥ ५९ ॥

मत्स्यसौचाञ्जनाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम् । चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतेन ताडितैः ॥
पूर्णं धूम्रध्वैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम् । तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः

कुण्डं कुलालचक्राभं घूर्णमानञ्च सन्ततम् ॥ ६१ ॥

घूर्णमानमर्दशारस्य घूर्णितैः पापिभिर्युतम् । भ्रमीव वक्रं निम्नञ्च द्विगव्यूतिप्रमाणकम्
कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदकसमन्वितम् । महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजन्तुभिः ॥
प्रचलद्भिः शब्दकृद्भिर्ध्वान्तयुक्तं भयानकम् । कोटिभिर्विकृताकारैः कण्टकैरग्निसुदारुणैः
संयुक्तैश्चयमभक्षितैः पापिभिर्युतम् । ज्वलदङ्गारसदृशैस्तीर्भिर्निर्मितं क्रोशमानकम्
दहद्भिः पापिभिश्च चलद्भिःसंयुतं सदा । क्रोशमानं गभीरञ्च तप्ततैलसमन्वितम् ॥

शश्वच्चलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः ॥ ६७ ॥
तप्तपाषाणलोष्ट्राणां समूहैः परिपूरितम् । पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तञ्च शुष्कतालुकैः
क्रोशमानं ध्वान्तमयं गभीरमतिदारुणैः । ताडितैर्मम दूतैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्त्तितम् ।
अत्यूर्मियुक्ततोयञ्च प्रतप्तक्षारसंयुतम् । नानाप्रकारविरुतं जलजन्तुसमन्वितम् ॥ ७० ॥
द्विगव्यूतिप्रमाणञ्च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजन्तुभिः ॥
चलद्भिः क्रन्दमानैश्च न पश्यद्भिः परस्परम् । उत्तप्तशूर्मिकुण्डञ्च कीर्त्तितञ्च भयानकम् ॥
असीविधारपत्रस्याप्युच्चैस्तालतरोरधः । क्रोशार्द्धमानकुण्डञ्च पतत्पत्रसमन्वितम् ॥
पापिनां रक्तपूर्णञ्च वृक्षाग्रात् पततां परम् । परित्राहीति शब्दञ्च कुर्वतामसतामपि ॥७४
गभीरं ध्वान्तसंयुक्तं रक्तकीटसमन्वितम् । तदसीपत्रकुण्डञ्च कीर्त्तितञ्च भयानकम् ॥
धनुःशतप्रमाणञ्च क्षुराकारास्त्रसङ्कुलम् । पापिनां रक्तपूर्णञ्च क्षुरधारं भयानकम् ॥७६॥
सूचीवास्यास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम् । पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदञ्च सूचीमुखम् ॥७७
कस्यचिज्जन्तुभेदस्य गोधेत्यस्य मुखाकृतम् । कूपरूपगभीरञ्च धनुर्विंशत्प्रमाणकम् ॥
महापातकिनाञ्चैव महाक्लेशकरं परम् । तत्कीटभक्षितानाञ्च नम्रास्यानाञ्च सन्ततम् ॥
कुण्डं नखमुखाकारं धनुः षोडशमानकम् । गभीरं कूपरूपञ्च पापिष्ठैः संकुलं सदा ॥८०
गजेन्द्राणां समूहेन व्याप्तं कुण्डारतं स्थलम् । गजदन्तहतानाञ्च पापिनां रक्तपूरितम् ॥
तत्कीटभक्षितानाञ्च काकुशब्दकृतां सदा । धनुःशतप्रमाणञ्च कीर्त्तितं गजदंशनम् ॥
धनुस्त्रिंशत्प्रमाणञ्च कुण्डञ्च गोमुखाकृति । पापिनां दुःखदञ्चैव गोमुखं परिकीर्त्तितम्
भ्रमितं कालचक्रेण सन्ततञ्च भयानकम् । कुम्भाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्
लक्षपौरुषमानञ्च गभीरमतिविस्तृतम् । कुत्रचित्तप्ततैलञ्च कुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥८५॥
कुत्रचित्तप्तलौहादि ताम्रादि कुण्डमेव च । कुत्रचित् तप्तपाषाणकुण्डाभ्यन्तरमन्तिके ॥
पापिनाञ्च प्रधानैश्च महापातकिभिर्युतम् ॥ ८६ ॥
परस्परं न पश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च सन्ततम् । ताडितैर्मम दूतैश्च दण्डैश्च मुषलैस्तथा ॥८७
घूर्णमानं पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च मुहुर्मुहुः । पातितैर्मम दूतैश्च चान्यूर्ध्वात् पतितैः क्षणम्
यन्तः पापिनः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि । तत्र चतुर्गुणाः सन्ति कुम्भीपाकेन दुस्तरे

सुचिरं पतिताश्चैव भोगदेहविवर्जिताः । सर्वकुण्डप्रधानञ्च कुम्भीपाकं प्रकीर्त्तितम्
कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः । उत्थापिताश्च मद्दूतैः क्षणमेव निमज्जिताः
निश्वासबद्धाः सुचिरं कुण्डानामन्तरे तथा । अतीवक्लेशयुक्ताश्च भोगदेहा न नश्वराः
दण्डेन मुषलेनैव मम दूतैश्च ताड़िताः । प्रतप्ततोययुक्तञ्च कालसूत्रं प्रकीर्त्तितम् ॥९३
अवटः कूपभेदश्च यत्रोदञ्च तदाकृतिः । प्रतप्ततोयपूर्णञ्च धनुर्विशन्प्रमाणकम् ॥९४
व्याप्तंमहापापिभिश्च दग्धगात्रैश्च सन्ततम् । मद्दूतैस्ताड़ितैःशब्दवदवटोदं प्रकीर्त्तितम्
यत्तोयस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम् । भवेदकस्मात् पततांयत्र कुण्डे धनुःशते
सर्वैरन्ध्राः पापिनश्च तुदन्ति यत्र सन्ततम् । हाहेति शब्दं कुर्वन्तस्तदेवारुन्तुदं विदुः ।
तप्तपांशुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तु सदग्धकैः । तद्बस्थ्यैःपापिभिर्युक्तं पांशुभोजं धनुश्शतम् ।
पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् । पतन्मात्रेव पापीच पाशेन वेष्टितो भवेत् ॥
कोशमानेच कुण्डे च तत् पाशवेष्टनं विदुः ॥ ९९ ॥
धनुर्विशन्प्रमाणञ्च शूलप्रोतं प्रकीर्त्तितम् । पतन्मात्रेण पापीच शूलेन प्रथितो भवेत् ।
पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम् ॥ १०१ ॥
अतीवहिमतोयेच कोशार्द्धञ्च प्रकम्पनम् । ददत्येवहि मद्दूता यत्रोल्काः पापिनांमुखे ॥
धनुर्विशन्प्रमाणञ्च तदुल्काभिश्च सङ्कुलम् । लक्षपौरुषमानञ्च गभीरञ्च धनुश्शतम् ॥
नानाप्रकारकृमिभिः संयुक्तञ्च भयानकैः । अत्यन्धकारव्याप्तं यत् कूपाकारंच वर्त्तुलम्
तद्बस्थ्यैः पापिभिर्युक्तं न पश्यद्भिः परस्परम् । तप्ततोयप्रदग्धैश्च चलद्भिः कीटभक्षितैः ॥
ध्वान्तेन चक्षुषा चान्धैरन्धकूपं प्रकीर्त्तितम् ॥ १०५ ॥
नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः । धनुर्विशन्प्रमाणंच वेधनं तत् प्रकीर्त्तितम् ॥
दण्डेन ताड़िता यत्र मम दूतैश्च पापिनः । धनुःषोड़शमानंच तत् कुण्डं दण्डताड़नम् ॥
निरुद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः । धनुस्त्रिंशत्प्रमाणंच जालबन्धं प्रकीर्त्तितम् ।
पततां पापिनां कुण्डे देहचूर्णोभवतितत्र । लौहवेष्टनिबद्धाश्च कोटिपौरुषमानकम् ॥
गभीरं ध्वान्तयुक्तंच धनुर्विशन्प्रमाणकम् । मूर्च्छितानांजड़ानांच देहचूर्णं प्रकीर्त्तितम् ।
दलिताः पापिनो यत्र मद्दूतैर्मुषलैः सदा । धनुःषोड़शमानंच तत् कुण्डं दलनंस्मृतम् ॥

तन्मात्रे यत्र पापी शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः । बालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम् ।
तपोत्थमानं च गभीरं ध्वान्तसंयुतम् । जलाहारविरहितं शोषणं तत् प्रकीर्त्तितम् ॥ ११३
नाचर्मकषायोदं परिपूर्णं धनुःशतम् । दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः सङ्कुलं कपम् ॥
ीकारमुखं कुण्डं धनुर्द्दशमानकम् । तप्तलौहवालुकाभिः पूर्णं पातकिभिर्युतम् ॥

अन्तराग्निशिखानाञ्च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा ।
धनुर्विंशत्प्रमाणञ्च यस्य कुण्डस्य सुन्दरि ॥ ११६ ॥
ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव यत् ।
तन्महत् क्लेशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम् ॥ ११७ ॥

मात्रा यत्र पापी मूर्च्छितो व्यथितो भवेत् । तनेष्टकाभ्यन्तरितं वाप्यर्द्धं जिह्मकुण्डकम् ॥
न्धकारयुक्तञ्च धूमान्धैः पापिभिर्युतम् । धनुःशतं श्वासबद्धैर्धूमान्धं परिकीर्त्तितम् ॥
मात्रा यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत् । धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागवेष्टकुण्डकम् ॥
ीति च कुण्डानि मयोक्तानि निशामय । लक्षणञ्चापि तेषाञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
ते श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे यमसावित्रीसंवादे
कुण्डलक्षणप्रकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

---

# चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

## श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् ।

सावित्र्युवाच

कं देहि मह्यं सारभूतां सुदुर्लभाम् । त्वत्तः सर्वं श्रुतं देव नावशिष्टोऽधुना मम
१ कथयमेधर्मं श्रीकृष्णगुणकीर्त्तनम् । पुंसां लक्षौद्धारबीजं नरकार्णवतार
मुक्तिसाराणां सर्वाशुभनिवारणम् । पाचरं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहार

गुणाः [illegible] कि वा [illegible] ।
[illegible] ॥ ४ ॥

[illegible] । किं [illegible] वेदविदांवर ॥
[illegible] । [illegible] ॥५
[illegible] । [illegible] ॥

यम उवाच

सर्ववेदे श्रुतो [illegible] मनसि वाञ्छितः । अधुना [illegible] मन्त्रमवतु मद्वरात् ॥
श्रीकृष्णगुणकीर्तनम् ।
[illegible] श्रीकृष्णो कुन्दतारणम् ॥ ६ ॥

[illegible] वक्त्रसहस्रेण न हि यद्गुणमीश्वरः । मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च ॥
ता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि । ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्च सर्ववित्
[illegible]षेण षण्मुखेन नापि वक्तुमलं ध्रुवम् । न गणेशः समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरु
[illegible]भूताश्च शास्त्राणां वेदाश्च स्वागमश्च च । कलामात्रं यद्गुणानां न विदन्ति बुधाश्च ये
[illegible]स्वती च यत्नेन नालं यद्गुणवर्णने । सनत्कुमारो धर्मश्च सनकश्च सनातनः ॥१४
[illegible]न्दः कपिलः सूर्योऽप्यन्ये च ब्रह्मणः सुताः । विचक्षणा न यद्वक्तुं केचान्ये जडबुद्धयः ।
यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनीन्द्रा योगिनस्तथा । के चान्ये च वयं केवा भगवद्गुणवर्णने ।
[illegible]यन्ते यत्पदाम्भोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम् ।

कश्चित् किञ्चिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्त्तनं महत् ।
अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मसुतादयः ॥ १८ ॥

[illegible]ऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः । सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शम्भुरेव च ॥
[illegible] दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना । अतीव निर्जने रम्ये गोलोके रासमण्डले ॥
[illegible] यद्गुणोत्कीर्त्तनं पुनः । धर्मायकथयामास शिवलोके शिवः स्वयम् ॥
[illegible] पुष्करे भास्कराय च । समाराध्य मम पिता मां प्राप तपसा सति ॥
[illegible] स्वविषयञ्चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः । वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते ।२३।

तदा मां कथयामास पितायद्गुणकीर्त्तनम् । यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम् ॥
तद्गुणं स न जानाति तदन्यस्यचकाकथा । यथाकाशो नजानाति स्वान्तमेवचरानने ॥
सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वकारणकारणम् । सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यःसर्ववित्सर्वरूपधृक् ॥
नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः । निरङ्कुशश्च निःशङ्को निर्गुणश्च निराश्रयः ॥
निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः । तद्विकाराश्चप्रकृतिस्तद्विकाराश्चप्राकृताः ॥
स्वयं पुमांश्च प्रकृतिः स्वयं च प्रकृतेः परः । रूपं बिभर्त्तेऽरूपश्च भक्तानुग्रहहेतवे ॥२९॥
अतीव कमनीयञ्च सुन्दरं सुमनोहरम् । नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेशकम् ॥३०॥
कन्दर्पकोटिलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचनम् ॥
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभाप्रच्छादनाननम् । अमूल्यरत्ननिर्माणरत्नाभरणभूषितम् ॥३२॥
सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा । परं ब्रह्मस्वरूपञ्च ज्वलन्तंब्रह्मतेजसा ॥३३॥
सुखदृश्यञ्चशान्तञ्चराधाकान्तमनन्तकम् । गोपीभिर्वीक्ष्यमाणञ्चसस्मिताभिःसमन्ततः॥
रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम् । वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम् ॥
कौस्तुभेनमणीन्द्रेणशश्वद्वक्षःस्थलोज्ज्वलम् । कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम् ॥
चारुचम्पकमालाब्जमालतीमाल्यमण्डितम् । चारुचम्पकशोभाढ्यचूडावङ्किमराजितम्॥
एवम्भूतञ्च ध्यायन्ते भक्ताभक्तिपरिप्लुताः । यद्भयाज्जगतां धाता विधत्तेसृष्टिमेवच ॥
कर्मानुरूपलिखनं करोति सर्वकर्मणाम् । तपसां फलदाता च कर्मणाञ्च यदाज्ञया ॥

विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात् पाति सन्ततम् ।
कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात् ॥ ४० ॥
शिवो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनाञ्च गुरोर्गुरुः ।
यद्ज्ञानदानात् सिद्धेशो योगीशः सर्ववित् स्वयम् ॥ ४१ ॥

परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः । यत्प्रसादाद्वाति वातः प्रवरःशीघ्रगामिनाम् ॥
तपनश्च प्रतपति यद्भयात् सन्ततं सति । यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु ॥
यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेव सुशीतलम् । दिशो रक्षन्ति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया
भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च । भयात्फलन्तिवृक्षाश्चपुष्पन्त्यपिचयद्भयात्

भयात् फलानि पक्वानि निष्फलास्तरवोभयात् । यदाज्ञयाऽस्थलस्थाश्चनजीवन्ति जलेषु वै
तथा स्थले जलस्थाश्च न जीवन्ति यदाज्ञया । अहं नियमकर्त्ता च धर्माधर्मे च यद्भयात्
कालश्च कलयेत्सर्वं भ्रमत्येव यदाज्ञया । अकाले न हरेत्कालो मृत्युश्च यद्भयेन च।
ज्वलदग्नौ पतन्तश्च गभीरे च जलार्णवे । वृक्षाग्रात् तीक्ष्णखड्गे च सर्पादीनां मुखेषु च
नानाशस्त्रास्त्रविद्धश्च रणेषु विषमेषु च । पुष्पचन्दनतल्पे च बन्धुवर्गैश्च रक्षितम्।

शयानं तत्रमन्त्रैश्च काले कालो हरेद्भयात् ॥ ५० ॥

धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं यदाज्ञया ॥ ५१ ॥

कूर्मोऽनन्तं स च क्षौणीं समुद्रान् सप्तपर्वतान् । सर्वाश्चैवक्षमारूपानानारूपविमर्तिसः
यतः सर्वाणि भूतानि लीयन्तेऽन्ते च तत्र च । इन्द्रायुश्चैवदिव्यानां युगानामेकसप्तति
अष्टाविंशच्छक्रपाते ब्रह्मणश्चेत्यहर्निशम् । अष्टाधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशतौ ॥५४
युगे नराणां शक्रायुरेवंसंख्याविदो विदुः । एवंत्रिंशद्दिनैर्मासोद्वाभ्यान्ताभ्यामृतुःस्मृ
त्रेतुभिः षड्भिरेवाब्दं शताब्दं ब्रह्मणो वयः । ब्रह्मणश्च निपाते च चक्षुरुन्मीलनं हरेः
चक्षुर्निमीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः । प्रलये प्राकृताः सर्वे देवाद्याश्च चराचराः।
लीनाधातरि धाता च श्रीकृष्णनाभिपङ्कजे । विष्णुःक्षीरोदशायी च वैकुण्ठेयश्चतुर्भुज
विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः । रुद्राद्याभैरवाद्याश्च यावन्तश्च शिवानुगा
शिवाधारे शिवेलीना ज्ञानानन्देसनातने । ज्ञानाधिदेवः कृष्णस्य महादेवस्य चात्मनः ॥
तस्य ज्ञानविलीनश्च बभूव च क्षणं हरेः । दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः
सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता । नारायणांशःस्कन्दश्चलीनोवक्षसितस्य
श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः । पद्मांशाचापिपद्मायां सा राधायाञ्च सुव्रते
गोप्यश्चापिच तस्यां च सर्वाश्चदेवयोषितः । कृष्णप्राणाधिदेवीसातस्यप्राणेषुसास्थिता
सावित्री च सरस्वत्यांवेदशास्त्राणियानि च । स्थितावाणीचजिह्वायांतस्यैवपरमात्मनः
गोलोकस्य च गोपाश्च विलीनास्तस्यलोमसु । तत्प्राणेषुच सर्वेषांप्राणा वाता हुताशनः
जठराग्नौ विलीनश्च जलं तद्रसनाग्रतः । वैष्णवाश्चरणाम्भोजे परमानन्दसंयुताः ॥६७

... निरसपीयूषपायिनः । विराट्क्षुद्रश्च महति लीनः कृष्णे महान् विराट्

स्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च । यस्य चक्षुर्निमेषेण महांश्च प्रलयो भ
क्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव पुनरेव च । यावत्कालो निमेषेण तावदुन्मीलने व्ययः ।
ह्मणश्च शताब्देन सृष्टिस्तत्र लयः पुनः । ब्रह्मसृष्टिलयानाञ्च संख्या नास्त्येव सुव
यथा भूरजसाञ्चैवा संख्यानाञ्च निशामय ॥ ७१ ॥
क्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वान्तरात्मनः । उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया ॥
तद्गुणोत्कीर्त्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः ॥ ७२ ॥
था श्रुतं तातवक्त्रात् तथोक्तञ्च यथागमम् । मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विध
त्प्रधाना हरेर्भक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी । सालोक्यदा हरेरेका चान्या सारूप्यदा प
सामीप्यदाचनिर्वाणदात्रीचैवमितिस्मृतिः । भक्तास्तानहिवाञ्छन्तिविनातत्सेवनावि
सिद्धित्वममरत्वञ्च ब्रह्मत्वञ्चावहेलया । जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिखण्डन
दिव्यरूपधारणञ्च निर्वाणं मोक्षदं विदुः । मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्
भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकलक्षणं शृणु । विदुर्बुधा निषेकञ्च भोगञ्च कृतकर्मणा
तत् खण्डनञ्च शुभदं श्रीकृष्णसेवनं परम् । तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि सारञ्च लोकवेद
विघ्नघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छवत्सेयथासुखम् । इत्युक्त्वासूर्यपुत्रश्चजीवयित्वाचतत्प
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्त्तुमुद्यतः । दृष्ट्वा यमञ्चगच्छन्तं सावित्री तं प्रणम्य
रुरोद चरणेधृत्वा सद्विच्छेदोऽतिदुःखदः । सावित्रीरोदनं दृष्ट्वा यम एव कृपानि
तामित्युवाच सन्तुष्टो रुरोद चापि नारद ॥ ८४ ॥

यम उवाच ।

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । अन्ते यास्यसि गोलोके श्रीकृष्णभवनं
गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतंकुरु । द्विसप्तवर्षपर्य्यन्तं नारीणां मोक्षकारण
ज्यैष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां सावित्र्याश्चव्रतंशुभम् । शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्याव्रतं
श्चयष्टवर्षव्रतं चेदं प्रत्यब्दं पक्षमेव च । करोति परया भक्त्या सा याति च हरेः प
प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलचण्डिकाम् । प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायि

यथा भारतवर्षकान्त्या प्रभया सर्वसिद्धिदाम् ।
राधा यथा च कान्तिस्था कृष्णप्राणाधिका प्रियाम् ॥ १० ॥

अगोऽन्य गृहाद्रम्यांश्च प्रतिमासे पयस्पृशाम् । विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्
प्रकृतिं जगदम्बां च पतिपुत्रवतीं सतीम् । पतिव्रतासु शुद्धासु ग्रन्थेषु प्रतिमासु च ।
या नारी पूजयेत्तामसदा धनसन्तानहेतवे । इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्त्यन्ते श्रीहरेः पदम्
इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमन्दिरम् । गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम्
सावित्री सत्यवन्तश्च वृत्तान्तश्च यथाक्रमम् । बान्धवान् कथयामास सा चान्यांश्चैव नारद
सावित्रीजनकः पुत्रान् संप्राप वै क्रमेण च । श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान् वरेण च
लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते । जगाम स्वामिना सार्द्धं गोलोकं सा पतिव्रता
सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता । सावित्री चापि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता
इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम् । जीवकर्मविपाकञ्च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

### लक्ष्म्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

श्रीकृष्णस्यात्मनश्चैव निर्गुणस्य निराकृतेः । सावित्री यमसंवादे श्रुतं सुनिर्मलं यशः
तद्गुणोत्कीर्त्तनं सत्यं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर
केनादौ पूजिता सापि किम्भूता केन वा पुरा । तद्गुणोत्कीर्त्तनं सत्यं वद वेदविदांवर

नारायण उवाच ।

सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन् कृष्णस्य परमात्मनः । देवी वामांशसंभूता बभूव रासमण्डले ॥४
सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना ।
सुखदृश्या मनोहरा । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाप्रच्छादनानना ॥६ ॥

शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभाशोभितलोचना । सा च देवी द्विधाभूता सहसैवेश्वरेच्छया ॥
समा रूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा । यशसा वाससा मूर्त्या भूषणेन गुणेन च ॥
स्मितेन वीक्षणेनैव वचसा गमनेन च । मधुरेण स्वरेणैव नयेनानुनयेन च ॥ ९ ॥
तद्वामांशा महालक्ष्मीर्दक्षिणांशा च राधिका । राधाऽऽदौ वरयामास द्विभुजञ्च परात्परम् ॥
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम् । कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह ॥
दक्षिणांशश्च द्विभुजो वामांशश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ पुरा ॥
लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या यया निशम् । देवीषु या च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता ॥
द्विभुजो राधिकाकान्तो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः ।
गोलोके द्विभुजस्तस्थौ गोपैर्गोपीभिरावृतः ॥ १४ ॥
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह । सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ परौ ॥
महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा । वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा परा ॥
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता । प्रेम्णा सा च प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च ॥
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसम्पत्स्वरूपिणी । पातालेषु च मर्त्येषु राजलक्ष्मीश्च राजसु ॥
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणी च कलांशया । सम्पत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला ॥
गवां प्रसूः सा सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी । क्षीरोदसिन्धुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च ॥
शोभारूपा च चन्द्रे च सूर्यमण्डलमण्डिता । विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च ॥
नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च । सर्वशस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु संस्कृतेषु च ॥२२॥
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च । माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा ॥
मणीन्द्रेषु च हीरेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च । वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु ॥२४॥
वैकुण्ठे पूजिता साऽऽदौ देवी नारायणेन च । द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीये शङ्करेण च ॥
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने । स्वायम्भुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः ॥
ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे । गन्धर्वाद्यैश्च नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता ॥
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजाऽऽदौ ब्रह्मणा । भक्त्या च पक्षपर्यन्तं त्रिषु लोकेषु नारद ॥
चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलवासरे । विष्णुना निर्मिता पूजा त्रिषु लोकेषु भक्तितः ॥
वर्षान्ते पौषसंक्रान्त्यां मेध्यामावाह्य प्राङ्गणे । मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये

राजेन्द्रेण पूजिता सा मङ्गलेनैव मङ्गला । केदारेणैव नीलेन नलेन सुबलेन च ॥३१॥
ध्रुवेणोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा । कश्यपेन च दक्षेण मनुना च विवस्वता ॥
प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना । यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता ॥ ३३ ॥
एवं सर्वत्र सर्वैश्च वन्दितापूजितासदा । सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्म्युपाख्याने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

---

## षट्त्रिंशोऽध्यायः

### इन्द्रं प्रति दुर्वाससःशापः ।

नारद उवाच

नारायणप्रिया सा च वरा वैकुण्ठवासिनी । वैकुण्ठाधिष्ठात्रीदेवी महालक्ष्मीःसनातनी
कथं बभूवसादेवीपृथिव्यांसिन्धुकन्यका । किंतद्ध्यानंचकवचं सर्वपूजाविधिक्रमम् ॥
पुरा केन स्तुतादौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

नारायण उवाच

पुरा दुर्वाससः शापात् भ्रष्टश्रीकः पुरन्दरः । बभूव देवसंघश्च मर्त्यलोकश्चनारद ॥४॥
लक्ष्मीः स्वर्गादिकंत्यक्त्वारुष्टापरमदुःखिता । गत्वालीनाचवैकुण्ठेमहालक्ष्म्यांचनारद ॥
तदा शोकाद्ययुर्देवा दुःखिता ब्रह्मणःसभाम् । ब्रह्माणञ्च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च ॥
वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे । अतीवदैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ॥
तदा लक्ष्मीश्चकलयापुरानारायणाज्ञया । बभूवसिन्धुकन्यासा शक्रसम्पत्स्वरूपिणी ॥
तदा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह । संप्रापुश्चवरंलक्ष्म्या ददृशुस्ताञ्चतत्र हि ॥
सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालाञ्च विष्णवे । ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने ॥
देवाश्चाप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च तद्वरात् । तां सम्पूज्यचसस्तूयसर्वत्रच निरापदः ॥

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः पुरन्दरम् । केन दोषेण भगवन् ब्रह्मिष्ठंब्रह्मवित्पु
ममन्थे केन रूपेण जलधिस्तैः सुरादिभिः । केन स्तोत्रेण सादेवी शक्रसाक्षाद्बभू
को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो ॥ १४ ॥

नारायण उवाच

मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा । क्रीडां चकार रहसि रम्भया सह का
कृत्वा क्रीडां तया सार्द्धंकामुकयाहृतचेतनः । तस्थौतत्रमहारण्ये कामोन्मथितचेत
कैलासशिखरं यान्तं वैकुण्ठाद्दृषिपुङ्गवम् । दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेज
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् । प्रतप्तकाञ्चनाकारं जटाभारं महोज्ज्वल
शुक्लयज्ञोपवीतञ्च चीरंदण्डंकमण्डलुम् । महोज्ज्वलञ्च तिलकं बिभ्रतंचन्द्रसन्निभ
समन्वितं शिष्यवर्गैर्वेदवेदाङ्गपारगैः । दृष्ट्वा ननाम शिरसा सम्भ्रमात्तं पुरन्दरः ।
शिष्यवर्गाश्च भक्त्या च तुष्टाव च मुदान्वितः । मुनिनाचसशिष्येण तस्मै दत्तंशुभा
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पञ्च सुमनोहरम् । जरामृत्युरोगशोकहरं मोक्षकरं परम् ।
शक्रः पुष्पं गृहीत्वा चप्रमत्तोराजसम्पदा । भ्रमेण स्थापयामास तद्वैहस्तिमस्त
हस्ती तत्स्पर्शमात्रेणरूपेणच गुणेनच । तेजसा वयसा कान्त्या विष्णुतुल्योबभूव
त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्च जगाम घोरकाननम् । न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुंतेजसा
तत्पुष्पं त्यक्तवन्तञ्च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः । तमुवाच महारुष्टः शशाप स रुषान्वि

मुनिरुवाच

अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे । मद्दत्तपुष्पं दत्तञ्च गर्वेण हस्तिमस्तके ।
विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्यं वा फलंजलम् । प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेनब्रह्महा
भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च भ्रष्टज्ञानो भवेन्नरः । यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शु
प्राप्तिमात्रेणयोभुङ्क्तेभक्त्याविष्णुनिवेदितम् । पुंसांशतंसमुद्धृत्यजीवन्मुक्तःस्वयंभ
विष्णुनैवेद्यभोजीयोनित्यन्तुप्रणमेद्धरिम् । पूजयेत्स्तौतिवाभक्त्यासविष्णुसदृशोभ
तत्स्पर्शवायुना सद्यः तीर्थौघश्चविशुध्यति । तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुन्

पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च । यद्धरेरनिवेद्यञ्च वृथामांसममक्ष्यकम् ।
शिवलिङ्गप्रदात्तान्नं यदन्नं शूद्रयाजिनाम् । चिकित्सकद्विजानाञ्च देवलानां तथै
कन्याविक्रयिणामन्नंयदन्नंयोनिजीविनाम् । अनुष्णान्नंपर्युषितंसर्वभक्ष्यावशे
शूद्रापति द्विजान्नं वृषवाहद्विजान्नकम् । अदीक्षितद्विजान्नञ्च यदन्नं शवदाहि
अगम्यागामिनाञ्चैव द्विजानामन्नमेव च । मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नंविश्वासघाति
मिथ्यासाक्षिप्रदानाञ्च ब्राह्मणानां तथैवच । एतत्सर्वं विशुद्धेत विष्णुनैवेद्यभक्ष

विष्णुसेवी च श्वपचो वंशानां कोटिमुद्धरेत् ।
हरेरभक्तो विप्रश्च स्वञ्च रक्षितुमक्षमः ॥ ३९ ॥

अज्ञानाद्यदिगृह्णातिविष्णोर्निर्माल्यमेवच । सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसं
ज्ञात्वाभक्त्याचगृह्णातिविष्णोर्नैवेद्यमेवच । कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यतेनात्रसंश

यस्मात् संस्थापितं पुष्पं गर्वेण हस्तिमस्तके ।
तस्माद् युष्मान् परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम् ॥ ४२ ॥

नारायणस्यभक्तोऽहंन बिभेमीश्वरंविधिम् । कालंमृत्युंजराञ्चैव कानन्यान्गणया
किं करिष्यतिमे तातः कश्यपश्च प्रजापतिः । वृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशङ्कस्यच मे हरे
इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नितस्यैवपूजनंपुरः । मूर्ध्निच्छिन्ने शिवशिशोश्छित्त्वेदंयोजयिष्य
इति श्रुत्वा महेन्द्रश्च धृत्वा तच्चरणद्वयम् । उच्चैरुरोद शोकार्त्तः समुवाच भयाकुल

इन्द्र उवाच ।

दत्तःसमुचितः शापो मह्यंमत्ताय हेप्रभो । हृतारत्वयाचेम् सम्पत्तिः किंयत्ज्ञानञ्चदेहि
ऐश्वर्यंविपदांबीजं प्रच्छन्नज्ञानकारणम् । मुक्तिमार्गार्गलं दार्ढ्यं हरिभक्तिव्यवाय
जन्ममृत्युजरारोगशोकदुःखाङ्कुरं परम् । सम्पत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति
सम्पन्मत्तः सुमत्तश्च सुरामत्तः सचेतनः । बान्धवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुद्वेषकरो
सम्पन्मदे प्रमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः । महाकामी राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्य
द्विविधोविषयान्धश्चराजसस्तामसःस्मृतः । अशास्त्रज्ञस्तामसश्चशास्त्रज्ञोराजस स्म
शास्त्रे च द्विविधं मार्गं निर्दिष्टं मुनिपुङ्गव । प्रवृत्ति बीजमेकञ्च निवृत्तेः कारणं परम्

भ्रमन्ति जीविनश्चादौ प्रवृत्तौ दुःखवर्त्मनि । स्वच्छन्दे च प्रसन्नेचनिर्विरोधेच सन्ततम्
आपातमधुरे लोभात् क्लेशेच सुखमानिनः । परिणामनाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे ॥५५॥
अनेकजन्मपर्य्यन्तं कृत्वाच भ्रमणं मुदा । स्वकर्मविहितायाञ्च नानायोन्यां क्रमेण च ॥
ततः कृष्णानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते जनः । सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धिपारकारणम्॥
साधुः सत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत् । तदा करोति यत्नञ्च जीवी बन्धनखण्डने ॥
अनेकजन्मयोगेन तपसानशनेन च । तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम् ॥ ५९॥
इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्रात् प्रसङ्गावसरेण च । न हि पूर्व्वमतोऽन्यच्च भवजञ्जालवेष्टितः ।६०।
अधुना विधिना दत्तो विपत्तौ ज्ञानसागरः । सम्पद्रूपा विपदियं मम निस्तारकारिणी ।
ज्ञानसिन्धोदीनबन्धो महां दीनायसाम्प्रतम् । देहि किञ्चित् ज्ञानसारं भवपारंदयानिधे
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानिनां गुरुः । ज्ञानं कथितुमारेभे ह्यतितुष्टः सनातनः ॥

मुनिरुवाच ।

अहो महेन्द्रमाङ्गल्यं मार्गमिष्टं द्रष्टुमिच्छसि । आपातदुःखबीजञ्च परिणामसुखावहम् ॥
स्वगर्भयातनानाशपीड़ाखण्डनकारणम् । दुष्पारासारदुर्वार-संसारार्णवतारणम् ॥६५॥
कर्मवृक्षाङ्कुरच्छेदकारणं सर्वतारणम् । सन्तोषसन्ततिकरं प्रवरं सर्ववर्त्मनाम् ॥ ६६ ॥
दानेन तपसा वापि व्रतेनानशनादिना । कर्मणा स्वर्गभोगादिसुखं भवति जीविनाम् ॥
पूर्वकाम्यकर्मणाञ्च मूलं संछिद्य यत्नतः । अधुनेदं मोक्षबीजं संकल्पाभाव एव च ॥६८
यत्कर्म सात्त्विकं कुर्य्यादसंकल्पितमेव च । सर्वं कृष्णार्पणं कृत्वा परे ब्रह्मणि लीयते॥
संसारिकाणामेतत्तु निर्वाणमोक्षणं विदुः । नेच्छन्ति वैष्णवास्तत्तु सेवाविरहकातराः
सेवां कुर्वन्ति ते नित्यं विधाय देहमुत्तमम् । गोलोके चापिवैकुण्ठेतत्त्वैवपरमात्मनः ॥
हरिसेवादिरूपाञ्च मुक्तिमिच्छन्तिवैष्णवाः । जीवन्मुक्ताश्चतेशश्वत्स्वकुलोद्धारकारिणः ॥
स्मरणं कीर्त्तनं विष्णोरर्चनं पादसेवनम् । वन्दनं स्तवनं नित्यं भक्त्या नैवेद्यभक्षणम्॥
चरणोदकपानञ्च तन्मन्त्रजपनं परम् । इदं निस्तारबीजञ्च सर्वेषामीप्सितं भवेत् ॥७४
इदं मृत्युञ्जयं ज्ञानं दत्तं मृत्युञ्जयेन मे । तच्छिष्योऽहञ्च निःशङ्कः तत्प्रसादाच्चसर्वतः ॥
स जन्मदाता स गुरुः स बन्धुःसतांवरः । योददातिहरेर्भक्तिंत्रैलोक्येच सुदुर्लभाम् ॥

दर्शयेदन्यमार्गञ्च श्रीकृष्णसेवनं विना । स स तं नाशमाप्नोति ध्रुवं कल्पमात् भवेत्
रक्षकं जगतां कृष्णनाम मङ्गलकारणम् । मङ्गलं वर्द्धते नित्यं न भवेदायुषो व्ययः ।
तेभ्योऽप्यपैति कालश्च मृत्युश्च रोगणस्तथा । सन्तापश्चैव शोकश्च वैनतेयादिवोरगाः ।
कृष्णमन्त्रोपासकस्य ब्राह्मणस्य यतोऽपि वा । ब्रह्मलोकं समुल्लङ्घ्य याति गोलोकमुत्तमम् ।
ब्रह्मणा पूजितः सोऽपि मनुपर्वादिना च वै । स्तुतः सुरैश्च सिद्धैश्च परमानन्दमानसः ॥
ज्ञानसारं तपःसारं ब्रह्मसारं परं शिवम् । शिवेनोक्तं योगसारं श्रीकृष्णपादसेवनम् ॥
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव स्वप्नवत् । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं प्रकृतेः परम् ॥
अतीव सुखदं सारं भक्तिदं मुक्तिदं परम् । सिद्धियोगप्रदञ्चैव दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
योगिनामपि सिद्धानां यतीनाञ्च तपस्विनाम् । सर्वेषां कर्मभोगोऽस्ति न नारायणसेविनाम्

भस्मसाच्च भवेत् पापं यदुपस्पर्शमात्रतः ।
ज्वलदग्नौ पातितञ्च यथा शुष्केन्धनं तथा ॥८८॥

ततो रोगाहि वेपन्ते पापानि च भयानि च । दूरतश्च पलायन्ते यमदूता यतो भयात् ॥
तावन्निबद्धः संसारे कारागारे विधेर्जनः । न यावत् कृष्णमन्त्रञ्च प्राप्नोति गुरुवक्त्रतः ॥
कृतकर्मभोगरूप निगडच्छेदकारणम् । मायाजालोच्छेदकरं मायापाशनिकृन्तनम् ॥८९
गोलोकमार्गसोपानं निस्तारबीजकारणम् । भक्त्यङ्कुरस्वरूपञ्च नित्यंवृद्धमनश्वरम् ॥९०
सारञ्च सर्वतपसां योगानाञ्च तथैव च । सिद्धीनां वेदपाठानां व्रतादीनाञ्च निश्चितम् ॥
दानानां तीर्थस्नानानां यज्ञादीनां पुरन्दर । पूजानामुपवासनामित्याह कमलोद्भवः ॥९२
पुंसां लक्षपितृणाञ्च शतं मातामहस्य च । पूर्वं परञ्च तन् संख्यं पितरं मातरं गुरुम् ॥
सहोदरं कलत्रञ्च बन्धुं शिष्यञ्च किङ्करम् । समुद्धरेच्च श्वशुरं श्वश्रूं कन्याञ्चतन्सुतम् ॥
स्वात्मानञ्च सतीर्थञ्च गुरुपत्नीं गुरोः सुतम् । उद्धरेद् बलवान्भक्तोमन्त्रग्रहणमात्रतः ॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । तत्स्पर्शपूतस्तीर्थौघः सद्यःपूतावसुन्धरा ॥९६
अनेकजन्मपर्यन्तं दीक्षाहीनो भवेन्नरः । तदन्यदेवमन्त्रञ्च लभते पुण्यलेशतः ॥९७॥
सप्तजन्मोपदेवानां कृत्वा सेवांस्वकर्मतः । लभते च रवेर्मन्त्रंसाक्षिणः सर्वकर्मणाम् ।
जन्मत्रयं भास्करञ्च निसेव्य मानवः शुचिः । लभेद्गणेशमन्त्रञ्च सर्वविघ्नहरं परम् ॥९८

न्मत्रयं सं निसेव्य निर्विघ्नश्च भवेन्नरः । विघ्नेशस्य प्रसादेन दिव्यज्ञानं लभेन्नरः १०।
ा ज्ञानप्रदीपेन समालोच्य महामतिः । अज्ञानान्धतमश्छित्वा महामायां भजेन्नरः ।
म्भुमायाञ्च प्रकृतिं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् । सिद्धिदां सिद्धिरूपाञ्च परमां सिद्धियोगिनीम्
र्गारूपाञ्च पद्माञ्च भद्रां कृष्णप्रियात्मिकाम् । नानारूपां तां निसेव्य जन्मनाशतकं नरः ॥
प्रसादाद्भवेज्ज्ञानी ज्ञानानन्दं तदा भजेत् । कृष्णज्ञानाधिदेवञ्च महादेवं सनातनम् ॥
र्वं शिवस्वरूपञ्च शिवदं शिवकारणम् । परमानन्दरूपञ्च परमानन्ददायिनम् ॥१०५॥
दं मोक्षदं चैव दातारं सर्वसम्पदाम् । अमरत्वप्रदञ्चैव दीर्घमायुष्प्रदं परम् ॥१०६॥
त्वञ्च मनुत्वञ्च दातुं शक्तञ्च लीलया । राजेन्द्रत्वप्रदञ्चैव ज्ञानदं हरिभक्तिदम् ॥१०७
त्रयं तमाराध्य चाशुतोषप्रसादतः । सर्वदस्य प्रसादेन शङ्करस्य महात्मनः ॥१०८॥
स्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम् । तदा तद्भक्तसंसर्गात् कृष्णमन्त्रं लभेद्ध्रुवम् ॥
लज्ञानदीपेन प्रदीप्तेन च तत्त्ववित् । महादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पश्यति ॥११०
निधेः प्रसादेन निर्मलज्ञानमाप्नुयात् । वरदस्य वरेणैव हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम् ॥

तदा निवृत्तिमाप्नोति सारात्सारां परात्पराम् ।
यत्र देहे लभेन्मन्त्रं तद्देहावधि भारते ॥ ११२ ॥
तस्याश्च भौतिकं त्यक्त्वा बिभर्त्ति दिव्यरूपकम् ।
करोति दास्यं गोलोके वैकुण्ठे वा हरेः पदे ॥ ११३ ॥

न्द्रसंयुक्तो मोहादिषु विवर्जितः । न विद्यते पुनर्जन्म पुनरागमनं हरे ॥११४॥
न पिबेत्क्षीरं धृत्वा मातुस्तनं परम् । विष्णुमन्त्रोपासकानां गङ्गादितीर्थसेविनाम् ॥
गाञ्च भिक्षूणां पुनर्जन्म न विद्यते । तीर्थे वसेत्त्यजेत्पापं क्रियां कृत्वा हरिं भजेत् ॥
रूपितो धात्रा स्वधर्मस्तीर्थसेविनाम् । तन्नाममन्त्रं प्रजपेत्तत्सेवादिषु तत्परः ॥
प्वासरत इत्युक्तो विष्णुसेविनाम् । सदन्ने वाकदन्ने वा लोष्ट्रे वा काञ्चने तथा ॥
द्विर्यस्य शश्वत्स सन्न्यासीति कीर्त्तितः । दण्डं कमण्डलुं रक्तवस्त्रमात्रञ्च धारयेत् ॥
वासी नैकत्र स सन्न्यासीति कीर्त्तितः । शुद्धाचारद्विजान्नञ्च भुङ्क्ते लोभादिवर्जितः
किञ्चिन्न याचेत स सन्न्यासीति कीर्त्तितः । नव्यापारी नाश्रमी च सर्वकर्मविवर्जितः ॥

ध्यायेन्नारायणंशश्वत्ससन्न्यासीतिकीर्तितः । शश्वन्मौनीब्रह्मचारीसंभाषापरिवर्जितः ॥
सर्वं ब्रह्ममयं पश्येत् स सन्न्यासीतिकीर्तितः । सर्वत्रसमबुद्धिश्च हिंसामायादिवर्जितः ॥
क्रोधाहङ्काररहितः स सन्न्यासीतिकीर्तितः । अयाचितोपस्थितञ्च मिष्टामिष्टञ्च भुक्तवान् ॥
न याचते भक्ष्यार्थी स सन्न्यासीतिकीर्तितः । न च पश्येन्मुखं स्त्रीणां न तिष्ठेत्तत्समीपतः ॥
दारवीमपि योषाञ्च न स्पृशेद् यः स भिक्षुकः । अयंसन्न्यासिनांधर्मस्त्वाहकमलोद्भव ॥
विपर्य्यये विनाशश्च जन्म याम्यं भयं भवेत् । जन्मदुःखं याम्यदुःखंजीविनामतिदारुणम्
सुरशूकरयोनौ वा गर्भे दुःखं समं सुर । योनौ वा क्षुद्रजन्तूनां पक्षादीनां तथैव च ॥
गर्भे स्मरन्ति सर्वे ते कर्म्म जन्मशतोद्भवम् । विस्मरेन्निर्गतोजीवोगर्भाच्च विष्णुमायया।

स्वदेहं याति यत्नेन सुरे वा कीट एव वा ॥१२६॥

योनेरभ्यन्तरे शुक्रे पतिते पुरुषस्य च । शुक्रः शोणितयुक्तश्च सहसा तत्क्षणं भवेत् ॥
रक्ताधिके मातृसमश्चेतरे पितुराकृतिः । युग्माहे च भवेत् पुत्रः कन्याकातद्विपर्य्यये ॥
रविभौमगुरूणाञ्च वारे चेत्तद्भवेत् सुतः । अयुग्माहे तदितरे वारे च कन्यका भवेत् ॥
प्रथमप्रहरे जन्म यस्य सोऽल्पायुरेव च । द्वितीये मध्यमश्चैव तृतीये तत्परो भवेत् ॥
चतुर्थे चिरजीवी च क्षणानुरूपको भवेत् । दुःखी वाथ सुखी वापि पूर्वकर्मानुरूपतः ॥
यादृशे च क्षणे जन्म प्रसवस्तादृशे भवेत् । प्रसूतिक्षणचर्चाञ्च कुर्वन्त्येव विचक्षणाः ॥
कललन्त्वेकरात्रेण वर्द्धयेच्च दिने दिने । सप्तमे बदराकारो मासे गण्डुसमो भवेत् ॥
मासत्रये मांसपिण्डो हस्तपादादिवर्जितः । सर्वावयवसम्पन्नो देही मासे च पञ्चमे ॥
भवेत्तु जीवसञ्चारः षण्मासे सर्वतत्त्ववित् । दुःखी स्वल्पस्थलस्थायीशकुन्तइव पिञ्जरे ॥
मातृजग्धान्नपानञ्च भुङ्क्तेमेध्यस्थलेस्थितः । हाहेतिशब्दंकृत्वाचचिन्तयेदीश्वरं परम् ॥
एवञ्च चतुरो मासान्भुक्त्वापरमयातनाम् । प्रेरितोवायुनाकालेगर्भाच्चनिर्गतोभवेत् ॥
दिग्देशकालाव्युत्पन्नोविस्मृतोविष्णुमायया । शश्वद्विण्मूत्रसंयुक्तःशिशुश्चशैशवावधि
परायत्तोऽप्यक्षमश्च मशकादिनिवारणे । कीटादिभुक्तो दुःखी च रौति तत्र पुनःपुनः ॥

स्तनान्धोऽप्यसमर्थश्च याच्ञां कर्तुमभीप्सिताम् ।
न वाणी निःसरेत्तस्य पौगण्डावधि प्रस्फुटा ॥१४३॥

…भाण्डे यातनां भुक्त्वा प्राप्नोति यौवनं पुनः । नस्मरेन्मायया देही गर्भादियातनां पुनः ॥
…आहारमैथुनार्त्तश्च नानामोहादिवेष्टितः । पुत्रं कलत्रमनुगं यत्नेन परिपालयेत् ॥१४५॥
…वं यावत् समर्थश्च तावदेव हि पूजितः । असमर्थश्च मन्यन्ते बान्धवा गोजरं यथा ॥
…दाऽतीव जरायुक्तो जडोऽतिबधिरो भवेत् । काशश्वासादियुक्तश्च परायत्तोऽतिमूढवत् ॥
…दन्तेऽनुतापश्च करोति सन्ततं पुनः । न सेवितो हरेस्तीर्थं सत्सङ्गश्चापि कामतः ॥
पुनश्च मानवीं योनिं लभामि भारते यदि । तदा तीर्थं गमिष्यामि भजामि कृष्णमित्यहो ॥
इत्येवमादि मनसि कुर्वन्तं तं जडं सुर । गृह्णाति यमदूतश्च काले प्राप्तेऽतिदारुणः ॥
स पश्येद्यमदूतञ्च पाशहस्तञ्च दण्डिनम् । अतीवकोपरक्ताक्षं विकृताकारमुल्वणम् ॥
दुर्निवार्यमुपायैश्च बलिष्ठञ्च भयङ्करम् । दुर्दृष्टं सर्वसिद्धिज्ञं सद्योदृष्टं पुरःस्थितम् ॥१५२

दृष्टिमात्रान्महाभीतो विण्मूत्रञ्च समुत्सृजेत् ।
तदा प्राणांस्त्यजेन् सद्यो देहञ्च पाञ्चभौतिकम् ॥ १५३॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं गृहीत्वा यमकिङ्करः । विन्यस्य भोगदेहे च स्वस्थानं प्रापयेत् द्रुतम् ॥
जीवो गत्वा यमं पश्येत् सर्वधर्मेशमेव च । रत्नसिंहासनस्थञ्च सस्मितं सुस्थिरं परम् ॥
धर्माधर्मविचारज्ञं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम् । विश्वेष्वेकाधिकारञ्च विधात्रा निर्मितं पुरा ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम् । वेष्टितं पार्षदगणैर्दूतैश्चापि त्रिकोटिभिः ॥१५७
जपन्तं श्रीकृष्णनाम शुद्धस्फाटिकमालया । ध्यायमानं तत्पदाब्जं पुलकाङ्कितविग्रहम् ॥
सानन्दं साश्रुनेत्रं सर्वत्र समदर्शिनम् । अतीव कमनीयञ्च शश्वत्सुस्थिरयौवनम् ॥१५९॥
स्वतेजसा प्रज्वलन्तं सुखदृश्यं विचक्षणम् । शारत्पार्वणचन्द्राभं चित्रगुप्तपुरःस्थितम् ॥
पुण्यात्मनां शान्तरूपं पापिनाञ्च भयङ्करम् । तं दृष्ट्वा प्रणमेद्देही महाभीतश्च तिष्ठति ॥
चित्रगुप्तविचारेण येषां यद्दुश्चितं फलम् । शुभाशुभञ्च कुरुते तदेव रविनन्दनः ॥१६२॥
एवं तेषां गतायाते निवृत्तिर्नास्ति जीविनाम् । निवृत्तिहेतुरूपञ्च श्रीकृष्णपादसेवनम् ॥
इत्येतत्कथितं सर्वं यत्प्रार्थयवाञ्छितम् । सर्वं दास्यामि देवत्वसमेऽसाध्यञ्च किञ्चन ॥

महेन्द्र उवाच

इन्द्रत्वं च गतं भद्रं किमैश्वर्ये प्रयोजनम् । कल्पवृक्ष मुनिश्रेष्ठ देहि मे परमं पदम् ॥

महेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः । तमुवाच वचः सत्यं वेदोक्तं सारमे

मुनिरुवाच

परं पदं विषयिणां महेन्द्रातिसुदुर्लभम् । मुक्तिर्भुम्मद्विधानाञ्च न लये प्राकृतेऽपि
आविर्भावः सृष्टिविधौ तिरोभावो लयेऽपि च । यथा जागरणं सुप्तिर्भवत्येव क्रमेण
यथा भ्रमति कालश्च तथा विषयिणो ध्रुवम् । चक्रनेमिक्रमेणैव नित्यमेवेश्वरेच्छ
पलमेकं भवेदेव यथा विपलषष्टिभिः । षष्टिभिश्च पलैर्दण्डो मुहूर्त्तो द्विगुणात्त
त्रिंशद्भिश्च मुहूर्त्तैश्च भवेदेव दिवानिशम् । दशपञ्चदिवारात्रिः पक्षमेकं विदुर्बु

पक्षाभ्यां शुक्लकृष्णाभ्यां मास एव विधीयते ।

ऋतुर्द्वाभ्याञ्च मासाभ्यां संख्याविद्भिः प्रकीर्त्तितः ॥१७२॥

ऋतुत्रयेणायनञ्च ताभ्यां द्वाभ्याञ्च वत्सरः । विंशत्सहस्राधिकैव त्रिचत्वारिंशल्लक्ष
वत्सरैर्नरमानैश्च युगाश्चत्वार एव च । षष्ट्यधिके पञ्चशते सहस्रे पञ्चविंशत

युगे नराणां शक्रायुर्मनोरायुः प्रकीर्त्तितम् ॥ १७४ ॥

दिग्लक्षेन्द्रनिपातेऽष्टसहस्राधिक एव च ॥ १७५ ॥

निपातो ब्रह्मणस्तत्र भवेत्प्राकृतिको लयः । लये प्राकृतिके वत्स कृष्णस्यपरमात्मन
चक्षुर्निमेषः सृष्टिश्च पुनरुन्मीलने तथा । ब्रह्मसृष्टिलयानाञ्च संख्या नास्ति श्रुतौ श्रुत
यथा पृथिव्यां रेणूनामित्याह चन्द्रशेखरः । एतेषां मोक्षणं नास्ति कथितानिचयानिच
गृहिसूत्रस्वरूपं हि चान्यद् शृणु सुरेश्वर । मुनीन्द्रस्य वचः श्रुत्वा देवेन्द्रो विस्मितो मुने
आत्मनः पूर्वमैश्वर्यं परयामास तत्र वै । तत्प्राप्त्यस्य चिरेणैवेत्युक्त्वा स प्रययौ गृहम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे मुनीन्द्रसुरेन्द्रसंवादे लक्ष्म्युपाख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

---

## सप्तत्रिंशोऽध्यायः

### हरिगुणश्रवणादिन्द्रस्य ज्ञानप्राप्तिः ।

नारद उवाच ।

ुणं समाकर्ण्य ज्ञानं प्राप्य पुरन्दरः । किञ्चकार गृहं गत्वा तन्मेव्याख्यातुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

ष्णस्यगुणं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः । वैराग्यं वर्द्धयामास तदाब्रह्मन् दिनेदिने ॥
स्थानाद्गृहं गत्वासददर्शामरावतीम् । दैत्यैरसुरसङ्घैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम् ॥
ण्णबान्धवां कुत्र बन्धुहीनाञ्चकुत्रचित् । पितृमातृकलत्रादि विहीनामतिचञ्चलाम् ॥
स्ताञ्च तां दृष्ट्वा जगामवाक्पतिं प्रति । शक्रो मन्दाकिनी तीरे ददर्शगुरुमीश्वरम् ॥
ानं परंब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम् । सूर्य्याभिसंमुखं पूर्वमुखञ्चविश्वतोमुखम् ॥
नेत्रं पुलकितं परमानन्दसंयुतम् । वरिष्ठञ्च गरिष्ठञ्च धर्मिष्ठमिष्टसेविनम् ॥७॥
ञ्च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठञ्च ज्ञानिनाम् । ज्येष्ठञ्चबन्धुवर्गाणां नेष्टञ्च सुरवैरिणाम्
ुरुं जगन्तञ्च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः । प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः ॥
। चरणाम्भोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः । वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा ॥
ो मया लब्धो ज्ञानप्राप्ति सुदुर्लभाम् । वैरग्रस्ताञ्च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः ॥
स्य वचनं श्रुत्वा सतां बुद्धिमतां वरः । वृहस्पतिरुवाचेदं कोपरक्तान्तलोचनः ॥

गुरुरुवाच ।

वं सुरश्रेष्ठ मारोदीर्वचनं शृणु । न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन ॥
र्वा विपत्तिर्वा नश्वरास्वप्नरूपिणी । पूर्वस्वकर्मायत्ता च स्वयंकर्त्तातयोरपि ॥
ञ्च भ्रमत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि । चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना ॥१५॥
हि स्वकृतंकर्मसर्वत्रचापिभारते । शुभाशुभञ्च यत्किञ्चित् स्वकर्मफलभुक्पुमान्
क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

स्वर्गेषु सुखं भेदे च कर्मणा परमात्मना । साध्वि कोटिगुणमायान्ति संयोगं स्वाकुलोद्भवम्
जन्मभोगावशेषे च मर्त्यानां कृतकर्मणाम् । मनुष्याश्च मेघाश्च नागेऽन्यत्र चैव हि ।
कर्मणा ब्रह्मशापश्च कर्मणा च शुभाशिषम् । कर्मणा च महालक्ष्मी लभेद्दैन्यञ्च कर्मणा
कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति । न हि त्यजेद्विना भोगात् संजायेत पुनः ।
कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम् । न्यूनताधिकता चापि भवेदेव हि कर्मणाम् ।
वस्तुदाने च वस्तूनां समं पुण्यं समे दिने । दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं चाधिकं ततः ।
समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर । देशभेदे कोटिगुणमसंख्यं वाधिकं ततः ॥
समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च । पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम् ।
यथा फलन्ति शस्यानि न्यूनानि चाधिकानि च । कृषकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा
सामान्यदिवसे विप्रे दानं समफलं भवेत् । अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणं भवेत्

चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तफलमेव च ॥ २१ ॥

ग्रहणे शशिनः कोटिगुणञ्च फलमेव च । सूर्य्यस्य ग्रहणे चापि ततो दशगुणं फलम् ॥
अक्षयायामक्षयञ्चैवासंख्यं फलमुच्यते । एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिह ॥२२॥
यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्य पुण्यकर्मसु । एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम्
सामान्यदेशे दानञ्च विप्रे समफलं भवेत् । तीर्थे देवगृहे चैव फलं शतगुणं स्मृतम् ॥
गङ्गायाञ्च कोटिगुणं क्षेत्रे नारायणेऽव्ययम् । कुरुक्षेत्रे बदर्य्याञ्च काश्यांकोटिगुणं तथा
यथा चैव कोटिगुणं तथा च विष्णुमन्दिरे । केदारे च लक्षगुणं हरिद्वारे तथा फलम् ।
पुष्करे भास्करक्षेत्रे दशलक्षगुणं फलम् । एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यं क्रमेण च ।
सामान्यब्राह्मणे दानं सममेव फलं लभेत् । लक्षं त्रिसन्ध्यपूते च पण्डिते च जितेन्द्रिये
विष्णुमन्त्रोपासके च बुधेकोटिगुणं फलम् । एवं सर्वत्र बोद्धव्यं फलाधिक्यंगुणाधिके
यथा दण्डेन सूत्रेण शरावेण जलेन च । कुम्भं निर्माति चक्रेण कुम्भकारो मृदाभुवि ॥
तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च । यस्याज्ञया सृष्टिविधौ वत्स नारायणं भज ॥
स विधाता विधातुश्चपातुः पाताजगत्त्रये । स्रष्टुः स्रष्टा च संहर्त्तुः संहर्ताकालकालकः
महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम् । विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः ॥

इत्येवमुक्त्वा जीवश्च समालिङ्ग्य सुरेश्वरम् ।
दत्वा शुभाशिषं चेदं बोधयामास नारद ॥ ४१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण-नारदीये बृहस्पतिमहेन्द्रसंवादे महालक्ष्म्युपाख्याने सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## अष्टत्रिंशोऽध्यायः

### महालक्ष्म्युपाख्याने विष्णुभक्तस्य शुभकथनम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मन् जगाम ब्रह्मणः सभाम् । बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह ।
शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वाः गुरुणा सह नारद ॥२॥
वृत्तान्तंकथयामास सुराचार्योविधिंविभुम् । प्रहस्योवाचतन्श्रुत्वामहेन्द्रंकमलोद्भवः ।

ब्रह्मोवाच ।

वत्समद्वंशजातोऽसिप्रपौत्रोमेविचक्षणः । बृहस्पतेश्चशिष्यस्त्वंसुराणामधिपःस्वयम् ॥
मातामहस्ते दक्षश्च विष्णुभक्तःप्रतापवान् । कुलत्रयं यच्छुद्धश्च कथं सोऽहङ्कृतोभवेत् ।
मातापतिव्रता यस्य पिताशुद्धोजितेन्द्रियः । मातामहोमातुलश्च कथंसोऽहङ्कृतोभवेत् ।
जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च । गुरोर्दोषाच्चतिदोषैर्हरिद्वेषी भवेद्ध्रुवम् ॥७॥
सर्वान्तरात्माभगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः । यस्य देहात्सप्रयातिस शवस्तत्क्षणंभवेत् ॥
मनोऽहमिन्द्रियेशश्च ज्ञानरूपो हि शङ्करः । विष्णुः प्राणाश्च प्रकृतिर्बुद्धिर्भगवती सती ॥
निद्रादयः शक्तयश्चताःसर्वाःप्रकृतेःकलाः । आत्मनः प्रतिबिम्बश्चजीवो भोगशरीरभृत् ।
आत्मनीशेगते देहात् सर्वेयान्तिःससंभ्रमात् । यथा वर्त्मनिगच्छन्तं नरदेवमिवानुगाः ।
अहंशिवश्चशेषश्चविष्णुर्धर्मो महान् विराट् । यद्यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं त्यक्तंत्वया
शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च । तच्च दुर्वाससा दत्तं दैवेन त्यक्तं सुर ॥१२॥

तत् पुष्पंमस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम् । सर्वेषाञ्च सुराणाञ्च तत्पूजा पुरतोभवे
दैवेन वञ्चितस्त्वञ्च दैवञ्च बलवत्तरम् । भाग्यहीनं जनं मूढं कोवा रक्षितुमीश्वरः ।
कृष्णं न मन्यते यो हि श्रीनाथं सर्ववन्दितम् । प्रयातिरुष्टा तद्दासी महालक्ष्मीर्विहाय च
शतयज्ञेनयालब्धा दीक्षितेन त्वयापुरा । साश्रीर्गताधुना कोपात् कृष्णनिर्माल्यवर्जना
अधुनागच्छ वैकुण्ठं मयाच गुरुणा सह । निषेव्यतत्रश्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यसि तद्वरा
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैःसह । शीघ्रं जगाम वैकुण्ठंयत्र श्रीशस्तथा सह
तत्र गत्वा परं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् । दृष्ट्वा तेजस्वरूपञ्च प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ॥

ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डशतकोटिसमप्रभम् ।
शान्तञ्चानादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम् ॥ २१ ॥

चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या स्तुतं नतम् । भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गया परिसेवितम्
तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः । भक्तिनम्रा साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्
वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः । रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकारच्युताश्च ता
स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम् । वस्त्रभूषणशून्यञ्च वाहनादिविवर्जितम् ॥२
शोभाशून्यं हतश्रीकमतिनिष्प्रतिभं परम् । उवाच कातरं दृष्ट्वा विपन्नभयभञ्जनः ॥२६॥

नारायण उवाच ।

माभैर्ब्रह्मन् हे सुराश्चभयं किंवो मयिस्थिते । दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्द्धिनीम्।
किञ्च मद्वचनं किञ्चिच् श्रूयतां समयोचितम् । हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम्
जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्चसन्ततम् । यथातथाहं मद्भक्तैः पराधीनःस्वतन्त्रकः ॥

यो यो रुष्टो हि मद्भक्ते मत्परे हि निरङ्कुशः ।
तद् गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम् ॥ ३० ॥

दुर्वासा शङ्करांशश्च वैष्णवो मत्परायणः । तत् शापादागतोऽहञ्च सर्वांशो यो गृहादपि।
यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसी च शिलार्चनम् । न भोजनञ्च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति।
मद्भक्तानाञ्च निन्दा यत्र यत्र भवेत् सुराः । महारुष्टा महालक्ष्मीस्तेनायाति पराभवात्
मद्भक्तिहीनो यो मूढो भुङ्क्ते हरिवासरे । ममजन्मदिने वापियाति श्रीस्तद्गृहादपि ।

मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम् ।
यत्रातिथिर्न भुंक्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात् ॥३५॥

पापिनांयोगृहंयाति शूद्रश्राद्धान्नभोजिनाम् । महारुष्टाततोयाति मन्दिरात्कमलालया
शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनश्च ब्राह्मणः । यातिरुष्टा तद्गृहाच्च देवी कमलवासिनी
शूद्राणां सूपकारोयो ब्राह्मणो वृषवाहकः । तत्तोयपानभीताच कमलायातितद्गृहात्
विप्रो यवनसेवी च देवलः शूद्रयाजकः । तत्तोयपानभीता च वैष्णवीयाति तद्गृहात्

विश्वासघाती मित्रघ्नो नरघाती कृतघ्नकः ।
योऽगम्यागामुको विप्रो मद्भार्या याति तद्गृहात् ॥४०॥

अशुद्धहृदयःक्रूरो हिंसको निन्दकोद्विजः । ब्राह्मण्यां शूद्रजातश्च यातिदेवीचतद्गृहात्

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः ।
अवीरान्नञ्च यो भुङ्क्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः ॥४२॥
तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो हि लिखेन्महीम् ।
जिह्मो वा मलवासाश्च सा प्रयाति च तद्गृहात् ॥४३॥

र्योदये चद्विभोजीदिवाशायीचब्राह्मणः । दिवामैथुनकारीचतस्माद्याति हरिप्रिया

आचारहीनो यो विप्रः यश्च शूद्रप्रतिग्रही ।
अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्मात् लीला प्रयाति च ॥४५॥

ग्नधपादश्चनग्नोवायःशेतेज्ञानदुर्बलः । शश्वद्धर्मातिवाचालो यात्येव तद्गृहात् सती
रः स्नातश्चतैलेनयोऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत् । स्वाङ्गे च वादयेद्वाद्यं रमा यातिच तद्गृहा
तोपवासहीनोयःसन्ध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः । विष्णुभक्तिविहीनोयस्तस्माद्यातिहरिप्रि

ब्राह्मणं निन्दयेद् यो हि तांश्च द्वेष्टि च सन्ततम् ।
जीवहिंसी दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः ॥ ४६ ॥

त्र तत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्त्तनं शुभम् । तत्र तिष्ठति सा देवी कमला सर्वमङ्गला ॥५
यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह । सा च कृष्णप्रिया देवी तत्रतिष्ठतिसन्तत
यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिलावतुलसीदलम् । तत्सेवा वन्दनं ध्यानं तत्रसापरितिष्ठति

शिवलिङ्गार्चनं यत्र गव्य भोज्यार्पणं शुभम् । दुर्गार्चनं तद्गुणाभनवपद्मनिवासिनी
विप्राणां सेवनं यत्र नैवाद्य भोजनं शुभम् । अर्चनं सर्वदेवानां तत्र सम्पूर्णा सती ॥५४
इत्युक्त्वा च सुरान् सर्वान् रमानाथ रमापतिः । क्षीरोदसागरे जन्मकल्पान्तरेऽतिन
इत्युक्त्वा तान् जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च । मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज
इत्युक्त्वा कमलाकान्तो जगामाभ्यन्तरं मुने । देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोदसागरम्
मन्थानं मन्दरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम् । कृत्वा दोरं मन्थनार्थं सुराश्चक्रुश्च मर्थनम्
धन्वन्तरिञ्च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम् । नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्म्याश्च दर्शनम्
वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने । सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैकुण्ठवासिने
देवैःस्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च । ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचने ॥६१॥
प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यग्रस्तं भयङ्करैः । महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद ॥ ६२ ॥
इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं सारभूतञ्च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण नारद संवादे
लक्ष्म्युपाख्यानेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

---

## ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

लक्ष्मीनाशात्पुनस्तत्प्राप्तये इन्द्रेणलक्ष्म्याःपूजनम् ।

नारद उवाच ।

हरेरुत्कीर्त्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम् । ईप्सितंलक्ष्म्युपाख्यानंध्यानंस्तोत्रादिकंवद ॥
हरिणा पूजिता पूर्वं ततो ब्रह्मादिभिस्तथा । शक्रेणभ्रष्टराज्येन सार्द्धं सुरगणेन च ॥२॥
पूजिता केन ध्यानेन विधिना केनवापुरा । स्तुता वा केनस्तोत्रेणतन्मेव्याख्यातुमर्हसि

श्रीनारायण उवाच ।

स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी ।
घटं संस्थाप्य क्षीरोदे देवषट्कञ्च पूजितः ॥ ४ ॥

गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । एतान्भक्तयासमभ्यर्च्यपुष्पगन्धादिभिस्तथा
तत्रावाह्यमहालक्ष्मीं परमैश्वर्य्यरूपिणीम् । पूजाञ्चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा ॥
पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ तथा । देवादिषु च देवेशे ज्ञानानन्दे शिवे मुने ॥७॥
पारिजातस्य पुष्पञ्चगृहीत्वाचन्दनोक्षितम् । ध्यात्वादेवींमहालक्ष्मींपूजयामास नारद ॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं यदुक्तं ब्रह्मणे पुरा । हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध वदामि ते ॥
सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनीं पराम् । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाजुष्टकरांवराम् ॥१०

स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम् ।
प्रतप्तकाञ्चननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥ ११ ॥

रत्नभूषणभूषाढ्यांशोभितांपीतवाससा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥
सर्वसम्पत्प्रदात्रीञ्च महालक्ष्मीं भजेशुभाम् । ध्यानेनानेनतांध्यात्वा नानोपहारसंयुतः ॥
सम्पूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपहाराणि षोड़शः । ददौ भक्तयाविधानेनप्रत्येकंमन्त्रपूर्वकम् ॥
प्रशंस्यानि प्रहृष्टानि दुर्लभानि वराणि च । अमूल्यरत्नसारञ्च निर्मितं विश्वकर्मणा ।

आसनञ्च विचित्रञ्च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम् ॥ १५ ॥

शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम् । पापेध्मवह्निरूपञ्च गृह्यतां कमलालये ॥१६॥
पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम् । शङ्खगर्भस्थितं शुद्धं गृह्यतां पद्मवासिनि ॥१७॥
सुगन्धि विष्णुतैलञ्च सुगन्धामलकीजलम् । देहसौन्दर्य्यबीजञ्च गृह्यतां श्रीहरिप्रिये ॥
वृक्षनिर्यासरूपञ्च गन्धद्रव्यादिसंयुतम् । कृष्णकान्ते पवित्रञ्च धूपञ्चप्रतिगृह्यताम् ॥१९
मलयाचलसम्भूतं वृक्षसारं मनोहरम् । सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देविगृह्यताम् ॥२०॥
जगच्चक्षुः स्वरूपञ्च ध्वान्तप्रध्वंसकारणम् । प्रदीपं शुद्धरूपञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥२१॥
नानोपहाररूपञ्च नानारससमन्वितम् । नानास्वादुकरञ्चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२॥
अन्नब्रह्मस्वरूपञ्च प्राणरक्षणकारणम् । तुष्टिदं पुष्टिदञ्चैवमन्नञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥२३॥
शाल्यक्षतसुपक्वञ्च शर्करागव्यसंयुतम् । सुस्वादुयुक्तं पद्मे च परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥२४
शर्करा गव्यपक्वञ्च सुस्वादु सुमनोहरम् । मयानिवेदितंलक्ष्मिस्वस्तिकं प्रतिगृह्यताम् ॥

नानाविधानि रम्याणि पक्वानि च फलानि च ।
स्वादु युक्तानि कमले गृह्यतां फलदानि च ॥ २६ ॥

सुरभीस्तनसम्भूतं सुस्वादु सुमनोहरम् । मर्त्यामृतञ्च गव्यञ्च गृह्यतामच्युतप्रिये ॥
सुस्वादु रससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम् । अग्नितप्तमार्कं वा गुडञ्चेदं विगृह्यताम् ॥
यवगोधूमशस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम् । सुपक्वगुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम् ॥
शस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादि समन्वितम् । मयानिवेदितं देवि पिष्टकं प्रतिगृह्यताम् ॥
पार्थिवं वृक्षभेदञ्च विविधं द्रव्यकारणम् । सुस्वादुरससंयुक्तमिक्षुञ्च प्रतिगृह्यताम् ॥
शीतवायुप्रदञ्चैव दाहे च सुखदं परम् । कमले गृह्यताञ्चेदं व्यजनं श्वेतचामरम् ॥
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । जिह्वाजाड्यच्छेदकरं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥
सुवासितं शीतलञ्च पिपासानाशकारणम् । जगज्जीवनरूपञ्च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥
देहसौन्दर्य्यबीजञ्च सदा शोभाविवर्द्धनम् । कार्पासजञ्च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम् ॥
रत्नस्वर्णविकारञ्च देहभूषाविवर्द्धनम् । शोभाधानं श्रीकरञ्च भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥
नानाकुसुमनिर्माणं बहुशोभाप्रदं परम् । सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥
पुण्यतीर्थोदकञ्चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा । गृह्यतां कृष्णकान्ते च रम्यमाचमनीयकम् ॥
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम् । रत्नभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं प्रतिगृह्यताम् ॥
यद्यद् द्रव्यमपूर्वञ्च पृथिव्यामतिदुर्लभम् । देवभूषार्हभोग्यञ्च तद् द्रव्यं देवि गृह्यताम् ॥
द्रव्याण्येतानि दत्वा च मूलेन देवपुङ्गव । मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः ॥
जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह । मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वदः ॥
लक्ष्मीर्मायाकामवाणीततःकमलवासिनी । स्वाहान्तोवैदिकोमन्त्रराजोऽयं . . .
कुबेरोऽनेन मन्त्रेण सर्वैश्वर्यमवाप्तवान् । राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च ॥

मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपवतीपतिः ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च ॥४५॥

एते च सिद्धा राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद । सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनं
. . . . . . । सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयन्ती . . .
. . . रत्नभूषणभूषिता । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा ॥
. . . रत्नमालाञ्च कोटिचन्द्रसमप्रभा । दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शान्तां तुष्टाव तां . . .

ङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः । ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयतः ॥
सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च ॥ ५० ॥

इन्द्र उवाच ।

ओं नमो महालक्ष्म्यै ।

ः कमलवासिन्यैनारायण्यै नमो नमः । कृष्णप्रियायैसारायै पद्मायैचनमोनमः ॥
क्षणायैच पद्मास्यायै नमोनमः । पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः ।५२।
पत्स्वरूपायै सर्वदाव्यै नमो नमः । सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः ॥
क्तिप्रदाव्यै च हर्षदाव्यै नमो नमः । कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमोनमः ॥
माास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने । सम्पत्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः ॥
ष्ठातृदेव्यै च शस्यायैच नमो नमः । नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै नमो नमः ॥
या महालक्ष्मीःलक्ष्मीः क्षीरोदसागरे । स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये
ीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता । सुरभी सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी ।
चमाता त्वं कमलाकमलालये । स्वाहात्वञ्च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता
ष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा । शुद्धसत्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा
ावर्जिता च वरदा च शुभानना । परमार्थप्रदा त्वञ्च हरिदास्यप्रदा परा ॥६१
ा जगत् सर्वं भस्मीभूतमसारकम् । जीवन्मृतञ्च विश्वञ्च शवतुल्यं ययाविना
परात्वंहि सर्वबान्धवरूपिणी । यया विना नसम्भाष्यो बान्धवैर्बान्धवःसदा
ो बन्धुहीनःत्वयायुक्तःसबान्धवः । धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वञ्चकारणरूपिणी
स्तनान्धानां शिशूनां शैशवे यथा । तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषांसर्वविश्वतः
तनत्यक्तः सचेज्जीवति दैवतः । त्वया हीनोजनःकोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्
रूपात्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके । वैरिग्रस्तञ्च विषयं देहि मह्यं सनातनि ॥
त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः । सर्वसम्पद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये ॥
प्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि । कीर्त्तिं देहि धनं देहि यशोमह्यं च देहि वै
मतिं देहिभोगान् देहिहरिप्रिये । ज्ञानं देहिच धर्मञ्च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्

प्रभावञ्च प्रतापञ्च सर्वाधिकारमेव च । जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च ॥
इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह । प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्ना चैव पुनः पुन
ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः । सर्वे चक्रुः परिहारं सुरार्थे च पुनः पुन ॥
देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम् । केशवाय ददौ लक्ष्मीः सन्तुष्टा सुरसंसदि
ययुर्देवाश्च सन्तुष्टाः स्वं स्वं स्थानञ्च नारद । देवी ययौ हरेः क्रोडं हृष्टा क्षीरोदशायि
ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद । दत्त्वाशुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम्
इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः । कुबेरतुल्यः स भवेत् राजराजेश्वरो महा
सिद्धस्तोत्रं यदि पठेत् सोऽपि कल्पतरुर्नरः । पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्
सिद्धिस्तोत्रं यदि पठेत् मासमेकञ्च संयतः । महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशय

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे महालक्ष्मीस्तोत्रं समाप्तम् ।

नारद उवाच ।

पुष्पं दुर्वाससा दत्तमस्त्येव यस्य मस्तके । तस्य सर्वपुरः पूजेत्युक्तं पूर्वं त्वया प्रभो
तदेव स्थापितं पुष्पं गजेन्द्रस्यैव मस्तके । कुतो जन्म गणेशस्य स च मत्तो वनं गतः ॥
मूर्ध्निच्छिन्ने गणपतेः शनेर्दृष्ट्या पुरा मुने । तत् स्कन्धे योजयामास हस्तिमस्तं हरिः स्वयम्
अधुनोक्तं देवषट्कं संपूज्य च पुरन्दरः । पूजयामास लक्ष्मीञ्च क्षीरोदे च सुरैः सह ॥
अहो पुराणवक्तॄणां दुर्बोधं वचनं नृणाम् । सुव्यक्तमस्य सिद्धान्तं वद वेदविदांवर ॥

श्रीनारायण उवाच ।

यदा शशाप शक्रञ्च दुर्वासा मुनिपुङ्गवः । तदा नास्त्येव तज्जन्म पूजाकाले बभूव सः
सुचिरं दुःखिता देवा बभ्रमुर्ब्रह्मशापतः । पश्चात् प्रापुश्च तां लक्ष्मीं वरेण च हरेर्मुने ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्म्युपाख्यानं नाम ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

# चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## स्वाहोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग नारायणसमः प्रभो । रूपेण च गुणेनैव यशसातेजसा त्विषा
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां तथा । तपस्विनां मुनीनाञ्चपरोवेदविदां
महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम् ॥ २ ॥
अन्यत् किञ्चिदुपाख्यानं निगूढं वद साम्प्रतन् । अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तञ्च सर्वत
अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम् ॥ ३ ॥

श्री नारायण उवाच ।

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः । श्रुतौ कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन् सुदुर्लभम्
तेषु यत्सारभूतञ्च श्रोतुंकिंवात्वमिच्छसि । तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामितत्पु

नारद उवाच ।

स्वाहादेवहविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु । पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा
एतासां चरितं जन्म फलं प्राधान्यमेव च । श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्रात्वदवेदविदांवर

सौतिरुवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः । कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम् ।

नारायण उवाच ।

सृष्टेः प्रथमतो देवाश्चाहारार्थं ययुः पुरा । ब्रह्मलोके ब्रह्मसभामगम्यां सुमनोहराम् ॥
गत्वा निवेदनञ्चक्रुराहारहेतुकं मुने । ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय सिषेवे श्रीहरेः पदम् ।१०।
यज्ञरूपो हि भगवान् कलया च बभूव सः । यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्रह्मणा॥
हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः । सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव ॥
देवाः विषण्णास्ते सर्वे तत्सभाञ्च पुनर्ययुः । गत्वा निवेदनञ्चक्रुराहाराभाव हेतुकम्
ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ । पूजयामास प्रकृतिं ध्यानेनैव तदाज्ञया।

प्रकृतिः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी । बभूव दाहिकाशक्तिरग्नेः स्वाहास्वरूपि
ग्रीष्ममध्याह्नमार्त्तण्डप्रभाच्छादनकारिणी । अतीव सुन्दरी रामा रमणीया मनो
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा । उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु
विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा सम्भ्रमात् समुवाच ताम् ॥१८॥

ब्रह्मोवाच ।

त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भवपत्नी च सुन्दरी । दग्धुं न शक्तस्त्वदृते हुताशश्च त्व
त्वन्नामोच्चार्य मन्त्रान्ते यद्दास्यति हविर्नरः ।
सुरेभ्यस्तत् प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम् ॥२०॥

अग्नेः सम्पत् स्वरूपा च श्रीरूपा च गृहेश्वर । देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भ
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वासाविषण्णा बभूवह । तमुवाच स्वयं देवी स्वाभिप्रायं स्व

स्वाहोवाच ।

अहंकृष्णंभजिष्यामि तपसासुचिरेणच । ब्रह्मन् तदन्यत्यत्किञ्चित् स्वप्नवत्
विधाताजगतांत्वञ्चशम्भुर्मृत्युञ्जयःप्रभुः । बिभर्त्तिशेषो विश्वञ्चधर्मःसाक्षी
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषुच गणेश्वरः । प्रकृतिः सर्वसूः सर्वपूजिता
[illegible]मुनयश्चैव पूजिता यं निषेव्य च । तत्पादपद्मं पद्मकं भावेन
[illegible] पात्रमित्युक्त्वा पद्मजाभानुसारतः । जगाम तपसा पार्श्वे पद्मादीश
[illegible] पादेन [illegible] । तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः पर
[illegible] रूपं दृष्ट्वा च सुन्दरी । मूर्च्छां सम्प्राप कामेन कामेशस्य
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञ[illegible] । समुत्थाप्यच स्वक्रोडे क्षीणाङ्गीं

श्रीकृष्ण उवाच ।

[illegible] पत्नी भविष्यति । नाम्ना नाग्नजिती कन्याकाले
[illegible] दाहिका त्वं [illegible] भाविनी । मन्त्राङ्गरूपा पूताच मत्प्रसादात्
वह्निः[illegible] गृहेश्वरीम् । रमिष्यते त्वया सार्द्धं राम
देवी [illegible] नारद । तत्राजगाम सन्त्रस्तो वह्नि

ध्यानैश्च सामवेदोक्तैर्ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम् ।
सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः ॥३५॥

दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह । अतीव निर्जने रम्ये सम्भोगसुखदे सदा ॥३६॥
गर्भं तस्याश्च हुताशस्य च तेजसा । तद्धारच्च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् ॥
ुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान् । दक्षिणाग्निगार्हपत्यहवनीयान् क्रमेण च ॥
ोमुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः । स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्ददति नित्यशः ।
ायुक्तश्च मन्त्रश्चयो गृह्णाति प्रशस्तकम् । सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य ब्रह्मन् ग्रहणमात्रतः ।
ीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः । पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथानरः
ाखाविहीनश्च यथावृक्षो हि निन्दितः । स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रोनद्रुतं फलदायकः ।
ा द्विजाः सर्वे देवाः संप्रापुराहुतिम् । स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वकर्म च ।
ार्णितंसर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदंसारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

नारद उवाच ।

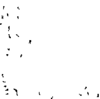
पूजाविधानञ्च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर । संपूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तां वदमेप्रभो ॥

नारायण उवाच ।

वसामवेदोक्तं स्तोत्रंपूजाविधानकम् । वदामि श्रूयतांब्रह्मन् सावधानंनिशामय ॥
ारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा । स्वाहां संपूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात् फलाप्तये ।
स्वाहां मन्त्राङ्गपूताञ्च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम् ।
सिद्धाञ्च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां भजे ॥ ४८ ॥
त्याचमूलेन दत्वापाद्यादिकंनरः । सर्वसिद्धिं लभेत् स्तुत्यामूलंस्तोत्रंमुनेशृणु ।
ीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेनच । यः पूजयेच्चतां देवींसर्वेष्टं लभतेध्रुवम् ॥

वह्निरुवाच ।

। प्रकृतेरंशा मन्त्रतन्त्राङ्गरूपिणी । मन्त्राणां फलदात्रीच धात्रीच जगतां सती
सिद्धिस्वरूपा सिद्धा च सिद्धिदा सर्वदा नृणाम् ।
हुताश दाहिकाशक्तिस्तत्प्राणाधिकरूपिणी ॥ ५२ ॥



स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य्य पितृभ्यो देहि चेति च । क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रेदानंददुःपुरा ॥
स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा वरा । सर्वत्रदक्षिणाशस्ताहतयज्ञस्त्वदक्षिणः ॥
पितरो देवता विप्रा मुनयोमानवास्तथा । पूजाञ्चक्रुःस्वधांशान्तांतुष्टावचपरमादरम् ॥
देवादयश्च सन्तुष्टा परिपूर्णमनोरथाः । विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च ॥ १७ ॥
इत्येवं कथितं सर्वंस्वधोपाख्यानमुत्तमम् । सर्वेषाञ्चतुष्टिकरंकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

नारद उवाच ।

स्वधापूजा विधानञ्च ध्यानं स्तोत्रं महामुने श्रोतुमिच्छामियत्नेनवदवेदविदां वर ॥

नारायण उवाच ।

तद्ध्यानं स्तवनं ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वसम्मतम् । सर्वंजानासिचकथंज्ञातुमिच्छसि वृद्धये ॥
शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे । स्वधांसंपूज्ययत्नेनततःश्राद्धंसमाचरेत् ॥२१

स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्य्यादहं मतिः ।
न भवेत् फलभाक् सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च ॥ २२ ॥

ब्रह्मणोमानसींकन्यांशश्वत्सुस्थिरयौवनाम् । पूज्यांपितॄणांदेवानांश्राद्धानांफलदांभजे

इति ध्यात्वा शालग्रामेऽप्यथवा शोभने घटे ।
दद्यात् पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम् ॥२४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामनुम् ।
समुच्चार्य्य च संपूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेत् द्विजः ॥२५॥

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद । सर्वंपाञ्छाप्रदं नृणांब्रह्मणायत्कृतंपुरा ॥२६॥

ब्रह्मोवाच ।

यथोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलंलभेत् ॥

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत् ।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति कालस्य तर्पणस्य च ॥२८॥

श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । लभेच्छ्राद्धशतानाञ्च पुण्यमेव न संशयः

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।

प्रियां विनीतां स लभेत् साध्वीं पुत्रं गुणान्वितम् ॥३०॥

पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी । श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फल
बहिर्गच्छ मन्मनसः पितॄणां तुष्टिहेतवे । संप्रीयते द्विजातीनां गृहिणां वृद्धि
नित्या त्वं नित्यरूपासि गुणरूपासि सुव्रते । आविर्भावस्तिरोभाव सृष्टौ च प्र
ओंस्वस्तिचनमःस्वाहास्वधात्वंदक्षिणातथा । निरूपिताश्चतुर्वेदेषट्प्रशस्ताश्चक
पुरासीत्त्वंस्वधागोपींगोलोकेराधिकासखी। धृतोरसिस्वधात्मानंकृततेनस्वध

ध्वस्ता त्वं राधिकाशापात् गोलोकाद्विश्वमागता ।
कृष्णाश्लिष्टा तया दृष्टा पुरा वृन्दावने वने ॥ ३६ ॥

कृष्णालिङ्गनपुण्येन भूता मे मानसी सुता । अतृप्ता सुरतौ तेन चतुर्णां स्वामिन
स्वाहा सा सुन्दरीगोपीपुरासीद्राधिकासखी । स्वयं कृष्णमाहरतौतेनस्वाहाप्रकी
कृष्णेन सार्द्धं सुचिरं वसन्ते रासमण्डले । प्रमत्ता सुरते श्लिष्टा दृष्टा सा राधया
तस्याः शापेन प्रध्वस्ता गोलोकाद्विश्वमागता । कृष्णालिङ्गनपुण्येन बभूववह्निका
पवित्ररूपा परमा देवानां वन्दिता नृणाम् । यन्नामोच्चारणेनैव नरो मुच्येत पात
यासुशीलाभिधागोपीपुरासीत्राधिकासखी । उवासदक्षिणेक्रोडे कृष्णस्यराधिक

प्रध्वस्ता सा च तच्छापात् गोलोकाद्विश्वमागता ।
कृष्णालिङ्गन पुण्येन सा बभूव च दक्षिणा ॥ ४३ ॥

सुप्रेयसी कर्तौ दक्षा प्रशस्ता सर्वकर्मसु । उवास दक्षिणे भर्त्तुर्दक्षिणा तेन कीर्ति
बभूवुस्तिस्रो गोप्यश्च स्वधा स्वाहा चदक्षिणा । कर्मिणांकर्मपूर्णार्थं पुराचैवेश्वरेच्छ
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके च संसदि । तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधासाविर्ब
तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम् । तां संप्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिता
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोतिसमाहितः । सस्नातः सर्वतीर्थेषु वेदपाठफलंलभे

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे स्वधोपाख्यानंनाम
एकचत्वारिंश

# द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

## दक्षिणोपाख्यानवर्णनम् ।

नारायण उवाच ।

स्वाहा स्वधाख्यानंप्रशस्तंमधुरं परम् । वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानं निशामय
ं सुशीलागोलोकेपुरासी प्रेयसीहरेः । राधाप्रधाना सध्रीची धन्यामान्यामनोहरा
अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती ॥ २ ॥
विद्यावती गुणवती सती रूपवती तथा । कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना ।
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डला । ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता।
श्वेतचम्पकवर्णाभाबिम्बोष्ठी मृगलोचना । कामशास्त्रसुनिष्णाता कामिनीहंसगामिनी
भावानुरक्ताभावज्ञा कृष्णस्य प्रियभाविनी । रसज्ञा रसिकारासे रासेशस्य रसोत्सुका
उवास दक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा । संबभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः ॥ ८
दृष्ट्वा राधाञ्च पुरतो गोपीनां प्रवरां वराम् । मानिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम्
कोपेन कम्पिताङ्गीञ्च कोपनां कोपदर्शनाम् । कोपेन निष्ठुरं वक्तुमुद्यतां स्फुरिताधरा
आगच्छन्तीञ्च वेगेन विज्ञाय तदनन्तरम् ।
विरोधभीतो भगवानन्तर्द्धानं चकार सः ॥ १० ॥
पलायन्तञ्चतंशान्तंसत्त्वाधारंसुविग्रहम् । विलोक्यकम्पितागोपीसुशीलान्तर्दधौभिया
विलोक्य सङ्कटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः । पुटाञ्जलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकन्धर
रक्ष रक्षेत्युक्तवत्यो हे देवीति पुनःपुनः । ययुर्भयेन शरणं तस्याश्चरणपङ्कजे ॥ १३
त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च । ययुर्भयेन शरणं तत् पादाब्जे च नारद॥१
पलायन्तञ्च कान्तञ्च विज्ञाय परमेश्वरी । पलायन्तीं सहचरीं सुशीलाञ्च शशाप सा ।
अद्य प्रभृति गोलोकं साचेदायाति गोपिका । सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्चभविष्यति
इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवीश्वरी रुषा । रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह ॥१७॥

कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम् । कमलासनपूज्याञ्च कमलाङ्गसमुद्भवाम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानां बिम्बोष्ठीं सुदतींसतीम् । बिभ्रतींकबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम्
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । सुवेशाढ्याञ्च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम्
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धं सुगन्धिचन्दनादिभिः ।
सिन्दूरबिन्दुनात्यन्तमलकाधः स्थलोज्ज्वलम् ॥ ४४ ॥
सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम् । कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीड़िताम्॥
तां दृष्ट्वा रमणीयाञ्च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह । पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम् ॥
दिव्यं वर्षशतञ्चैव तां गृहीत्वा सुनिर्जने । यज्ञो रेमे मुदायुक्तो रामया रमया सह ॥
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् । ततः सुषाव पुत्रञ्च फलञ्च सर्वकर्मणाम् ।
कर्मणां फलदाताच दक्षिणा कर्मिणां सताम् । परिपूर्णे कर्मणिच तत्पुत्रः फलदायकः।
यज्ञोदक्षिणया सार्द्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥
यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रञ्च फलदायकम् । फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मभ्य इति नारद॥
तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । स्वस्थानं प्रययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥
कृत्वा कर्म च कर्त्ताच तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदंमुने ।
कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणात् यदि दक्षिणाम् ।
न दद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥ ५४ ॥
मुहूर्त्ते समतीते च द्विगुणा सा भवेत् ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
एकरात्र व्यतीते तु भवेत् रसगुणा च सा । त्रिरात्रेच दशगुणं सप्ताहे द्विगुणा ततः ॥
मासेलक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानाञ्च वर्द्धते । संवत्सरेव्यतीते तुसात्रिकोटिगुणाभवेत्॥
कर्म्म तद् यजमानानां सर्वञ्चनिष्फलंभवेत् । सच ब्रह्मस्वापहारी न कर्मार्होऽशुचिर्नरः॥
दरिद्रोव्याधियुक्तश्च तेन पापेनपातकी । तद्गृहाद् यातिलक्ष्मीश्च शापंदत्वा सुदारुणम्
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम् । एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम्॥६०
दाता न दीयते दानं गृहीता तन्न याचते । उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्यथा घटः ६१
नार्पयेद् यजमानश्चेद् याचिताच्च दक्षिणाम् ।

मालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा। युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता ॥१८
हेकृष्णहेप्राणनाथागच्छ प्राणाधिकप्रिय। प्राणाधिष्ठातृदेवेह प्राणायान्तिन्वयाविना।
श्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्द्धते च दिने दिने। सुखीचेद्धिमयो यस्मात् तंभजेद्धर्मतःसदा॥
पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः। परं सम्पत्स्वरूपश्च सुखरूपश्च मूर्तिमान्॥

धर्मदः सुखदः शश्वत् प्रीतिदः शान्तिदः सदा।

सम्मानदो मानदश्च मान्यश्च मानखण्डनः ॥ २२ ॥

सारात्सारतमः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्द्धनः। नच भर्त्तुः समो बन्धुः सर्वबन्धुषु दृश्यते
भरणादेवभर्त्ताऽयं पालनात् परिकथ्यते। शरीरेशाच्च सःस्वामी कामदात् कान्तएववा
बन्धुश्चसुखबन्धाच्च प्रीतिदानात् प्रियःपरः। ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात् प्राणनायकः
रतिदानाच्चरमणः प्रियोनास्तिप्रियात्परः। पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन स प्रियः
शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानांप्रियःसदा। असत्कुलप्रसूताया कान्तं विज्ञातुमक्षमा।
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्। प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणिच तपांसिच॥
सर्वाण्येवव्रतादीनि महादानानि यानिच। उपोषणानि पुण्यानि यान्यन्यानिचविश्वतः
गुरुसेवाविप्रसेवा देवसेवादिकञ्चयत्। स्वामिनः पादसेवायाःकलां नार्हन्तिषोडशीम्।
गुरुविप्रेष्टदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः। विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथाप्रियः ॥३१
गोपी त्रिलक्षकोटीनां गोपानाञ्च तथैवच। ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैवच।
रमादि गोलकान्तानामीश्वरीयत् प्रसादतः। अहंनजानेतं कान्तं स्त्रीस्वभावोदुरत्ययः
इत्युक्त्वा राधिकाकृष्णं तत्र दध्यौ सुभक्तितः। आरात्संप्राप तं तेन विजहारच तत्रवै
अथसा दक्षिणादेवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने। सुचिरञ्चतपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ॥
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम्। न लभन्ते फलं तेषां विषण्णाःप्रययुर्विधिम्
विधिर्निवेदनंश्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिः। दध्यौ सुचिन्तितोभक्त्या तत्प्रत्यादेशमापसः
नारायणश्च भगवान् महालक्ष्म्याश्चदेहतः। विनिष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणेदक्षिणांददौ
ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूर्णार्थं कर्मणां सताम्। यज्ञः संपूज्य विधिवत्तां तुष्टाव रमांमुदा
चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। अतीवकमनीयाञ्च सुन्दरीं सुमनोहराम्॥

कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम् । कमलासनपूज्याञ्च कमलाङ्गसमुद्भवाम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानां बिम्बोष्ठीं सुदतीं सतीम् । बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम्
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । सुवेशाढ्याञ्च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम्

कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धं सुगन्धिचन्दनादिभिः ।

सिन्दूरबिन्दुनात्यन्तमलकाधः स्थलोज्ज्वलाम् ॥ ४५ ॥

सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम् । कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीड़िताम् ॥
तां दृष्ट्वा रमणीयाञ्च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह । पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम् ॥
दिव्यं वर्षशतञ्चैव तां गृहीत्वा सुनिर्जने । यज्ञो रेमे मुदायुक्तो रामया रमया सह ॥
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम् । ततः सुषाव पुत्रञ्च फलञ्च सर्वकर्मणाम् ।
कर्मणां फलदाताच दक्षिणा कर्मिणां सताम् । परिपूर्णे कर्मणिच तत्पुत्रः फलदायकः ।
यज्ञोदक्षिणया सार्द्धं पुत्रेण च फलेन च । कर्मणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥
यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रञ्च फलदायकम् । फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मभ्य इति नारद॥
तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः । स्वस्थानं प्रययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम् ॥
कृत्वा कर्म च कर्त्ताच तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् । तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदंमुने ।

कर्त्ता कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणात् यदि दक्षिणाम् ।

न दद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा ॥ ५४ ॥

मुहूर्ते समतीते च द्विगुणा सा भवेत् ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

एकरात्रे व्यतीते तु भवेत् रसगुणा च सा । त्रिरात्रेच दशगुणं सप्ताहे द्विगुणा ततः ॥
मासेलक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानाञ्च वर्द्धते । संवत्सरेव्यतीते तुसात्रिकोटिगुणाभवेत्॥
कर्म तद् यजमानानां सर्वञ्चनिष्फलंभवेत् । सच ब्रह्मस्वापहारी न कर्मार्होऽशुचिर्नरः॥
दरिद्रोव्याधियुक्तश्च तेन पापेनपातकी । तद्गृहाद् यातिलक्ष्मीश्च शापंदत्वा सुदारुणम्
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम् । एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम्॥६०
दाता न दीयते दानं गृहीता तत्र याचते । उभौ तौ नरकं यातश्छिन्नरज्जुर्यथा घटः ६१

नार्पयेद् यजमानश्चेद् याचितारश्च दक्षिणाम् ।

भवेद् ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥

वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः । ततो भवेत् स चण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्र

पातयेत् पुरुषान् सप्त पूर्वांश्चापूर्वजन्मनः । इत्येवंकथितं विप्र किंभूयः श्रोतुमिच्छ

नारद उवाच ।

यत्कर्म दक्षिणाहीनं कोभुङ्क्ते तत्फलं मुने । पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं

नारायण उवाच ।

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने । सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्तते ॥६

याया कर्मणि सामग्री बलिर्भुङ्क्ते च तां मुने । बलये तत् प्रदत्तञ्च वामनेन पुरा मु

अश्रोत्रियं श्राद्धद्रव्यमश्राद्धं दानमेव च । वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकञ्चयत्

ऋत्विजा न हुतं यज्ञमशुचेः पूजनञ्च यत् ।
गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुङ्क्ते न संशयः ॥६६॥
दक्षिणायाश्च यद्धानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम् ।
तत्सर्वं काण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय ॥७०॥

पुरा संप्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षाञ्च दक्षिणाम् । मुमोह तस्यारूपेणतुष्टाव कामकातर

यज्ञ उवाच ।

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरापरा । राधासमातत्सखीचश्रीकृष्णप्रेयसीप्रिये

कार्तिकीपूर्णिमायान्तुरासेराधामहोत्सवे । आविर्भूतादक्षिणांशात्कृष्णस्यतेनदक्षिणा

पुरा त्वञ्च सुशीलाख्याशीलेनशोभनेनच । कृष्णदक्षांशवासाच्च राधाशापाच्चदक्षिणा

गोलोकात् त्वं परिध्वस्ता मम भाग्यादुपस्थिता ।
कृपां कुरु त्वमेवाद्य स्वामिनं कुरु मां प्रिये ॥७५॥

कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा । त्वयाविनाचसर्वेषांसर्वंकर्मच निष्फलम्

फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो महीतले । त्वया विना तथा कर्मकर्मिणाञ्चनशोभते

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च । कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्चत्वया विना ।

कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः । यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी ॥७८

फलदाता परं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः । स्वयं कृष्णश्च भगवाननवशक्तस्त्वयाविना ॥
त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि । सर्वकर्मणिशक्तोऽहंत्वयासहवरानने ।
इत्युक्त्वा तत्पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवकः । तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला ॥
इदञ्च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत् । फलञ्च सर्वयज्ञानां लभते नात्र संशयः ।
राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके । अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे ॥ ८४ ।
धनदे भूमिदे फलदे पुत्रेष्टौ गजमेधके । लौहयज्ञे स्वर्णयज्ञे फले व्याधिखण्डने ॥८५॥
शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शत्रुयज्ञे च बन्धके । इष्टौ वरुणयागे च कन्दुके वैरिमर्दने ॥८६ ॥
शुचियागे धर्मयागे रेचने पापमोचने । बन्धने कर्मयागे च मणियागे सुभद्रके ॥८७॥

एतेषाञ्च समारम्भे इदं स्तोत्रञ्च यः पठेत् ।
निर्विघ्नेन च तत् कर्म साङ्गं भवति निश्चितम् ॥८८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दक्षिणास्तोत्रं समाप्तम् ।

इदं स्तोत्रञ्च कथितं ध्यानंपूजाविधानकम् । शालग्रामेघटेवापिदक्षिणांपूजयेत्सुधीः ।
लक्ष्मींदक्षांशसम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम् । सर्वकर्मसुदक्षाञ्चफलदांसर्वकर्मणाम् ।
विष्णोः शक्तिस्वरूपाञ्च सुशीलांशुभदांभजे । ध्यात्वाऽनेनैववरदांमूलेनपूजयेत्सुधीः ।
दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेन च नारद । ओंह्रींश्रींक्लींदक्षिणायैस्वाहेतिच विचक्षणः ।
पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम् । इत्येवं कथितं सर्वंदक्षिणाख्यानमुत्तमम् ।
सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम् । इदञ्च दक्षिणाख्यानं यःशृणोति समाहितः ।
अङ्गहीनञ्च तत् कर्म न भवेद्भारते भुवि । अपुत्रो लभतेपुत्रं निश्चितञ्चगुणान्वितम् ॥९५

भार्य्याहीनो लभेद्भार्य्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम् ।
वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम् ॥९६॥

पतिव्रतां सुव्रताञ्च शुद्धाञ्च कुलजां पराम् । विद्याहीनो लभेद्विद्यांधनहीनोधनंलभेत् ॥
भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम् ।
सङ्कटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा ॥९८॥

मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥११॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दक्षिणोपाख्यानं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

### षष्ठ्युत्पत्तिवर्णनम् ।

नारद उवाच ।

अनेकासाञ्च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम् । अन्यासां चरितं ब्रह्मन् वद वेदविदांवर !॥१॥

नारायण उवाच ।

सर्वासां चरितं विप्र ! वेदेष्वस्ति पृथक् पृथक् ।
पूर्वोक्तानाञ्च देवीनां त्वं कासां श्रोतुमिच्छसि ॥२॥

नारद उवाच ।

षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसाप्रकृतेःकला । व्युत्पत्तिमासांचरितंश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥

नारायण उवाच ।

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्त्तिता । बालकाधिष्ठातृदेवीविष्णुमायाचबालदा॥
मातृकासुचविख्यातादेवसेनाभिधा वसा । प्राणाधिकप्रियासाध्वीस्कन्दभार्याचसुव्रता

आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी ।
सन्ततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनी ॥६॥
तस्याः पूजाविधौ ब्रह्मन्नितिहासविधिं शृणु ।
यत् श्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम् ॥७॥
राजा प्रियव्रतश्चासीत् स्वायम्भुवमनोः सुतः ।
योगीन्द्रो नोद्वहेद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा ॥८॥

ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव सः । सुचिरं कृतदारश्च न लभेत्तनयं मुने ॥९॥

पुत्रेष्टियज्ञं तत्रापि कारयामास कश्यपः । मालिन्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ ॥
भुक्त्वा चरुञ्च तस्याश्च सद्यो गर्भो बभूव ह । दधार तञ्च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम् ॥
ततः सुषाव सा ब्रह्मन् कुमारं कनकप्रभम् । सर्वावयवसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम् ॥१२
तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यश्च बान्धवस्त्रियः । मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन सुव्रता ॥
श्मशानञ्च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने । रुरोद तत्र कान्तारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥
नोत्सृज्य बालकं राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः । ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात् सुदारुणात् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानञ्च ददर्श ह । शुद्धस्फटिकसङ्काशं मणिराजविराजितम् ॥१६।
तेजसा ज्वलितं शश्वत् शोभितं क्षौमवाससा । नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम्
ददर्श तत्र देवीञ्च कमनीयां मनोहराम् । श्वेतचम्पकवर्णाभां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम् । कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम् ॥१६
दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरम् । चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि ॥

पप्रच्छ राजा तां दृष्ट्वा ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् ।
तेजसा ज्वलितां शान्तां कान्तां स्कन्दस्य नारद ॥२१॥

प्रियव्रत उवाच ।

कथं सुशोभने कान्ते कस्य कान्तासि सुव्रते ।
कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम् ॥२२॥

नृपेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मङ्गलदायिनी । उवाच देवसेना सा देवरक्षणकारिणी ॥२३
देवानां दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा । जयं ददौ च तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥

देवसेनोवाच ।

ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाहमीश्वरी । सृष्ट्वा मां मनसो धाता ददौ स्कन्दाय भूमिप
मातृकासु च विख्याता स्कन्दसेना च सुव्रता । विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेर्यतः ॥
अपुत्राय पुत्रदाऽहं प्रियदाता प्रियाय च । धनदा च दरिद्रेभ्यो कर्मिणे शुभकर्मदा ॥२७
सुखं दुःखं भयं शोकं हर्षं मंगलमेव च । सम्पत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा ॥
कर्मणा बहुपुत्री च वंशहीनश्च कर्मणा । कर्मणा रूपवांश्चैव रोगी शश्वत् स्वकर्मणा ॥

कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीविनः । कर्मणा गुणवन्तश्च कर्मणाऽङ्गविहीनकः ॥३४
तस्मात् कर्म परं राजन् सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम् । कर्मरूपी च भगवानन्तकरः फलदो हरिः ॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने । महाज्ञानेन सहसा जीवयामास लीलया ॥
राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम् । देवसेना च पश्यन्ती नृपमस्यार्भमेव च ॥३५
गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता । पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥
नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह । उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्मनिर्मितम् ॥

देवसेनोवाच ।

त्रिषु लोकेषु राजा त्वं स्वायम्भुवमनोः सुतः । मम पूजाञ्च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु ॥
तदा दास्यामि पुत्रन्ते कुलपद्मं मनोहरम् । सुव्रतं नामविख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम् ॥
जातिस्मरञ्च योगीन्द्रं नारायणपरायणम् । शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणाञ्च वन्दितम् ॥
मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम् । धन्विनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च ॥
योगिनं ज्ञानिनञ्चैव सिद्धरूपं तपस्विनम् । यशस्विनञ्च लोकेषु दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ । राजा चकार स्वीकारं तत्पूजार्थञ्च सुव्रतः
जगाम देवी स्वर्गञ्च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम् । आजगाम महाराजा स्वगृहं हृष्टमानसः ॥
आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम् ॥ ४२ ॥
तुष्टा बभूवुः सन्तुष्टा नरनार्यश्च नारद ! । मङ्गलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम् ॥
देवीञ्च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ॥ ४३ ॥
राजा च प्रतिमासेषु शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम् । षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः
बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम् । तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे ॥
बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा । सर्वत्र वर्द्धयामास स्वयमेव चकार ह ॥४६
ध्यानं पूजाविधानञ्च स्तोत्रं मत्तो निशामय । यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तञ्च सुव्रत ।
शालग्रामे घटे वाऽथ वटमूलेऽथवा मुने । भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः
षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां सुप्रतिष्ठाञ्च सुव्रताम् । सुपुत्रदाञ्च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम् ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे ॥ ५० ॥

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पंदत्वाविचक्षणः । पुनर्ध्यात्वा चमूलेन पूजयेत्सुव्रतांसतीम्
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धधूपप्रदीपकैः । नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन शोभनेन च ॥५२ ॥
मूलं ओं ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम् । अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः ।
तत्र स्तुत्वा च प्रणमेत् भक्तियुक्तः समाहितः । स्तोत्रञ्च सामवेदोक्तं धनपुत्रफलप्रदम्
अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेन्मुने । स पुत्रं लभते नूनमित्याह कमलोद्भवः ॥५५॥
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वपाश्च शुभावहम् । वाञ्छाप्रदञ्च सर्वेषां गूढं वेदे च नारद ॥

प्रियव्रत उवाच ।

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः । शुभायै देवसेनायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमोनमः । सुखदायै मोक्षदायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥
शक्तेः षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः । मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः
पारायै पारदायै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः । सारायै सारदायै च पारायै सर्वकर्मणाम् ॥
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः । कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायैचकर्मणाम्
प्रत्यक्षायै च भक्तानां षष्ठीदेव्यै नमो नमः । पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु ।
देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा ॥६३
हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः । धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि ॥
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः । भूमिं देहि प्रजां देहि देहि विद्यां सुपूजिते ॥
कल्याणञ्च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः । इति देवीञ्च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः ॥
यशस्विनञ्च राजेन्द्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः । षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति च वत्सरम्
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम् । वर्षमेकञ्च या भक्त्या संयतेदं शृणोति च ॥
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते । वीरपुत्रञ्च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम् ।६६
सुचिरायुष्मन्तमेव षष्ठीमातृप्रसादतः । काकवन्ध्या च या नारी मृतापत्या च या भवेत्
वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः । रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति च॥
मासञ्च मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः ॥ ७२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे षष्ठ्युपाख्याने
षष्ठीस्तोत्रं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

# चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## मङ्गलचण्ड्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

कथितं पञ्चमुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । देवी मङ्गलचण्डी च तदाख्यानं निशामय
तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्राच्च यच्छ्रुतम् । श्रुतिसम्मतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि
दक्षायां वर्त्तते चण्डी कल्याणेषु च मङ्गलम् । मङ्गलेषु च या दक्षा सा च मङ्गलचण्डिका
दुर्गायां विद्यते चण्डी मङ्गलोऽपि महीसुते । मङ्गलाभीष्टदेवी या सा वा मङ्गलचण्डिका
मङ्गलो मनुवंशश्च सप्तद्वीपावनीपतिः । तस्य पूज्याभीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका ॥५
मूर्त्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी । कृपारूपातिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता ॥ ६ ।
प्रथमे पूजिता सा च शङ्करेण पुरा परा । त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च ॥७
ब्रह्मन् ब्रह्मोपदेशे च दुर्गप्रस्थे च सङ्कटे । आकाशात् पतिते याने दैत्येन पातिते रुषा ।
ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शङ्करः । सा च मङ्गलचण्डी च बभूव रूपभेदतः ॥८
उवाच पुरतः शम्भोर्भयं नास्तीति ते प्रभो । भगवान् वृषरूपश्च सर्वेशश्च बभूव ह ॥९
युद्धशक्तिस्वरूपाहं भविष्यामि तदाज्ञया । मयात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज ॥१०
जहि दैत्यञ्च देवेश सुराणां पदघातकम् । इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शम्भोः शक्तिर्बभूव सा
विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः । मुनीन्द्र पतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः ॥१२
तुष्टुवुः शङ्करं देवा भक्तिनम्रात्मकन्धराः । सद्यः शिरसि शम्भोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह ।
ब्रह्मा विष्णुश्च सन्तुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम् । ब्रह्माविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शङ्करः शुचिः
पूजयामास तां शक्तिं देवीं मङ्गलचण्डिकाम् । पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च बलिभिर्विविधैरपि
पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने । छागैर्मेषैश्च महिषैर्गण्डैर्मायातिभिर्वरैः ॥ १७ ।
वस्त्रालङ्कारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि । मधुभिश्च सुधाभिश्च पक्वैर्नानाविधैः फलैः
सङ्गीतैर्नर्त्तनैर्वाद्यैरुत्सवैः कृष्णकीर्त्तनैः । ध्यात्वा माध्यन्दिनोक्तेन ध्यानेन भक्तिपूर्वकम्

ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके
ऐं क्रूं फट् स्वाहेत्येवं चाप्येकविंशाक्षरो मनुः ॥ २० ॥
पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वं कामदः। दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विष्णुःसर्वकामदः। ध्यानञ्च श्रूयतां ब्रह्मन् वेदोक्तंसर्वसम्मतम्
देवीं षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्। सर्वरूपगुणाढ्याञ्च कोमलाङ्गी मनोहराम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मल्लिकामाल्यभूषितम्।
बिम्बोष्ठसुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम् ॥ २५ ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यांसुनीलोत्पललोचनाम्। जगद्धात्रीञ्चदात्रीञ्चसर्वेभ्यःसर्वसम्पदाम्।
संसारसागरे घोरे पोतरूपां वरां भजे ॥२७॥
देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने। प्रयतः सङ्कटग्रस्तो येन तुष्टाव शङ्करः ॥२८

शङ्कर उवाच।

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके। हारिके विपदां राशि हर्षमङ्गलकारिके ॥ २६ ।
हर्षमङ्गलदक्षेच हर्षमङ्गलचण्डिके। शुभे मङ्गलदक्षेच शुभमङ्गलचण्डिके ॥ ३० ॥
मंगले मंगलार्हे च सर्वमंगलमंगले। सतां मंगलदे देवि सर्वेषा मंगलालये ॥ ३१ ॥
पूज्या मंगलवारे च मंगलाभीष्टदैवते। पूज्ये मंगलभूपस्य मनुवंशस्य सन्ततम् ॥ ३२ ॥
मंगलाधिष्ठातृदेवी मंगलानाञ्च मङ्गले। संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि ॥ ३३ ॥
सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम्। प्रति मङ्गलवारे च पूज्ये च मङ्गलप्रदे ॥३४॥
स्तोत्रेणानेनशम्भुश्च स्तुत्वामङ्गलचण्डिकाम्। प्रतिमङ्गलवारेचपूजां कृत्वा गतःशिवः॥
देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः। तम्मङ्गलं भवेच्छश्वन्नभवेत्तदमङ्गलम् ॥
प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला। द्वितीये पूजिता देवी मङ्गलेन ग्रहेण च ॥ ३७॥
तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेननृपेन च। चतुर्थे मङ्गलेवारे सुन्दरीभिश्च पूजिता।
पञ्चमे मङ्गलाकाङ्क्षैर्नरैर्मङ्गलचण्डिका ॥ ३८ ॥
पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशपूजिता सदा। ततः सर्वत्र संपूज्या सा बभूव सुरेश्वरी।

देवादिभिश्च मुनिभिर्मनुभिर्मानवैर्मुने । देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः ।
तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्नभवेत्तदमङ्गलम् । वर्धन्ते तत्पुत्रपौत्रा मङ्गलञ्च दिने दिने ॥४१
इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे मङ्गलोपाख्यानं तत्स्तोत्रकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

—

## पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

### मनसादेव्युपाख्यानम् ।

नारायण उवाच ।

उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम् । श्रूयतां मनसाख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥१
कन्या सा च भगवती कश्यपस्य च मानसी । तेनेयं मनसादेवी मनसा या च दीव्यति॥
मनसा ध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम् । तेन सा मनसादेवी योगेन तेन दीव्यति॥
आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी ।
त्रियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ४ ॥
जरत्कारु शरीरञ्च दृष्ट्वा यां क्षीणमीश्वरः । गोपीपतिर्नामचक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः ॥
वाञ्छितञ्च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः । पूजाञ्च कारयामास चकार च पुनःस्वयम्
स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः । भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा
जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती । शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवीति कीर्तिता
विष्णुभक्ताऽतीव शश्वद्वैष्णवी तेन नारद । नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे जन्मेजयस्य च ॥
नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनी तथा । विषं संहर्तुमीशा सा तेन विषहरीति सा ॥
सिद्धयोगं हरात् प्राप तेनाऽतिसिद्धयोगिनी । महाज्ञानञ्च गोप्यञ्च मृतसञ्जीविनीं पराम् ॥
महाज्ञानयुतां तां च प्रवदन्ति मनीषिणः ।
आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा च तपस्विनः ॥ १२ ॥

स्तिकमाताविख्याता जगत्सु सुप्रतिष्ठिता । प्रियामुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्य महात्मनः ।
योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारोः प्रियाः ततः ॥ १४ ॥

ओं नमो मनसायै ।

कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धियोगिनी । वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा
त्कप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च । महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता
तानिनामानि पूजाकाले च यः पठेत् । तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च
ति च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे । नागक्षते महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे ॥ १८ ॥
तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः । नित्यं पठेत् यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते ।
क्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । स्तोत्रसिद्धो भवेद् यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः ।
 भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः । नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः ।

। श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसम्वादे मनसोपाख्यानं
मनसास्तोत्रं नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

### मनसापूजाविधानम् ।

नारायण उवाच ।

ध्यानं स्तोत्रञ्च श्रूयतां मुनिपुङ्गव । ध्यानञ्च सामवेदोक्तं देवीपूजाविधानकम् ॥
तचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥२॥
युताञ्चैव प्रवरां ज्ञानिनां सताम् । सिद्धाधिष्ठातृदेवीञ्च सिद्धांसिद्धिप्रदां भजे ॥
ात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत् । नैवेद्यैर्विविधैर्दीपैः पुष्पैर्धूपानुलेपनैः ॥३॥
श्च वेदोक्तो भक्तानां वाञ्छितप्रदः । मूलकल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः ॥
ह्रीं श्रीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहेति कीर्तितः । पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥

मन्त्रसिद्धिर्भवेद् यस्य स सिद्धो जगतीतले । सुधासमं विषं तस्य धन्वन्तरिसमो भवेत्

ब्रह्मन्नाषाढसंक्रान्त्यां गूढशाखासु यत्नतः ।
आवाह्य देवीं मासान्तं पूजयेद् यो हि भक्तितः ॥८॥
पञ्चम्यां मनसाख्यायां देव्यै दद्याच्च यो बलिम् ।
धनवान् पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान् स भवेद् ध्रुवम् ॥९॥
पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय ।
कथयामि महाभाग यत् श्रुतं धर्मवक्त्रतः ॥१०॥
पुरा नागभयाक्रान्ता बभूवुर्मानवा भुवि ।
यान् यान् खादन्ति नागाश्च न ते जीवन्ति नारद ॥११॥

मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणार्थितः । वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः ।
मन्त्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसां ससृजे ततः । तपसा मनसा तेन बभूव मनसा च सा ।
कुमारी सा च संभूय जगाम शङ्करालयम् । भक्त्या सम्पूज्य कैलासे तुष्टाव चन्द्रशेखरम् ।
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तं सिषेवे मुनेः सुता । आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह ॥१
महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च । कृष्णमन्त्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने ॥१
लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं तथा । त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पूजनक्रमम् ।
सर्वपूज्यञ्च स्तवनं ध्यानं भुवनपावनम् । पुरश्चर्याक्रमञ्चापि वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥१
प्राप्य मृत्युञ्जयात् ज्ञानं परं मृत्युञ्जयं सती । जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शङ्कराज्ञया ।
त्रियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः । सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ।
दृष्ट्वा कृशाङ्गीं बालाञ्च कृपया च कृपानिधिः । पूजाञ्चकारयामास चकार च हरिः स्वयम् ॥
वरञ्च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव । वरं दत्त्वा च कल्याणे सद्यश्चान्तर्दधे विभुः ॥
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना । द्वितीये शङ्करेणैव कश्यपेन सुरेण च ॥२
मनुना मुनिना चैव नागेन मानवादिना । बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुव्रता ॥
जरत्कारुमुनीन्द्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा । अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्रह्मणाज्ञया ॥
[illegible] सा चिरम् । सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे ॥

निद्रां जगाम समुनिःस्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम् । जगामास्तं दिनकरः सायंकाल उपस्थितः ॥
संचिन्त्य मनसा तत्र मनसा च पतिव्रता । धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती ॥२
अकृत्वा पश्चिमां सन्ध्यां नित्याञ्चैव द्विजन्मनाम् । ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम ।
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् । स एवाशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत्
वेदोक्तमिति संचिन्त्य बोधयामास तं मुनिम् । स च बुध्वा मुनिश्रेष्ठश्चुकोप तां भृशं मुनिः

जरत्कारुरुवाच ।

कथं मे सुव्रते साध्वि निद्राभङ्गः कृतस्त्वया । व्यर्थं व्रतादिकं तस्याया भर्त्तुश्चापकारिणी
तपश्चानशनञ्चैव व्रतं दानादिकञ्च यत् । भर्त्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ३
यया पतिः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया । पतिव्रताव्रतार्थञ्च पतिरूपी हरिः स्वयम्
सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम् । सर्वं तपो व्रतं सर्वमुपवासादिकञ्च यत् ॥३५
सर्वधर्मश्च सत्यञ्च सर्वदेवप्रपूजनम् । तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीं
सुपुण्ये भारते वर्षे पतिसेवां करोति या । वैकुण्ठं स्वामिना सार्द्धं सा याति ब्रह्मणः शता
विप्रियं कुरुते भर्त्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् । असत्कुलप्रजाता या तत्फलं श्रूयतां सति
कुम्भीपाकं व्रजेत् सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो भवति चाण्डाली पतिपुत्रविवर्जित
इत्युक्त्वा स मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः । चकम्पे मनसा साध्वी भयेनोवाच तं पतिं

मनसोवाच ।

सन्ध्यालोपभयेनैव निद्राभङ्गः कृतस्तव । कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत ॥४१
शृङ्गाराहारनिद्राणां यश्च भङ्गं करोति च । स व्रजेत् कालसूत्रञ्च स्वामिनश्च विशेषतः
इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे । पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पु
कुपितञ्च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम् । तत्राजगाम भगवान् सन्ध्यया सह नारद
तत्रागत्य मुनिश्रेष्ठमुवाच भास्करः स्वयम् । विनयेन च भीतश्च तया सह यथोचित

श्रीसूर्य उवाच ।

सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा धर्मलोपभयेन च । बोधयामास त्वां विप्र नाहमस्तं गतस्तदा ॥४
क्षमस्व भगवन् ब्रह्मन् मां शप्तुं नोचितं मुने । ब्राह्मणानाञ्च हृदयं नवनीतसमं सदा

तेषां क्षणार्द्धे कोपश्चान्तोऽभस्मभयेऽजगत्। पुनः स्रष्टुं द्विजः शक्तो मनेऽन्यीद्रितर
ब्रह्मणो वंशसम्भूत.प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा। श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योतिःसनात
सूर्य्यस्य वचनंश्रुत्वाद्विजस्तुष्टोबभूव ह। सूर्य्यो जगामस्वस्थानं गृहीत्वाऽऽशीर्वादमीप्सि
तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च। रुदन्ती शोकयुक्ता च हृदयेन विदूयता॥५२
सा सस्मार गुरुं शम्भुमिष्टदेवं हरिं विधिम्। कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्षिता
तत्राजगाम भगवान् गोपीशः शम्भुरेव च। विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिन्तितः
स च दृष्ट्वाऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम्। तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः॥५३
नमश्चकार शम्भुञ्च ब्रह्माणं कश्यपं तथा। कथमागमनन्तत्र इति प्रश्नं चकार सः॥५४
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम्। तमुवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदाम्बुजम्॥

ब्रह्मोवाच।

यदित्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती। कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं स्वधर्मपालनाय वै

यतिर्वा ब्रह्मचारी वा भिक्षुर्वनचरोऽपि वा।
जायायाञ्च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चाद् भवेन्मुनिः॥ ५८॥
अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं वैरागी यस्त्यजेत् प्रियाम्।
स्रवेत्तपस्तत् पुण्यञ्च चालन्याञ्च यथा जलम्॥ ५९॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः। चकार तन्नाभिस्पर्शं योगेन मन्त्रपूर्वकम्॥
तस्मै शुभाशिषं दत्त्वा ययुर्देवामुदन्विताः। मुदान्विताच मनसा जरत्कारुर्मुदान्वितः।
मुनेः करस्पर्शमात्रात् सद्यो गर्भो बभूव ह। मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम्॥

जरत्कारुरुवाच।

गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति। जितेन्द्रियाणां प्रवरो धर्मिष्ठो वैष्णवाग्रणीः॥
तेजस्वी च तपस्वीच यशस्वीच गुणान्वितः। वरोवेदविदाञ्चैव योगिनां ज्ञानिनां तथा
स च पुत्रोविष्णुभक्तो धार्मिकःकुलमुद्धरेत्। नृत्यन्तिपितरः सर्वे यज्जन्ममात्रतोमुदा॥
पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी। धर्मिष्ठपुत्रमाताच कुलजा कुलपालिका।
हरिभक्तिप्रदो बन्धुस्तदिष्टं यत् सुखप्रदम्। योपन्थच्छित् सच पिता हरेर्वर्त्मप्रदर्शकः॥

ता गर्भधारिणी या च गर्भच्छेदविमोचनी । विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः ॥
गुरुश्चाज्ञानदाता च तज्ज्ञानं कृष्णभावनम् । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यतो विश्वं चराचरम् ॥
आविर्भूतं तिरोभूतं किं वा ज्ञानं तदन्यतः । वेदजं योगजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम् ॥
तत्त्वानां सारभूतञ्च हरेरन्यद्विडम्बनम् । दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः ॥
ज्ञानात् प्रमुच्यते बन्धात् स रिपुर्यो हि बन्धदः । विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं नो ददाति हि यो गुरुः

स रिपुः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयेत् ॥ ७२ ॥

जननीगर्भजात् क्लेशात् यमताडनजात्तथा । न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बान्धवः ।
परमानन्दरूपञ्च कृष्णमार्गमनश्वरम् । न दर्शयेद्यः स कथं कीदृशो बान्धवो नृणाम् ।

भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णञ्च निर्गुणम् ॥ ७४ ॥

निर्मूलञ्च पुराकर्म भवेद्यत्सेवया ध्रुवम् । मया छलेन त्वं त्यक्ता क्षम दोषं मम प्रिये ॥
क्षमायुतानां साध्वीनां सत्त्वात् क्रोधो न विद्यते । पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम् ।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजध्यानविच्छेदकातरः । धनादिषु स्त्रियां प्रीतिः प्रवृत्तिर्धर्मं गच्छताम्

श्रीकृष्णचरणाम्भोजे निस्पृहाणां मनोरथाः ॥ ७८ ॥

जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा । सा साश्रुनेत्रा विनयादुवाच प्राणवल्लभम् ।

मनसोवाच ।

दोषेणाहं यथा त्यक्ता निद्राभङ्गेन ते प्रभो । यत्र स्मरामि त्वां बन्धो तत्र मामागमिष्यसि
बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परः । प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात् सर्वतः परः ॥
पत्निः पतिव्रतानाञ्च शतपुत्राधिकः प्रियः । सर्वस्माच्च प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः
पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ । नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले ॥

क्षुधितानां यथान्ने च कामुकानां यथा स्त्रियाम्
यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥ ८४ ॥
विदुषाञ्च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा ।
तथा शश्वन्मनःकान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो ॥ ८५ ॥

इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे । क्षणञ्चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः

नेत्रोदकेन मनसां स्नापयामास तां मुनिः । साश्रुणाचमुनेः क्रोडं सिषेच भेदकात
तदा ज्ञानेन तौ द्वौच विशोकौचबभूवतुः । स्मारं स्मारं पदाम्भोजंकृष्णस्य परमात्मन
जगामतपसेविप्रःस कान्तांसुप्रबोध्यच । जगाममनसाशम्भोः कैलासं मन्दिरंगुरोः
पार्वतीं बोधयामास मनसां शोककर्षिताम् । शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालये
सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषाव मङ्गले क्षणे । नारायणांशं पुत्रञ्च ज्ञानिनां योगिनांगुरु
गर्भेस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शङ्करवक्त्रतः । स बभूवच योगीन्द्रोयोगिनां ज्ञानिनांगुरु
जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास शिवायच शिवः शिशो
रत्नत्रिकोटिलक्षञ्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः । पार्वतीच गवां लक्षं रत्नानि विविधानिच
शम्भुश्च चतुरो वेदान् वेदाङ्गानितरांस्तथा । बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युञ्जयं परम्
भक्तिरास्ते स्वकान्ते चाभीष्टे देवे हरौगुरौ । यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीकएव
जगाम तपसे विष्णोःपुष्करं शङ्कराज्ञया । संप्राप्य च महामन्त्रं तपश्च परमात्मन
दिव्यं वर्षत्रिलक्षञ्च तपस्तप्त्वा तपोधनः । आजगाम महायोगी नमस्कर्त्तुं शिवंप्रभुम्
शङ्करञ्च नमस्कृत्य तस्थाच बालकं पुरः । सा चाजगाम मनसा कश्यपस्याश्रमं पितु
तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः । शतलक्षञ्च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने

ब्राह्मणान् भोजयामास असंख्यान् श्रेयसे शिशोः ।
अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्रापुः परं तथा ।

सा सपुत्रा च सुचिरं तन्वी तत्रालये तदा । तदीयं पुनराख्यानं यच्छ्रामि तन्निशामय
ययाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परिक्षिते । बभूव सहसा महान् दैवदोषेण कर्मणा ॥१०
सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्याश्रमोऽस्ति । शशाप शृङ्गीचैवोरं कौशिकाश्च जलेनच
राजा श्रुत्वा तद्वृत्तिं मञ्चारं गतवान् सः । तत्र तत्त्वं च सभां शुभाय धर्मसंहिताम्
सप्ताहे समतीते तु गच्छन्तं तक्षकं पथि । धन्वन्तरिर्नृपं मोक्तुं ददर्श भगुसौतृप
तयोर्बभूव संवादः सुनीतिश्च परस्परम् । धन्वन्तरिर्मणिं प्राप तक्षकः स्वेच्छया ददौ ।
स ययौ तं गृहीत्वा तु तुष्टः प्रहृष्टमानसः । तक्षको भक्षयामास नृपञ्च मञ्चकस्थितम्
राजाजगाम वैकुण्ठं स्मारंस्मारं हरिंगुरुम् । सत्कारं कारयामास पितुर्जन्मेजयः शुचा॥

राजा चकार यज्ञञ्च सर्पसत्रं ततो मुने । प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा ॥
स तक्षकश्च भीतश्च महेन्द्रं शरणं ययौ । सेन्द्रञ्च तक्षकं हन्तुं विप्रवर्गः समुद्यतः ॥१११
अथ देवाश्च मुनयश्चाऽऽययुर्मनसान्तिकम् । तां तुष्टाव महेन्द्रश्च भयकातरविह्वलः ॥११२॥
तत आस्तीक आगत्य यज्ञञ्च मातुराज्ञया । महेन्द्रतक्षकप्राणान् ययाचे भूमिपं वरम् ॥
ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया । यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणाञ्च ददौ मुदा ॥
विप्राश्च मुनयो देवा गत्वाञ्च मनसान्तिकम् । मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक् पृथक् ।
शक्रः संभृतसंभारो भक्तियुक्तः सदाशुचिः । मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरम् ११६
दत्त्वा षोडशोपचारैर्बलिञ्च तत् प्रियं तदा । प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुसुराज्ञया ॥
संपूज्य मनसादेवीं प्रययुःस्वालयञ्च ते । इत्येवंकथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

नारद उवाच ।

केनस्तोत्रेणतुष्टाव महेन्द्रोमनसांसतीम् । पूजाविधिक्रमंतस्याः श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥

नारायण उवाच ।

सुस्नातःशुचिराचान्तोधृत्वाधौतेच वाससी । रत्नसिंहासने देवीं वासयामासभक्तितः ।
स्वर्गगङ्गाजलेनैव रत्नकुम्भस्थितेन च । स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः ॥
वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोहरे । सर्वाङ्गे चन्दनं दत्त्वा पाद्यार्घ्यं भक्तिसंयुतः ॥
गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवंशिवाम् । संपूज्य देवषट्कञ्च पूजयामास तांसतीम्
ओं ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवञ्च मन्त्रतः । दशाक्षरेण मन्त्रेणददौ सर्वं यथोचितम्
दत्त्वा षोडशोपचारं भक्तितो दुर्लभंहरिः । पूजयामास भक्त्याच ब्रह्मणाप्रेरितो मुदा ॥
वाद्यं नानाप्रकारञ्च वादयामास तत्र वै । बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि ॥१२६॥
देवो विप्राज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया । तुष्टाव साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥

महेन्द्र उवाच ।

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां पराम् ।
परात्पराञ्च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना ॥ १२८ ॥

स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतःपरम् । न क्षमः प्रकृतिं वक्तुं गुणानां तव सुव्रते

# सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## सुरभ्युपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

या सा सुरभीदेवी गोलोकादागताध्वया । तज्जन्मचरितंब्रह्मन्श्रोतुमिच्छामितत्वतः

नारायण उवाच ।

वामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः । गवां प्रधाना सुरभी गोलोके च समुद्भवा ॥
र्वादिसृष्टेः कथनं कथयामि निशामय । बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने ॥ २ ॥
कदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकात् । गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ
हसा तत्र रहसि विजहार च कौतुकात् । बभूव क्षीरपानेच्छा तदा स्वेच्छामयस्य च
सृजे सुरभीं देवो लीलया वामपार्श्वतः । वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सानाञ्च मनोरमाम्
ष्ट्वा सवत्सां सुदामा रत्नभाण्डे दुदोह च । क्षीरं सुधातिरिक्तञ्च जन्ममृत्युहरं परम् ॥
दुष्णञ्च पयः स्वादु पपौ गोपपतिः स्वयम् । सरो बभूव पयसा भाण्डविस्रंसनेनच
र्घे च विस्तृते चैव परितः शतयोजनम् । गोलोकेषु प्रसिद्धश्च स च क्षीरसरोवरः ॥
ोपिकानाञ्च राधायाः क्रीड़ावापीबभूवसा । रत्नेन रचिता तूर्णं भूता वापीश्वरेच्छया
भूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः । तावन्तो हि च वत्साश्च सुरभी लोमकूपतः ॥
ासां पुत्राश्च पौत्राश्च संबभूवुरसंख्यकाः । कथिता च गवां सृष्टिस्तयाचपूरितं जगत्
जाञ्चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने । ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ॥
ीपान्वितापरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया भवे । बभूव सुरभी पूजा धर्मवक्त्रादितिश्रुतम् ॥
्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रंयद्युगम् पूजाविधिक्रमम् । वेदोक्तञ्चमहाभाग निबोधकथयामिते
मीं सुरभ्यैनम इति मन्त्रस्य च षड़क्षरः । सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः ॥
्यानञ्च यजुर्वेदोक्तं पूजनं सर्वसम्मतम् । ऋद्धिदां वृद्धिदाञ्चैव मुक्तिदां सर्वकामदाम् ॥
लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम् । गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम् ॥

पवित्ररूपां पूज्याञ्च भक्तानां सर्वकामदाम् । यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभीं
घटे वा धेनुशिरसि वद्धस्तम्भे गवाञ्च वा । शालग्रामे जलेऽग्नौ वा सुरभींपूजयेद्द्वि
दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्णे भक्तिसंयुतः । यः पूजयेच्च सुरभीं स च पूज्यो भवेद्भुवि
एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया । क्षीरं जहार सहसा चिन्तिताश्च सुरा
ते गत्वा ब्रह्मलोकञ्च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा । तदाज्ञया च सुरभीं तुष्टाव पाकशासन

महेन्द्र उवाच ।

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः । गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके ।
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः । नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो न

कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सन्ततं परम् ॥२५॥

श्रीदायै धनदायै च वृद्धिदायै नमो नमः । शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः ॥
यशोदायै कीर्त्तिदायै धर्म्मज्ञायै नमो नमः । स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसू
आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी । महेन्द्राय वरं दत्वा वाञ्छितञ्चापि दुर्लभम्
जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम् । बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णञ्च नारद
दुग्धात् घृतं ततो यज्ञस्ततःप्रीतिःसुरस्य च । इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठे
स गोमान् धनवांश्चैवकीर्त्तिमान् पुण्यमान्भवेत् । सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षि
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरम् । सुचिरं निवसेत्तत्र करोतिकृष्णसेवन

न पुनर्भवनं तस्य ब्रह्मपुत्र भवे भवेत् ॥ ३३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे सुरभ्युपाख्यानं
नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

# अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## राधिकाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग नारायणपरायण । नारायणांश भगवन् ब्रूहि नारायणीं कथाम् ॥१॥
श्रुतं सुरभ्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु पुराविद्भिः प्रशंसितम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम् । तदुत्पत्तिश्च तद्ध्यानं स्तोत्रं कवचमुत्तमम्

श्रीनारायण उवाच ।

पुरा कैलाशशिखरे भगवन्तं सनातनम् । सिद्धेशं सिद्धिदं सर्व स्वरूपं शङ्करं परम् ॥४॥
प्रफुल्लवदनं प्रीतं सस्मितं मुनिभिः स्तुतम् । कुमाराय प्रवोचन्तं कृष्णस्य परमात्मनः ।
रासोत्सवरसाख्यानं रासमण्डलवर्णनम् ॥ ५ ॥
तदाख्यानावसाने च प्रस्तावावसरे सती ॥६॥
पप्रच्छ पार्वती स्फीता सस्मिता प्राणवल्लभम् । स्तवनं कुर्वती भीता प्राणेशेन प्रसादिता
प्रोवाच तं महादेवं महादेवी सुरेश्वरी । अपूर्वं राधिकाख्यानं पुराणेषु सुदुर्लभम् ॥८॥

श्रीपार्वत्युवाच ।

आगमं निखिलं नाथ श्रुतं सर्वमनुत्तमम् । पञ्चरात्रादिकं नीतिशास्त्रं योगश्चयोगिनाम्
सिद्धानांसिद्धिशास्त्रञ्चनानातन्त्रंमनोहरम् । भक्तानांभक्तिशास्त्रञ्चकृष्णस्यपरमात्मनः
देवीनामपिसर्वासांचरितंत्वन्मुखाम्बुजात् । अधुनाश्रोतुमिच्छामि राधिकाख्यानमुत्तमम्
श्रुतौ श्रुतं प्रशंसा च राधायाश्च समासतः ।
त्वन्मुखात् काण्वशाखायां व्यासेन तां वदाधुना ॥ १२ ॥
आगमाख्यानकाले च भवता स्वीकृतं पुरा । नहीश्वरव्याहृतिश्च मिथ्या भवितुमर्हति
तदुत्पत्तिश्च तद्ध्यानं नाम्नोमाहात्म्यमुत्तमम् । पूजाविधानंचरितंस्तोत्रंकवचमुत्तमम्
आराधन विधानञ्च पूजापद्धतिमीप्सितम् । साम्प्रतं ब्रूहि भगवन्मांभक्तां भक्तवत्सल

कर्तुं न कश्चित् पूर्णताम[illegible]कान्तः । पार्वतीवचनं श्रुत्वा[illegible] बभूव सः
[illegible] भगवान् शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः । [illegible]
[illegible] । तदनुज्ञा[illegible]
निषिद्धोऽहं भगवता कृष्णेन परमात्मना । [illegible] राधाख्यान[illegible]
मदर्द्धाङ्गरूपा त्वं न मद्भिन्ना स्वरूपतः । अतोऽनुज्ञां ददौ कृष्णः मह्यं वक्तुं महेश्वरि
मदीष्टदेवकान्ताया राधायाश्चरितं सति । अतीव गोपनीयञ्च सुखदं कृष्णभक्तिदम् ॥२१

ज्ञानामि तदहं दुर्गे सर्वं पूर्वापरं परम् ।
यज्जानामि रहस्यञ्च न तत् ब्रह्मा फणीश्वरः ॥२२॥
न तत् सनत्कुमाराश्च न च धर्मः सनातनः ।
न देवेन्द्रो मुनीन्द्राश्च सिद्धेन्द्राः सिद्धपुङ्गवाः ॥२३॥
मत्तो बलवती त्वञ्च प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यता ।
अतस्त्वां गोपनीयञ्च कथयामि सुरेश्वरि ॥२४॥

शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । चरितं राधिकायाश्च दुर्लभञ्च सुपुण्यदम्
पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥२६
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः । स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव रमणोत्सुकः

रमणं कर्तुमिच्छा च तद्बभूव सुरेश्वरी ।
इच्छया च भवेत् सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥२८॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः ।
दक्षिणाङ्गञ्च श्रीकृष्णः वामार्द्धाङ्गश्च राधिका ॥२९॥

बभूव रमणी रम्या रासेशा रमणोत्सुका । अमूल्यरत्नाभरणा रत्नसिंहासनस्थिता ॥३०
वह्निशुद्धांशुकाधाना कोटिपूर्णशशिप्रभा । तप्तकाञ्चनवर्णाभा राजिता च स्वतेजसा ॥३१
सस्मिता सुदती शुद्धा शरत्पद्मनिभानना । बिभ्रती कबरीं रम्यां मालतीमाल्यमण्डिताम् ॥
रत्नमालाञ्च दधतीं ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम् । मुक्ताहारेण शुभ्रेण गांगधारानिभेन च ॥३३
संयुक्तं वर्त्तुलोत्तुङ्गं सुमेरुगिरिसन्निभम् । कठिनं सुन्दरं दृश्यं कस्तूरीपत्रचिह्नितम् ॥३४

मांगल्यं मंगलार्हञ्चस्तनयुग्मञ्च बिभ्रति । नितम्बश्रोणिभारार्त्ता नवयौवनसंयुता ॥३५
कामातुरां सस्मितां तां ददर्श रसिकेश्वरः । दृष्ट्वा कान्तां जगत्कान्तो बभूव रमणोत्सुकः ॥
दृष्ट्वा चैवं सुकान्तञ्च सा दधार हरेः पुरः । तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि ॥३७
राधा भजति श्रीकृष्णं स च ताञ्च परस्परम् । उभयोः सर्वसाम्यञ्च सदा सन्तो वदन्ति च ॥
भवनं धावनं रासे स्मरत्यालिंगनं जपेत् । तेन जल्पति संकेतां तां राधां मदीश्वरः ॥

राशब्दोच्चारणाद्भक्तो याति मुक्तिं सुदुर्लभाम् ।
धाशब्दोच्चारणात् दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ॥४०॥

कृष्णवामांशसम्भूता राधा रासेश्वरी पुरा । तस्याश्चांशांशकलया बभूवुर्देवयोषितः ॥
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः । ततोऽवाप्नोति मुक्तिञ्च सा च राधा प्रकीर्त्तिता ॥
बभूव गोपीसंघश्च राधाया लोमकूपतः । श्रीकृष्णलोमकूपेभ्यः बभूवुः सर्वबल्लवाः ॥४३

राधावामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा ।
शस्याधिष्ठातृदेवी सा गृहलक्ष्मीर्बभूव सा ॥४४॥

चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी । तदंशा राजलक्ष्मीश्च राजसम्पत्प्रदायिनी ॥
तदंशा मर्त्यलक्ष्मीश्च गृहिणाञ्च गृहे गृहे । शस्याधिष्ठातृदेवी च सा एव गृहदेवता ॥
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्णवक्षःस्थलस्थिता । प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति । भज सत्यं परंब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम् ॥४८
परं प्रधानं परमं परमात्मानमीश्वरम् । सर्वाद्यं सर्वपूज्यञ्च निरीहं प्रकृतेः परम् ॥४९॥
स्वेच्छामयं नित्यरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् । तद्भिन्नानाञ्च देवानां प्राकृतं रूपमेव च ॥५०॥
तस्य प्राणाधिका राधा बहुसौभाग्यसंयुता । महद्विष्णोः प्रसूः सा च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
मानिनीं राधिकां सन्तः सदा सेवन्ति नित्यशः । सुलभं यत्पदाम्भोजं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥

स्वप्ने राधा पदाम्भोजं न हि पश्यन्ति बल्लवाः ।
स्वयं देवी हरेः क्रोडे छायारूपेण कामिनी ॥५३॥
स च द्वादश गोपानां रायाणः प्रवरः प्रिये ।
श्रीकृष्णांशश्च भगवान् विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥५४॥

सुदामशापात् सा देवी गोलोकादागता महीम् ।
वृषभानुगृहे जाता तन्माता च कलावती ॥५५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरीसंवादे राधोपाख्यानं नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

# एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## हरगौरीसंवादे राधोपाख्यानम् ।

पार्वत्युवाच ।

कथं सुदामशापश्च सा च देवी ललाम ह ।
कथं शशाप भृत्यो हि स्वामीष्टदेवकामिनीम् ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोप्यं सर्वपुराणेषु शुभदं भक्तिमुक्तिदम् ॥२॥
एकदा राशिकेशश्च गोलोके रासमण्डले । शतशृङ्गपर्वतैकदेशे वृन्दावने वने ॥३॥

गृहीत्वा विरजां गोपीं सौभाग्यां राधिकासमाम् ।
क्रीडाञ्चकार भगवान् रत्नभूषणभूषितः ॥४॥

रत्नप्रदीपसंयुक्ते रत्ननिर्माणमण्डले । अमूल्यरत्ननिर्माण तल्पेचम्पकचर्चिते ॥५॥
कस्तूरीकुङ्कुमासक्ते सुगन्धिचन्दनार्चिते । सुगन्धिमालतीमालासमूहपरिशोभिते ॥६॥
सुरतेर्विरतिर्नास्ति दम्पती रतिपण्डितौ । तौ द्वौ परस्परासक्तौ सुखसम्भोगतन्त्रितौ ॥
मन्वन्तराणां लक्षश्च कालः परमितोगतः । गोलोकस्यस्वल्पकालेजन्मादिरहितस्यच ॥

दूत्यश्चतत्तो ज्ञात्वा च कथयामासुः राधिकाम् ।
श्रुत्वा परमरुष्टा सा तत्याज हास्मीश्वरी ॥६॥

[illegible] च सखिभिः कोपरक्तास्यलोचना । विहायरत्नालंकारं वह्निशुद्धांशुकेशुभे ॥

क्रीडापद्मञ्च सद्रत्नामूल्यदर्पणमुज्ज्वलम् । चकार लोपं वस्त्रेण सिन्दूरं चित्रपत्रकम् ॥
प्रक्षाल्य तोयाञ्जलिभिर्मुखरागमलक्तकम् । विस्रस्तकबरीभारामुक्तकेशीप्रकम्पिता ॥१२
शुक्लवस्त्रपरीधाना रुक्षावेशाद्विवर्जिता । ययौ यानान्तिकं तूर्णं प्रियालीभिर्निवारिता ॥
आजुहावसखीसंघंरोषविस्फुरिताधरा । शश्वत्कम्पान्वितांगीसागोपीभिःपरिवारिता
ताभिर्भययुताभिश्च कातराभिश्च संस्तुता । आरुरोहरथं दिव्यममूल्यरत्ननिर्मितम् ।

दशयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये च योजनं शतम् ॥१५॥

सहस्रचक्रयुक्तं च नानाचित्रसमन्वितम् । नानाविचित्रवसनैःसूक्ष्मैःक्षौमैर्विराजितम् ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणदर्पणैःपरिशोभितम् । मणीन्द्रजालमालालिपुष्पमालाविराजितम् ॥
सद्रत्नकलसैर्युक्तैरम्यैर्मन्दिरकोटिभिः । त्रिलक्षकोटिभिःसार्द्धंगोपीभिश्चप्रियालिभिः ॥
ययौ रथेन तेनैव सुमनोमालिनी प्रिये । श्रुत्वा कोलाहलं गोपःसुदामा कृष्णपार्षदः ॥

कृष्णं कृत्वा सावधानं गोपैः सार्द्धं पलायितः ।
भयेन कृष्णः सन्त्रस्तो विहाय विरजां सतीम् ॥२०॥
स्वप्रेमभग्नो कृष्णोऽपि तिरोधानं चकार सः ।
सा सती समयं ज्ञात्वा विचार्य्य स्वहृदि क्रुधा ॥२१॥
राधाप्रकोपभीता च प्राणांस्तत्याज तत्क्षणम् ।
विरजालिगणास्तत्र भयविह्वलकातराः ॥२२॥

ययुः शरणं साध्वीं विरजां तत्क्षणं भिया । गोलोके सा सरिद्रूपा बभूव शैलकन्यके ॥
कोटियोजनविस्तीर्णा दीर्घे शतगुणा तथा । गोलोकं वेष्टयामास परिखेव मनोहरा ॥
बभूवुः क्षुद्रनद्यश्च तदान्या गोप्य एव च । सर्वा नद्यस्तदंशाश्च प्रतिविश्वेषु सुन्दरि ॥
इमे सप्तसमुद्राश्च विरजानन्दना भुवि । अथागत्य सम्पर्का राधा रासेश्वरी परा ॥२६॥
न दृष्ट्वा विरजां कृष्णं स्वगृहञ्च पुनर्ययौ । जगाम कृष्णस्तां राधां गोपालैरष्टभिःसह
गोपीभिर्द्वारिभिर्युक्ताभिर्वारितश्च पुनः पुनः । दृष्ट्वा कृष्णञ्च सा देवी भर्त्सनञ्च चकार तम् ॥
सुदामा भर्त्सयामास तामेव कृष्णसन्निधौ । क्रुद्धा शशाप सा देवी सुदामानं सुरेश्वरि ॥
गच्छ त्वमासुरीं योनिं गच्छ दूरमतो द्रुतम् । शशाप तां सुदामा च त्वमपि गच्छ भारतम् ॥

अथ गोपीगोपकन्याभिर्गोभिःस्थास्यसि तत्र । तत्र ते कृष्णविच्छेदोऽभविष्यति वर्षसम
तत्रभारावतरणं भगवांश्च करिष्यति । इत्येवमुक्त्वा सुदामा प्रणम्य मातरं हरिम्

साश्रुनेत्रो मोहयुक्तस्तस्थौ गन्तुमुद्यतः ॥३२॥
राधा जगाम तत्पश्चात् साश्रुनेत्रातिविह्वला ।
वत्स क्व यासीत्युक्त्वार्त्तं पुत्रविच्छेदकातरा ॥३३॥

कृष्णस्तां बोधयामास विद्यया च हरामर्षीन् । शीघ्रं संप्राप्स्यसि सुतं मा क्रन्देत्येवमेव च
स चासुरः शङ्खचूडः बभूव तुलसीपतिः । मच्छूलभिन्नकायेन गोलोकञ्च जगाम सः ॥
राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती । वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह ॥
अयोनिसम्भवा देवी वायुगर्भा कलावती । सुषुवे मायया वायुं सा तत्राविर्बभूव ह

अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम् ॥३८॥
सार्द्धं रायाणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः ।
छायां संस्थाप्य तद्गेहे सान्तर्द्धानं चकार ह ॥३९॥

बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह । गते चतुर्दशाब्दे तु कंसभीतश्छलेन च
जगाम गोकुलं कृष्णःशिशुरूपीजगत्पतिः । कृष्णमातायशोदा या रायाणस्तत्सहोदर

गोलोके गोपकृष्णांशः सम्बन्धात् कृष्णमातुलः ॥४१॥

कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने । विवाहंकारयामासविधिनाजगतां विधिः
स्वप्ने राधापदाम्भोजं नहिपश्यन्तिवल्लवाः । स्वयंराधाहरेःक्रोडे छायारायाणमन्दिरे
षष्टिं वर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । राधिकाचरणाम्भोजदर्शनार्थीचपुष्करे ॥४
भारावतरणे भूमेर्भारते नन्दगोकुले । ददर्श तत् पदाम्भोजं तपसस्तत् फलेन च ॥४५

किञ्चित्कालञ्च श्रीकृष्णः पुण्ये वृन्दावने वने ।
रेमे गोलोकनाथश्च राधया सह भारते ॥४६॥

ततः सुदामशापेन विच्छेदश्च बभूव ह । तत्र भारावतरणं भूमेः कृष्णश्चकार सः ॥४
शताब्दे समतीते तु तीर्थयात्राप्रसंगतः । ददर्श कृष्णं सा राधा स च तां च परस्परम् ॥
। जगाम गोलोकं राधया सह तत्त्ववित् । कलावती यशोदा च जगाम राधया सह ॥

वृषभानुश्च नन्दश्च ययौ गोलोकमुत्तमम् ।
सर्वे गोपाश्च गोप्यश्च ययुस्ता याः समागताः ॥५०॥
छायागोपाश्च गोप्यश्च प्रापुर्मुक्तिश्च सन्निधौ ॥५१॥
ताश्च तत्रैव सार्द्धं कृष्णेन पार्वति । षट्त्रिंशल्लक्षकोट्यश्चगोप्योगोपाश्चतत्समाः ।
गोलोकं प्रययुर्मुक्ताः सार्द्धं कृष्णेन राधया ॥५२॥
ः प्रजापतिर्नन्दो यशोदा तत्प्रिया धरा । संप्राप पूर्वतपसा परमात्मानमीश्वरम् ॥
देवः कश्यपश्च देवकीचादितिः सती । देवमाता देवपिता प्रतिकल्पे स्वभावतः ॥
पितॄणां मानसीकन्या राधामाता कलावती ।
वसुदामापि गोलोकात् वृषभानुः समाययौ ॥५५॥
वं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् । सम्पत्करं पापहरं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ॥५६
ष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः । चतुर्भुजश्च वैकुण्ठेगोलोकेद्विभुजःस्वयम् ॥
र्भुजस्य पत्नी च महालक्ष्मीः सरस्वती । गंगाचतुलसीचैवदेव्योनारायणप्रियाः ॥
ष्णपत्नी सा राधा तदर्द्धांगसमुद्भवा । तेजसा वयसासाध्वीरूपेणचगुणेनच ॥५९
राधां समुच्चार्यपश्चात्कृष्णंवदेद्बुधः । व्यतिक्रमेब्रह्महत्यांलभतेनात्रसंशयः ।
र्तिकीपूर्णिमायाञ्चगोलोकेरासमण्डले । चकारपूजांराधायास्तत्सम्बन्धिमहोत्सवम्
सद्रत्नगुटिकायाञ्च कृत्वा तत् कवचं हरिः ।
दधार कण्ठे बाह्वौ च दक्षिणे सह गोपकैः ॥६२॥
ध्यानञ्च भक्त्या च स्तोत्रमेव चकार सः । राधाचर्वितताम्बूलंचखादमधुसूदनः ॥
राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान् प्रभुः ।
परस्पराभीष्टदेवो भेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥६४॥
द्वितीये पूजिता सा च धर्मेण ब्रह्मणा मया ।
अनन्तेन वासुकिना रविणा शशिना पुरा ॥६५॥
ेण च रुद्रैश्च मनुना मानवेन च । सुरेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सर्वैर्विश्वैश्च पूजिता ॥६६
ये पूजिता सा च सप्तद्वीपेश्वरेण च । भारते च सुयज्ञेन पार्श्वैर्मित्रैर्मुदान्वितैः ॥६७

ब्राह्मणेनाभिशप्तेन दैवदोषेण भूभुजा । व्याधिग्रस्तेन हस्तेन दुःखिनान विधूतना ॥९८
संप्राप्य राज्यं धर्मिष्ठः स च राधावरेण च । ब्रह्मदत्तेन स्तोत्रेण स्तुत्वा च परमेश्वरीम् ॥
अमोघं कवचं तस्याः कण्ठे धार्यं नृपात्मजः । ध्यात्वा च कारपूजां च पुष्करे शतवत्सरम् ॥
अन्ते जगाम गोलोकं रत्नयानेन भूमिपः । इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायण नारद संवादे हरगौरीसंवादे राधोपाख्याने नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### सुयज्ञोपाख्यानम् ।

पार्वत्युवाच ।

को वा सुयज्ञो नृपतिः कुत्र वंशे समुद्भवः । कथं विप्राभिशप्तश्च कथं संप्राप राधिकाम्
सर्वात्मनश्च कृष्णस्य पत्नींश्रीकृष्णपूजिताम् । कथं विष्णूत्रधारी च शिवेत्रेपरमेश्वरीम्
षष्टि वर्षसहस्राणि तपस्तेपे पुरा विधिः । यत्पादाम्भोजरेणूनां लब्धये पुष्करे विभुः ॥
कथं ददर्श तां देवीं महालक्ष्मींपुरासतीम् । दुर्दर्शामपि युष्माकं दृश्यासावाकथंनृणाम्
कथं त्रिजगतां धाता तस्मैतत्कवचं ददौ । ध्यानंपूजाविधिस्तोत्रंतस्याव्याख्यातुमर्हसि

श्रीमहादेव उवाच ।

स्वायम्भुवो मनुर्देवि मनूनामादिरेव च । ब्रह्मात्मजस्तपस्वी च शतरूपापतिः प्रभुः ॥
उत्तानपादस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रो ध्रुव एव च । ध्रुवस्य कीर्त्तिर्विख्याताश्रैलोक्ये शैलकन्यके
उत्कलस्तस्य पुत्रश्च नारायणपरायणः । सहस्रं राजसूयानां पुष्करे स चकार ह ॥८॥
सर्वाणि रत्नपात्राणि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा । अमूल्यरत्नराशीनां सहस्रं तेजसावृतम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो ददौ राजा यज्ञान्ते सुमहोत्सवे । दृष्ट्वा तच्छोभनं यज्ञं विधाताजगतांप्रिये।
सुयज्ञं नाम नृपतेश्चकार सुरसंसदि । स च राजा सुयज्ञश्च मनुवंशे समुद्भवः ॥ ११ ॥

...दाता रत्नदाता दाता च सर्वसम्पदाम्। दशलक्षं गवाञ्चैव रत्नशृङ्गपरिच्छदम्
...यं ददौ स विप्रेभ्यो मुदायुक्तःसदक्षिणम्। गवां द्वादशलक्षाणांददौनित्यंमुदान्वित
...कानिवमांसानित्राह्मणेभ्यश्च पार्वति। षट्कोटिं ब्राह्मणानाञ्च भोजयामासनित्यश
...य चर्व्यं लेह्य पेयैरतितृप्तं दिने दिने। विप्रलक्षं सूपकारं भोजयामास तत्परम् ॥१...
...न्नञ्च सूपान्तं सगव्यं मांसवर्जितम्। विप्रा भोजनकाले च मनुवंशसमुद्भवम्।

न तुष्टुवुः सुयज्ञञ्च तुष्टुवुस्तत्पितॄंश्च ते ॥ १६ ॥

दिनेषु यज्ञ यज्ञान्ते षट्त्रिंशल्लक्षकोटयः ॥ १७ ॥

...ः सुभोजनं विप्राश्चातितृप्ताश्च सुन्दरि। गृहीतानि च रत्नानि स्वगृहं बोढुमक्षमाः

वृषलेभ्यो ददौ किञ्चिन् किञ्चिन् पथि च तत्यजुः।

विप्राणां भोजनान्ते च विप्रान्येभ्यो ददौ नृपः ॥ १६ ॥

...प्युद्वर्त्तनन्तत्र चान्नराशिसहस्रकम्। कृत्वा यज्ञं महाबाहुः समुवास स्वसंसदि ॥
...द्रसारनिर्माणरत्नकोटिसमन्विते। रत्नसिंहासने रम्ये चावृते च सुसंस्कृते ॥
...नादिसुसंसृष्टे रम्ये चन्दनपल्लवैः। शाखायुक्तपूर्णकुम्भरम्भावृक्षैश्च शोभिते ॥
...नागुरुकस्तूरीफलसिन्दूरसंयुते। वसुवासववह्नीन्द्ररुद्रादित्यसमन्विते ॥२३॥
...नारदमन्वादिब्रह्मविष्णुशिवान्विते। एतस्मिन्नन्तरे तत्र विप्र एकः समाययौ ॥
... मलिनवासाश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः। रत्नसिंहासनस्थञ्च माल्यचन्दनचर्चितम् ॥
...नमाशिषञ्चक्रे सस्मितः सम्पुटाञ्जलिः। प्रणनाम नृपस्तञ्च नोत्तस्थौ किञ्चिदेव हि
...सदश्च नोत्तस्थुर्जहसुः स्वल्पमेव च। मुनिभ्योऽपि च देवेभ्योनमस्कृत्यद्विजोत्तमः
...व नृपतिं क्रोधात् तत्रातिष्ठन्निरङ्कुशः। गच्छ दूरमतो राज्याद्भ्रष्टश्रीर्भव पामर ॥
...चिरंगलत्कुष्ठीबुद्धिहीनोऽप्युपद्रुतः। इत्युक्त्वा कम्पितःक्रोधात्सभास्थान्समुद्यतः
...व जहसुः सर्वे समुत्तस्थुः सभासदः। सर्वे चक्रुः परीहारं क्रोधं तत्याज ब्राह्मणः
...गत्य तं प्रणम्य रुरोद भयकातरः। निःससार सभामध्यात् हृदयेन विदूयता ॥३१
...गो गूढरूपी च प्रज्वलन् ब्रह्मतेजसा। तत्पश्चान्मुनयः सर्वे प्रययुर्भयकातराः ॥३२
...व तिष्ठ तिष्ठेति समुच्चार्य पुनः पुनः। पुलहश्च पुलस्त्यश्च प्रचेता भृगुरङ्गिराः ॥

मरीचिः कश्यपश्चैव वसिष्ठः क्रतुरेव च । शुक्रो बृहस्पतिश्चैव दुर्वासा लोमशस्तथा ॥ गौतमश्च कणादश्च कण्वः कात्यायनः कठः । पाणिनिर्जाजलिश्चैव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥ आपिशलिस्तैत्तिरिश्च मार्कण्डेयो महातपाः । सनकश्च सनन्दश्च वोढुपैलः सनातनः ॥ सनत्कुमारो भगवान् नरनारायणावृषी । पराशरो जरत्कारुः संवर्तः करभस्तथा ॥ ४ दीर्घश्चच्यवनश्चैव भरद्वाजश्च वाल्मीकिः । अगस्त्योऽत्रिरुतथ्यश्च सङ्कर्षोऽस्तीकमासुरिः शिलालिर्लाङ्गलिश्चैव शाल्यकः शाकटायनः । गर्गो वत्सः पञ्चशिखो जमदग्निश्च देवलः जैगीषव्यो वामदेवो बालखिल्यादयस्तथा । शक्तिर्दक्षः कर्दमश्च प्रस्कन्नः कपिलस्तथा विश्वामित्रश्च कौत्सश्च ऋचीकोऽप्यघमर्षणः । एते चान्ये च मुनयः पितरोऽग्निर्हरिप्रिया दिक्पाला देवताः सर्वे विप्रवध्वाः समाययुः । ब्राह्मणं वीजयामासुर्वासयामासुरीश्वरि सपूयुस्ते क्रमेणैव नीतिं नीतिविशारदाः ॥ ४३ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरीसंवादे राधोपाख्याने सुयज्ञोपाख्यानं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

## एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### नृपमुनिसंवादः ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

किमूचुर्ब्राह्मणं ब्रह्मन् ब्राह्मणा ब्रह्मणः सुताः । नीतिज्ञा नीतिवचनं तन्मां व्याख्यातुमर्हसि ।

श्रीमहादेव उवाच ।

तुष्टं कृत्वा ब्राह्मणञ्च स्तवेन विनयेन च । क्रमेण वक्तुमारेभे मुनिसङ्घो वरानने ॥ २ ॥

सनत्कुमार उवाच ।

त्वन्नृपश्चादागता लक्ष्मीः कीर्त्तिः सत्त्वं यशस्तथा ।
सुशीलञ्च महैश्वर्यं पितरोऽग्निः सुरास्तथा ॥ ३ ॥

आगता नृपगेहेभ्यः कृत्वा भ्रष्टश्रियं नृपम्। अथ तुष्टो द्विजश्रेष्ठ आशुतोषश्च ब्राह्मणः।
ब्राह्मणानान्तु हृदयं कोमलं नवनीतवत्। शुद्धं सुनिर्मलञ्चैव मार्जितं तपसा मुने ॥५॥
क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥ ६ ॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते। पितरस्तस्य देवाश्च वह्निश्चैव तथैव च ॥७
निराशाः प्रतिगच्छन्ति चातिथेरप्रतिग्रहात्। क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः। तुल्यदोषो भवत्येतैर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥६॥

पुलस्त्य उवाच।

ये पश्यन्तिवक्रदृष्ट्या चातिथिंगृहमागतम्। दत्त्वास्य पापंतस्मैतत् पुण्यमादायगच्छति।
क्षमस्व नृपदोषञ्च गच्छचन्द्र यथासुखम्। राजा स्वकर्मदोषेणनोत्तरर्थीतन्क्षमांकुरु॥

पुलह उवाच।

राजश्रियाविद्यया वा ब्राह्मणंयोऽवमन्यते। त्रिसन्ध्यार्हीनोविप्रश्च धर्महीनःक्षत्रियोभवेत्।
एकादशीविहीनश्च विष्णुनैवेद्यवञ्चितः। क्षमस्वागच्छ विप्रेन्द्र शुद्धं कुरु नृपालयम् ॥

क्रतुरुवाच।

ब्राह्मणःक्षत्रियो वापिवैश्योवा शूद्रएव च। दीक्षार्हीनोभवेत् सोऽपिब्राह्मणंयोऽवमन्यते
धनहीनःपुत्रहीनोभार्याहीनो भवेद् ध्रुवम्। क्षमस्वागच्छ भगवन् शुद्धंकुरुनृपालयम्।

अङ्गिरा उवाच।

...षात् ब्राह्मणोभूत्वा ब्राह्मणंयोऽवमन्यते। धृणावादोभवेत् सोऽपिभारतेसप्तजन्मसु

मरीचिरुवाच।

...वक्षेत्रे भारतेच देवञ्च ब्राह्मणं गुरुम्। विष्णुभक्तिविहीनश्च स भवेत् योऽवमन्यते॥

कश्यप उवाच।

...र्पं ब्राह्मणं दृष्ट्वा योऽसत्यमवमन्यते। विष्णुमन्त्रविहीनश्च सन् पूजाविरतोभवेत्।

प्रचेता उवाच।

...र्षि ब्राह्मणं दृष्ट्वा नाभ्युत्थानं करोति यः। पितृमातृभक्तिहीनः स भवेद्भारते भुवि ॥
...रोति वरेश्वरी योनिस्स मूढः सप्तजन्मसु। शीघ्रंगच्छ द्विजश्रेष्ठ राजानमाशिषंकुरु॥

पराशर उवाच ।

शूद्राणां सूपकारश्च यो विप्रो ज्ञानदुर्बलः ।

मसीपत्रे वसत्येव युगानामेकसप्ततिः ॥५६॥

ततो भवेद्दर्दुरश्च कृमिश्च सप्तजन्मसु । कैवर्तो जन्म सप्त ततः शुद्धो भवेन्नरः ॥५

जरत्कारुरुवाच ।

भृत्य द्वारा स्वयं वापि यो विप्रो वृषवाहकः ।

स वृषघ्न इति ख्यातः प्रसिद्धो भारते नृप ॥५८॥

ब्रह्महत्यासमं पापं तस्य नित्यं वृषताडने । वृषपृष्ठे भारदानात्पापं तद्द्विगुणं भवेत् ॥५९

सूर्यातपे वाहयेद् यः क्षुधितं तृषितं वृषम् । ब्रह्महत्याशतं पापं लभते नात्र संशयः ।

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं विप्राणां वृषवाहिनाम् । नाधिकारो भवेत्तेषां पितृदेवार्चने नृप ।

लालाकुण्डे वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ । विष्ठाभक्ष्यं मूत्रजलं तत्र तस्य भवेद् ध्रुवम् ।

त्रिसन्ध्यां ताडयेत्तञ्च शूलेन यमकिङ्करः । उल्कां ददाति मुखतः सूच्याहन्तति सन्तत

षष्टि वर्षसहस्राणि विष्ठायाञ्च कृमिस्ततः । ततः काको जन्मपञ्चजन्मपञ्च बकस्तथा ।

जन्म पञ्च गृध्रकश्च शृगालः सप्तजन्मसु । ततो दरिद्रः शूद्रश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः ।

भरद्वाज उवाच ।

शूद्राणां शवदाही यः सः कृतघ्न इति स्मृतः । शवप्रमाणांराजेन्द्रब्रह्महत्यांलभेद्ध्रुवम् ।

तत्तुल्य योनिभ्रमणात् तत्तुल्यनरकाच्छुचिः । योदोषोब्राह्मणानाञ्चशूद्राणां शवदाहने ।

तावदेव भवेद्दोषः शूद्रश्राद्धान्नभोजने ॥६८॥

विभाण्डक उवाच ।

पितृश्राद्धे च शूद्राणां भुङ्क्ते यो ब्राह्मणोऽधमः ।

सुरापीति ब्रह्मघाती पितृदेवार्चनाद्बहिः ॥६९॥

मार्कण्डेय उवाच ।

शूद्रस्त्रीगमने नृप । तद्वक्ष्यामि वेदोक्तं सावधानं निशामय ।

यो विप्रोवृषलीपतिः । कृमिदंष्ट्रे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

कृमिभक्ष्यो भवेद्विप्रो विह्वलो यमकिङ्करैः । प्रतिमायां तप्तलौहामाश्लेषयति
तश्च पुंश्चलीयोनौ कृमिर्भवति निश्चितम् । एवं वर्षसहस्रं च ततः शुद्धस्ततः

सुयज्ञ उवाच ।

धर्मशास्त्रं कृतप्रायं यद् कर्मफलं मुने । श्लाघ्यो मे महदापदत्यकाम्यसम्पदि
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । भागतास्तु यतो मुक्ता मद्गेहेषुन

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे नृपमुनि

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

# द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## हरगौरीसंवादे कर्मविपाकवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

धर्मैणश्च कृतानां यद्भवन् कर्मफलं प्रभो । तेषां किमूचुर्मुनयो वेदवेदाङ्ग

श्रीमहेश्वर उवाच ।

प्रश्नं कुर्वन्ति राजेन्द्रे सर्वेषु मुनिषु प्रिये । तत्र प्रवक्तुमारेभे सुनिर्नारायणो

नारायण उवाच ।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः । स कृतघ्न इति ख्यातः फलञ्च शृणु
यावन्तो रेणवः सिक्ता विप्राणां नेत्रबिन्दुभिः । तावद्वर्षसहस्रं च कुम्भीपाके
तदाङ्गारञ्च नद्धायं पायसं सायुमश्नकम् । तदाङ्गारे च शयनं साद्दिना
तदन्ते च महापापी विष्ठायां जायते कृमिः । षष्टि वर्षसहस्राणि दैवमानेन
ततो भवेद्भूमिहीनः प्रजाहीनश्च मानवः । दरिद्रः कृपणो रोगी शूद्रो निन्दा

नारद उवाच ।

अन्धकूपे वसेत् सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । कीटैः कृमिसमानैश्च भक्षितः सन्त
तत्क्षारोदकं नित्यं पिबति खादति । ततः सर्पो जन्मसप्त काकजन्म ततः शु

देवल उवाच ।

ब्रह्मस्वं वा गुरुस्वं वा देवस्वं वापि यो हरेत् । स कृतघ्न इति ज्ञेयो महापापी च
अवटोदे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततो भवेत् सुगणीति ततः कृतघ्न

जैगीषव्य उवाच ।

पितृमातृगुरूं श्चापि भक्तिहीनो न पालयेत् । वाचा च ताडयेत् तांश्च सततं इति
वाचा च ताडयेन्नित्यं स्वामिनं कुलटा च या ॥ १३ ॥
सा कृतघ्नीति विख्याता भारते पापिनी परा । वह्निकुण्डं महाघोरं सच तस्य प्रय
तत्र वह्नौ वसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ । ततो भवेज्जलौकाश्च जन्मसप्त ततः शुचि

वाल्मीकिरुवाच ।

यथा तरुषु वृक्षत्वं सर्वत्र न जहाति च । तथा कृतघ्नता राजन् सर्वपापेषु वर्तते ॥
मिथ्यासाक्ष्यं यो ददाति कामात् क्रोधात्तथा भयात् ।
सभायां पाक्षिकं वक्ति स कृतघ्न इति स्मृतः॥१७॥
पुण्यमात्रं चापि राजन् यो हन्ति सकृतघ्नकः । सर्वत्रापि च सर्वेषां पुण्यहार्ता कृत
मिथ्यासाक्ष्यं पाक्षिकं वाभारते वक्ति यो नृप । यावदिन्द्रसहस्रञ्च सर्पकुण्डे वसेद्
सन्ततं वेष्टितः सर्पैर्भीतश्च भक्षितस्तथा । भुङ्क्ते च सर्पविण्मूत्रं यमदूतेन ताडितः
कृकलासो भवेत्तत्र भारते सप्तजन्मसु । सप्तजन्मसु मण्डूकः पितृभिः सप्तभिः स
ततो भवेच्च वृक्षश्च महारण्ये च शाल्मलिः । ततो भवेन्नरो मूकस्ततः शूद्रस्ततः शुचि

आस्तीक उवाच ।

गुर्वङ्गनानां गमने मातृगामी भवेन्नरः । नराणां मातृगमने प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥२
भारते च नृपश्रेष्ठ यो दोषो मातृगामिनाम् । ब्राह्मणीगमने चैव शूद्राणां तावदेव हि॥
हि ब्राह्मण्या दोषः शूद्रस्य मैथुने । कन्यानां पुत्रपत्नीनां श्वश्रूणां गमने तथा
भगिनीनां तथैव च । दोषं वक्ष्यामि राजेन्द्र यदाह कमलोद्भवः

यः करोति महापापी एताभिः सह मैथुनम् ।
जीवन्मृतो भवेत् सोऽपि चाण्डालोऽस्पृश्य एव च ॥ २७ ॥

नाधिकारो भवेत्तस्य सूर्यमण्डलदर्शने । शालग्रामं तज्जलञ्च तुलस्याश्च दलं जलम् ॥ सर्वतीर्थजलञ्चैव विप्रपादोदकं तथा । स्प्रष्टुञ्च नैव शक्नोति पितृतुल्यः पातकी नरः॥२८ वंगुरुं ब्राह्मणञ्च नमस्कर्त्तुं न चार्हति । विष्ठाधिकं तदन्नञ्च जलं मूत्राधिकंतथा ॥ यतः पितरो विप्रा नैव गृह्णन्ति भारते । भवेत्तदङ्गवातेन तीर्थमङ्गारवाहनम् ॥३१॥ परान्नमुपयसेद् देवस्पर्शात् तथा द्विजः । भाराक्रान्ता च पृथिवी तद्भारं वोढुमक्षमा

तत्पापात् पतितो देशः कन्याविक्रयिणो यथा ।
तत्स्पर्शाच्च तदालापात् शयनाशनभोजनात् ॥ ३३॥

पराङ्गनासमः पापो भवत्येव न संशयः । कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणःशतम् देवानिशं भ्रमेत्तत्र चक्रावर्त्तं निरन्तरम् । दग्धोवाग्निशिखाभिश्च यमदूतैश्च ताडितः ॥ एवं नित्यं महापापी भुङ्क्ते निरययातनाम् । आहारश्चापि सर्वत्र कुम्भीपाके विवर्जितः । ततं प्राकृतिके घोरे महति प्रलये तथा । पुनः सृष्टेः समारम्भे तद् विधौ वा भवेत् पुनः षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायाञ्च कृमिर्भवेत् । ततो भवति चाण्डालो भार्याहीनोनपुंसकः। सप्तजन्मसु शूद्रश्च गलत्कुष्ठी नपुंसकः । ततो भवेद्ब्राह्मणश्चाप्यन्धः कुष्ठी नपुंसकः ॥

एवं क्रमेण जन्म सप्त महापापी भवेच्छुचिः ॥ ४० ॥

मुनय ऊचुः ।

इत्येवं कथितं सर्वं मस्माभिर्यो यथागमम् । एभिस्तुल्यो भवेद्दोषोऽप्यतिथीनां पराभवे प्रणामं कुरु विप्रेन्द्रं गृहंप्रापय निश्चितम् । संपूज्य ब्राह्मणं यत्नात् गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम् । वनं गच्छ महाराज तपस्यां कुरु सत्वरम् । ब्रह्मशापैर्विनिर्मुक्तः पुनरैवागमिष्यसि॥४३ इत्युक्त्वामुनयः सर्वेययुस्तूर्णं स्वमन्दिरम् । सुराश्चापिच राजानो बन्धुवर्गाश्चपार्वति ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे हरगौरीसंवादे
कर्मविपाको नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

## [illegible]तमोऽध्यायः

### [illegible] ।

अतिथिरुवाच ।

गतेषु मुनिवर्गेषु भूत्वा चमत्कृतं नृपम् । किमुवाच मुनीशो [illegible] ॥१॥
अतिथि[illegible] विप्रवरा [illegible] प्रभो । [illegible] ॥२॥

महेश्वर उवाच ।

गतेषु मुनिवर्गेषु [illegible] महाविदः । [illegible] पुरोधसा ॥३॥
[illegible] । [illegible] द्विजश्रेष्ठो [illegible]
[illegible] । उवाच नृपतिश्रेष्ठः [illegible] ॥

राजोवाच ।

कुत्र वंशे भवान् जातः किं नाम भवतः प्रभो । किं नामधेयापि [illegible] वासः क्व [illegible]
विप्ररूपोऽसि [illegible] मानुषः । साक्षात् [illegible] ।
कोऽपि गुरुस्ते भगवन्निर्दिष्टेयश्च भारते । [illegible] साम्प्रतम् ॥८॥
गृहाण राज्यं निखिलमैश्वर्यं कोशमेव च । स्वभृत्यं कुरुषे पुत्रं मां च दासीं स्त्रियं मुने
सप्तसागरसंयुक्तां सप्तद्वीपां वसुन्धराम् । नवद्वयोपद्वीपाक्तां सशैलवनशोभिताम् ॥१०॥
मया भृत्येन त्वं शाधि राजेन्द्रो भव भारते । रत्नेन्द्रसारनिर्माणे तिष्ठ सिंहासने वरे ॥
नृपस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । उवाच परमं तत्त्वं मद्दत्तं सर्वदुर्लभम् ॥ १२॥

अतिथिरुवाच ।

मरीचिर्ब्रह्मणःपुत्रस्तत्पुत्रःकश्यपःस्वयम् । कश्यपस्य सुताःसर्वेप्राताद्देवत्वमीप्सितम् ॥
तेषु त्वष्टा महाज्ञानी चकार परमं तपः । दिव्यं वर्षसहस्रञ्च पुष्करे दुष्करं तपः ॥१४॥
सिषिवे ब्राह्मणार्थञ्च देवदेवं हरिं परम् । नारायणाद्वरं प्राप विप्रं तेजस्विनं सुतम् ॥
ततो बभूव तेजस्वी विश्वरूपस्तपोधनः । पुरोधसं चकारेन्द्रो वाक्पतौ तं क्रुधा गते ।

मातामहेभ्यो दैत्येभ्यो दत्तवन्तं घृताहुतिम् । चिच्छेद तं सुनाशीरो ब्राह्मणं मातुराज्ञया

विश्वरूपस्य तनयो विरूपो मत्पिता नृप ।

अहञ्च सुतपा नाम वैरागी काश्यपो द्विजः ॥ १८ ॥

महादेवो मम गुरुर्विद्याज्ञानमनुप्रदः । अभीष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥१९॥
चिन्तयामितत्पदाब्जंनसेवाञ्छास्तिसम्पदि।सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यंराधिकापतेः
तेन दत्तं न गृह्णामि विना तत्सेवनं शुभम् । ब्रह्मत्वममरत्वं वा मन्येऽहं जलविम्बवत् ॥
भक्तिव्यवहितं मिथ्याभ्रममेव तु नश्वरम् । इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा सौरत्वं वा नराधिप
न मन्ये जलरेखेति नृपत्वं केन गण्यते । श्रुत्वा सुयज्ञ यज्ञे तु मुनीनां गमनं नृप ॥२३॥
लालसा विष्णुभक्तिर्मे प्राप्तिहेतुमिहागतः । केवलानुगृहीतस्त्वं न हि शप्तो मयाधुना
समुद्धृतश्च पतितो घोरे निम्ने भवार्णवे । नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः
ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात् । राजन्निर्गम्यतां गेहाद्देहि राज्यं सुताय च ।
पुत्रे न्यस्य प्रियां साध्वीं गच्छ वत्स वनं त्वरा । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तंसर्वमिथ्यैवभूमिप
श्रीकृष्णंभजराधेशंपरमात्मानमीश्वरम् । ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः
आविर्भूतैस्तिरोभूतैः प्राकृतैः प्रकृतेः परम् । ब्रह्मा स्रष्टा हरिः पाता हरः संहारकारकः
दिक्पालाश्च दिगीशाश्च भ्रमन्ति यस्यमायया । यदाज्ञयावाति वायुःसूर्य्योदिनपतिःसदा
निशापतिः शशी शश्वच्छस्यसुस्निग्धकारकः । कालेन मृत्युःसर्वेषां सर्वविश्वेषुभीतवत्
काले वर्षति शक्रश्च दहत्यग्निश्च कालतः । भीतवत् विश्वशास्ता च प्रजासंयमनो यमः
कालः संहरते काले काले सृजति पाति च । स्वदेशे च समुद्रश्च स्वदेशे च वसुन्धरा
स्वदेशे पर्वताश्चैव स्वपातालाःस्वदेशतः । स्वर्लोकाः सप्तराजेन्द्र सप्तद्वीपा वसुन्धरा
शैलसागरसंयुक्ताः पातालाः सप्त एव च । एभिर्लोकैश्चब्रह्माण्डं डिम्बाकारं जलप्लुतम्
सन्त्येव प्रतिब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णु शिवादयः । सुरा नराश्च नागाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः
आपातालाद्ब्रह्मलोक पर्य्यन्तं डिम्बरूपकम् । इदमेवतु ब्रह्माण्डं ब्रह्मणः कृत्रिमं नृप ॥
नाभिपद्मे विराड्विष्णोः क्षुद्रस्य जलशायिनः । स्थितंयथापद्मबीजंकर्णिकायाञ्च पङ्कजे
एवं सोऽपि शयानश्च जलतल्पे सुविस्तृते । ध्यायते स महायोगी प्राकृतः प्रकृतेः परम्

कालभीतश्च कालेशं कृष्णमात्मानमीश्वरम् ।
महाविष्णोर्लोमकूपे साधारः सोऽस्ति विस्तृते ।
लोम्नां कूपेषु प्रत्येकमेवं विश्वानि सन्ति वै ॥ ४० ॥
महाविष्णोर्गात्रलोम्नां ब्रह्माण्डानाञ्च भूमिप ।
संख्यां कर्त्तुं न शक्नोति कृष्णोऽप्यन्यस्य का कथा ॥ ४१ ॥

महाविष्णुः प्राकृतिकःसोऽपिडिम्बोद्भवःसदा । भवेन्कृष्णेच्छयाडिम्बःप्रकृतेर्गर्भसम्भव
सर्वाधारोमहान्विष्णुःकालभीतःसशङ्कितः । कालेशंध्यायतेशश्वत्कृष्णमात्मानमीश्वरम्
एवञ्च सर्वविश्वस्था ब्रह्मविष्णुशिवादयः । महान्विराट्क्षुद्रविराट्सर्वे प्राकृतिकाःसदा
सा सर्वबीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । काले लीना च कालेशे कृष्णे तं ध्यायते सदा
एवं सर्वे कालभीताः प्रकृतिः प्राकृतास्तथा । आविर्भूतास्तिरोभूताः कालेन परमात्मनि
इत्येवं कथितं सर्वं महाज्ञानं सुदुर्लभम् । शिवेन गुरुणा दत्तं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारद-संवादे हरगौरीसंवादे
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

## चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### सुतपःसुयज्ञसंवादवर्णनम् ।

राजोवाच

कुत्राधारो महाविष्णोःसर्वाधारस्य तस्य च । कालभीतस्यकतिचकालमाया मुनीश्वर
क्षुद्रस्य कतिचिन्कालं ब्रह्मणः प्रकृतेस्तथा । मनोरिन्द्रस्य चन्द्रस्यसूर्यस्यायुस्तथैव च
अन्येषाञ्च जनानाञ्च प्राकृतानां परं वयः । वेदोक्तं सुविचार्य्यञ्च यद् वेदविदां वर ॥१॥
विश्वानामूर्ध्वभागे च कश्च वा लोकएव सः । कथयस्व महाभाग सन्देहच्छेदनं कुरु

मुनिरुवाच ।

विश्वानां गोलोकं राजन् विस्तृतञ्च नभःसमम् ।
शश्वन्नित्यं डिम्बरूपं श्रीकृष्णेच्छासमुद्भवम् ॥ ५ ॥

जलेन परिपूर्णञ्च कृष्णस्य मुखविन्दुना । सृष्ट्युन्मुखस्यादिसर्गे परिश्रान्तस्य क्रीड़तः प्रकृत्या सह युक्तस्य कलया निजया नृप । तत्राधारो महाविष्णुर्विश्वाधारस्यविस्तृतः प्रकृतेर्गर्भसंयुक्तडिम्बोद्भूतस्य भूमिप । सुविस्तृते जलाधारे शयानश्च महाविराट् । राधेश्वरस्य कृष्णस्य षोड़शांशः प्रकीर्त्तितः । दूर्वादलश्यामरूपः सस्मितश्च चतुर्भुज घनमालाधरः श्रीमानशोभितः पीतवाससा । ऊर्ध्वे नभसि सद्विष्णोर्नित्यवैकुण्ठमेवच आत्माकाशसमंनित्यंविस्तृतं चन्द्रविम्ववत् । ईश्वरेच्छासमुद्भूतं निर्लक्षञ्च निराश्रयम आकाशवत्सुविस्तारञ्चामूल्यरत्ननिर्मितम् । तत्र नारायणः श्रीमान् घनमाली चतुर्भुजः

लक्ष्मीसरस्वतीगङ्गातुलसीपतिरीश्वरः ।
सुनन्दनन्दकुमुदपार्षदादिभिरावृतः ॥ १३ ॥

सर्वेशः सर्वसिद्धेशो भक्तानुग्रहविग्रहः । श्रीकृष्णश्च द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः ॥ चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् । ऊर्ध्वं वैकुण्ठदेशाच्चपञ्चाशत्कोटियोजनात् गोलोकं वर्त्तुलाकारं वरिष्ठं सर्वलोकतः अमूल्यरत्ननिर्माणैर्मन्दिरैश्च विभूषितम् ॥१६॥ रत्नेन्द्रसारनिर्माणैः स्तम्भसोपानचित्रकैः । मणीन्द्रदर्पणासक्तैः कवाटकलसोज्ज्वलैः । नानाचित्रविचित्रैश्च शिविरैश्च विराजितम् । कोटियोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये शतगुणंतथा ।

विरजासरिदाकीर्णंशतशृङ्गेन वेष्टितम् ॥ १८ ॥

सरिदर्द्धप्रमाणेन दैर्घ्येन विस्तृतेन च । शैलार्द्धपरिमाणेन युक्तं वृन्दावनेन च ॥ १९ ॥ तदर्द्धमाननिर्माणरासमण्डलमण्डितम् सरिच्छैलवनादीनां मध्ये गोलोकमेव च ॥२०॥ यथा पङ्कजमध्ये च कर्णिकारो मनोहरः । तत्र गोगोपगोपीभिर्गोपीशो रासमण्डले ॥ रासेश्वर्या राधिकया संयुक्तः सन्ततं नृप । द्विभुजो मुरलीहस्तः शिशुगोपालरूपधृक् । वह्निशुद्धांशुकाधानो रत्नभूषणभूषितः । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गो रत्नमालाविराजितः ॥ २३॥ रत्नसिंहासनस्थश्च रत्नच्छत्रेण छत्रितः । शश्वत् स प्रियगोपालैः सेवितः श्वेतचामरैः ॥

गोपीभिः गोपिकाभिश्च मालावत्यस्तु नर्तितम् । सम्मितं मानवानां च सुरेशानां च तीर्थिनः
कथितो लोकनिर्माणो यथाशास्त्रं यथागमम् । यथायुगं यथायुगं कालमानं निरूप
पार्श्वे पद्मजनिर्माणं गर्भितं मनुजद्रुमम् ॥ २७ ॥
स्वर्गवासिनः कुर्वन्ति स्वर्गेऽस्मिन् मनुजादयः । यावज्जन्तुर्वै वर्षं मनुकालं युगं तत्र च ।
दण्डकं मुहूर्तं च यामश्चैव मनुर्गुणः । यामाश्चाष्टमितो दिवसः पक्षः पञ्चदश स्मृतः ।
मासो द्वाभ्यां च पक्षाभ्यां वर्षं द्वादशमासकैः । मासेन च नराणां च पितृणामहर्निशम्
कृष्णपक्षे दिनं प्रोक्तं शुक्ले रात्रिः प्रकीर्तिता । वत्सरेण नराणां च देवानां च दिवानिशम्
उत्तरायणे दिनं प्रोक्तं रात्रिश्च दक्षिणायने । युगकर्मानुरूपञ्च नरादीनां वर्षं नृप ॥३१
प्रकृतेः प्राकृतानां च ब्रह्मादीनां निशामय । कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥३२
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैः सावधानं निशामय । चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथायुगम्
तेषां च संध्या संध्यांशौ द्वे सहस्रे प्रकीर्तिते । त्रिचत्वारिंशल्लक्षेण विंशत्सहस्राधिकेन च
चतुर्युगं परिमितं तत्प्रमाणक्रमेण च । सप्तदशलक्षमितमष्टाविंशत् सहस्रकम् ॥ ३४॥
नृमानेन कृतयुगं संख्याविद्भिः प्रकीर्तितम् । द्विषड्लक्षपरिमितं षण्णवतिसहस्रकम् ॥
त्रेतायुगं परिमितं कालविद्भिः प्रकीर्तितम् । अष्टलक्षपरिमितं चतुःषष्टिसहस्रकम् ॥३८
परिमितं द्वापरञ्च प्रोक्तं संख्याविपश्चिता । चतुर्लक्षपरिमितं द्वात्रिंशच्च सहस्रकम् ॥
नृमानाब्दं कलियुगं विदुः कालविपश्चितः ॥ ३६ ॥
यथा सप्त च वाराश्च तिथयः षोडशः स्मृताः । दिवारात्रिश्च पक्षौ द्वौ मासो वर्षञ्च निर्मितम्
यथा भ्रमति सततमेवमेव चतुर्युगम् । यथा युगानि राजेन्द्र तथा मन्वन्तराणि च ॥४१
मन्वन्तरन्तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः । एवं क्रमाद् भ्रमन्त्येव मनवश्च चतुर्दशाः ॥
षष्ठ्यधिकं पञ्चशतं पञ्चविंशत् सहस्रकम् । नरमाणयुगञ्चैव परं मन्वन्तरं स्मृतम् ॥४२
आख्यानञ्च मनूनाञ्च धर्मिष्ठानां नराधिप । यच्छ्रुतं शिववक्त्रेण तन्त्वं मत्तो निशामय
आद्यो मनुर्ब्रह्मपुत्रः शतरूपा पतिव्रता । धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च गरिष्ठो मनुषु प्रभुः ॥ ४४॥
स्वायम्भुवः शम्भुशिष्यो विष्णुव्रतपरायणः । जीवन्मुक्तो महाज्ञानी भवतः प्रपितामहः
[illegible] नर्मदातटे । त्रिलक्षमश्वमेधञ्च त्रिलक्षं नरमेधकम् ॥ ४५ ॥

गोमेधञ्च चतुर्लक्षं विधिवन्महदद्भुतम् । ब्राह्मणानां त्रिकोटिञ्च भोजयामासनित्यशः
पञ्चलक्षगवां मांसैः सुपक्वैर्घृतसंस्कृतैः । चर्व्यचूष्यलेह्यपेयैर्मिष्टद्रव्यैः सुदुर्लभैः ॥४६॥
अमूल्यरत्नलक्षञ्च दशकोटिसुवर्णकम् । स्वर्णशृङ्गयुतं दिव्यं गवां लक्षं सुपूजितम् ॥
वह्निशुद्धञ्च वस्त्रञ्चमुनीन्द्राणाञ्चलक्षकम् । भूमिञ्च सर्वशस्याढ्यांगजेन्द्ररत्नलक्षकम्

त्रिलक्षमश्वरत्नञ्च शातकुम्भविनिर्मितम् ॥ ५१ ॥

सहस्रं रथरत्नञ्च शिविकालक्षमेव च । त्रिकोटिस्वर्णपात्रञ्च सान्नं सजलमीप्सितम्

त्रिकोटिस्वर्णपात्रञ्च कर्पूरादिसुवासितम् ॥ ५२ ॥

ताम्बूलं सुविचित्रञ्च त्रिकोटिस्वर्णतल्पकम् । रत्नेन्द्रसारखचितं रचितं विश्वकर्मणा
वह्निशुद्धांशुकैश्चित्रैः राजितं माल्यजालकैः । नित्यंददौब्राह्मणेभ्यो विष्णुप्रीत्याशिवाज्ञया
संप्राप्य शङ्कराज्ज्ञानं कृष्णमन्त्रंसुदुर्लभम् । संप्राप्य कृष्णदास्यञ्च गोलोकञ्चजगामसः
दृष्ट्वा मृतं स्वपुत्रञ्च ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः । तुष्टाव शङ्करं तुष्टः ससृजे मनुमन्यकम् ॥५६॥

स च स्वयम्भुपुत्रश्च स च स्वायम्भुवो मनुः ।
स्वारोचिषो मनुश्चैव द्वितीयो वह्निनन्दनः ॥ ५७ ॥

राजा वदान्यो धर्मिष्टः स्वायम्भुवसमो महान् । प्रियव्रतसुतावन्यौ द्वौ मनूधर्मिणांवरौ
तौ तृतीयौ चतुर्थौ च वैष्णवौतापसोत्तमौ । तौ च शङ्करशिष्यौ चकृष्णभक्तिपरायणौ
धर्मिष्ठानां वरिष्ठश्च रैवतः पञ्चमो मनुः । षष्ठश्च चाक्षुषो ज्ञेयो विष्णुभक्तिपरायणः ॥
श्राद्धदेवः सूर्यसुतो वैष्णवः सप्तमो मनुः । सावर्णिः सूर्यतनयो वैष्णवोमनुरष्टमः ॥
नवमो दक्षसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः । दशमो ब्रह्मसावर्णिर्ब्रह्मज्ञानविशारदः ॥ ६२ ॥
ततश्च धर्मसावर्णिर्मनुरेकादशः स्मृतः । धर्मिष्ठश्च वरिष्ठश्च वैष्णवानां सदा व्रती ॥६३
ज्ञानी च रुद्रसावर्णिर्मनुश्च द्वादशः स्मृतः । धर्मात्मा देवसावर्णिर्मनुरेवत्रयोदशः ॥६४
चतुर्दशो महाज्ञानी चन्द्रसावर्णिरेव च । यावदायुर्मनूनाञ्चैवेन्द्राणां तावदेव हि ॥६५॥

चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्नं ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
तावती ब्रह्मणो रात्रिः सा च ब्राह्मी निशा नृप ॥६६॥

कालरात्रिश्च सा ज्ञेया वेदेषु परिकीर्त्तिता । ब्रह्मणोवासरे राजन् क्षुद्रकल्पः प्रकीर्त्तितः

एवं सप्तकल्पजीवी मार्कण्डेयो महातपाः । ब्रह्मलोकादधःसर्वलोकादग्धाध्यतत्रवै ॥६८
उत्थितेनैव सहसा शङ्कर्षणमुखाग्निना । चन्द्रार्कब्रह्मपुत्राश्च ब्रह्मलोकं गता ध्रुवम् ॥६९
ब्राह्मीरात्रिव्यतिते तु पुनश्च ससृजे विधिः । तस्यां ब्रह्मनिशायाञ्च क्षुद्रप्रलय उच्यते ॥
देवाश्च मनवश्चैव तत्र दग्धा नरादयः । एवं त्रिंशद्दिवारात्रैर्ब्रह्मणो मास एव च ॥७१॥
वर्षं द्वादशमासैश्च ब्रह्मसम्बन्धि चैव हि । एवं पञ्चदशाब्दे तु गते च ब्रह्मणो नृप ।

दैनंदिनन्तु प्रलयो वेदेषु परिकीर्त्तितः ॥७२॥
मोहरात्रिश्च सा प्रोक्ता वेदविद्भिः पुरातनैः ।
तत्र सर्वे प्रणष्टाश्च चन्द्रार्कादिदिगीश्वराः ॥७३
आदित्या वसवो रुद्रा मन्विन्द्रा मानवादयः ।
ऋषयो मुनयश्चैव गन्धर्वा राक्षसादयः ॥७४॥

मार्कण्डेयो लोमशश्च पेचकश्चिरजीविनः । इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिश्चाकूपारश्चकच्छपः ॥७५
नाड़ीजङ्घो बकश्चैव सर्वे नष्टाश्च तत्रवै । ब्रह्मलोकादधः सर्वे लोका नागालयास्तथा ॥
ब्रह्मलोकं ययुः सर्वे ब्रह्मपुत्रादयस्तथा । गते दैवे दिने ब्रह्मा लोकांश्चससृजे पुनः ॥७७
एवं शताब्दपर्य्यन्तं परमायुश्च ब्रह्मणः । ब्रह्मणश्च निपातेन महाकल्पो भवेन्नृप ॥७८॥
प्रकीर्त्तिता महारात्रिः सा एव च पुरातनैः । ब्रह्मणश्चनिपातेचब्रह्माण्डौघोजलप्लुतः ॥
वेदमाता च सावित्री वेदा धर्म्मादयस्तथा । सर्वे प्रणष्टा मृत्युश्चप्रकृतिश्चशिवं विना ॥
नारायणे प्रलीनाश्च विष्णवा वैष्णवास्तथा । कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता सर्वरुद्रगणैः सह ॥
मृत्युञ्जये महादेवे प्रलीनः स तमोगुणः । ब्रह्मणश्च निपातेन निमेषः प्रकृतेर्भवेत् ॥८२॥

नारायणश्च शम्भोश्च महद्विष्णोश्च निश्चितम् ।
निमेषान्ते पुनः सृष्टिर्भवेत् कृष्णेच्छया नृप ॥८३॥

कृष्णो निमेषरहितो निर्गुणः प्रकृतेः परः । सगुणानां निमेषश्च कालसंख्याविधायिनः ॥
निर्गुणस्य च नित्यस्य चाद्यन्तरहितस्य च । निमेषाणां सहस्रेण प्रकृतेर्दण्ड उच्यते ॥

षड्विंशत्पलका तस्याः पलाश्च प्रकीर्त्तिताः ।
मासर्तुदिवारात्रिर्दिनं द्वादशमासकैः ॥८६॥

एवं गते शताब्दे च श्रीकृष्णे प्रकृतेर्लयः । प्रकृत्याञ्च प्रलीनायां श्रीकृष्णे प्राकृतोलयः ॥

सर्वान् संहृत्य सा चैका महाविष्णोः प्रसूश्च या ।
कृष्णवक्षसि लीना च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥८८॥

सन्तो वदन्ति तां दुर्गां विष्णुमायांसनातनीम् । सर्वशक्तिस्वरूपाञ्चपरांनारायणींसतीम्
बुद्ध्यधिष्ठातृदेवीञ्च कृष्णस्यनिर्गुणात्मिकाम् । यन्मायामोहिताश्चैवब्रह्मविष्णुशिवादयः
वैष्णवास्तांमहालक्ष्मींपरांराधां वदन्ति ते । अर्द्धाङ्गाञ्चमहालक्ष्मीःप्रियानारायणस्य च॥

प्राणाधिष्ठातृदेवीञ्च प्रेम्णा प्राणाधिकां वराम् ।
शश्वत् प्रेममयीं शक्तिं निर्गुणां निर्गुणस्य च ॥६२॥

नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगणान् बहून् । शुद्धसत्वस्वरूपोचकृष्णे लीनश्च निर्गुणे ॥
गोपा गोप्यश्च गावश्च सुरभ्यश्च नराधिप । सर्वे लीनाः प्रकृत्याञ्चप्रकृतिः प्रकृतीश्वरे ॥
महाविष्णौ विलीनाश्च ते सर्वेक्षुद्रविष्णवः । महाविष्णुःप्रकृत्याञ्चसाचैवंपरमात्मनि ॥
प्रकृतिर्योगनिद्रा च श्रीकृष्णनेत्रपद्मयोः । अधिष्ठानञ्चकारैवं माययाचेश्वरेच्छया ॥६६॥

प्रकृतेर्वासरो यावन्मितः कालः प्रकीर्त्तितः ।
तावद्वृन्दावने निद्रा कृष्णस्य परमात्मनः ॥६७॥

अमूल्यरत्नतल्पे च वह्निशुद्धांशुकार्चिते । गन्धचन्दनमाल्याक्तं वायुना सुरभीकृते ॥६८
पुनः प्रजागरे तस्य सर्वसृष्टिर्भवेत् पुनः । एवं सर्वे प्राकृताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना ॥
तद्वन्दनं तत्स्मरणं तस्य ध्यानं तदर्चनम् । कीर्त्तनंतद्गुणानाञ्चमहापातकनाशनम्॥१००
एतत्ते कथितं सर्वंयन्मृत्युञ्जयाख्यानकम् । यथागमंमहाराजकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥

सुयज्ञ उवाच ।

कालाग्निरुद्रो विश्वानांसंहर्त्ताचतमोगुणः । ब्रह्मणोऽन्तेविलीनश्चसत्योमृत्युञ्जयेशिवे॥

शिवो लीनो निर्गुणेचेन् श्रीकृष्णे प्राकृते लये ।
कथं तव गुरोर्नाम मृत्युञ्जय इति श्रुतौ ॥१०३॥
कथं वा मूलप्रकृतिर्महाविष्णोः प्रसूरियम् ।
असंख्यानि च विश्वानि वसन्ति यस्य लोमसु ॥१०४॥

गोगोपीगोपनिकरैः शोभितं परिवेष्टितैः । रत्नेन्द्रसारनिर्माणमन्दिरैः सुमनोहरैः ॥
नानाचित्रविचित्रैश्च शोभितं परिशोभितम् । शतविराद्रुमवनैः कल्पवृक्षसमन्वितैः ॥
पारिजातद्रुमाकीर्णं शोभितं कामधेनुभिः । आकाशस्थं सुविस्तीर्णमनर्घ्यं चन्द्रबिम्बवत् ।

अत्यूर्ध्वमपि वैकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।
शून्याश्रितं निराधारं ध्रुवमीशस्य चेच्छया ॥ १५१ ॥

आत्माकाशसमं नित्यमस्माकञ्च सुदुर्लभम् । अहं नारायणोऽनन्तो ब्रह्मा विष्णुर्महान्विराट् ।
धर्मशुद्धविराट्सङ्घो गङ्गा लक्ष्मीः सरस्वती । स्वयं विष्णुमाया सावित्र्यनुलसी गणेश्वरः ॥
सनत्कुमारः स्कन्दश्च नरनारायणावृषी । कपिलो दक्षिणा यज्ञो ब्रह्मपुत्राश्च योगिनः ॥
पवनो वरुणश्चन्द्रः सूर्यो रुद्रो हुताशनः । कृष्णमन्त्रोपासकाश्च भारतस्थाश्च वैष्णवाः ॥
एभिर्दृष्टश्च गोलोको नान्यैर्दृष्टः कदाचन । निराममेव तत्रैव रत्नसिंहासने स्थितम् ॥
रत्नमालाकिरीटैश्च भूषितं रत्नभूषणैः । सुनिर्मलैः पीतवस्त्रैः वह्निशुद्धैर्विराजितम् ॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं किशोरं गोपरूपिणम् । नवीननीरदश्यामं श्वेतपङ्कजलोचनम् १५८
शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम् । ध्यानासाध्यं दुराराध्यमस्माकञ्च सुदुर्लभम् ॥
प्रियैर्द्वादशगोपालैः सेवितं श्वेतचामरैः । वीक्षितं गोपिकावृन्दैः सस्मितैः सुमनोहरैः ॥
पीडितैः कामबाणैश्च शश्वत् सुस्थिरयौवनैः । वह्निशुद्धांशुकाधानैः रत्नभूषणभूषितैः
रासमण्डलमध्यस्थं श्रीकृष्णञ्च परात्परम् । ददर्श राजा तत्रैव राधया दर्शितन्तदा ॥
स्तुतं चतुर्भिर्वेदैश्च मूर्त्तिमद्भिर्मनोहरैः । रागिणीनाञ्च रागाणामतीव सुमनोहरम् ॥
श्रुतवन्तञ्च सङ्गीतं यन्त्रवक्त्रोत्थितं शिवे । नित्यया च सनातन्या प्रकृत्या च सह त्वया
शश्वत् पूजितपादाब्जं मण्डितं तुलसीदलैः । कस्तूरीकुङ्कुमाक्तैश्च गन्धचन्दनचर्चितैः ॥
दूर्वाभिरक्षताभिश्च पारिजातप्रसूनकैः । निर्मलैर्विरजातोयैर्दत्तार्घ्यैरतिशोभितम् ॥१६७॥
स्वतन्त्रञ्च सर्वकारणकारणम् । सर्वेषाञ्चान्तरात्मानं सर्वेशं सर्वजीवनम् ॥
पूज्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । सर्वसम्पत्स्वरूपञ्च दातारं सर्वसम्पदाम् ॥
सर्वमङ्गलकारणम् । सर्वमङ्गलदं सर्वमङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ॥ १७० ॥

संदृष्ट्वा नृपतिस्त्रस्तोऽवरुह्य रथात् त्वरा । साश्रुनेत्रः पुलकितो मूर्ध्ना च प्रणनाम च
परमात्मा ददौ तस्मै स्वदास्यञ्च शुभाषितम् ।
स्वभक्ति निश्चलां सत्यामस्माकञ्च सुदुर्लभम् ॥ १७२ ॥
राधावरुह्य स्वरथाद्वासकृष्णवक्षसि । गोपीभिः सुप्रियाभिश्चसेविता श्वेतचामरैः ॥
सम्भाषिता श्रीकृष्णेनसस्मितेनचपूजिता । समुत्थितेनसहसा भक्तयाच सम्भ्रमेणच ॥
आदौ राधां समुच्चार्यपश्चात् कृष्णञ्च माधवम् । प्रवदन्तिवरेवेदेषु वेदविद्भिः पुरातनैः॥
विपर्ययं ये वदन्तिपेनिन्दन्ति जगत्प्रसूम् । कृष्णप्राणाधिकां प्रेममयीं शक्तिञ्चराधिकाम्
ते पच्यन्ते कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ । भवन्ति स्त्रीपुत्रहीना रोगिणः शतजन्मसु ॥
इत्येवं कथितं दुर्गे राधिकाख्यानमुत्तमम् । सा त्वं सती भगवती वैष्णवीच सनातनी
नारायणी विष्णुमाया मूलप्रकृतिरीश्वरी । मायया मां पृच्छसि त्वं सर्वज्ञा सर्वरूपिणी
श्रीज्ञातिस्त्वधिदेवी च पराज्ञातिस्वरा वरा। कथितंराधिकाख्यानंकिंभूयःश्रोतुमिच्छसि
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे हरगौरी-
संवादे सुतपः सुयज्ञसंवादे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

## पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### राधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रम् ।

**श्रीपार्वत्युवाच ।**

कृष्णस्य विते मन्त्रे युष्माकमीश्वरस्य च । कथं जग्राहराधाया मन्त्रञ्चवैष्णवोनृपः
विधानञ्च किं ध्यानंकिंस्तोत्रं कवचञ्च किम् । कं मन्त्रञ्चददौ राज्ञेतांपूजापद्धतिवद
**श्रीमहेश्वर उवाच ।**
विप्र के भजामीति प्रश्नं कुर्वति राजनि । श्रीमं प्राप्नोमि गोलोकं कस्याराधनया मुने
पुत्रवन्तं राजेन्द्रमुवाच ब्राह्मणोत्तमः । तत्सेवया च तल्लोकं प्राप्स्यसे यद्जन्मतः ॥

तत्प्राणाधिष्ठातृदेवीं भज राधां परात्पराम् । कृपामयीप्रसादेन शीघ्रं प्राप्नोति त
इत्युक्त्वा राधिकामन्त्रं ददौ तस्मै षडक्षरम् । ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजाया
प्राणायामं भूतशुद्धिं मन्त्रन्यासं तथैव च । कराङ्गन्यासमेवञ्च ध्यानं सर्वसुदुर्ल
स्तोत्रञ्च कवचन्तञ्च शिक्षयामास भक्तितः । राजा तेन क्रमेणैव जजाप परमं
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । कृष्णस्तां पूजयामास पुरा ध्यानेन
श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोच

सुश्रोणीं सुनितम्बाञ्च पक्वबिम्बाधरां वराम् ॥१०

मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहका

वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम् ॥११॥

रत्नकेयूरवलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम् । रत्नकेयूरयुग्मेन विचित्रेण विराजित

सूर्यप्रभाच्छादितेन गण्डस्थलविराजिताम् ॥१२॥

अमूल्यरत्ननिर्माणग्रैवेयकविभूषिताम् । सद्रत्नसारनिर्माणकिरीटमुकुटोज्ज्व

रत्नाङ्गुरीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम् ॥१३॥

बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यशोभितम् । रूपाधिष्ठातृदेवीञ्च गजेन्द्रमन्दगामि

गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः ॥१४॥

कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनबिन्दुना । सिन्दूरबिन्दुनाचारुसीमन्ताधःस्थलोज्ज्व

नित्यं सुपूजितां भक्त्या कृष्णेन परमात्मना ॥१५॥

कृष्णसौभाग्यसंयुक्तां कृष्णप्राणाधिकां वराम् ।

कृष्णप्राणाधिदेवीञ्च निर्गुणाञ्च परात्पराम् ॥१६॥

महाविष्णुविधात्रीञ्च दात्रीञ्च सर्वसम्पदाम् । कृष्णभक्तिप्रदां शान्तां मूलप्रकृतिमीश्व
वैष्णवीं विष्णुमायाञ्च कृष्णप्रेममयीं शुभाम् । रासमण्डलमध्यस्थां रत्नसिंहासनस्थि

रासे रासेश्वरयुतां राधां रासेश्वरीं भजे ॥१७॥

ध्यात्वा पुष्पं मूर्ध्नि दत्त्वा पुनर्ध्यायेच्च तामिमाम् । दत्त्वा पुनः पुनर्ध्यात्वा ...
... वसनं पाद्यमर्घ्यं गन्धानुलेपनम् । धूपं दीपं सुपुष्पञ्च स्नानीयं रत्नभूषणम् ।

नानाप्रकारनैवेद्यं ताम्बूलं वासितं जलम् । मधुपर्कं रत्नतल्पमुपचाराणि षोडश ॥२२॥
प्रत्येकं वेदमन्त्रेण दत्तं भक्त्या च भूभृता । मन्त्रांश्च श्रूयतां दुर्गे वेदोक्तान्सर्वसम्मतान्
रत्नसारविकारञ्च निर्मितं विश्वकर्मणा । वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम्
अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च । वह्निशुद्धं निर्मलञ्च वसनं देवि गृह्यताम् ॥२५॥
सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतीर्थोदकं शुभम् । पादप्रक्षालनार्थञ्च राधे पाद्यञ्च गृह्यताम् ।२६।
दक्षिणावर्त्तशङ्खस्थं सदूर्वापुष्पचन्दनम् । पूतं युक्तं तीर्थतोयैः राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
पार्थिवद्रव्यसंभूतमतीवसुरभीकृतम् । मङ्गलार्हं पवित्रञ्च राधे गन्धं गृहाण मे ॥ २८ ॥
श्रीखण्डचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम् । सुगन्धयुक्तं देवेशि गृह्यतामनुलेपनम् ॥
वृक्षनिर्याससंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम् । ज्वलदग्निशिखाभूतं धूपं देवि गृहाण मे ॥३०॥
अन्धकारभयहरममूल्यरत्नमुज्ज्वलम् । रत्नप्रदीपं शोभाढ्यं गृहाण परमेश्वरि ॥ ३१ ॥
पारिजातप्रसूनञ्च गन्धचन्दनचर्चितम् । अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि ॥ ३२ ॥
सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम् । विष्णुतैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम्
अमूल्यरत्ननिर्माणं केयूरवलयादिकम् । शङ्खं सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम ॥३४॥
कालदेशोद्भवं पक्कफलञ्च लड्डुकादिकम् । परमान्नञ्च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम् ॥
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सर्वभोगाधिकं स्वादु ताम्बूलं देवि गृह्यताम्
अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम् ।
मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि ॥३७॥
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वह्निशुद्धांशुकान्वितम् । पुष्पचन्दनचर्चाढ्यं पर्यङ्कं देवि गृह्यताम्॥
एवं संपूज्य देवीं तां दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम् । यत्नेन पूजयेद्देवीं नायिकाष्टौव्रतेव्रती ॥
प्रायादिक्रमयोगेन दक्षिणावर्त्ततः प्रिये । भक्त्या पञ्चोपचारेणसुप्रियाः परिचारिकाः ॥
मालावतीं पूर्वकोणे वह्निकोणे च माधवीम् । दक्षिणेरत्नमालाञ्चसुशीलांनैर्ऋतेसति ॥
पश्चिमे च शशिकलां पारिजाताञ्च मारुते । पद्मावतीमुत्तरे च ऐशान्यां सुन्दरीं तथा ॥
यूथिकामालतीपद्ममालां दद्यात् व्रते व्रती । परिहारञ्च कुरुते सामवेदोक्तमेव च ॥४३॥
त्वं देवीजगतांमाताविष्णुमायासनातनी । कृष्णप्राणाधिदेवीचकृष्णप्राणाधिकाशुभा ॥

कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी । कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे ॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम । पूजितासि मया सा च या श्रीकृष्णेन पूजिता ॥
कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता । रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने ॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसी कानने तु या । चम्पावती कृष्णसंगे क्रीडाचम्पककानने ॥
चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृङ्गे सतीति च । विरजा दर्पहन्त्री च विरजातटकानने ॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे । भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या च काम्यके वने ॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि । क्षीरोदसिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया ॥
सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी । सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शङ्करवक्षसि ॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि । कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रसूः ॥
कलया तुलसी त्वञ्च गङ्गाभुवनपावनी । लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः ॥
कला कलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः । अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया ॥
देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कला कलया शुभे । कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते ॥
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत् ॥ ५७ ॥
पुराकृतं स्तोत्रमेतत् भक्तिदास्यप्रदं शुभम् । एवं नित्यं पूजयेद् योविष्णुतुल्यःसभारते
जीवन्मुक्तश्च पूतश्च गोलोकं याति निश्चितम् ॥ ५९ ॥
कार्त्तिकी पूर्णिमायाश्च राधां यः पूजयेच्छिवे । एवं क्रमेण प्रत्यब्दं राजसूयफलं लभेत्
परमैश्वर्य्ययुक्तश्च इहलोके स पुण्यवान् । सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम्
आदावेवं क्रमेणैव रासे वृन्दावने वने । स्तुत्वा सा पूजिता राधा श्रीकृष्णेन पुरा सति
संपूजिता द्वितीये च धात्रा एवं क्रमेण च । त्वद्वरेण च संप्राप्य विधाता वेदमातरम्
नारायणो महालक्ष्मीं प्राप संपूज्य भारतीम् । गङ्गाञ्च तुलसीञ्चैव परां भुवनपावनीम्
विष्णुः क्षीरोदशायी च प्राप सिन्धुसुतां तथा । मृतायांदक्षकन्यायांमयाकृष्णाज्ञयापुरा
त्वमेव दुर्गा सम्प्राप्ता पूजिता पुष्करे च सा । अदितिकश्यपःप्रापचन्द्रःसंप्रापरोहिणीम्
कामो रतिश्च संप्राप धर्मो मूर्त्तिं पतिव्रताम् ॥ ६७ ॥
देवाश्च मुनयश्चैव यां संपूज्य पतिव्रताम् । संप्रापुर्यद्वरेणैव धर्मकामार्थमोक्षकम् ॥६८

एवं पूजाविधानञ्च कथितञ्च स्तवं शृणु ॥ ६८ ॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

एकदा मानिनी राधा बभूवादर्शना प्रभोः । संसक्तस्य तुलस्याञ्च गोप्याञ्च तुलसीवने
सा संहृत्य स्वमूर्त्तीश्च कला सर्वाश्च लीलया ॥६९॥
सर्वे बभूवुर्देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ७० ॥
भ्रष्टैश्वर्य्याश्चनिश्रीका भार्य्याहीनाह्युपद्रुताः । तेचसर्वेसमालोच्य श्रीकृष्णंशरणंययुः॥
तेषांस्तोत्रेण सन्तुष्टःस्नात्वा संपूज्यतांशुचिः । तुष्टाव परमात्मासर्वेषां राधिकां सतीम्

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमेव प्रियोऽहन्ते प्रमोदमेव ते मयि । सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनन्ते वरानने ॥ ७२ ॥
हे कृष्ण त्वं मम प्राणा जीवात्मेति च सन्ततम् ।
यद्ब्रूहि नित्यं प्रेम्णा च साम्प्रतन्तद्ध गतं द्रुतम् ॥७४॥
तस्मात् सर्वमलीकन्ते वचनंजगदम्बिके । क्षुरधारञ्च हृदयं स्त्रीजातीनाञ्च सर्वतः ॥७५
अस्माकंवचनंसत्यं यद्ब्रवीमीतितद्ध्रुवम् । पञ्चप्राणाधिदेवीत्वं राधाप्राणाधिकेतिमे ॥
शक्तो न रक्षितुं त्वाञ्च यान्ति प्राणास्त्वया विना ।
विनाधिष्ठातृदेवीञ्च को वा कुत्र च जीवती ॥ ७७ ॥
महाविष्णोश्च माता त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी । सगुणात्वञ्च कलया निर्गुणा स्वयमेवतु ॥
ज्योतीरुपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । भक्तानां रुचिवैचित्र्या नानामूर्त्तिश्च बिभ्रती
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च सतां प्रसूः । पुण्यक्षेत्रे भारतेच सतीत्व पार्वतीतथा॥८०।
तुलसी पुण्यरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । ब्रह्मलोके च सावित्री कलया त्वं वसुन्धरा॥
गोलोकेराधिका त्वञ्चसर्वगोपालकेश्वरी । त्वयाविनाहं निर्जीवोह्यशक्तः सर्वकर्म्मसु॥
शिवःशक्तस्त्वयाशक्त्या शवाकारस्त्वयाविना । वेदकर्त्तास्वयंब्रह्मा वेदमात्रात्वयासह॥
नारायणस्त्वया लक्ष्म्या जगत्पाता जगत्पतिः । फलंददाति यज्ञश्चत्वया दक्षिणया सह
बिभर्त्ति सृष्टिं शेषश्च त्वां कृत्वा मस्तके. ध्रुवम् ।
बिभर्त्ति गङ्गारूपां त्वां मूर्द्धि्न गङ्गाधरः शिवः ॥ ८५ ॥

शक्तिमच्च जगत् सर्वं शवरूपं त्वया विना। वक्ता सर्वस्त्वया वाण्या सूतो मूकस्त्वया विना॥
यथा मृदा घटं कर्त्तुं कुलालः शक्तिमान् सदा। सृष्टिं स्रष्टुं तथाहञ्च प्रकृत्या च त्वया सह॥
त्वया विना जडश्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान्। सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं त्वमागच्छ ममान्तिकम्
वह्निस्त्वं दाहिकाशक्तिर्नाग्निः शक्तस्त्वया विना। शोभास्वरूपा चन्द्रे त्वं त्वां विना न स सुन्दरः

प्रभारूपा हि सूर्ये त्वं त्वां विना न स भानुमान्।

न कामः कामिनीवन्धुस्त्वया रत्या विना प्रिये ॥ ६० ॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तां संप्राप जगत् प्रभुः। देवा बभूवुः सश्रीकाः सभार्याः शक्तिसंयुताः
सस्त्रीकश्च जगत् सर्वं बभूव शैलकन्यके। गोपीपूर्णश्च गोलोको बभूव तत्प्रसादतः॥
राजा जगाम गोलोकमिति स्तुत्वा हरिप्रियाम्। श्रीकृष्णेनकृतं स्तोत्रं राधाया यः पठेन्नरः॥
कृष्णभक्तिश्च तद्दास्यं स प्राप्नोति न संशयः। स्त्रीविच्छेदे यः शृणोति मासमेकमिदं शुचिः॥
अचिराल्लभते भार्य्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम्। भार्य्याहीनो भाग्यहीनो वर्षमेकं शृणोति यः
अचिराल्लभते भार्य्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम्। पुरा मया च त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेन पार्वति॥
मृतायां दक्षकन्यायामाज्ञया परमात्मनः। स्तोत्रेणानेन संप्राप्ता सावित्री ब्रह्मणा पुरा॥
पुरा दुर्वाससः शापान्निर्श्रीके देवतागणे। स्तोत्रेणानेन देवैस्तैः संप्राप्ता श्रीः सुदुर्लभा॥
शृणोति वर्षमेकञ्च पुत्रार्थी लभते सुतम्। महाव्याधिरोगमुक्तो भवेत् स्तोत्रप्रसादतः॥
कार्त्तिकीपूर्णिमायान्तु तां संपूज्य पठेत्तु यः। अचलां श्रियमाप्नोति राजसूयफलं लभेत्॥

नारी शृणोति चेत् स्तोत्रं स्वामिसौभाग्यतां लभेत्।

भक्त्या शृणोति यः स्तोत्रं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

नित्यं पठति यो भक्त्या राधां संपूज्य भक्तितः। स प्रयाति च गोलोकं निर्मुक्तो भवबन्धनात्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे हरगौरीसंवादे श्रीराधिकोपाख्याने राधापूजास्तोत्रं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

# षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

## राधाकवचवर्णनम् ।

श्रीपार्वत्युवाच ।

पूजाविधानं स्तोत्रञ्च श्रुतमत्यद्भुतं मया । अधुना कवचं ब्रूहि श्रोष्यामि त्वत्प्रसादतः

श्रीमहेश्वर उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि हे दुर्गे कवचं परमाद्भुतम् । पुरा मह्यं निगदितं गोलोके परमात्मना ॥२
अतिगुह्यं परं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा संप्राप वेदमातरम् ॥
यद्धृत्वाहं तव स्वामी सर्वमातुः सुरेश्वरि । नारायणश्च यद्धृत्वा महालक्ष्मीमवापसः
यद्धृत्वा परमात्मा च निर्गुणः प्रकृतेः परः । बभूव शक्तिमान्कृष्णः सृष्टिंस्रष्टुं पुराविभुः
विष्णुःपाता च यद्धृत्वा संप्राप सिन्धुकन्यकाम् ।
शेषो बिभर्त्ति ब्रह्माण्डं मूर्द्धिन सर्षपवद् यतः ॥६ ॥

लोमकूपेषु प्रत्येकं ब्रह्माण्डानिमहान् विराट् । बिभर्त्ति धारणाद्यस्य सर्वाधारोबभूवसः
यद्धारणाच्च पठनाद्धर्मः साक्षी च सर्वतः । यद्धारणात् कुबेरश्च धनाध्यक्षश्च भारते ॥
इन्द्रः सुराणामीशश्च पठनाद्धारणाद्यतः । नृपाणां मनुरीशश्च पठनाद्धारणाद् यतः ॥६॥
श्रीमांश्चन्द्रश्च यद्धृत्वा राजसूयं चकार सः । स्वयं सूर्य्यस्त्रिलोकेशः पठनाद्धारणाद्यतः
यद्धृत्वा पठनादग्निर्जगत्पूतं करोति च । यद्धृत्वा वाति वातोऽयं पुनाति भुवनत्रयम् ॥
यद्धृत्वा च स्वतन्त्रो हि मृत्युश्चरतिजन्तुषु । त्रिःसप्तकृत्वा निःक्षत्रांचकारत्वचसुन्धराम्
जामदग्न्यश्च रामश्च पठनाद्धारणाद् यतः । पपौ समुद्रं यद्धृत्वा पठनात् कुम्भसम्भवः ।
सनत्कुमारो भगवान् यद्धृत्वाज्ञानिनां गुरुः । जीवन्मुक्तौ च सिद्धौचनरनारायणावृषी
यद्धृत्वापठनात् सिद्धोवशिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः । सिद्धेशःकपिलो यस्माद्यस्माद्दक्षःप्रजापतिः
यस्माद्भृगुश्च मां द्वेष्टि कूर्म्मः शेषंबिभर्त्ति च । सर्वाधारो यतो वायुर्वरुणःपवनोयतः
ईशानो दिक्पतिश्चैव यमः शास्ता यतः शिवे ।

कालः कालाग्नि रुद्रश्च संहर्ता जगतां यतः ॥१७॥

यद्धृत्वा गौतमः सिद्धः कश्यपश्च प्रजापतिः । यद्धृत्वेममुं प्राप सुकीर्तिमुज्ज्वल

पुरा स्वजायासिद्धोऽपि दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ॥१८॥

संप्राप रामः सीतां च रावणेन हृतां पुरा ॥१९॥

पुरा नलश्च संप्राप दमयन्तीं यतः सतीम् । शङ्खचूडो महावीरो दैत्यानामीश्वरो य
वृषो वहति मां दुर्गां यतो हि गरुडो हरिम् । एवं संप्राप संसिद्धिं सिद्धानन्तमनन्तमु
यद्धृत्वा च महालक्ष्मीः प्रदात्री सर्वसम्पदाम् । सरस्वती सतां श्रेष्ठा यतः क्रीडावती
सावित्री वेदमाता च यतः सिद्धिमवाप्नुयात् । सिन्धुकन्यामर्त्यलक्ष्मीर्यतो विष्णुमवाप
यद्धृत्वा तुलसी पूता गङ्गा भुवनपावनी । यद्धृत्वा सर्वशस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्ध
यद्धृत्वा मनसा देवी सिद्धा च विश्वपूजिता । यद्धृत्वा देवमाता च विष्णुं पुत्रमवाप
पतिव्रता च यद्धृत्वा लोपामुद्राप्यरुन्धती । लेभे च कपिलं पुत्रं देवहूती यतः सती
प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ प्राप च तत्प्रसूः । न्यनमातापि संप्राप त्वां देवीं गिरिजा
एवं सर्वे सिद्धगणाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः । श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः

ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री देवी रासेश्वरी स्वयम् ।

श्रीकृष्णभक्तिसंप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥२६॥

शिष्याय कृष्णभक्ताय ब्राह्मणाय प्रकाशयेत् । शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुया
राज्यं देयं शिरो देयं न देयं कवचं प्रिये । कण्ठे धृतमिदं भक्त्या कृष्णेन परमात्मना
मया दृष्टञ्च गोलोके ब्रह्मणा विष्णुना पुरा । ओं राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव
कृष्णेनोपासितो मन्त्रः कल्पवृक्षः शिरोऽवतु । ओं ह्रीं श्रीं राधिकाङेन्तं वह्निजायान्तमेव
कपालं नेत्रयुग्मञ्च श्रोत्रयुग्मं सदाऽवतु । ओं रां ह्रीं श्रीं राधिकेति ङेन्तं वह्निजायान्तमेव
मस्तकं केशसंघांश्च मन्त्रराजः सदाऽवतु । ओं रां राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव
सर्वसिद्धिप्रदः पातु कपोलं नासिकां मुखम् । क्लीं श्रीं कृष्णप्रियाङेन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम्
ओं रां रासेश्वरीङेन्तं स्कन्धं पातु नमोऽन्तकम् । ओं रां रासविलासिन्यै पृष्ठं पातु सदाऽवतु
वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु । तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा पातु नितम्बकम्

ण्णप्राणाधिकाऽन्ते स्वाहान्तं प्रणवादिकम् । पादयुग्मञ्च सर्वाङ्गी सन्ततं पातुसर्वतः
धा रक्षतु प्राच्याञ्च वह्नौ कृष्णप्रियाऽवतु । दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु
श्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता । उत्तरे सन्ततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
र्वेश्वरी सदैशयानां पातु मां सर्वपूजिता । जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणेतथा
महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु सन्ततम् । कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् ।
यस्मै कस्मैनदातव्यं गूढाद् गूढतरं परम् । तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यंन कस्यचित्
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणेवाहौ धृत्वा विष्णुसमोभवेत्
शतलक्षजपेनैव सिद्धञ्च कवचं भवेत् । यदि स्यात् सिद्धकवचो न दग्धो वह्निनाभवेत्
एतस्मात्कवचाद् दुर्गे राजादुर्योधनःपुरा । विशारदोजलस्तम्भेवह्निस्तम्भेचनिश्चितम्
मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तञ्च पुष्करे । सूर्यपर्वणि मेरौ च स सान्दीपनये ददौ ॥

घलाय तेन दत्तञ्च ददौ दुर्योधनाय सः ।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥४६॥

नित्यं पठति भक्तयेदं तन्मन्त्रोपासकश्चयः । विष्णुतुल्योभवेन्नित्यंराजसूयफलंलभेत् ॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत् फलम् । सर्वव्रतोपवासे चपृथिव्याश्चप्रदक्षिणे॥५१
सर्वयज्ञेषु दीक्षायां नित्यञ्च सत्यरक्षणे । नित्यं श्रीकृष्णसेवायांकृष्णनैवेद्यभक्षणे ॥५२
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलञ्च लभेन्नरः । तत्फलं लभते नूनं पठनात् कवचस्य च ॥
राजद्वारे श्मशाने च सिंहव्याघ्रान्विते वने । दावाग्नौ संकटेचैव दस्युचौरान्विते भये ॥
कारागारे विपद्ग्रस्ते घोरेचदृढबन्धने । व्याधियुक्तोभवेन्मुक्तोधारणात्कवचस्यच ॥
इत्येतत्कथितं दुर्गे तवैवेदं महेश्वरि । त्वमेव सर्वरूपा मां माया पृच्छसि मायया॥५६

श्रीनारायण उवाच ।

इत्युक्त्वाराधिकाख्यानंस्मारंस्मारञ्चमाधवम् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गःसाश्रुनेत्रोबभूवसः॥
न कृष्णसदृशो देवो न गंगासदृशीसरित् । नपुष्करात्परंतीर्थंनाश्रमोब्राह्मणात् परः ॥
परमाणु परं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान् । नभःपरञ्चविस्तीर्णंयथानास्त्येवनारद ॥
यथा न वैष्णवात् ज्ञानी योगीन्द्रः शङ्करात् परः ।

कामक्रोधलोभमोहा जितास्तेनैव नारद ॥६०॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत् कृष्णध्यानरतः शिवः ।
यथा कृष्णस्तथा शम्भुर्न भेदो माधवेशयोः ॥६१॥
यथा शम्भुर्वैष्णवेषु यथा देवेषु माधवः । तथेदं कवचं वत्स कवचेषु प्रशस्तकम् ।
शिवेति मंगलार्थश्च वकारो दातृवाचकः । मंगलानां प्रदाता यः स शिवः परिकीर्ति
नराणां सततं विश्वे शं कल्याणं करोति यः । कल्याणंमोक्षवचनंसएवशङ्करःस्मृ
ब्रह्मादीनां सुराणाञ्च मुनीनां वेदवादिनाम् । तेषाञ्च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तित
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी । तस्याः देव पूजितश्च महादेवः स च स्मृ
विश्वस्थानाञ्च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम् । महेश्वरञ्च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिण
हे ब्रह्मपुत्र धन्योऽसि यद्गुरुश्च महेश्वरः ।
श्रीकृष्णभक्तिदाता यो भवान् पृच्छति माञ्च किम् ॥६८॥
इति ब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे प्रकृतिखण्डे राधिकोपाख्यानं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

## सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

### दुर्गोपाख्यानम् ।

नारद उवाच ।

सर्वाख्यानं श्रुतं ब्रह्मन्नतीव परमाद्भुतम् । अधुना श्रोतुमिच्छामिदुर्गोपाख्यानमुत्तमम्
दुर्गा नारायणीशाना विष्णुमायाशिवासती । नित्यासत्याभगवतीसर्वाणीसर्वमंगला
अम्बिका वैष्णवी गौरी पार्वतीचसनातनी । नामानिकौथमोक्तानिसर्वेषांशुभदानिच
अर्थं षोडशनाम्नां च सर्वेषामीप्सितं वरम् । ब्रूहि वेदविदां श्रेष्ठ वेदोक्तंसर्वसम्मतम्
या पूजिता सादौ द्वितीये केन वा पुरा । तृतीये वा चतुर्थे वा केनसर्वत्रपूजिता

नारायण उवाच ।

अथ षोड़शनाम्नां च विष्णुर्वेदे चकारसः । पुनःपृच्छसिज्ञात्वात्वंकथयामियथागमम् ॥
दुर्गो-दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धेचकर्मणि । शोके दुःखे च नरके यमदण्डेच जन्मनि ॥
महाभयेऽतिरोगेचाप्याशब्दोहन्तृवाचकः । एतान्हन्त्येवयादेवीसादुर्गा परिकीर्तिता ॥
यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमा गुणैः । शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता ॥
ईशानः सर्वसिद्धयर्थेचाशब्दोदातृवाचकः । सर्वसिद्धिप्रदात्रीयासापीशानाप्रकीर्तिता ॥

सृष्टा माया पुरा सृष्टौ विष्णुना परमात्मना ।
मोहितं मायया विश्वं विष्णुमाया प्रकीर्त्तिता ॥११॥
शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिवप्रिया ।
प्रिये दातरि चा शब्दो शिवा तेन प्रकीर्त्तिता ॥१२॥

सद्बुद्धयधिष्ठातृदेवी विद्यमाना युगे युगे । पतिव्रतासुशीलाचसासतीपरिकीर्त्तिता ॥
यथा नित्योहि भगवान् नित्या भगवती तथा । स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृतेलये ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैवकृत्रिमम् । दुर्गासत्यस्वरूपासाप्रकृतिर्भगवान्यथा ॥
सिद्धैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे युगे । सिद्धादिकेभगोज्ञेयस्तेनभगवतीस्मृता ॥
सर्वान्मोक्षंप्रापयतिजन्ममृत्युजरादिकम् । चराचरांश्चविश्वस्थान्सर्वाणीतेनकीर्त्तिता ॥
मंगलं मोक्षवचनं चा शब्दोदातृवाचकः । सर्वान्मोक्षान्याददातिसाएव सर्वमंगला ॥
हर्षे सम्पदि कल्याणे मंगलं परिकीर्त्तितम् । तान् ददाति या देवीसाएव सर्वमंगला ॥
अम्बेति मातृवचनो वन्दने पूजने सदा । पूजिता वन्दिता माता जगतांतेन साम्बिका ॥
विष्णुभक्ताविष्णुरूपाविष्णोःशक्तिस्वरूपिणी । सृष्टौचविष्णुनासृष्टावैष्णवीतेनकीर्त्तिता

गौरः पीते च निर्लिप्ते परे ब्रह्मणि निर्मले ।
तस्यात्मनः शक्तिरियं गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२२॥
गुरुः शम्भुश्च सर्वेषां तस्य शक्तिः प्रिया सती ।
गुरुः कृष्णश्च तन्माया गौरी तेन प्रकीर्त्तिता ॥२३॥

तिथिभेदे सर्वभेदे कल्पभेदेप्रभेदतः । ख्यातौ तेषु च विख्यातापार्वतीतेन कीर्त्तिता ॥२४॥

निषेव्य प्रकृतिं जन्मसहस्रं कामसागरे । तपःफलेन त्वां प्राप वृहच्छ्रोणि वृहस्पतिः
अहो तपस्विना सार्द्धमविदग्धेन वेधसा । योजिता त्वं रसवतीशश्वत्कामातुरावरा
किंवा सुखञ्च विज्ञातमविज्ञेषु समागमे । विदग्धाया विदग्धेन संगमः सुखसागरः

कामेन कामिनी त्वञ्च दग्धासि व्यर्थमीश्वरि ।
कर्मणोरात्मदोषाद्वा को जानाति मनस्त्रियाः ॥१८॥

दिने दिने वृथा याति दुर्लभं नवयौवनम् । नवीनयौवनस्थाया वृद्धेन स्वामिना तव
शश्वत्तपस्यायुक्तश्चसङ्गणमात्मनीप्सितम् । स्वप्नेजागरणेवापिध्यायतेचवृहस्पतिः

सर्वकामरसज्ञा त्वं निष्कामं काममीप्सितम् ।
कामुकी ध्यायते शश्वद्यूना शृंगारमात्मनि ॥२१॥
अन्यञ्च त्वन्मनः कामोभिन्नं त्वद्भर्त्तुरीप्सितम् ।
का प्रीतिः संगमे कान्ते द्वयोर्विषयभिन्नयोः ॥२२॥

वासन्तीपुष्पतल्पे च गन्धचन्दनचर्चिते । वसन्ते मां गृहीत्वा च मोदस्व माधवीवने
निर्जने चन्दनवने सुगन्धिपुष्पचर्चिते । भवती युवती भाग्यवती तत्रैव मोदताम् ॥२४
चन्दने चम्पकवने शीतचम्पकवायुना । रम्ये चम्पकतल्पे च क्रीड़ां कुरु मया सह ॥२५
इत्युक्त्वा मदनोन्मत्तो मदनाधिकसुन्दरः । पपात चरणे देव्या मन्दो मन्दाकिनीतटे
निरुद्धमार्गा चन्द्रेण शुष्ककण्ठौष्ठतालुका । अभीतोवाच कोपेनर क्तपङ्कजलोचना॥२

तारोवाच ।

धिक् त्वां चन्द्र तृणं मन्ये परस्त्रीलम्पटं शठम् ।
अत्रेरभाग्यात् त्वं पुत्रो व्यर्थन्ते जन्म जीवनम् ॥२८॥

मरे कृत्वा राजसूयमात्मानं मन्यसे पली । बभूव पुण्यं ते व्यर्थं विप्रस्त्रीपुष्पमनः ।
यस्य चित्तं परस्त्रीपुसोऽशुचिःसर्वकर्मसु । नकर्मफलभाक्पापीनिन्द्योविश्वेषुसर्वतः ।
हंसिचेन्मेसतीत्वञ्चत्वस्मभस्मोभविष्यसि । अत्युष्क्रितानिपतनंप्राप्नोतीतिश्रुतौश्रुतम् ।
[illegible] दर्पहा कृष्णो दर्पन्ते निहनिष्यति । त्यजमांमातरं वत्स यदि ते श्री भविष्यति
[illegible] । वचतारसाक्षिणंधर्मंसूर्यंवायुंहुताशनम् ।

ह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम् । दिनंरात्रिञ्चसन्ध्याञ्चसर्वंसुरगणंमुने ॥३४॥
ारकावचनं श्रुत्वा न भीतः स चुकोपह । करे धृत्वा रथेनूर्णंस्थापयामाससुन्दरीम् ॥
थञ्च चालयामास मनोयायी मनोहरम् । मनोहरां गृहीत्वा तां स च रेमे मनोहरम्
वस्यन्दके सुरवने चन्दने पुष्पभद्रके । पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने ॥३७॥
सुगन्धिपुष्पतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना । निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनचर्चिते ॥३८
शैले शैले नदे नद्यां शृंगारं कुर्वतस्तयोः । गतं वर्षशतं ह्यांन्मुहूर्त्तमिव नारद ॥३६॥
बभूव शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः । तेजस्विनि तथा शुक्रेतेजाञ्चज्वलिनां गुरौ ॥
अभयञ्च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दनः । गुरुं जहास देवानां सुविपक्षं बृहस्पतिम् ॥
सभायां जहसुर्हृष्टा बलिनो दितिनन्दनाः । अभयञ्च ददुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने ॥
सती सत्वीत्व ध्वंसेन पापेन चन्द्रमण्डले । बभूव शशरूपञ्च कलङ्कं निर्मले मन्दम् ॥
उवाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदाम्वरः । हितं तथ्यं वेदयुक्तं परिमाणसुखावहम् ॥४४

शुक्र उवाच ।

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रेर्भगवतः सुतः । दुर्नीतं कर्म ते पुत्र नीचवत्र यशस्करम् ॥
गजसूय पुण्यफले निर्मलेकीर्त्तिमण्डले । सुधाराशौ सुराबिन्दुरूपमङ्कमुपार्जितम् ॥४६
त्यज देव गुरोः पत्नीं प्रसूमिव महासतीम् । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य ब्राह्मणानां बृहस्पतेः ।
शम्भोः सुराणामीशस्य गुरु पुत्रस्य ब्रह्मणः । पौत्रस्याङ्गिरस शश्वज्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा
शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। इति सद्वंशजातानां स्वभावश्चसतामपि
स शत्रुर्मे सुरगुरुः परो विश्वे निशाकर । तथापि सहजाख्यानं वर्णितं धर्मसंसदि ॥
यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः ॥५०॥

यतोधर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः । गौरेकं पश्च च व्याघ्री सिंहासनसमुद्भवे
दिसकाः प्रलयं यान्ति धर्मोरक्षतिधार्मिकम् । देवाश्च गुरवो विप्राः शक्तायन्नपरिरक्षितुम्
तथापि न हि रक्षन्ति धर्मघ्नं पापिनं जनम् । कुलटा विप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः ॥
ब्रह्महत्या षोड़शांशशतकञ्च भवेद्ध्रुवम् । तासामुपस्थितानाञ्च गमने तच्चतुर्थकम् ॥५४
विप्रपत्नी सतीनाञ्च गमनेन बलेन चेत् । ब्रह्महत्याशतं पापं भवेदेव श्रुतौ श्रुतम् ॥५५॥

निर्वेच्य प्रकृतिं जन्मसहस्रं कामसागरं । तपः फलेन त्वां प्राप बृहत्श्रोणि बृहस्पति
अहो नराधिना सार्द्धमविदग्धेन वेधसा । योजिता त्वं रसवतीशश्वत्कामातुरावा
किया सुरज्ञ विज्ञातमविज्ञेषु समागमे । विदग्धाया विदग्धेन संगमः सुखसागरः

कामेन कामिनी त्वञ्च दग्धासि स्वधर्मादपरि ।
कर्मभोगन्मदोवाढा को जानाति मनस्त्रियाः ॥१८॥

दिने दिने वृथा याति दुर्लभं नवयौवनम् । नवीनयौवनस्थाया वृद्धेन स्वामिना [illegible]
[illegible] । स्वप्नेऽजागरेवापि ध्यायते च बृहस्पति

सर्वकामरसज्ञा त्वं निष्कामं काममीप्सितम् ।
कामुकी ध्यायते शश्वद्गुणा शृंगारमात्मनि ॥२१॥
अन्यार त्वन्मनः कामोऽभिशं त्वद्भर्तुरीप्सितम् ।
का प्रीतिः संगमे कान्ते द्वयोर्विपरीतयोः ॥२२॥

[illegible] । वसन्ते मां गृहीत्वा च मोदस्व माधवीवने ॥
निर्जने नन्दनवने सुगन्धिपुष्पवर्जिते । मधुनी सुधनी माधवनी तत्रैव मोदनम् ॥२४॥
[illegible] । [illegible] कुरु मया सह ॥२५॥
[illegible] सुन्दरः । [illegible] मन्दाकिनीतटे ॥
[illegible] । [illegible]

तारोवाच ।

[illegible] ।
[illegible] ॥२८॥

[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible] ॥

ब्रह्माणं परमात्मानमाकाशं पवनं धराम् । दिनंरात्रिञ्चसन्ध्याञ्चसर्वंसुराणंमुने ॥३५।
तारकावचनं श्रुत्वा न भीतः स चुकोपह । करे धृत्वा रथेनूर्णंस्थापयामाससुन्दरीम् ॥
रथञ्च चालयामास मनोयायी मनोहरम् । मनोहरां गृहीत्वा तां स च रेमे मनोहरम्
विस्पन्दके सुरघने चन्दने पुष्पभद्रके । पुष्करे च नदीतीरे पुष्पिते पुष्पकानने ॥३७॥
सुगन्धिपुष्पतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना । निर्जने मलयद्रोण्यां स्निग्धचन्दनचर्चिते ॥३८
शैले शैले नदे नद्यां शृंगारं कुर्वतस्तयोः । गतं वर्षशतं हर्षान्मुहूर्त्तमिव नारद ॥३९॥
वभूव शरणापन्नो भीतो दैत्येषु चन्द्रमाः । तेजस्विनि तथा शुक्रेतेपाञ्चवलितां गुरौ ॥
अभयञ्च ददौ तस्मै कृपया भृगुनन्दनः । गुरुं जहास देवानां सुविपक्षं वृहस्पतिम् ॥
सभायां जहसुर्हृष्टा वलिनो दितिनन्दनाः । अभयञ्च ददुस्तस्मै भीताय च कलङ्किने ॥
सती सत्वीत्व ध्वंसेन पापेन चन्द्रमण्डले । वभूव शशरूपञ्च कलङ्कं निर्मले मलम् ॥
उवाच तं महाभीतं शुक्रो वेदविदाम्वरः । हितं तथ्यं वेदयुक्तं परिमाणसुखावहम् ॥४४

शुक्र उवाच ।

त्वमहो ब्रह्मणः पौत्रोऽप्यत्रेर्भगवतः सुतः । दुर्नीतं कर्म ते पुत्र नीचवच्च यशस्करम् ॥
राजसूय पुण्यफले निर्मलेकीर्त्तिमण्डले । सुधाराशौ सुराविन्दुरूपमङ्कमुपार्जितम् ॥४६
त्यज देव गुरोः पत्नीं प्रसूमिव महासतीम् । धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य व्राह्मणानां वृहस्पतेः ।
शम्भोः सुराणामीशस्य गुरु पुत्रस्य ब्रह्मणः । पौत्रस्याङ्गिरस शश्वज्ज्वलतो ब्रह्मतेजसा
शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि। इति सद्वंशजातानां स्वभावश्चसतामपि
स शत्रुर्मे सुरगुरुः परो विश्वे निशाकर । तथापि सद्व्याख्यानं वर्णितं धर्मसंसदि ॥
यत्र लोकाश्च धर्मिष्ठास्तत्र धर्मः सनातनः ॥५०॥

यतोधर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः । गौरेकं पश्च च व्याघ्री सिंहीसत्तप्रसूयते
हिंसकाः प्रलयं यान्ति धर्मोरक्षतिधार्मिकम् । देवाश्च गुरवो विप्राःशक्तायद्यपिरक्षितुम्
तथापि न हि रक्षन्ति धर्मघ्नं पापिनं जनम् । कुलटा विप्रपत्नीनां गमने सुरविप्रयोः ॥
ब्रह्महत्या षोड़शांशपातकञ्च भवेद्ध्रुवम् । तासामुपस्थितानाञ्च गमने तच्चतुर्थकम् ॥५४
विप्रपत्नी सतीनाञ्च गमनेन वलेन चेत् । ब्रह्महत्याशतं पापं भवेदेव श्रुतौ श्रुतम् ॥५५॥

धर्म्मेश्वर महाभाग ब्राह्मणीं त्यज साम्प्रतम् । कृत्वानुतापं पापाच्च निवृत्तिस्तु महाफल
उपायेन च ते पापं दूरीभूतं करोम्यहम् । शरणागतस्य भीतस्य मयि देवस्य धर्मतः
शस्त्रहीनञ्च भीतञ्च दीनञ्च शरणार्थिनम् । यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाके वसेद्ध्रुवः
राजसूयशतानाञ्च रक्षिता लभते फलम् । परमैश्वर्य्ययुक्तश्च धर्मेण स भवेदिह ॥५६
इत्युक्त्वा स दैत्यगुरुःस्वर्गे मन्दाकिनीतटे । स्नात्वा तं स्नापयामासविष्णुपूजाञ्चकारस
विष्णुपादोदकं पुण्यं तन्नैवेद्यं शुभप्रदम् । गङ्गोदकञ्च पुण्यञ्च भोजयामास चन्द्रकम्।
क्रोड़े कृत्वा तु तं भीतं लज्जितं पापकर्म्मणा । कुशाहस्त इत्युवाच स्मारंस्मारं हरिं मुं

शुक्र उवाच ।

यद्यस्ति मे तपः सत्यं सत्यं पूजाफलं हरेः । सत्यं व्रतफलञ्चैव सत्यं सत्यवचःफल
तीर्थस्नानफलं सत्यं सत्यं दानफलं यदि । उपवासफलं सत्यं पापान्मुक्तो भवान् भवे
त्रिसन्ध्याहीनं विप्रञ्च विष्णुपूजाविहीनकम् । तं गच्छतु महाघोरं चन्द्रपापं सुदारुणं
स्वभार्य्यां वञ्चनं कृत्वा यः प्रयाति परस्त्रियम् । स यातु नरकं घोरंचन्द्रपापेनपातकं

वाचा वा ताड़येत् कान्तं दुःशीला दुर्मुखा च या ।

सा युगं चन्द्रपापेन यातु लालामुखं ध्रुवम् ॥ ६७ ॥

अनैवेद्यं वृथान्नञ्च यश्च भुङ्क्ते हरेर्द्विजः । स यातु कालसूत्रञ्च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् ।६८
अम्बुवाच्यां भूखननं करोति यो नराधमः । चन्द्रपापात् युगशतं कालसूत्रं स गच्छ
स्वकान्तं वञ्चनं कृत्वा या याति परपूरुषम् । सा यातुवह्निकुण्डञ्च चन्द्रपापाच्चतुर्युग
कीर्त्तिं करोति रजसा परकीर्त्तिं विलुप्य च । स युगं चन्द्रपापेन कुम्भीपाकञ्चगच्छ
पितरं मातरं भार्य्यां यो न पुष्णाति पातकी । स्वयुगं चन्द्रपापेन यातुचाण्डालतांध्रुव
कुलटान्नमवीरान्नं ऋतुस्नातान्नमेव च । योऽश्नाति चन्द्रपापञ्च तं यातु पापिनं ध्रुव
स यातु तेन पापेनकुम्भीपाकंचतुर्युगम् । तस्माद्दुर्लभ्यंचाण्डाली योनिमाप्नोतिपातकं

दिवसे यो ग्राम्यधर्मं महापापी करोति च ।

यो गच्छेत् कामतः कामी गुर्विणीं वा रजस्वलाम् ॥७५॥

तं यातु चन्द्रपापञ्च महाघोरञ्च पापिनम् । स यातु तेन पापेन कालसूत्रं चतुर्युगम

मुखंश्रोणींस्तनञ्चापि योपश्यतिपरस्त्रियाः । कामतः कामदग्धश्च तं यातुचन्द्रकल्मषम्
स यातु लालाभक्ष्यञ्च चन्द्रपापाच्चतुर्युगम् । तस्मादुत्तीर्य्यभवतुचाण्डालान्धोनपुंसकः
कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्त्यां चतुर्दश्यष्टमीषु च । मांसं मसूरं लकुचं यश्चभुङ्क्ते रवेर्दिने ॥७६॥
कुरुते ग्राम्यधर्मश्च तं यातु चन्द्रकिल्विषम् । चतुर्युगं कालसूत्रं तेन पापेन गच्छतु ॥
तस्मादुत्तीर्य्य चाण्डालीं योनिमाप्नोति पातकी । सप्तजन्ममहारोगी दरिद्रः कुब्जएवच
एकादश्याञ्च यो भुङ्क्ते कृष्णजन्माष्टमीदिने । शिवरात्रौ महापापीतंयातु चन्द्रपातकम्
स यातु कुम्भीपाकञ्च यावदिन्द्राश्चतुर्दश । तेन पापेनप्राप्नोतु चाण्डालीं योनिमेव च ।
ताम्रस्थं दुग्धमाध्वीकमुच्छिष्टे घृतमेव च । नारिकेलोदकं कांस्ये दुग्धं स लवणं तथा
पीतशेषजलञ्चैव भक्षावशेषमोदनम् । ओदनमसकृद् भुङ्क्ते सूर्य्येनास्तं गते द्विजः ॥
तं यातु चन्द्रपापश्च दुर्निवारश्च दारुणम् । स यातु तेन पापेन चान्धकूपंचतुर्युगम् ।८६
स्वकन्याविक्रयी विप्रो देवलो वृषवाहकः । शूद्राणां शवदाही च तेषाञ्च सूपकारकः ॥
अश्वत्थतरुघाती च विष्णुर्वैष्णव निन्दकः । तं यातु चन्द्रपापश्च दारुणं पापिनं भृशम्

स यातु तस्मात् पापाच्च तप्तशूर्मीञ्च पातकी ।
शश्वद्दग्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८९ ॥

तस्मादुत्तीर्य्यचाण्डालींयोनिंप्राप्नोतिपातकी । सप्तजन्म स चाण्डालोवृषश्चजन्मपञ्चच
गर्दभो जन्मशतकं शूकरो जन्मसप्त च । तीर्थध्वाङ्क्षो जन्मसप्त विट्कृमिर्जन्म पञ्च च

जलौका जन्मशतकं शुचिर्भवतु तत्परम् ॥९१॥

वृथा मांसं(तु)यो भुङ्क्ते स्वार्थपाकान्नमेव च । तद्दत्तं महापापी प्राप्नोतुचन्द्रपातकम्
स यातु चन्द्रपापेन वासीपत्रं चतुर्युगम् । ततो भवतु सर्पश्च पशुश्च सप्तजन्म च ॥९३

विप्रो वार्द्धुषिको यो हि योनिजीवी चिकित्सकः ।
हरेर्नाम्नाञ्च विक्रेता यश्च वा स्वाङ्ग विक्रयी ॥ ९४ ॥

स्वधर्म्मकथकश्चैव यश्च स्यात्मप्रशंसकः । मसीजीवो धावकश्च कुलटापोष्य एव च ॥
तं यातु चन्द्रपापश्च चन्द्रो भवतु धिज्वरः । स यातु तेन पापेन शूलप्रोतं सुदारुणम्
ततो विद्धो भवतु स यावदिन्द्राश्चतुर्दश । ततो दरिद्रो रोगी च दीक्षाहीनो नरः पशुः

लाक्षामांसरसानाञ्च विक्रेता स्वपचश्च न । भस्मानाञ्चैव लौहानां विक्रेता
चौरश्च विप्रो गर्हाशिम्नं यातु मन्दपातकम् । स यातु तेन पापेन शुश्रूषां सुदुःस
तत्र द्विजो भवतु स यावदिन्द्रसहस्रकम् । तस्मादुर्त्तर्ण्यं भवतु शृगालः सप्तजन्मसु
सप्तजन्म च मार्जारो महिषो जन्मपञ्चकम् । सप्तजन्म च मर्कटः कुक्कुरो सप्तजन्म
मत्स्यश्च जन्मशतकं कर्कटी जन्मपञ्चकम् । गोधिका जन्मशतकं गर्दभः सप्तजन्मसु
सप्तजन्म च मण्डूकस्ततश्च मानवोऽधमः । चर्मकारश्च रजकस्तैलकारश्च वार्द्धकी

नापितः शापजीवी च व्याधश्च स्वर्णकारकः ।
कुम्भकारो लौहकारस्ततः क्षत्रस्ततो द्विजः ॥१०४॥

इतिचन्द्रंशुचिहृत्वासमुपायतुतारकाम् । त्यक्तया चन्द्रंमहासाध्विगच्छकान्तनिर्तिद्वि
प्रायश्चित्तं विना पूता त्वमेव शुद्धमानसा । अकामा या बलिष्ठेन न स्त्री जारेण दुष्यति
इत्येवमुक्त्वा शुक्रश्च चन्द्रश्च तारकांसतीम् । सस्मितांसस्मितश्चैव चकारचशुभाशिष

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्यानं
नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

## एकोनषष्टितमोऽध्यायः

### बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिष्यप्रेषणम् ।

नारद उवाच ।

बृहस्पतिः किञ्चकार तारकाहरणान्तरे । कथं संप्राप तां साध्वीं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

श्रीनारायण उवाच ।

दृष्ट्वा विलम्बं तारायाः क्रान्त्याश्चापि गुरुः स्वयम् ।
प्रस्थापयामास शिष्यमन्वेषणार्थञ्च स्वर्णदीम् ॥२॥

गत्वा स्वर्णदीञ्च संप्राप्य लोकवक्त्रतः । इदमुवाच स्वगुरुं तारकाहरणं मुने।

श्रुत्वा गुरुगृहवार्तां शशिना च प्रियां हृताम् । गुरुश्च प्राप मूर्च्छाञ्च क्षणेन संप्राप चेतनाम्
रुरोदोच्चैः सशिष्यश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जया विप्रो विललाप मुहुर्मुहुः ॥५॥

उवाच शिष्यान् सर्वांश्च सांत्विश्च पुलकितमनाम् ।
साश्रुनेत्रः साश्रुनेत्रान् शोकार्त्तः शोककर्शितान् ॥६॥

गृहस्थनिरूपणम् ।

हे वत्साः केन शापेनाऽहं न जाने कारणं परम् । नूनं धर्मविरुद्धो मे संप्राप्तो निःसंशयः
यस्य नास्ति सतीभार्या गृहेषु प्रियवादिनी । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यंतथागृहम्
मायानुरक्ता वनिता हृता यस्य च शत्रुणा । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
सुशीला सुन्दरी भार्या गता यस्य गृहाद्बहो । अरण्यं तेन गन्तव्यंयथारण्यं तथागृहम्
दैवेनापहृता यस्य पतिसाध्वी पतिव्रता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता । अरण्यं तेनगन्तव्यं यथारण्यंतथागृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।
भार्याशून्या वनसमाः सभार्याश्चगृहा गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे पैत्र्ये च कर्मणि । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्यफलभाग्भवेत्
दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दो हुताशनः । प्रभाहीनो यथासूर्यः शोभाहीनो यथाशशी
शक्तिहीनो यथाजीवो यथात्मा तनुं विना । विनाऽऽधारं यथाऽऽधेयो यथेशः प्रकृतिं विना
न च शक्तो यथा यज्ञः फलदो दक्षिणां विना । कर्मणाञ्च फलं दातुं सामर्थ्यमूलमेव च
विनास्वर्णं स्वर्णकारोऽयथाशक्तःस्वकर्मणि । यथाशक्तःकुलालश्च मृत्तिकाञ्चविनाद्विजाः
तथा गृही नशक्तश्च सततं सर्वकर्मणि । भार्यामूलाःक्रियाःसर्वाःभार्यामूलागृहास्तथा
भार्यामूलं सुखंसर्वंगृहस्थानां गृहे सदा । भार्यामूलः सदाहर्षो भार्यामूलञ्चमङ्गलम्
भार्यामूलश्चसंसारोभार्यामूलञ्चसौरभम् । यथारथश्च रथिनांगृहिणाञ्चतथागृहम्
सारथिस्तु यथा तेषां गृहिणाञ्च यथाप्रिया । सर्वरत्नप्रधाना च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि
गृहीता सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भवः । यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा
तथैव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीं विना । इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः ॥

सुरगुरुर्वार्तां शशिना च प्रियां हृताम् । मुहूर्त्तं प्राप मूर्च्छाञ्चतत.संप्राप चेतनाम्
चैः सशिष्यश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जया विप्रो विललाप मुहुर्मुहुः ॥५॥
उवाच शिष्यान् सम्बोध्य नीतिज्ञ श्रुतिसम्मताम् ।
साश्रुनेत्रः साश्रुनेत्रान् शोकार्त्तः शोककर्षितान् ॥६॥

बृहस्पतिरुवाच ।

साः केन शप्तोऽहं न जाने कारणं परम् । दुःखं धर्म्मविरुद्धो यःसंप्राप्नोतिनसंशयः
नास्ति सतीभार्य्या गृहेषु प्रियवादिनी । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यंतथागृहम्
नुरक्ता वनिता हृता यस्य च शत्रुणा । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
ला सुन्दरी भार्य्या गता यस्य गृहाद्दहो । अरण्यं तेन गन्तव्यंयथारण्यं तथागृहम्
ापहृता यस्य पतिसाध्वा पतिव्रता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥
: माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता । अरण्यं तेनगन्तव्यं यथारण्यंतथागृहम्
हीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणवस्तुभिः । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।
र्याशून्या वनसमाः सभार्य्याश्चगृहा गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तंन गृहं गृहमुच्यते
वि: स्त्रीविहीनश्च दैवे पैत्र्ये च कर्मणि । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्यफलभाग्भवेत्
ःकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दोहुताशनः । प्रभाहीनो यथासूर्य्यः शोभाहीनो यथाशशी
हीनो यथाजीवो यथाचात्मानंतुं विना । विनाऽऽधारंयथाऽऽधेयोयथेशःप्रकृतिं विना
ा शक्तो यथा यज्ञः फलदां दक्षिणां विना । कर्मणाञ्च फलं दातुं सामग्रीमूलमेव च
ास्वर्णंस्वर्णकारोयथाशक्तःस्वकर्मणि । यथाशक्तःकुलालश्चमृत्तिकाञ्चविनाद्विजाः
ा गृही नशक्तश्च सन्तते सर्वकर्मणि । भार्य्यामूलाक्रियाःसर्वाःभार्य्यामूलागृहास्तथा
र्य्यामूलं सुखंसर्वंगृहस्थानां गृहे सदा । भार्य्यामूलः सदाहर्षो भार्य्यामूलञ्चमङ्गलम्
र्य्यामूलञ्चसंसारोभार्य्यामूलञ्चसौरभम् । यथारथश्च रथिनांगृहिणाञ्चतथागृहम्
रथिस्तु यथा तेषां गृहिणाञ्च यथाप्रिया । सर्वेरत्नप्रधानां च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।
ीता सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भवः । यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा
ेव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीं विना । इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः ॥

[illegible]

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे
नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

---

## एकोनषष्टितमोऽध्यायः

### बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिष्यप्रेषणम् ।

नारद उवाच ।

बृहस्पतिः किम्प्रकार तारकाहरणान्तरे । कथं संप्राप तां साध्वीं कं [illegible]

श्रीनारायण उवाच ।

दृष्ट्वा विलम्बं तारायाः ज्ञात्वाथापि गुरुः स्वयम् । [illegible]

प्रस्थापयामास शिष्यमन्वेषार्थञ्च स्वर्णदीम् ॥२॥

शिष्यो गत्वा स्वर्णदीञ्च संप्राप्य लोकवक्त्रतः । [illegible]

[illegible]

[illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible]

इति [illegible] [illegible]
[illegible] ।

## एकोनषष्टितमोऽध्यायः

### बृहस्पतेस्तारान्वेषणाय शिष्यप्रेषणम् ।

नारद उवाच ।

बृहस्पतिः किमकरोत् तारकाहरणान्तरे । कथं संप्राप तां भार्यां तन्मे व्याख्यातुमर्ह[illegible]

श्रीनारायण उवाच ।

दृष्ट्वा विलम्बं तारायाः [illegible] गुरुः स्वयम् ।
[illegible] शिष्यमन्वेषणार्थं च स्वयं[illegible] ॥२॥

गुत्वा सुरगुरुर्वार्तां शशिना च प्रियां हृताम् । मुहूर्त्तं प्राप मूर्च्छांश्चततःसंप्राप चेतनाम्
रोदोच्चैः सशिष्यश्च हृदयेन विदूयता । शोकेन लज्जया विप्रो विललाप मुहुर्मुहुः ॥५॥

उवाच शिष्यान् सम्बोध्य नीतिञ्च श्रुतिसम्मताम् ।
साश्रुनेत्रः साश्रुनेत्रान् शोकार्त्तः शोककर्षितान् ॥६॥

वृहस्पतिरुवाच ।

हे वत्साः केन शप्तोऽहं न जाने कारणं परम् । दुःखं धर्म्मविरुद्धो यःसंप्राप्नोतिनसंशयः
यस्य नास्ति सतीभार्य्या गृहेषु प्रियवादिनी । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यंतथागृहम्
भायानुरक्ता वनिता हृता यस्य च शत्रुणा । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्
सुशीला सुन्दरी भार्य्या गता यस्य गृहादहो । अरण्यं तेन गन्तव्यंयथारण्यं तथागृहम्
दैवेनापहृता यस्य पतिसाध्वी पतिव्रता । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥
यस्य माता गृहे नास्ति गृहिणी वा सुशासिता । अरण्यं तेनगन्तव्यं यथारण्यंतथागृहम्
प्रियाहीनं गृहं यस्य पूर्णं द्रविणबन्धुभिः । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ।
भार्य्याशून्या घनसमाः सभार्य्याश्चगृहा गृहाः । गृहिणी च गृहं प्रोक्तं न गृहं गृहमुच्यते
अशुचिः स्त्रीविहीनश्च दैवे पैत्र्ये च कर्मणि । यदह्ना कुरुते कर्म न तस्यफलभाग्भवेत्
दाहिकाशक्तिहीनश्च यथा मन्दोहुताशनः । प्रभाहीनो यथासूर्य्यः शोभाहीनो यथाशशी
शक्तिहीनो यथाजीवो यथाचात्मातनुं विना । विनाऽऽधारंयथाऽऽधेयोयथेशःप्रकृतिं विना
न च शक्तो यथा यज्ञः फलदो दक्षिणां विना । कर्मणाञ्च फलं दातुं सामर्थ्यमूलमेव च
विनास्वर्णंस्वर्णकारोयथाशक्तःस्वकर्मणि । यथाशक्तःकुलालश्चमृत्तिकाञ्चविनाद्विजाः
तथा गृही नशक्तश्च सन्ततं सर्वकर्मणि । भार्य्यामूलाक्रियाःसर्वाःभार्य्यामूलागृहास्तथा
भार्य्यामूलं सुखंसर्वंगृहस्थानां गृहे सदा । भार्य्यामूलः सदाहर्षो भार्य्यामूलञ्चमङ्गलम्
भार्य्यामूलञ्चसंसारोभार्य्यामूलञ्चसौरभम् । यथारथञ्च रथिनांगृहिणाञ्चतथागृहम्
सारथिस्तु यथा तेषां गृहिणाञ्च यथाप्रिया । सर्वरत्नप्रधाना च स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।
गृहीता सा गृहस्थेनैवेत्याह कमलोद्भवः । यथा जलं विना पद्मं पद्मं शोभा विना यथा
सर्पेव च गृहसुखं गृहिणां गृहिणीं विना । इत्येवमुक्त्वा स गुरुः प्रविवेश गृहं मुहुः ॥

बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्त्तश्च जितेन्द्रियः । त्रयश्चाङ्गिरसः पुत्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥४७॥
संवर्त्ताय कनिष्ठाय न च किञ्चिद्ददौ गुरुः । स बभूव तपस्वी च ध्यायते कृष्णमीश्वरम् ॥

उतथ्यस्य मध्यमस्य भार्य्याञ्च गुर्विणीं सतीम् ॥
जहार कामतस्ताञ्च भ्रातृजायामकामुकीम् ॥ ४६ ॥

यो हरेद् भ्रातृजायाञ्च कामी कामदकामुकीम् ।ब्रह्महत्यासहस्रञ्च लभते नात्रसंशयः॥
स याति कुम्भीपाकञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ । भ्रातृजायापहारी च मातृगामी भवेन्नरः ॥
तस्माद्दुत्तीर्य्यपापी च विष्ठायां जायते कृमिः । वर्षकोटिसहस्राणि तत्र स्थित्वा च पातकी
ततो भवेन्महापापी वर्षकोटिसहस्रकम् । पुंश्चलीयोनिगर्त्ते च कृमिश्चैव पुरन्दर ॥५३॥
गृध्रः कोटिसहस्राणि शतजन्मानि कुक्कुरः । भ्रातृजायापहरणाच्छतजन्मानि शूकरः ॥५४
यो न ददाति दायञ्च बलिष्ठो दुर्बलाय च । स याति कुम्भीपाकञ्च यावच्चन्द्रदिवाकरौ
ना भुङ्क्ते क्षीयते कर्म्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्
जगद्गुरोः शिवस्यापि गुरुपुत्रो बृहस्पतिः । ज्ञातं करोतु वृत्तान्तमीश्वरं बलिनांवरम्
सर्वे समूहाः देवानां सन्नद्धाश्च सवाहनाः । मध्यस्था मुनयश्चैव तिष्ठन्तु नर्म्मदातटे ॥

पश्चादहञ्च यास्यामि पुण्यञ्च नर्म्मदातटम् ।
गुरुस्तत् गुरुपुत्रोऽपि शीघ्रं यातु शिवालयम् ॥ ५६ ॥

महेन्द्र उवाच ।

कथं धाता वेदकर्त्तुश्च सिद्धानां योगिनां गुरोः । मृत्युञ्जयस्य शम्भोश्च गुरुपुत्रो बृहस्पतिः
अङ्गिरास्तवपुत्रश्च तत् पुत्रश्च बृहस्पतिः । त्वत्तोज्ञानी महादेवः कथं शिष्यो गुरोःपितुः

ब्रह्मोवाच ।

कथेयमतिगुप्ता च पुराणेषु पुरन्दर । इमां पुरा प्रवृत्तिञ्च कथयामि निशामय ॥६२ ॥
मृतवत्सा कर्म्मदोषाद्भार्य्याचाङ्गिरसः पुरा । व्रतं चकार साचैवं कृष्णस्य परमात्मनः॥
व्रतं पुंसवनं नाम वर्षमेकं चकार सा । सनत्कुमारो भगवान् कारयामास तां व्रतम्॥
तदागत्य च गोलोकात् परमात्मा कृपामयः । स्वेच्छामयं परं ब्रह्म भक्तानुग्रहविग्रहः ॥
सुव्रताञ्चसलक्ष्मीकां तामुवाच कृपानिधिः । प्रणतां साश्रुनेत्राञ्च विनीताञ्चतयास्तुतः

गुरुनिन्दापरां श्रुत्वा [illegible] पुण्यात्मना । गुरुनिन्दा हि [illegible]
सर्वाङ्ग[illegible] निश्चितं तथा । [illegible]
[illegible] पुण्यवन्तो हि भारते । [illegible]
पुत्रे [illegible] न सम्पृष्टे न पराक्रमे । [illegible] न प्रजाभूमि[illegible]
[illegible] न गुर्वौ न स्वभावे न [illegible] । [illegible] हृदयं नृणा[illegible]
यादृशं येषां [illegible] यादृक् तेषां [illegible] । यादृशं येषां पूर्वपुण्यं यादृक् तेषां [illegible]
इत्युक्त्वा स महादेवो विरराम [illegible] । [illegible] स्वयमेव बृहस्पतिः

बृहस्पतिरुवाच ।

अधुनैव वृत्तान्तं कथयामि त्रिलोचन । लोकाः कर्मवशाः[illegible]कर्म यत्कृतं पुरा
स्वकर्मणां फलं भुङ्क्ते जन्तुर्जन्मनि जन्मनि । नहि [illegible]कर्म विना भोगाभ[illegible]
सुखं दुःखं भयं शोकं नराणां भारते प्रभो । केचिद्वदन्तीह भयं स्वकृतेन च कर्मणा
केचिद्वदन्ति दैवेन स्वभावेनेति केचन । त्रिविधाश्च मता वेदे वेदवेदाङ्गपारग ॥ ३३
स्वयञ्च कर्मजनकस्तत्कर्म दैवकारणम् । स्वभावो जायते नृणाम् स्वात्मनः पूर्वकर्म
स्वकर्मणाञ्च सर्वेषां जन्तूनां प्रतिजन्मनि । सुखंदुःखं भयं शोकं स्वात्मनश्च प्रकुर्व
स्वकर्मफलभोक्ताच जीवोहिसगुणःसदा । आत्मा भोजयितासाक्षी निर्गुणःप्रकृतेः प
स एवात्मा सर्वसेव्यः सर्वेषाञ्च फलप्रदः । स च सृजति दैवञ्च स्वभावं कर्म एव
कर्मणाच नृणां लज्जा प्रशंसा च प्रफुल्लता । लज्जाबीजञ्च वृत्तान्तं तथापि कथयामि
इत्युक्त्वासर्ववृत्तान्तमुवाच तं बृहस्पतिः । श्रुत्वा बभूव नम्रास्योगौरीशो लज्जया
जपमाला कराद् भ्रष्टा कोपाविष्टस्य शूलिनः । बभूव सद्यः कम्पश्च रक्तपङ्कजलोचन
संहर्त्तुरीशोरुद्रस्यविष्णोःपातुःसदाशिवः । स्रष्टुःस्तुत्यश्चमान्यश्चस्वात्मनःपरमात्मन
निर्गुणस्य च कृष्णस्य प्रकृतीशस्य नारद । कोपात् प्रवक्तुमारेभे

शिव उवाच ।

अवैष्णवानां हृदयं नहि शुद्धं सदामलम् । श्रीकृष्णमन्त्रस्मरणं मनोनैर्मल्यकारणम् ॥
भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यते सर्वसंशयः । विष्णुमन्त्रोपासनया क्षीयते कर्म तन्नृणाम् ॥
अहो श्रीकृष्णदासानां कः स्वभावः सुनिर्मलः । हृतभार्य्यमूर्च्छितश्च न शशापरिपुंगुरुः
गुरुर्यस्य वशिष्ठश्च क्रोधहीनश्च धार्मिकः । हन्तारञ्च पुत्रशतं न शशाप रिपुंमु निः॥४२
निश्वासेन सुरगुरोर्भ्रातुर्मम वृहस्पतेः । भस्मीभूतो निमेषेण शतचन्द्रो भवेद् ध्रुवम् ॥
तथापि तं न शशाप धर्म्मभङ्गभयेन च । तपस्या हीयते शम्भुः कोपाविष्टस्य नित्यशः ॥
अहो ह्यत्रेरसत्पुत्रः परस्त्रीलुब्धकः शठः । तपस्विनो वैष्णवस्य ब्रह्मपुत्रस्यधर्मिणः ॥
धर्मिष्ठाब्रह्मणःपुत्रावैष्णवाब्राह्मणास्तथा । केचिद्देवाद्विजादैत्याःपौत्राश्च त्रिविधामताः

ये सात्विकाब्राह्मणास्ते देवा राजसिकास्तथा ।
दैत्यास्तामसिका रौद्रा बलिष्ठाः चोद्धता मताः ॥४७॥

स्वधर्म्मनिरताविप्रा नारायणपरायणाः । शैवाःशाक्ताश्चते देवादैत्याःपूजाविवर्जिताः ॥

मुमुक्षवो विष्णुभक्ता ब्राह्मणा दास्यलिप्सवः ।
ऐश्वर्य्यलिप्सवो देवाश्चासुरास्तामसास्तथा ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणानां स्वधर्म्मश्च कृष्णस्यार्च्चनमीप्सितम् ।
निष्कामानां निर्गुणस्य परस्य प्रकृतेरपि ॥५०॥

ये ब्राह्मणावैष्णवाश्चस्वतन्त्राःपरमंपदम् । यान्त्यन्योपासकाश्चान्यैःसार्द्धञ्चप्राकृते लये॥
वर्णानांब्राह्मणाःश्रेष्ठाःसाधवोवैष्णवायदि । विष्णुमन्त्रविहीनेभ्योद्विजेभ्यःश्वपचोवरः
परिपक्वा विपक्वा वा वैष्णवाः साधवश्च ते । सन्ततं पाति तांश्चैवविष्णुचक्रंसुदर्शनम्
यथा वह्नौ शुष्कतृणं भस्मीभूतं भवेत् सदा । तथा पापं वैष्णवेषुकाष्ठानीवहुताशने ॥
गुरुवक्त्रात् विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे प्रवेक्ष्यति । तंवैष्णवंमहापूतंप्रवदन्ति मनीषिणः ॥
पुंसां शतं पितृणाञ्च शतं मातामहस्य च । स्वसोदराञ्च जननीमुद्धरन्त्येव वैष्णवाः ॥

गयायां पिण्डदानेन पिण्डदाः पिण्डभोजिनम् ।
समुद्धरन्ति पुंसाञ्च वैष्णवाश्च शतं शतम् ॥५७॥

मन्त्रग्रहणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यमस्तस्मान्महाभीतो वैनतेयादिवोरगः ॥५८

निष्पुनन्त्येव तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते ।
कृष्णमन्त्रोपासकाश्च स्पर्शमात्रेण वाक्पते ॥५९॥
पापानि पापिनां तीर्थे यावन्ति प्रभवन्ति च ।
नश्यन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः ॥६०॥

कृष्णमन्त्रोपासकानां रजसा पादपद्मयोः । सद्योमुक्तापातकेभ्यःकृत्स्ना पूता वायुश्च पवनो वह्निः सूर्यः सर्वं पुनाति च । एते पूतावैष्णवानां स्पर्शमात्रे

अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम् ।
एते दृष्टाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम् ॥६३॥

फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत् । न भवेत्तद्वैष्णवे च सिद्धवाक्ये यत् हन्ति तेषां कर्म पूर्वं भक्तानां भक्तवत्सलः । कृपया स्वपदं तेभ्योददात्येव कृ तेजस्विनाञ्च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम् । स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रश्च शरण सुदर्शनाद् बलिष्ठश्च शुक्रं जेतुं न शक्तिमान् । तथापिचोद्धरिष्यामितारांमन्त्रणा मजसत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् । सुप्रसन्ने भगवतिपत्नींप्राप्स्यसिर्ध मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजन्मार्जितप्रशस्तसर्वमङ्गलका ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं नश्वरं जलबिम्बवत् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानम्

तावद्भवेच्छा भोगेच्छा स्त्रीसुखेच्छा नृणामिह ॥७०॥

यावद्गुरुमुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः । संप्राप्यदुर्लभंमन्त्रं वितृष्णोहि भवे इन्द्रत्वममरत्वञ्च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः । नहिवाञ्छन्तिमोक्षञ्चदास्यंभक्तिवि भक्तिनिर्मञ्छनंभक्तोनकरोतिचमोक्षणम् । श्रातंमृत्युञ्जयत्वञ्चसर्वसिद्धिरवमीप्सि

वाक्सिद्धित्वञ्च ब्रह्मत्वं भक्तानां न हि वाञ्छितम् ।
भक्तिं विहाय कृष्णस्य विषयं यो हि वाञ्छति ॥७४॥
विषमत्ति सुधां त्यक्त्वा वञ्चितो विष्णुमायया ॥७५॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कपिलश्च कुमारश्च नरनारायणौ

स्वायम्भुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः ॥७६॥

भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वशिष्ठःक्रतुरङ्गिराः । वशिष्ठ वालखिल्याश्चवरुणश्च हुताशनः ॥
वायुः सूर्यश्च गरुड़ो दक्षो गणपतिः स्वयम् । एतेऽपराभक्तवरा कृष्णस्यपरमात्मनः ॥
ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्भक्तिपरायणाः । इत्युक्तवाशङ्करस्तस्मै ददौ कल्पतरुंमनुम्
लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं मुने । परं पूजाविधानञ्चस्तोत्रञ्च कवचं मुने ॥
तत्पुरश्चरणं ध्यानं सिद्धे मन्दाकिनीतटे । गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शङ्कराच्चजगद्गुरोः ॥
वितृष्णो हि सवाञ्छो च बभूव तमुवाच ह ॥८२॥

बृहस्पतिरुवाच ।

आज्ञां कुरु जगन्नाथ यामि तप्तुं हरेस्तपः । तारा तिष्ठतु तत्रैव न तया मे प्रयोजनम् ॥
पश्यामि विषतुल्यञ्च सर्वं नश्वरमीश्वर । श्रीकृष्णंशरणं यामि सत्यं नित्यञ्च निर्गुणम्

श्रीमहादेव उवाच ।

परग्रस्तां स्त्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने । सम्भावितस्यदुष्कर्मा मरणादतिरिच्यते॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेव नर्मदातटम् । यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सत्वरम् ॥
शिवस्य वचनंश्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम् । आययौ च महाभागः शङ्करो नर्मदातटम्
सगणं शङ्करं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा ॥८८॥
ननाम शम्भुः शिरसा विष्णुञ्च कमलोद्भवम् ।
ददौ विष्णुर्महेशाय प्रेम्णालिङ्गनमाशिषम् ॥८६॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्च बृहस्पतिः । प्रणनाम महादेवं विष्णुञ्च कमलोद्भवम् ॥
सूर्यं धर्ममनन्तञ्च नरं माञ्च मुनीश्वरान् । स्वगुरुं पितरं भक्त्याचोवास तत्र संसदि
सञ्चिन्त्य मनसा युक्तिमुवाचतत्रसंसदि । स्वयंविष्णुश्चभगवान्ब्रह्माणंचन्द्रशेखरम् ॥

विष्णुरुवाच ।

युवाञ्च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं त्वरा । शुक्रं कञ्चिच्चमध्यस्थंप्रस्थापयितुमर्हसि ॥६३
विग्रहेणैव विषमं भविष्यति न संशयः । महाशिषा सुरगुरुस्तारांप्राप्स्यतिनिश्चितम् ॥
सुरैस्स्तुतश्च सन्तुष्टः शुक्रावाप्यो भविष्यति । सुरैःशुक्रेणजितश्चकृष्णचक्रेण रक्षितः
युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं युवयोः स्तवनेन च । श्वेतद्वीपादागतोऽस्मि परितुष्टस्तवेन

निमज्जनेन तीर्थानि गङ्गादीनि च भारते ।
कृष्णमन्त्रोपासकानां स्पर्शमात्रेण तत्क्षणे ॥५९॥
पापानि पापिनां सर्वं गच्छन्ति प्रलयान्ति च ।
गच्छन्ति तानि सर्वाणि वैष्णवस्पर्शमात्रतः ॥६०॥

कृष्णमन्त्रोपासकानां दर्शना पातकार्णवः । सर्वांमुक्ताः ... पूतास्मुक्ता
पापुश्च पवनः वह्निः सूर्यः सर्वं पुनाति च । एते पूताश्च्यवाना स्पर्शमात्रेण तीर्थ

अहं ब्रह्मा च शेषश्च धर्मः साक्षी च कर्मणाम् ।
एते ह्युदाश्च वाञ्छन्ति वैष्णवानां समागमम् ॥६३॥

फलं कर्मानुरूपेण सर्वेषां भारते भवेत् । न भवेत्कर्मजन्ये च सिद्धधान्ये यथाङ्कुर
हन्ति तेषां कर्म पूर्वं भक्तानां भक्तवत्सलः । कृपया स्वपदं तेभ्योऽददात्येव कृपानि
तेजस्विनाञ्च प्रवरं वैष्णवं भृगुनन्दनम् । स चन्द्रो दुर्बलो भीतः शुक्रश्च शरणं यय
सुदर्शनाद् बलिष्ठश्च शुक्रं जेतुं न शक्तिमान् । तथापि नोद्विग्न्यामि नारायणमन्त्रमयाग्रु
भजसत्यं परं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम् । सुप्रसन्ने भगवति पदं प्राप्स्यसि लीलया
मन्त्रं तस्य प्रदास्यामि भ्रातः कल्पतरुं परम् । कोटिजन्माघनिघ्नञ्च सर्वमङ्गलकारणम्
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं नश्वरं जलबिम्बवत् । शरणं याहि गोविन्दं परमात्मानमीश्व

तावद्भवेच्छा भोगेच्छा स्त्रीसुखेच्छा नृणामिह ॥७०॥

यावद्गुरुमुखाम्भोजान्न प्राप्नोति मनुं हरेः । संप्राप्य दुर्लभं मन्त्रं वितृष्णो हि भवेन्न
इन्द्रत्वममरत्वञ्च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः । नहि वाञ्छन्ति मोक्षञ्च दास्यं भक्तिं विना
भक्तिनिर्मञ्छनं भक्तो न करोति च मोक्षणम् । ज्ञानं मृत्युञ्जयत्वञ्च सर्वसिद्धित्वमीप्सितम्

वाक्सिद्धित्वञ्च ब्रह्मत्वं भक्तानां न हि वाञ्छितम् ।
भक्तिं विहाय कृष्णस्य विषयं यो हि वाञ्छति ॥७४॥
विषमत्ति सुधां त्यक्त्वा वञ्चितो विष्णुमायया ॥७५॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः । कपिलश्च कुमाराश्च नरनारायणावृषी
स्वायम्भुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः ॥७६॥

भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वशिष्ठःक्रतुरङ्गिराः । बलिश्च वालखिल्याश्चवरुणश्च हुताशनः ॥
वायुः सूर्यश्च गरुड़ो दक्षो गणपतिः स्वयम् । एते[परामकवरा.कृष्णस्यपरमात्मनः ॥
ये च तस्य कलाः श्रेष्ठास्ते तद्भक्तिपरायणाः । इत्युक्त्वाशङ्करस्तस्मै ददौ कल्पतरुं मनुम्
लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेन्तं कृष्णपदं मुने । परं पूजाविधानञ्चस्तोत्रञ्च कवचं मुने ॥
तत्पुरश्चरणं ध्यानं सिद्धे मन्दाकिनीतटे । गुरुः संप्राप्य तं मन्त्रं शङ्कराच्चजगद्गुरोः ॥
वितृष्णो हि भवाब्धौ च बभूव तमुवाच ह ॥८२॥

बृहस्पतिरुवाच ।

आज्ञां कुरु जगन्नाथ यामि तप्तुं हरेस्तपः । तारा तिष्ठतु तत्रैव न तया मे प्रयोजनम् ॥
पश्यामि विषतुल्यञ्च सर्वं नश्वरमीश्वर । श्रीकृष्णंशरणं यामि सत्यं नित्यञ्च निर्गुणम्

श्रीमहादेव उवाच ।

परस्त्रीं स्त्रियं त्यक्त्वा न प्रशंस्यं तपो मुने । सम्भावितस्यदुश्चर्चा मरणादतिरिच्यते॥
पुरो गच्छ महाभाग तमेव नर्मदातटम् । यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्राहं यामि सत्वरम् ॥
शिवस्य वचनंश्रुत्वा ययौ सुरगुरुः स्वयम् । आययौ च महाभागः शङ्करो नर्मदातटम्
सगणं शङ्करं दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणम् । प्रणेमुर्देवताः सर्वा मनवो मुनयस्तथा ॥८८॥
ननाम शम्भुः शिरसा विष्णुञ्च कमलोद्भवम् ।
ददौ विष्णुर्महेशाय प्रेम्णालिङ्गनमाशिषम् ॥८९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र चागमच्च बृहस्पतिः । प्रणनाम महादेवं विष्णुञ्च कमलोद्भवम् ॥
सूर्यं धर्ममनन्तञ्च नरं माञ्च मुनीश्वरान् । स्वगुरुं पितरं भक्त्याचोवास तत्र संसदि
सञ्चिन्त्य मनसा युक्तिमुवाचतत्रसंसदि । स्वयंविष्णुश्चभगवान्ब्रह्माणंचन्द्रशेखरम् ॥

विष्णुरुवाच ।

सुधाञ्च मुनयश्चैव समुद्रपुलिनं त्वरा । शुक्रं कश्चिन्ममध्यस्थंप्रस्थापयितुमर्हसि ॥९३
विग्रहेणैव विषमं भविष्यति न संशयः । महाशिवा
सुरैस्तुतश्च सन्तुष्टः शुक्राचार्यो
युवाभ्यां प्रार्थ्यमानोऽहं

शुक्राश्रमसमीपञ्च सर्वा गच्छन्तु देवताः ॥९६॥
रिपुर्बलिष्ठः स्तोत्रेण वशीभूत इति श्रुतिः । इत्युक्त्वा जगतां नाथ स्तत्रैवान्तरधीयत ।
स्तुतो ब्रह्मादिभिर्देवैः प्रणतैः परिपूजितः । गते च जगतां नाथे श्वेतद्वीपञ्च नारद॥९८

चिन्तिताश्च सुराः सर्वे विषण्णमानसास्तथा ।
मुनीन् देवांश्च संबोध्य ब्रह्मा च तत्र संसदि ॥९९॥
उवाच नीतिसारञ्च सम्मतः शङ्करेण सः ॥१००॥

ब्रह्मोवाच ।

ममशम्भोश्चविष्णोश्चधर्मस्यसर्वसाक्षिणः । अस्माकञ्चसमःस्नेहोदैत्येदेवेच पुत्रका
दैत्यानाञ्च गुरौ शुक्रे प्रपन्नश्च निशाकरः । न जितश्च सुरैःशुक्रःपूजितोदितिनन्दनैः ।
ताराहेतोरहं यामि शुक्रस्य भवनं सुराः । सर्वे समुद्रपुलिनं यान्तु विष्णोर्निदेशतः ।
इत्युक्त्वा जगतां धाता जगाम शुक्रसन्निधिम् । प्रययुर्देवता विप्राः समुद्रपुलिनं मुने ।
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे तारोद्धारण-
प्रस्तावे षष्टितमोऽध्यायः ।

---

## एकषष्टितमोऽध्यायः

### ब्रह्मणः शुक्रगृहे गमनम् ।

नारद उवाच ।

अतः परं किं रहस्यं बभूवासुरदेवयोः । श्रोतुमिच्छामि भगवन् परं कौतूहलं मम ॥१॥

नारायण उवाच ।

ब्रह्मा जगाम निलयं शुक्रस्य च महात्मनः । नानादैत्यगणाकीर्णं रत्नमन्दिरभूषितम् ।
[illegible]दिभिः शिष्यैः परार्ध्यं ब्रह्मवादिभिः ।
[illegible] वेष्टितं पूर्णमेव च ॥३॥

रक्षितं रक्षकगणैर्दैत्यैश्च शतकोटिभिः ॥४॥

पद्मरागविरचितैः प्राचीरैः परिशोभितम् । ददर्श जगतां धाता सभायां भृगुनन्दन
स्तुतं मुनिगणैर्दैत्यै रत्नसिंहासनस्थितम् । जपन्तं परमं ब्रह्म कृष्णमात्मानमीश्वरम
शतसूर्य्यप्रभं शश्वज्ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । दृष्ट्वा पौत्रं प्रभायुक्तं विधाता हृष्टमानसः
आत्मानं कृतिनं मेने पुत्रं पौत्रञ्च नारद । दृष्ट्वा पितामहं शुक्रो धातारं जगतां प्रभु
उत्थाय सहसा भीतः प्रणनाम पुटाञ्जलिः । प्रदाय पूजयामास चोपचाराणि षोड़

तुष्टाव परया भक्त्या सम्भ्रमेण यथागमम् ।

विद्यामन्त्रप्रदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥१०॥

स्वकर्म्मणाञ्च फलदं सर्वेषां विश्वतो वरम् । शुक्रस्य स्तवनेनैव सन्तुष्टो जगतां
अवरुह्यरथात्तूर्णमुवाच तत्र संसदि । शुक्रेण शिरसा दत्ते रत्नसिंहासने वरे ॥ १
तेजसा ज्वलिते रम्ये निर्मिते विश्वकर्म्मणा । शुक्रः प्रणम्यब्रह्माणं कुमारं शक्तुनंच
वशिष्ठञ्च मरीचञ्च सनन्दञ्च सनातनम् । कपिलञ्च पञ्चशिखं वोढुमङ्गिरसं मुने ॥
धर्मं माञ्च नरं भक्त्या प्रणनाम पुटाञ्जलिः । प्रत्येकं पूजयामास सादरञ्च यथोचित
सिंहासनेषु रत्नेषु वासयामास धार्मिकः । प्रहृष्टवदनाः सर्वे प्रणेमुर्दितिनन्दनाः ॥
ऋषिसंघाश्च ब्रह्माणं तुष्टुवुश्च यथागमम् । सर्वान् संस्तूय स कविरुवाच सम्पुटाः

साश्रुनेत्रः सपुलकः प्रणतो विनयान्वितः ॥ १८ ॥

शुक उवाच ।

अद्य मे सफलंजन्मजीवितञ्चसुजीवितम् । स्वयं विधाता भगवान्साक्षाद्दृष्टःस्वम
साक्षाद्‌ दृष्टाश्च तत्पुत्रा भगवन्तःसनातनाः । तुष्टः कृष्णोऽद्यमामेवं परमात्मापरा
कृतार्थं कर्त्तुमीशानां युष्माभिःस्वागतं शिशुम् । स्वात्मारामेषु कुशलंप्रश्नमेवविड़
पवित्रं कर्त्तुमीशानां हेतुरागमने तव । अपरं ब्रूहि किं वापि शाधि नः करवाम वि

ब्रह्मोवाच ।

उद्विग्नाश्चिरविच्छेदात्त्वां पौत्रं द्रष्टुमागतः । विच्छेदः पुत्रपौत्राणां मरणादतिरिक्त
कुशलं ते मुनिश्रेष्ठ पुत्रयोश्चापि योषितः । कुशलं ते स्वकर्माणं काम्यानां तपस

दिनं दिनेशादिभिश्चिह्नं श्रीकृष्णार्चनमीश्वरम् । [illegible]
गुणिरूपाः पूतनश्च सर्वमङ्गलकारणम् । [illegible] गुणातीतं गुणम् ।
अर्थानुरेव [illegible] गुणी गुणं मृणालमिव । [illegible] न तन्तुर्न [illegible]
गुणमिव: [illegible] [illegible] । [illegible] माति [illegible] पदे पदे
गुणश्च [illegible] श्रीकृष्णः [illegible] । सर्वात्मा [illegible] मनसा च निर्गु
तव गुणो गुणानां विधाता जगतामपि । [illegible] गुणे [illegible] गुणे तु दैवतः ।
साम्प्रतं शृणु मे हेतुं गमनस्य गुणाकर । [illegible] च ।
शिवस्य गुरुपुत्रस्य साक्षी तारां गृहस्थैः । भगवान् निधानागमनैव [illegible]
शम्भुर्धर्मश्च सूर्यश्चशशाङ्कोऽनलश्चपुष्कर । आदित्या यमयोरुद्रादिक्पालाश्च दिगीश्च
युद्धायायान्ति सम्बद्धास्त्रिंशः कोट्यश्च देवताः । नागाः किम्पुरुषाश्चैव गन्धर्वाश्च गुह्य
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च कुष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः । किरातादीनि गन्धर्वाः समुद्रपुलिनेषु
तारकामयसंग्रामे मध्यस्थोऽहं मुनेः सह । देहि तारां रणं किं वा त्यजचन्द्रश्च कामि

शुक्र उवाच ।

आगच्छन्तु सुरा सर्वे सन्नद्धा रणदुर्मदाः । यौत्से विना महेशाच्च सर्वेषाञ्च गुर्वं प

दैत्या ऊचुः ।

उभयेषां गुरुः शम्भुर्मान्यो धन्यश्च सर्वदा । धर्मश्च साक्षी सर्वेषां त्वमेव च पिता
अन्यांश्च तृणतुल्यांश्च नहिमन्यामहेवयम् । आगच्छन्तुवयोत्स्यामो मजनूहिजगद्गु
कृपया गुरुपुत्रस्य यद्यायाति महेश्वरः । अग्रेनास्त्रं विधास्यामः पश्चाद्योत्स्यामहे प्र

ब्रह्मोवाच ।

कालाग्निरुद्रः संहर्त्ताविश्वस्यबलिनां वरः । हे यत्स्तास्तेनसार्द्धञ्च कोवायुद्धंकरिष्य
भद्रकाली जगन्माता खड्गखर्परधारिणी । तया दुर्द्धर्षया सार्द्धं को वा युद्धं करिष्या
सा सहस्रभुजा देवी मुण्डमाला विभूषणा । योजनायतवक्त्रा च दशयोजनविस्तृत
सप्ततालप्रमाणाश्च यस्या दन्ता भयानकाः । क्रोशप्रमाणजिह्वाच महालोला भयङ्क
रौद्राः सन्नद्धा भीमाः शङ्करकिङ्कराः । अतिभीमा भैरवाश्च नन्दी च रणकर्क

शिवस्य पार्षदाः सर्वे महाबलपराक्रमाः । वीरभद्रादयः शूराः शतसूर्य्यसमप्रभाः ॥४६॥
सहस्रमूर्ध्नः शेषस्य फणैकदेशकोणतः । विश्वं सर्षपतुल्यञ्च को वा योद्धा च तत्समः
कालाग्निरुद्रः संहर्त्ता यस्य शम्भोश्च किङ्करः ॥४७॥
शूलिनस्त्रिपुरघ्नस्य ज्वलतो ब्रह्मतेजसा । यस्यपाशुपतास्त्रेण दुर्निवार्य्येण पुत्रकाः॥४८
भस्मीभूतं भवेद्विश्वं दैत्यानाञ्चैव का कथा । यस्य शूलेन भिन्नश्च शङ्खचूड़ःप्रतापवान्
सुदामा पार्षदवरः कृष्णस्य परमात्मनः । त्रिकोटिसूर्य्यसदृशस्तेजस्वी परमाद्भुतः ॥५०
राधाकवचकण्ठश्च सर्वदैत्यजनेश्वरः । मधुकैटभयोर्हन्ता हिरण्यकशिपोश्च यः ॥५१॥
स च विष्णुः समायाति श्वेतद्वीपात्स्वयं प्रभुः । इत्युक्त्वा जगतांधाताविररामचसंसदि
प्रह्वस्योवाच प्रह्लादो दानवानामधीश्वरः ॥५३॥

प्रह्लाद उवाच ।

नमस्तुभ्यं जगद्धातः सर्वेषां प्राक्तनेश्वर । सर्वपूज्य सर्वनाथ किं वक्ष्यामि तवाग्रतः ॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता मधुकैटभयोश्च यः । स कला यस्य कृष्णस्य परिपूर्णतमस्य च ॥
सर्वान्तरात्मानन्तस्य चक्रं नाम सुदर्शनम् । अस्माकंलोकमस्मांश्चशश्वद्रक्षतिदुःसहम्
ततो न बलवान् शम्भुर्न च पाशुपतं विधे । न च काली न शेषश्च नच रुद्रादयः सुराः
यस्य लोमसुविश्वानिनिखिलानिजगत्पते । सर्वाधारस्यचविभोः स्थूलात्स्थूलतरस्यच
षोड़शांशो भगवतः स वचमहान् विराट् । अनन्तो नहि तत्स्थूलो न कालीवृहतीततः
आगच्छन्तु सुराः सर्वे युद्धंकुर्वन्तु साम्प्रतम् । न बिभेमि शरेभ्यश्च नचपाशुपताद्धरात्
नमस्तस्मै भगवते शिवाय शिवरूपिणे । नमोऽनन्ताय साधुभ्यो वैष्णवेभ्यः प्रजापते ।
श्रीकृष्णस्य प्रसादेननिर्भयोऽहंनिरामयः । न मे स्यात्सबलं ध्वंसस्तद्बलंयत्प्रभोर्बलम्
स्वपापेन मृतस्तातो पुरा वै विष्णुनिन्दया । निर्बन्धाच्छङ्खचूड़श्च दर्पाच्च मधुकैटभौ ॥
त्रिपुरः किङ्करोऽस्माकं वीरत्वेन न गण्यते । तथापि प्रेरितस्तेन स रक्षो महेश्वरः ॥
इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठो विरराम च संसदि । उवाच जगतां धाता पुनरेव च नारद ॥६५

ब्रह्मोवाच ।

विनाशकारणं युद्धमुभयोर्दैत्यदेवयोः । सुप्रीताचरणं वत्स सर्वमङ्गलकारणम् ॥ ६६ ॥

तारां भिक्षां देहि मह्यं भिक्षुकायच ब्रह्मणे । विमुखे भिक्षुके राजन् गृहस्थःसर्वपापभा

सनत्कुमार उवाच ।

सकीर्त्तिरक्षराजेन्द्र सिंहस्त्वंसुरदैत्ययोः । यस्य भिक्षुर्जगद्धाता तस्यकीर्त्तिश्चकाक

सनातन उवाच ।

न जितस्त्वं सुरेन्द्रैश्च ब्रह्मेशानपुरोगमैः । रक्षितः कृष्णचक्रेण वैष्णवः पुण्यवान् शुचि

सनन्द उवाच ।

यस्येष्टदेवः सर्वात्मा श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः । गुरुश्चवैष्णवःशुक्रः स च केनजितोमहा

सनक उवाच ।

पुण्यवान्न जितः केन जितःपापीस्वपातकैः । पुण्यदीपो न निर्वाति पाखण्डेनैव वायुना

ऋषय ऊचुः ।

देहि तारां महाभाग चन्द्रं प्राणाधिकं गुरोः । स्वकीर्त्तिं रक्ष सुचिरं प्रार्थयामः पुनःपुन

प्रह्लाद उवाच ।

स्थिते मदीश्वरे साक्षान्नहि भृत्यो विराजते । कर्त्तारं ब्रूहि मन्नाथं गुरुं शुक्रं सतां वरम्

शिष्याणामाधिपत्ये च साधूनां गुरुरीश्वरः । गुरौ समर्पितं पूर्वं सर्वैश्वर्यं मुनीश्वरैः।

वयं भृत्याश्चपौष्याश्चस्वगुरोःपरिचारकाः । ते चशिष्याःकुशलिनो गुर्वाज्ञांपालयन्ति

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा चकार प्रार्थनां कविम् । .

ददौ शुक्रश्च तारां तां चन्द्रश्च मलिनं मुने ॥७६॥

दत्त्वा तारां विधुं शुक्रः प्रणनाम विधेःपदे । नमस्कृत्य मुनिभ्यश्च प्रणतः स्वपुरं ययौ।

प्रह्लादः स्वगणो मनसा नमस्कृत्य विधेः पदे ॥ ७७ ॥

प्रत्येकञ्च मुनिगणान् प्रणतः स्वगृहं ययौ । ब्रह्मा ददर्श ताराञ्च प्रणतां स्वपदे सर्वत

लज्जया नम्रवक्त्राञ्च रुदतीं गुर्विणीं मुने ॥ ७८ ॥

चन्द्रञ्च प्रणतं धाता क्रोडे संस्थाप्य मायया । उवाच मलिनां तारां कातराञ्चारुणान

तारे त्यज भयं मातर्वयं किं ते मयि स्थिते । सौभाग्ययुक्तास्वपतौ भविष्यसि परेण हि

दर्पोलावल्लिता यस्मान्निष्कामामद युतामयैम् । प्रायश्चित्तेनशुद्धासानसी जारेणदु

कामतो जारं भजतेस्वसुखेनच । प्रायश्चित्ताच्चशुद्धासा स्वामिना परिवर्जिता॥
...के पच्यते सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ । अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं स्पर्शनंसर्वपापदम् ॥
...श्चतस्याश्च साधुभिः परिवर्जितम् । कस्यगर्भोयद शुभे गच्छयस्येगुरोर्गृहम् ॥
...त्रां महाभागे सर्वत्र प्राकृतान्ध्रुवम् । ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा समुवाच सतीतदा ॥
...गर्भं हेतात विभर्मि दैवयोगत । सर्वे मे साक्षिणः सन्ति दुर्बलायाः प्रजापते॥
...ह चन्द्रोमां दयाहीनश्च दुर्मतिः । इत्युक्त्वा तारका देवी सुषाव कनकप्रभम्॥
...न्दरंतत्र ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । गृहीत्वा तनयं चन्द्रो नत्वा ब्रह्माणमीश्वरम् ।
जगाम स स्वभवनं ब्रह्मा सिन्धुतटं ययौ ॥८८॥
साध्वीं ताराञ्च गुरवे देवेभ्योऽप्यभयं ददौ ॥ ८९ ॥
...भुधर्माभ्यांब्रह्मलोकं ययौ विधिः । देवा ययुः स्वभवनं स्वगृहञ्चबृहस्पतिः
...वनितां संप्राप्य हृष्टमानसः । तारकागर्भसंभूतः सच च बुधः स्वयम् ॥९१॥
...बुधो ब्रह्मञ्चन्द्रस्य तनयो महान् । सएव नन्दनवने चित्रां संप्राप्य निर्जने॥
...र्भसंभूतां कुवेरस्यच रेतसा । दृष्ट्वाच निर्जने रम्यां कन्यां कमललोचनाम् ॥
...नस्थाञ्च बालां द्वादशाब्दिकीम् । गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राहविधोःसुतः
। रहसि वीर्य्याधानं चकार सः । बभूव राजा चित्रायां चैत्रश्च मण्डलेश्वरः
। पृथ्वीं प्रशास्ति धार्मिको वली । शतनद्यो घृतानाञ्च दध्नो नद्य शतानिच
...यो दुग्धानां मधुनद्यश्च षोड़श । दश नद्यश्च तैलानां शर्करा लक्षराशयः ॥
...वस्तिकानां लक्षराशिश्चनित्यशः । पञ्चकोटिगवांमांसं सपूपं स्वान्नमेवच॥
...राशीभुञ्जते ब्राह्मणा मुने । गवांलक्षञ्च रत्नानां मणीनां लक्षमेव च ॥९९॥
...र्णानां लक्षञ्च सूक्ष्मवाससाम् । रत्नानां भूषणं पात्रमतीव सुमनोहरम् ॥
...ये राजा नित्यञ्च जीवनावधि । तस्य चैत्रस्य पुत्रश्च राजाधिरथ एव च ॥
...सुरथश्चक्रवर्त्ती बृहत्श्र(च्छ्र)वाः । महाज्ञानञ्च संप्राप्य मेधसात्मुनिसत्तमात्
...ष्णुमायां पुण्यक्षेत्रे च भारते । शरत्काले महापूजाञ्चकार स सरित्तटे ॥
स महान् ज्ञानिनामुनिसत्तम । राजाकलिङ्ग देशस्य विराधश्च विशांवरः॥

तस्यपुत्रो महायोगी सुमेधा ब्राह्मणोत्तमः । सुमेधा वैष्णवःप्रायः पुष्करे दुष्करंतपः॥
कृत्वासमाधिं संप्राप्तज्ञानिनां वैष्णवात्परम् । पुत्रदारैर्निरस्तश्चस्वजनैर्लोभात् दुरात्मभिः
स च कोटिसुवर्णञ्च नित्यंदत्त्वा जलंपपौ । मुक्तिं संप्रापवैश्यश्च विष्णुमायांसनातनीम्
राजालेभे मनुत्वञ्चराज्यं निष्कण्टकं मुने । उक्तम् मन्त्रं ध्यानं त्रिजगतांपतेः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गोपाख्याने
एकषष्टितमोऽध्यायः ।

---

## द्विषष्टितमोऽध्यायः

### राज्ञः सुरथस्य वैश्यसमाधेश्च विवरणम् ।

नारद उवाच ।

कथं राजा महाज्ञानंसंप्राप मुनिसत्तमात् । वैश्यो मुक्तिं मेधसश्चतन्मे व्याख्यातुमर्हसि

श्रीनारायण उवाच ।

ध्रुवस्यपौत्रो बलवान् नन्दिरुत्कलनन्दनः । स्वायम्भुवमनोर्वंशः सत्यवादी जितेन्द्रियः
अक्षौहिणीनां शतकं गृहीत्वा सैन्यमेवच । लोकाञ्च वेष्टयामास सुरथस्य महामतेः ॥
युद्धं बभूव नियतं पूर्णमब्दञ्च नारद । चिरजीवी वैष्णवश्च जिगाय सुरथं नृपः ॥४॥
एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च बहिष्कृतः । निशायां हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥
ददर्श तत्र वैश्यञ्च पुष्पभद्रानदीतटे । तयोर्बभूव संप्रीतिः कृतवान्धवयोर्मुने ॥६॥
वैश्येन सार्द्धं नृपतिर्जगाम मेधसाश्रमम् । पुष्करं दुष्करं पुण्यक्षेत्रञ्च भारते सताम् ॥
ददर्श तत्र नृपतिर्मुनिं तं तीव्रतेजसम् । शिष्येभ्यश्च प्रवोचन्तं ब्रह्मतत्त्वं सुदुर्लभम् ॥
राजाननामवैश्यश्च शिरसामुनिपुङ्गवम् । मुनिस्तौपूजयामास ददौ ताभ्यां शुभाशिषम्॥

सुरथ उवाच ।

राजाऽहं सुरथो ब्रह्मंश्चैत्रवंश समुद्भवः । वहिर्भूतः स्वराज्याच नन्दिना वलिनाधुना
किमुपायंकरिष्यामि कथं राज्यंभवेन्मम । तन्मां ब्रूहि महाभाग त्वय्येवशरणागतम्॥
अयं वैश्यः समाधिश्च स्वगृहाच वहिष्कृतः । पुत्रैः कलत्रैर्दैवेन धनलोभेन धार्मिकः
ब्राह्मणाय ददौ नित्यं रत्नकोटिं दिने दिने । निषिद्धमानः पुत्रैश्च कलत्रैर्वान्धवैरयम्।
कोपान्निराकृतस्तैश्च पुनरन्वेषितः शुचा । अयं गृहश्चन ययौ विरक्तो ज्ञानवान् शुचिः।
पुत्राश्च पितृशोकेनगृहं त्यक्त्वा ययुर्वनम् । दत्त्वा धनानि विप्रेभ्योविरक्ताः सर्वकर्मसु।
सुदुर्लभं हरेर्दास्यंवैश्यस्यास्य च वाञ्छितम् ।
कथंप्राप्नोति निष्कामस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १७ ॥

श्रीमेधस उवाच ।

करोतिमायताच्छन्नंविष्णुमायादुरत्यया । निर्गुणस्यचकृष्णस्य त्रिगुणाविश्वमाज्ञया॥
कृपांकरोतियेषांसा धर्मिणाश्चकृपामयी । तेभ्यो ददाति कृपया कृष्णभक्तिसुदुर्लभाम्॥
येषां मायाविनांमाया न करोति कृपां नृप । माययाताश्निवध्नाति मोहजालेनदुर्गताम्॥
नश्वरे नित्यसंसारे भ्रमेण धर्वराः सदा । कुर्वन्ति नित्यबुद्धिञ्च विहाय परमेश्वरम् ॥
देवमन्यंनिषेवन्ते तन्मन्त्रञ्च जपन्ति च । मिथ्याकिञ्चिन्निमित्तञ्च कृत्वा मनसिलोभतः
हरेः कलाः देवताश्च निषेव्य जन्म सप्त च । तदा प्रकृत्याः कृपया सेवन्ते प्रकृतिं तदा
निषेव्य विष्णुमायाञ्च सप्तजन्म कृपामयीम् । शिवे भक्तिं लभन्ते ते ज्ञानानन्दे सनातने
ज्ञानाधिष्ठातृदेवञ्च निषेव्य शङ्करं हरेः । अचिराद्विष्णुभक्तिञ्च प्राप्नुवन्ति महेश्वरात्
सेवन्ते सगुणं सत्त्वं विष्णुं विषयिणं तदा । सत्त्वज्ञानाद्यपश्यन्ति ज्ञानञ्चनिर्मलंनराः
निषेव्य सगुणं विष्णुं सात्त्विका वैष्णवा नराः । लभन्तेनिर्गुणेभक्तिं श्रीकृष्णेप्रकृतेःपरे
कुर्वन्ति ग्रहणं सन्तो मन्त्रं तस्य निरामयम् । निषेव्य निर्गुणंदेवं ते भवन्तिच निर्गुणाः
असंख्यब्रह्मणः पातं ते च पश्यन्ति वैष्णवाः । दास्यं कुर्वन्तिसततंगोलोकेच निरामये
कृष्णभक्तात् कृष्णमन्त्रं यो गृह्णाति नरोत्तमः । पुरुषाणांसहस्रञ्चस्वपितृणां समुद्धरेत्
मातामहानां पुरुषं सहस्रं मातरं तथा । दासादिकं समुद्धृत्य गोलोकं स प्रयाति च ॥

भवार्णवे महाघोरे कर्णधारस्वरूपिणी । पारं करोति दुर्गा तान् कृष्णभक्त्या च नौकया
स्वकर्मबन्धनं छेत्तुं वैष्णवानाञ्च वैष्णवी । तीक्ष्णशस्त्रस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मन
विवेचनाचावरणी शक्तेः शक्तिर्द्विधा नृप । पूर्वं ददाति भक्ताय चेतराय परां परा ॥३
सत्यस्वरूपः श्रीकृष्णस्तस्मात् सर्वञ्च नश्वरम् । बुद्धिर्विवेचनैन्येवं वैष्णवानां सनातनी
नित्यरूपा मयेयं श्रीरिति चावरणी च धीः । अवैष्णवानामसतां कर्मभोगभुजामहो
अहं प्रचेतसः पुत्रः पौत्रश्च ब्रह्मणो नृप । भजामि कृष्णमात्मानं ज्ञानं संप्राप्य शङ्करा

गच्छ राजन् नदीतीरं भज दुर्गां सनातनीम् ।
बुद्धिमावरणीं तुभ्यं देवी दास्यति कामिने ॥ ३८ ॥

निष्कामाय च वैश्याय वैष्णवायच वैष्णवी । बुद्धि विवेचनां शुद्धां दास्यत्येव कृपामयी
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो ददौ ताभ्यां कृपानिधिः । पूजाविधानं दुर्गायाः स्तोत्रञ्च कवचं मनुम
वैश्यो मुक्तिञ्च संप्रापतां निषेव्य कृपामयीम् । राजा राज्यं मनुत्वञ्च परमैश्वर्यमीप्सितम
इत्येवं कथितं सर्वं दुर्गोपाख्यानमुत्तमम् । सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने
सुरथमेधससंवादे द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

---

# त्रिषष्टितमोऽध्यायः

## सुरथसमाधिमेधससंवादे प्रकृतिवैश्यसंवादः

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग वद वेदविदांवर । राजा केन प्रकारेण सिषेवे प्रकृतिं पराम् ॥ १ ॥
[illegible] निष्कामं निर्गुणं विभुम् । भेजे केन प्रकारेण प्रकृतेरुपदेशतः ॥२
पूजाविधानञ्च ध्यानं वा मनुमेव च । किं स्तोत्रं कवचं किंवा ददौ राज्ञे महामुनिः

ज्ञानं सम्प्राप्य वैश्यश्च किं पदंप्रापदुर्लभम् । गतिर्बभूव राज्ञश्च का वा ताञ्छ्रणोम्य

श्रीनारायण उवाच ।

राजा मन्त्रञ्चसंप्राप्यवैश्यश्चमेधसान् मुने । स्तोत्रञ्च कवचं देव्याध्यानञ्चैवपुरस्क्रिय
जजाप परमं मन्त्रं राजा वैश्यश्च पुष्करे ॥ ६ ॥

स्नात्वा त्रिकालं वर्षञ्च ततः शुद्धो बभूव सः । साक्षाद् बभूव तत्रैव मूलप्रकृतिरीश्व
राज्ञे ददौ राज्यवरं मनुत्वं वाञ्छितं सुखम् । ज्ञानं निगूढं वैश्याय ददौ चातिसुदुर्लभ
यद्दत्तं शूलिने पूर्वं कृष्णेन परमात्मना । निराहारमतिक्लिष्टं दृष्ट्वा वैश्यं कृपामयी ॥ ६
रुरोद कृत्वा क्रोडे तमचेष्टं श्वासवर्जितम् । चेतनां कुरु भो वत्सेत्युच्चार्य्य च पुनःपुन
चेतनाञ्च ददौ तस्मै स्वयं चैतन्यरूपिणी । संप्राप्य चेतनां वैश्यो रुरोद प्रकृतेः पुरः ।
तमुवाच प्रसन्ना सा कृपयाऽतिकृपामयी ॥ १२ ॥

श्रीप्रकृतिरुवाच ।

वरं वृणुष्व हे वत्स यत्ते मनसि वर्त्तते । ब्रह्मत्वममरत्वं वा ततो वाऽति सुदुर्लभम्॥१३
इन्द्रत्वं वा मनुत्वंवा सर्वसिद्धिरथमेव च । तुच्छं तुभ्यं न दास्यामि नश्वरंबालवञ्चनम्

वैश्य उवाच ।

ब्रह्मत्वममरत्वं वा मातर्मे नहि वाञ्छितम् । ततोऽतिदुर्लभं किंवा न जानेतदभीप्सितम्
त्वय्येव शरणापन्नो देहि यद्वाञ्छितं तव । अनश्वरं सर्वसारं वरं मे दातुमर्हसि ॥१६॥

प्रकृतिरुवाच ।

अदेयं नास्ति मे तुभ्यं दास्यामिममवाञ्छितम् । यतो यास्यसि गोलोकंपदमेवसुदुर्लभम्
सर्वसारञ्च यज्ज्ञानं सुरर्षीणां सुदुर्लभम् । तद्गृह्यतां महाभाग गच्छ वत्स हरेः पदम्
स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्त्तनम् । श्रवणं भावनं सेवा सर्वं कृष्णे निवेदितम् ॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम् । जन्ममृत्युजराव्याधियमताड़नखण्डनम् ॥
आयुर्हरति लोकानां रविरेव हि सन्ततम् । नवधाभक्तिहीनानामसतां पापिनामपि ॥
भक्तास्तद्गतचित्ताश्च वैष्णवाश्चिरजीविनः । जीवन्मुक्ताश्च निष्पापा जन्मादिपरिवर्जिताः
शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णुर्महान् विराट् । सनत्कुमारः कपिलः सनकश्चसनन्दनः

वोढुः पञ्चशिखो दक्षो नारदश्च सनातनः । भृगुर्मरीचिर्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः
मेधसो लोमशः शुक्रो वशिष्ठः क्रतुरेव च । बृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः ॥
मार्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वरः । यमः सूर्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः ।
अकूपार उलूकश्च नाडीजङ्घश्च वायुजः । नरनारायणौ कूर्म्म इन्द्रद्युम्नो विभीषणः ॥२७
नवधा भक्तियुक्तश्च कृष्णस्य परमात्मनः । एते महान्तो धर्मिष्ठा भक्तानां प्रवरास्तथा ।

ये तद्भक्तास्ते तदंशा जीवन्मुक्ताश्च सन्ततम् ।
पापापहारास्तीर्थानां पृथिव्याश्च विशाम्पते ॥ २९ ॥

ऊर्द्ध्वे च सप्त स्वर्गाश्चसप्तद्वीपावसुन्धरा । अधः सप्त च पाताला एतद्ब्रह्माण्डमेवच
एवं विधानां विश्वानां संख्यानास्त्येव पुत्रक । एवञ्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवादयः

देवा देवर्षयश्चैव मनवो मानवादयः ।
सर्वाश्रमाश्च सर्वत्र सन्ति बद्धाश्च मायया ॥ ३२ ॥
महद्विष्णोर्लोमकूपे सन्ति विश्वानि यस्य च ।
स षोडशांशः कृष्णस्य चात्मनश्च महान् विराट् ॥३३॥

भज सत्यं परं ब्रह्म नित्यं निर्गुणमच्युतम् । प्रकृतेःपरमीशानं कृष्णमात्मानमीप्सितम् ॥

निरीहश्च निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
निष्कामं निर्विरोधश्च नित्यानन्दं सनातनम् ॥३५॥

स्वेच्छामयं सर्वरूपं भक्तानुग्रहविग्रहम् । तेजःस्वरूपं परमं दातारं सर्वसम्पदाम् ॥३६॥
ध्यानासाध्यंदुराराध्यंशिवादीनाञ्चयोगिनाम् । सर्वेश्वरंसर्वपूज्यंसर्वेस्य सर्वकामदम् ॥
सर्वाधारञ्च सर्वज्ञं सर्वानन्दकरं परम् । सर्वधर्मप्रदं सर्वं सर्वेशं प्राणरूपिणम् ॥३८॥
सर्वधर्मस्वरूपञ्च सर्वकारणकारणम् । सुखदं मोक्षदं सारं परूपाञ्च भक्तिदम् ॥३९॥
दास्यदं धर्मदश्चैव सर्वसिद्धिप्रदं सताम् । सर्वं तदतिरिक्तञ्च नश्वरं कृत्रिमं सदा ॥४०॥
परात्परतरं शुद्धं परिपूर्णतमं विभुम् । यथातुलं गच्छ वत्स भगवन्तमधोक्षजम् ॥४१॥
इत्येवं ब्रह्मणं मन्त्रं गृहाण कृष्णदास्यदम् । सुष्करं दुष्करं तस्माद्दशाक्षरमिदं जप ॥
[illegible] नवैवानन्तरधीमत ॥ ४३ ॥

वैश्यो नत्वाचतांभक्तयाजगामपुष्करंमुने। पुष्करेदुस्तरं तप्त्वा संप्राप कृष्णमीश्वर
भगवत्याः प्रसादेन कृष्णदासो बभूव सः ॥४४॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने सुरथसमाधिमेधससंवादे प्रकृतिवैश्यसंवादकथनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः।

---

# चतुःषष्टितमोऽध्यायः

## राज्ञः सुरथस्य दुर्गापूजनम्।

नारायण उवाच।

राजा येन क्रमेणैव भेजे तां प्रकृतिं पराम्। तच्छ्रूयतां महाभाग वेदोक्तं क्रममेव च ॥
स्नात्वाऽऽचम्य महाराजःकृत्वान्यासत्रयंतदा। स्वकराङ्गाङ्गमन्त्राणांभूतशुद्धिचकारसः
प्राणायामं ततः कृत्वा कृत्वा च शङ्खशोधनम्।
ध्यात्वा देवीञ्च मृण्मय्यां चकारावाहनं तदा ॥३॥
पुनर्ध्यात्वा च भक्तया च पूजयामास भक्तितः।
देव्याश्च दक्षिणे भागे संस्थाप्य कमलालयाम् ॥४॥
संपूज्य भक्तिभावेन भक्तया परमधार्मिकः। देवषट्कं समावाह्य देव्याश्चपुरतो घटे ॥५
भक्तया च पूजयामास विधिपूर्वञ्च नारद। गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुंशिवंशिवाम्॥
देवषट्कञ्च संपूज्य नमस्कृत्य विचक्षणः। तदा ध्यायेन्महादेवीं ध्यानेनानेन भक्तितः॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं परं कल्पतरुं मुने। ध्यायेन्नित्यं महादेवीं मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥८
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पूज्यां वन्द्यां सनातनीम्।
नारायणीं विष्णुमायां वैष्णवीं विष्णुभक्तिदाम् ॥९॥
सर्वस्वरूपां सर्वेषां सर्वाधारां परात्पराम्। सर्वविद्यासर्वमन्त्रसर्वशक्तिस्वरूपिणीम् ॥

सगुणां निर्गुणां नित्यां परां स्वेच्छामयीं सतीम् ।
महाविष्णोश्च जननीं कृष्णस्यार्द्धाङ्गसम्भवाम् ॥११॥
कृष्णप्रियां कृष्णशक्तिं कृष्णबुद्ध्यधिदेवताम् ।
कृष्णस्तुतां कृष्णपूज्यां कृष्णवन्द्यां कृपामयीम् ॥१२॥
[illegible]कोटिपूर्णचन्द्रसमप्रभाम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम् ॥
दुर्गां भक्तप्रियां देवीं महादुर्गतिनाशिनीम् ।
त्रिलोकवन्दितां माध्वीं त्रिगुणाद्यां त्रिलोचनाम् ॥१४॥
[illegible] । बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम् ॥
[illegible] । [illegible]गण्डस्थलविराजिताम् ॥
[illegible] । [illegible] बिभ्रतीं [illegible] ॥
[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] । [illegible] ॥ १७ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१८॥
[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥१९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥२०॥
[illegible] । [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] । [illegible] ।
[illegible] ॥

संहारकाले संहर्त्तुः परां संहाररूपिणीम् । निशुम्भशुम्भमथिनीं महिषासुरमर्दिनीम्
पुरा त्रिपुरयुद्धे च संस्तुतां त्रिपुरारिणा । मधुकैटभयोर्युद्धे विष्णुशक्तिस्वरूपिणीम्
सर्वदैत्य निहन्त्रीञ्च रक्तबीजविनाशिनीम् । नृसिंहशक्तिरूपाञ्च हिरण्यकशिपोर्वधे
वराहशक्तिं वाराहे हिरण्याक्षवधे तथा । परब्रह्मस्वरूपाञ्च सर्वशक्तिं सदा भजे ॥३१

इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः ।
पुनर्ध्यात्वा चैव भक्त्या कुर्य्यादावाहनन्ततः ॥३२॥

प्रकृतेः प्रतिमां धृत्वा मन्त्रमेवं पठेन्नरः । जीवन्यासं ततः कुर्य्यात् मनुमानेनयत्नतः ।
एह्येहि भगवत्यम्ब शिवलोकात् सनातनि । गृहाण मम पूजाञ्च शारदीयां सुरेश्वरि ।
इहागच्छ जगत्पूज्ये तिष्ठ तिष्ठ महेश्वरि । हे मातरस्यामर्चायांसन्निरुद्धाभवाम्बिके ॥
इहागच्छन्तु ख्वत् प्राणाश्चाद्यःप्राणैः सहाच्युते । इहागच्छन्तु त्वरितं तवैवसर्वशक्तयः
ओं ह्रींश्रीक्लीं चदुर्गायैवह्निजायान्तमेवच । समुच्चार्य्यारसिप्राणाःसन्तिष्ठन्तुसदाशिवे ॥
सर्वेन्द्रियाधिदेवास्ते इहागच्छन्तु चण्डिके । इहागच्छन्तुतेशक्तयइहागच्छन्तुईश्वराः ॥
स इहागच्छेत्यावाह्य परिहारं करोति च । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्रतच्छृणुष्व समाहितः ॥
स्वागतं भगवत्यम्ब शिवलोकाच्छिवप्रिये । प्रसादं कुरुमांभद्रेभद्रकालि नमोऽस्तुते ॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवनं मम । आगतासियतोदुर्गेमाहेश्वरि मदालयम् ॥

अद्य मे सफलं जन्म सार्थकं जीवनं मम ।
पूजयामि यतो दुर्गां पुण्यक्षेत्रे च भारते ॥४२॥

भारते भवतीं पूज्यां दुर्गां यः पूजयेद्बुधः । सोऽन्तेयातिचगोलोकं परमैश्वर्य्यवानिह
कृत्वाचवैष्णवीपूजांविष्णुलोकंव्रजेत्सुधीः । माहेश्वरीञ्चसंपूज्यशिवलोकञ्चगच्छति ॥
सात्त्विकी राजसीचैवत्रिधापूजाचतामसी । भगवत्याश्चवेदोक्ताचोत्तमामध्यमाधमा ॥
सात्त्विकीवैष्णवानाञ्चशाक्तादीनाञ्चराजसी । अदीक्षितानामसतामन्यानांतामसीस्मृता
जीवहत्याविहीनायावरापूजाचवैष्णवी । वैष्णवा यान्ति गोलोकं वैष्णवीवरदानतः ॥
माहेश्वरी राजसी च बलिदानसमन्विता । शाक्ताद्योराजसाश्चकैलासं यान्ति ते तया॥
किराता नरकं यान्ति तामस्या पूजया तया । त्वमेव जगतां मातश्चतुर्वर्गफलप्रदा ॥४६

सर्वशक्तिस्वरूपा च कृष्णस्य परमात्मनः । जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्वञ्च सनातनी ॥
सुखदा मोक्षदा भद्रा कृष्णभक्तिप्रदा सदा । नारायणि महामाये दुर्गे दुर्गतिनाशिनि ॥
दुर्गेति स्मृतिमात्रेण यासि दुर्गं कृपानिधे । इति कृत्वा परिहारं देवयामे च साधकः
त्रिपद्या उपरिष्टात्तु कुर्य्याच्च शङ्खरक्षणम् । तत्र दत्त्वा जलं पूर्णं दूर्वां पुष्पञ्च चन्दनम् ॥
धृत्वा दक्षिणहस्तेन मन्त्रमेवं पठेन्नरः ।
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् । प्रमवः शङ्खचूडात्त्वं पुराकल्पे पवित्रकः
ततोऽर्घ्यपात्रं संस्थाप्य विधिनानेन पण्डितः । दत्त्वा संपूजयेद्देवीमुपचाराणि षोड़श
त्रिकोणमण्डलं कृत्वा सजलेन कुशेन च । कूर्मं शेषं धरित्रीञ्च संपूज्य तत्र धार्मिकः
त्रिपदिं स्थापयेत्तत्र त्रिपद्यां शङ्खमेव च । शङ्खे त्रिभागतोयञ्च दत्त्वा संपूजयेत्ततः ॥५९॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्म्मदे सिन्धु कावेरी चन्द्रभागे च कौशिकि
स्वर्णरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि । श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति ॥६०
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे । शतद्रु वेत्रगङ्गे जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
वह्निं सूर्य्यञ्च चन्द्रञ्च विष्णुञ्च वरुणं शिवम् । पूजयेत्तत्र तोये च तुलस्या चन्दनेन च ।
नैवेद्यानि च सर्वाणि प्रोक्षयेत्तज्जलेन च ॥६१॥
ततो दद्याच्च प्रत्येकमुपचाराणि षोड़श । आसनं वसनं पाद्यं स्नानीयमनुलेपनम् ॥६२॥
मधुपर्कं गन्धमर्घ्यं पुष्पं नैवेद्यमीप्सितम् । पुनराचमनीयञ्च ताम्बूलं रत्नभूषणम् ॥६३॥
धूपं प्रदीपं तल्पञ्चेत्युपचाराणि षोड़श ॥ ६४ ॥
अमूल्यरत्ननिर्माणं नानाचित्रविराजितम् । वरं सिंहासनश्रेष्ठं गृह्यतां शङ्करप्रिये ॥ ६५॥
अनन्तसूत्रप्रभवमीश्वरेच्छाविनिर्मितम् । ज्वलदग्निविशुद्धञ्च वसनं गृह्यतां शिवे ॥६६॥
अमूल्यरत्नपात्रस्थं निर्मलं जाह्नवीजलम् । पादप्रक्षालनार्थाय दुर्गे पाद्यं प्रगृह्यताम् ॥६७
सुगन्धामलकी स्निग्धद्रवमेव सुदुर्लभम् । सुपक्वं विष्णुतैलञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥६८॥
कस्तूरी कुङ्कुमाक्तञ्च सुगन्धि चन्दनद्रवम् । सुवासितं जगन्मातर्गृह्यतामनुलेपनम् ॥६९
[illegible] सुपवित्रं सुमङ्गलम् । मधुपर्कं महादेवि गृह्यतां प्रीतिपूर्वकम्
[illegible] समन्वितं । सुपवित्रं मङ्गलार्हं देवि गन्धं गृहाण मे ॥७१॥

पवित्रशङ्खपात्रस्थं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् । स्वर्गमन्दाकिनीतोयमर्घ्यं चण्डि गृहाण मे ॥
सुगन्धिपुष्पश्रेष्ठञ्च पारिजाततरूद्भवम् । मालत्यादिपुष्पमाल्यं गृह्यतां जगदम्बिके ॥

दिव्यं सिद्धान्नमामान्नं पिष्टकं पायसादिकम् ।
मिष्टान्नं लड्डुकफलं नैवेद्यं गृह्यतां शिवे ॥ ७४ ॥

सुवासितं शीततोयं कर्पूरादिसुसंस्कृतम् । मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां शैलकन्यके ॥
गुवाकपर्णचूर्णञ्च कर्पूरादि सुवासितम् । सर्वभोगकरं रम्यं ताम्बूलं देवि गृह्यताम् ॥
अत्यमूल्यरत्नसारनिर्माणमीश्वरेच्छया । सर्वाङ्गशोभनकरं भूषणं देवि गृह्यताम् ॥७७॥
वह्निर्य्यासचूर्णञ्च गन्धवस्तुसमन्वितम् । हुताशनशिखाशुद्धं धूपञ्च देवि गृह्यताम् ॥
दिव्यरत्नविशेषञ्च सान्द्रध्वान्तनिराकृतम् । सुपवित्रं प्रदीपञ्च गृह्यतां परमेश्वरि ॥७९॥
रत्नसारविनिर्माणं दिव्यं पर्य्यङ्कमुत्तमम् । सूक्ष्मवस्त्रसमाकीर्णं देवि तल्पं प्रगृह्यताम् ॥
एवं संपूज्य तां दुर्गां दद्यात् पुष्पाञ्जलिं मुने । ततोऽष्टनायिका देव्या यत्नतःपरिपूजयेत्

उग्रचण्डां प्रचण्डां च चण्डोग्रां चण्डनायिकाम् ।
अतिचण्डाञ्च चामुण्डां चण्डां चण्डवतीं तथा ॥ ८२ ॥

पद्मे चाष्टदले चैताः प्रागादिक्रमतस्तथा । पञ्चोपचारैः संपूज्य भैरवान्मध्यदेशतः ॥८३
आदौ महाभैरवञ्च संहारभैरवं तथा । असिताङ्गभैरवञ्च रुरुभैरवमेव च ॥ ८४ ॥
ततः कालभैरवञ्च क्रोधभैरवमेव च । ताम्रचूडं चन्द्रचूडमन्ते च भैरवद्वयम् ॥ ८५ ॥
एतान् संपूज्य मध्ये च नवशक्तींश्च पूजयेत् । तत्र पद्मे चाष्टदले मध्ये च भक्तिपूर्वकम्
वैष्णवीञ्चैव ब्रह्माणीं रौद्रीं माहेश्वरीं तथा । नारसिंहीञ्च वाराहीमिन्द्राणीं कार्त्तिकीं तथा
सर्वशक्तिस्वरूपाञ्च प्रधानां सर्वमङ्गलाम् । नवशक्तींश्च संपूज्य घटे देवांश्च पूजयेत् ॥
शङ्करं कार्त्तिकेयञ्च सूर्यं सोमं हुताशनम् । वायुञ्च वरुणञ्चैव देव्याश्चेटीं यत्नतया
चतुःषष्टियोगिनीश्च संपूज्य विधिपूर्वकम् । यथाशक्ति बलिं दत्त्वा करोति स्तवनं बुधः
कवचञ्च गले बद्ध्वा पठित्वा भक्तिपूर्वकम् । कृत्वा परिहारं नमस्कुर्य्याद्विचक्षणः
बलिदानविधानञ्च श्रूयतां मुनिसत्तम । मायाति महिषं छागं दद्यान्मेषादिकं शुभम् ॥
सहस्रवर्षं सुप्रीता दुर्गामायाति दानतः । महिषेण वर्षशतं दशवर्षञ्च छागलात् ॥९१॥

र्षं मेषेण कूष्माण्डैः पक्षिभिर्हरिणैस्तथा । दशवर्षं कृष्णसारैः सहस्राब्दञ्च गण्डकैः ।
कृत्रिमैः पिष्टनिर्माणैः षण्मासं पशुभिस्तथा । मासं सुपक्वादिफलैरक्षतैरिति नारद ॥
युवकं व्याधिहीनञ्च सश्रृङ्गं लक्षणान्वितम् । विशुद्धमविकाराङ्गं सुपर्णं पुष्टमेव च ॥
शिशुना बलिना दातुर्हन्ति पुत्रञ्च चण्डिका । वृद्धेनैव गुरुजनं कृशेण बान्धवस्तथा ॥
नञ्चैवाधिकाङ्गेन हीनाङ्गेन प्रजान्तथा । कामिनीं शृङ्गभङ्गेन काणेन भ्रातरन्तथा ॥९८
गुल्मिकेन भवेन्मृत्युर्विप्रश्च छिन्नमस्तकैः । हतं मित्रं ताम्रपिष्टैश्छिन्नैः पुच्छहीनतः ॥९९॥
गायातीनाञ्च निर्णीतं श्रूयतां मुनिसत्तम । वक्ष्याम्यथर्ववेदोक्तं फलहानिर्व्यतिक्रमे ॥
पितृमातृविहीनञ्च युवकं व्याधिवर्जितम् । विवाहितं दीक्षितञ्च परदारविहीनकम् ॥
अजारजं विशुद्धश्च सच्छूद्रं मूलकं वरम् । तद्बन्धुभ्यो धनं दत्वा क्रीतं मूल्यातिरेकतः
स्नापयित्वाच तं धर्मो संपूज्य वस्त्रचन्दनैः । माल्यैर्धूपैश्च सिन्दूरैर्दधिगोरोचनादिभिः
नश्च वर्षं भ्रामयित्वा वरद्वारेण यत्नतः । वर्षान्तेच समुत्सृज्य दुर्गायै तं निवेदयेत् ॥
अष्टमीनवमीसन्धौ दद्यान्मायातिमेव च । इत्येवं कथितं सर्वं बलिदानं प्रसङ्गतः ॥

बलिं दत्वा च स्तुत्वा च धृत्वा च कवचं बुधः ।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ १०६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

---

## पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

### दुर्गोपाख्याने ध्यानकथनम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं महाभाग सुधारससमं परम् । स्तोत्रञ्च कवचं पूजाफलं कामं वद प्रभो ॥१॥

नारायण उवाच ।

... वेदोक्तवेदी मूर्त्तिरेव प्रवेशयेत् । उपरेणार्चनं कृत्वा श्रवणायां विसर्जयेत् ॥२॥

आर्द्रायुक्तनवम्यान्तु कृत्वा देव्याश्च बोधनम् ।
पूजायाः शतवार्षिक्याः फलमाप्नोति मानवः ॥ ३ ॥
मूलायान्तु प्रवेशे च नरमेधफलं लभेत् । उत्तरे पूजनं कृत्वा वाजपेयफलं लभेत् ॥४॥
कृत्वा विसर्जनं देव्याः श्रवणायाश्च मानवः । लक्ष्मीश्च पुत्रपौत्राणां लभते नात्रसंशयः
सुचः प्रदक्षिणं पुण्यं पूजायां लभते नरः । नक्षत्रहीने वर्षे चेत् पार्वत्याश्चैव नारद॥६॥
नवम्यां बोधनं कृत्वा पक्षं संपूज्य मानवः । अश्वमेधफलं लब्ध्वा दशम्याञ्च विसर्जयेत्
सप्तम्यां पूजनं कृत्वा बलिं दद्याद्विचक्षणः । अष्टम्यां पूजनं शस्तं बलिदानविवर्जितम् ॥
अष्टम्यां बलिदानेन विपत्तिर्जायते नृणाम् । दद्याद्विचक्षणो भक्त्यानवम्यां विधिवद्बलिम्
बलिदानेन विप्रेन्द्र दुर्गाप्रीतिर्भवेन्नृणाम् । हिंसाजन्यञ्च पापञ्च लभते नात्रसंशयः ॥१०
उत्सर्गकर्त्ता दाता च छेत्ता पोष्टा च रक्षकः । अग्रपश्चान्निबद्धा च सप्तैते वधभागिनः॥
यो यं हन्ति स तं हन्ति चेति वेदोक्तमेव च । कुर्वन्ति वैष्णवीं पूजां वैष्णवास्तेन हेतुना
एवं संपूज्य सुरथः पूर्ण वर्षञ्च भक्तितः । कवचञ्च गले बद्ध्वा तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥
स्तोत्रेण परितुष्टा सा तस्य साक्षाद्बभूव ह । स ददर्श पुरो देवीं ग्रीष्मसूर्य्यसमप्रभाम्॥
तेजःस्वरूपां परमां सगुणां निर्गुणां वराम् । दृष्ट्वा तां कमनीयाञ्च तेजोमण्डलमध्यतः ॥
स्वेच्छामयीं कृपारूपां भक्तानुग्रहकातराम् । पुनस्तुष्टाव राजेन्द्रो भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥
स्तवेन परितुष्टा सा सस्मिता भक्तिपूर्वकम् । उवाच सत्यं राजेन्द्रं कृपया जगदम्बिका॥

प्रकृतिरुवाच ।

साक्षात् संप्राप्य मां राजन् वृणोषि विभवं वरम् ।
ददामि तुभ्यं विभवं साम्प्रतं वाञ्छितं तव ॥ १८ ॥
निर्जित्य सर्वान् शत्रूंश्च लभ राज्यमकण्टकम् । भविष्यसि महाराज सावर्णिरष्टमो मनुः
दास्यामि तुभ्यं ज्ञानञ्च परिणामे नराधिप । भक्तिं दास्यञ्च परमे श्रीकृष्णे परमात्मनि॥
वृणोति विभवं यो हि साक्षान् मां प्राप्य मन्दधीः ।
मायया वञ्चितः सोऽपि विषमत्त्यमृतं त्यजेत् ॥ २१ ॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं सर्वं नश्वरमेव च । नित्यं सत्यं परं ब्रह्म कृष्णं निर्गुणमेव च ॥

ह्मविष्णुशिवादीनां महमायापरात्परा । सगुणानिर्गुणा चापि वरा स्वेच्छामयीसदा॥
त्यानित्या सर्वरूपा सर्वकारणकारणा । बीजरूपा च सर्वेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी ।२४
ण्ये वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले । राधा प्राणाधिकाहञ्च कृष्णस्य परमात्मनः
हं दुर्गा विष्णुमाया बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता । अहं लक्ष्मीश्च वैकुण्ठे स्वयं देवी सरस्वती ॥
ावित्री वेदमाताऽहं ब्रह्माणी ब्रह्मलोकतः । अहं गङ्गा च तुलसी सर्वाधारा वसुन्धरा
नाविधाहं कलया मायया सर्वयोषितः । साहं कृष्णेन सृष्टाच भ्रूभङ्गलीलया नृप ॥

भ्रूभङ्गलीलया सृष्टो येन पुंसा महान् विराट् ।
यस्य लोमाञ्च कूपेषु विश्वानि सन्ति नित्यशः ॥२६ ॥

ंख्यानिच तान्येवकृत्रिमाणिच मायया । अनित्येषुनित्यबुद्धिं सर्वे कुर्वन्ति सन्ततम्
प्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा । तदधः सप्तपातालाः स्वर्लोकाश्चैव सप्त च ॥
ंविश्वञ्च निर्माणं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा कृतम् । प्रत्येकं सर्वब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥
र्वेषामीश्वरः कृष्ण इति ज्ञानं परात्परम् । वेदानाञ्च व्रतानाञ्च तीर्थानां तपसांतथा ॥
ानाञ्चैव पुण्यानां सारःकृष्ण इतिस्मृतः । तद्भक्तिहीनो यो मूढ़ः सचजीवन्मृतोध्रुवम्
वित्राणिच तीर्थानि तद्भक्तस्पर्शवायुना । तन्मन्त्रोपासकश्चैव जीवन्मुक्तइति स्मृतः ॥
न्त्रग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् । विना जपेन तपसा विना तीर्थेन पूजया ॥
तामहानां शतकं पितृणाञ्च सहस्रकम् । पुंसामेवं समुद्धृत्य गोलोकं स च गच्छति॥
ं ज्ञानं सारभूतं कथितं ते नराधिप । मन्वन्तरान्ते भोगान्ते भक्तिं दास्यामिते हरौ॥
भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

अहं यमनुगृह्णामि तस्मै दास्यामि निर्म्मलाम् ।
निश्चलां सुदृढां भक्तिं श्रीकृष्णे परमात्मनि ॥ ४० ॥

ोमि वञ्चनां यं यं तेभ्योदास्यामि सम्पदम् । प्रातःस्वप्नस्वरूपञ्च मिथ्येतिभ्रमरूपिणीम्
ते ते कथितं ज्ञानं गच्छ वत्स यथासुखम् । इत्युक्त्वाच महादेवी तत्रैवान्तरधीयत॥
ाज्ञां संप्राप्य राजश्च नत्वा तां प्रययौगृहम् । इतिते कथितंवत्स दुर्गोपाख्यानमुत्तमम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे प्रकृतिखण्डे नारायणनारदसंवादे दुर्गोपाख्याने
प्रकृतिसुरथसंवादे ज्ञानकथनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

# षट्षष्टितमोऽध्यायः

## श्रीकृष्णकृतदुर्गास्तोत्रम् ।

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं नाथशिष्टं किञ्चिदेव हि निश्चितम् । प्रकृतेः कवचं स्तोत्रं ब्रूहि मे मुनिसत्तम॥

नारायण उवाच ।

ुरा स्तुता सा गोलोके कृष्णेन परमात्मना । संपूज्य मधुमासे च प्रीतेन रासमण्डले।

मधुकैटभयोर्युद्धे द्वितीये विष्णुना पुरा ॥ २ ॥

त्रैव काले सा दुर्गा ब्रह्मणा प्राणसंकटे । चतुर्थे संस्तुता देवी भक्त्याच त्रिपुरारिणा

ुरा त्रिपुरयुद्धेन महाघोरतरे मुने । पञ्चमे संस्तुता देवी वृत्रासुरवधे तथा ॥ ४ ॥

क्रेण सर्वदेवैश्च घोरे च प्राणसङ्कटे । सदा मुनीन्द्रैर्मनुभिर्मानवैः सुरथादिभिः ॥ ५ ॥

स्तुतापूजितासा च कल्पेकल्पेपरात्परा । स्तोत्रञ्चश्रूयतांब्रह्मन् सर्वविघ्नविनाशनम् ॥

सुखदं मोक्षदं सारं भवाब्धिपारकारणम् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी । त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका

कार्य्यार्थे सगुणा त्वञ्च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम् ।

परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी ॥ ८ ॥

तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा । सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥ ९ ॥

सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया । सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला ॥१०॥

सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी । सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी ॥११

त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधास्वयम् । दक्षिणासर्वदानेचसर्वशक्तिस्वरूपिणी॥

निद्रा त्वञ्च दया त्वञ्च तृष्णा त्वञ्चात्मनश्च मे ।

क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिः सृष्टिश्च शाश्वती ॥१३॥

श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा दया सदा । सतांसम्पत्स्वरूपाश्रीर्विपत्तिरसतामिह

प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा । शश्वत्कर्ममयीशक्तिःसर्वदा सर्वजीविनाम् ॥

देवेभ्यः स्वपदं दात्री धातुर्धात्री कृपामयी । हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी ।

योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम् ।

सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धयोगिनी ॥१७॥

माहेश्वरी च ब्रह्माणी विष्णुमाया च वैष्णवी । भद्रदा भद्रकालीसर्वलोकभयङ्करी ।
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे । सतां कीर्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां स
महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी । रक्षास्वरूपा शिष्टानां मातेव हितकारिणी ॥२
वन्द्या पूज्या स्तुता त्वञ्च ब्रह्मादीनाञ्च सर्वदा । ब्राह्मण्यरूपा विप्राणांतपस्या च तपस्विना
विद्याविद्यावतां त्वञ्च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम् । मेधास्मृतिस्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम् ।
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी । सृष्टिस्वरूपा सृष्टौ त्वं रक्षारूपा च पालने
तथान्ते त्वंमहामारी विश्वस्य विश्वपूजिते । कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी ॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया संमोहितंजगत् । ययामुग्धोहिविद्वांश्चमोक्षमार्गंनपश्यति ॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गायादुर्गनाशनम् । पूजाकालेपठेद्योहिसिद्धिर्भवतिवाञ्छिते ॥

वन्ध्या च काकवन्ध्या च मृतवत्सा च दुर्भगा ।

श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम् ॥२७॥

कारागारे महाघोरे यो बद्धो दृढबन्धने ।

श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥२८॥

यक्ष्माग्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी ।

श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात् प्रमुच्यते ॥२९॥

पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः । श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्रसंशयः ॥३०
राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले । हिंस्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रंप्रमुच्यते ॥
गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते । स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः ॥
महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः । विद्यावान् धनवांश्चैव स भवेन्नात्रसंशयः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गोपाख्याने दुर्गास्तोत्रं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

## सप्तषष्टितमोऽध्यायः

### प्रकृतिकवचापरनामकं ब्रह्माण्डमोहनकवचम् ।

नारद उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद । ब्रह्माण्डमोहनं नाम प्रकृतेः कवचं वद ॥ १ ॥

नारायण उवाच ।

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचञ्च सुदुर्लभम् । श्रीकृष्णेनैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥
ब्रह्मणा कथितं सर्वं धर्माय जाह्नवीतटे । धर्मेण दत्तं मह्यञ्च कृपया पुष्करे प्रभुः ॥३॥
त्रिपुरारिश्च यद्धृत्वा जघान त्रिपुरं पुरा । मुमोच ब्रह्मा यद् धृत्वा मधुकैटभयोर्भयम् ।
संजहार रक्तबीजं यद्धृत्वा भद्रकालिका ॥४॥
यद्धृत्वा तु महेन्द्रश्च संप्राप कमलालयाम् । यद्धृत्वाचमहाकालश्चिरजीवीवधार्मिकः ॥
यद्धृत्वा च महाज्ञानी नन्दी सानन्दपूर्वकम् ।
यद्धृत्वा च महायोद्धा रामः शत्रुभयङ्करः ॥६॥
यद्धृत्वा शिवतुल्यश्चदुर्वासाज्ञानिनांवरः । ओं दुर्गेतिचतुर्थ्यन्तंस्वाहान्तोमेशिरोऽवतु॥
मन्त्रः षडक्षरोऽयञ्च भक्तानां कल्पपादपः । विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणे चमन्त्रोर्मुने॥८
मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः । मम वक्त्रं सदापातु ओं दुर्गायैनमोऽन्ततः ॥
ओं दुर्गे रक्ष इति च कण्ठं पातु सदा मम ।
ओं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम् ॥१०॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं इति पृष्ठञ्च पातु मे सर्वतः सदा ।
ह्रीं मे वक्षस्थलं पातु हस्तं श्रीमितिसन्ततम् ॥११॥
ओं श्रीं ह्रीं श्रीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा ।
प्राच्यां मां पातु प्रकृतिः पातु वह्नौ च चण्डिका ॥१२॥
दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋते च महेश्वरी । वारुणे पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला ॥

उत्तरे वैष्णवी पातु वायव्यां शिवप्रिया । जले स्थले चान्तरीक्षे पातु मां जगदम्बिका
इति ते कथितं वत्स कवचञ्च सुदुर्लभम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः
भ्रमणे सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे । यत् फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणे मुने ॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्भवेद् ध्रुवम् । लोकश्च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति सङ्कटे
नतस्यमृत्युर्भवतिजलेवह्नौविषेध्रुवम् । जीवन्मुक्तोभवेत्सोऽपिसर्वसिद्धेश्वरः स्वय
यदिस्यात्सिद्धकवचोविष्णुतुल्योभवेद्ध्रुवम् । कथितंप्रकृतेःखण्डंसुधाखण्डात्परं मु

या एव मूलप्रकृतिर्यस्याः पुत्रो गणेश्वरः ।
कृत्वा कृष्णव्रतं सा च लेभे गणपतिं सुतम् ॥२१॥
स्वांशेन कृष्णो भगवान् बभूव च गणेश्वरः ॥२२॥

श्रुत्वाचप्रकृतेःखण्डं सुश्रवञ्चसुधोपमम् । भोजयित्वाचदध्यन्नंतस्मैदद्याच्चकाञ्चन
सवत्सां सुरभीं रम्यां दद्याच्च भक्तिपूर्वकम् ॥२३॥
वासोऽलङ्कारलैश्च तोषयेद्वाचकं मुने । पुष्पालङ्कारवसनैर्नानोपाहारसंयुतैः ॥२४॥
पुस्तकं पूजयेदेवं भक्तिश्रद्धासमन्वितः । एवं कृत्वा यःशृणोतितस्यविष्णुः प्रसीदति
वर्द्धते पुत्रपौत्रादिर्यशस्वी तत्प्रसादतः । लक्ष्मीर्वसति तद्गेहेह्यन्तेगोलोकमाप्नुयात्
लभेत् कृष्णस्य दास्यं स भक्तिं कृष्णे सुनिश्चलाम् ॥२६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे प्रकृतिखण्डे दुर्गोपाख्याने प्रकृतिकवचं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

समाप्तश्चायं प्रकृतिखण्डः ।

---

* श्रीगणेशायनमः *

# अथ तृतीयं गणपतिखण्डम्

## प्रथमोऽध्यायः

### गणेशजन्मविषयकप्रश्नविचारः ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

नारद उवाच ।

श्रुतं प्रकृतिखण्डं तदमृतार्णवमुत्तमम् । सर्वोत्कृष्टमभीप्सितञ्च मूढानां ज्ञानवर्द्धनम् ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि गणेशखण्डमीश्वर । तज्जन्मचरितं नृणां सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥३॥ कथं जज्ञे सुरश्रेष्ठः पार्वत्या उदरे शुभे । देवी केन प्रकारेण ललाभ तादृशं सुतम् ॥४॥ सर्वांशःकस्य देवस्य कथंजन्मललाभसः । अयोनिसम्भवःकिंवाऽसौचकियोनिसम्भवः

किं वा तद् ब्रह्मतेजो वा किं तस्य च पराक्रमः ।

का तपस्या च किं ज्ञानं किं वा तन्निर्मलं यशः ॥६॥

कथं तस्य पुरः पूजा विश्वेषु निखिलेषु च । स्थिते नारायणेशम्भौजगदीशेचब्रह्मणि ॥ पुराणेषु निगूढञ्च तज्जन्म परिकीर्तितम् । कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदरः ॥ एतत् सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम । सुविस्तीर्णं महाभाग तदतीव मनोहरम् ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । पापसन्तापहरणं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥१०॥ सर्वमङ्गलदं सारं सर्वश्रुतिमनोहरम् । सुखदं मोक्षबीजञ्च पापमूलनिकृन्तनम् ॥ ११ ॥ दैत्यार्दितानां देवानां तेजोराशिसमुद्भवा । देवी संहृत्य दैत्यौघान् दक्षकन्या बभूव ह सा च नाम्नासती देवीस्वामिनोनिन्दया पुरा । देहं संत्यज्य योगेन जाताशैलप्रियोदरे

ङ्कराय ददौ ताञ्च पार्वतीं पर्वतो मुदा । तां गृहीत्वा महादेवो जगाम निर्जनं वनम् ।
म्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम् । स रेमे नर्म्मदातीरे पुष्पोद्याने तया सह ।
हस्रवर्षपर्य्यन्तं देवमानेन नारद । तयोर्बभूव शृङ्गारं विपरीतादिकं परम् ॥ १६ ॥

दुर्गाङ्गस्पर्शमात्रेण कामेन मूर्च्छितः शिवः ।
मूर्च्छिता सा शिवस्पर्शाद्बुबुधे न दिवानिशम् ॥ १७ ॥

सकारण्डवाकीर्णे पुंस्कोकिलरुतश्रुते । नानापुष्पविकसिते भ्रमरध्वनिसंयुते ॥१८॥
ुगन्धिकुसुमासक्तेन वायुना सुरभीकृते । अतीव सुखदे तत्र सर्वजन्तुविवर्जिते ॥ १९॥
ष्ट्वा तयोस्तच्छृङ्गारं चिन्तांप्रापुःसुराःपराम् । ब्रह्माणञ्चपुरस्कृत्य ययुर्नारायणान्तिकम्
नत्वा कथयामास ब्रह्मावृत्तान्तमीप्सितम् । संतस्थुर्देवताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिकायथा

ब्रह्मोवाच ।

हस्रवर्षपर्य्यन्तं देवमानेन शङ्करः । रतौ रतश्च निश्चेष्टो न योगी विरराम ह ॥ २२॥
थुनस्य विरामे च दम्पत्योर्जगदीश्वर । किं भूतं भवितापत्यं तथ्यं कथितुमर्हसि ॥

श्रीभगवानुवाच ।

चिन्ता नास्ति जगद्धातः सर्वं भद्रंभविष्यति । मयि ये शरणापन्नास्तेषां दुःखंकुतोविधे
नोपायेन तद्वीर्य्यं भूमौ पतति निश्चितम् । तत्कुरुध्व प्रयत्नेन सार्द्धं देवगणेन च ।२५
दा च शम्भोर्वीर्य्यंन्तत्पार्वत्या उदरे पतेत् । ततोऽपत्यञ्च भविता सुरासुरविमर्दकम्
तः शक्रादयः सर्वे सुरा नारायणाज्ञया । प्रययुर्नर्म्मदातीरं ययौ ब्रह्मा निजालयम् ।२७
त्रैव पर्वतद्रोणी वहिर्देशे सुराः पराः । विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्भयकातराः ॥ २८ ॥
क्रोराजा कुबेरञ्च कुबेरो वरुणन्तथा । समीरणं च वरुणो यमं समीरणस्तथा ॥२९॥
ुताशनं यमश्चैव भास्करञ्च हुताशनः । चन्द्रं तथा भास्करश्च ईशानं चन्द्र एव च ॥
र्वं देवाः प्रेरयन्ति देवांश्च रतिभञ्जने । हरशृङ्गारभङ्गञ्च कुर्वित्युक्त्वा परस्परम् ॥ ३१॥

द्वारस्थितो वक्रशिराः शक्रः प्राह महेश्वरम् ॥३२॥

इन्द्र उवाच ।

किङ्करोपि महादेव योगीश्वर नमोऽस्तु ते । जगदीश जगद्वीज भक्तानां भयभञ्जन ॥

हरिर्जगामेत्युक्त्वैवमाजगाम च भास्करः । उवाच भीतो द्वारस्थो भयार्त्तो वक्रचक्षुष

श्रीसूर्य्य उवाच ।

किङ्करोषि महादेव जगतां परिपालक । सुरश्रेष्ठ महाभाग पार्वतीश नमोऽस्तुते ॥३५॥
इत्येवमुक्त्वा श्रीसूर्य्यः प्रजगाम भयात्ततः । आजगाम तथा चन्द्र उवाच वक्रकन्धरः ॥

चन्द्र उवाच ।

किङ्करोषि त्रिलोकेश त्रिलोचन नमोऽस्तुते । आत्माराम पूर्णकाम पुण्यश्रवणकीर्त्तन
इत्येवमुक्त्वा भीतश्च विरराम निशापतिः । संवीक्ष्योवाच द्वारस्थः स्वयमेव समीरणः

पवन उवाच ।

किङ्करोषि जगन्नाथ जगद्बन्धो नमोऽस्तु ते । धर्मार्थकाममोक्षाणां बीजरूप सनातन
इत्येवं स्तवनं श्रुत्वा योगज्ञानविशारदः । त्यक्तुकामो न तत्याजश्रृङ्गारंपार्वतीभयात् ॥
दृष्ट्वा सुरान् भयार्त्तांश्चपुनःस्तोतुंसमुद्यतान् । विजहौ सुखसम्भोगंकण्ठलग्नाञ्चपार्वतीम्
उत्तिष्ठतो महेशस्य भक्तस्य लज्जितस्य च । भूमौ पपात तद्वीर्य्यं ततः स्कन्दो बभूव ह
पश्चात्तां कथयिष्यामिकथामतिमनोहराम् । स्कन्दजन्मप्रसङ्गे च साम्प्रतंवाञ्छितंश्रृणु

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे शंकरपार्वती-
समागमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

---

## द्वितीयोऽध्यायः

### क्रीड़ाविरतेन शिवेन देवदर्शनम् ।

नारायण उवाच ।

त्यक्त्वा रतिं महादेवो ददर्श पुरतः सुरान् । पलायध्वमित्युवाच कृपया पार्वतीभयात्
देवाः पलायिता भीताः पार्वतीशापहेतुना । ब्रह्माण्डसर्वसंहर्त्ता चकम्पे पार्वतीभयात्
तल्पादुत्थाय सा दुर्गा न च दृष्ट्वा पुरः सुरान् । समुत्थितं कोपवह्निस्तम्भयामासदेहतः
अद्य प्रभृति ते देवा व्यर्थवीर्य्या भवन्त्विति । शशाप देवी तान्देवानतिदुःखा बभूव ह

नः शिवः शिवां दृष्ट्वा कोपसंरक्तलोचनाम् । रुदन्तीं नम्रवक्त्रां लिखन्तीं धरणीतलम् ।
कोपयुक्तां दुःखितां दृष्ट्वा कोपसंरक्तलोचनाम् । हस्ते गृहीत्वा देवेशो वासयामास वक्षसि

अतीव भीतः संत्रस्त उवाच मधुरं वचः ॥७॥

शङ्कर उवाच ।

कथं रुष्टा गिरिश्रेष्ठकन्ये धन्ये मनोहरे । मम सौभाग्यरूपे च प्राणाधिष्ठातृदेवते ।

किन्तेऽभीष्टं करिष्यामि वद मां जगदम्बिके ॥ ८ ॥

ब्रह्माण्डसङ्घनिखिले किमसाध्यमिहावयोः । अहो निरपराधं मां प्रसन्ना भव सुन्दरि ।
दैवादज्ञातदोषस्य शान्तिं मे कर्तुमर्हसि । त्वया युक्तः शिवोऽहञ्च सर्वेषां शिवदायकः
त्वयाविनाहमीश्वरश्च शवतुल्योऽशिवः सदा । प्रकृतिस्त्वञ्चबुद्धिस्त्वंशक्तिस्त्वञ्चक्षमादया
तुष्टिस्त्वञ्च तथापुष्टिःशान्तिस्त्वं क्षान्तिरेवच । क्षुत्त्वंछायातथानिद्रातन्द्राश्रद्धासुरेश्वरी
सर्वाधारस्वरूपा त्वं सर्वबीजस्वरूपिणी । स्मितपूर्वं वद वचः साम्प्रतं सरसं शिवे ।

त्वत्कोपविषसंदग्धं तेन जीवय मां मृतम् ॥ १४ ॥

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा कोपयुक्ता च पार्वती । उवाच मधुरं देवी हृदयेन विदूयता ॥१५॥

पार्वत्युवाच ।

किन्त्वाहं कथयिष्यामि सर्वज्ञं सर्वरूपिणम् । आत्मारामं पूर्णकामं सर्वदेहेष्ववस्थितम्
कामिनी मानसं काममप्रज्ञं स्वामिनं वदेत् । सर्वेषां हृदयज्ञश्च हृदीष्टं कथयामि किम् ।
सुगोप्यं सर्वनारीणां लज्जाजनककारणम् । अकथ्यमपि सर्वासां तथापि कथयामि ते
सुखेषु मध्ये स्त्रीणाञ्च विभवेषु सुरेश्वर । सत्पुंसा सह सम्भोगो निर्जनेषु परं सुखम् ।
तद्भङ्गेन च यद्दुःखंतत्समंनास्ति च स्त्रियाः । कान्तानांकान्तविच्छेदःशोकःपरमदारुणः

कृष्णपक्षे यथा चन्द्रः क्षीयमाणो दिने दिने ।

तथा कान्तं विना कान्ता क्षीणा कान्त क्षणे क्षणे ॥ २१ ॥

चिन्ताज्वरश्च सर्वेषामुपतापश्च वाससाम् । साध्वीनां कान्तविच्छेदस्तुरगानाञ्च मैथुनम्
दुःखमेकं द्वितीयं वीर्यपातनम् । दुःखातिरेकदुःखञ्च तृतीयमनपत्यता ॥२२
कान्तंत्वांलब्ध्वापिनचमेसुतः । या स्त्री पुत्रविहीना च जीवनं तन्निरर्थकम्

जन्मान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्। सद्वंशजातपुत्रश्च परत्रेह सुखप्रदः ॥
सुपुत्रः स्वामिनोंऽशश्च स्वामितुल्यसुखप्रदः। कुपुत्रश्च कुलाङ्गारो मनस्तापायकेवलम्।
स्वामी स्वांशेन स्वस्त्रीणां गर्भे जन्म लभेद् ध्रुवम्।
साध्वी स्त्री मातृतुल्या च सततं हितकारिणी ॥ २७ ॥
असाध्वी वैरितुल्याचशश्वत्सन्तापदायिनी। सुखदुष्टायोनिदुष्टाचैवासाध्वीतिहिस्मृता
किमुपायं करिष्यामि वद योगीश्वरेश्वर। उपायसिन्धो तपसां सर्वेषाञ्च फलप्रद ॥
इत्युक्त्वा पार्वतीदेवी नम्रवक्त्रा बभूव ह।
प्रहस्य शङ्करोदेवो बोधयामास पार्वतीम्। सत्पुत्रबीजं सुखदं सन्तापनाशकारणम्।
मितं स्निग्धं सुरुचिरं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ३१ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे शिवाशिवयोः
पुत्रमुपलक्ष्यसम्वादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

---

## तृतीयोऽध्यायः

### पार्वतीम्प्रति हरिव्रतकरणाय शिवस्योपदेशः।

श्रीमहादेव उवाच।

शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव भद्रं भविष्यति। उपायतः कार्य्यसिद्धिर्भवेदेव जगत्त्रये ॥
सर्ववाञ्छितसिद्धेस्तु बीजरूपं सुमङ्गलम्। मनसः प्रीतिजननमुपायं कथयामि ते ॥२॥
हरेराराधनं कृत्वा व्रतं कुरु वरानने। व्रतञ्च पुण्यकं नाम वर्षमेकं करिष्यसि ॥ ३ ॥
महाकल्पोरुबीजञ्च वाञ्छाकल्पतरुं परम्। सुखदं पुण्यदं सारं पुत्रदं सर्वसम्पदम् ॥४॥
नदीनाञ्च यथा गङ्गा देवानाञ्च हरिर्यथा। वैष्णवानां यथाहञ्च देवीनां त्वं यथाप्रिये ॥
आश्रमाणांयथा विप्रस्तीर्थानां पुष्करो यथा। पुष्पाणांपारिजातश्चपत्राणांतुलसी यथा
यथा पुण्यप्रदानाञ्च तिथिरेकादशी स्मृता। रविवारश्च वाराणां यथा पुण्यप्रदः शिवे ॥
मासानां मार्गशीर्षश्चऋतूनांमाधवोयथा। संवत्सरोवत्सराणांयुगानाञ्चकृतंयथा ॥८॥

विद्याप्रदश्च पूज्यानां गुरूणां जननी यथा।
साध्वी पत्नी यथाप्तानां विश्वस्तानां मनो यथा ॥ ९ ॥

या धनानां रत्नञ्च प्रियाणाञ्च यथा पतिः। यथापुत्रश्च बन्धूनां वृक्षाणां कल्पपादपः
ृतफलं फलानाञ्च वर्षाणां भारतं यथा। वृन्दावनं वनानाञ्च शतरूपाच योषिताम्
थाकाशी पुरीणाञ्च सूर्यस्तेजस्विनां यथा। यथेन्दुः सुखदानाञ्च सुन्दराणाञ्च मन्मथः

शास्त्राणाञ्च यथा वेदाः सिद्धानां कपिलो यथा।
हनूमान् वानराणाञ्च क्षेत्राणां ब्राह्मणाननम् ॥ १३ ॥

प्रमोदानां यथा विद्या कविताच मनोहरा। आकाशोव्यापकानाञ्च इन्द्रानां लोचनं यथ
वैभवानां हरिकथासुखानां हरिचिन्तनम्। स्पर्शानां पुत्रसंस्पर्शो हिंस्रानाञ्च यथा खल
ापानाञ्चयथामिथ्यापापिनां पुंश्चलीयथा। पुण्यानाञ्चयथा सत्यं तपसां हरिसेवनम्
थाघृतञ्च गव्यानां यथा ब्रह्मा तपस्विनाम्। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां शस्यानां धान्यकंयथ
ुण्यदानां यथा तोयं शुद्धानाञ्च हुताशनः। सुवर्णं तैजसानाञ्च मिष्टानां प्रियभाषण
रुडः पक्षिणाञ्चैव हस्तिनामिन्द्रवाहनः। योगिनाञ्च कुमारश्चदेवर्षीणाञ्च नारदः

गन्धर्वाणां चित्ररथो जीवो बुद्धिमतां यथा।
सुकवीनां यथा शुक्रः काव्यानाञ्च पुराणकम् ॥२०॥
स्रोतःस्वतां समुद्रश्च यथा पृथ्वी क्षमावताम्।
लाभानाञ्च यथा मुक्तिर्हरिभक्तिश्च सम्पदाम् ॥ २१ ॥

पवित्राणांवैष्णवाश्च वर्णानां प्रणवोयथा। विष्णुमन्त्रश्चमन्त्राणां बीजानां प्रकृतिर्यथ
विदुषाञ्चयथावाणीगायत्री छन्दसांयथ। यथा कुबेरोयक्षाणां सर्पाणां वासुकिर्यथा।
यथा पिता ते शैलानां गवाञ्च सुरभिर्यथा। वेदानां सामवेदश्च तृणानाञ्च यथा कुशः।
सुखदानां यथा लक्ष्मीर्मनश्च शीघ्रगामिनाम्। अक्षराणामकारश्च हितैषिणांपितायथा।
शालग्रामश्च यन्त्राणां पशूनां विष्णुपञ्जरः। चतुष्पदानांपञ्चास्यो मानवो जीविनांयथ
यथा स्वान्तमिन्द्रियाणां मन्दाग्निश्चरुजांयथा। बलिनाञ्च यथाशक्तिरहंशक्तिमतांयथा।
महान्विराट्च स्थूलानां सूक्ष्माणांपरमाणुकः। यथेन्द्रआदितेयानां दैत्यानाञ्चबलिर्यथ

प्रह्लादश्चैव साधूनां दातृणां दधीचिर्यथा । प्रह्मास्त्रश्च यथास्त्राणां चक्राणाञ्च सुदर्शनम् ॥
भूर्णां राजा रामचन्द्रो धन्विनां लक्ष्मणो यथा । सर्वाधारः सर्वसेव्यः सर्वबीजश्च सर्वदः
सर्वसारो यथा कृष्णो व्रतानां पुण्यकं यथा ॥ ३० ॥
व्रतं कुरु महाभागे त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । सर्वसारश्च पुत्रस्ते व्रतादेव भविष्यति ॥
व्रताराध्यश्च श्रीकृष्णः सर्वेषां वाञ्छितप्रदः ।
जनो यत्सेवनान्मुक्तः पितृभिः कोटिभिः सह ॥ ३२ ॥
हरिमन्त्रं गृहीत्वाय हरिसेवां करोति यः । भारते जन्मसफलं स्वात्मनः स करोति च
उद्धृत्य कोटिपुरुषान् वैकुण्ठं याति निश्चितम् । श्रीकृष्णपार्षदो भूत्वा सुखं तत्रैव मोदते
सदोदरानस्यभृत्यांश्च स्वयन्धूनसहचारिणम् । स्वस्त्रियञ्च समुद्धृत्य भक्तोयातिहरेःपरम्
तस्मात् गृहाण गिरिजे हरेर्मन्त्रं सुदुर्लभम् । जपमन्त्रं व्रतेतत्र पितृणां मुक्तिकारणम्
इत्युक्त्वा शङ्करो देवो गत्वा गिरिजया सह । शीघ्रञ्च जाह्नवीतीरे हरेर्मन्त्रं मनोहरम्॥
तस्यै ददौ च संप्रीत्या कवचं स्तोत्रसंयुतम् । पूजाविधानं नियमं कथयामास तां मुनेः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे
हरिमन्त्रफलवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

---

## चतुर्थोऽध्यायः

### शिवेनपार्वत्यै व्रतोपकरणकथनम् ।

नारायण उवाच ।

श्रुत्वा व्रतविधानञ्च दुर्गा प्रहृष्टमानसा । सर्वं व्रतविधानञ्च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

पार्वत्युवाच ।

सर्वं व्रतविधानं मां वद वेदविदां वर । हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो परात्पर ॥२
कानि व्रतोपयुक्तानि द्रव्याणि च फलानि च । समयं नियमं भक्ष्यंविधानंतत्फलंप्रभो
देहि मह्यं विनीतायै नियुक्तंसत्पुरोहितम् । पुष्पोपहारान्विप्रांश्च द्रव्याहरणकिङ्करान् ॥

न्यानि चोपयुक्तानिमयाजातानियानिच। मत्प्रियोजयतस्मनोर्नाणांस्वामीत्वसर्वदः ।
ता कौमारकाले चसर्वपालनकारकः । सतां मध्ये सुतःश्रेष्ठोप्रियायस्या च योगिनाम
ताताऽशोकः प्राणतुल्यां दत्त्वा सत्स्वामिने सुताम् ।
स्वामी निर्वृतिमाप्नोति संन्यस्य स्वसुते प्रियाम् ॥७॥
न्धुत्रययुता या स्त्रीसाचमान्यवतीपरा। किञ्चिद्धिहीनामध्यानसर्वहीनाऽधमा भुवि॥
तेषाञ्च समीपस्था प्रशंस्या सा जगत्त्रये। निन्दितान्येषु संन्यस्तासर्वमेतच्छ्रुतौश्रुतम्
र्वात्मा भगवांस्त्वञ्च सर्वसाक्षीचसर्ववित् । देहिमह्यंपुत्ररत्नंस्वात्मनिर्वृतिहेतुकम् ॥
स्वात्मबोधानुमानेनमद्यात्मनिनिवेदितम् । सर्वान्तराभिप्रायज्ञंबोधज्ञंबोधयामि किम्॥
इत्युक्त्वा पार्वती प्रीत्या पपात स्वामिनः पदे ।
कृपासिन्धुश्च भगवान् प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१२॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि विधानं नियमं फलम् ।
फलानि चैव द्रव्याणि व्रतोपयोगिकानि च ॥१३॥

विप्राणां शतकं शुद्धं फलपुष्पोपहारकम् । किङ्कराणाञ्च शतकंद्रव्याहरणकारकम् ॥१४
दासीनां शतकं लक्षं नियुक्तञ्च पुरोहितम् । सर्वव्रतविधानज्ञं वेदवेदान्तपारगम् ॥१५॥
प्रवरं हरिभक्तानां सर्वज्ञं ज्ञानिनां वरम् । सनत्कुमारं मत्तुल्यं गृहाण व्रतहेतवे ॥१६॥
देवि शुद्धे च काले च परं नियमपूर्वकम् । माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतारम्भः शुभः प्रिये ॥
गात्रं सुनिर्मलं कृत्वा शिरः संस्कारपूर्वकम् । उपोष्यपूर्वदिवसे वस्त्रंप्रक्षाल्ययत्नतः॥
अरुणोदयवेलायां तल्पादुत्थाय सुव्रती। मुखप्रक्षालनं कृत्वा स्नात्वाचनिर्मलेजले॥१६
आचम्य यज्ञपूतो हि हरिस्मरणपूर्वकम् । दत्त्वार्घ्यं हरयेभक्त्यागृहमागत्यसत्वरम् ॥
धौते च वाससी धृत्वा उपविश्यासने शुचौ ।
आचम्य तिलकं कृत्वा निर्वाप्यस्त्वाह्निकं पुनः ॥२१॥
घटमारोपणं कृत्वा स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । पुरोहितस्य वरणं पुरः कृत्वा प्रयत्नतः ।
सङ्कल्पं वेदविहितं व्रतमेतत् समाचरेत् ॥२२॥

व्रते द्रव्याणि नित्यानि षोपचाराणि षोडश।
देयानि नित्यं देवेशि कृष्णाय परमात्मने ॥२३॥
आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ॥२४॥
कंञ्च स्नानीयं वस्त्राणि भूषणानि च। सुगन्धिपुष्पधूपञ्च दीपनैवेद्यचन्दनम् ॥२५॥
वञ्च ताम्बूलं कर्पूरादिसुवासितम्। द्रव्याण्येतानि पूजायाश्चाङ्गरूपाणि सुन्दरि॥
किञ्चिद्विहीनेनैवाङ्गहानिः प्रजायते। अङ्गहीनश्च यत् कर्म चाङ्गहीनो यथा नरः॥
अङ्गहीने च कार्य्ये च फलहानिः प्रजायते ॥२७॥
प्रदानं पुष्पं पारिजातस्य विष्णवे। देयं प्रतिदिनं दुर्गे स्वात्मनो रूपहेतवे ॥२८॥
श्चकपुष्पाणां लक्षमक्षतमीप्सितम्। प्रदेयं हरये भक्त्या वर्णसौन्दर्य्यहेतवे ॥२९॥
र्वं पद्मानामक्षतं पुष्पलक्षकम्। भक्त्या देयञ्च हरये मुखसौन्दर्य्यहेतवे ॥३०॥
लरचितं दर्पणानां सहस्रकम्। देयं नारायणायैव नेत्रयोर्दीप्तिहेतवे ॥३१॥
लानां लक्षञ्च देयं कृष्णाय भक्तितः। व्रताङ्गभूतं देवेशि चक्षुषो रूपहेतवे ॥३२
योद्भवं लक्षं रुचिरं श्वेतचामरम्। प्रदेयं केशवायैव केशसौन्दर्य्यहेतवे ॥३३॥
त्नरचितं पुष्पकानां सहस्रकम्। प्रदेयं गोपिकेशाय नासिकारूपहेतवे ॥३४॥
ष्पलक्षञ्च देयं राधेश्वराय च। सौम्योष्ठाधरयोश्चैव वर्णसौन्दर्य्यहेतवे ॥३५
दानां लक्षञ्च दन्तसौन्दर्य्यहेतवे। देयं गोलोकनाथाय शैलजे भक्तिपूर्वकम्॥
फलक्षञ्च गण्डसौन्दर्य्यहेतवे। महीश्वराय दातव्यं व्रते शैलेन्द्रकन्यके ॥३७॥
कलक्षञ्च देयं यज्ञेश्वराय च। ओष्ठाधःस्थलरूपाय प्राणेशि भक्तितो व्रती ॥३८
लक्षञ्च रत्नसारविनिर्मितम्। देयं सर्वेश्वरायैव कर्णसौन्दर्य्यहेतवे ॥३९॥
कलसानाञ्च लक्षं रत्नविनिर्मितम्। देयं विश्वेश्वरायैव स्वरसौन्दर्य्यहेतवे॥
सुधापूर्णञ्च कुम्भानां सहस्रं रत्ननिर्मितम्।
देयं कृष्णाय देवेशि वाक्यसौन्दर्य्यहेतवे ॥४१॥
लक्षञ्च गोपवेशविधायिने। देयं किशोरवेशाय दृष्टिसौन्दर्य्यहेतवे ॥४२॥
द्माकारं रत्नपात्रसहस्रकम्। देयं गोरक्षकायैव गलसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ४३ ॥

द्रत्नसाररचितं पद्मनालसहस्रकम् । देयं मण्डकपालाय बाहुसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ४४ ॥
ङ्कस्य रत्नपद्मानां करसौन्दर्य्यहेतवे । देयं गोपाङ्गनेशाय नारायणि हरिप्रिये ॥४५ ॥
ङ्गुरीयकलक्षञ्च रत्नसारविनिर्म्मितम् । अङ्गुलीनाञ्च रूपार्थं देयं देवेश्वराय च ॥४६
र्णीन्द्रसारलक्षञ्च श्वेतवर्णं मनोहरम् । देयं मुनीन्द्रनाथाय नखसौन्दर्य्यहेतवे ॥४७॥
द्रत्नसारहाराणां लक्षञ्चातिमनोहरम् । देयं मदनमोहाय वक्षःसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ४८ ॥
ुपक्वश्रीफलानाञ्च लक्षञ्च सुमनोहरम् । देयं सिद्धेन्द्रनाथाय स्तनसौन्दर्य्यहेतवे ॥४६
द्रत्नवर्त्तुलाकारं पात्रं लक्षं मनोहरम् । देयं पद्मालयेशाय देहस्य रूपहेतवे ॥ ५० ॥
द्रत्नसाररचितं नाभीनाञ्च सहस्रकम् । प्रदेयं पद्मनाभाय नाभिसौन्दर्य्यहेतवे ॥५१॥
द्रत्नसाररचितं नखचन्द्रसहस्रकम् । नितम्बसौन्दर्य्यार्थञ्च प्रदेयंचक्रपाणये ॥ ५२ ॥
ुवर्णरम्भास्तम्भानां लक्षञ्च सुमनोहरम् । प्रदेयं श्रीनिवासाय श्रोणिसौन्दर्य्यहेतवे ॥
ातपत्रस्थलाब्जानां लक्षमम्लानमक्षतम् । प्रदेयं पद्मनेत्राय पादसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ५४ ॥
ुवर्णरचितानाञ्च खञ्जनानां सहस्रकम् । गतिसौन्दर्य्यहेत्वर्थं देयं लक्ष्मीश्वराय च ॥
ाजहंससहस्रञ्च गजेन्द्राणां सहस्रकम् । सुवर्णरचितं देयं हरये गतिहेतवे ॥ ५६ ॥
ुवर्णछत्रलक्षञ्च देयं नारायणाय च । विचित्ररत्नसारेण मूर्द्धसौन्दर्य्यहेतवे ॥५७ ॥
ालतीनाञ्च कुसुममक्षतं लक्ष्मीश्वरि । देयं वृन्दावनेशाय हास्यसौन्दर्य्यहेतवे ॥५८॥
मूल्यरत्नलक्षञ्च देयं नारायणाय वै । सुव्रते व्रतपूर्णार्थं शीलसौन्दर्य्यहेतवे ॥ ५६ ॥
्वच्छस्फटिकसङ्काशं मणीन्द्रसारलक्षकम् । देयं मुनीन्द्रनाथाय मनःसौन्दर्य्यहेतवे ॥
ावालसारसङ्काशं मणिसारसहस्रकम् । देयं कृष्णाय भक्त्या च प्रियानुरागवृद्धये ॥६१॥
ाणिक्यसारलक्षञ्च देयंकृष्णाययत्नतः । जन्मनःकोटिपर्य्यन्तं स्वामिसौभाग्यहेतवे ॥
ुष्माण्डं नारिकेलञ्च जम्बीरं श्रीफलन्तथा । फलान्येतानि देयानि हरये पुत्रहेतवे ॥
लेन्द्रसार लक्षञ्च देयं कृष्णाय यत्नतः । असंख्यजन्मपर्य्यन्तं स्वामिनो धनवृद्धये ॥
ाद्यं नानाप्रकारञ्च कांस्यतालादिकं परम् । व्रते सम्पत्तिवृद्ध्यर्थं श्रीहरिं श्रावयेद् व्रती
ायसं पिष्टकं सर्पिः शर्कराक्तं मनोहरम् । प्रदेयं हरये भक्त्या स्वामिनो भोगवृद्धये ॥
ुगन्धिपुष्पमालानां लक्षमक्षतमीप्सितम् । प्रदेयं हरये भक्त्या हरिभक्तिविवृद्धये ॥६७॥

विद्यानि च देयानि स्वादूनि मधुराणि च । श्रीकृष्णप्रीतिप्राप्त्यर्थं दुर्गे नानाविधानिच
ानाविधानि पुष्पाणि तुलसीसंयुतानि च । श्रीकृष्ण प्रीतये भक्त्या व्रते देयानि सुव्रते
ाह्मणानां सहस्रञ्च प्रत्यहं भोजयेद्व्रती । स्वात्मनः शस्यवृद्ध्यर्थं व्रते जन्मनिजन्मनि
पुष्पाञ्जलिशतं देयं नित्यं पूर्णञ्च पूजने । प्रणामशतकं देवि कर्त्तव्यं भक्तिवृद्धये ॥७१॥
यमासांश्च हविष्यान्नं मासान् पञ्चफलादिकम् । हविः पक्षं जलं पक्षं व्रतेभक्ष्येच्चसुव्रते
ल्लप्रदीपशतकं वह्निं दद्याद्दिवानिशम् । रात्रौ कुशासनं कृत्वा नित्यं जागरणं व्रते ॥
स्मरणं कीर्त्तनं केलिः श्रवणं गुह्यभाषणम् । सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिहेतवे
ष्टाङ्ग मैथुनकं त्याज्यं व्रती क्रीड़ा च शुद्धये । सम्पूर्णे च व्रते देवि प्रतिष्ठा तदनन्तरम् ॥
त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं डल्लकं वस्त्रसंयुतम् । सभोज्यं सोपवीतञ्च सोपहारं मनोहरम्
त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रं विप्रभोजनम् । त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रं तिलहोमकम्
त्रिशतञ्च षष्ट्यधिकं सहस्रस्वर्णमेव च । देया व्रतसमाप्तौ च दक्षिणा विधिबोधिता
अन्यां समाप्ति दिवसे कथयिष्यामि दक्षिणाम् । एतद्व्रतफलं देवि दृढ़ाभक्तिर्हरौभवेत्
हरितुल्यो भवेत्पुत्रो विख्यातोभुवनत्रये । सौन्दर्यं स्वामिसौभाग्यमैश्वर्यंविपुलंधन
सर्वं वाञ्छितसिद्धीनां बीजं जन्मनि जन्मनि । इत्येवं कथितं देवि व्रतं कुरु महेप्स्व
पुत्रस्ते भविता साध्वीत्युक्त्वा स विरराम ह ॥ ८२ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे व्रतमाहात्म्यविधान नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

---

## पञ्चमोऽध्यायः

### व्रतमाहात्म्यकथा ।

नारायण उवाच ।

श्रुत्वा व्रतविधानञ्चदुर्गा प्रहृष्टमानसा । पुनः पप्रच्छ कान्तंसा दिव्यां व्रतकथांशुभा

श्रीपार्वत्युवाच ।

केमद्भुतं व्रतं नाथ विधानं फलमस्य च । अधिकारं फलं ब्रूहि व्रतं येन प्रकारितम्

अथ व्रत कथा । श्रीमहादेव उवाच

ातरूपा मनोः पत्नी पुत्रदुःखेन दुःखिता । ब्रह्मणः स्थानमागत्य सा ब्रह्माणमुवाच ह ॥

शतरूपोवाच ।

ह्मन् येन प्रकारेण वन्ध्यायाश्च सुतो भवेत् । तन्मे ब्रूहि जगद्धातः सृष्टिकारणकारण

तज्जन्म निष्फलं ब्रह्मन्नैश्वर्य्यं धनमेव च ।

किञ्चिन्न शोभते गेहे विना पुत्रेण पुत्रिणाम् ॥ ५ ॥

तपोदानोद्भवं पुण्यं जन्मान्तरसुखावहम् । सुखदो मोक्षदः प्रीति दाता पुत्रश्चपुत्रिणाम्

पुत्री पुत्रमुखं दृष्ट्वा शताश्वमेधिनां फलम् । पुन्नामनरकत्राणकारणं लभते ध्रुवम् ॥ ७ ॥

पुत्रोपायं यदि विधे वद मां तापसंयुताम् । तदा भद्रं नचेद्भर्त्रा सह यास्यामि काननम्

गृहाण राज्यमैश्वर्य्यं धनं पृथ्वीं प्रजावहाम् । किमेतेनावयोस्तात विना पुत्रैरपुत्रिणोः ।

अपुत्रिणो मुखं द्रष्टुं विद्वांश्चोत्सहतेऽशिवम् । मुखं दर्शयितुं लज्जां समवाप्नोत्यपुत्रकः॥

अथवा गरलं भुक्त्वा प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । अपुत्रपुत्रमशिवं गृहाण स्त्रीविहीनकम् ॥

इत्येवमुक्त्वा सा साक्षाद् ब्रह्मणश्च रुरोद ह । कृपानिधिश्च तां दृष्ट्वा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु वत्से प्रवक्ष्यामि पुत्रोपायं सुखावहम् । सर्वैश्वर्य्यादिबीजञ्चसर्ववाञ्छाप्रदंशुभम्

माघशुक्लत्रयोदश्यां व्रतमेतत् सुपुण्यकम् । कर्त्तव्यं शुद्धकाले च कृष्णमाराध्य सर्वदम्

संवत्सरञ्च कर्त्तव्यं सर्वविघ्नविनाशनम् । वेदोक्तानि च द्रव्याणि व्रते देयानि सुव्रते ॥

व्रतञ्च काण्वशाखोक्तं सर्ववाञ्छितसिद्धिदम् । कृत्वा पुत्रं लभशुभे विष्णुतुल्यपराक्रमम्

ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा साकृत्वा व्रतमुत्तमम् । प्रियव्रतोत्तानपादौ लेभे पुत्रौ मनोहरौ ॥

व्रतं कृत्वा देवहूती लेभे सिद्धेश्वरं सुतम् । नारायणांशं कपिलं पुण्यकं पुण्यदं शुभम्॥

अरुन्धतीदं कृत्वा तु लेभे शक्तिसुतं शुभा । शक्तिकान्ता व्रतं कृत्वा सुतं लेभे पराशरम्

अदितिश्च व्रतं कृत्वा लेभे वामनकं सुतम् । शची जयन्तं पुत्रञ्च लेभे कृत्वेदमीश्वरी ॥

ादपत्नीदं कृत्वा लेभे ध्रुवं सुतम् । कुवेरजाया कृत्वेदं लेभे च नलकूबरम् ॥२१।
। मनुं लेभे कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । अत्रिपत्नी सुतं चन्द्रं लेभे कृत्वेदमुत्तमम् ॥२२
ङ्गिरसः पत्नी कृत्वेदं व्रतमुत्तमम् । वृहस्पतिं सुरगुरुं पुत्रमस्य प्रभावतः ॥२३॥
र्या व्रतं कृत्वा लेभे दैत्यगुरुं सुतम् । शुक्रं नारायणांशञ्च सर्वतेजस्विनांवरम्।
ःथितं देवि व्रतानां व्रतमुत्तमम् । त्वमेव कुरु कल्याणि हिमालयसुते शुभे ।२५
हेन्द्रपत्नीनां देवीनाञ्चसुखावहम् । व्रतमेतन्महासाध्वि साध्वीनांप्राणतःप्रियम्॥
य प्रभावेण स्वयं गोपाङ्गनेश्वरः । ईश्वरः सर्वदेवानां तव पुत्रो भविष्यति ॥
शङ्करस्तत्र विरराम च नारद । व्रतञ्चकार सा देवी प्रहृष्टा शङ्कराज्ञया ॥२८॥
थितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि । सुखदं मोक्षदं सारं गणेशजन्मकारणम्

श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे व्रतकथा-
प्रकरणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

---

## षष्ठोऽध्याय

### पार्वत्या व्रतारम्भोद्योगः ।

शौनक उवाच ।

श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः । किं पप्रच्छ पुनः साधो तन्मे ब्रूहि तपोधन॥

सूत उवाच ।

श्रुत्वा नारदो हृष्टमानसः । व्रतारम्भविधानञ्च संप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ २ ॥

नारद उवाच ।

रेण व्रतमेतन् शुभावहम् । तन्मे ब्रूहि मुनिश्रेष्ठ पार्वत्या भर्त्तुराज्ञया ॥ ३॥
तोपीशः कृते सुव्रतया व्रते । ब्रह्मन् केन प्रकारेण तन्नः शंसितुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

कथयित्वा व्रतं विष्णुर्विधानञ्च यथाक्रमम् । स्वर्गविधाता तस्मै जगाम भवनं शि
हरेराराधनव्यग्रो मूर्तिमेदधरो हरिः । हरिमाराधनशीला हरिध्यानपरायणा ॥
परमानन्दपूर्णा च सानन्दा सनातनः । दिवानिशं न जानाति हरिमन्त्रं यदि
प्रहृष्टमनसा देवी पार्वती सर्वमङ्गला । किङ्करान प्रेषयामास निर्वाक्य समाह्वेतुं ॥
आनीय सर्वद्रव्याणि व्रतोपयोगिकानि च । व्रतं कर्तुं समारेभे शुभदा सा शुभक्ष
सनत्कुमारो भगवानाजगाम विधेःसुत । मूर्तिमान्नेत्रसौ गविः प्रज्वलन् ब्रह्मतेज
ब्रह्माजगाम हृष्टश्च ब्रह्मलोकात् समाप्यकः । प्रतिस्त्रम्नो हि भगवानाजगाम महेश्वर
विष्णुःक्षीरोदशायीव सलक्ष्मीकश्चतुर्भुजः । भगवान्सर्वपाता शान्तात्मा सर्व
वनमालाधरः श्यामो भूषितो रत्नभूषणैः । महासम्भूतसम्भारो रत्नयानेन नारद ॥१
सनकश्च सनन्दश्च कपिलश्च सनातनः । आसुरिश्च क्रतुर्हंसी वोढुः पञ्चशिखोऽप
यतिश्च सुमतिश्चैव वशिष्ठश्च सहानुगः । पुलहश्च पुलस्त्यश्च अत्रिश्च भृगुरङ्गिराः ॥

अगस्त्यश्च प्रचेताश्च दुर्वासाश्च्यवनस्तथा ।
मरीचिः कश्यपः कण्वो जरत्कारुश्च गौतमः ॥ १६ ॥

बृहस्पतिरुतथ्यश्च संवर्त्तः सौरभिस्तथा । जाबालिर्जमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः ॥१
गोकामुखो वक्ररथः पारिभद्रः पराशरः । विश्वामित्रो वामदेव ऋष्यशृङ्गो विभाण्डक
मार्कण्डेयो मृकण्डुश्च पुष्करो लोमशस्तथा । कौत्सो वत्सश्च दक्षश्च बालाग्निरघमर्षणः
कात्यायनः कणादश्च पाणिनिः शाकटायनः । शङ्कुः पिशङ्गिश्चैव शाकल्यः शङ्ख एव च
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयो मुने । आयाता धर्मपुत्रौ च नरनारायणौ समौ
दिक्पालाश्च तथा देवा यक्षगन्धर्वकिन्नराः । आजग्मुः पर्वताः सर्वे सगणाः पार्वतीव्रते
हिमालयः शैलराजः सापत्यश्च समार्यकः । सगणः सानुगश्चैव रत्नभूषणभूषितः ॥
महासम्भूतसम्भारो नानाद्रव्यसमन्वितः । मणिमाणिक्यरत्नानि व्रतोपयोगिकानि च ।
नानाप्रकारवस्तूनि जगतां दुर्लभानि च । लक्षाश्च गजरत्नानामश्वरत्नं त्रिलक्षकम् ॥२५॥
दशलक्षं गवां रत्नं शतलक्षं सुवर्णकम् । रत्नकानां हीरकाणां स्पर्शानाञ्च तथैव च ॥२६

मुक्तानाञ्च चतुर्लक्षं कौस्तुभानां सहस्रकम् । सुस्वादुमिष्टद्रव्याणां लक्ष्मीरापणिकौतुकी
अनन्तरत्नप्रभव आजगाम सुतावने ॥२७॥
ब्रह्मणा मनवः सिद्धानागाविद्याधरास्तथा । सन्यासिनो भिक्षुकाश्च वन्दिनःपार्वतीव्रते
विद्याधरी नर्तकी च नर्तकाऽप्सरसां गणाः ।
नानाविधा वाद्यभाण्डा आजग्मुः शिवमन्दिरम् ॥ २६ ॥
कैलासराजमार्गश्च चन्दनेन सुसंस्कृतम् । आम्रपल्लवसूत्राक्तं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥३०
धान्यपर्णलाजफलपुष्पविभूषितम् । निर्मितं पद्मरागेण ददृशुस्ते गणा मुदा ॥३१॥
स्तैः सिंहासनेष्वेते पूजिताः शङ्करेण च । कैलासवासिनः सर्वे परमानन्दसंयुताः ॥३२
नाध्यक्षः शुनाशीरः कुबेरः कोषरक्षकः । आदिष्टा च स्वयं सूर्यः परिविष्टा जलाधिपः
नां नद्यः सहस्राणि दुग्धानाञ्च तथैव च । सहस्राणि घृतानाञ्च गुडानाञ्च शतानि च
र्धीकानां सहस्राणि तैलानाञ्च शतानि च । लक्षाणि चैव तक्राणां बभूवुः पार्वतीव्रते
पूराणाञ्च कुम्भानि शतलक्षाणि नारद । मिष्टान्नानां शर्कराणां बभूवुर्लक्षराशयः ॥
यवगोधूमचूर्णानां घृताक्तानाञ्च नारद ॥ ३६ ॥
स्तिकानाञ्च पूपानां बभूवुर्लक्षराशयः । गुडसंस्कृतलाजानां बभूवुः कोटिराशयः ॥
तीनां पृथुकानाञ्च राशीनां दशकोटयः । तण्डुलानाञ्च राशीनां मुने संख्या न विद्यते
रौप्यप्रवालानां मणीनाञ्च महामुने । बभूवुः पर्वतास्तत्र कैलासे पार्वतीव्रते ॥
ं पिष्टकञ्चैव शाल्यन्नं सुमनोहरम् । चकार लक्ष्मीः पाकञ्च व्यञ्जनं घृतसंस्कृतम्
बुभुजे देवर्षिगणैः सार्द्धं नारायणः स्वयम् । बभूवुर्लक्षविप्राश्च परिवेशनकारकाः ॥४१॥
ताम्बूलञ्च ददौ तेभ्यः कर्पूरादिसुवासितम् । रत्नसिंहासनस्थेभ्यो विप्रलक्षाः सुदक्षकाः
रत्नसिंहासनस्थञ्च विष्णुं क्षीरोदशायितम् । सेव्यमानं पार्षदैश्च सस्मितैः श्वेतचामरैः
ऋषिभिस्स्तूयमानाञ्च सिद्धैर्देवगणैस्तथा । विद्याधरीणां नृत्यानि पश्यन्तं सस्मितं मुदा
गन्धर्वाणाञ्च सङ्गीतं श्रुतवन्तं मनोहरम् ॥ ४४ ॥
पप्रच्छ शङ्करो ब्रह्मन् ब्रह्मेशं भक्तिपूर्वकम् । ब्रह्मणा प्रेरितो युक्तं व्रतं कर्त्तव्यमीप्सितम्
देवर्षिगणपूर्णायां सभायां स पुटाञ्जलिः ॥ ४६ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

र्वीयं प्रार्थितं मया श्रीनिवास शृणु प्रभो । तपस्विनां तपसां कर्मणाञ्च फलप्रद ॥४७॥
तपसां जपयज्ञानां पूजानां सर्वपूजित । सर्वेषां बीजरूपेण ब्रह्माण्डकलनां हरे ॥४८॥
सुपुण्यकव्रतं कर्तुं प्रतिनिच्छति पार्वती । पुत्रार्थिनी सा शोकार्ता हृदयेन विदूयता
निभृते एवं देवीभिर्बान्धवादिना । प्रबोधिता मया साध्वी विविधैर्वचनामृतैः ॥
सत्पुत्रं स्वामिसौभाग्यं सुव्रतापालनेऽसने । ताभ्यां विना न सन्तुष्टा प्राणांस्त्यक्तुमिच्छति
पुरा त्यक्ता स्वदेहश्च पितृयज्ञे न मानिनी । मन्निन्दया शैलगेहे पुनर्जन्म ललाभ सा ॥
सर्वं जानासि वृत्तान्तं सर्वज्ञं त्वां वदामि किम् । काऽद्य सा तां वद त्वं व्रतपरिणामसुखप्रदाम्

दुर्निवार्य्यश्च सर्वेश स्त्रीस्वभावश्च चापलः ।
दुस्त्यज्यं योगिभिः सिद्धैरस्माभिश्च तपस्विभिः ॥ ५४ ॥

जितेन्द्रियैर्जितक्रोधैः स्त्रीरूपं मोहकारणम् । सर्वमायाकरण्डञ्च कामवर्द्धनकारणम् ॥
ब्रह्मास्त्रं कामदेवस्य दुर्भेद्यं जयकारणम् । अनिर्मितञ्च विधिना सर्वार्थं विधिपूर्वजम् ॥
मोक्षद्वारकपाटञ्च हरिभक्तिनिरोधनम् । संसारबन्धनस्तम्भरज्जुरूपमकृन्तनम् ॥ ५७ ॥
वैराग्यनाशबीजञ्च शश्वद्रागविवर्द्धनम् । पत्तनं साहसानाञ्च दोषाणामालयं सदा॥५८॥
अप्रत्ययानां क्षेत्रञ्च स्वयं कपटमूर्त्तिमत् । अहङ्काराश्रयं शश्वद्विषकुम्भं सुधामुखम् ॥
सर्वैरसाध्यमानञ्च दुराराध्यञ्च सर्वदा । स्वकार्य्यसाध्यञ्चाराध्यं कलहाङ्कुरकारणम् ॥
सर्वं निवेदितं नाथ कर्त्तव्यं वक्तुमर्हसि । कार्य्यं सर्वं परामर्शे परिणामसुखावहम् ॥६१॥

श्रीनारायण उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भगवान्निरीक्ष्य ब्रह्मणो मुखम् । विरराम सभामध्ये स्तुरवाच कमलापतिम्
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः । हितं नीतिञ्च वचनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६३ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

सुपुण्यकव्रतं सारं सती सन्तानहेतवे । स्वामिसौभाग्यबीजञ्च पत्नी ते कर्त्तुमिच्छति ॥
...ध्यं सर्वकामफलप्रदम् । सुखदं सुखसारञ्च मोक्षदं पार्वतीश्वर ॥६५॥
साक्षिस्वरूपश्च ज्योतीरूपः सनातनः ।

निराश्रयश्च निर्लिप्तो निरुपाधिर्निरामयः ॥६६॥
भक्तप्राणश्च भक्तेशो भक्तानुग्रहकारकः ।
दुराराध्यो हि योऽन्येषां भक्तानामतिसाधकः ॥६७॥
भक्ताधीनो हि भगवान् सर्वसिद्धो हि निष्कलः ।
ते यस्य च कलाः पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६८॥
महान् विराट् यदंशश्च निर्लिप्तः प्रकृतेः परः ।
अव्ययो निग्रहश्चोग्रो भक्तानुग्रहविग्रहः ॥६९॥

उग्रग्रहोग्रहाणाञ्च ग्रहनिग्रहकारकः । त्रिकोटिजन्ममध्ये च न साध्यो भवता विना ॥
लब्ध्वा हि भारते जन्म हरिभक्तिं लभेन्नरः । सेवनं क्षुद्रदेवानां कृत्वा सप्तसु जन्मसु ॥
सूर्यमन्त्रमवाप्नोति केवलं स तदाशिषा । सूर्यमन्त्रं समाराध्य त्रिषु जन्मसु भारते ॥
प्राप्नोति शैवं मन्त्रञ्च सर्वदं मानवो मुदा । संसेव्य परया भक्त्या त्वामेव सप्तजन्मसु
प्राप्नोति मायामन्त्रञ्च त्वत्पदाब्जप्रसादतः । शतं जन्मसमाराध्यमायांनारायणीं पराम्
नारायणकलां सेव्यां समवाप्नोति मानवः । कलां निषेव्य धर्मेऽत्रपुण्यक्षेत्रे सुदुर्लभे ॥
कृष्णभक्तिमवाप्नोति भक्तसंसर्गहेतुकीम् । संप्राप्यभक्तिनिष्पक्कांभ्रामंभ्रामञ्च भारते ॥
प्राप्नोति परिपक्वाञ्च भक्तिं भक्तनिषेवया । तदा भक्तप्रसादेन देवानामाशिषा शिव ॥
श्रीकृष्णमन्त्रं प्राप्नोति निर्वाणफलदं परम् ॥७७॥
कृष्णव्रतं कृष्णमन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् । कृष्णतुल्यो भवेद्भक्तश्चिरं कृष्णनिषेवया ॥७८
महति प्रलये पातः सर्वेषां सर्वनिश्चितम् । नपात कृष्णभक्तानांसाधूनामविनाशिनाम् ॥
अविनाशिनिगोलोकेमोदन्तेकृष्णकिङ्कराः । हसन्तितेसुनिश्चिन्तादेवान्ब्रह्मादिकान्शिव
चं संहर्त्ता च सर्वेषां न भक्तानां महेश्वर । माया मोहयते सर्वान्भक्तान्सकृपया मम ॥
ायानारायणीमातासर्वेषांकृष्णभक्तिदा । नकृष्णभक्तिप्राप्नोतिविनामायानिषेवणम् ॥
ा च नारायणीमायामूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णप्रियाकृष्णभक्ता कृष्णतुल्याविनाशिनी
ा च तेजःस्वरूपा च स्वेच्छाविग्रहधारिणी । आविर्भूताचदेवानांतेजसा सुरनिग्रहे ॥
हत्य दैत्यसङ्घांश्च दक्षपत्न्याञ्च भारते । ललाभ दक्षस्तपसा जन्म चानेकजन्मनः ॥

# सप्तमोऽध्यायः

## हरेरादेशात् व्रतविधानम् ।

नारायण उवाच ।

हरेराज्ञां समादाय हरः प्रहृष्टमानसः । उवाच पार्वतीं प्रीत्या हरिसंलापमङ्गलम् ॥१॥
शिवाज्ञाञ्च समादाय शिवा प्रहृष्टमानसा । वाद्यञ्च वादयामास मङ्गलं मङ्गलव्रते ॥२
सुस्नातासुदतीशुद्धाबिभ्रतीधौतवाससी । संस्थाप्यरत्नकलसं शुक्लधान्योपरिस्थितम् ॥
आम्रपल्लवसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विभूषितम् ॥ ४ ॥
रत्नासनस्था रत्नाढ्या रत्नोद्भवसुता सती । रत्नसिंहासनस्थांश्च संपूज्यमुनिपुङ्गवान्
रत्नसिंहासनस्थञ्च संपूज्य च पुरोहितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम् ॥६॥
संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान् रत्नभूषितान् ।
देवान्नरांश्च नागांश्च समभ्यर्च्य विधियोचितम् ॥७॥
समभ्यर्च्य परया भक्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनविराजितान् ॥
वह्निशुद्धांश्च वस्त्रैश्च सद्रत्नभूषणेन च । पूजार्हद्रव्यैर्विविधैः पूजितान् पुण्यके मुने ।
सा रेभे व्रतं देवी स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥९॥
आवाह्याभीष्टदं तं श्रीकृष्णं मङ्गले घटे । भक्त्या ददौ क्रमेणैव चोपचाराणि षोडश॥
ानि व्रते विधेयानि देयानि विविधानि च । प्रददौ तानिसर्वाण्यन्येकंरत्नदानि च ॥
तोवस्तूपहारञ्च दुर्लभं भुवनत्रये । तत्र सर्वं ददौ भक्त्या सुव्रते सुव्रता सती ॥१२॥
दत्वा सर्वाणि द्रव्याणि वेदमन्त्रेण सा सती ।
होमञ्च कारयामास त्रिलक्षं तिलसर्पिषा ।
ब्राह्मणान् भोजयामास देवानतिथिपूजितान् ॥१३॥
सेव्यमेव कर्तव्ये सुव्रते सुव्रता सती । मन्वहं स्नापयानञ्च चकार पूर्णवत्सरम् ॥१४
माप्तिदिवसे विप्रस्तामुवाच पुरोहितः । सुव्रते सुव्रते मह्यं देहीति दक्षिणामिमाम्॥१५

स्वगणा देवि निद्राभिः सा गता तत्र निद्रया ।
जगाम देवी गोलोकं कृष्णशक्तिः सनातनी ॥८६॥

गृहीत्वा विमलं तस्या गुणरूपादिकं परम् । स्वांशं मातं मातने त्वं विष्णोऽंशः सुतस्तव ॥
प्रबोधिता मया त्वं च भाविते च गर्भिते । स्नात्वा जगाम सा गोलोकं कल्याणामखिलेन च
करोतु पुत्रकं तार्क्ष्यी सुमना सुमनं शिवा । गजमूत्रमङ्गलाशानो पुत्रं शङ्कर पुत्रकं ॥
गजमूत्रसहस्राणां मध्ये गजः शङ्करः । न भास्वं मार्गं तासां तो मन्दमितम् त्रिलोचन ॥
स्वयं गोलोकनाथश्च पुत्रकस्य प्रभावतः । सार्वांगमंतलक्ष तव पुत्रो भविष्यति ॥
स्वयं देवगणानाञ्च यस्मार्दीशः कृपानिधिः । गणेशाभिधिनस्तासामभविष्यति जगत्त्रये ॥
यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ननिघ्नं भवेद्ध्रुवम । जगतामेकबुना तेन विघ्नविघ्नाभिधो विभुः
नानाविधानिद्रव्याणियस्मादेयानिपुण्यके । शुक्रया स्वर्धोद्दरपत्र तेनलम्बोदरः स्मृतः
शनिदृष्ट्या शिरश्छेदाद्गजवक्त्रेण योजितः । गजाननः शिशुस्तेन नियत्या तेनवासने ॥
पर्शुना पर्शुरामस्य यदेकदन्तखण्डनम् । भविष्यति निश्चयेन एकदन्ताभिधः शिशुः ॥
पूज्यश्च सर्वदेवानामस्माकं जगतां विभुः । भयांभ्रे पूजनन्तस्य भविता मद्वरेण वै॥९७
पूजासु सर्वदेवानामग्रे संपूज्य तं जनः । पूजाफलमवाप्नोतिनिर्विघ्नेनतुचान्यथा ९८
गणेशञ्च दिनेशञ्च विष्णुंशम्भुंहुताशनम् । दुर्गामेतान् समभ्यर्च्य पूजयेद्देवतान्तरम् ॥
गणेशपूजने विघ्ननिर्विघ्नं जगतांभवेत् । निर्व्याधिःसूर्यपूजायांशुचिःश्रीविष्णुपूजने ॥
मोक्षश्च पापनाशश्च यशश्चैश्वर्य्य वर्द्धनम् । तत्त्वज्ञानसुनूमानां श्रीशङ्करपूजनम् ॥१०१
स्वबुद्धिशुद्धिजननं कीर्त्तितंवह्निपूजनम् । विधिसंस्कृतवह्नेस्तु ज्ञानमृत्युं लभेन्नरः॥१०२
दाता भोक्ता च भवति शङ्करानिनिषेवणात । हरिभक्तिप्रदश्चैव परंदुर्गार्च्चनंशिवम् ॥
विपरीतं त्रिजगतामेतेषां पूजनं विना । एवं क्रमो महादेव कल्पेकल्पेऽस्ति निश्चितम् ॥
एते शश्वद्वियमाना नित्याः सृष्टिपरायणाः । आविर्भावतिरोभावौचैतेषामीश्वरेच्छया
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र विरराम सभातले । प्रहृष्टा देवता विप्राःपार्वत्यासहशङ्करः॥१०६

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे व्रताज्ञाग्रहणं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

## सप्तमोऽध्यायः

### हरेरादेशात् व्रतविधानम् ।

नारायण उवाच ।

हरेराज्ञां समादाय हरः प्रहृष्टमानसः । उवाच पार्वतीं प्रीत्या हरिसंलापमङ्गलम् ॥१॥
शिवाज्ञाञ्च समादाय शिवा प्रहृष्टमानसा । वाद्यञ्च वादयामास मङ्गलं मङ्गलव्रते ॥२
सुस्नातासुदतीशुद्धाबिभ्रतीधौतवाससी । संस्थाप्यरत्नकलसं शुक्लधान्योपरिस्थितम् ॥
आम्रपल्लवसंयुक्तं फलाक्षतसुशोभितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विभूषितम् ॥ ४ ॥
रत्नासनस्था रत्नाढ्या रत्नोद्भवसुता सती । रत्नसिंहासनस्थांश्च संपूज्यमुनिपुङ्गवान्
रत्नसिंहासनस्थञ्च संपूज्य च पुरोहितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीरत्नभूषणभूषितम् ॥६॥

संस्थाप्य पुरतो भक्त्या दिक्पालान् रत्नभूषितान् ।
देवान्नरांश्च नागांश्च समभ्यर्च्य विधिबोधितम् ॥७॥

समभ्यर्च्य परया भक्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेनविराजितान् ॥
वह्निशुद्धांश्च वस्त्रैश्च सद्रत्नभूषणेन च । पूजार्हद्रव्यैर्विविधैः पूजितान् पुण्यके मुने ।

समारेभे व्रतं देवी स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥१०॥

आवाह्याभीष्टदेव तं श्रीकृष्णं मङ्गले घटे । भक्त्या ददौ क्रमेणैव चोपचाराणि षोड़श॥
यानि व्रते विधेयानि देयानि विविधानि च । प्रददौ तानिसर्वाणिप्रत्येकंफलदानि च ॥
व्रतोक्तमुपहारञ्च दुर्लभं भुवनत्रये । तच्च सर्वं ददौ भक्त्या सुव्रते सुव्रता सती ॥१२॥

दत्त्वा सर्वाणि द्रव्याणि वेदमन्त्रेण सा सती ।
होमञ्च कारयामास त्रिलक्षं तिलसर्पिषा ।
ब्राह्मणान् भोजयामास देवानतिथिपूजितान् ॥१३॥

कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्ये सुव्रते सुव्रता सती । प्रत्यहं सावधानञ्च चकार पूर्णवत्सरम् ॥१४
समाप्तिदिवसे विप्रस्तामुवाच पुरोहितः । सुव्रते सुव्रते मह्यं देहीति पतिदक्षिणाम्॥१५

श्रुत्वा पुरोहितोक्तं सा विलप्य सुरसंसदि । मूर्च्छां प्रापमहामायामायामोहितचेतना
तां ते च मूर्च्छितां दृष्ट्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवाः । शङ्करं प्रेपयामास ब्रह्मा विष्णुश्चनारद ।
संप्रेरितः सभासद्भिः शिवां बोधयितुं तदा । शिवः समुद्यमश्चक्रे प्रवक्तुं वदतां वरः ।

श्रीमहादेव उवाच ।

उत्तिष्ठ भद्रे भद्रं ते भविष्यति न संशयः । साम्प्रतं चेतनं कृत्वा मदीयं वचनं शृणु ।
शिवः शिवां तामित्युक्त्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाम् ।
वक्षसि स्थापयामास कारयामास चेतनाम् ॥२०॥
हितं सत्यं मितं सर्वं परिणामसुखावहम् । यशस्करञ्च फलदं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥२१॥
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद्वेदे न रूपितम् । सर्वसम्मतमिष्टञ्च धर्मार्थं धर्मसंसदि ॥२२
सर्वेषां कर्म्मणां देवि सारभूतात्वदक्षिणा । यशोदाफलदानित्यंधर्मिष्ठे धर्मकर्म्मणि ॥
दैवं वा पैतृकं वापिनित्यंनैमित्तिकंप्रिये । यत्कर्मदक्षिणाहीनंतत्सर्वंनिष्फलंभवेत्
दाता च कर्म्मणा तेन कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ॥२४॥
अथान्ते दैत्यमाप्नोति शत्रुणा परिपीड़ितः । दक्षिणा विप्रमुद्दिश्यतत्कालन्तुनदीयते ॥
तन्मुहूर्त्ते व्यतीते तु दक्षिणा द्विगुणा भवेत् । चतुर्गुणा दिनातीते पक्षेशतगुणाभवेत् ॥
मासे पञ्चशतगुणा षण्मासे तच्चतुर्गुणा । संवत्सरे व्यतीते तु तत्कर्मनिष्फलंभवेत्॥
दाता च नरकं याति यावद्वर्षसहस्रकम् । पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं क्षयमाप्नोतिपातकात् ।
धर्मो नष्टो भवेत्तस्य धर्महीने च कर्मणि ॥२८॥

श्री विष्णुरुवाच ।

रक्ष स्वधर्मं धर्मिष्ठे धर्मज्ञे धर्मकर्मणि । सर्वपाञ्च भवेद्रक्षा स्वधर्मपरिपालने ॥२९॥

ब्रह्मोवाच ।

यश्च येन निमित्तेन न धर्मं परिरक्षति । धर्मे नष्टे च धर्मज्ञे तस्य धर्मो विनश्यति ॥३०॥

धर्म उवाच ।

मां रक्ष यत्नतः साध्वि प्रदाय प्रतिदक्षिणाम् ।
मयि स्थिते महासाध्वि सर्वं भद्रं भविष्यति ॥३१॥

देवा ऊचुः ।

धर्मं रक्ष महासाध्वि कुरु पूर्णं व्रतं सति । वयं तव व्रते पूर्णं कुर्मस्ते पूर्णमानसम् ॥३२

मुनय ऊचुः ।

कृत्वा साध्वि पूर्णहोमं देहि विप्राय दक्षिणाम् ।
स्थितेष्वस्मासु धर्मज्ञे किमभद्रं भविष्यति ॥३३॥

सनत्कुमार उवाच ।

शिवे शिवं देहि मह्यं न चेद्व्रतफलंत्यज । सुचिरंसञ्चितस्यापिस्वात्मनस्तपसःफलम्
कर्मण्यदक्षिणे साध्वि यागस्याहन्तुतत्फलम् । प्राप्स्यामियजमानस्यसंपूर्णकर्मणःफलम्

पार्वत्युवाच ।

किं कर्मणा मे देवेशा किं मे दक्षिणया मुने ।
किं पुत्रेण च धर्मेण यत्र भर्त्ता च दक्षिणा ॥३६॥
वृक्षार्चने फलं किं वै यदि भूमिर्न चार्च्यते ।
गते च कारणे कार्यं कुतः शस्यं कुतः फलम् ॥३७॥
प्राणास्त्यक्ताः स्वेच्छया चेद्देहेन किं प्रयोजनम् ॥३८॥

शतपुत्रसमः स्वामी साध्वीनाञ्च सुरेश्वराः । यदि भर्त्ता व्रते देयः किंव्रतेन सुतेन वा

भर्त्तुर्वंशश्च तनयः केवलं भर्त्तृमूलकः ।
यत्र मूले भवेद्भ्रष्टं तद्वाणिज्यञ्च निष्फलम् ॥ ४० ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

पुत्रादपि परः स्वामी धर्मश्च स्वामिनः परः। नष्टे धर्मेच धर्मिष्ठे स्वामिना किं सुतेनवा

ब्रह्मोवाच ।

स्वामिनश्च परोधर्मो धर्मात् सत्यञ्च सुव्रते । सत्यं सङ्कल्पितं कर्म न तु भ्रष्टं कुरु व्रतम्

पार्वत्युवाच ।

निरूपितश्च वेदेषुस्वंशब्दो धनवाचकः । तद् यस्यास्तीति स स्वामी वेदश्च श्रृणु मद्वचः
तस्य दाता सदा स्वामी न च स्वं स्वामिनो भवेत् ।

अहो स्वपत्ना भवतां वेदज्ञानामपोषणा ॥ ४८ ॥

धर्म्म उवाच ।

पत्नी विनान्यं स्वं साध्वि स्वामिनं दातुमक्षमा । दम्पत्योर्धर्मकार्ये द्वयोर्दातानलोऽसनौ ॥

पार्वत्युवाच ।

पिता ददाति जामात्रे स च गृह्णाति तत्सुताम् । न श्रुतं विपरीतञ्च श्रुतौ श्रुतिपरायणाः ॥

देवा ऊचुः ।

बुद्धिस्वरूपा त्वं दुर्गे बुद्धिमन्तो वयं त्वया । वेदज्ञे वेदवादेषु के वा त्वां जेतुमीश्वराः ॥

निरूपिता पुण्यकेतु व्रते स्वामीव दक्षिणा । श्रुतौ श्रुतो य स धर्म्मो विपरीतो ह्यधर्मकः

पार्वत्युवाच ।

केवलं वेदमाश्रित्य कः करोति विनिर्णयम् ।

बलवान् लौकिको वेदाल्लोकाचारञ्च कस्त्यजेत् ॥५१॥

वेदे प्रकृतिपुंसोश्च गरीयान् पुरुषो ध्रुवम् । निर्बोधत सुराः प्राज्ञा बालाहं कथयामि किम् ॥

बृहस्पतिरुवाच ।

न पुमांसं विनाऽसृष्टिर्न साध्वि प्रकृतिं विना । श्रीकृष्णश्च द्वयोः स्रष्टा समौ प्रकृतिपूरुषौ

पार्वत्युवाच ।

यः कृष्णः स्रष्टा सर्वेषां सोंऽशेन सगुणः पुमान् ।

पुमान् गरीयान् प्रकृतेस्तथापि न ततश्च सा ॥ ५२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा मुनयस्तत्र संसदि । रत्नेन्द्रसारनिर्माणमाकाशे ददृशू रथम् ॥५३ ॥

पार्षदैश्च परिवृतं सर्वैः श्यामैश्चतुर्भुजैः । वनमालापरिवृतै रत्नभूषणभूषितैः ।

अवरुह्य मुदा यानादाजगाम सभातलम् ॥ ५४ ॥

तुष्टुवुस्तं सुरेन्द्रास्ते देवं वैकुण्ठवासिनम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरमीशञ्चतुर्भुजम् ॥ ५५ ॥

लक्ष्मीसरस्वतीकान्तं शान्तं तं सुमनोहरम् । सुखदृश्यमभक्तानामदृश्यं कोटिजन्मभिः ॥

[illegible] ं कोटिचन्द्रसमप्रभम् । अमूल्यरत्नरचितं चारुभूषणभूषितम् ॥ ५७ ॥

[illegible] सेवकैः सन्ततं स्तुतम् । तद्भासया च प्रच्छन्नैर्वेष्टितञ्च सुरर्षिभिः ॥

वासयामास तं ते च रत्नसिंहासने वरे । तं प्रणेमुश्च शिरसा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥५९॥
सम्पुटाञ्जलयः सर्वे पुलकाङ्काश्रुलोचनाः ॥ ६० ॥
सस्मितस्तांश्च पप्रच्छ सर्वं मधुरया गिरा । प्रबोधितः सुबोधश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥६१

श्री नारायण उवाच ।

सद्बुद्धया बुद्धिमन्तोनवक्तुमुचितंसुराः । सर्वे शक्त्या यया विश्वे शक्तिमन्तोहिजीविनः
ब्रह्मादितृणपर्य्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं जगत् । सन्यं सत्यं विनामाञ्चमया शक्तिः प्रकाशिता
आविर्भूताच सा मत्तः सृष्टौ देवी मदिच्छया । तिरोहिता च सा शेषे सृष्टिसंहरणे मयि
सृष्टिकर्त्री च प्रकृतिः सर्वेषां जननी परा । मम तुल्या च मन्माया तेन नारायणी स्मृता
सुचिरं तपसा तप्तं शम्भुना ध्यायता च माम् । तेन तस्मै मया दत्ता तपसां फलरूपिणी
व्रतञ्च लोकशिक्षार्थमस्या न स्वार्थमेव च । स्वयं व्रतानां तपसां फलदात्री जगत्त्रये॥
माययामोहिताःसर्वे किमस्या वा स्तवं व्रतम् । साध्यमस्याव्रतकलं कल्पेकल्पे पुनःपुनः
सुरेश्वरा मदंशाश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । कलाः कलांशरूपाश्च जीविनश्च सुरादयः॥६९
मृदा विना घटं कर्तुं कुलालश्च यथाक्षमः । विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः
विना शक्त्या तथाऽहञ्च स्वसृष्टिं कर्तुमक्षमः ॥ ७० ॥
शक्तिप्रधाना सृष्टिश्च सर्वदर्शनसम्मता । अहमात्मा हि निर्लिप्तोऽदृश्यः साक्षी च देहिनाम्
देहाः प्राकृतिकाः सर्वे नश्वराः पाञ्चभौतिकाः । अहं नित्यः शरीरी च भानुविग्रहविग्रहः
सर्वाधारश्च प्रकृतिः सर्वात्माहं जगत्सु च ॥ ७२ ॥
अहमात्मामनो ब्रह्मा ज्ञानरूपोमहेश्वरः । पञ्च प्राणाःस्वयं विष्णुर्बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी ॥
मेधा निद्रादयश्चैताः सर्वाश्च प्रकृतेःकलाः । सा च शैलेन्द्रकन्येयं इति वेदे निरूपितम्
अहं गोलोकनाथश्च वैकुण्ठेशः सनातनः । गोपीगोपैः परिवृतस्तत्रैव द्विभुजः स्वयम् ॥
चतुर्भुजोऽत्र देवेशो लक्ष्मीशः पार्षदैर्वृतः ॥ ७६ ॥
ऊर्ध्वं परश्च वैकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजने । ममाश्रयश्च गोलोके यत्राहं गोपिकापतिः
ममाराध्यो हि द्विभुजः स च सत्फलदायकः ।
तद्रूपं चिन्तयेद् यो हि तस्य सत्फलदायकम् ॥७८॥

वतं पूर्णं कुरुशिवे शिवं दत्वाचदक्षिणाम्। पुनःसमुचितं मूल्यं दत्त्वा नार्थं प्रदीप्यसि
विष्णुर्देहा यथा गावो विष्णुर्देहस्तथा शिवः।
द्विजाय दत्वा गोमूल्यं गृहाण स्वामिनं शुभे ॥ ८० ॥
यज्ञपत्नीं यथा दातुं क्षमःस्वामी सदैवतु। तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरीति श्रुतेर्मतम्
इत्युक्त्वा स सभामध्ये तत्रैवान्तरधीयत।
दृष्टास्ते सा च संहृष्टा दक्षिणां दातुमुद्यताः ॥ ८२ ॥
कृत्वा शिवा पूर्णहोमं सा शिवंदक्षिणां ददौ। स्वस्तीत्युक्त्वाचजग्राह कुमारोदेवसंसदि
उवाच दुर्गा संत्रस्ता शुष्ककण्ठौष्ठतालुका। पुटाञ्जलियुता विप्रं हृदयेन विदूयता ॥
पार्वत्युवाच।
गोमूल्यं मत्पतिसममिति वेदे निरूपितम्। गवां लक्षं प्रदास्यामि देहि मत्स्वामिनंद्विज
तदा दास्यामिविप्रेभ्योदानानिविविधानिच। आत्महीनो हि देहश्चकिंकर्मकर्त्तुमीश्वरः
सनत्कुमार उवाच।
गवां लक्षेण मे देवि विप्रस्य किं प्रयोजनम्। दत्तस्यामूल्यरत्नस्य गवां प्रत्यर्पणेन च
स्वस्य स्वस्य स्वयं कर्त्ता लोकः सर्वो जगत्त्रये।
कर्त्तुरीप्सितं कर्म भवेन् किं वा परेच्छया ॥ ८८ ॥
दिगम्बरं पुन कृत्वाम्रमित्यामिजगत्त्रयम्। बालकानां बालिकानांसमूहस्मितकारणम्
इत्युक्त्वा ब्रह्मणः पुत्रो गृहीत्वा शङ्करं मुने। सन्निधौ वासयामास तेजस्वी देवसंसदि
दृष्ट्वा शिवं गृह्यमाणं कुमारेण च पार्वती। समुद्यता तनुं त्यक्तुं शुष्ककण्ठौष्ठतालुका ॥
विचिन्त्य मनसा मार्थान्ध्येयमेव दुरत्ययम्। न द्रष्टोऽमीष्टदेवश्च न च प्राप्तं फलं व्रत
एतस्मिन्नन्तरे देवाः पार्वतीसहितास्तदा। सद्यो ददृशुराकाशे तेजसां निकरं परम्॥९३
कोटिसूर्यप्रभोद्दर्श्यं प्रज्वलञ्च दिशोदश। कैलासशैलं पुरतः सर्वदेवादिभिर्युतम् ॥
सर्वान् पुरुषं प्रचण्डं विस्तीर्णमण्डलाकृतिम्। दृष्ट्वा तच्च भगवन्तस्तुष्टुवुस्ते क्रमेण च
विष्णुरुवाच।
... .. . च सर्वाणि यदीामविषयेषु च। सोऽप्यनेनैवेश्वराश्च के परं योमदाविनाद्

ब्रह्मोवाच ।

वेदोपयुक्तं द्रश्यं यत्प्रत्यक्षं द्रष्टुमीश्वर । स्तोतुं तद्वर्णितुमहं शक्तः किं स्तौमि तत्परः ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तौमि ज्ञानपरश्च किम् ।
सर्वानिर्वचनीयं यं तं त्वां स्वेच्छामयं विभुम् ॥ ६८ ॥

धर्म उवाच ।

अदृश्यमवतारेषु यद्दृश्यं सर्वजन्तुभिः । किं स्तौमि तेजोरूपं तद्भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥६६

देवा ऊचुः ।

के वयं त्वत्कलांशाश्चकिंवावांस्तोतुमीश्वराः । स्तोतुं न शक्ता वेदाश्च यं न च शक्ता सरस्वती

मुनय ऊचुः ।

वेदान्पठित्वा विद्वांसो वयं किं वेदकारणम् । स्तोतुमीशा न वाणी च त्वां च वाङ्मनसोः परम्

सरस्वत्युवाच ।

वागधिष्ठातृदेवीं मां वदन्ति वेदवादिनः । किञ्चिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहो वाङ्मनसोः परम्

सावित्री उवाच ।

वेदप्रसूरहं नाथ सृष्टा त्वत्कलया पुरा । किं स्तौमि स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम् ।

लक्ष्मीरुवाच ।

त्वदंशविष्णुकान्ताहं जगत्पोषणकारिणी । किं स्तौमि त्वत्कलासृष्टा जगतां बीजकारणम्

हिमालय उवाच ।

हसन्ति सन्तो मां नाथ कर्मणा स्थावरं परम् । स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रः किं स्तौमि स्तोतुमक्षमः

क्रमेण सर्वे तं स्तुत्वा देवा विरमुर्मुने । देवदश्च मुनयः सर्वे पार्वती स्तोतुमुद्यता ॥

पीतवस्त्रजटाभारं बिभ्रती सुव्रता मने । प्रेरिता परमात्मानं वनाराध्यं शिवेन च ॥

ज्वलदग्निशिखारूपा तेजोमूर्त्तिमती सती । तपसां फलदा माता जगतां सर्वकर्मणाम् ॥

पार्वत्युवाच ।

त्वं जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी । वेदा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वेदकारकाः

•

त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति त्वत्कलाः ।
त्वञ्चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः ॥ ११० ॥
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात् स्थूलतमो महान् ।
विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीज सनातनः ॥ १११ ॥

...रयं त्वंकारणंत्वञ्चकारणानाञ्चकारणम् । तेजः स्वरूपो भगवान्निराकारोनिराश्रयः
...लिप्तोनिर्गुणःसाक्षीस्वात्मारामः परात्परः । प्रकृतीशो विराड्बीजं विराड्रूपस्त्वमेवच

सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे ॥ ११३ ॥
प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वञ्च वेदान्यो न कश्चिद्भवेत् ।
जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिबिम्बकः ॥ ११४ ॥

...र्म त्वं धर्मबीजं त्वं कर्मणांफलदायकः । ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरिणम्

केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥ ११५ ॥

...ण्णयाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥११६॥
...द्विभुजं कमनीयञ्च किशोरं श्यामसुन्दरम् । शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥
...यं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्तेसन्ततं मुदा । ध्यायन्तियोगिनो यत्तत्कुतस्तेजस्विनंविना
...त्तेजो विभ्रतां देव देवानां तेजसा पुरा । आविर्भूता सुराणाञ्च वधाय ब्रह्मणः स्तुता ।
...त्वा तेजःस्वरूपाऽहं बिभृत्य विग्रहं विभो । स्त्रीरूपं कमनीयञ्च विधाय समुपस्थिता
...ायया तव मायाहं मोहयित्वा सुरान् पुरा । निहत्य सर्वान् शैलेन्द्रमगमंतंहिमाचलम्
...तोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाशेण पीडितैः । अभवं दक्षजायायां शिवश्री भवजन्मनि ।
...यत्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाहं शिवनिन्दया । अभवं शैलजायायां शैलाधीशस्य कर्मणा ।
...नेककल्पा प्राप्तः शिवश्चापि जन्मनि । पाणिं अग्राह मे योगी प्रार्थितोब्रह्मणाविभुः
...ङ्गारजञ्च तत्तेजो नालभम् देवमायया । स्तौमि त्वमेव नेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥

व्रते मयकृतं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
दैवेन विहिता येदे नाङ्गे स्वस्यामिद्दशिरा ॥ १२६ ॥

सर्वं कृपासिन्धो शता मां कर्तुमर्हसि । इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद

भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः। सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम्॥
संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः। सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः॥
विष्णुस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् सर्वसम्पत्तिवर्द्धनम्। सुखदं मोक्षदं सारं स्वामिसौभाग्यवर्द्धनम्
सर्वसौन्दर्य्यबीजञ्च यशोराशिविवर्द्धनम्। हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिविवर्द्धनम्।।३१

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायनारदसंवादे पुण्यकव्रते पार्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः।

---

# अष्टमोऽध्यायः

## स्तवप्रीतेन कृष्णेन पार्वत्यै निजरूपप्रदर्शनं वरप्रदानञ्च।

नारायण उवाच।

पार्वतीस्तवनं श्रुत्वा श्रीकृष्णः करुणानिधिः। स्वरूपं दर्शयामास सर्वाद्वश्यं सुदुर्लभम्
स्तुत्वा देवी ध्यानलग्ना कृष्णैकतानमानसा। ददर्श तेजसां मध्ये स्वरूपं सारमोहनम्
तद्रत्नसारनिर्माणे हीरकेण परिष्कृते। युक्ते माणिक्यमालाभी रत्नपूर्णे मनोरथे॥ ३॥
वह्निसंशुद्धपीतांशुधरं वंशीकरं परम्। वनमालागलं श्यामं रत्नभूषणभूषितम्॥ ४॥
किशोरवयसं वेशविचित्रं चन्दनाङ्कितम्। चारुस्मितास्यमाढ्यं तच्चारदेन्दुविनिन्दकम्
मालतीमाल्यसंयुक्तमयूरपुच्छचूडकम्। गोपाङ्गनापरिवृतं राधावक्षःस्थलोज्ज्वलम्॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम्। अतीव हृष्टं सर्वेष्टं भक्तानुग्रहकारकम्॥ ७॥
दृष्ट्वा रूपं रूपवती पुत्रं तद्नुरूपकम्। मनसा वरयामास वरं संप्राप्य तत्क्षणम्॥ ८॥
वरं दत्त्वा वरेशस्तु यद्यन्मनसि वाञ्छितम्। दत्त्वार्भीष्टं सुरेभ्यश्च तत्तेजोऽन्तरधीयत
कुमारं बोधयित्वा तु देवा देव्यै दिगम्बरम्। ददुर्निरुपमं तत्र ब्रह्मणाद्ये कृपान्विताः॥
ब्राह्मणेभ्योददौदुर्गारत्नानिविविधानि च। सुवर्णानि च भिक्षुभ्यो वन्दिभ्यो विश्वनन्दिता
ब्राह्मणान् भोजयामास देवांश्च पर्वतांस्तथा। शङ्करं पूजयामास चोपहारैरनुत्तमैः॥१२.

दुन्दुभिं वादयामास कारयामास मङ्गलम् । सङ्गीतं गापयामास हरिसम्बन्धि सुन्दरम्

व्रतं समाप्य सा दुर्गा कृत्वा दानानि सस्मिता ।

रत्नांश्च भोजयित्वा तु बुभुजे स्वामिना सह ॥ १४ ॥

ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । [illegible] प्रदाय सर्वेभ्यो बुभुजे सेन कौतुकात्

पयःफेननिभां शय्यां रम्यां रत्नविनिर्मिताम् पुष्पचन्दनसंयुक्तां कस्तूरीकुङ्कुमान्विताम्

रहसि स्वामिना सार्द्धं सुष्वाप पर्वतेश्वरी ॥ १६ ॥

कैलासस्यैकदेशे च रम्ये चन्दनकानने । सुगन्धिकुसुमाढ्येन वायुना सुरभीकृते ॥१७

भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरवश्रुते । विजहार सुरसिका तत्र तेन महात्मिका ॥१८

रेतः पतनकाले च स विष्णुर्विष्णुमायया । विधाय विप्ररूपन्तु आजगाम स्मरगृहम्॥

रुक्षमवन्तं विना तैलं कुचेलं भिक्षुकं मुने । अतीव शुष्कदशनं तृष्णया परिपीडितम्॥२१

अतीव कृशमाप्रश्च विप्रतिलकमुज्ज्वलम् । यदुकाकुस्वरं दीनं दैन्यात्कुत्सितमूर्तिमत् ।

आजुहाव महादेवमतिवृद्धोऽन्नयाचकः । श्रण्डावलम्बनं कृत्वा रतिद्वारेऽतिदुर्बलः ॥२२॥

ब्राह्मण उवाच ।

किङ्करोऽपि महादेव रक्ष मां शरणागतम् । सप्तरात्रिव्रतेऽतीते पारणाकाङ्क्षिणं क्षुधा॥

किङ्करोऽपि महादेव हे तात करुणानिधे । पश्य वृद्धं जराग्रस्तं तृष्णया परिपीडितम्॥

मातरुत्तिष्ठ मामन्नं प्रयच्छ वासितं जलम् । अनन्तरत्नोद्भवजे रक्ष मां शरणागतम् ॥२५

मातर्मातर्जगन्मातरेहिनाहंजगद्बहिः । सीदामि तृष्णया कस्मात् स्थितायामात्ममातरि

इति काकुस्वरं श्रुत्वा शिवस्योत्तिष्ठतोमुने । पपात वीर्यं शय्यायां न योनौ प्रकृतेस्तदा

उत्तस्थौ पार्वती त्रस्ता सूक्ष्मवस्त्रं विधाय च । आजगाम रतिद्वारं पार्वत्या सह शङ्करः

ददर्श ब्राह्मणं दीनं जरया परिपीडितम् । वृद्धं लुलितगात्रञ्च बिभ्रतं दण्डमानतम् ॥२६

तपस्विनमशान्तञ्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकम् । कुर्वन्तं परया शक्त्या प्रमाणं स्तवनं तयोः

श्रुत्वा तद्वचनं तत्र नीलकण्ठः सुधोत्तमम् । उवाच परया प्रीत्या प्रसन्नस्तं प्रहस्य च

शङ्कर उवाच ।

गन्ते कुत्र विप्रर्षे वद [illegible] । किन्नाम भवतः क्षिप्रं ज्ञातुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

पार्वत्युवाच ।

आगतोऽसि कुतो विप्र मम भाग्यादुपस्थितः ।
अद्य मे सफलं जन्म ब्राह्मणो मद्गृहेऽतिथिः ॥ ३३ ॥

अतिथिः पूजितो येन त्रिजगत्तेन पूजितम् । तत्रैवाधिष्ठिता देवा ब्राह्मणा गुरवो द्विज॥
तीर्थान्यतिथिपादेषु शश्वत्तिष्ठन्ति निश्चितम् । तत्पादधौततोयेन मिश्रितानि लभेद्गृही
सस्नातःसर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । अतिथिः पूजितोयेन स्वात्मशक्त्या यथोचितम्
महादानानि सर्वाणि कृतानि तेन भूतले । अतिथिः पूजितो येन भारते भक्तिपूर्वकम्॥
नानाप्रकारपुण्यानि वेदोक्तानिचयानिच । अन्येवातिथिसेवायाःकलां नार्हन्तिषोड्शीम्
अपूजितोऽतिथिर्यस्य भवनाद्विनिवर्त्तते । पितृदेवाग्नयः पश्चाद्गुरवो यान्त्यपूजिताः॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
तानि सर्वाणि लभते नाऽभ्यर्च्यातिथिमीप्सितम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मण उवाच ।

जानासि वेदान् वेदज्ञे वेदोक्तं कुरुपूजनम् । क्षुत्तृड्भ्यां पीड़ितोमातर्वचनञ्च श्रुतौश्रुतम्
व्याधियुक्तो निराहारो यदा वाऽनशनव्रती । मनोरथेनोपहारं भोक्तुमिच्छति मानवः॥

पार्वत्युवाच ।

भोक्तुमिच्छसि किं विप्र त्रैलोक्ये चेन् सुदुर्लभम् ।
दास्यामि भोक्तुं त्वामद्य मज्जन्म सफलं कुरु ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

ते सुव्रतया सर्वमुपहारं समाहृतम् । नानाविधं मिष्टमिष्टं भोक्तुं श्रुत्वा समागतः ॥
सुव्रते तव पुत्रोऽहमग्रे मां पूजयिष्यसि । दत्त्वामिष्टानि वस्तूनि त्रैलोक्ये दुर्लभानिच

ताताः पञ्चविधाः प्रोक्ता मातरो विविधाः स्मृताः ।
पुत्रः पञ्चविधः साध्वि कथितो वेदवादिभिः ॥ ४६ ॥

विद्यादाताऽन्नदाताच भयत्राताच जन्मदः । कन्यादाताच वेदोक्ता नराणां पितरःस्मृताः
रुपत्नीगर्भधात्री स्तनदात्रीपितुःस्वसा । स्वसा मातुःसपत्नीच पुत्रभार्य्यान्नदायिका

भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्य्यजः शरणागतः ।
धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्य्यजो धनभागिति ॥ ४६ ॥

क्षुत्तृड्भ्यांपीड़ितो मातर्वृद्धोऽहं शरणागतः । साम्प्रतंतव वन्ध्याया अनाथः पुत्रएवच
पिष्टकं परमान्नञ्च सुपक्वानि फलानि च । नानाविधानि पिष्टानि कालदेशोद्भवानिच ॥
पक्वान्नं स्वस्तिकं क्षीरमिक्षुमिक्षुविकारजम् । घृतं दधि च शाल्यन्नं घृतपक्वञ्चव्यञ्जनम्
लड्डुकानि तिलानाञ्च भृष्टाद्यैःसगुड़ानिच । ममाज्ञातानि वस्तूनि सुधयातुल्यकानिच
ताम्बूलञ्चवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । जलंसुनिर्म्मलंस्वादु द्रव्याण्येतानिवासितम्
द्रव्याणि यानि भुक्त्वा मे चारु लम्बोदरं भवेत् । अनन्तरत्नोद्भवजे तानि मह्यं प्रदास्यसि
स्वामी ते त्रिजगत्कर्त्ता प्रदाता सर्व्वसम्पदाम् । महालक्ष्मीस्वरूपात्वं सर्व्वैश्वर्य्यप्रदायिनी
रत्नसिंहासनं रम्यममूल्यं रत्नभूषणम् । वह्निशुद्धांशुकं चारु प्रदास्यसि सुदुर्लभम् ॥५७॥
सुदुर्लभं हरेर्मन्त्रं हरौ भक्ति दृढ़ां सति । हरिप्रिया हरेः शक्तिस्त्वमेव सर्व्वदा सदा ।५८
ज्ञानं मृत्युञ्जयं नाम दातृशक्ति सुखप्रदाम् । सर्व्वसिद्धिञ्च किं मातर्देयं स्वसुताय च ॥
मनः सुनिर्मलं कृत्वा धर्मे तपसि सन्ततम् । श्रेष्ठे सर्व्वं करिष्यामि न कामे जन्महेतुके ।

स्वकामात् कुरुते कर्म कर्मणो भोग एव च ।
- भोगौ शुभाशुभौ ज्ञेयौ तौ हेतू सुखदुःखयोः ॥ ६१ ॥

दुःखं न कस्माद्भवति सुखं वा जगदम्बिके । सर्व्वं स्वकर्मणो भोगस्तेन तद्विरतो बुधः ।
कर्म्म निर्मूलयन्त्येव सन्तो हि सततं मुदा । हरिभावनबुद्ध्या सत्तपसा भक्तसङ्गतः ॥
इन्द्रियद्रव्यसंयोगसुखं विध्वंसनावधि । हरिसंलापरूपञ्च सुखं तत्सर्व्वकालिकम् ॥६४॥
हरिस्मरणशीलानां नायुर्यान्ति सतां सति । न तेषामीश्वरः कालो नचमृत्युञ्जयो ध्रुवम्
चिरं जीवन्ति ते भक्ता भारतेचिरजीविनः । सर्व्वसिद्धिञ्च विज्ञाय स्वच्छन्दंसर्व्वगामिनः
आत्मिनश्च हरेर्भक्ता जानन्तिकोटिजन्मनः । कथयन्ति कथां जन्म लभन्तेस्वेच्छयामुदा
परं पुनन्ति ते पूतास्तीर्थानि स्पर्शलीलया । पुण्यक्षेत्रेऽत्र सेवार्थे परार्थञ्च भ्रमन्ति ते ॥
वैष्णवानां पदस्पर्शात् सद्यः पूता वसुन्धरा । कालं गोदोहनमात्रं तीर्थे यत्र वसन्तिते
[illegible] धर्मो यत्र प्रविशयति । तं वैष्णवं तीर्थपूतं प्रवदन्ति पुराविदः

पुरुषाणां शतं पूर्वमुद्धरन्ति शतं परम् । लीलया भारते भक्त्या सोदरान्मातरं तथा ।७१
मातामहानां पुरुषान् दशपूर्वान् दशापरान् ।
मातुः प्रसूमुद्धरन्ति दारुणात् यमताडनात् ॥ ७२ ॥
भक्तदर्शनमाश्लेषं मानवाः प्राप्नुवन्ति ये । ते स्नाताः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षिताः ॥
न लिप्ताः पातके भक्ताः सन्ततं हरिमानसाः । यथाग्नयः सर्वभक्ष्या यथाद्रव्येषु वायवः
त्रिकोटिजन्मतो जन्तुःप्राप्नोति जन्ममानवम् । प्राप्नोतिभक्तसङ्गं स मानुषेकोटिजन्मनः
भक्तसङ्गात् भवेत् भक्तेरङ्कुरो जीविनः सति । अभक्तदर्शनादेव सच प्राप्नोतिशुष्कताम्
पुनः प्रफुल्लतां याति वैष्णवालापमात्रतः । अङ्कुरश्चाविनाशी च वर्द्धते प्रतिजन्मनि ।७७
तत्तरोर्वर्द्धमानस्य हरिदास्यं फलं सति । परिणामे भक्तिपाके पार्षदश्च भवेद्धरेः ॥७८॥
महति प्रलये नाशो न भवेत्तस्य निश्चितम् । सर्वसृष्टेश्च संहारे ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मणः ॥
तस्मान्नारायणे भक्तिं देहिमामम्बिके सदा । न भवेद्विष्णुभक्तिश्च विष्णुमाये त्वयाविना
तद्व्रतं लोकशिक्षार्थं स्वतपस्तवपूजनम् । सर्वेषां फलदात्री त्वं नित्यरूपा सनातनी ॥
गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मजः । त्वत्क्रोडमागतःक्षिप्रमित्युक्त्वान्तरधीयत
इत्यान्तर्द्धानमीशश्च बालरूपं विधाय सः । जगाम पार्वतीतल्पं मन्दिराभ्यन्तरस्थितम्
तल्पस्थे शिववीर्य्ये च मिश्रितः स बभूव ह । ददर्श गेहशिखरं प्रसूतो बालको यथा ॥
शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः । सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षुरश्मिविवर्द्धकः ॥८५॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः । मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम् ॥८६॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रचारुपद्मविनिन्दके । ओष्ठाधरपुटं बिभ्रन् पक्वबिम्बविनिन्दकम् ।८७।
कपालञ्च कपोलञ्च परमं सुमनोहरम् । नासाग्रं रुचिरं बिभ्रन् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम् ॥
त्रैलोक्येषु निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम् । शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम् ८८

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गणेशोत्पत्तिर्नाम अष्टमोऽध्यायः ।

———

## नवमोऽध्यायः

### हरौ तिरोहिते पार्वत्या ब्राह्मणान्वेषणम् ।

नारायण उवाच ।

हरौ तिरोहिते भूते दुर्गा च शङ्करस्तदा । ब्राह्मणान्वेषणं कृत्वा बभ्राम परितो मुने ॥१॥

पार्वत्युवाच ।

अये विप्रेन्द्रातिवृद्ध क गतोऽसि क्षुधातुरः । हे तात दर्शनं देहि प्राणांश्च रक्ष मे विभो
शिव शीघ्रं समुत्तिष्ठ ब्राह्मणान्वेषणं कुरु । क्षणमुन्मनसोरेवः प्रवृत्तमावयोर्गतः ॥३॥

अगृहीत्वा गृहात् पूजां गृहिणोऽतिथिरीश्वर ।
यदि याति क्षुधार्त्तश्च तस्य किं जीवनं वृथा ॥ ४ ॥

पितरस्तत्र गृह्णन्ति पिण्डदानञ्च तर्पणम् । तस्याहुतिं न गृह्णन्ति वह्निः पुष्पं जलं सुराः
हव्यं पुष्पं जलं द्रव्यमशुचेश्च सुरासमम् । अमेध्यसदृशः पिण्डः स्पर्शनं पुण्यनाशनम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी । कैवल्ययुक्ता सा दुर्गा तां शुश्राव शुचातुरा ॥
शान्ता भव जगन्मातः स्वसुतं पश्य मन्दिरे । कृष्णं गोलोकनाथं तं परिपूर्णतमं परम्
सुपुण्यकव्रततरोः फलरूपं सनातनम् । यत्तेजो योगिनः शश्वत् ध्यायन्ते सन्ततं मुदा
ध्यायन्त्येवैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । यस्यपूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पेच पूजनम्
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति । पुण्यराशिस्वरूपञ्च स्वसुतं पश्य मन्दिरे ॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम् । पश्यत्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्
तव वाञ्छापूर्णवीजं तपः कल्पतरोः फलम् । सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम्
नायं विप्रः क्षुधार्त्तश्च विप्ररूपी जनार्दनः । किं वा विलपसे दुर्गे कथावृद्धःकचातिथिः

सरस्वतीत्येवमुक्त्वा विरराम च नारद ॥१४ ॥

श्रुत्वा श्रुत्वाऽकाशवाणीं जगामस्वालयं सती । ददर्श बालं पर्य्यङ्के शयानंसस्मितंमुदा
शतचन्द्रसमप्रभम् । स्वप्रभापटलेनैव द्योतयन्तं महीतलम् ॥ १६ ॥

कुर्वन्तं भ्रमणं तल्पे पश्यन्तं स्वेच्छया मुदा । उमेति शब्दं कुर्वन्तंरुदन्तं तं स्तनार्थिनम्
दृष्ट्वा तमद्भुतं रूपं भस्ता शङ्करसन्निधिम् । गत्वेत्युवाच प्राणेशं मङ्गलं सर्वमङ्गला ॥१८

पार्वत्युवाच ।

गृहमागच्छ प्राणेश तपसां फलदायकम् । कल्पे कल्पे ध्यायसे यं तं पश्यागत्यमन्दिरम्
शीघ्रं पुत्रमुखं पश्य पुण्यबीजं महोत्सवम् । पुन्नामनरकत्राणं कारणं भवतारणम्॥२०
स्नानञ्च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षणम् । पुत्रसुदर्शनस्यास्य कलां नार्हति षोड़शीम्
सर्वदानेन यत्पुण्यंयत्पृथिव्याः प्रदक्षिणात् । पुत्रदर्शनपुण्यस्य कलां नार्हति षोड़शीम्
सर्वैस्तपोभिर्यत्पुण्यं यद्देवानशनैर्व्रतैः । मत्पुत्रोद्भवपुण्यस्य कलां नार्हति षोड़शीम् ।
यद्विप्रभोजनैः पुण्यं यदेव सुरसेवनैः । सत्पुत्रप्राप्तिपुण्यस्य कलां नार्हति षोड़शीम्
पार्वती वचनं श्रुत्वा शिवः प्रहृष्टमानसः । आजगाम स्वभवनं क्षिप्रं स कान्तया सह ।
ददर्श तल्पे स्वसुतं तप्तकाञ्चनसन्निभम् । हृदयस्थं च यद्रूपं तदेवाति मनोहरम् ॥२५॥
दुर्गा तल्पात् समादाय कृत्वावक्षसि तं सुतम् । चुचुम्बानन्दजलधौ निमग्नासेत्युवाचह
संप्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम् । यथा मनो दरिद्रस्यसहसा प्राप्यसद्धनम् ।
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा । मानसं परिपूर्णञ्च बभूव च तथा मनः ॥
सुचिरं गतमायान्तमेकपुत्रा यथा सुतम् । दृष्ट्वा तुष्टा यथा वत्स तथाहमपि साम्प्रतम् ॥
सद्रत्नं सुचिरं भ्रष्टं प्राप्य हृष्टो यथा जनः । अनावृष्टौ सुवृष्टिञ्च सम्प्राप्याहं तथासुतम्
यथा सुचिरमन्धानां स्थितानाञ्च निराश्रये । चक्षुः सुनिर्मलं प्राप्य मनः पूर्णं तथैवमे
दुस्तरे सागरे घोरे पतितस्य च सङ्कटे । अनौकस्य प्राप्य नौकां मनः पूर्णं तथा मम ॥
तृष्णया शुष्ककण्ठानां सुचिराञ्चसुशीतलम् । सुवासितंजलंप्राप्य मनःपूर्णं तथामम ॥
दावाग्निपतितानाञ्च स्थितानाञ्च निराश्रये । निरग्निमाश्रयं प्राप्यमनः पूर्णं तथा मम ॥
चिरं बुभुक्षितानाञ्च व्रतोपवासकारिणाम् । सदन्नं पुरतो दृष्ट्वा मनः पूर्णं तथा मम ॥
इत्युक्त्वा पार्वती तत्र क्रोड़े कृत्वा स्वबालकम् ॥ ३५ ॥
प्रीत्या स्तनं ददौ तस्मै परमानन्दमानसा । क्रोड़े चकार भगवान् बालकं हृष्टमानसः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे गणेशदर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ।

## दशमोऽध्यायः

### सर्वेभ्यो बहुविधदानम् ।

नारायण उवाच ।

तौ दम्पती बहिर्गत्वा पुत्रमङ्गलहेतवे । विविधानि च रत्नानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥

बन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च दानानि विविधानि च ।
नानाविधानि वाद्यानि वादयामास शङ्करः ॥ २ ॥

हिमालयश्च रत्नानां ददौ लक्षं द्विजातये । सहस्रञ्च गजेन्द्राणामश्वानाञ्च त्रिलक्षकम् ॥
दशलक्षं गवाञ्चैव पञ्चलक्षं सुवर्णकम् । मुक्तामाणिक्यरत्नानि मणिश्रेष्ठानि यानि च ॥
अन्यान्यपि च दानानि वस्त्राणि भूषणानि च । सर्वाण्यमूल्यरत्नानि क्षीरोदसम्भवानि च

ब्राह्मणेभ्यो ददौ विष्णुः कौस्तुभं कौतुकान्वितः ।
ब्रह्मा विशिष्टदानानि विप्राणां वाञ्छितानि च ।
सुदुर्लभानि भृत्यै च ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ ६ ॥

धर्मः सूर्यश्च शक्रश्च देवाश्च मुनयस्तथा । गन्धर्वाः पर्वता देव्यो ददुर्दानं क्रमेण च ॥
माणिक्यानां सहस्राणि रत्नानाञ्च शतानि च । शतानि कौस्तुभानाञ्च हीरकाणां शतानि च ॥
हरिद्वर्णमणीन्द्राणां सहस्राणि मुदान्वितः ॥ ६ ॥

गवां रत्नानि लक्षाणि गजरत्नसहस्रकम् । अमूल्यान्यन्यरत्नानि श्वेतवर्णानि कौतुकात्
शतलक्षं सुवर्णानां वह्निशुद्धांशुकानि च । ब्राह्मणेभ्यो ददौ महान् तत्र क्षीरोदकार्णवः ॥
हारञ्चामूल्यरत्नानां त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । अतीवनिर्मलं सारं सूर्यभाऽनुविनिन्दकम्
परिष्कृतञ्च माणिक्यैर्हीरकैश्च विराजितम् । रम्यं कौस्तुभमध्यस्थं ददौ देवी सरस्वती ॥
त्रैलोक्यसारहारञ्च सद्रत्नसारनिर्मितम् । भूषणानि च सर्वाणि सा सावित्री ददौ मुदा
लक्षं सुवर्णलोष्ट्राणां धनानि विविधानि च । शतान्यमूल्यरत्नानां कुबेरश्च ददौ मुदा ॥
दत्त्वा विप्रेभ्यस्ते सर्वे ददृशुः शिशुम् । परमानन्दसंयुक्ताः शिवपुत्रोत्सवे मुने ॥

मारंधोदुमशक्ताश्चब्राह्मणा वन्दितस्तथा। स्थायंस्थायञ्चगच्छन्तोघनानां पथि कातराः
कथयन्ति कथाः सर्वे विश्रान्ताः पूर्वदायिनाम्।
वृद्धाः शृण्वन्ति मुदिता युवानो भिक्षुका मुने ॥ १८ ॥
विष्णुः प्रमुदितस्तत्र वादयामास दुन्दुभिम्। सङ्गीतं गाययामासकारयामास नर्त्तनम्
वेदांश्च पाठयामास पुराणानि च नारद।
मुनीन्द्रानानयामास पूजयामास तान् मुदा। आशिषं दापयामास कारयामासमङ्गलम्।
सार्द्धं देवैश्च देवीभिर्ददौ तस्मै शुभाशिषम् ॥ २० ॥

विष्णुरुवाच।

शिवेन तुल्यं ज्ञानन्ते परमायुश्च बालक। पराक्रमे मया तुल्यः सर्वसिद्धीश्वरो भव ॥

ब्रह्मोवाच।

यशसा ते जगत् पूर्णं सर्वपूज्यो भवाचिरम्। सर्वेषां पुरतः पूजा भवत्वतिसुदुर्लभा ॥

धर्म्म उवाच।

मया तुल्यः सुधर्मिष्ठो भवान् भव सुदुर्लभः। सर्वज्ञश्चदयायुक्तो हरिभक्तो हरेःसमः॥

महादेव उवाच।

दातामयमया तुल्योहरिभक्तश्च बुद्धिमान्। विद्यावान् पुण्यवान् शान्तोदान्तश्चप्राणवल्लभ

लक्ष्मीरुवाच।

मम स्थितिश्च गेहे ते देहे भवतु शाश्वती। पतिव्रता मयातुल्या शान्ता कान्तामनोहरा

सरस्वत्युवाच।

मया तुल्या सुकविता धारणाशक्तिरेव च। स्मृतिर्विवेचनाशक्तिर्भवत्वतिशया सुत ॥

सावित्र्युवाच।

वत्साहं वेदजननी वेदज्ञानी भवाचिरम्। मन्मन्त्रजपशीलश्च प्रवरो वेदवादिनाम् ॥२७॥

हिमालय उवाच

श्रीकृष्णेतिमतिःशश्वत्भक्तिर्भवतुशाश्वती। श्रीकृष्णतुल्योगुणवान्भवकृष्णपरायणः

मेनकोवाच।

समुद्रतुल्यो गाम्भीर्य्येकामतुल्यश्च रूपवान्। श्रीयुक्तःश्रीपतिसमो धर्मे धर्मसमोभव ॥

गणेशोदयम् ।

सम्प्राप्तो यथा पुत्रः शारदाः सर्वमङ्गलम् । निर्विघ्नो विघ्नविघ्नश्च यथा वयोदुर्गया

पार्वतीसुतम् ।

सानुकूलमहायोगी विघ्नः विघ्निघ्नः शुभ । शृणुष्व तस्य मनसा महानिविघ्नात

शुभो शुभदः विघ्नाः सर्वे शुभदा च मम । यथाना कथितवान् शुभदा सर्वमङ्गल

सर्वे हि कथितं यस्य सर्वमङ्गलमङ्गलम् । गणेशजन्मकथानं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ११ ॥

इदं सुमङ्गलाख्यानं यः शृणोति सुसंयतः । सर्वमङ्गलसंयुक्तः स भवेन्मङ्गलालयः ॥१२॥

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् । कृपणो लभते भार्यां प्राप्नोति सम्पदामपि च ॥

भार्याहीनो लभेद्भार्यां प्रजाहीनो लभेत प्रजाम् । आरोग्यं लभते रोगी सौभाग्यं दुर्भगात्मजः

प्रष्टपुत्रं नष्टधनं प्रोषितश्च प्रियं लभेत् । शोकाविष्टः सदानन्दं लभते नात्र संशयः ॥१३॥

गणेशाख्यानश्रवणे यत् पुण्यं लभते नरः । तत् फलं लभते नूनमस्याख्यानश्रवणे मुने ॥

सततं मङ्गलाख्यायो यस्य गेहे च तिष्ठति । सदा मङ्गलसंयुक्तः स भवेन्नात्र संशयः ॥

यात्राकाले च पुण्याहे यः शृणोति समाहितः । सर्वाभीष्टं स लभते श्रीगणेशप्रसादतः॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे

गणेशोद्भवमङ्गलं नाम दशमोऽध्यायः ।

---

# एकादशोऽध्यायः

## गणेशदर्शनार्थं शनैश्चरागमनम् ।

नारायण उवाच ।

... रत्नसिंहासने वरे । देवैश्च मुनिभिः सार्द्धमुवास तत्र संसदि ॥१॥

... वामे ब्रह्मा प्रजापतिः । पुरतो जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः ॥

... सूर्य्यः शक्रः कलानिधिः । देवाश्च मुनयोऽन्ये पुरःशैलाः सुखासने ॥

ततस्ते नर्त्तकश्रेणी जगुर्गन्धर्वकिन्नराः । श्रुतिसारं श्रुतिसुखं तुष्टुवुः श्रुतयो हरिम् ॥४॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र द्रष्टुं शङ्करनन्दनम् । आजगाम महायोगी सूर्य्यपुत्रः शनैश्चरः ॥ ५ ॥
अत्यन्तनम्रवदन ईषन्मुद्रितलोचनः । अन्तर्बहिः स्मरन् कृष्णं कृष्णैकगतमानसः ॥ ६ ॥
तपःफलाशी तेजस्वी ज्वलदग्निशिखोपमः । अतीवसुन्दरः श्याम पीताम्बरधरो वरः ॥७
प्रणम्य विष्णुं ब्रह्माणं शिवं धर्मं रविं सुरान् । मुनीन्द्रान् बालकं द्रष्टुं जगाम तदनुज्ञया
प्रधानद्वारमासाद्य शिवतुल्यपराक्रमम् । द्वारिणं शूलहस्तञ्च विशालाक्षमुवाच ह ॥६॥

शनैश्चर उवाच ।

शिवाज्ञया शिशुं द्रष्टुं यामि शङ्करकिङ्कर । विष्णुप्रमुखदेवानां मुनीनामनुरोधतः ॥१०॥
आज्ञां देहि च मां गन्तुं पार्वतीसन्निधिं बुध ।
पुनर्यामि शिशुं दृष्ट्वा विषयासक्तमानसः ॥११॥

विशालाक्ष उवाच ।

आज्ञावहो न देवानां नाहं शङ्करकिङ्करः ।
द्वारं दातुं न शक्तोऽहं विनाऽऽत्ममातुराज्ञया ॥१२॥

इत्युक्त्वाभ्यन्तरम्येत्य प्रेरितः स शिवाज्ञया । ददौ द्वारं ग्रहेशायविशालाक्षो मुदा ततः
शनिरभ्यन्तरं गत्वा ननाम नम्रकन्धरः । रत्नसिंहासनस्थाञ्च पार्वतीं सस्मितां मुदा ॥
सखिभिःपञ्चभिःशश्वत्सेवितांश्वेतचामरैः । सखिदत्तञ्चताम्बूलंभुक्तवन्तींसुवासितम् ॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् । पश्यन्तीं नर्त्तकीनृत्यं पुत्रंकृत्वाचवक्षसि ॥
नतं सूर्य्यसुतं दृष्ट्वा दुर्गा संभाष्य सत्वरम् । शुभाशिषं ददौ तस्मैपृष्ट्वातन्मङ्गलंशुभम् ॥

पार्वत्युवाच ।

कथमानम्रवक्त्रस्त्वं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।
किं न पश्यसि मां साधो बालकं वा ग्रहेश्वर ॥१८॥

शनिरुवाच ।

सर्वे स्वकर्मणा साध्वि भुञ्जते तपसः फलम् । शुभाशुभञ्चयत्कर्मकोटिकल्पैर्नलुप्यते ॥
कर्मणा जायते जन्तुर्ब्रह्मेन्द्रसूर्य्यमन्दिरे । कर्मणा नरगेहेषु पश्वादिषु च कर्मणा ॥२०॥

कर्मणा नरकं याति वैकुण्ठं याति कर्मणा । स्वकर्मणा नरेन्द्रोऽभून्नश्यति स्वकर्मणा ॥
कर्मणा सुन्दरः शश्वद्व्याधियुक्तः स्वकर्मणा । कर्मणा निरोगी मान्निर्विघ्नः स्वकर्मणा ॥
कर्मणा धनवाँल्लोको दैन्ययुक्तः स्वकर्मणा । कर्मणा सत्कुटुम्बी च कर्मणा बन्धुकण्टकः ॥
सुभार्यश्च सुपुत्रश्च सुखी शश्वत् स्वकर्मणा । अपुत्रकश्च दुःस्त्रीको निस्त्रीकश्च स्वकर्मणा ॥

इतिहासश्चातिगोप्यः शृणु शङ्करवल्लभे ।
अकथ्यं जननीमाश्चाऽवज्ञाजननकारणम् ॥२५॥
आबाल्यात् कृष्णभक्तोऽहं कृष्णध्यानैकमानसः ।
तपस्यासु रतः शश्वत् विषये विरतः सदा ॥२६॥
पिता ददौ विवाहे तु कन्यांचित्ररथस्य च ।
अतितेजस्विनी शश्वत् तपस्यासु रता सती ॥२७॥
एकदा सा ऋतुस्नाता सुवेशं स्वं विधाय च ।
रत्नालङ्कारसंयुक्ता मुनिमानसमोहिनी ॥२८॥

हरेः पादं ध्यायमानं सा मां पश्येत्युवाचह । मत्समीपं समागत्य सस्मितालोललोचना
शशाप मामपश्यन्तं ऋतुनष्टा स्वकोपतः । बाह्यज्ञानविहीनञ्च ध्यानैकतानमानसम् ॥
न दृष्टाहं त्वया येन न कृतमृतुरक्षणम् । त्वया दृष्टञ्च यद्वस्तु मूढ़ सर्वं विनश्यति ॥३१
अहञ्च विरते ध्यानेऽतोषयं तां तदा सतीम् । शापं मोक्तुं न शक्ता सा पश्चात्तापं चकारह
तेनमात न पश्यामि किञ्चिद्वस्तु स्वचक्षुषा । ततः प्रभृतिनम्रास्यः प्राणिहिंसाभयादहम्
शनैश्चरवचः श्रुत्वा जहास पार्वती मुने । उच्चैः प्रजहसुः सर्वा नर्त्तकीकिन्नरीगणाः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शनिपार्वतीसंवादो नामैकादशोऽध्यायः ।

---

# द्वादशोऽध्यायः

## शनिना बालकदर्शनम् ।

नारायण उवाच ।

दुर्गा तद्वचनं श्रुत्वा सस्मार हरिमीश्वरम् । ईश्वरेच्छावशीभूतं जगदेवेत्युवाच ह ॥१॥
सा च देवी वशीभूता शनिं प्रोवाच कौतुकात् । पश्यमां मच्छिशुमिति निषेक केनवार्यते
पार्वतीवचनं श्रुत्वा शनिर्मेने हृदा स्वयम् । पश्यामि किंन पश्यामि पार्वतीसुतमित्यहो

यदि वा नो मया दृष्टस्तस्य विघ्नो भवेद् ध्रुवम् ॥ ३ ॥

इत्येवमुक्त्वा धर्मिष्ठो धर्मं कृत्वा तु साक्षिणम् । बालं द्रष्टुं मनश्चक्रे न बालमातरं शनिः
विषण्णमानसः पूर्वं शुष्ककण्ठौष्ठतालुकः । सव्यलोचनकोणेन ददर्श च शिशोर्मुखम् ५।
शनेश्च दृष्टिमात्रेण चिच्छेद मस्तकं मुने । चक्षुर्निवारयामास तस्थौ नम्राननः शनिः।६।

तस्थौ च पार्वतीक्रोडे ह्यसर्वाङ्गः सलोहितः ।

विवेश मस्तकं कृष्णे गत्वा गोलोकमीप्सितम् ॥ ७ ॥

मूर्च्छां संप्राप सा देवी विलप्य च भृशंमुहुः । मत्ताइव पृथिव्यान्तु कृत्वा वक्षसिबालकम्

विस्मितास्ते सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ।

देव्यश्च शैला गन्धर्वाः शिवः कैलासवासिनः ॥ ६ ॥

तान् सर्वान् मूर्च्छितान् दृष्ट्वारुह्य गरुड़ं हरिः ।

जगाम पुष्पभद्रां स उत्तरस्यां दिशि स्थिताम् ॥ १० ॥

पुष्पभद्रानदीतीरे ददर्श कानने स्थितः । गजेन्द्रं निद्रितं तत्र शयानं हस्तिनीयुतम् ॥११॥
दिश्युत्तरस्यां शिरसंमूर्च्छितं सुरतश्रमात् । परितः शावकान् कृत्वा परमानन्दमानसम्
शीघ्रं सुदर्शनेनैव चिच्छेद तच्छिरोमुदा । स्थापयामास गरुड़े रुधिराक्तं मनोहरम् ।१३
गजच्छिन्नाङ्गविक्षेपात् प्रबोधं प्राप्य हस्तिनी । शावकान्बोधयामास चाशुभं वदतीतदा

रुरोद शावकैः सार्द्धं सा विलप्य शुचातुरा ॥ १४ ॥

तुष्टाव कमलाकान्तं शान्तं सस्मितमीश्वरम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ।

गरुडस्थं जगत्कान्तं भ्रामयन्तं सुदर्शनम् ॥ १५ ॥

निषेकं खण्डितुं शक्तं निषेकजनकं विभुम् । निषेकभोगदातारं भोगनिस्तारकारणम् ।
प्रभुस्तत् स्तवनात्तुष्टस्तस्मै विप्रवरं ददौ । मुण्डान्मुण्डं विनिष्कृत्य युयुजेऽन्यगजस्य च
जीवयामास तं तत्र ब्रह्मज्ञानेन ब्रह्मवित् । सर्वाङ्गे योजयामास गजस्य चरणाम्बुजम् ।
त्वं जीवाकल्पपर्यन्तं परिवारैः समं गजः । इत्युक्त्वा च मनोयायी कैलासमाजगाम सः

आगत्य पार्वतीस्थानं बालं कृत्वा स्ववक्षसि ।
रुचिरं तच्छिरः कृत्वा योजयामास बालके ॥ २० ॥

ब्रह्मस्वरूपो भगवान् ब्रह्मज्ञानेन लीलया । जीवनं कारयामास हुङ्कारोच्चारणेन च ॥२१

पार्वतीं बोधयित्वा तु कृत्वा क्रोडे च तं शिशुम् ।
बोधयामास तां कृष्ण आध्यात्मिकविबोधनैः ॥ २२ ॥

विष्णुरुवाच ।

ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं जगद् भुंक्ते स्वकर्मणा ।
जगद्बुद्धिस्वरूपासि त्वं न जानासि किं शिवे ॥ २३ ॥
कल्पकोटिशतं भोगो जीविनां तत् स्वकर्मणा ।
उपस्थितो भवेन्नित्यं प्रतियोनौ शुभाशुभैः ॥ २४ ॥

इन्द्रः स्वकर्मणा कीटयोनौ जन्म लभेत् सति । कीटश्चापि भवेदिन्द्रः पूर्वकर्मफलेन वै
सिंहोऽपि मक्षिकां हन्तुमक्षमः प्राक्तनं विना । मशको हस्तिनं हन्तुं क्षमः स्वप्राक्तनेन च

सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम् ।
सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः ॥ २७ ॥

इहैव कर्मणो भोगः परत्र च शुभाशुभैः । कर्मोपार्जनयोग्यश्च पुण्यक्षेत्रश्च भारतम् ॥२८
कर्मणां फलदाता च विधाता च विधेरपि । मृत्योर्मृत्युः कालकालो निषेकस्य निषेककृत्
मां पातुः पाताः परात्परः । गोलोकनाथः श्रीकृष्णः परिपूर्णतमः स्वयम्
पुंसो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । महाविराड्यदंशश्च यल्लोमविवरे जगत् ॥

कलांशाः केऽपि तद्धर्मे कलांशांशाश्च केचन । चराचरं जगत् सर्वं तत्रतस्थौविनायकः
गीविष्णोर्वचनं श्रुत्वा परितुष्टा च पार्वती । स्तनं ददौ च शिशवे तं प्रणम्य गदाधरम्
प्राय पार्वती तुष्टा प्रेरिता शङ्करेण च । पुटाञ्जलियुता भक्त्या विष्णुं तं कमलापतिम्॥
ाशिषं युयुजे विष्णुः शिशुश्च शिशुमातरम् । ददौ गले बालकस्य कौस्तुभञ्चस्वभूषणम्
ह्मा ददौ स्वमुकुटं धर्मश्च रत्नभूषणम् । क्रमेण देव्यो रत्नानि ददुः सर्वे यथोचितम्॥
प्राय तं महादेवश्चातीवहृष्टमानसः । देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः सर्वयोषितः ॥३७
ष्ट्वा शिवः शिवाचैव बालकं मृतजीवितम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ तत्र कोटिरत्नानि नारद

अश्वानाञ्च गजानाञ्च सहस्राणि शतानि च ।

वन्दिभ्यः प्रददौ तत्र बालके मृतजीविते ॥ ३९ ॥

मालयश्च संहृष्टो हृष्टा देवाश्च तत्र वै । ददुर्दानानि विप्रेभ्यो वन्दिभ्यः सर्वयोषितः
ह्मणान् भोजयामास कारयामास मङ्गलम् । वेदांश्च पाठयामास पुराणानि रमापतिः
नि सलज्जितं दृष्ट्वा पार्वती कोपशालिनी । शशाप च सभामध्येऽप्यङ्गहीनो भवेति च
ा शप्तं शनिं सूर्य्यः कश्यपश्च यमस्तथा । तेऽतिरुष्टा समुत्तस्थुर्गामुकाः शङ्करालयात्
ाक्षास्ते रक्तमुखाः कोपप्रस्फुरिताधराः । तां धर्मं साक्षिणंकृत्वा विष्णुश्चशप्तुमुद्यताः
ा तान्बोधयामासविष्णुनाप्रेरितैः सुरैः । रक्तास्यांपार्वतीञ्चैवकोपप्रस्फुरिताधराम्
ाणमूचुस्ते तत्र क्रमेण समयोचितम् । भीरवो देवताः सर्वे मुनयः पर्वतास्तथा ॥

कश्यप उवाच ।

दुष्टोऽयं प्राक्तनेन पत्नीशापेन सर्वदा । बालं ददर्श यत्नेन तस्यैव मातुराज्ञया ॥ ४७ ॥

श्रीसूर्य उवाच ।

तं धर्मं साक्षिणं कृत्वा पुत्रस्य मातुराज्ञया । मत्पुत्रोऽतिप्रयत्नेन ददर्श पार्वती सुतम्
यथा निरपराधेन मत्पुत्रं सा शशाप ह । तत्पुत्रस्याङ्गभङ्गश्च भविष्यति न संशयः ॥

यम उवाच ।

मदाय स्वयमाज्ञाञ्च शशाप चस्वयं कथम् । वयं शप्ताः कोऽधर्मो जिघांसोश्चविहिंसने

ब्रह्मोवाच ।

शशाप पार्वती रुष्टा स्त्रीस्वभावाच्च चापलात् । सर्वेषां वचनेनैव क्षन्तुमर्हन्तु साधवः ॥
दुर्गे दत्त्वा त्वमाज्ञाञ्च पुत्रदर्शनहेतवे । कथं शपसि निर्दोषमतिथिं त्वद्गृहागतम् ॥५२
इत्युक्त्वा शनिमादाय बोधयित्वा तु पार्वतीम् । तां तं समर्पणं चक्रे शापमोचनहेतवे
बभूव पार्वती तुष्टा ब्रह्मणो वचनान्मुने । शान्ता बभूवुस्ते तत्र दिनेशयमकश्यपाः ॥५३
उवाच पार्वती तत्र संतुष्टा तं शनैश्चरम् । प्रसादिता शिवेनैव ब्रह्मणा परिसेविता ॥

पार्वत्युवाच ।

महाराजो भव शने मद्वरेण हरिप्रियः । चिरजीवी च योगीन्द्रो हरिभक्तस्य का विपत्
अद्य प्रभृतिनिर्विघ्नाहरौभक्तिर्दृढास्तु ते । मच्छापामोघतो वत्सकिञ्चित्खञ्जो भविष्यति
इत्युक्त्वा पार्वतीतुष्टावालंकृत्वाचवक्षसि । उवास योषितां मध्ये तस्मैदत्त्वाशुमाशिषम्
शनिर्जगाम देवानां समीपं हृष्टमानसः । प्रणम्य भक्त्या तां ब्रह्मम्बिकां जगदम्बिकाम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे विघ्नोपखण्डनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

---

## त्रयोदशोऽध्यायः

### विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रम् ।

नारायण उवाच ।

अथ विष्णुः शुभे काले देवैश्च मुनिभिः सह । पूजयामास तं बालमुपहारैरनुत्तमैः ॥१॥
सर्वाग्रे च तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम । सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्
वनमालां ददौ तस्मै ब्रह्मज्ञानञ्च मुक्तिदम् । सर्वसिद्धिं प्रदायैव चकारात्मसमं हरिः ॥
ददौ द्रव्याणि चारूणि चोपचाराणि षोडश । तन्नामकरणं चक्रे मुनिभिश्च समं सुरैः
[illegible]शश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः । लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः ॥५॥

एतान्यष्टौ च नामानि तस्य चक्रे सनातनः। आशिषं दापयामास चानयामासतान्मुनीन्
सिद्धासनं ददौ धर्मस्तस्मै ब्रह्मा कमण्डलुम्। शङ्करो योगपट्टञ्च तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम्
रत्नसिंहासनं शक्रः सूर्यश्च मणिकुण्डले। माणिक्यमालां चन्द्रश्च कुवेरश्च किरीटकम्
वह्निशुद्धञ्च वसनं ददौ तस्मै हुताशनः। रत्नछत्रञ्च वरुणो वायुः रत्नाङ्गुरीयकम् ॥ ६ ॥
क्षीरोदोद्भवसद्रत्नरचितं वलयं वरम्। मञ्जीरञ्चापि केयूरं ददौ पद्मालया मुने ॥ १० ॥
कण्ठभूषाञ्च सावित्री भारती हारमुज्ज्वलम्। क्रमेण सर्वदेवाश्च देव्यश्च यौतुकं ददुः।
मुनयः पर्वताश्चैव रत्नानि विविधानि च। वसुन्धरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषिकम्।
क्रमेण देवा देव्यश्च मुनयः पर्वतादयः। गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मनवो मानवास्तथा ॥
नानाविधानि द्रव्याणि स्वादूनि मधुराणि च। पूजाञ्चक्रुश्च ते सर्वे क्रमेण भक्तिपूर्वकम्
पार्वती जगतां माता स्मेराननसरोरुहा। रत्नसिंहासने पुत्रं वासयामास नारद ॥१५॥
सर्वतीर्थोदकानाञ्च कलसानां शतेन च। स्नापयामास वेदोक्तमन्त्रेण मुनिभिस्तदा ॥
अग्निशौचे च वसने ददौ तस्मै सती मुदा ॥ १६ ॥
गोदावर्य्युदकं पाद्यमर्घ्यं गङ्गोदकेन च। दूर्वाभिरक्षतैः पुष्पैश्चन्दनेन समन्वितम् ॥१७॥
पुष्करोदकमानीय पुनराचमनीयकम्। मधुपर्कं रत्नपात्रैरासवं शर्करान्वितम् ॥ १८ ॥
स्नानीयं विष्णुतैलञ्च स्वर्वैद्येन विनिर्मितम्। अमूल्यरत्नरचितचारूणि भूषणानि च ॥
पारिजातप्रसूनानां माल्यानां शतकानि च। मालतीचम्पकादीनां पुष्पाणि विविधानिच
पूजार्हाणि च पात्राणि तुलसीवर्जितानि च ॥२० ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमानि च सादरम्। रत्नप्रदीपनिकरं धूपञ्च परितो ददौ ॥ २१ ॥
नैवेद्यं तत्प्रियञ्चैव तिललड्डुकपर्वतम्। यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकानाञ्च पर्वतम् ॥२२॥
पक्वानां पर्वतञ्च सुस्वादु सुमनोहरम्। पर्वतं स्वस्तिकानाञ्च सुस्वादुशर्करान्वितम्
गुड़ाक्तानाञ्च लाजानां पृथुकानाञ्च पर्वतम्। शाल्यन्नानां पिष्टकानां पर्वतं व्यञ्जनैःसह
कलसानाञ्च पयसां लक्षाणि प्रददौ मुदा ॥२४॥
लक्षाणि कलसानाञ्च दध्नां नारद पूजने। मधूनां कलसानाञ्च त्रिलक्षाणि च सुन्दरी
सर्पिषां कलसानाञ्च पञ्चलक्षाणि सादरम्।

दाडिम्बानां श्रीफलानामसंख्यानि फलानि च ॥ २८ ॥
खर्जूराणां कारञ्जानां जम्बूनां विविधानि च । आम्राणां पनसानाञ्च कदलीनाञ्च नारद
फलानि नारिकेलानामसंख्यानि ददौ मुदा ॥ २९ ॥
अन्यानि परिपक्वानि कालदेशोद्भवानि च । ददौ तानि महाभागा स्वादूनि मधुराणि च
स्वच्छं सुनिर्मलञ्चैव कर्पूरादिसुवासितम् । गङ्गाजलञ्च पानार्थं पुनराचमनीयकम् ॥
ताम्बूलञ्च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम् । सुवर्णपात्रशतकं परिपूर्णञ्च नारद ॥ ३० ॥
शैलेश्वरी शैलराजः शैलजः शैलराजजः । शैलराजप्रियामान्याः पुपूजुः शैलजात्मजम् ॥
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे । सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः
इत्यनेनैव मन्त्रेण दत्त्वा द्रव्याणि भक्तितः । सर्वे प्रमुदितास्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
द्वात्रिंशदक्षरो मालामन्त्रोऽयं सर्वकामदः । धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदः सर्वसिद्धिदः
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिस्तु मन्त्रिणः । मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स च विष्णुश्च भारते
विघ्नानि च पलायन्ते तन्नामस्मरणेन च । महावाग्मी महासिद्धः सर्वसिद्धिसमन्वितः
वाक्पतिर्जगतांयातितस्यसाक्षात्सुनिश्चितम् । महाकवीन्द्रोगुणवान्विदुषाञ्चगुरोर्गुरुः
संपूज्यानेन मन्त्रेण देवा आनन्दसंप्लुताः । नानाविधानि वाद्यानि वादयामासुरुत्सवे
ब्राह्मणान् भोजयामासुः कारयामासुरुत्सवम् । ददुर्दानानि तेभ्यश्च वन्दिभ्यश्चविशेषतः

नारायण उवाच ।

अथ विष्णुः सभामध्ये संपूज्य तं गणेश्वरम् । तुष्टाव परया भक्त्या सर्वविघ्नविनायकम्

श्रीविष्णुरुवाच ।

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामिब्रह्मज्योतिःसनातनम् । निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम् ॥
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम् । सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम् ॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यंसत्यमात्मस्वरूपिणम् । वायुतुल्यातिनिर्लिप्तंचाक्षतंसर्वसाक्षिणम् ॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे । कर्णधारस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहकारकम् ॥४४॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम् । सिद्धं सिद्धिस्वरूपञ्च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम् ॥
...रिक्तं ध्येयञ्च ध्यानासाध्यञ्च धार्मिकम् । धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम् ॥

ाजं संसारवृक्षाणामङ्कुरञ्च तदाश्रयम् । स्त्रीपुंनपुंसकानाञ्च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥४७॥
र्वाधमग्रपूज्यञ्च सर्वपूज्यं गुणार्णवम् । स्वेच्छया सगुणं ब्रह्मनिर्गुणञ्चापिस्वेच्छया॥
वयं प्रकृतिरूपञ्च प्राकृतं प्रकृतेः परम् । त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥४६
क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः । सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ॥
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥५०॥
येवं स्तवनं कृत्वा सुरेशं सुरसंसदि । सुरेशश्च सुरैः सार्द्धं विरराम रमापतिः ॥५१॥
विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यःपठेत् । सायंप्रातश्चमध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः ॥
द्विघ्ननिघ्नं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने । वर्द्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकःसदा ॥५३
त्राकाले पठित्वा तु यो याति भक्तिपूर्वकम् । तस्यसर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येवनसंशयः॥
दृष्टञ्च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमुपजायते । कदापि न भवेत्तस्य ग्रहपीड़ा च दारुणा ॥५५
रेद्विनाशः शत्रूणां बन्धूनाञ्च विवर्द्धनम् । शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वत् सम्पद्विवर्द्धनम्॥
थरा भवेद्गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्द्धनी । सर्वैश्वर्यमिह प्राप्यह्यन्तेविष्णुपदंलभेत्
ञ्चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद्भवेद् ध्रुवम् । महतां सर्वदानानां श्रीगणेशप्रसादतः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे विष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं समाप्तम् ।

नारद उवाच ।

स्तोत्रं गणेशस्य पूजनञ्च मनोहरम् । कवचं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतंभवतारणम् ॥

नारायण उवाच ।

यां सुनिवृत्तायां सभामध्ये शनैश्चरः । उवाच विष्णुं सर्वेषां तारकंजगतांगुरुम् ॥

शनैश्चर उवाच ।

दुःखविनाशाय दुःखप्रशमनाय च । कवचं विघ्ननिघ्नस्य वद वेदविदां वर ॥६१॥
बभूव नो विवादश्च शक्त्या च मायया सह ।
तद्विघ्नप्रशमार्थञ्च कवचं धारयाम्यहम् ॥६२॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

विनाकस्य कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । सुगोप्यञ्च पुराणेषु दुर्लभञ्चागमेषु च ॥६३॥

उक्तं कौथुमशाखायां सामवेदे मनोहरम् । कवचं विघ्ननाथस्य सर्वविघ्नहरं परम् ॥६४॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च सूर्य्यज । एवम्भूतञ्च कवचं न देयं प्राणसङ्कटे ॥६५॥
आविर्भावस्तिरोभावः स्वेच्छयाऽस्य च मायया ।
नित्योऽयमेकदन्तश्च कवचं चास्य वत्सक ॥६६॥
पूजास्य नित्या स्तोत्रञ्च कल्पे कल्पेऽस्ति सन्ततम् ।
अस्यास्य जन्मनः पूर्वं मुनयश्च सिषेविरे ॥६७॥
यथा मदवतारेषु जन्मविग्रहधारणम् । तथा गणेश्वरस्यापि जन्म शैलसुतोदरे ॥६८॥
यद्धृत्वा मुनयः सर्वे जीवन्मुक्ताश्च भारते । निःशङ्काश्च सुराः सर्वे शत्रुपक्षविमर्दकाः॥
कवचं बिभ्रतां मृत्युर्न याति सन्निधिं भिया ।
नायुर्व्ययो नाशुभञ्च ब्रह्माण्डे न पराजयः ॥७०॥
दशलक्षजपेनैव सिद्धञ्च कवचं भवेत् । यो भवेत् सिद्धकवचो मृत्युं जेतुं स च क्षमः ॥
सुसिद्धकवचो वाग्मी चिरजीवी महीतले । सर्वत्र विजयी पूज्यो भवेद्ग्रहणमात्रतः ॥
मालामन्त्रमिमं पुण्यं कवचञ्चेदमेव च । बिभ्रतां सर्वपापानि प्रणश्यन्ति सुनिश्चितम् ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः । डाकिन्यो योगिन्यश्चैव वेतालादयएवच
बालग्रहा ग्रहाश्चैव क्षेत्रपालादय स्तथा । तेषाञ्च शब्दमात्रेण पलायन्ते च भीरवः ॥
आधयो व्याधयश्चैवशोकाश्चैवभयावहाः । न यान्तिसन्निधिंतेषांगरुड़स्य यथोरगाः॥
ऋजवे गुरुभक्ताय स्वशिष्यायप्रकाशयेत् । खलायपरशिष्यायदत्त्वामृत्युमवाप्नुयात् ॥
संसारमोहकस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्चवृहतीदेवोलम्बोदरः स्वयम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥७९॥
सर्वेषां कवचानाञ्च सारभूतमिदं मुने । ओं गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहामेपातु मस्तकम् ।
द्वात्रिंशदक्षरोमन्त्रो ललाटं मे सदावतु ॥८०॥
ओं ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च सन्ततंपातुलोचनम् । तालुकंपातुविघ्नेशःसन्ततंधरणीतले॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीमितिचसन्ततंपातुनासिकाम् । ओंगौंगंशूर्पकर्णायस्वाहा पात्वधरं मम ।
दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे षोड़शाक्षरः ॥८१॥

ओं लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु ।
ओं क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु च ॥ ८४॥
ओं श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु ।
ओं ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥ ८५ ॥
ओं क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलञ्च गम् ।
करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत् ॥ ८६ ॥

प्राच्यांलम्बोदरःपातु आग्नेय्यांविघ्ननायकः । दक्षिणेपातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यान्तुगजाननः
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शङ्करात्मजः । कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च ॥
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः । अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः
स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः ॥९० ॥

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥९१।
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले । वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज ॥
मया दत्तञ्च तुभ्यञ्च यस्मै कस्मै न दास्यसि । परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसङ्कटतारणम् ९३
गुरुमभ्यर्च्यविधिवत् कवचं धारयेत्तुयः । कण्ठेवा दक्षिणे बाहौसोऽपि विष्णुर्नसंशयः
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम्
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छङ्करात्मजम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रःसिद्धिदायकः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते संसारमोहनं नाम कवचम् ।

दत्त्वेदं सूर्य्यपुत्राय विरराम सुरेश्वरः ।
परमानन्दसंयुक्ता देवा ऊचुः समीपतः ॥ ९६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे गणेशपूजा स्तवकवचकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

---

# चतुर्दशोऽध्यायः

## कार्तिकेयप्रवृत्तिप्राप्तिः ।

नारायण उवाच ।

देवा विष्णुसभायांते सर्वे प्रहृष्टमानसाः । गन्धर्वा मुनयःशैलाः पश्यन्तः सुमहोत्सवम्
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गा स्मेराननसरोरुहा । उवाच विष्णुं प्रणता देवेशं देवसंसदि ॥ २ ॥

पार्वत्युवाच ।

त्वं पाता सर्वजगतां नाथनाहंजगद्बहिः । कथं मत्स्वामिनो वीर्य्यंनामोघं रक्षितंप्रभो
रतिभङ्गे कृते देवैर्ब्रह्मणा प्रेरितैस्त्वया । भूमौ निपतितं वीर्य्यं केन देवेन वै हृतम् ॥४॥
सर्वे देवास्त्वत्पुरतस्तदन्वेषणमर्हति । अराजकं कथं युक्तं तिष्ठति त्वयि राजनि ॥५॥
पार्वतीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य जगदीश्वरः । उवाच देववर्गं च मुनिवर्गं च तिष्ठति ॥ ६ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

देवाः शृणुत मद्वाक्यं पार्वतीवचनं श्रुतम् । शिवस्यामोघवीर्य्यं यत्तत् पुराकेननिर्हृतम्
समामानय तत् क्षिप्रं न चेन्सद्दण्डमर्हति । सकोराजान शास्तायः प्रजावाध्यश्चपाक्षिकः
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा समालोच्य परस्परम् । ऊचुः सर्वे क्रमेणैव आसिताःपुरतोहरेः

ब्रह्मोवाच ।

सर्वाघ्र्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते । स वञ्चितो भवत्यत्र पुण्याहे पुण्यकर्मणि ॥

महादेव उवाच ।

स्वर्णाघ्र्यं निर्हृतं येन पुण्यभूमौ च भारते । स वञ्चितो भवत्यत्र सेवने पूजने तथा॥११॥

यम उवाच ।

स वञ्चितो भवत्यत्र शरणागतरक्षणे । एकादशीव्रते चैव तद्घाघ्र्यं येन निर्हृतम् ॥१२॥

इन्द्र उवाच ।

सर्वाघ्र्यं निर्हृतं येन पार्थिवं पापमोचने । भवत्यत्र यशोलुप्तस्तत् पुण्यकर्म सन्ततम् ॥

वरुण उवाच ।

भवत्वत्र कलौ जन्म यर्येऽस्य भारते हरे । शूद्रयाजकपत्न्याश्च गर्भे तद् येन निर्द्दतम् ।

कुबेर उवाच ।

स्थाप्यहारी स भवतु विश्वासघ्नश्च मित्रहा । सत्यघ्नश्च कृतघ्नश्च तद्वीर्यं येन निर्द्दतम् ॥

ईशान उवाच ।

परद्रव्यापहारी च स भवत्वत्र भारते । नरघाती गुरुद्रोही तद्वीर्यं येन निर्द्दतम् ॥१६॥

रुद्रा ऊचुः ।

ते मिथ्यावादिनः सन्तु भारते पारदारिकाः । गुरुनिन्दारताः शश्वत्तद्वीर्यं येननिर्द्दतम्

कामदेव उवाच ।

कृत्वाप्रतिज्ञां योमूढोन सम्पालयते भ्रमात् । भाजनं तस्य पापस्य सभवेत्येननिर्द्दतम्

स्वर्वैद्यावूचतुः ।

मातुः पितुर्गुरोश्चैव स्त्रीपुत्राणाञ्च पोषणे ।
भवेतां वञ्चितौ तौ च याभ्यां वीर्यञ्च निर्द्दतम् ॥ १६ ॥

सर्वे देवा ऊचुः ।

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारो भवन्त्वत्र भारते । अपुत्रिणोदरिद्राश्च यैश्चवीर्यञ्च निर्द्दतम् ॥

देवपत्न्य ऊचुः ।

तानिन्दन्तु स्वभर्त्तारं गच्छन्तु परपूरुषम् । सन्तु बुद्धिविहीनाश्च याभिर्वीर्यश्चनिर्द्दतम्

देवानांवचनं श्रुत्वा देवीनाञ्च हरिःस्वयम् । कर्मणां साक्षिणं धर्मं सूर्यं चन्द्रंहुताशनम्

पवनं पृथिवीं तोयं सन्ध्ये रात्रिं दिनं मुने । उवाच जगतां कर्त्ता पाता शास्ताजगत्त्रये

श्रीविष्णुरुवाच ।

दैवैर्न निर्द्दतं वीर्यं सदेतत् केन निर्द्दतम् । तदमोघं भगवतो महेशस्य जगद्गुरोः ॥

यूयञ्च साक्षिणो विश्वेसन्ततं सर्वकर्मणाम् । युष्माभिर्निर्द्दतं किंवा किम्भूतं वक्तुमर्हथ

ईश्वरस्य वचः श्रुत्वा सभायां कम्पिताश्च ते । परस्परं समालोच्य क्रमेणोचुः पुरोहरेः

श्रीधर्म उवाच ।

तेरुत्तिष्ठतो वीर्यं पपात वसुधातले । मया ज्ञातममोघं तच्छङ्करस्य प्रकोपतः ॥२७॥

क्षितिरुवाच ।

वीर्य्यं वोढुमशक्ताहं तद्वह्नौ न्यक्षिपं पुरा । अतीव दुर्वहं ब्रह्मन्नबलां क्षन्तुमर्हसि ॥२८॥

अग्निरुवाच ।

वीर्य्यं वोढुमशक्तोऽहं न्यक्षिपं शरकानने । दुर्बलस्य जगन्नाथ किं यशः किञ्च पौरुषम्

वायुरुवाच ।

शरेषु पतितं वीर्य्यं सद्यो बालो बभूव ह । अतीवसुन्दरो विष्णो स्वर्णरेखानदीतटे ३०

श्रीसूर्य्य उवाच ।

रुदन्तं बालकं दृष्ट्वागममस्ताचलं प्रति । प्रेरितः कालचक्रेण निशि संस्थातुमक्षमः ॥३१॥

चन्द्र उवाच ।

रुदन्तंबालकंप्राप्य गृहीत्वा कृत्तिकागणः । जगाम स्वालयं विष्णोर्गच्छन्वदरिकाश्रमात्

जलमुवाच ।

अमुं रुदन्तमानीय स्तनं दत्त्वा स्तनार्थिने । वर्द्धयामासुरीशस्य सुतं सूर्य्याधिकप्रभम्

सन्ध्ये ऊचतुः ।

अधुनाकृत्तिकानाञ्चषण्णांतत्पोष्यपुत्रकः । तन्नामचक्रुस्ताःप्रेम्णाकार्त्तिकश्चेतिकौतुकात्

रात्रिरुवाच ।

न चक्रुर्बालकं ताश्च लोचनानामगोचरम् । प्राणेभ्योऽपि प्रेमपात्रं यः पोष्टा तस्यपुत्रकः

दिन उवाच ।

यानियानिच वस्तूनित्रैलोक्ये दुर्लभानिच । प्रशंसितानि स्वादूनि भोजयामासुरेव तम्॥

तेषां वचनं श्रुत्वा सन्तुष्टो मधुसूदनः । ते सर्वे हरिमित्यूचुः सभायां हृष्टमानसाः ॥

पुत्रस्य वार्त्तां सम्प्राप्य पार्वती हृष्टमानसा । कोटिरत्नानि विप्रेभ्यो ददौबहुधनानिच

ददौ सर्वाणि विप्रेभ्यो वासांसि विविधानि च ॥३८॥

लक्ष्मीः सरस्वती मेना सावित्री सर्वयोषितः । विष्णुश्चसर्वदेवाश्चब्राह्मणेभ्योददुर्धनम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कार्त्तिकप्रवृत्ति-
प्राप्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

## पञ्चदशोऽध्यायः

### शिवदूतैः कृत्तिकाभवनगमनम् कार्तिकनन्दिसंवादश्च ।

नारायण उवाच ।

पुत्रस्य वार्त्तां सम्प्राप्य पार्वत्या सह शङ्करः । प्रेरितो विष्णुना देवैर्मुनिभिः पर्वतैर्मुने
दूतान् प्रस्थापयामास महाबलपराक्रमान् । वीरभद्रं विशालाक्षं शङ्कुकर्णं कबन्धकम् ॥
नन्दीश्वरं महाकालं वज्रदन्तं भगन्दरम् । गोधामुखं दधिमुखं ज्वलदग्निशिखोपमम् ॥
लक्षञ्च क्षेत्रपालानां भूतानाञ्च त्रिलक्षकम् । वेतालानां चतुर्लक्षं यक्षाणां पञ्चलक्षकम् ।
कुष्माण्डानाञ्चतुर्लक्षं त्रिलक्षं ब्रह्मरक्षसाम् । डाकिनीनाञ्चतुर्लक्षं योगिनीनांत्रिलक्षकम्
रुद्रांश्च भैरवांश्चैव शिवतुल्यपराक्रमान् । अन्यांश्च विकृताकारानसंख्यानपि नारद ॥६॥
ते सर्वे शिवदूताश्च नानाशस्त्रास्त्रपाणयः । कृत्तिकानाञ्च भवनं वेष्टयामासुःसत्वरम्॥७
दृष्ट्वा तान् कृत्तिकाः सर्वा भयविह्वलमानसाः । कार्त्तिकं कथयामासुर्ज्वलन्तंब्रह्मतेजसा

कृत्तिका ऊचुः ।

वत्स सैन्यान्यसंख्यानि वेष्टयामासुरालयम् । न जानीमोवयंकस्यकरालानिचकार्त्तिक

कार्त्तिकेय उवाच ।

भयं त्यजत कल्याण्यो भयं किं वोमयिस्थिते । दुर्निवार्य्यो निषेकश्चमातरःकेनवार्य्यते
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सैन्येन्द्रो नन्दिकेश्वरः । पुरतः कार्त्तिकस्यापि तिष्ठंस्तासामुवाच ह

नन्दिकेश्वर उवाच ।

भ्रातः प्रवृत्तिं शृणु मे मातरश्च शुभावहम् । प्रेषितस्य सुरेन्द्रस्य संहर्तुः शङ्करस्य च ॥
कैलासे सर्वदेवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। सभायां ते वसन्तश्च गणेशोत्सवमङ्गलम्॥१२
शैलेन्द्रकन्या तं विष्णुं जगतां परिपालकम् । संबोध्य कथयामास तवान्वेषणहेतुकम्
पप्रच्छ देवान् विष्णुस्तान् क्रमेणावाप्तिहेतवे । प्रत्युत्तरं ददुस्ते तु प्रत्येकञ्च यथोचितम्
त्वमत्र कृत्तिकास्थाने कथयामासुरीश्वरम् । सर्वे धर्मादयो देवाधर्माधर्मस्यसाक्षिणः

या बभूव रहःक्रीड़ा पार्वतीशिवयोः पुरा ॥ १६ ॥

दृष्टस्य च सुरैः शम्भोर्वीर्य्यं भूमौ पपात ह । भूमिस्तदग्निपद्दग्धौ वह्निश्च शरकानने ॥

ततो लब्धः कृत्तिकाभिरमूभिर्गच्छ साम्प्रतम् ॥ १७ ॥

तवाभिषेकं विष्णुश्च करिष्यति सुरैः सह । हनिष्यसि तारकाख्यं सर्वशस्त्रंलभिष्यसि

पुत्रस्त्वं विश्वसंहर्त्तुस्त्वां गोप्तुं न क्षमा इमाः ॥ १८ ॥

नाग्निं गोप्तुं यथा शक्तः शुष्कवृक्षःस्वकोटरे । दीप्तिमांस्त्वञ्च विश्वेषुतासांगेहेषुशोभसे

यथा पतन्महाकूपे द्विजराजो न राजते ॥ १९ ॥

करोषि जगदालोकंनात्मच्छन्नोऽस्याङ्गतेजसा । यथा सूर्य्यः कराच्छन्नोनभवेन्मानवस्यच

विष्णुस्त्वञ्च जगद्व्यापी नासां व्याप्योऽसि शाम्भव ।

यथा न केषां व्याप्यञ्च तत्सर्वं व्यापकं नभः ॥ २१ ॥

योगीन्द्रो नानुलिप्तस्त्वं भोगांचपरिपोषणे । नैवलिप्तोयथात्मा चकर्म्मभोगेषुजीविनाम्

विश्वाधारस्त्वमीशाधनामूर्त्तेसम्भवेत् स्थितिः । सागरस्ययथा नद्यांसरितामाश्रयस्यच

न हि सर्वेश्वरस्यायमः सम्भवेत् कृत्तिकालये । गरुड़स्य यथावासः क्षुद्रे च चटकोदरे

त्वाञ्च देवा न जानन्ति भक्तानुग्रहविग्रहम् । गुणानां तेजसां राशिं यथाज्ञानमयोगिनः

त्वामनिर्वचनीयञ्च कथं जानन्ति कृत्तिकाः । यथा परां हरेर्भक्तिमभक्ता मूढ़चेतसः

ज्ञानार्यं यं न जानन्तिनेनंकुर्य्यन्त्यनादरम् । नाद्रियन्ते यथा भेकास्त्वेकवासांश्चपङ्कजान्

कार्त्तिक उवाच ।

भ्रातः सर्वं विजानामि ज्ञानंत्रैकालिकञ्च यत् । ज्ञानोक्तंकाप्रशंसा तेयतोमृत्युञ्जयाश्रितः

कर्म्मणा जन्म येषां यावारुयारु ययोनिषु । यारु तेनिर्वृतिंभ्रातःप्राप्नुवन्तिचसन्ततम्

ये यत्र सन्ति सन्तो वामृगाया कर्मभोगतः । तेऽपि मं पशुमन्यन्तेमोहिताविष्णुमायया

साम्प्रतं जननी माताविष्णुमायासनातनी । सर्वाचा विष्णुमाया चसर्वदाविष्णुमङ्गला

शैलेन्द्रवंशजन्म सा स्वाम जन्म मानसे । दारुणञ्च तपस्तप्त्वा सम्प्राप शङ्करं पतिम् ॥

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैवकृत्रिमम् । सर्वे कृष्णोद्भवाः काले विलीनाश्चत्रकेशवम्

कल्पे कल्पे जगन्माता मातामेत्रनिश्चम्मनि । पञ्चम्ममायया पञ्चौ निग्यःसृष्टिविधायकम्

प्रकृतेरुद्भवाः सर्वा जगत्सुसर्वयोषितः । काश्चिदंशा कलाः काश्चित् कलांशांशेनकाश्चन
कृत्तिका ज्ञानवत्यश्च योगिन्यः प्रकृतेः कलाः । स्तनेनाभिर्वर्द्धितोऽहमुपहारेण सन्ततम्
तासामहंपोष्यपुत्रोमदम्बाःपोषणादिमाः । तस्याश्चप्रकृतेःपुत्रो यतस्त्वत्स्वामिवीर्य्यतः
न गर्भजोऽहं शैलेन्द्रकन्यायाः नन्दिकेश्वर । सा च मे धर्मतो माता तथेमाः सर्वसम्मताः

स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया ।

अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका । सगर्भकन्याभगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः ।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा । मातुः पितुश्च भगिनीमातुलानीतथैव च

जनानां वेदविहिता मातरः षोडशः स्मृताः ॥३८॥

इमाश्च सर्वसिद्धिज्ञाः परमैश्वर्यसंयुता । न क्षुद्रा ब्रह्मणःकन्यास्त्रिपुलोकेषुपूजिताः ॥
विष्णुनाप्रेरितस्त्वञ्चशम्भोःपुत्रसमोमहान् । गच्छयामित्वयासार्द्धंद्रक्ष्यामि देवताकुलम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे नन्दिकार्त्तिक-
संवादे पञ्चदशोऽध्यायः ।

---

## षोड़शोऽध्यायः

### कार्त्तिकागमनम् ।

नारायण उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा नं शीघ्रं संबोध्य कृत्तिकागणम् । उवाच नीतियुक्तश्च वचनं शङ्करात्मजः ॥

कार्त्तिक उवाच ।

यास्यामि शङ्करस्थानं द्रक्ष्यामि देवताकुलम् । मातरं बन्धुवर्गांश्च पित्रायं दृष्टमातरः ॥
दैवाधीनं जगत्सर्वं जन्म कर्म शुभावहम् । संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परं बलम् ॥
कृष्णायत्तञ्च सद्दैवं स च दैवात् परस्ततः । भजन्ति सततंसन्तः परमात्मानमीश्वरम् ॥
दैवं वर्द्धयितुं शक्तः क्षयं कर्त्तुं स्वलीलया । न दैवबद्धस्तद्भक्तश्चाविनाशी च नित्यं च

तस्माद्व्रज गोविन्दं मोहं त्यज दुःखदम् । सुखदं मोक्षदं सारं जन्ममृत्युभयापहम् ॥
परमानन्दजननं मोहजालनिकृन्तनम् । शश्वद्व्रजन्ति यम सर्वे ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥
कोऽहं भवत्यो युष्माकं का वा यूयं ममाम्बिकाः ।
तत्कर्म स्रोतसो सर्वं पुत्रीभूतश्च केनचम् ॥८॥
संश्लेषं विपरीतं वा तत्सर्वमीश्वरेच्छया । ब्रह्माण्डमीश्वराधीनं न स्वतन्त्रं विदुर्बुधाः
जलबुद्बुदवत् सर्वमनित्यश्च जगत्त्रयम् । मायामनित्ये कुर्वन्ति माययामूढचेतसः ॥
सन्तस्तत्र न लिप्यन्ति वायुवत्कृष्णचेतसः । तस्मान्मोहं परित्यज्य विदायं दत्तमातरः
इत्येवमुक्त्वा ता नत्वा सार्द्धं शङ्करपार्षदैः । यात्राञ्चकार भगवान्मनसा श्रीहरिं स्मरन् ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र ददर्श रथमुत्तमम् । विश्वकर्मनिर्मितञ्च हीरकेण विराजितम् ॥१३
सद्रत्नसाररचितं माणिक्येन विराजितम् । पारिजातप्रसूनानां मालाजालैश्च शोभितम् ॥
मणीन्द्रदर्पणैः श्वेतचामरै रतिदीपितम् । क्रीडार्हमन्दिरे रम्यैश्चित्रितैश्चित्रितं वरम् ॥१
शतचक्रं सुविस्तीर्णं मनोयायि मनोहरम् । प्रस्थापितञ्च पार्वत्या वेष्टितं पार्षदैर्वरैः
तमारुहन्तं यानं ता हृदयेन विदूयता ॥१६॥
सहसा चेतनां प्राप्य मुक्तकेश्यः सुचातुराः ॥१७॥
दृष्ट्वा च स्वपुरः स्कन्दं स्तम्भिता अतिशोकतः । उन्मत्ता इव तत्रैव वकुमारैमिरैमिया
कृत्तिका ऊचुः ।
किं कुर्मः क्व च यास्यामो वयं वत्स त्वदाश्रयाः ।
विहायास्मान् क्व यासि त्वं नायं धर्मस्तवाधुना ॥१६॥
स्नेहेनवर्द्धितोऽस्माभिःपुत्रोऽस्माकंस्वधर्मतः । नायंधर्मोमातृवर्गानुपयुक्तः सुतस्त्यजेत्
इत्युक्त्वा कृत्तिकाः सर्वाः कृत्वा वक्षसि कार्त्तिकम् ।
पुनर्मूर्च्छामवापुस्ताः सुतविच्छेददारुणाम् ॥२१॥
कुमारो बोधयित्वा ता अध्यात्मवचनेन वै । ताभिश्च पार्षदैः सार्द्धमारुरोह रथं मुने ॥
पूर्णकुम्भं द्विजं वेश्यां शुक्लधान्यञ्च दर्पणम् । दध्याज्यंमधुलाजञ्चपुष्पंदूर्वाक्षतंसितम् ॥
वृषं गजेन्द्रं तुरगं ज्वलदग्निं सुवर्णकम् । पूर्णञ्च परिपक्वानि फलानि विविधानि च

पतिपुत्रवतीं नारीं प्रदीपं मणिमुत्तमम् । मुक्तां प्रसूनमालाञ्च सद्यो मांसञ्च चन्दनम् ।
दद‍र्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि पुरो मुने ॥२३॥
शृगालं नकुलं कुम्भं शवं वामे शुभावहम् । राजहंसं मयूरञ्च खञ्जनञ्च शुकं पिकम् ।
पारावतं शङ्खचिल्लं चक्रवाकञ्च मङ्गलम् । कृष्णसारञ्च सुरभीं चामरीं श्वेतचामरम् ।
धेनुञ्च वत्ससंयुक्तां पताकां दक्षिणे शुभाम् । नानाप्रकारवाद्यञ्च शुश्राव मङ्गलध्वनिम्
हरिशब्दस्य सङ्गीतं घण्टाशङ्खध्वनिन्तथा ॥२४॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा मङ्गलं स जगाम तातमन्दिरम् । क्षणेनानन्दयुक्तश्च मनोयायिरथेन च ॥२५
कुमारः प्राप्य कैलासं न्यग्रोधाक्षयमूलके । क्षणं तस्थौ कृत्तिकाभिः पार्षदप्रवरैः सह॥
पार्वती मङ्गलं कृत्वा राजमार्गं मनोहरम् ।
पद्मरागैरिन्द्रनीलैः संस्कृतं परितः पुरम् ॥२७॥
रम्भास्तम्भसमूहैश्च पट्टसूत्रप्रवर्द्धितैः । श्रीखण्डपल्लवैर्युक्तं पूर्णकुम्भैः सुशोभितम् ॥२८
पूर्णकुम्भजलैर्व्याप्तं सिक्तं चन्दनवारिभिः । रत्नप्रदीपासंख्यैश्च मणिराजैर्विराजितम् ॥
नटनर्तकवेश्यानामुत्सवैः संकुलं सदा । वन्दिभिर्विप्रवर्गैश्च दूर्वापुष्पकरैर्युतम् ।
पतिपुत्रवतीभिश्च साध्वीभिश्च समन्विताम् ॥३०॥
लक्ष्मीं सरस्वतीं दुर्गां सावित्रीं तुलसीं रतिम् । अरुन्धतीमहल्याञ्चदितिं तारां मनोरमाम् ।
अदितिं शतरूपाञ्च शचीं सन्ध्याञ्च रोहिणीम् ॥३१॥
अनसूयाञ्च स्वाहाञ्च संज्ञां वरुणकामिनीम् । आकूतिञ्च प्रसूतिञ्च देवहूतीञ्च मेनकाम् ॥
तामेकपाटलामेकपर्णां मैनाककामिनीम् । वसुन्धराञ्च मनसां पुरस्कृत्य समाययौ ॥
रम्भा तिलोत्तमा मेना घृताची मोहिनी शुभा ।
उर्वशी रत्नमाला च सुशीला ललिता कला ॥३४॥
कदम्बमाला सुरसा वनमाला च सुन्दरी । एताश्चान्याश्च पद्माश्च विद्याधर्यप्सरसाङ्गणाः
सङ्गीतनर्त्तनपराः सस्मिता वेशसंयुताः । करतालकराः सर्वा जग्मुरानन्दपूर्वकम् ॥३६
देवाश्च मुनयः शैला गन्धर्वाः किन्नरास्तथा । सर्वे ययुः प्रमुदिताः कुमारस्यानुमज्जने ॥
नानाप्रकारवाद्यैश्च रुद्रैश्च पार्षदैः सह । भैरवैः क्षेत्रपालैश्च ययौ सार्द्धं महेश्वरः ॥३८॥

अथ शक्तिधरो हृष्टो दृष्ट्वाऽऽरात् पार्वतीं मुदा । आगत्य मातरं पूर्वं शिरसा प्रणनाम ह ॥
नं पद्मप्रमुखं देवीगणञ्च मुनिकामिनीम् । शिवञ्च गत्वा मनसा सर्वान्संभाष्य सत्वरः ।
पार्वती कार्त्तिकं दृष्ट्वा क्रोडे कृत्वा चुचुम्ब च ॥५०॥
शङ्करश्च सुराः शैला देव्यश्च शैलयोषितः । पार्वतीप्रमुखा देव्यो देवाश्च शङ्करस्तथा ।
शैलाश्च मुनयः सर्वे ददुस्तस्मै शुभाशिषम् ॥५१॥
कुमारः सगणैः सार्द्धमागत्य च शिवालयम् । ददर्श तत्र मध्ये विष्णुं क्षीरोदशायिनम् ।
रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥५२॥
धर्मब्रह्मेन्द्रचन्द्रार्कवह्निवाय्वादिभिर्युतम् । ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।
स्तुतं मुनीन्द्रैर्देवेन्द्रैः सेवितं श्वेतचामरैः ॥५३॥
तं दृष्ट्वा जगतां नाथं भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः शिरसा प्रणनाम ह ॥
विधिं धर्मञ्च देवांश्च मुनीन्द्रांश्च मुदान्वितान् । प्रणनाम च प्रत्येकं प्राप तेषां शुभाशिषम् ।
सर्वान् संभाष्य प्रत्येकमुवास कनकासने । ददौ धनानि विप्रेभ्यः पार्वत्यासह शङ्करः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे कार्त्तिकागमनं
नाम षोड़शोऽध्यायः ।

---

## सप्तदशोऽध्यायः

### कुमाराभिषेकः ।

नारायण उवाच ।

अथविष्णुर्जगत्कान्तोहृष्टःकृत्वाशुभक्षणम् । रत्नसिंहासनेरम्येवासयामासकार्त्तिकम् ॥
नानाविधानि वाद्यानि कांस्यतालादिकानि च ।
नानाविधानि यन्त्राणि वादयामास कौतुकात् ॥२॥
वेदमन्त्राभिषिक्तैश्च सर्वतीर्थोदपूर्णकैः । सद्रत्नकुम्भशतकैः स्नापयामास तं मुदा ॥३॥

नसाररचितकिरीटमङ्गलाङ्गदम् । अमूल्यरत्नरचितभूषणानि बहूनि च ॥
शुद्धांशुके दिव्ये क्षीरोदार्णवसम्भवम् । कौस्तुभं वनमालाञ्च तस्मै चक्रं ददौ मुदा
ददौ यज्ञसूत्रं वेदाश्च वेदमातरम् । सन्ध्यामन्त्रं कृष्णमन्त्रं स्तोत्रञ्च कवचं हरेः ॥
ण्डलुश्च ब्रह्मास्त्रं विद्याञ्च वैरिमर्दिनीम् । धर्मो धर्ममतिं दिव्यां सर्वजीवे दयां ददौ
मृत्युञ्जयं ज्ञानं सर्वशास्त्रावबोधनम् । शश्वत् सुखप्रदं तत्त्वज्ञानञ्च सुमनोहरम् ॥
तत्त्वं सिद्धितत्त्वं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम् । शूलं पिनाकं परशुं शक्तिं पाशुपतं धनुः ॥

संहारास्त्रविनिक्षेपं तत्संहारं ददौ शिवः ॥ ८ ॥

च्छत्रं रत्नमालां ददौ तस्मै जलेश्वरः । गजेन्द्रञ्च महेन्द्रश्च सुधाकुम्भं सुधानिधिः
यायिरथं सूर्यः सन्नाहञ्च मनोरमम् । यमदण्डं यमश्चैव महाशक्तिं हुताशनः ॥

नानाशस्त्राण्युपायानि सर्वे देवा ददुर्मुदा ॥ १० ॥

शास्त्रं कामदेवो ददौ तस्मैमुदान्वितः । क्षीरोदोऽमूल्यरत्नानि विशिष्टंरत्ननूपुरम्

पार्वती सस्मिता हृष्टा परमानन्दमानसा ।
महाविद्यां सुशीलाञ्च विद्यां मेधां दयां स्मृतिम् ॥
बुद्धिं सुनिर्मलां शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं क्षमां धृतिम् ।
सुदृढाञ्च हरौ भक्तिं हरिदास्यं ददौ मुदा ॥ १२ ॥

तिर्देवसेनां रत्नभूषणभूषिताम् । सुविनीतां सुशीलाञ्च सुन्दरीं सुमनोहराम् ॥
तस्मै विवाहेन वेदमन्त्रेण नारद । यां वदन्ति महाषष्ठीं पण्डिताः शिशुपालिकाम्
वेत्य कुमारञ्च सर्वे देवा ययुर्गृहम् । मुनयश्चैव गन्धर्वाः प्रणम्य जगदीश्वरान्
....णञ्च ब्रह्माणं धर्मं तुष्टाव शङ्करः । प्रणनाम हरिं तानं धर्ममालिङ्ग्य नारद ॥१५॥
गत्वा ययौ च शैलेन्द्रः सगणः शङ्करार्चितः । ये ये तत्रागताः सर्वे ययुरानन्दपूर्वकम्
परमानन्दसंयुक्तो देव्या सह महेश्वरः । कालान्तरे च तान् सर्वान् पुनरानीय शङ्करः ।

पुष्टिं ददौ विवाहेन गणेशाय महात्मने ॥ १३ ॥

सुताभ्यां सगणैः सार्द्धं पार्वती हृष्टमानसा । सिषेवे स्वामिनः पादपद्मं सर्वकामदम्
रत्येवं कथितं सर्वं कुमारस्याभिषेचनम् । विवाहः पूजनं तस्य गणेशस्य विवाहकम् ।

पार्वतीपुत्रलाभश्च देवानाञ्च समागमः । कृतिमनसिवाऽञ्छास्ति किं भूयःश्रोतुमिच्छसि

इति श्री ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कुमाराभिषेको नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

---

## अष्टादशोऽध्यायः

### विघ्नेशविघ्नकथनम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग वेदवेदाङ्गपारग । पृच्छामि त्वामहं किञ्चिदतिसन्देहमीश्वर ॥ १ ॥
सुतस्य त्रिदशेशस्य शङ्करस्य महात्मनः । विघ्ननिघ्नस्य यद्विघ्नमीश्वरस्य कथं प्रभो ॥२॥
परिपूर्णतमः श्रीमान् परमात्मा परात्परः । गोलोकनाथः स्वांशेन पार्वतीतनयः स्वयम्
अहो भगवतस्तस्य मस्तकच्छेदनं विभो । ब्रह्मद्दृष्टया महेशस्य तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

सावधानं शृणु ब्रह्मन्नितिहासं पुरातनम् । विघ्नेशस्य विघ्नमिदं बभूव येन नारद ॥५॥
एकदा शङ्करः सूर्यं जघान परमक्रुधा । मालिसुमालिहन्तारं शूलेन भक्तवत्सलः ॥६॥
शतसूर्यांऽप्यर्कशूलेन शिवतुल्येन तेजसा । जहार चेतनां सद्यो रथाच्च निपपात ह ॥७॥
ददर्श कश्यपः पुत्रं मृत्युमानलोचनम् । कृत्वा वक्षसि तं शोकात् विललाप भृशं मुहुः
हाहाकारं सुरगणास्त्रस्ता विक्लवभूर्शम् । अन्धीभूतं जगत्सर्वं बभूव तमसावृतम् ॥९
निष्प्राणं तनयं दृष्ट्वा शशाप कश्यपः शिवम् । तपस्वी ब्रह्मणः पौत्रः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा
मत्पुत्रस्य यथा वक्षश्छिन्नं शूलेन तेऽद्य च । त्वत्पुत्रस्य शिरश्छिन्नमेवम्भूतं भविष्यति
शिवश्च निर्मुक्तकोप क्षणेनैवाशुतोषकः । ब्रह्मज्ञानेन सूर्यं जीवयामास तत्क्षणात् ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशश्च त्रिगुणात्मकः । सूर्यश्च चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ पितुः पुरः।
ववन्द पितरं भक्त्या शङ्करं भक्तवत्सलः । विज्ञाय शम्भोः शापञ्च कश्यपश्च चुकोप ह

नैव जग्राह कोपेनैवमुवाच ह । विषयञ्च परित्यज्य भजामि कृष्णमीश्वरम् ॥१५
च्छमनित्यञ्च नश्वरं चेश्वरं विना । विहाय मङ्गलं सत्यं विद्वान्श्चेच्छेदमङ्गलम् ॥
प्रेरितो ब्रह्मा समागत्य ससम्भ्रमः । बोधयित्वा रविं तत्र युयोज विषये प्रभुः ।
माशिषं कृत्वा ब्रह्मा च स्वालयं मुदा । जगाम कश्यपश्चैव स्वराशिं रविरेव च
ली सुमाली च व्याधिग्रस्तौबभूवतु । शिवत्रीगलितसर्वाङ्गौ शक्तिहीनौ हतप्रभौ
व स्वयं ब्रह्मा युवाञ्च भजतां रविम् । सूर्यकोपेन गलितौ युवामेव हतप्रभौ ॥
कवचं स्तोत्रंसर्वपूजाविधिविधिः । जगाम कथयित्वा तौ ब्रह्मलोकंसनातनः

ततस्तौ पुष्करं गत्वा सिषेवाते रविं मुने ।
स्नात्वा त्रिकालं भक्त्या च जपन्तौ मन्त्रमुत्तमम् ॥ २२ ॥

र्याद्वरं प्राप्य निजरू पौ बभूवतुः । इत्येवं कथितं सर्वं किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि
ो ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे विघ्नेशविघ्नकथनं
नाम अष्टादशोऽध्यायः ।

---

# एकोनविंशोऽध्यायः

## भास्करपूजनं स्तोत्रञ्च ।

नारद उवाच ।

ं कवचं ब्रह्मन् ब्रह्मणा च ददौ मुने । दानवाभ्यांपुरादत्तं सूर्य्यस्य परमात्मनः
जा विधानंवाकिमन्त्रंव्याधिनाशनम् । सर्वं वास्यमहाभागतन्मेव्यंवक्तुमर्हसि

सूत उवाच ।

वचः श्रुत्वा भगवान् करुणानिधिः । स्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमुवाच पूजनक्रमम्

नारायण उवाच ।

ारद वक्ष्यामि श्रीसूर्य्यपूजनक्रमम् । स्तोत्रञ्च कवचं सर्वं पापव्याधिविमोचनम्

मालिसुमालिनौदैत्यौव्याधिग्रस्तौ बभूवतुः। विधिं सस्मरतुः स्तोतुं शिवमन्त्रप्रदायकम्
ब्रह्मा गत्वा च वैकुण्ठं पप्रच्छ कमलापतिम्। शिवं तत्रैवगच्छन्तं वसन्तं हरिसन्निधौ

ब्रह्मोवाच।

मालिसुमालिनौ दैत्यौ व्याधिग्रस्तौ बभूवतुः। कमुपायं वद ब्रह्मंस्तयोर्व्याधिविनाशने

विष्णुरुवाच।

कृत्वा सूर्यस्य सेवाञ्च पुष्करे पूर्णवत्सरम्। व्याधिहन्तुर्मदंशस्य तौ च मुक्तौ भविष्यतः

शङ्कर उवाच।

सूर्यस्य स्तोत्रंकवचंमन्त्रंकल्पतरुं परम्। देहि ताभ्यांजगत्कान्त व्याधिहन्तुर्महात्मनः
आरात् सम्पत् प्रदातारौ सर्वदाता हरिः स्वयम्।
व्याधिहन्ता दिनकरो यस्य यो विषयो विधे ॥ १० ॥

तयोरनुमतिं प्राप्य ययौ दैत्यगृहं विधिः। प्रणम्य तौ तं पृष्ठा च तस्मै ददतुरासनम्॥
तावुवाच स्वयं ब्रह्मा गलितौ च दयानिधिः। स्तब्धाचाहाररहितौ पूयदुर्गन्धसंयुतौ॥

ब्रह्मोवाच।

गृहीत्वा कवचंस्तोत्रंमन्त्रं पूजाविधिक्रमम्। गत्वाहिपुष्करं वत्सौ भजथःप्रणतौरविम्

तावूचतुः।

महाभाग केन विधिना केन मन्त्रेणवाविधे। किं स्तोत्रं कवचं किंवा तद्वाताभ्यांप्रदेहि वै

ब्रह्मोवाच।

कृत्वा त्रिकालंस्नानञ्चमन्त्रेणानेनभास्करम्। संसेव्य भास्करंभक्तयानीरुजौ चभविष्यथः
ओं ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने स्वाहा। इत्यनेनच मन्त्रेणसावधानंदिवाकरम्
संपूज्य भक्त्या दत्त्वा चैवोपहाराणि षोडश। एवं संवत्सरं यावद्ध्रुवंमुक्तौभविष्यथः
स्तोत्रं कवचं तस्य युवाभ्यां प्रददाम्यहम्। यद्दत्तं गुरुणा पूर्वमिन्द्राय प्रीतिपूर्वकम्॥
स्व ब्रह्महत्यागाढाय शापेन गौतमस्य च। अहल्याहरणेनैव पापयुक्ताय सङ्कटे॥ १८॥

बृहस्पतिरुवाच।

इन्द्र शृणु प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम्। यद्धृत्वा मुनयः पूता जीवन्मुक्ताश्च भारते॥

कवचं बिभ्रतो व्याधिर्न याति सन्निधिं भिया। यथा दृष्ट्वा वैनतेयं पलायन्ते भुजङ्गमाः
गुरुदाय गुरुभक्ताय स्वशिष्याय प्रकाशयेत्। खलाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्
गद्विलक्षणस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो दिनकरः स्वयम्

व्याधिप्रणाशे सौन्दर्ये विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥

सद्यः पूतकरं सारं सर्वपापप्रणाशनम्।

ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा मे पातु मस्तकम् ॥ २३ ॥

ष्टादशाक्षरो मन्त्रः कपालं मे सदावतु। ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा मे पातु नासिकाम्
क्षुर्मे पातु सूर्यश्च तारकाञ्च विकर्त्तनः। भास्करो मेऽधरं पातु दन्तं दिनकरः सदा
चण्डः पातु गण्डं मे मार्त्तण्डः कर्णमेव च। मिहिरश्च सदा स्कन्धं पातु जङ्घे च पूषणः
क्षः पातु रविः शश्वन्नाभिं सूर्यः स्वयं सदा। कङ्कालं मे सदा पातु सर्वदेवनमस्कृतः
रौ पातु सदा ब्रध्नः पातु पादौ प्रभाकरः। विभाकरो मे सर्वाङ्गं पातु सन्ततमीश्वरः
ते ते कथितं वत्स कवचं सुमनोहरम्। जगद्विलक्षणं नाम त्रिजगत्सु सुदुर्लभम् ॥
पुरा दत्तश्च मनवे पुलस्त्यः पुष्करे मुदा। मया दत्तश्च तुभ्यञ्च यस्मै कस्मै न दास्यसि
व्याधितो मुच्यसे त्वं च कवचस्य प्रसादतः। भवानरोगी श्रीमांश्च भविष्यति न संशयः
लक्षवर्षहविष्येण यत्फलं लभते नरः। तत्फलं लभते नूनं कवचस्यास्य धारणात् ॥३२
दं कवचमज्ञात्वा यो मूढो भास्करं भजेत्। दशलक्षप्रजप्तोऽपि मन्त्रसिद्धिर्न जायते

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे सूर्यकवचं समाप्तम्।

---

ब्रह्मोवाच।

धृत्वेदं कवचं वत्सौ कृत्वा च स्तवनं रवेः।

युवां व्याधिविमुक्तौ च निश्चितन्तु भविष्यथः ॥ ३४ ॥

तवनं सामवेदोक्तं सूर्यस्य व्याधिमोचनम्। सर्वपापहरं सारं श्रीरारोग्यकरं परम् ॥

ब्रह्मोवाच।

ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्। त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम्।

त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापप्रमोचनम् । तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा ॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम् । कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम् ॥ ३८ ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशञ्च त्रिगुणात्मकम् । व्याधिदंव्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम्
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम् ॥ ३९ ॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम् । प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षं मनोहरम् ॥४०
शश्वद्रसहरं पश्चाद्रसदं सर्वसिद्धिदम् । सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम् ॥
स्तवराजमिदं प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम् । त्रिसन्ध्यंयः पठेन्नित्यं सर्वव्याधिःप्रमुच्यते
आन्ध्यं कुष्ठञ्च दारिद्र्यं रोगं शोकं भयं कलिः ।
तस्य नश्यति विश्वेश श्रीसूर्यकृपया ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
महाकुष्ठीच गलितो चक्षुर्हीनो महाव्रणी । यक्ष्मग्रस्तोमहाशूली नानाव्याधियुतोऽपिच
मासंकृत्वा हविष्यान्नं श्रुत्वास मुच्यतेध्रुवम् । स्नानञ्च सर्वतीर्थानां लभते नात्रसंशयः
पुष्करं गच्छनं शीघ्रं भास्करं भजतं सूनो । इत्येवमुक्त्वा स विधिर्जगाम स्वालयं मुदा
तौ निवेश्य दिनेशं तं नीरुजौ तौ बभूवतुः । इत्येवं कथितं वत्स किम्भूयःश्रोतुमिच्छसि
सर्वविघ्नहरं सारं विघ्नेशविघ्नकारणम् । स्तोत्रेणानेन तं स्तुत्वा मुच्यते नात्रसंशयः ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद-संवादे गणपतिखण्डे विघ्न-
कारणकथनं नामोनविंशतितमोऽध्यायः ।

---

## विंशोऽध्यायः

### गजमुखयोजनहेतुकथनम् ।

नारद उवाच ।

[illegible] हरिसुतो भवान् विभो । तेजसा विक्रमेणैव मत्प्रश्नं श्रोतुमर्हसि ॥१
रत्नसिंहस्य यद्भिन्नं श्रुतं तत्परमाद्भुतम् । तद्विघ्नकारिणश्चैव विश्वकारणंयत्नतः ॥२॥

अधुनाश्रोतुमिच्छामि स्यातमसन्देहमञ्जनम्। त्रैलोक्यनाथतनये गजास्ययोजनाकथम्
स्थितेष्वन्येषु सर्वेषां जन्तूनां जन्तुसम्भव। विशिष्टानां सुरूपेषु नानारूपेषु रूपिणाम्

श्रीनारायण उवाच।

गजास्ययोजनायाश्च कारणं शृणु नारद! गोप्यं सर्वपुराणेषु वेदेषु च सुदुर्लभम् ॥ ५ ॥
कारणं सर्वदुःखानां कारणं सर्वसम्पदाम्। हारणं विपदाञ्चैव रहस्यं पापमोचनम् ॥६॥
मदालसस्याश्च चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम्। सुखदं मोक्षदश्चैव चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ७ ॥
शृणु तात प्रवक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम्। रहस्यं पाद्मकल्पस्य पुरा तातमुखाच्छ्रुतम्।
एकदैव महेन्द्रश्च पुष्पभद्रां नदीं ययौ। महासम्पन्मदोन्मत्तः कामी राजश्रियान्वितः ॥
तत्रोऽनिरुद्धःस्थाने पुष्पोद्याने मनोहरे। अतीवदुर्गमेऽरण्ये सर्वजन्तुविवर्जिते ॥१०॥
भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुतश्रुते। सुगन्धिपुष्पसंश्लिष्टवायुना सुरभीकृते ॥११॥
ददर्श रम्भां तत्रैव चन्द्रलोकात् समागताम्। सुरतश्रमविश्रामकामुकीं कामकामुकीम्।

इच्छन्तीमीप्सितां क्रीडां गच्छन्तीं मदनाश्रमम्।
एकाकिनीमुन्मनस्कां मन्मथोद्गतमानसाम् ॥ १२ ॥

श्रोणीं सुदतींश्यामां बिम्बाधरसरोरुहाम्। बृहन्नितम्बभारार्त्तां गजेन्द्रमन्दगामिनीम्।
स्मितास्यशरच्चन्द्रां सकटाक्षश्च बिभ्रतीम्। बिभ्रतींकवरीं रम्यांमालतीमाल्यशोभिताम्
वहिशुद्धांशुकधरां रत्नभूषणभूषिताम्। कस्तूरीविन्दुना सार्द्धं सिन्दूरबिन्दुमण्डिताम् ॥
नीलोत्पलविनिन्द्यैककज्जलोज्ज्वललोचनाम्। मणिकुण्डलयुग्मेनगण्डस्थलविराजिताम्
सुनतं सुकठिनं पत्रराजिविराजितम्। सुखदं रसिकानाञ्च स्तनयुग्मञ्च बिभ्रतीम् ॥

सर्वशोभाढ्यवेशाढ्यां सुभगां सुरतोत्सुकाम्।
प्राणाधिकाञ्च देवानां स्वच्छां स्वच्छन्दगामिनीम् ॥ १६ ॥

तामप्सरसां रम्यामतीवस्थिरयौवनाम्। गुणरूपवतीं शान्तां मुनिमानसमोहिनीम् ॥
। तामतिवेशाढ्यां तत्कटाक्षेण पीडितः। इन्द्रोऽतीन्द्रियचापल्यात् प्रवक्तुमुपचक्रमे

इन्द्र उवाच।

गच्छसि वरारोहे कागतासि मनोहरे। मया दृष्टान(सि) सुचिरं मत्प्रियाणि तवाधुना॥

[illegible] श्रुत्वा वासिकमन्त्रणः । [illegible] ॥
सुधाविरस्तनानीतः किमिच्छोऽन्यद्धिजनम् । पद्मनिर्म्मिदौ [illegible]
सुधार्थी न सुगन्धिनीं सुगन्धार्थी न जलार्थिनम् ।
सुगन्धिपुष्पमाली यो न [illegible]मिच्छति ॥ २५ ॥
यः स्वर्गी नरकं नेच्छेत् सुभोगी मन्दभोजनम् ।
पण्डितः सह संसारी नेच्छेत् कामिनीमविधिम् ॥ २६ ॥
विहाय रत्नाभरणं [illegible]भूषणम् ।
स्वामामिरूप्य महाविज्ञा को मूढो गन्तुमिच्छति ।
विहाय गङ्गां को विज्ञो नदीमन्याञ्च वाञ्छति ॥ २७ ॥
नेन्द्रियैश्चेन्द्रियरति वर्द्धमानाञ्च सेवते । परं प्रार्थयितारञ्च ओविनञ्च सुखार्थिनः ॥ २८
इत्येवमुक्तवा भगवानवरस गजेश्वराम् । कामयुक्तञ्च पुरतस्तस्थौ तस्याञ्च नारद ॥ २९
श्रुत्वा तद्वचनं रम्भा महाशृङ्गारलोलुपा । जहासानम्रवदना पुलकाञ्चितविग्रहा ॥ ३०
स्मेराननकटाक्षेण स्तनोरुदर्शनेन च । कामान्याकुतिवाक्येन जहार तस्य चेतनम् ॥ ३१
मितं सारं सुमधुरं सुस्निग्धं कोमलं प्रियम् । पुरुषायत्तबीजञ्च प्रयत्नमुपचक्रमे ॥ ३२

रम्भोवाच ।

यास्यामि वाञ्छितं यत्र प्रश्नेन तव किं फलम् । नाहंसन्तोषजननीधूर्त्तानांदुष्टमित्रता ॥
यथा मधुकरो लोभात् सर्वपुष्पासवं लभेत् । स्वादुयत्रातिरिक्तंसतत्रतिष्ठतिसन्ततम् ॥
तथैव लम्पटपुमान् भ्रमेद् भ्रमरवन् सदा । न विचद्दो हि कास्वेव वायुवद्रसमाहरेत् ॥
सुपुमानङ्गवत्स्त्रीणांयथाशाखाश्चशाखिषु । लम्पटःकाकवल्लोलःफलंभुक्त्वाप्रयाति च ॥
स्वकार्य्यमुद्धरेद् यावत्तावद्वासप्रयोजनम् । स्थितिः कार्य्यानुरोधेनयथाकाष्ठेहुताशनः ॥
यावत्तडागेतोयानितावद्दुवादासितेपुच । शुष्कारम्भेचतोयानांयान्तिस्थानान्तरं पुनः ॥
त्वं देवानामीश्वरोऽसि कामिनीनाञ्च वाञ्छितः ।
पुमांसं रसिकं शश्वद् वाञ्छन्ति रसिकाः सुरात् ॥ ३३ ॥
युवानं रसिकं शान्तंसुवेशंसुन्दरंप्रियम् । गुणिनंधनिनंस्वच्छंकान्तमिच्छतिकामिनी ॥

दुःशीलं रोगिणं वृद्धं रतिशक्तिविहीनकम् । अदातारमविज्ञञ्च नैव वाञ्छन्तियोषितः ॥
का मूढ़ा न च वाञ्छन्ति त्वामेवं गुणसागरम् ।
तवाज्ञाकारिणीं दासीं गृहाणात्र यथासुखम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा सस्मिता सावतंपपौवक्रचक्षुषा । कामाग्निदग्धाविगलल्लज्जातस्थौ समीपतः ॥
ज्ञात्वा भावं स्मरार्त्तायाः स्मरशास्त्रविशारदः । गृहीत्वातांपुष्पतल्पेविजहारतया सह ॥
सहसा रहसि प्रौढ़ां नग्नाङ्गसुभगांवराम् । पक्वबिम्बाधरौष्ठींचचुचुम्ब चुम्बितस्तया ॥
नानाप्रकारश्रृङ्गारं विपरीतादिकं मुने । चकार कामी तत्रैव श्रृङ्गारो मूर्त्तिमानिव ॥४६
तौ कामाहितचित्तौ मा बुबुधाते दिवानिशम् ।
शश्वत्तद्गतचित्तौ च कामार्त्तौ ज्ञानवर्जितौ ॥४७॥
स च कृत्वा स्थले क्रीड़ां तया सहसुरेश्वरः । ययौजलविहारार्थं पुष्पभद्रानदीजलम् ॥
स चकार जलक्रीड़ां तया सह क्षणं मुदा । जलात् स्थलेस्थलात्तोयेविजहारपुनःपुनः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तेन वर्त्मना मुनिपुङ्गवः । सशिष्यो याति दुर्वासा वैकुण्ठाच्छङ्करालये ॥
तञ्च दृष्ट्वा मुनीन्द्रञ्च देवेन्द्रः स्तम्भमानसः । ननामागत्य सहसा ददौतस्मैसचाशिषः ॥
पारिजातप्रसूनं यद्दत्तं नारायणेन वै । तच्च दत्तं महेन्द्राय मुनीन्द्रेण महात्मना ॥५२॥
दत्त्वा पुष्पं महाभागस्तमुवाचकृपानिधिः । माहात्म्यंतस्ययत्किञ्चिदपूर्वंमुनिसत्तमः ॥

दुर्वासा उवाच ।

सर्वविघ्नहरं पुष्पं नारायणनिवेदितम् । मूर्द्ध्नीदं यस्य देवेन्द्र जयस्तस्यैव सर्वतः ॥५४
पुरः पूजा च सर्वेषां देवानामग्रणीर्भवेत् । तच्छायेव महालक्ष्मीर्न जहाति कदापि तम् ॥
ज्ञानेव तेजसा बुद्ध्या विक्रमेण बलेन च । सर्वदेवाधिकः श्रीमान्हरितुल्यपराक्रमः ॥
भक्त्या मूर्ध्नि न गृह्णाति योऽहङ्कारेण पामरः । नैवेद्यञ्च हरेरेवसम्रष्टश्रीःस्वजातिभिः ॥
इत्युक्त्वा शङ्करांशश्च जगाम शङ्करालयम् ॥५७॥
शक्रो रम्भान्तिके पुष्पं संस्थाप्य गजमस्तके । शक्रं भ्रष्टश्रियंदृष्ट्वासाजगामसुरालयम् ॥
पुंश्चली योग्यमिच्छन्ती नापरं चञ्चलाधमा ॥५८॥
देवराजं परित्यज्य गजराजो महाबली । प्रविवेश महारण्यं तं निक्षिप्य स्वतेजसा ॥

तत्रैव करिणीं प्राप्य मत्तःसंबुभुजेबलात् । सातद्वभूववशगा योषिज्जातिः सुखार्थिनी ।
तयोर्बभूवापत्यानां निवहस्तत्र कानने ॥६०॥
हरिस्तन्मस्तकं छित्त्वा युयोजतेनबालके । इत्येवंकथितंवत्सकिंभूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
गजास्ययोजनायाश्च कारणं पापनाशनम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे गजास्य-
योजनहेतुकथनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

---

## एकविंशोऽध्यायः

### शक्रलक्ष्मीप्राप्तिः ।

नारद उवाच ।

ते देवा ब्रह्मशापेन निश्रीकाः येन वा प्रभो । बभूवुस्तद्रहस्यञ्च गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
कथं वा प्रापुरेते तां कमलां जगतां प्रसूम् । किञ्चकार महेन्द्रश्च तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥

नारायण उवाच ।

गजेन्द्रेण पराभूतो रम्भया च सुमन्दधीः । भ्रष्टश्रीर्दैन्ययुक्तश्च स जगामामरावतीम् ॥
तां ददर्श निरानन्दो निरानन्दां पुरीं मुने । दैन्यग्रस्तां बन्धुहीनां वैरिवर्गैःसमाकुलाम् ॥
सर्वं श्रुत्वा दूतमुखाञ्जगाम मन्दिरं गुरोः । तेन देवगणैः सार्द्धंजगामब्रह्मणःसभाम् ॥
गत्वा ननाम तं शक्रः सुरैः सार्द्धं तथा गुरुः ।
तुष्टाव वेदविधिना स्तोत्रेण भक्तिसंयुतः । प्रवृत्तिं कथयामास वाक्पतिस्तं प्रजापतिम्
श्रुत्वा ब्रह्मा नम्रवक्त्रः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

ब्रह्मोवाच ।

मत्प्रपौत्रोऽसि देवेन्द्र शश्वद्राजन् श्रिया ज्वलन् ।
लक्ष्मीसमःशचीभर्त्ता परस्त्रीलोलुपः सदा ॥ ७ ॥

गौतमस्याभिशापेन भगाङ्गः सुरसंसदि । पुनर्लज्जाविहीनस्त्वं परस्त्रीरतिलोलुपः ॥८॥
पञ्चगर्भीमुनिरसतस्य धीयांपुत्तं यशः । स च निन्द्यः पापयुक्तः शश्वत् सर्वसभासु च
नैवेद्यं धीदरेऽपि दत्तं दुर्वाससा च ते । गजमूर्ध्नि त्वया न्यस्तं रम्भया हृतचेतसा ॥१०॥

क्व सा रम्भा सर्वभोग्या क्वाधुना त्वं श्रिया हृतः ।
यस्मा त्यक्ता यन्निमित्ताद्गता त्यक्तः क्षणेन सा ॥ ११ ॥

देवा सर्वाधिकमिच्छन्ती निःश्रीकं न च वाञ्छति । नवंनवं प्रार्थयन्ती परिनिन्द्य पुरातनम्
यद्गतं तद्गतं यस्य निष्पन्नं न निवर्त्तते । भज नारायणं भक्त्या पद्मायाः प्राप्तिहेतवे ॥१२
इत्युक्त्वा तं जगत्स्रष्टुः स्तोत्रञ्च कवचं ददौ । नारायणस्य मन्त्रञ्च नारायणपरायणः ॥
स तैः सार्द्धञ्च गुरुणा जजाप मन्त्रमीप्सितम् । गृहीत्वा कवचं तेन तुष्टाव पुष्करे हरिम्
वर्षमेकं निराहारो भारते पुण्यदे शुभे । सिषेव कमलाकान्तं कमलाप्राप्तिहेतवे ॥ १६ ॥
आविर्भूय हरिस्तस्मै वाञ्छितञ्च वरं ददौ । लक्ष्मीस्तोत्रञ्च कवचं मन्त्रमैश्वर्य्यवर्द्धनम्
दत्त्वा जगाम वैकुण्ठमिन्द्रः क्षीरोदमेव च । गृहीत्वा कवचं स्तुत्वा प्राप पद्मालयां मुने
सुरेश्वरोऽरि जित्वा स स्वस्थाममरावतीम् । प्रत्येकञ्च सुराः सर्वे स्वालयं प्रापुरीप्सितम्

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शक्र-
लक्ष्मीप्राप्तिर्नामैकविंशतितमोऽध्यायः ।

---

## द्वाविंशोऽध्यायः

### लक्ष्मीस्तोत्रं कवचञ्च ।

नारद उवाच ।

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ । महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन

नारायण उवाच ।

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः । आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम् ॥

समुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्। स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ पुरा ॥
वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रसन्नमुखपङ्कजः। ददौ तस्मै शाम्भवाय कवचं परमाद्भुतम् ॥ ४ ॥

श्रीमधुसूदन उवाच।

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्। परमैश्वर्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम् ॥ ५ ॥
ब्रह्मणे च पुरा दत्तं संसारे च जलप्लुते। यद्धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः
बभूवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः। सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः ॥
पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया सुर। सिद्धैश्वर्यजपेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः
यद्धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी भवेत् ॥८॥
मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया।
नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचनम् ॥९॥
केशान् केशवकान्ता च कपालं कमलालया। जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं सम्पत्प्रदा सदा
ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ओं श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु
पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मञ्च श्रीं नमः ॥ ११ ॥
ओं ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे सन्ततञ्चिरम्।
ओं ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥ १२ ॥
ओं श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा।
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः ॥ १३ ॥
इति ते कथितं वत्स सर्वसम्पत्करंपरम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१४॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत्
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन। तस्य छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं सुमन्दधीः। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः।

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे लक्ष्मीकवचं समाप्तम्।

नारायण उवाच।

दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रञ्च षोडशाक्षरम्। सन्तुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम्

श्रीं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा ।
ददौ तस्मै च कृपया इन्द्राय च महामुने ॥ १६ ॥
…ानञ्च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् । सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम्
…तचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥२१॥
…द्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारकाम् । सहस्रदलपद्मस्थां स्वस्थाञ्च सुमनोहराम् ॥
शान्ताञ्च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ॥ २३ ॥
…नेनानेनदेवेन्द्रध्यात्वालक्ष्मीं मनोहराम् । भक्त्यादास्यसि तस्यैवचोपचाराणिषोडश
…त्यानेन स्तवेनैव वक्ष्यमाणेन वासव । नत्वा वरंगृहीत्वा च लभिष्यसिवनिर्वृतिम्
…वनं शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम् । कथयामि सुगोप्यञ्च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्
नारायण उवाच ।
…त्वांस्तोतुमिच्छामिनक्षमाःस्तोतुमीश्वराः । बुद्धेरगोचरांसूक्ष्मांतेजोरूपांसनातनीम्
अत्यनिर्वचनीयाञ्च को वा निर्वक्तुमीश्वरः ॥ २७ ॥
…च्छामयींनिराकारांभक्तानुग्रहविग्रहाम् । स्तौमिवाङ्मनसोःपारांकिंवाऽहंजगदम्बिके
चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे । सर्वशस्याधिदेवीञ्च सर्वासामपि सम्पदाम् ॥
योगिनाञ्चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनान्तथा ।
वेदानाञ्च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ॥ ३० ॥
…विना जगत्सर्वमवस्तुनिष्फलं ध्रुवम् । यथा स्तनान्धबालानांमात्रावस्तुत्वयासह
…द जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान् । वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः
…शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः । ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः ॥
…क्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः । सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥
…ाः कुत्रचित् सन्ति न कुत्रचित्कुमातरः । कुत्र माता पुत्रदोषे तं विहायचगच्छति
…तर्दर्शनंदेहि स्तनान्धान् बालकानिव । कृपां कुरु कृपासिन्धुप्रियेऽस्मान्भक्तवत्सले
…कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम् । सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सम्पदः पदम् ॥
…तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् । महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तत्र तत्रैवान्तरधीयत । देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्द्धं तदाज्ञया ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्मीस्तव-
कवचपूजाकथनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

---

# त्रयोविंशोऽध्यायः ।

## महालक्ष्मीचरितम् ।

*नारायण उवाच ।*

इन्द्रश्च गुरुणा सार्द्धं सुरैश्च हृष्टमानसः । जगाम शीघ्रं पद्मायै तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥
कवचञ्च गले बद्ध्वा सद्रत्नगुटिकान्वितम् । मनसा स्तवनं दिव्यं स्मारं स्मारं पुनःपुनः
ते सर्वे भक्तिरक्ताश्च तुष्टुवुः कमलालयाम् । साश्रुनेत्रातिदीनाश्च भक्तिनम्रात्मकन्धराः
सा तेषां स्तवनं श्रुत्वा सद्यः साक्षाद् बभूव ह । सहस्रदलपद्मस्था शतचन्द्रसमप्रभा ॥
जगद्व्याप्तं सुप्रभया जगन्मात्रा यया मुने । तानुवाच जगद्धात्री हितं सारं यथोचितम्

श्रीमहालक्ष्मीरुवाच ।

वत्सा नेच्छामि वो गेहान्गन्तुं नैवं क्षमाधुना । भ्रष्टानां ब्रह्मशापेन बिभेमि ब्रह्मशापतः
प्राणा मे ब्राह्मणाः सर्वे शश्वत् पुत्राधिकप्रियाः । विप्रदत्तञ्च यत्किञ्चिदुपजीव्यं सदैव च
विप्रा ब्रुवन्तु मां तुष्टा यास्याम्येतदाशया । न मे पूजां ध्रुवं कर्त्तुं क्षमास्ते च तपस्विनः
गुरुभिर्ब्राह्मणैर्देवैर्भिक्षुभिर्वैष्णवैस्तथा । यद्यभाग्यं भवेद् दैवात्ते शप्ताः सन्ति सन्ततम्
नारायणश्च भगवान् बिभेति ब्रह्मशापतः । सर्वजीवश्च भगवान् सर्वेशश्च सनातनः ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् ब्राह्मणा हृष्टमानसाः । आजग्मुः सस्मिताः सर्वे ज्वलन्तो ब्रह्मतेजसा
अङ्गिराश्च प्रचेताश्च क्रतुश्च भृगुरेव च । पुलहश्च पुलस्त्यश्च मरीचिरत्रिरेव च ॥
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । सनत्कुमारो भगवान् साक्षान्नारायणात्मकः ।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा । दुर्वासाः कश्यपोऽगस्त्यो गौतमः कण्व एव च

और्वःकात्यायनश्चैवकणादःपाणिनिस्तथा। मार्कण्डेयोलोमशश्चवशिष्ठोभगवान्स्वयम्
ब्राह्मणा विविधैर्द्रव्यैः पूजयामासुरीश्वरीम् । देवाश्चारण्यनैवेद्यैः परिहारेण भक्तितः।
स्तुत्वा मुनीन्द्रास्तां भक्त्या चक्रुराराधनं मुदा । आगच्छ देवभवनं मर्त्यंश्चजगदम्बिके
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा तानुवाच जगत्प्रसूः । परितुष्टा गामुकीच निर्भया ब्राह्मणाज्ञया।

श्रीमहालक्ष्मीरुवाच ।

गृहान् यास्यामिदेवानां युष्माकमाज्ञया द्विजाः । येषां गेहं नगच्छामिशृणुध्वंभारतेपुर
स्थिरा पुण्यवतां गेहे सुनीतिवेदिनामहम् । गृहस्थाणां नृपाणां वा पुत्रवत्पालयामि तान्
यं यं रुष्टो गुरुर्देवो मातातातश्चबान्धवाः । अतिथिः पितृलोकश्च न यामितस्यमन्दिरम्
मिथ्यावादीचयःशश्वन्नास्तीतिवाचकः सदा । सत्वहीनश्चदुःशीलोनगेहंतस्ययाम्यहम्
सत्यहीनःस्थाप्यहारीमिथ्यासाक्ष्यप्रदायकः । विश्वासघ्नः कृतघ्नोयोनयामितस्यमन्दिरम्

चिन्ताग्रस्तो भयग्रस्तः शत्रुग्रस्तोऽतिपातकी।
ऋणग्रस्तोऽतिकृपणो न गेहं यामि पापिनाम् ॥ २० ॥

दीक्षाहीनश्च शोकार्त्तो मन्दधीःस्त्रीजितःसदा । न यामिचकदा गेहंपुंश्चल्याःपतिपुत्रयोः
योदुर्वाक् कलहाविष्टःकलिःशश्वद् यदालये । स्त्रीप्रधानागृहे यस्यनयामितस्यमन्दिरम्
यत्र नास्ति हरेः पूजा तदीयगुणकीर्त्तनम् । नोत्सुकस्तत्प्रशंसायांन यामितस्यमन्दिरम्
कन्यान्नवेदविक्रेता नरघाती च हिंसकः । नरकागारसदृशं न यामि तस्य मन्दिरम् ॥
मातरं पितरंभार्य्यां गुरुपत्नींगुरुं सुतम् । अनाथांभगिनीं कन्यामनन्याश्रयबान्धवान् ॥
कापण्यांद्यो न पुष्णातिसञ्चयंकुरुते सदा । तद्गेहान्नरकागाराच्च यामितान्मुनीश्वराः
दशनं वसनं यस्य समलं रूक्षमस्तकम् । विकृतो ग्रासहासो न यामि तस्य मन्दिरम्
मूत्रं पुरीषमुत्सृज्य यस्तत्पश्यति मन्दधीः । यःशेते स्निग्धपादेन न यामि तस्यमन्दिरम्

अधौतपादशायी यो नग्नः शेतेऽतिनिद्रितः ।
सन्ध्याशायी दिवाशायी न यामि तस्य मन्दिरम् ॥ २१ ॥

मूर्द्ध्नितैलंपुरोदत्त्वा योऽन्यदङ्गमुपस्पृशेत् । ददातिपश्चाद्गात्रे यान यामितस्यमन्दिरम्
दत्त्वा तैलं मूर्द्ध्निगात्रे विण्मूत्रंयःसमुत्सृजेत् । प्रणमेद्वाहरेत् पुष्पंनयामितस्यमन्दिरम्

गृहं तिष्ठन्ति [illegible] । [illegible] न नास्ति मम मन्दिरम्
[illegible] । यो [illegible] न नास्ति मम मन्दिरम्
यत्कर्म दक्षिणाहीनं कुरुते मूढधीः शठः । स पापी पुण्यहीनश्च न नास्ति मम मन्दिरम्
मन्त्रविद्योपजीवी च ग्रामयाजी चिकित्सकः । सूपकारो देवलश्च न नास्ति मम मन्दिरम्
विवाहयज्ञकार्येषु [illegible] । [illegible] न नास्ति मम मन्दिरम्
इत्युक्त्वा च महालक्ष्मीरन्तर्धानं चकार ह । [illegible]
सा प्रजगाम [illegible] सुराश्चिन्ताकुलाः । [illegible]
[illegible] । [illegible] मुने ॥
[illegible] । [illegible]

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे लक्ष्मीचरित्रं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।

---

## चतुर्विंशोऽध्यायः

### गणेशस्य एकदन्तत्वे विवरणम् ।

नारद उवाच ।

नारायण महाभाग हरेरंशसमुद्भव । सर्वं श्रुतं त्वत् प्रसादाद्गणेशचरितं शुभम् ॥ १ ॥
दन्तद्वययुतं वक्त्रं गजराजस्य बालके । विष्णुना योजितं ब्रह्मन्नेकदन्तः कथं शिशुः ॥
कुतो गतोऽस्य दन्तोऽन्यस्तद्भवान्वक्तुमर्हति । सर्वेश्वरस्त्वं सर्वज्ञः कृपावान्भक्तवत्सल

सूत उवाच ।

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्मेरारुणसरोरुहः । एकदन्तस्य कथनं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ४ ॥

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् । एकदन्तस्य चरितं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ ५ ॥

एकदा कार्त्तवीर्य्यश्च जगाम मृगयां मुने । मृगान्निहत्य बहुलान् परिश्रान्तो बभूव सः
निशामुखे दिनेऽतीते तत्र तस्थौ वने नृपः । जमदग्न्याश्रमाभ्यासे उपोष्य सैन्यसंयुतः
प्रातः सरोवरे राजा स्नातः शुचिरलंकृतः । दत्तात्रेयेन दत्तञ्च जजाप भक्तितो मनुम् ॥
मुनिर्ददर्श राजानं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकम् । प्रीत्या सम्भाषयामास पप्रच्छ कुशलं मुनिः
ननाम सम्भ्रमाद्राजा मुनिं सूर्यसमप्रभम् । सच तस्मै ददौप्रीत्या प्रणताय शुभाशिषम्
वृत्तान्तं कथयामास राजा चानशनादिकम् । सम्भ्रमेणैव मुनिना त्रस्तं राजानिमन्त्रितः
विज्ञाप्य तं मुनिश्रेष्ठः प्रययौ स्वालयं मुदा । लक्ष्मीसमां कामधेनुं कथयामास मातरम्
उवाच सा मुनिं भीतं भयं किं ते मयि स्थिते । जगद्भोजयितुं शक्तस्त्वं मयाकोनृपोमुने
राजभोजनयोग्यार्हं यद्‌ यद्‌ द्रव्यं प्रयाचसे । सर्वंतुभ्यं प्रदास्यामि त्रिपुलोकेषुदुर्लभम्

सौवर्णानि राजतानि पात्राणि विविधानि च ।
भोजनार्हाण्यसंख्यानि पाकपात्राणि यानि च ॥ १५ ॥

पात्राणि स्वादुपूर्णानि प्रददौ मुनये च सा । नानाविधानि स्वादूनि परिपक्कफलानिच
पनसाम्रनारिकेलश्रीफलानि च नारद । राशीभूतान्यसंख्यानि स्वादूनि लड्डुकानि च
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकानां बहूनि च । पक्वान्नानां पर्वतञ्च परमान्नस्य कन्दरम् ॥१८
दुग्धानाञ्च घृतानाञ्च नदीं दध्नां ददौ मुदा । शर्कराणां तथा राशिं मोदकानाञ्चपर्वतम्

पृथुकानां सुशालीनां पर्वतं प्रददौ मुदा ॥ १९ ॥

ताम्बूलं प्रददौ पूर्णं कर्पूरादिसुवासितम् । नृपयोग्यं कौतुकञ्च सुन्दरं वस्त्रभूषणम् ॥२०
मुनिः सम्भृतसम्भारो दत्त्वा द्रव्यं मनोहरम् । भोजयामास राजानं ससैन्यमवलीलया
यद्‌ यत् सुदुर्लभं वस्तु परिपूर्णं नृपेश्वरः । जगाम विस्मयं राजा दृष्ट्वा पात्रमुवाच ह ॥

राजोवाच ।

द्रव्याण्येतानि सचिव दुर्लभान्यश्रुतानि च । ममासाध्यानि सहसा क्वागतान्यवलोकय
नृपाज्ञया च सचिवः सर्वं दृष्ट्वा मुनेर्गृहे । राजानं कथयामास वृत्तान्तं महदद्भुतम् ॥२४

सचिव उवाच ।

दृष्टं सर्वं महाराज निबोध मुनिमन्दिरे । वह्निकुण्डयज्ञकाष्ठकुशपुष्पफलान्वितम् ॥२५॥

कृष्णपादाम्बुजस्तुतिभिः शिष्यसंघैश्च सङ्कुलम् । तैजसान्तरमत्यादि सर्वमन्दिरमन्दिरम्
वृक्षपत्रपरीधाना दृष्टाः सर्वे जटाधराः ॥ २३ ॥
हिमदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा । सर्वाङ्गी चन्द्रवर्णाभा स्वर्णश्रृङ्गोज्ज्वलाना ॥२४
ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा । सर्वाङ्गसुन्दराकारा मायादिव हरिप्रिया ॥
सर्वेश्वराभिनो राजा दुर्बुद्धिः कपिलालया । मुनिं ययाचे तां धेनुं निर्लज्जः कालचोदितः
पितापुण्यप्रकाशविनिश्चकः सर्वार्थवादी । पुण्यवान् बुद्धिमानेवाद्यानन्दीयानीश्वर
पुण्यात्प्रजायते धर्मं पुण्यरूपश्च मानवे । पापात्प्रजायते कर्म पापरूपं मनावमन् ॥२५

पुण्यात् भुक्त्वा स्वर्गभोगं जन्म पुण्यस्थले नृणाम् ।
पापात् भुक्त्वा च नरकं कुत्सितं जन्म जीविनाम् ॥ २६ ॥

जीविनां निष्कृतिर्नास्ति विना कर्मविनाशनम् । तेन कुर्वन्ति सन्तश्च सततं कर्मनाशनम्
सा विद्या तत्तपो ध्यानं स गुरुः स च बान्धवः । सा माता स पिता पुत्रस्तद्भक्तिं कारयेत्तु यः
जीविनां दारुणो रोगः कर्मभोगः शुभाशुभः । भक्तवैद्यस्तं निहन्ति कृष्णभक्तिरसायनात्
माया ददाति तां भक्तिं प्रतिजन्मनि सेविता । परितुष्टा जगद्धात्री भक्ताय बुद्धिदायिनी
परां परमभक्ताय माया यस्मै ददाति च । मायां दत्त्वा मोहयितुं न विवेकं कदाचन ॥
मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः । उवाच विनयं भक्त्या पुटाञ्जलियुतो मुदा

राजोवाच ।

भिक्षां देहि कल्पतरो कामधेनुञ्च कामदाम् । मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकातर ॥
युष्मद्विधानां दातॄणामदेयं नास्ति भारते । दधीचिर्देवताभ्यश्च ददौ स्वास्थि पुराश्रुतम्
भ्रूभङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन । समूहं कामधेनूनां स्रष्टुं शक्तोऽसि भारते ॥४२

मुनिरुवाच ।

अहो व्यतिक्रमं राजन् ब्रवीषि शठ वञ्चक । दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियाय नृपाधम
कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना । कामधेनुरियं यज्ञे न देयाः प्राणतः प्रिया ॥
ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप । मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी मम ॥
गोलकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रात् कथमहं कपिलां स्रष्टुमीश्वरः ॥

नाहं रे हालिकोमूढत्वयानोत्थापितोवुधः । क्षणेनभस्मसात् कर्त्तुं क्षमोऽहमतिथिंविना
गृहं गच्छ गृहं गच्छ मत्कोपं नैव वर्द्धय । पुत्रदारादिकं पश्य दैववाधित पामर ॥४८॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप स नराधिपः । नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिवाधितः
गत्वा सैन्यसकाशं स कोपप्रस्फुरिताधरः । किङ्करान् प्रेषयामास धेनुमानयितुं वलात्
कपिलासन्निधिं गत्वा रुरोद मुनिपुङ्गवः । कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ॥५१
रुदन्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह । साक्षाल्लक्ष्मीः स्वरूपा सा भक्तानुग्रहकातरा

सुरभिरुवाच ।

इन्द्रोवाहालिकोवापिस्ववस्तुदातुमीश्वरः । शास्ता पालयितादातास्ववस्तूनाञ्चसन्ततम्
स्वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय मांददासि तपोधन । तेनसार्द्धं गमिष्यामि स्वेच्छयाचतवाज्ञया
अथवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात् । मत्तोद्भुतेन सैन्येन दूरीभूतं नृपं कुरु ॥
कथं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः । संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो नचात्मनः
त्वंवा कोमे तवाहं का सम्बन्धः कालयोजितः । यावदेव हि सम्बन्धोममत्वंतावदेवहि
को जानाति यद्द्रव्यमात्मनश्चापिकेवलम् । दुःखञ्चनस्यविच्छेदात्यावत्स्वत्वञ्चतत्रवै
त्युक्त्वाकामधेनुश्चसुषावविविधानि च । शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानिसूर्य्यतुल्यप्रभाणिच
र्निर्गताःकपिलावक्त्रात्त्रिकोटिखड्गधारिणः । विनिःसृतानासिकायाःशूलिनःपञ्चकोटयः
विनिःसृतालोचनाभ्यांशतकोटिधनुर्द्धराः । कपालान्निःसृतावीरास्त्रिकोटिदण्डधारिणः
वक्षःस्थलान्निःसृताश्चत्रिकोटिशक्तिधारिणः । शतकोटिगदाहस्ताःपृष्ठदेशात्विनिर्गताः
विनिःसृताः पादतलाद्वाद्यभाण्डाःसहस्रशः । जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोटिराजपुत्रकाः
विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटि म्लेच्छजातयः । दत्त्वा सैन्यानि कपिलामुनयेनिर्भयं ददौ

युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न यासीत्युवाच ह ॥ ६४ ॥

मुनिः सम्भृतसम्भारैर्हर्षयुक्तो वभूव ह । नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह ॥६५॥
कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् । तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः कातरमानसः

दूतद्वारा च सैन्यानि चाजहार स्वदेशतः ॥ ६६ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे एकदन्त-
प्रश्नप्रसङ्गे जमदग्निकार्त्तवीर्य्ययुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

कृष्णचर्मस्रुवस्रुग्भिः शिष्यसंङ्घैश्च सङ्कुलम् । तैजसाधारशस्यादि सर्वसमद्धि

वृक्षचर्मपरीधाना दृष्टाः सर्वे जटाधराः ॥ २७ ॥

हैकदेशे दृष्टा सा कपिलैका मनोहरा । चार्वङ्गी चन्द्रवर्णाभा रक्तपङ्कजलोचन

ज्वलन्ती तेजसा तत्र पूर्णचन्द्रसमप्रभा । सर्वसम्पद्गुणाधारा साक्षादिव हरि

सर्वथाराधितो राजा दुर्बुद्धिः सचिवाज्ञया । मुनिं ययाचे तां धेनुं निबद्धः काल

कियापुण्यश्चकाबुद्धिर्निषेकः सर्वतोबली । पुण्यवान् बुद्धिमान्दैवाद्राजेन्द्रोयावर्

पुण्यात्प्रजायते कर्म पुण्यरूपश्च भारते । पापात्प्रजायते कर्म पापरूपं भयावहम्

पुण्यात् कृत्वा स्वर्गभोगं जन्म पुण्यस्थले नृणाम् ।

पापात् भुक्त्वा च नरकं कुत्सितं जन्म जीविनाम् ॥ ३२ ॥

जीविनां निष्कृतिर्नास्ति स्थिते कर्मणिनारद । तेन कुर्वन्ति सन्तश्च सन्ततंकर्मण

सा विद्या तत्तपो ज्ञानं स गुरुःसचबान्धवः । सामाता सपिता पुत्रस्तन्क्षयंकार्

जीविनां दारुणो रोगः कर्मभोगः शुभाशुभः । भक्तवैद्यस्तंनिहन्ति कृष्णभक्तिरसा

माया ददाति तां भक्तिं प्रतिजन्मनि सेविता । परितुष्टा जगद्धात्री भक्ताय बुद्धि

रा परमभक्ताय माया यस्मै ददाति च । मायां दत्वा मोहयितुं न विवेकं कदा

मायाविमोहितो राजा मुनिमानीय यत्नतः । उवाच विनयं भक्त्या पुटाञ्जलियुतो

राजोवाच ।

भिक्षां देहि कल्पतरो कामधेनुञ्च कामदाम् । मह्यं भक्ताय भक्तेश भक्तानुग्रहकात

पुष्मद्विधानां दातृणामदेयं नास्ति भारते । दधीचिर्दैवताभ्यश्च ददौ स्वास्थि पुरा

भ्रूभङ्गलीलामात्रेण तपोराशे तपोधन । समूहं कामधेनूनां स्रष्टुं शक्तोऽसि भारते

मुनिरुवाच ।

अहो व्यतिक्रमं राजन् ब्रवीषि शठ वञ्चक । दानं दास्यामि विप्रोऽहं क्षत्रियायनृपा

कृष्णेन दत्ता गोलोके ब्रह्मणे परमात्मना । कामधेनुरियं यत्ने न देयाः प्राणतः प्रिय

ब्रह्मणा भृगवे दत्ता प्रियपुत्राय भूमिप । मह्यं दत्ता च भृगुणा कपिला पैतृकी म

गोलोकजा कामधेनुर्दुर्लभा भुवनत्रये । लीलामात्रात् कथमहं कपिलां स्रष्टुमीश्व

रे रे हालिकोमूढ़त्वयानोत्थापितोबुधः । क्षणेनभस्मसात् कर्त्तुं क्षमोऽहमतिथिर्विना
गच्छ गृहं गच्छ मत्कोपं नैव वर्द्धय । पुत्रदारादिकं पश्य दैवबाधित पामर ॥४८॥
स्तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप स नराधिपः । नत्वा मुनिं सैन्यमध्यं प्रययौ विधिबाधितः
त्वा सैन्यसकाशं स कोपप्रस्फुरिताधरः । किङ्करान् प्रेषयामास धेनुमानयितुं बलात्
पिलासन्निधिं गत्वा हरोद मुनिपुङ्गवः । कथयामास वृत्तान्तं शोकेन हतचेतनः ॥५१
तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा सुरभिस्तमुवाच ह । साक्षाल्लक्ष्मीः स्वरूपा सा भक्तानुग्रहकातरा

सुरभिरुवाच ।

दोवाहालिकोवापिस्वयवस्तुदातुमीश्वरः । शास्ता पालयितादातास्वयवस्तूनाञ्चसन्ततम्
वेच्छया चेन्नृपेन्द्राय मांददासि तपोधन । तेनसार्द्धं गमिष्यामि स्वेच्छयाचतवाज्ञया
थवा न ददासि त्वं न गमिष्यामि ते गृहात् । मत्तोद्भवेन सैन्येन दूरीभूतं नृपं कुरु ॥
र्थं रोदिषि सर्वज्ञ मायामोहितचेतनः । संयोगश्च वियोगश्च कालसाध्यो नचात्मनः
वंवा कोमे तवाहं का सम्बन्धः कालयोजितः । यावदेव हि सम्बन्धोममत्वंतावदेवहि
नो जानाति यद्द्रव्यमात्मनश्चापिकेवलम् । दुःखञ्चतस्यविच्छेदात्याचत्स्वत्वञ्चतत्रवै
त्युक्त्वाकामधेनुश्चसुषावविविधानि च । शस्त्राण्यस्त्राणि सैन्यानिसूर्यतुल्यप्रभाणिच
र्निर्गताःकपिलावक्त्रात्त्रिकोटिखड्गधारिणः । विनिःसृतानासिकायाःशूलिनःपञ्चकोटयः
विनिःसृतालोचनाभ्यांशतकोटिधनुर्द्धराः । कपालान्निःसृतावीरास्त्रिकोटिदण्डधारिणः
क्षःस्थलान्निःसृताश्चत्रिकोटिशक्तिधारिणः । शतकोटिगदाहस्ताःपृष्ठदेशाद्विनिर्गताः
विनिःसृताः पादतलाद्वाद्यभाण्डाःसहस्रशः । जङ्घादेशान्निःसृताश्च त्रिकोटिराजपुत्रकाः
विनिर्गता गुह्यदेशात्त्रिकोटि म्लेच्छजातयः । दत्त्वा सैन्यानि कपिलामुनयेनिर्भयं ददौ
युद्धं कुर्वन्तु सैन्यानि त्वं न यासीत्युवाच ह ॥ ६४ ॥
मुनिः सम्भृतसम्भारैर्हर्षयुक्तो बभूव ह । नृपेण प्रेरितो भृत्यो नृपं सर्वमुवाच ह ॥६५॥
कपिलासैन्यवृत्तान्तमात्मवर्गपराजयम् । तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलस्त्रस्तः कातरमानसः
दूतद्वारा च सैन्यानि चाजहार स्वदेशतः ॥ ६६ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे एकदन्त-
प्रश्नप्रसङ्गे जमदग्निकार्त्तवीर्य्ययुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

## पञ्चविंशोऽध्यायः

### जमदग्नि-कार्तवीर्यार्जुनयुद्धम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं स्मरन् कार्तवीर्य्यो हृदयेन विदूयता । दूतं प्रस्थापयामास कपिलांमुनिसन्निधिम् ॥

युद्धं देहि मुनिश्रेष्ठ किं वा धेनुञ्च वाञ्छितम् ।
मह्यं भृत्यायातिथये सुविचार्य्य यथोचितम् ॥२॥

दूतस्य वचनं श्रुत्वा जहास मुनिपुङ्गवः । हितं सत्यं नीतिसारं सत्रं दूतमुवाच ह ॥३॥

मुनिरुवाच ।

दृष्टो नृपो निराहारः समानीतो मया गृहम् ।
विविधञ्च यथा शक्त्या भोजितश्च यथोचितम् ॥४॥
कपिलां याचते राजा मम प्राणाधिकां बलात् ।
तां दातुमक्षमो दूत युद्धं दास्यामि निश्चितम् ॥५॥

मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा दूतः सर्वमुवाच ह । नृपेन्द्रश्च सभामध्ये सन्नाहसंयुक्तं भिया ॥६॥
मुनिश्च कपिलामाह साम्प्रतंकिङ्करोम्यहम् । कर्णधारंविनानौकातथासैन्यंमयाविना ॥
कपिला ददौतस्मैशस्त्राणिविविधानिच । युद्धशास्त्रोपदेशञ्चसन्धानमौपयोगिकम् ॥
जयं भवतु ते विप्र युद्धेजेप्यसिनिश्चितम् । तवमृत्युर्नभवितावाव्यर्थास्त्रंविना ध्रुवम् ॥
नृपेण सार्द्धं ते युद्धमयुक्तं ब्राह्मणस्य च । दत्तात्रेयस्यशिष्येणैवाव्यर्थशक्तिधारिणा ॥
इत्युक्त्वा कपिला ब्रह्मन् विरराम मनस्विनी ॥१०॥

मुनिर्मनस्वी सैन्यञ्च सज्जीभूतञ्चकार ह । गृहीत्वा सर्वसैन्यञ्च प्रजगामरणस्थलम् ॥११
राजा जगाम युद्धाय ननाम मुनिपुङ्गवम् । उभयोः सैन्ययोर्युद्धं बभूव बहु दुष्करम् ॥
राजसैन्यं जितं सर्वं कपिलासेनया बलात् । विचित्रञ्च रथं राज्ञो बभञ्ज लालया रणे॥
धनुश्चिच्छेद सन्नाहं सा सेना कापिली मुदा ।

नृपेन्द्रः कापिलेयानि सैन्यानि जेतुमक्षमः ॥१४॥

सैन्यानि तंशस्त्रवृष्टयान्यस्तशस्त्रश्चकारह । शरवृष्टयाशस्त्रवृष्टयाराजामूर्च्छामवापह ॥
किञ्चित् सैन्यं मृतं राज्ञःकिञ्चिद्देषपलायितम् । मुनीन्द्रोमूर्च्छितंदृष्ट्वानृपेन्द्रमतिथिमुने ॥
कृपानिधिश्च कृपया तत्सैन्यं सञ्जहार च । गत्वासैन्यंविलीनञ्चकपिलायाश्च कृत्रिमम् ॥
नृपाय मुनिना शीघ्रं दत्त्वा चरणरेणवः । आशीर्वादं प्रदत्तश्चजयोऽस्त्विति कृपालुना ॥

कमण्डलुजलं दत्त्वा कारयामास चेतनाम् ॥१८॥

स राजा चेतनां प्राप्य समुत्थाय रणाजिरे । मूर्ध्नाननामभक्त्याचमुनिश्रेष्ठं पुटाञ्जलिः ॥

मुनिः शुभाशिषं दत्त्वा राजानमालिलिङ्ग च ।

पुनस्तं स्नापयित्वा च भोजयामास यत्नतः ॥२०॥

नावनीतञ्च हृदयं ब्राह्मणानाञ्च सन्ततम् । अन्येषां क्षुरधाराभमसाध्यं दारुणं सदा ॥

उवाच तं मुनिश्रेष्ठो गृहं गच्छ नृपाधिप ।

राजोवाच ।

रणं देहि महावाहो धेनुं किंवा ममेप्सिताम् ॥२२॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे नृपमुनियुद्ध-कथनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।

## षड्विंशतितमोऽध्यायः

### पुनः जमदग्निकार्तवीर्यार्जुन युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं स्मरन् मुनिश्रेष्ठो वाक्यं श्रुत्वा च भूभृतः । हितं सत्यंनीतिसारंप्रवक्तुमुपचक्रमे ॥

मुनिरुवाच ।

गृहं गच्छ महाभाग रक्ष धर्मंसनातनम् । सर्वसम्पत्स्थिराशश्वत्स्थितेधर्मे सुनिश्चितम् ॥
त्वाञ्च दृष्ट्वा निराहारं समानीय गृहं नृप । तव पूजामकरवं यथाशक्त्या विधानतः ॥२॥
साम्प्रतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा पादरेणुं शुभाशिषम् । अददं चेतनां कृत्वा यत्कर्मेवोचितं न च ॥

नृपस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । रथमन्यमारुरोह युद्धं देहीत्युवाच ह ॥ ५ ॥
मुनिः कृत्वा च सन्नाहं तं योद्धुमुपचक्रमे । राजा तं युयुधे तत्र कोपेनाहृतचेतनः ॥६॥
कपिलादत्तशस्त्रेण न्यस्तशस्त्रं चकार तम् । कपिलादत्तयाशक्त्यापुनर्मूर्च्छां चकार च॥
पुनश्च चेतनां प्राप्य राजा राजीवलोचनः । मुनिना युयुधे तत्र कोपेन पुनरेव च ॥८॥
वह्निश्च योजयामास समरे मुनिपुङ्गवः । मुनिर्निर्वापयामास वारुणेनावलीलया ॥ ९ ॥
नृपेन्द्रो वारुणास्त्रञ्च चिक्षेप समरेमुनौ । वायव्यास्त्रेणसमुनिःशमयामासलीलया ॥
वायव्यास्त्रं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप समरे तदा । गान्धर्वेण मुनिश्रेष्ठःशमयामासतत्क्षणम् ॥११॥
नागास्त्रञ्च नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप रणमूर्द्धनि । गारुडेन मुनिश्रेष्ठो जघान तत्क्षणं मुदा ॥१२॥
माहेश्वरं महास्त्रञ्च शतसूर्यसमप्रभम् । चिक्षेप नृपतिश्रेष्ठो द्योतयन्तं दिशोदश ॥१३॥
वैष्णवास्त्रेण दिव्येन त्रिलोकव्यापकेन च । मुनिर्निर्वापयामास बहुयत्नेन नारद ॥१४॥
मुनिर्नारायणास्त्रञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । शस्त्रं दृष्ट्वा महाराजो ननाम शरणं ययौ ॥
ऊर्ध्वञ्च भ्रमणं कृत्वा क्षणं दीप्त्वा दिशोदश । प्रलयाग्निसमन्तत्र स्वयमन्तरधीयत ॥
जृम्भणास्त्रञ्च स मुनिश्चिक्षेप रणमूर्द्धनि । निद्रां प्राप तेन राजा सुष्वाप च मृतोयथा
दृष्ट्वा नृपं निद्रितञ्च अर्द्धचन्द्रेण तत्क्षणम् । चिच्छेद सारथिं यानं धनुर्बाणंमुनिस्तदा ॥
मुकुटञ्च क्षुरप्रेण छत्रं सन्नाहमेव च । अस्त्रं तूणं वाजिगणं विविधेन च भूभृतः ॥१६॥
मुनिस्तत्सचिवान् सर्वान् नागास्त्रेणावलीलया । निबध्यस्थापयामासप्रहस्यसमरस्थले ॥
मुनिर्बोधयामाससुमन्त्रेणावलीलया । निबद्धान्सचिवान्सर्वान्दर्शयामासभूमिपम् ॥
दर्शयित्वा नृपं तांश्च मोक्षयामास तत्क्षणम् । नृपेन्द्रमाशिषं कृत्वागृहंगच्छेत्युवाच ह ॥
राजा कोपात् समुत्थाय शूलमुग्रमथज्वलत् । चिक्षेपतंमुनिश्रेष्ठंमुनिःशक्त्याजघान तम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य रणस्थलम् । सुप्रीतिं कारयामास सुनीत्याचपरस्परम् ॥
मुनिर्ननाम ब्रह्माणं सम्मुखञ्च रणस्थले । राजा नत्वा विधिं विप्रं स्वालयंप्रययौ तदा ॥
मुनिर्ययौ च स्वगृहं स्वगृहं कमलोद्भवः । इत्येवं कथितं किञ्चिदपरं कथयामि ते ॥२६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे जमदग्नि-
कार्त्तवीर्यार्जुन युद्धविरामकथनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

# सप्तविंशतितमोऽध्यायः

## ससैन्यस्य राज्ञः मुनितपोवने पुनर्गमनम् ।

नारायण उवाच ।

हरिं स्मृत्वा गृहं गत्वा राजा विस्मितमानसः । पुनर्जगामारण्यञ्च जमदग्न्याश्रमं तदा ॥
रथानाञ्च चतुर्लक्षं रथिनां दशलक्षकम् । अश्वेन्द्राणां गजेन्द्राणां पदातीनामसंख्यकम् ॥
राजेन्द्राणां सहस्रञ्च महाबलपराक्रमम् । महासमृद्धियुक्तश्च त्रैलोक्यं जेतुमीश्वरः ॥३
समृद्ध्या वेष्टयामास जमदग्न्याश्रमं मुदा । रथस्थो वर्मयुक्तश्च कार्त्तवीर्य्यार्जुनः स्वयम् ॥
सैन्यशब्दैर्वाद्यशब्दैर्महाकोलाहलैर्मुने । जमदग्न्याश्रमस्थाश्च मूर्च्छामापुर्भयेन च ॥५॥
पुरीं प्रविश्य बलवान् गृहीत्वा कपिलां शुभाम् । गृहं गन्तुं मनश्चक्रे दुर्बुद्धिरसदाश्रयः ॥
समुत्तस्थौ मुनिश्रेष्ठो गृहीत्वा सशरं धनुः । एकाकी मुक्तगात्रश्च धेनुं नत्वा हरिं स्मरन् ॥
आश्रमस्थान् जनान् सर्वान् समाश्वास्य च यत्नतः ।
आजगाम रणस्थानं निःशङ्को नृपतेः पुरः ॥८॥
चकार शरजालञ्च स मुनिर्मन्त्रपूर्वकम् । तच्छाद स्वाश्रमं तेन मानवं वर्मणा यथा ॥
अपरं शरजालञ्च चकार मुनिपुङ्गवः । तैरेव वारयामास सर्वसैन्यं यथाश्रमम् ॥ १० ॥
मुनिना शरजालेन सर्वसैन्यं समावृतम् । तालिसर्णांश्रिगुनानि पत्राणि पञ्जरे यथा ॥११॥
राजा दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठमवरुह्य रथात् पुरः । सार्द्धं नृपेन्द्रैर्भक्त्या च प्रणनाम पुटाञ्जलिः ॥
नत्वा रुरोह यानं स मुनेः प्राप्य शुभाशिषम् । आरुरोह नृपेन्द्रश्च स्वयानं हृष्टमानसः ॥
नृपैः सार्द्धं नृपश्रेष्ठश्चिक्षेप मुनिपुङ्गवम् । अस्त्रं शस्त्रं गदां शक्तिं [illegible]मुनिः ॥
मुनिश्चिक्षेप दिव्यास्त्रं चिच्छेद लीलया नृपः । शूलञ्चिक्षेप नृपतिर्निर्वाण [illegible]मुनिः ॥
अपरं शरजालञ्च चिक्षेप मुनिपुङ्गवः ॥१५॥
[illegible]शस्त्रौघैर्दुर्निवार्य्यैश्च खण्डखण्डं नृपा ययुः । [illegible] ॥
[illegible]जृम्भणास्त्रेण मुनिना ते चसर्वे विजृम्भिताः । [illegible]सर्वसैन्यकम् ॥

राजानं निद्रितं दृष्ट्वा न जघान मुनीश्वरः ।
गृहीत्वा कपिलां हस्ते रुदन्तीं शोकमूर्च्छिताम् ।
बोधयित्वा पुनः कृत्वा स्वगृहं गन्तुमुद्यतः ॥१८॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा चेतनां प्राप्य नारद । निवारयामास मुनिं गृहीत्वा सशरं धनुः ॥
जगामकपिलात्रस्तास्वस्थानंशरणस्थलात् । मुनिश्चतस्थौनिःशङ्कोगृहीत्वासशरंधनुः ॥
ब्रह्मास्त्रं नृपश्रेष्ठः प्रचिक्षेप मुनौ तदा । ब्रह्मास्त्रेण मुनीन्द्रस्य सद्यो निर्वाणतां गतम् ॥
दिव्यास्त्रेण मुनिश्रेष्ठो नृपस्य सशरं धनुः । रथञ्च सारथिञ्चैव चिच्छेदपरमं दुर्धरम् ॥
अथ राजा महाक्रुद्धो ददर्श स्वसमीपतः । दत्तेन दत्तां शक्तिं तामेकपुरुषघातिनीम् ॥
जग्राह नत्वा दत्तं तं प्रणम्य शक्तिमुल्वणाम् । घूर्णयामास तत्रैव शतसूर्यसमप्रभाम् ॥
यत्तेजः सर्वदेवानां तेजो नारायणस्य च । शम्भोश्च ब्रह्मणश्चैव मायायाश्चैव नारद ॥
तत्रैवावाहयामास स योगी मन्त्रपूर्वकम् । तेजसा द्योतयामास गगनञ्च दिशो दश ॥२६॥
दृष्ट्वा क्षिपन्तीं तां देवा हाहाकारंचकार ह । आकाशस्थाश्चसमरंपश्यन्तोदुःखिता इव ॥
विक्षेपतांघूर्णयित्वाकार्त्तवीर्य्यार्जुनःस्वयम् । सद्यःपपातसाशक्तिर्ज्वलन्तीमुनिवक्षसि ॥
विदार्य्योरो मुनेः शक्तिं जगाम हरिसन्निधिम् । दत्ताय हरिणा दत्तादत्तेनैवनृपायसा ॥

मूर्च्छां सम्प्राप्य स मुनिःप्राणांस्तत्याज तत्क्षणम् ।
तेजोऽम्बरे भ्रमित्वा च ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥३०॥

युद्धे मुनिं मृतं दृष्ट्वा रुरोद कपिला मुहुः । हे तात तातेत्युच्चार्य्यगोलोकंसा जगाम ह ॥
सर्वं सा कथयामासगोलोकेकृष्णमीश्वरम् । रत्नसिंहासनस्थंतं गोपैर्गोपीभिरावृतम् ॥
कृष्णेन ब्रह्मणे दत्ता ब्रह्मणा भृगवे पुरा । सा प्रीत्या पुष्करे ब्रह्मन् भृगुणा जमदग्नये ॥
नत्वा च कामधेनूनां समूहं सा जगाम ह । तदश्रुबिन्दुना मर्त्ये रत्नसङ्घो बभूव ह ॥

अथ राजा तं निहत्य बोधयित्वा स्वसैन्यकम् ।
प्रायश्चित्तं विनिर्वर्त्य जगाम स्वालयं मुदा ॥३५॥

प्राणनाथं मृतं श्रुत्वा जगाम रेणुकासती । मुनिवक्षसिसंस्थाप्यक्षणंमूर्च्छामवाप सा ॥
तनां प्राप्य न रुरोद पतिव्रता । एहि वत्स भृगोराम राम रामेत्युवाच ह ॥

आजगाम भृगुस्तूर्णं क्षणेन पुष्करादहो । ननाम मातरं भक्त्या मनोयायीचयोगवित् ॥
दृष्ट्वा रामो मृतं तातं शोकार्त्तां जननीं सतीम् ।
आकर्ण्य रणवृत्तान्तं प्रयान्तीं कपिलां शुचा ॥३६॥
विललाप भृशं तत्र हे तात जननीति च । चिताञ्चकार योगीन्द्रश्चन्दनैराज्यसंयुताम् ॥
रेणुका राम मादाय तूर्णं कृत्वा स्ववक्षसि । चुचुम्ब गण्डेशिरसि रुरोदोच्चैर्भृशंमुहुः ॥
राम राम महाबाहो क यामि त्वां विहाय च । वत्सवत्सेतिकृत्वैवंविललापभृशंमुहुः ॥
मत्प्राणाधिक हे वत्स मदीयं वचनं शृणु । पित्रोःशेषक्रियांकृत्वापुत्र युद्धे न यास्यसि
गृहे तिष्ठ सुखं वत्स तपस्यां कुरु शाश्वतीम् । समरं नैव सुखदं दारुणैः क्षत्रियैःसह ॥
मातुर्वचनमश्रुत्वा प्रतिज्ञां तां चकार ह । त्रिःसप्तकृत्वोनिर्भूपांकरिष्यामिध्रुवंमहीम् ॥
कार्त्तवीर्य्यं हनिष्यामि लीलया क्षत्रियाधमम् । पितॄंश्चतर्पयिष्यामिक्षत्रियक्षतजेन च ॥
इत्युदीर्य्य पुरो मातु विललाप मुहुर्मुहुः । हितं तथ्यं नीतिसारं बोधयामास मातरम् ॥

राम उवाच ।

पितुः शासन हन्तारं पितुर्वधविधायकम् । यो न हन्ति महामूढोरौरवंसव्रजेद्ध्रुवम् ॥
अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारापहारी च पितृबन्धुविहिंसकः ॥४६॥
सततं मन्दकारी च निन्दकः कटुवाचकः । एकादशैते पापिष्ठा वधार्हा वेदसम्मताः ॥
द्विजानां द्रविणादानं स्थानान्निर्वासनं सति । वपनं ताडनञ्चैववधमाहुर्म्मनीषिणः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम भृगुः स्वयम् । अतित्रस्तो मनस्वी च हृदयेनविदूयता ॥
दृष्ट्वा तं रेणुका रामो विनयञ्च चकार ह । सतावुवाच वेदोक्तं परलोकहिताय च ॥५२

भृगुरुवाच ।

मद्वंश जातो ज्ञानी त्वं कथं विलपसेसुत । जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारे च चराचरम् ॥
सत्यसारं सत्यबीजं कृष्णं चिन्तय पुत्रक । यद्गतं तद्गतं वत्स गतं मा पुनरागतम् ॥५५
यद्भवेत्तद्भवत्येव भविता यद्भविष्यति । सत्यं नैषेकिकं कर्म निषेकः केन वार्य्यते ॥५६।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च यत् कृष्णेन निरूपितम् । निरूपितंयत्तत्कर्मकेनवत्सनिवार्य्यते ॥
मायाबीजं मायिनाञ्च शरीरं पाञ्चभौतिकम् । सङ्केतपूर्वकं नाम प्रातःस्वप्नसमं सुत॥५८

क्षुधा निद्रा दया शान्ति क्षमा कान्त्यादय स्तथा ।
यान्ति प्राणा मनो ज्ञानं प्रयाते परमात्मनि ॥५६॥

बुद्धिश्च शक्तयः सर्वा राजेन्द्रमिव किङ्कराः । सर्वे तमनुगच्छन्तितंकृष्णमज यत्नतः ॥
केषा केषाञ्च पितरः केषा केषां सुताः सुत । कर्मोर्मिप्रेरिताःसर्वेभवाब्धौदुस्तरे परम् ॥
ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र साम्प्रतम् । रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानांनरकंध्रुवम् ॥
संकेतामिधमुचार्य्य यद् रुदन्तिचबान्धवाः । शतवर्षंरुदित्वातंनप्राप्नुवन्तिनिश्चितम् ॥
पार्थिवांशञ्च पृथिवी गृह्णाति च त्वचादिकम् ॥६३॥

तोयांशञ्च तथा तोयं शून्यांशं गगनं तथा । वाय्वंशञ्चतथा वायुस्तेजस्तेजांशकंतथा ॥
सर्वे विलीनाःसर्वेषुकोवाऽऽयास्यतिरोदनात् । नामश्रुतियशःकर्मकथामात्रावशेषिताः ॥
वेदोक्तञ्चैव यत् कर्म कुरु तत् पारलौकिकम् । सच बन्धुःसपुत्रश्चपरलोकहिताय यः॥
भृगोस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकं तत्याज तत्क्षणम् । रेणुका च महासाध्वी तं वक्तुमुपचक्रमे

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे परशुरामंप्रति
भृगोःप्रबोधवचनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ।

---

## अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

### भृगु रेणुका संवादः ।

रेणुकोवाच ।

ब्रह्मन्ननुगमिष्यामि प्राणनाथस्य साम्प्रतम् । मृतोऽध्रुवर्षदिवसे मृतोऽय मम मानदः ॥
कर्तव्या का व्यवस्थात्र वद वेदविदांवर । त्वमागतो मे रहसापुण्येन कति जन्मनाम्

भृगुरुवाच ।

अहो पुण्यवती भर्तुंरनुगच्छ महासति । चतुर्थदिवसं शुद्धं स्वामिनः सर्वकर्मसु ॥१॥
[illegible] म श्रुता दैवपैत्रयोः । दैवे कर्मणि पैत्रे च पञ्चमेऽह्नि विशुद्ध्यति ।

व्यालग्राहीयथाव्यालंबिलादुद्धरते बलात् । तद्गृह्य स्वामिनमादाय साध्वीस्वर्गंप्रयातिच
मोदतेस्वामिनातत्रयावदिन्द्राश्चतुर्दश । अत उर्ध्वं च कर्मभोगं भुङ्क्ष्वसाध्विशुभाशुभम्
स पुत्रोभक्तिदातायःसाचस्त्री यानुगच्छति । स बन्धुर्ज्ञानदाता यःसशिष्योगुरुमर्चयेत्
सोऽमीष्टदेवो योरक्षेत्सराजापालयेत्प्रजाः । स च स्वामी प्रियाधर्मे मतिदातुमिहेश्वरः
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः । एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम् ॥

रेणुकोवाच ।

गन्तुं स्वस्वामिना सार्द्धं का शक्ताभार्गव मुने । का वाऽशक्ता नार्य्यश्चतन्मेब्रूहितपोधन

भृगुरुवाच ।

बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा । रजस्वला च कुलटा गलितव्याधिसंयुता ॥
पतिसेवाविहीनाया अभक्ताकटुवाचकाः । एताशच्छन्तिचेद्दैवात् नकान्तंप्राप्नुवन्तिताः

संस्कृताग्निं पुरो दत्त्वा चितासु शायिनं पतिम् ।
कान्तास्तमनुगच्छन्ति कान्ताश्चेत् प्राप्नुवन्ति ताः ॥ १३ ॥

अनुगच्छन्ति याःकान्तंतमेव प्राप्नुवन्ति ताः । सार्द्धंकृत्वापुण्यभोगं प्रतिजन्मनिजन्मनि
इयन्ते कथितासाध्विव्यवस्था गृहिणांध्रुवम् । तीर्थे ज्ञानमृतानाञ्च वैष्णवानाञ्चश्रूयताम्
यासाध्वीवैष्णवंकान्तं यत्रयत्रानुगच्छति । प्रयातिस्वामिनासार्द्धं वैकुण्ठेहरिसन्निधिम्
विशेषो नास्तिभक्तानां तीर्थेवान्यत्र नारद । मरणे च समफलं मुक्तानां कृष्णभाविनाम्
तयोः पातोनास्ति तस्मान्महति प्रलये सति । नारायणं तंभजेत पुमांस्त्री कमलालयाम्
तीर्थे ज्ञानमृतश्चापि वैकुण्ठं याति निश्चितम् । सभार्य्यो मोदते तत्र यावद्वैब्रह्मणःशतम्
इत्युक्त्वा रेणुकां तत्र पर्शुराममुवाच ह । वेदोक्तवचनं सर्वं स भृगुः समयोचितम् ॥२०
एहि वत्स महाभाग त्यजशोकममङ्गलम् । उत्तानं कुरु तातञ्च दक्षिणाशिरसं भृगो ॥
वस्त्रं यज्ञोपवीतञ्च नूतनं परिधापय । अनश्रुनयनो भूत्वा सन्तिष्ठ दक्षिणामुखः ॥२२॥
अरणीसंभवाग्निञ्च गृहाण भक्तिपूर्वकम् । पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वाणि स्मरणंकुरु
गयादीनि च तीर्थानियेच पुण्याः शिलोच्चयाः । कुरुक्षेत्रञ्च गङ्गाञ्च यमुनाञ्च सरिद्वराम्
कौशकीं चन्द्रभागाञ्च सर्वपापप्रणाशिनीम् । गण्डकीमथकाशीञ्च पनसां सरयूं तथा ॥

पुष्पभद्राञ्च भद्राञ्च नर्मदाञ्च सरस्वतीम् । गोदावरीञ्च कावेरीं स्वर्णरेखाञ्च पुष्करम्
रैवतञ्च वराहञ्च श्रीशैलं गन्धमादनम् । हिमालयञ्च कैलासं सुमेरुं रत्नपर्वतम् ॥२९॥
वाराणसीं प्रयागञ्च पुण्यं वृन्दावनं वनम् । हरिद्वारञ्च बदरीं स्मारं स्मारं पुनः पुनः ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीं सुगन्धिकुसुमं तथा । प्रदाय वासमाच्छाद्य स्थापयैनं चितोपरि ॥
कर्णाक्षिनासिकास्येषुशलाकाञ्चहिरण्मयीम् । कृत्वानिर्मञ्छनं तातदेहेविप्रायसादरम्
सतिलं ताम्रपात्रञ्च धेनुञ्च रजतन्तथा । सदक्षिणं सुवर्णञ्च दत्वाग्निं देहकातरम् ॥३१

ओं कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता ।
मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम् ॥ ३२ ॥

धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम् । दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान्सगच्छतु
इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम् । मन्त्रेणानेन देहाग्निं जनकाय हरिंस्मरन् ।

ओं अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयं जायतां पुनः ।
असौ लोकाय स्वर्गाय स्वाहेति वद साम्प्रतम् ॥ ३५ ॥

अग्निं देहि शिरःस्थाने हे भृगो भ्रातृभिःसह । तच्चकार भृगुःसर्वं सगोत्रैराज्ञया भृगोः
अथ पुत्रं रेणुका सा कृत्वा तत्र स्ववक्षसि । उवाच किञ्चिद्वचनं परिणाममुखावहम् ॥
अविरोधो भवाब्धौ च सर्वमङ्गलमङ्गलम् । विरोधो नाशबीजञ्च सर्वोपद्रवकारणम् ॥
अकर्त्तव्यो विरोधो वै दारुणैः क्षत्रियैः सह । प्रतिज्ञा चैव कर्त्तव्या मदीये वचनेश्रुते ।
आलोच्य ब्रह्मणासार्द्धं भृगुणादिव्यमन्त्रिणा । यथोचितञ्चकर्त्तव्यं सद्भिरालोचनंशुभम्

इत्युक्त्वा तं परित्यज्य कान्तं कृत्वा स्ववक्षसि ।
सा सुष्वाप चितायाञ्च पश्यन्ती तं हरिं स्मरन् ॥ ४१ ॥
ददौ चितायाञ्च स रामो भ्रातृभिश्च सह ।
पितृशिष्यैश्च सार्द्धं स विललाप च ॥ ४२ ॥

... सा सती । पुरस्तात् पर्शुरामस्य भस्मीभूता बभूव सा ।
तत्राजग्मु हरेश्वराः । रथस्थाः श्यामवर्णाश्च सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥
... वनमालिनः । किरीटिनः कुण्डलिनः पीतकौशेयवाससः ॥४५।

रथे कृत्वा रेणुकां तां गन्धाने मङ्गलात्मकाम् । जमदग्निं समादाय प्रजग्मु र्हरिसन्निधिम्
तौ दम्पती च वैकुण्ठे तस्थतुर्हरिसन्निधौ । कृत्वा दास्यं हरेः शश्वत् सर्वमङ्गलमङ्गलम्
अथ रामो ब्राह्मणैश्च भृगुणा सह नारद । पित्रोः शेषक्रियां कृत्वा ब्राह्मणेभ्योधनंददौ॥
गोभूहिरण्यवासांसि दिव्यशय्या मनोरमाम् । सुवर्णाभारसहितां जलमन्नञ्च चन्दनम् ॥
रत्नदीपं रौप्यशैलं सुवर्णासनमुत्तमम् । सुवर्णाभारसहितं ताम्बूलञ्च सुवासितम् ॥
छत्रञ्च पादुकाश्चैव फलं माल्यं मनोहरम् । फल मूलं जलञ्चैव मिष्टान्नञ्च मनोहरम् ॥
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा ब्रह्मलोकं जगाम सः ॥ ५१ ॥
ददर्श ब्रह्मलोकं स शातकुम्भविनिर्मितम् । स्वर्णप्राकारसंयुक्तं स्वर्णस्तम्भैर्विभूषितम् ॥
ददर्श तत्र ब्रह्माणं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ ५३ ॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सुरेन्द्रैः परिवेष्टितम् । विद्याधरीणां नृत्यञ्च पश्यन्तं सस्मितंमुदा
सङ्गीतं श्रुतवन्तञ्च गीयमानञ्च गायनैः । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन विराजितम् ॥५५॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम् । धातारं सर्वजगतां कर्त्तारमीश्वरं परम् ।५६।
परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम् । गुह्ययोगं प्रवदन्तं पृच्छन्तं शिष्यमण्डलम् ।५७
दृष्ट्वा तमव्ययं भक्त्या प्रणनाम भृगुः पुरः । उच्चैश्च रोदनं कृत्वा स्ववृत्तान्तमुवाच ह

भृगुरुवाच ।

महांस्त्वद्वंशजातोऽहं जमदग्निसुतो विधे ।
पितामह स्त्वमस्माकं त्वां विना कथयामि किम् ॥ ५९ ॥
मृगयामागतं भूपमुपोषन्तं पिता मम । पारणां कारयामास कपिलादत्तवस्तुना ॥
स राजा कपिलालोभात् कार्त्तवीर्य्यार्जुनः स्वयम् ।
घातयामास मत्तातमित्युक्त्वोच्चै रुरोद सः ॥ ६१ ॥
निरुध्यवाष्पंस पुनरुवाच करुणानिधिम् । मातामेऽनुगता साध्वीमां विहायजगद्गुरो
अधुनाहमनाथश्च त्वंमे माता पिता गुरुः । कर्त्ता पालयिता दाता पाहिमां शरणागतम्
आगतोऽहं तव सभां प्रमातुर्मातुराज्ञया । उपायेन जगन्नाथ मद्वैरिसूदनं कुरु ॥ ६४ ॥
राजा सच धर्मिष्ठःस दयालुर्यशस्करः । स पूज्यःस स्थिरश्रीश्चयो दीनं परिपालयेत्

उपोनीचं समं दृष्ट्वा यः प्रजां नच पालयेत् । तद्देहानुयाति लक्ष्मीः स भवेद् भ्रष्टकर्मकः
श्रुत्वाधिमपटोर्वाक्यं करुणासागरो विधिः । इत्याशुभाशिर्दानं वै वासयामास सादरम्
श्रुत्वा भृगोः प्रतिज्ञां च विस्मितश्चतुराननः । मनीय दुष्करं घोरं यद्दुर्जातिविनाशनम्
निवेशेन भवेत् सर्वमिति कृत्वा तु मानसे । उवाच पर्शुरामं तं परिणामसुखावहम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

प्रतिज्ञा दुर्लभा वत्स वसुजीविविनाशिनी । सृष्टिरेषा भगवतः सम्भवेदीश्वरेच्छया ।
सृष्टिः सृष्टा मया पुत्र क्लेशेनैवेश्वराज्ञया । सृष्टिलुप्ता प्रतिज्ञाते दारुणा करुणा परा
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्त्तुमिच्छसि मेदिनीम् । एकक्षत्रियदोषेण तज्जातिं हन्तुमिच्छसि
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रैर्नित्या सृष्टिश्चतुर्विधैः । आविर्भूता तिरोभूता हरेरेव पुनः पुनः ॥७२॥
अन्यथा त्वत्प्रतिज्ञा च भविता प्राक्तनेन च । यद्वाभ्यासेन ते कार्य्यसिद्धिर्भवितुमर्हति ॥
शिवलोकं गच्छ वत्स शङ्करं शरणं व्रज । पृथिव्यां बहवो भूपाः सन्ति शङ्करकिङ्कराः
विनाज्ञया महेशस्य को वा तान् हन्तुमीश्वरः ।
बिभ्रतः कवचं दिव्यं शक्तेश्च शङ्करस्य च ॥ ७६ ॥
उपायं कुरु यत्नेन जयबीजं शुभावहम् । उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः ॥
कृष्णस्य मन्त्रं कवचं ग्रहणं कुरु शङ्करात् । दुर्लभं वैष्णवं तेजः शैवं शाक्तं विजेष्यति ॥
गुरुस्तेजगतां नाथःशिवो जन्मनिजन्मनि । मन्त्रो मत्तोनयुक्तस्तेयोयुक्तःसभवेद्विधिः ।
निषेकाल्लभ्यते मन्त्रः कान्तः कान्ता गुरुः सुरः । स्वयमेवोपतिष्ठन्ते ये येषां तेषुनेध्रुवम्
त्रैलोक्यविजयं नाम गृहीत्वा कवचं परम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं भृगो ॥ ८१ ॥
दिव्यं पाशुपतं तुभ्यं दाता दास्यति शङ्करः । तेन दैवेन मन्त्रेण क्षत्रसङ्घं विजेष्यसि ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायण नारद संवादे गणपतिखण्डे
परशुरामंप्रति ब्रह्मवाक्यं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।

# उनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

## परशुरामस्य शिवसमीपे गमनम् तपस्योद्योगश्च ।

नारायण उवाच ।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रणम्य च जगद्गुरुम् ।
स्फीतस्तस्माद्वरं प्राप्य शिवलोकं जगाम स ॥ १ ॥

लक्षयोजनमूर्द्ध्वञ्च ब्रह्मलोकाद्विलक्षणम् । अत्यनिर्वचनीयञ्च वायवाधारं मनोहरम् ॥
वैकुण्ठं दक्षिणे यस्य गौरीलोकश्च वामतः । यदधो ध्रुवलोकश्च सर्वलोकात् परःस्मृतः
तेषामूर्द्धञ्च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनम् । अतऊर्द्ध्वं न लोकश्च सर्वोपरिचसस्मृतः
मनोयायी स योगीन्द्रः शिवलोकं ददर्श ह । उपमानोपमेयाभ्यां रहितं महदद्भुतम् ॥५॥
योगीन्द्राणाञ्च प्रवरैः सिद्धविद्याविशारदैः । कोटिकल्पतपःपूतैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् ॥
वेष्टितं कल्पवृक्षाणां समूहैर्वाञ्छितप्रदैः । समूहैः कामधेनूनामसंख्यानां विराजितम् ॥
पारिजाततरूणाञ्च वनराजिविराजितम् । पुष्पोद्यानायुतैर्युक्तं सदाचातिसुशोभितम् ॥
मणीन्द्रसाररचितैः शोभितैर्मणिवेदिभिः । राजमार्गशतैर्दिव्यैरभ्यन्तरविभूषितम् ॥६॥
मणीन्द्रसारनिर्माणशतकोटिगृहैर्युतम् । नानाचित्रविचित्राढ्यैर्मणीन्द्रकलसोज्ज्वलैः ।
तन्मध्यदेशे रम्ये च ददर्श शङ्करालयम् । मणीन्द्रसारनिर्माणप्राकारं सुमनोहरम् ॥११॥
अत्यूर्द्ध्वमम्बरस्पर्शि क्षीरनीरनिभं परम् । षोड़शद्वारसंयुक्तं शोभितं शतमन्दिरैः ।१२
अमूल्यरत्नरचितै रत्नसोपानभूषितैः । रत्नस्तम्भकपाटैश्च हीरकेण परिष्कृतैः ॥ १३ ॥
माणिक्यजालमालाभिः सद्रत्नकलसोज्ज्वलैः । नानाचित्रविचित्रेण चित्रितैःसुमनोहरैः
आलयस्य पुरतस्तत्र सिंहद्वारं ददर्श सः । रत्नेन्द्रसारनिर्माणकपाटैश्च विराजितैः ॥१५॥
शोभितं वेदिकाभिश्च वाह्याभ्यन्तरतः सदा । रचिताभिः पद्मरागैर्महामरकतैर्गृहम् ॥१६
नानाप्रकारचित्रेण चित्रितं सुमनोहरम् । द्वारे नियुक्तौ ददर्श द्वारपालौ भयङ्करौ ॥१७॥
महाकरालदन्तास्यौ विकृतौ रक्तलोचनौ । दग्धशैलप्रतीकाशौ महाबलपराक्रमौ ॥१८॥

विभूतिभूषिताङ्गौ च व्याघ्रचर्माम्बरौ वरौ। पिङ्गलाक्षौ विशालाक्षौ जटिलौ च त्रिलोचनौ॥
त्रिशूलपट्टिशधरौ ज्वलन्तौ ब्रह्मतेजसा। तौ दृष्ट्वा मनसा भीतस्त्रस्तः किञ्चिदुवाच ह॥
विनयेन विनीतश्च दुर्विनीतौ महाबलौ। आत्मनः सर्ववृत्तान्तं कथयामास तत्पुरः॥२१॥
विप्रस्य वचनं श्रुत्वा कृपायुक्तौ बभूवतुः। गृहीत्वाज्ञां च द्वारा शङ्करस्य महात्मनः॥२२॥
प्रवेष्टुमाज्ञां ददतुरीश्वरानुचरौ वरौ। भृगुस्तदाज्ञामादाय प्रविवेश हरिं स्मरन्॥२३॥

प्रत्येकं षोडशद्वारान्ददर्श सुमनोहरान्।
द्वारपालान्नियुक्तांश्च नानाचित्रविचित्रतान्॥२४॥
दृष्ट्वा तान्महदाश्चर्यं ददर्श शूलिनः सभाम्।
नानासिद्धगणाकीर्णां महर्षिगणसेविताम्॥२५॥

पारिजातप्रसूनाक्तवायुना सुरभीकृताम्। ददर्श तत्र देवेशं शङ्करं चन्द्रशेखरम्॥२६॥
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं परम्। विभूतिभूषिताङ्गं तं नागयज्ञोपवीतिनम्।

रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्॥२७॥

महाशिवं शिवकरं शिवबीजं शिवाश्रयम्। आत्मारामं पूर्णकामं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्॥२८॥

शश्वज्ज्योतिःस्वरूपं च लोकानुग्रहविग्रहम्। धृतवन्तं जटाजालं दक्षकन्याविभूषितम्॥
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥

गुरुं ब्रह्म प्रवोचन्तं शिष्येभ्यस्तत्त्वमुद्रया।
स्तूयमानं च योगीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः परिसेवितम्।
पार्षदप्रवरैः शश्वत् सेवितं श्वेतचामरैः॥३२॥

ध्यायमानं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं परम्। स्वेच्छामयं गुणातीतं जरामृत्युहरं परम्॥३३॥
ज्योतीरूपं च सर्वाद्यं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्। ध्यायन्तं परमानन्दं पुलकाञ्चितविग्रहम्।

सुस्वरं साश्रुनेत्रं च उद्गायन्तं गुणार्णवम्॥३४॥

महेन्द्रैश्च रुद्रगणैः क्षेत्रपालैश्च वेष्टितम्। मूर्ध्ना ननाम तं दृष्ट्वा पर्शुरामोऽतिसादरम्॥
तद्वामे कार्तिकेयं च दक्षिणे च गणेश्वरम्। नन्दीश्वरं महाकालं वीरभद्रं च तत्पुरः।

क्रोडे ददर्श कान्तां तां गौरीं शैलेन्द्रकन्यकाम् ॥३६॥
ननाम सर्वान्मूर्ध्ना स भक्त्या च परया मुदा ।
दृष्ट्वा हरं परं सारं तं स्तोतुमुपचक्रमे ॥३७॥
सगद्गदपदं दीनं साश्रुनेत्रोऽतिकातरः । पुटाञ्जलियुतः शान्तः शोकार्त्तःशोकनाशनम् ॥

परशुराम उवाच ।

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षमः ।
अक्षराक्षरबीजञ्च किं वा स्तौमि निरीहकम् ॥३९॥
न योजनांकर्तुमीशोदेवेशंस्तौमिमूढधीः । वेदानशक्तायंस्तोतुंकस्त्वांस्तोतुमिहेश्वरः ॥
बुद्धेर्वाङ्मनसोः पारं सारात्सारं परात्परम् ।
ज्ञानबुद्धेरसाध्यञ्च सिद्धं सिद्धैर्निषेवितम् ॥४१॥
यमाकाशमिवासीनमनन्तमादिमव्ययम् । विश्वतन्त्रमतन्त्रञ्च स्वतन्त्रं तन्त्रबीजकम् ॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम् ।
त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम् ॥४३॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् । स्वप्नादृष्टञ्चभक्तानांपश्यामिचक्षुषाधुना ॥
शक्रादयः सुरगणाः कलया यस्य सम्भवाः । चराचराः कलांशेन तंनमामिमहेश्वरम् ॥
यं भास्करस्वरूपञ्च शशिरूपं हुताशनम् । जलरूपंवायुरूपं तं नमामि महेश्वरम् ॥४६॥
अनन्तविश्वसृष्टीनां संहर्त्तारं भयङ्करम् । क्षणेन लीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम् ॥
यः कालः कालकालश्च कालबीजञ्चकालजः । अजःप्रजश्चयःसर्वस्तंनमामि महेश्वरम् ॥
इत्येवमुक्त्वा स भृगुः पपात चरणाम्बुजे । आशिषञ्च ददौ तस्मै सुप्रसन्नोबभूव सः ॥
जामदग्न्यकृतं स्तोत्रं यः पठेद्भक्तिसंयुतः । सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे
शिवस्तोत्रकथनं नामोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## त्रिंशत्तमोऽध्यायः

### शिवशिवा समीपे परशुरामस्य वरप्रार्थनम् ।

शङ्कर उवाच ।

क त्वं वटो कस्य पुत्रः क वासः स्तवनं कथम् ।
किं वा तेऽहं करिष्यामि वाञ्छितं वद साम्प्रतम् ॥१॥

पार्वत्युवाच ।

शोकाकुलं त्वां पश्यामि विमनस्कं सुविस्मितम् ।
वयसातिशिशुं शान्तं गुणेन गुणिनां वरम् ॥२॥

भृगुरुवाच ।

जमदग्निसुतोऽहञ्च भृगुवंशसमुद्भवः । माता मे रेणुका साध्वी परशुरामश्च नामतः ॥३॥
कीर्णाहि मां दयासिन्धो विपापत्रेण किङ्करम् । मदीशशरणापन्नं रक्ष मां दीनवत्सल ॥४॥
मृगयामागतं भूपमुपोष्य पिता मम । चकारातिथ्यमानीय कपिलादत्तवस्तुना ॥ ५ ॥
राजा तं कपिलालोभाद् घातयामास मन्दधीः ।
कपिला तं मृतं दृष्ट्वा गोलोकञ्च जगाम सा ॥६॥
मातानुगमनं चक्रे अनाथोऽहञ्च साम्प्रतम् ।
त्वं मे पिता शिवा माता रक्ष मां पुत्रवत् प्रभो ॥७॥
मया कृता प्रतिज्ञा च शोकेनैवातिदुष्करा । त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति ॥
कार्तवीर्यं हनिष्यामि समरे तातघातकम् । इत्येवं परिपूर्णं मे भगवान् कर्तुमर्हति ॥९॥
ब्राह्मणस्य वचः श्रुत्वा दृष्ट्वा दुर्गामुखं हरः । बभूवानम्रवक्त्रश्च सस्मितः शुष्कतालुका ॥

पार्वत्युवाच ।

[illegible] विप्र [illegible] निर्भूपां कर्तुमिच्छसि । त्रिःसप्तकृत्वः कोपेन [illegible] ॥
[illegible] निःशस्त्र [illegible] कार्तवीर्यं [illegible] । [illegible] पराजयः ॥
[illegible] धर्मे [illegible] । [illegible] मम मे [illegible] पिता ॥११॥

तैर्मन्त्रञ्च स्तवनं ध्यायते स दिवानिशम्। को वा शक्नोतितंहन्तुंनपश्यामीहभूतले ॥
रे विप्र गृहं गच्छ किङ्करिष्यतिशङ्करः। अन्येभूपाश्चमद्भृत्याःकाभीस्तेषांमयिस्थिते ॥

भद्रकाल्युवाच।

रे विप्रवटो जाल्म निर्भूपान्कर्त्तुमिच्छसि। यथाहिवामनश्चन्द्रं करेणाहर्त्तुमिच्छति ॥
नायकृतः पुण्यान् महाबलपराक्रमान्। दिगम्बरसहायेनमद्भृत्यान्हन्तुमिच्छसि ॥
तयोर्वचनं श्रुत्वा रुरोदोच्चैश्च शोकतः। सहसा पुरतस्तेषां प्राणांस्त्यक्तुंसमुद्यतः ॥
स्य रोदनं श्रुत्वाशङ्करःकरुणानिधिः। पश्यन्दुर्गाञ्चकालीञ्चकृत्वातिविनयंविभुः ॥
रनुमतिं प्राप्य सर्वेषां भक्तवत्सलः। जमदग्निसुतं सद्यः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २० ॥

शङ्कर उवाच।

अद्य प्रभृति हे वत्स त्वं मे पुत्रसमो महान्।
दास्यामि मन्त्रं गुह्यं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥२१॥

भूतञ्च कवचं दास्यामि परमाद्भुतम्। लीलया मत्प्रसादेन कार्त्तवीर्य्यं हनिष्यसि ॥
त्रःकृत्वो निर्भूपां करिष्यसि महीं द्विज। जगत्ते यशसा पूर्णंभविष्यतिनसंशयः ॥
था शङ्करस्तस्मै ददौ मन्त्रं सुदुर्लभम्। त्रैलोक्यविजयं नामकवचंपरमाद्भुतम् ॥
पूजाविधानञ्च पुरश्चरणपूर्वकम्। मन्त्रसिद्धेरनुष्ठानं यथावन्नियमक्रमम् ॥ २५ ॥
स्थानंकालसंख्यं कथयामास नारद। वेदवेदाङ्गनिखिलं पाठयामास तत्क्षणम् ॥
गपाशं पाशुपतं ब्रह्मास्त्रञ्च सुदुर्लभम्। वह्नि नारायणास्त्रञ्च वायव्यं वारुणन्तथा ॥
गान्धर्वं गारुडञ्चैव जृम्भणास्त्रं तथैव च। गदां शक्तिं तथा पर्शुं शूलमव्यर्थमुत्तमम् ॥

नानाप्रकारशस्त्रास्त्रमन्त्रञ्च विधिपूर्वकम्।
शस्त्रास्त्राणाञ्च संहारं चिक्षेप मक्षयंधनुः ॥२६ ॥

त्मरक्षणसन्धानं संग्रामविजयक्रमम्। मायायुद्धञ्च विविधं हुङ्कारं मन्त्रपूर्वकम् ॥३०
क्षणञ्च ससैन्यानां परसैन्यविमर्दनम्। नानाप्रकारमतुल्मुपायं रणसङ्कटे।
संहारमोहिनीं विद्यां जन्ममृत्युहरां हरः ॥३१॥

स्थित्वाशिरंगुरोर्वासेसर्वविद्यांविवोध्यसः । तीर्थंकृत्वामन्त्रसिद्धिंतांधनत्याजगामसः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे परशुरामाय नानाविधास्त्रप्राप्तिर्नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

### तुष्टेन शिवेन स्वकवचादि दानम् ।

नारद उवाच ।

*भगवन् श्रोतु मिच्छामि किं मन्त्रं भगवान् हरः ।*
कृपया परशुरामाय किं स्तोत्रं कवचं ददौ ॥१॥
को वास्य मन्त्रस्याराध्यः किं फलं कवचस्य च ।
स्तवनस्य फलं किं वा तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥२॥

नारायण उवाच ।

मन्त्राराध्योहिभगवान्परिपूर्णतमःस्वयम् । गोलोकनाथःश्रीकृष्णोगोपगोपीश्वरः प्रभुः
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् । स्तवराजं महापुण्यं विभूतियोगसम्भवम् ॥
मन्त्रकल्पतरुं नाम सर्वकामफलप्रदम् । प्रददौ पर्शुरामाय रत्नपर्वतसन्निधौ ॥५
स्वयंप्रभानदीतीरे पारिजातवनान्तरे । आश्रमे लोकदेवस्य माधवस्य च सन्निधौ ॥६

महादेव उवाच ।

वत्सागच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भवम् । पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचग्रहणंकुरु ।
शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम् । त्रैलोक्यविजयंनामश्रीकृष्णस्य जयावहम् ।
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे । रासमण्डलमध्येचमह्यंवृन्दावने वने ॥ ९ ॥
अति गुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । पुण्यात् पुण्यतरञ्चैव परं स्नेहाद्ददामि ते ॥
यद्धृत्वा पठनाद्देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी । शुम्भं निशुम्भं महिषं रक्तबीजं जघानह ॥११॥

यद्धृत्वाऽहञ्च जगतां संहर्त्ता सर्वतत्त्ववित । अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमवलीलया ॥

यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम् ।

यद्धृत्वा भगवान् शेषो विधत्ते विश्वमेव च ॥१३॥

यद्धृत्वाकूर्मराजश्चशेषंधत्तेऽवलीलया । यद्धृत्वाभगवान्वायुर्विश्वाधारोविभुःस्वयम्

यद्धृत्वा वरुणः सिद्धः कुवेरश्च धनेश्वरः । यद्धृत्वा पठनादिन्द्रोदेवानामधिपःस्वयम्

यद्धृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः । यद्धृत्वा पठनाचन्द्रो महाबलपराक्रमः

अगस्त्यः सागरान् सप्त यद्धृत्वा पठनात् पपौ ।

चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम् ॥१७॥

यद्धृत्वा पठनाद्देवी सर्वाधारा वसुन्धरा । यद्धृत्वा पठनात् पूता गङ्गाभुवनपावनी ॥

यद्धृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः । सर्वविद्याधिदेवीसा यच्चधृत्वा सरस्वती

यद्धृत्वा जगतां लक्ष्मीरन्नदात्री परात्परा । यद्धृत्वा पठनाद्वेदान् सावित्री प्रसुषाव च

वेदाश्च धर्मवक्तारो यद्धृत्वा पठनाद्भृगो । यद्धृत्वापठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः

सनत्कुमारो भगवान् यद्धृत्वा ज्ञानिनां वरः ॥२१॥

दातव्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने । शठाय परशिष्याय दत्त्वामृत्युमवाप्नुयात्

त्रैलोक्यविजयास्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्चगायत्रीदेवोरासेश्वरःस्वयम्

त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः । परात्परञ्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्

प्रणवो मे शिरः पातुश्रीकृष्णायनमःसदा । सदापायात्कपालंकृष्णायस्वाहेतिपञ्चाक्षरः

कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्णस्वाहेति तारकम् ।

हराय नम इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा ॥२६॥

ओं गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु सन्ततम् ।

गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा ॥२७॥

ओं नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम ।

ओं कृष्णाय नमः शश्वत् पातु मेऽधरयुग्मकम् ॥२८॥

ओं गोविन्दाय स्वाहेति दन्तावलिं मे सदावतु ।

मन्त्रसिद्धस्य पुंसश्च विश्वं करतलं मुने । शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्त्तुमीश्वरः ॥
पाञ्चभौतिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः ॥ ५ ॥
तस्य संस्पर्शमात्रेण पादपङ्कजरेणुना । पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुन्धरा ॥६॥
ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणुमन्मुखतो मुने । सर्वेश्वरस्य कृष्णस्य भक्तिमुक्तिप्रदायि च ॥
नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यं मनोहरम् ॥८॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थं तं रत्नभूषणभूषितम् ॥ ९॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पीताम्बरधरं वरम् । वीक्ष्यमाणञ्च गोपीभिः सस्मिताभिश्च सन्ततम्
प्रफुल्लमालतीमालावनमालाविभूषितम् । दधतङ्कुन्दपुष्पाढ्यां चूडां चन्द्रकचर्चिताम्
प्रभां क्षिपन्तीं नभसश्चन्द्रतारान्वितस्य च । रत्नभूषणसर्वाङ्गं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च देवेन्द्रैः परिसेवितम् । ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च श्रुतिभिश्च स्तुतं भजे ॥

ध्यानेनानेन तं ध्यात्वा चोपचाराणि षोडश ।
दत्त्वा भक्त्या च संपूज्य सर्वज्ञत्वं लभेत् पुमान् ॥ १४ ॥

आद्यं पाद्यमासनञ्च वसनं भूषणं तथा । गामर्घ्यं मधुपर्कञ्च यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ॥ १५ ॥
धूपदीपौ च नैवेद्यं पुनराचमनीयकम् । नानाप्रकारपुष्पञ्च ताम्बूलञ्च सुवासितम् ॥१६
चन्दनागुरुकस्तूरीदिव्यतल्पं मनोहरम् । भक्त्या भगवते देयं माल्यं पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥
ततः षडङ्गं संपूज्य पश्चात् सम्पूजयेद्गणम् । श्रीदामानं सुदामानं वसुदामानमेव च ॥१८
हरिभानुं चन्द्रभानुं सूर्यभानुं सुभानुकम् । पार्षदप्रवरान् सप्त पूजयेद्भक्तिभावतः ॥१९
गोपीश्वरीं राधिकाञ्च मूलप्रकृतिमीश्वरीम् । कृष्णशक्तिं कृष्णपूज्यां पूजयेद्भक्तिपूर्वकम्
गोपगोपीगणं शान्तं मां ब्रह्माणञ्च पार्वतीम् । लक्ष्मीं सरस्वतीं पृथ्वीं सर्वदेवं सविग्रहम्
देवषट्कं समभ्यर्च्य पुनः पञ्चोपचारतः । पश्चादेवं क्रमेणैव श्रीकृष्णं पूजयेत् सुधीः ॥
गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् । समभ्यर्च्य देवषट्कमिष्टदेवञ्च पूजयेत् ।

गणेशं विघ्ननाशाय व्याधिनाशाय भास्करम् ।
आत्मनः शुद्धये वह्निं श्रीविष्णुं मुक्तिहेतवे ॥ २४ ॥

शर्वं दुर्गां परमैश्वर्यहेतवे । संपूजने फलमिदं विपरीतमपूजने ॥ २५ ॥

ततः कृत्वा परीहारमिष्टदेवञ्च भक्तितः । स्तोत्रञ्च सामवेदोक्तं पठेद्भक्त्या च तच्छृणु ॥

महादेव उवाच ।

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम् । निर्लिप्तं परमात्मानं नमामि सर्वकारणम् ॥
स्थूलात्स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमं परम् । सर्वदृश्यमदृश्यञ्च स्वेच्छाचारंनमाम्यहम्
साकारञ्च निराकारं सगुणं निर्गुणं प्रभुम् । सर्वाधारञ्च सर्वञ्च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम्
अतीवकमनीयञ्च रूपं निरुपमं विभुम् । करालरूपमत्यन्तं बिभ्रतं प्रणमाम्यहम् ॥३०॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणः । फलञ्च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥

स्रष्टा पाता च संहर्त्ता कलया मूर्त्तिभेदतः ।
नानामूर्त्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम् ॥ ३२ ॥

स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान् । तयोः परं स्वयं शश्वत् तंनमामिपरात्परम्
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपंयोबिभर्त्ति स्वमायया । स्वयं माया स्वयंमायी योदेवस्तंनमाम्यहम्
तारणं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम् । धारणं सर्वविश्वानां सर्वबीजं नमाम्यहम् ॥
तेजस्विनां रविर्योहि सर्वजातिषु ब्राह्मणः । नक्षत्राणाञ्च यश्चन्द्रस्तं नमामिजगत्प्रभुम्
रुद्राणां वैष्णवानाञ्च ज्ञानिनां योहिशङ्करः । नागानां योहि शेषश्च तंनमामिजगत्पतिम्
प्रजापतीनां यो ब्रह्मासिद्धानांकपिलः स्वयम् । सनत्कुमारो मुनिषुतंनमामिजगद्गुरुम्
देवानां योहि विष्णुश्च देवीनांप्रकृतिःस्वयम् । स्वायम्भुवो मनूनांयोमानवेषुचवैष्णवः

नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम् ॥ ३६ ॥

ऋतूनां योवसन्तश्च मासानांमार्गशीर्षकः । एकादशी तिथीनाञ्च नमामि सर्वरूपिणीम्
सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः । वसुन्धरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम्
पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम् । वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम्
पुष्पाणां पारिजातश्च शस्यानां धान्यमेव च । अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपंनमाम्यहम्
ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम् । कामधेनुश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥
तैजसानां सुवर्णञ्च धान्यानां यवएव च । यः केशरी पशूनाञ्च वररूपं नमाम्यहम् ४१॥
यक्षाणाञ्च कुबेरो यो ग्रहाणाञ्च बृहस्पतिः । दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामिपरंवरम्

वेदाङ्गश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती । अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम्
मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम् ।
इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम् ॥ ५८ ॥
सुदर्शनञ्च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवो ज्वरः । तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यञ्च नमाम्यहम्
निरोधश्च बलवतां मनश्च शीघ्रगामिनाम् । कालः कलयतां योऽहि तं नमामि विलक्षणम्
ज्ञानदाता गुरूणाञ्च मातृरूपश्च बन्धुषु । मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम् ॥
शिल्पिनां विश्वकर्मा यः कामदेवश्च रूपिणाम् । पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यन्तं नमाम्यहम्
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च । शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम् ॥
धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः । धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं तं नमाम्यहम्
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु । शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम् ॥
क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसाञ्च यः । गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम्
क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणाञ्च पावकः । पुण्यदानाञ्च यः स्तोत्रं तंनमामि शुभप्रदम्
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम् । गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम्
तेजो रूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान् । सर्वानिर्वचनीयञ्च तं नमामि स्वयं विभुम्
सर्वाधारेषु यो वायुर्यथात्मा नित्यरूपिणाम् ।
आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम् ॥ ६० ॥
वेदानिर्वचनीयं यन्न स्तोतुं पण्डितः क्षमः । यदनिर्वचनीयञ्च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः॥
वेदा नशक्तायंस्तोतुं जडीभूतासरस्वती । तञ्च वाङ्मनसोः पारंकोविद्वान्स्तोतुमीश्वरः
शुद्धतेजःस्वरूपञ्च भक्तानुग्रहविग्रहम् । अतीवकमनीयञ्च श्यामरूपं नमाम्यहम् ॥ ६३॥
द्विभुजं मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा । शश्वद्गोपाङ्गनाभिश्च वीक्ष्यमाणंनमाम्यहम्
राधया दत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च तमीशं प्रणमाम्यहम् ॥६५
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः । पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम् ॥ ६६ ॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम् । रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम्।
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते । विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम् ॥६८॥

परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। सत्यं ब्रह्मस्वरूपञ्च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्।
श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसन्ध्यं यःपठेन्नरः। धर्मार्थकाममोक्षाणां सदाताभारतेभवेत्
हरिदास्यं हरौभक्तिलभेत् स्तोत्रप्रसादतः। इह लोके जगत्पूज्योविष्णुतुल्योभवेद्ध्रुवम्
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते यातिहरेःपदम्। तेजसा यशसा भाति यथासूर्य्योमहीतले
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः सभवेन्नात्रसंशयः। अरोगीगुणवान्विद्वान् पुत्रवान्धनवान्सदा
षड्भिज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद्ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसम्पदा॥
कल्पवृक्षसमः शश्वद्भवेत् कृष्णप्रसादतः॥ ७४॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं त्वं वत्स गच्छ पुष्करम्।
तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात् प्राप्स्यसि वाञ्छितम्॥ ७५॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वींयथासुखम्। ममाशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्यप्रसादतः
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे स्तवप्रदानं
नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः।

## त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

### परशुरामस्य तपश्चरणम्।

नारायण उवाच।

शिवं प्रणम्यसभृगुर्दुर्गां कालीं मुदान्वितः। गत्वा पुष्करतीर्थञ्च मन्त्रसिद्धिञ्चकारह
स बभूवनिराहारो मासं भक्तिसमन्वितः। ध्यायन्कृष्णपदाम्भोजं वायुरोधञ्चकारसः
ददर्श चक्षुरुन्मील्य गगनं तेजसावृतम्। दिशो दश द्योतयन्तं समाच्छन्नदिवाकरम्॥३
तेजोमण्डलमध्यस्थं रत्नयानं ददर्श ह। ददर्श तत्र पुरुषमतीव सुन्दरं परम्॥ ४॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारकम्। मूर्द्ध्ना प्रणम्य दण्डवद्वरं वव्रे तमीश्वरम्॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति। पदारविन्दे सुदृढ़ां तां भक्तिमनपायिनीम्

स्यं सुदुर्लभं शश्वत् त्वं पादाब्जे च देहि मे । कृष्णस्तस्मै वरंदत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत
गुः प्रणम्य भवनं जगाम तत्परात्परम् । पस्पन्द दक्षिणाङ्गञ्च परं मङ्गलसूचकम् ॥८॥
च्छाप्रतीतिजननं सुस्वप्नञ्च ददर्श ह । मनः प्रसन्नं स्फीतञ्च तद्बभूव दिवानिशम्

संभाष्य स्वजनं सर्वं गृहे तस्थौ मुदान्वितः ॥ ९ ॥
स्वशिष्यान् पितृशिष्यांश्च भ्रातृवर्गांश्च बान्धवान् ।
आनीयानीय विविधान् मन्त्रांश्च स चकार ह ॥ १० ॥

र्वापर्य्यं स्ववृत्तान्तं तानेवोक्त्वा शुभक्षणे । तैरेव सार्द्धं बलवान् बभूव गमनोन्मुखः ॥
दर्श मङ्गलं रामः शुश्राव जयसूचकम् । बुबुधे मनसा सर्वं स्वजयं वैरिसंक्षयम् ॥१२॥
त्राकाले च पुरतः शुश्राव सहसा मुनिः । हरिशब्दं सिंहशब्दं घण्टादुन्दुभिवादनम् ॥
आकाशवाणीं सङ्गीतं जयस्ते भवितेति च । नवेङ्गितञ्च कल्याणं मेघशब्दं जयावहम् ॥
कार यात्रां भगवान् श्रुत्वैवं विविधं शुभम् । ददर्श पुरतो विप्रवन्दिदैवज्ञभिक्षुकान् ।
लत्प्रदीपं बिभ्रन्तीं पतिपुत्रवतीं सतीम् । पुरो ददर्श स्मेरास्यां नानाभूषणभूषिताम् ॥
वंशिवांपूर्णकुम्भं चासञ्च नकुलन्तथा । गच्छन्ददर्श रामश्च यात्रामङ्गलसूचकम् ॥१७॥
ष्णसारं गजं सिंहं तुरगं गण्डकं द्विपम् । चमरीं राजहंसञ्च चक्रवाकं शुकं पिकम् ॥
यूरं खञ्जनं चैव शङ्खचिलं चकोरकम् । पारावतं बलाकाञ्च कारण्डं चातकं वटम् ॥

सौदामिनीं शक्रचापं सूर्य्यं सूर्य्यशोभां शुभम् ।
सद्योमांसं सजीवञ्च मत्स्यं शङ्खं सुवर्णकम् ॥ २० ॥

णिक्यं रजतं मुक्तां मणीन्द्रञ्च प्रवालकम् । दधि लाजं शुक्लधान्यं शुक्लपुष्पञ्च कुङ्कुमम्
र्णं पताकां छत्रञ्च दर्पणं श्वेतचामरम् । धेनुं वत्सप्रयुक्ताञ्च रथस्थं भूमिपं तथा ॥२२
दुग्धमाज्यं तथा पूगमन्नं पायसन्तथा । शालग्रामं पक्वफलं स्वस्तिकं शर्करां मधु ॥
मार्जारञ्च वृषेन्द्रञ्च मेषं पर्वतमूषिकम् । मेघाच्छन्नस्य च रवेरुदयं चन्द्रमण्डलम् ।२४।

कस्तूरीव्यजनं तोयं हरिद्रां तीर्थमृत्तिकाम् ।
सिद्धार्थं सर्षपं दूर्वां विप्रबालञ्च बालिकाम् ॥ २५ ॥

मृगं वेश्याञ्च भ्रमरं कर्पूरं पीतवाससम् । गोमूत्रं गोपुरीषञ्च गोधूलिं गोपदाङ्कितम् ॥

गोष्ठं गवां धर्मरम्यां गोशालां गोगतिं शुभाम्।
भूषणं देवप्रतिमां ज्वलदग्निं महोत्सवम् ॥ २७ ॥
प्रञ्च स्फटिकं वैद्यं सिन्दूरं माल्यचन्दनम्। गन्धञ्च हीरकं रत्नं ददर्श दक्षिणे शुभम्।
सुगन्धिवायोराघ्राणं प्राप विप्राशिषं शुभम् ॥ २६ ॥
वेवं मङ्गलं ज्ञात्वा प्रययौ स मुदान्वितः। अस्तं गते दिनकरे नर्मदातीरसन्निधौ ॥
क्षयवटं दिव्यं ददर्श सुमनोहरम्। अत्यूदर्ध्वं विस्तृतमति पुण्याश्रमपदं परम् ॥३१॥
रस्यतपसः स्थानं सुगन्धिवायुनान्वितम्। कार्त्तवीर्यार्जुनाभ्यासे तत्रतस्थौगणैःसह
वाप पुष्पशय्यायां किङ्करैः परिसेवितः। निद्रां ययौ परिश्रान्तः परमानन्दसंयुतः
निशातीते च सभृगुश्चारु स्वप्नं ददर्श ह।
न चिन्तितं यन्मनसा वायुपित्तकफं विना ॥ ३४ ॥
गजाश्वशैलप्रासादगोवृक्षफलितेषु च। आरुह्यमाणमात्मानं रुदन्तं कृमिभक्षितम् ॥३५॥
आरुह्यमाणमात्मानं नौकायां चन्दनोक्षितम्। धृतवन्तं पुष्पमालां शोभितं पीतवाससा
विण्मूत्रोक्षितसर्वाङ्गं वशापूयसमन्वितम्। वीणां वरां वादयन्तमात्मानञ्च ददर्श ह ॥
विस्तीर्णपद्मपत्रैश्च स्वं ददर्श सरित्तटे। दध्याज्यमधुसंयुक्तं भुक्तवन्तञ्च पायसम् ॥
भुक्तवन्तञ्च ताम्बूलं लभन्तं ब्राह्मणाशिषम्। फलपुष्पप्रदीपञ्च पश्यन्तं स्वं ददर्श ह ॥
परिपक्कफलं क्षीरमुष्णान्नं शर्करान्वितम्। स्वस्तिकं भुक्तवन्तं स्वं ददर्श च पुनः पुनः ॥
जलौकसा वृश्चिकेन मीनेन भुजगेन च। भक्षितं भीतमात्मानं पलायन्तं ददर्श सः ॥
तो ददर्श चात्मानं मण्डलं चन्द्रसूर्ययोः। पतिपुत्रवतीं नारीं पश्यन्तं सस्मितंद्विजम्
सुवेशया कन्यकया सस्मितेन द्विजेन च। ददर्श श्लिष्टमात्मानं तुष्टेन परितुष्टया ॥४३
फलितं पुष्पितं वृक्षं देवताप्रतिमां नृपम्। गजस्थञ्च रथस्थञ्च पश्यन्तं स्वं ददर्श ह
तिवस्त्रपरिधानां रत्नालङ्कारभूषिताम्। विशन्तीं ब्राह्मणीं गेहं पश्यन्तं स्वं ददर्श ह ॥
द्धञ्च स्फटिकं श्वेतमाल्यं मुक्ताञ्च चन्दनम्। सुवर्णं रजतं रत्नं पश्यन्तं स्वं ददर्श ह।
जं वृषञ्च सर्पञ्च श्वेतञ्च श्वेतचामरम्। नीलोत्पलं दर्पणञ्च भार्गवःस्वं ददर्श ह ॥
रस्थं नगरस्थं मालतीमाल्यभूषितम्। रत्नसिंहासनस्थं स्वं भृगुः स्वप्ने ददर्श ह ॥

पद्मश्रेणीं पूर्णकुम्भं दधि लाजं घृतं मधु । पर्णछत्रं छत्रिणञ्च भृगुः स्वप्ने ददर्श ह ॥
चक्रपङ्क्तिं हंसपङ्क्तिं कन्यापङ्क्तिं मनान्विताम् । पूजयन्तीं घटं शुभंभृगुःस्वप्नेददर्श ह
मण्डपस्थं द्विजगणं पूजयन्तं हरं हरिम् । ज्योऽग्निधन्युतयन्तं तं भृगुः स्वप्नेददर्श ह
सुधावृष्टिं पर्णवृष्टिं फलवृष्टिञ्च शाश्वतीम् । पुष्पचन्दनवृष्टिञ्च भृगुः स्वप्ने ददर्श
सद्यो मांसं जीवमत्स्यं मयूरं श्वेतखञ्जनम् । सरोवरञ्च तीर्थानि भृगुः स्वप्ने ददर्श
पारावतं शुकं चासं शङ्खचिलञ्च चातकम् । व्याघ्रं सिंहञ्च सुरभींभृगुः स्वप्ने ददर्श
गोरोचनां हरिद्राञ्च शुक्लधान्याचलं धनम् । उपलद्धि तथा दूर्वां भृगुः स्वप्नेददर्श
देवालयसमूहञ्च शिवलिङ्गञ्च पूजितम् । अर्चितां मृण्मयीं शैवीं भृगुः स्वप्ने ददर्श
यवगोधूमचूर्णानां पिष्टानि लड्डुकानि च । भृगुर्ददर्श स्वप्ने च बुभुजे च पुनः पुनः
दिव्यवस्त्रपरीधाना रत्नभूषणभूषिताः । अगम्यागमनं स्वप्ने चकार भृगुनन्दनः ॥५४
ददर्श नर्त्तकीं वेश्यां रुधिरञ्च सुरां पपौ । रुधिरोक्षितसर्वाङ्गः स्वप्ने चभृगुनन्दनः
पक्षिणां पीतवर्णानां मानुषाणाञ्च नारद । मांसानि बुभुजे रामो हृष्टः स्वप्नेऽरुणोदं
अकस्मान्निगडैर्बद्धं क्षतं शस्त्रेण स्वं भृगुम् । दृष्ट्वा च बुबुधेप्रातः समुत्तस्थौहरिस्मर
अतीव हृष्टः स्वप्नेन प्रातःकृत्यञ्चकार सः । मनसा बुबुधे सर्वं विजेष्यामि रिपुं ध्रुव
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे परशुरामस्वप्नदर्श
नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

### परशुरामेण राजसमीपे दूतप्रेषणम् ।

नारायण उवाच ।

स प्रातराह्निकं कृत्वा समालोच्य च तैः सह । दूतंप्रस्थापयामास कार्त्तवीर्याश्रमंभृगु
स दूतः शीघ्रमागत्य वसन्तं राजसंसदि । वेष्टितं सचिवैः सार्द्धमुवाच नृपतीश्वरम् ।

रामदूत उवाच ।

नर्मदातीरसान्निध्ये न्यग्रोधाक्षयमूलके। स भृगुर्भ्रातृभिः सार्द्धं त्वं तत्र गन्तुमर्हसि ॥
युद्धं कुरु महाराज ज्ञातिभिर्ज्ञातिभिः सह। त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यतिमहीमिति
इत्युक्त्वा रामदूतश्च जगाम रामसन्निधिम्। राजा विधाय सन्नाहं समरं गन्तुमुद्यतः।
गच्छन्तं समरं दृष्ट्वा प्राणेशं सा मनोरमा। तमेव वारयामास वासयामास सन्निधौ ॥
राजा मनोरमां दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणः। तामुवाच सभामध्ये वाक्यं मानसिकं मुने ॥

कार्त्तवीर्य्यार्जुन उवाच ।

मामेवाह्वयते कान्ते जमदग्निसुतो महान्। स तिष्ठन्नर्मदातीरे रणाय भ्रातृभिः सह ॥
सम्प्राप्य शङ्कराच्छस्त्रं मन्त्रञ्च कवचं हरेः।
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कर्त्तुमिच्छति मेदिनीम् ॥ ६ ॥
आन्दोलयति मे प्राणान्मनःसंक्षुभितं मुहुः। शश्वत्स्फुरति वामाङ्गं दुःस्वप्नंशृणुप्रिये
तैलाभ्यङ्गितमात्मानमदर्शं गर्दभोपरि। बिभ्रन्तमोड्रपुष्पस्य माल्यञ्च रक्तचन्दनम् ॥११
रक्तवस्त्रपरीधानं लौहालङ्कारभूषितम्। हसन्तञ्चैव क्रीड़न्तं निर्वाणाङ्गारराशिना ॥
भस्माच्छन्नाञ्च पृथिवीं जवापुष्पान्वितां सति।
रहितं चन्द्रसूर्य्याभ्यां रक्तसंध्यान्वितं नभः ॥ १३ ॥
मुक्तकेशाञ्चनृत्यन्तीं विधवां छिन्ननासिकाम्। रक्तवस्त्रपरीधानामदर्शमट्टहासिनीम्
सशवामग्निरहितां चितां भस्मसमन्विताम्। भस्मवृष्टिमसृग्वृष्टिमङ्गारवृष्टिमीश्वरि ॥
पक्वतालफलाकीर्णां पृथिवीमस्थिसंयुताम्। अदर्शं कर्पराशिञ्च छिन्नकेशनखान्वितम्
पर्वतं लवणानाञ्च राशीभूतं कपर्दकम्। चूर्णानाञ्चैव तैलानामदर्शं कन्दरं निशि ॥१७॥
अदर्शं पुष्पितं वृक्षमशोककरवीरयोः। तालवृक्षञ्च फलितं तत्र एव पतत् फलम् ॥१८
स्वकरात् पूर्णकलसः पपात च बभञ्ज च। इत्यदर्शञ्च गगनात् सम्पतच्चन्द्रमण्डलम् ॥
अदर्शमम्बरात् सूर्य्यमण्डलं सम्पतद्भुवि। उल्कापातं धूमकेतुं ग्रहणञ्चन्द्रसूर्य्ययोः ॥
विकृताकारपुरुषं विकटास्यं दिगम्बरम्। आगच्छन्तञ्चाग्रतस्तु अदर्शञ्च भयानकम् ॥
बाला द्वादशवर्षीया वस्त्रभूषणभूषिता। संरुष्टा याति मद्गेहादित्यदर्शमहं निशि ॥२२॥

विदायं देहि राजेन्द्र स्वद्गेहाद् यामि काननम् ।
यद्सि त्वं मामिति न निरयदर्शमहं शुचा ॥ २३ ॥

कष्टो विप्रो मां शपते सन्यासीचनथा गुरुः । भित्तौ पुत्तलिकाश्रियान्नृत्यन्तीत्यदर्शं परम्
वस्त्रलानाञ्च गृध्राणां काकानां निकरैः सदा । ताड़ितं महिषाणाञ्चत्यमदर्शमहंनिशि
तैलं पीड़ितयन्त्रञ्च तैलकारेण भ्रामिनम् । दिगम्बरान् पाशहस्तानदर्शमहमीश्वरि ॥

नृत्यन्ति गायनाः सर्वे गानं गायन्ति मे गृहे ।
विवाहं परमानन्दमित्यदर्शमहं निशि ॥ २७ ॥

रमणं कुर्वतो लोकान् केशाकेशीति कुर्वतः । अदर्श समरं रात्रौ काकानाञ्च शुनामिति

मोदकानि च पिण्डानि श्याशानं शवसंयुतम् ।
रक्तवस्त्रं शुक्लवस्त्रमदर्शं निशि कामिनि ॥ २९ ॥

कृष्णाम्बराकृष्णवर्णा नग्नाच मुक्तकेशिनी । विधवा श्लिष्यतिव मामदर्शंनिशिशोभने॥
नापितो मुण्डितो मुण्डं श्मश्रुश्रेणीं मम प्रिये । वक्षःस्थलञ्च नखरमित्यदर्शमहं निशि ॥
पादुकाचर्मरज्जूनामदर्शं राशिमुल्वणम् । चक्रं भ्रमन्तं भूमौ च कुलालस्येति सुन्दरि ॥
वात्यया घूर्णमानञ्च शुष्कवृक्षं समुत्थितम् । घूर्णमानं कवन्धञ्चैवादर्शं निशि सुव्रते ॥
ग्रथितां मुण्डमालाञ्च चूर्णमानाञ्च वात्यया । अतीव घोरदशनामित्यदर्शमहं वरे ॥
भूतप्रेता मुक्तकेशा वमन्तञ्च हुताशनम् । मां भीषयन्ति सततमित्यदर्शमहं निशि ॥३५॥
दग्धजीवं दग्धवृक्षं व्याधिग्रस्तं नरं परम् । अङ्गहीनञ्च वृषलमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३६ ॥
गेहपर्वतवृक्षाणां सहसा पतनं परम् । मुहुर्मुहुर्वज्रपातमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३७ ॥
कुक्कुराणां शृगालानां रोदनञ्च मुहुर्मुहुः । गृहे गृहे च नियतमित्यदर्शमहं निशि ॥ ३८ ॥

अधोमस्तमूद्र्ध्वपादं मुक्तकेशं दिगम्बरम् ।
भूमौ भ्रमन्तं गच्छन्तमित्यदर्शमहं नरम् ॥ ३९ ॥

विकृताकारशब्दञ्च ग्रामाधिदेवरोदनम् । प्रातः श्रुत्वैवावबोधञ्च कमुपायं वदाधुना ॥
नपतेर्वचनं श्रुत्वा हृदयेन विदूयता । रुदती तं सगद्गदमुवाच सा नपेश्वरम् ॥ ४१ ॥

मनोरमा उवाच ।

हे नाथ रमणश्रेष्ठ श्रेष्ठ सर्वमहीभृताम् । प्राणाधिक प्राणेश शृणु वाक्यं शुभावहम् ॥
नारायणांशोभगवान् जामदग्न्योमहाबली । हरिसंहर्त्तुर्गुरोरस्य शिष्योऽयं जगतःप्रभोः
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां करिष्यामि महीमिति । प्रतिज्ञायस्य रामस्य तेन सार्द्धं रणं त्यज
पापिनं रावणं जित्वा शूरं स्वमपि मन्यसे । सन्ध्यया न जितो नाथस्त्वपापेन पराजितः
यो न रक्षति धर्म्मज्ञ तस्य को रक्षिता भुवि । स नश्यति स्वयं मूढो जीवन्नपि मृतोहि सः

शुभाशुभस्य सततं साक्षी धर्म्मस्य मर्म्मणः ।
आत्मारामः स्थितः स्वान्ते मूढस्त्वं नहि पश्यति ॥ ४९ ॥

पुत्रदारादिकं यद्यत् सर्वैश्वर्यं सुधर्म्मिणाम् । जलबुद्बुदवत् सर्वमनित्यं नश्वरं नृप
संसारं स्वप्नसदृशं मत्वा सन्तोऽत्र भारते । ध्यायन्तेसततं धर्म्मं तपः कुर्वन्ति भक्तितः

दत्तेन दत्तं यज्ज्ञानं तत् सर्वं विस्मृतं त्वया ।
अस्ति चेत् विप्रहिंसायां कुबुद्धे त्वन्मनः कथम् ॥ ५० ॥

सुखार्थे मृगयां गत्वा तत्रोपोष्य द्विजाश्रमे । भुक्त्वामिष्टमपूर्वञ्च हतो विप्रो निरर्थकम्
गुरुविप्रसुराणाञ्च यः करोति पराभवम् । अभीष्टदेवस्तं रुष्टो विपत्तिस्तस्य सन्निधौ ॥
स्मरणं कुरु राजेन्द्र दत्तात्रेयपदाम्बुजम् । गुरौ भक्तिश्च सर्वेषां सर्वविघ्नविनाशिनी ॥
गुरुदेवं समभ्यर्च्य तं भृगुं शरणं भज । विप्रे देवे प्रसन्ने च क्षत्रियाणां न हि क्षतिः ॥
विप्रस्य किङ्करोभूपो वैश्यो भूपस्य भूमिप । सर्वेषांकिङ्कराः शूद्रा ब्राह्मणस्य विशेषतः
अयशः शरणं शश्वत् क्षत्रियस्य च क्षत्रिये । महद् यशस्तच्छरणं गुरुदेवद्विजेषु च ॥
ब्राह्मणं भज राजेन्द्र गरीयांसं सुरादपि । ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्वदेवताः ॥५७
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रं क्रोडे कृत्वा महासती । मुहुर्मुहुर्मुखं दृष्ट्वा विललाप रुरोद च ॥
क्षणं तिष्ठ महाराज पुनरेवमुवाच सा । ध्यानं कुरु महाराज भोजयिष्यामि वाञ्छितम्
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमाद्यमनुत्तमम् । अनुलेपं करिष्यामि सर्वाङ्गे तव सुन्दरे ॥६०॥
क्षणं सिंहासने तिष्ठ क्षणं वक्षसि मे प्रभो । [illegible] करोमि [illegible]
रत्नपुष्पाधिकः प्रेम्णा सर्वाङ्गञ्च पवित्रं च । [illegible] पदम् ॥

मनोरमावचः श्रुत्वा राजा परमपण्डितः । शोकयामासमतो राज्ञीं दर्शयन्नुत्तरं पुनः
कार्त्तवीर्य्यार्जुन उवाच ।
शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि श्रुतं सर्वं त्वयेरितम् । शोकार्त्तानाञ्च वचनं नयरांस्यं ममासुख
सुखं दुःखं भयं शोकं कलहः प्रीतिरेव च । कर्मभोगार्दकालेन सर्वं भवति सुन्दरि ॥
कालो ददाति राजत्वं कालो मृत्युं पुनर्भवम् । कालः सृजति संसारं कालः संहरते पुनः
करोति पालनं कालः कालरूपी जनार्दनः । कालस्य कालः श्रीकृष्णो विधातुर्विधिरेव
संहर्त्तुर्वापि संहर्त्ता पातुः पाता निषेकहृन् । न निषेको निषेकेण ददाति तरसां फलम्
कः केन हन्यते जन्तुर्निषेकेण विना सति ॥ ६८ ॥
स्रष्टा सृजति सृष्टिञ्च संहर्त्ता संहरेत् पुनः । पाता पाति च भूतानि यस्याज्ञां परिपालयेत्
यस्याज्ञया वाति वातः सन्ततं भयविह्वलः । शश्वत् सञ्चरते मृत्युः सूर्यस्तपति सन्ततम्
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निः कालो भ्रमति भीतवत् ।
तिष्ठन्ति स्थावराः सर्वे चरन्ति सन्ततं चराः ॥ ७१ ॥
वृक्षाश्च पुष्पिताःकाले फलिताःपल्लवान्विताः । शुष्यन्ति कालतःकाले वर्द्धन्तेचतदाज्ञया
आविर्भूता तिरोभूतासृष्टिरेवतदाज्ञया । तस्याज्ञयाभवेत् सर्वंनकिञ्चित् स्वेच्छयानृणाम्
नारायणांशो भगवान् पर्शरामो महाबलः । त्रिःसप्त कृत्वो निर्भूपां करिष्यतिमहीमिति
प्रतिज्ञा विफला तस्य न भवेत्तु कदाचन । निश्चितं तस्य वध्योऽहमिति जानामिसुव्रते
ज्ञात्वासर्वं भविष्यञ्च शरणं यामितत्कथम् । प्रतिष्ठितानां चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रः समरं गन्तुमुद्यतः । वाद्यञ्च वादयामास कारयामास मङ्गलम् ॥
शतकोटिनृपाणाञ्च राजेन्द्राणां त्रिलक्षकम् । अक्षौहिणीनां शतकं महाबलपराक्रमम् ॥
अश्वानाञ्च गजानाञ्च पदातीनां तथैव च । असंख्यकं रथानाञ्च गृहीत्वा गन्तुमुद्यतः ॥
बभूव स्तम्भिता साध्वी दृष्ट्वा तं गमनोन्मुखम् । धृतवन्तञ्च सन्नाहमक्षयं सशरं धनुः ॥
क्रीड़ागारे क्षणं तस्थौ कृत्वा कान्तं स्ववक्षसि ।
पश्यन्ती तन्मुखाम्भोजं चुचुम्ब च मुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे कार्तवीर्य्ययुद्धप्रस्थानं
नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

## पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

### राज्ञो युद्धयात्रा ।

नारायण उवाच ।

नोरमा प्राणनाथं श्रूणं कृत्वा स्ववक्षसि । भविष्य मनसा चक्रे यदयनस्यामिमराकृ तत्
पांश्च पुरतः कृत्वा बान्धवांश्च स्वकिङ्करान् । सामग्रमाः हरिपदं मेने सत्यं भवे मुने
योगेन भित्वा षट्चक्रं वायुं संस्थाप्य मूर्द्धनि । ब्रह्मरन्ध्रस्थकमले सहस्रदलसंयुते ॥३॥
वान्तमारुप्यविषयाञ्जलबुद्बुदसन्निभान् । संस्थाप्य ब्रह्मध्यानेनैतल्लोकं स्नानि निष्फले
विधं कर्म संन्यस्य निर्मूलमपुनर्भवम् । तत्र प्राणांश्च तत्याज न च प्राणाधिक प्रियम्
... राजा तां मृतां दृष्ट्वा विललाप रुरोद च । सन्नाहं संपरित्यज्य कृत्वा वक्षस्युवाचताम्

राजोवाच ।

मनोरमे समुत्तिष्ठ न यास्यामि रणाजिरे । पश्य मां चेतनां प्राप्य विलपन्तं मुहुर्मुहुः ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मया सार्द्धं गृहं व्रज । न करिष्यामि समरं भृगुणा सह भामिनि ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ श्रीशैलं व्रजसुन्दरि । तत्रक्रीड़ांकरिष्यामि त्वयासार्द्धं यथापुरा ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ व्रज गोदावरीं प्रिये । जलक्रीड़ां करिष्यामि त्वया सार्द्धं यथा पुरा
मनोरमे समुत्तिष्ठ नन्दनं व्रज सुन्दरि । पुष्पभद्रानदीतीरे विहरिष्यामि निर्जने ॥ ११ ॥
मनोरमे समुत्तिष्ठ मलयं व्रज सुन्दरि । त्वया सार्द्धं रमिष्यामि तत्र चन्दनकानने ॥१२॥
शीतेन गन्धयुक्तेन वायुना सुरभीकृते । भ्रमरध्वनिसंयुक्ते पुंस्कोकिलरुताश्रिते ॥ १३ ॥
चन्दनागुरुकस्तूरीं ममाङ्गे लेपनं कुरु । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं पश्य मां सस्मिते सति ॥
सुधातुल्यं सुमधुरं वचनं वचय प्रिये । कुटिलभ्रूविकाराश्च कार्यं न कुरुतेऽधुना ॥ १५ ॥
नृपस्य रोदनं श्रुत्वा वाग् बभूवाशरीरिणी । स्थिरो भव महाराज करोषि रोदनं कथम्
यं महाज्ञानिनां श्रेष्ठो दत्तात्रेयप्रसादतः । जलबुद्बुदवत् सर्वं संसारं पश्य शोभनम्
कमलांशा च सा साध्वी जगाम कमलालयम् ।

त्वमेव गच्छ वैकुण्ठं रणं कृत्वा रणाजिरे ॥ १८ ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा जहौ शोकं नराधिपः । तत्रश्चन्दनकाष्ठेन चितां दिव्यां चकार ह
संस्काराग्निकारयित्वा पुत्रद्वारा ददाह ताम् । नानाविधानि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुद

नानाविधानि दानानि वस्त्राणि विविधानि च ।

मनोरमायाः पुण्येन ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुदा ॥ २१ ॥

भुज्यतां भुज्यतां शश्वद्दीयतां दीयतामिति । शब्दो बभूव सर्वत्र कार्त्तवीर्य्याश्रमे मुने
कोपेषु स्वाधिकारेषु स्थितं यद्‌ यद्धनं तदा । मनोरमायाः पुण्येनब्राह्मणेभ्यो ददौ मुद
राजा जगाम समरं हृदयेन विदूयता । सार्द्धं सैन्यसमूहैश्च वाद्यभाण्डैरसंख्यकैः ॥२४
ददर्शामङ्गलं राजा पुरो वर्त्मनि वर्त्मनि । ययौ तथापि समरं नाजगाम गृहं पुनः ॥२५
मुक्तकेशीं छिन्ननाशां रुदतीञ्च दिगम्बराम् । कृष्णवस्त्रपरिधानामपरां विधवामपि ॥२६
मुखदुष्टां योनिदुष्टां व्याधियुक्ताञ्च कुट्टनीम् । पतिपुत्रविहीनाञ्च डाकिनीं पुंश्चलीं तथा
कुम्भकारं तैलकारं व्याधं सर्पोपजीविनम् । कुचैलमतिरुक्षाङ्गं नग्नं काषायवासिनम्
वसाविक्रयिणञ्चैव कन्याविक्रयिणन्तथा । चितादग्धं शवं भस्म निर्वाणाङ्गारमेव च ॥
सर्पक्षतनरं सर्पं गोधाञ्च शशकं विषम् । श्राद्धपाकञ्च पिण्डञ्च मोटकञ्च तिलांस्तथा
देवलं वृषवाहञ्च शूद्रश्राद्धान्नभोजिनम् । शूद्रान्नपाचकं शूद्रयाजकं ग्रामयाजकम् ॥३१
कुशपुत्तलिकाञ्चैव शवदाहनकारिणम् । शून्यकुम्भं भग्नकुम्भं तैलं लवणमस्थि च ॥
कार्पासं कच्छपं चूर्णं कुक्कुरं शब्दकारिणम् । दक्षिणे च शृगालञ्च कुर्वन्तं भैरवं रवम्
कपर्दकञ्च क्षौरञ्च छिन्नकेशं नखं मलम् । कलहञ्च विलापञ्च विलापकारिणं जनम् ॥

अमङ्गलं रुदन्तञ्च रुदन्तं शोककारिणम् ॥ ३५ ॥

मिथ्यासाक्ष्यप्रदातारं चौरञ्च नरघातिनम् । पुंश्चलीपतिपुत्रौ च पुंश्चल्योदनभोजिनम् ।
देवतागुरुविप्राणां वस्तुवित्तापहारिणम् । दत्तापहारिणं दस्युं हिंसकं सूचकं खलम् ॥
पितृमातृविरक्तञ्च द्विजाश्वत्थविघातिनम् । सत्यघ्नञ्च कृतघ्नञ्च स्थाप्यापहारिणं जनम्

विप्रद्रोहं मित्रद्रोहं क्षतं विश्वासघातकम् ॥ ३६ ॥

गरुदेवद्विजानाञ्च निन्दकं स्वाङ्गघातकम् । जीवानां घातकञ्चैव स्वाङ्गहीनञ्च निर्दयम्

तोपवासहीनञ्च दीक्षाहीनं नपुंसकम् । गलितव्याधिगात्रञ्च काणं बधिरमेव च ॥४१।
कसं छिन्नलिङ्गञ्च सुरामत्तं सुरां तथा । क्षितं घमन्तं रुधिरं महिषं गर्द्दभं तथा ।

मूत्रं पुरीषं श्लेष्माणं रूक्षिणं नृकपालकम् ॥ ४२ ॥

ञ्झावातं रक्तवृष्टिं वाद्यञ्च वृक्षपातनम् । वृकञ्च शूकरं गृध्रं श्येनं कङ्कञ्च भल्लुकम् ।

पाशञ्च शुष्ककाष्ठञ्च वायसं गन्धकं तथा ॥ ४४ ॥

रदानिब्राह्मणञ्च तन्त्रमन्त्रोपजीविनम् । वैद्यञ्च रक्तपुष्पञ्च औषधं तुषमेव च ॥ ४५ ॥
र्त्तां मृतवार्त्ताञ्च विप्रशापञ्च दारुणम् । दुर्गन्धिवातं दु शब्दं राजा सम्प्रापवर्त्मनि
मनञ्च कुत्सितं प्राणाः क्षुभिताश्च निरन्तरम् । वामाङ्गस्पन्दनं देहजाड्यं राज्ञो बभूव ह
तथापि राजा निःशङ्को ददर्श युद्धमङ्गलम् । सर्वसैन्यसमायुक्तः प्रविवेश रणाजिरम् ॥
अवरुह्य रथात्तूर्णं दृष्ट्वा च पुरतो भृगुम् । ननाम दण्डवद् भूमौ राजेन्द्रैः सह भक्तितः ॥
आशिषं युयुजे रामः स्वर्गं याहीतिवाञ्छितम् । तेषांसद्यंतद्बभूवदुर्लङ्घ्या ब्राह्मणाशिषः
भृगुं प्रणम्य राजेन्द्रो राजेन्द्रैः सह तत्क्षणात् । आरुरोह रथं तूर्णं नानासज्ञसमन्वितम्
नानाप्रकारवाद्यञ्च दुन्दुभिं मुरजादिकम् । वादयामास सहसा ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम्
उवाच रामो राजेन्द्रं राजेन्द्राणाञ्च संसदि । हितं सत्यं नीतिसारं वाक्यं वेदविदांवरः

परशुराम उवाच ।

अये राजेन्द्र धर्मिष्ठ चन्द्रवंशसमुद्भव । विष्णोरंशस्य शिष्यस्त्वं दत्तात्रेयस्य धीमतः
स्वयं विद्वांश्च वेदांश्च श्रुत्वा वेदविदो मुखात् । कथं दुर्बुद्धिरधुनासज्ञनानां विडम्बना
पूर्वंमहनस्त्वं लोभान्निरीहं ब्राह्मणं कथम् । ब्राह्मणी शोकसन्तप्ता भर्त्रासार्द्धं गता सती
किं भविष्यति ते भूप परत्रैवानयोर्वधात् । सर्वं मिथ्यैव संसारं पद्मपत्रे यथा जलम् ॥

सत्कीर्त्तिश्चाथ दुष्कीर्त्तिः कथा मात्रावशेषिता ।

विडम्बना वा किमतो दुष्कीर्त्तेश्च सतामहो ॥ ५८ ॥

क गता कपिला त्वं क क विवादो मुनिःकुतः । यत्स्थलंविदुषाराज्ञा न स्नंदालिखेनतत्
वामुपोषन्तमीशं हि दृष्ट्वा तातो हि धार्मिकः । पारणां कारयामासदत्तंतस्यफलं त्वया
मर्पितं विधिवद्दत्तं ब्राह्मणेभ्यो दिनेदिने । जगत् ते यशसा पूर्णमयशो वार्द्धके कथम्

दाता वरिष्ठो धर्मिष्ठो यशस्वान् पुण्यवान् सुधीः ।
कार्त्तवीर्य्यार्जुनसमो न भूतो न भविष्यति ॥ ६२ ॥
पुरातना वदन्तीति वन्दिनो धरणीतले । यो विख्यातः पुराणेषु तस्य दुष्कीर्त्तिरीदृशी
दुर्वाच्यं दुःसहं राजन् तीक्ष्णास्त्रादपि जीविनाम् ।
सङ्कटेऽपि सतां वक्त्राद् छिद्रकीर्त्ते विनिर्गता ॥ ६४ ॥
न क्षमामि छिद्रकीर्त्ते प्रश्नं कथयाम्यहम् । उत्तरं देहि राजेन्द्र मह्यं राजेन्द्रसंसदि ॥
सूर्य्यचन्द्रमनूनाञ्च वंशाः सन्त्यत्र संसदि । सत्यं वद समायाञ्च शृण्वन्तु पितरः सुराः
शृण्वन्तु सर्वे राजेन्द्राः सदसत्कर्मीश्वराः । पश्यन्तो हि समं सन्तः पाक्षिकं न वदन्ति च
इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च विरराम रणस्थले । राजा बृहस्पतिसमः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६८ ॥

कार्त्तवीर्य्यार्जुन उवाच ।

अये राम हरेरंशो हरिभक्तो जितेन्द्रियः । श्रुतो धर्मो मुखात्येषां त्वञ्च तेषां गुरोर्गुरुः
कर्म्मणा ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनम् ।
स्वधर्म्मनिरतः शुद्धस्तस्माद् ब्राह्मण उच्यते ॥७०॥
अन्तर्बहिश्च मननात् करोति कर्म्म जन्मनि ।
मौनी शश्वद्वदेत् काले यो हि स मुनिरुच्यते ॥७१॥
स्वर्णे लोष्ट्रे गृहेऽरण्ये पङ्के सुस्निग्धचन्दने । समता भावना यस्य स योगी परिकीर्त्तितः
सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत् समताधिया ।
हरौ करोति भक्तिञ्च हरिभक्तः स च स्मृतः ॥ ७३ ॥
तपो धनं ब्राह्मणानां तपः कल्पतरुर्यथा । तपस्या कामधेनुश्च सन्ततं तपसि स्पृहा ॥
ऐश्वर्य्ये क्षत्रियाणाञ्च वाणिज्ये च तथा विशाम् ।
क्षत्रियाणाञ्च तपसि स्पृहाऽतीवाऽप्रशंसिता ॥७५॥
ब्राह्मणानां विवादे च स्पृहाऽतीवविनिन्दिता ॥७६॥
रागी राजसिकं कार्य्यं कुरुते कर्म्मरागतः । रागान्धश्च राजसिकस्तेन राजा प्रकीर्त्तितः
रागतः कामधेनुश्च मया भिक्षा कृतामुने । को दोष एव मे जातः क्षत्रियस्यानुरागिणः

कुतः कस्य मुनेरस्ति कामधेनुस्त्वयाविना । स्पृहारणे वा भोगेवायुष्माकश्चव्यतिक्रमः

त्रिंशदक्षौहिणीं सेनां राजेन्द्राणां त्रिकोटिकाम् ।

निहत्यायान्तमेकं मां न हन्तुं सहनं मुने ॥८०॥

आत्मानं हन्तु मायान्तमपि वेदाङ्गपारगम् । न दोषो हनने तस्य न तेन ब्रह्महा भवेत्

प्रायश्चित्तं हिंसकानां न वेदेषु निरूपितम् । वधः समुचितस्तेषामित्याह कमलोद्भवः ॥

पित्रा ते निहता भूपा महाबलपराक्रमाः । इदानीं राजपुत्राश्च शिशवोऽत्र समागताः ॥

त्रिःसप्त कृत्वो निर्भूपां कृत्स्नां कर्त्तुं महीमिति ।

त्वया कृता प्रतिज्ञा या तस्याश्च पालनं कुरु ॥८४॥

क्षत्रियाणां रणो धर्मो रणे मृत्युर्न गर्हितः । रणे स्पृहा ब्राह्मणानां लोकेवेदे विड़म्बना

तपोधनानां विप्राणां धाम्वलानां युगे युगे । शान्तिः स्वस्त्ययनंकर्मविप्रधर्मोनसङ्गरः

क्षत्रियाणां बलं युद्धं व्यापारश्चबलंविशाम् । भिक्षाबलंभिक्षुकाणांशुद्राणां विप्रसेचनम्

हरौ भक्तिर्हरेर्दास्यं वैष्णवानां बलं हरिः । हिंसा बलं खलानाञ्च तपस्याच तपस्विनाम्

बलं वेशश्च वेश्यानां योषितां यौवनं बलम् । बलं प्रतापो भूपानां बालानां रोदनंबलम्

सतां सत्यं बलं मिथ्या बलमेवा सतां सदा । अनुगानामनुगमः स्वल्पस्थानाश्चसश्रयः

विद्या बलं पण्डितानां गाम्भीर्यं साहसीबलम् ॥६१॥

धनं बलञ्च धनिनां शुचीनाञ्च विशेषतः । बलं विवेकः शान्तानां गुणिनां बलमेकता

गुणो बलञ्च गुणिनां चौराणां चौर्य्यमेवच । प्रियवाक्यञ्चकापट्यमधर्मःपुंश्चलीबलम्

हिंसा च हिंस्रजन्तूनां सतीनां पतिसेवनम् । धरणापो सुराणाञ्च शिष्याणांगुरुसेवनम्

बलं धर्मा गृहस्थानां भृत्यानां राजसेवनम् । बलं स्तवःस्तावकानांब्रह्मचर्य्यंब्रह्मचारिणाम्

यतीनाञ्च सदाचारो न्यासः सन्यासिनां बलम् ।

पापं बलं पातकीनामशक्तानां हरिर्बलम् ॥६६॥

पुण्यं बलं पुण्यवतां प्रजानां नृपतिर्बलम् । फलं बलञ्च वृक्षाणां जलौकानां जलं बलम्

जलं बलञ्च शस्यानां मत्स्यानाञ्च जलं बलम् ।

शान्तिर्बलञ्च भूपानां विप्राणाञ्च विशेषतः ॥६८॥

पितुः शाम्भो रणोद्योगी नैव दृष्टो मम प्रभुः । त्रिलोके मत्स्यराजेन्द्रैर्धनुष्मान्न विलोकितः
इत्येवमुक्त्वा राजेन्द्रो विरराम रणाजिरे । तस्य सत्यमतं श्रुत्वा हर्षयुक्तो बभूव ह ॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे सुगीर्वाणसमानगाः । चक्रिरे रणं कर्तुं महोत्साहसमन्विताः ॥
रणोन्मुखांश्च तान्दृष्ट्वा मत्स्यराजो महाबलः । समारेभे रणं कर्तुं भ्रूभङ्गकुटिलाननः ॥
शरजालेन राजेन्द्रो छादयामास तानपि । चिच्छिदुः शरजालञ्च जमदग्निसुतास्तदा ॥
राजा चिक्षेप दिव्यास्त्रं शतसूर्यप्रभं मुने । माहेश्वरेण मुनयश्चिच्छिदुश्चापलीलया ॥
दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिदुः सशरं धनुः । रथञ्च सारथिञ्चैव राज्ञः सन्नाहमेव च ॥
न्यस्तशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो हर्षविह्वलाः । दधार शूलिनः शूलं मत्स्यराजजिघांसया ॥
शूलनिःक्षेपसमये वाग्बभूवाशरीरिणी । शूलं त्यजत विप्रेन्द्राः शिवस्याप्यर्थमेव वा ॥
शिवस्य कवचं दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा । मत्स्यराजगलेऽस्तीति सर्वावयवरक्षणम् ॥

प्राणानाञ्च प्रदातारं कवचं याचतां नृपम् ।
तदा निक्षिप्य शूलञ्च जघान नृपतीश्वरम् ॥१०६॥

तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने । श्रुत्वैवाकाशवाणीञ्च शम्भुः सन्न्यासवेशधृक्
ययाचे कवचं भूपं जमदग्निसुतो महान् । राजा ददौ च कवचं ब्रह्माण्डे विजयं परम् ॥
गृहीत्वा कवचं तञ्च शूलेनैव जघान ह । पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमाननः ।

महाबलिष्ठो गुणवान् चन्द्रवंशसमुद्भवः ॥११२॥

नारद उवाच ।

शिवस्य कवचं ब्रूहि मत्स्यराजेन यद्धृतम् । नारायण महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम

नारायण उवाच ।

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शङ्करस्य महात्मनः । ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वावयवरक्षणम् ॥
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते । दत्वा षडक्षरं मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम् ।
अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः ॥११६॥

यद्धृत्वा पठनाद्बाण शिवत्वं प्राप लीलया । बभूव शिवतुल्यश्च यद्धृत्वा नन्दिकेश्वरः

धीरश्रेष्ठो धीरभद्रो बभूव धारणाद् यतः । त्रैलोक्यविजयो राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम्
हिरण्याक्षश्च विजयी बभूव धारणाद्यतः । यद्धृत्वापठनात्सिद्धोदुर्वासा विश्वपूजितः
जैगीषव्यो महायोगी पठनात् धारणाद् यतः । यद्धृत्वावामदेवश्चदेवलश्च्यवनः स्वयम्
अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च बभूव विश्वपूजितः ॥१२०॥
ओं नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदावतु । ओं नमः शिवायेति चस्वाहाभालंसदावतु
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदावतु ।
ओं ह्रीं क्लीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥१२२॥
ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदावतु ।
ओं ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदावतु ॥१२३॥
ओं ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदावतु ।
ओं ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा ॥१२४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान् सदावतु ।
ओं ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदावतु ॥१२५॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं रुद्राय स्वाहा नाभिं सदावतु ।
ओं ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदावतु ॥१२६॥
ओं ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा भ्रूवं सदावतु ।
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईशानाय स्वाहा पार्श्वं सदावतु ॥१२७॥
ओं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा उदरं पातु मे सदा ।
ओं श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा बाहू सदावतु ॥१२८॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहाःपातु करौ मम । ओंमहेश्वरायरुद्रायनितम्बंपातुमेसदा
ओं ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौसदावतु । ओंसर्वेश्वरायसर्वायस्वाहासर्वंसदावतु
प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शङ्करः । दक्षिणेपातुमांरुद्रोनैर्ऋत्यांस्थाणुरेवच
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः । उत्तरे गिरिशः पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥
ऊर्द्ध्वे मृडः सदा पातु अधोमृत्युञ्जयःस्वयम् । जलेस्थलेचान्तरीक्षेस्वप्नेजागरणेसदा

विप्रः शार्ङ्गी रणोद्यामी नैव दृष्टो मया पुरा । दिव्यैर्नारायणैर्भेदे बभूवुस्ते निरर्थकाः
हर्षेणयुक्तश्च राजेन्द्रो विरराम रणाजिरे । तस्य तदाग्नेयं दृष्ट्वा मार्गणानां बभूव ह ॥
राजस्य भ्रातरः सर्वे दुर्गाह्वयमहाबलाः । भार्गवेण रणे कर्तुं महाशस्त्रास्त्रधारिणा ॥
रणोद्गमाश्च तान् दृष्ट्वा मत्स्यराजो महाबलः । रामार्थे रणे कर्तुं मत्स्यरागमनोत्सवः ॥
शरजालेन राजेन्द्रो वारयामास तान्नृप । निचिक्षेपुः शरजालं च ब्रह्मर्षिमुखान्नृपाः ॥
राजा चिक्षेप दिव्यास्त्रं शतसूर्यप्रभं मुने । माहेश्वरेण मुनयश्चिच्छिदुश्चास्त्रलीलया ॥
दिव्यास्त्रेणैव मुनयश्चिच्छिदुः सशरं धनुः । रथं च सारथिं चैव राज्ञः सन्नाहमेव च ॥
न्यस्तशस्त्रं नृपं दृष्ट्वा मुनयो हर्षविह्वलाः । दधार शूलिनः शूलं मत्स्यराजजिघांसया ॥
शूलनिःक्षेपसमये वागभूदशरीरिणी । शूलं त्यज विप्रेन्द्र शिवस्याज्ञामिमं नः ॥
शिवस्य कवचं दिव्यं दत्तं दुर्वाससा पुरा । मत्स्यराजगले ह्यस्ति सर्वापायपरक्षणम् ॥

प्राणानाञ्च प्रदातारं कवचं याचतं नृपम् ।
तस्मा निक्षिप्य शूलञ्च जघान नृपतीश्वरम् ॥१०४॥

तच्छूलं तं नृपं प्राप्य शतखण्डं गतं मुने । श्रुत्वैवाकाशवाणीञ्च भृगुः सन्न्यासवेशधृक् ॥
ययाचे कवचं भूपं जमदग्निसुतो महान् । राजा ददौ च कवचं ब्रह्माण्डे विजयं परम् ॥
गृहीत्वा कवचं तस्य शूलेनैव जघान ह । पपात मत्स्यराजश्च शतचन्द्रसमाननः ।

महाबलिष्ठो गुणवान् चन्द्रवंशसमुद्भवः ॥११२॥

नारद उवाच ।

शिवस्य कवचं ब्रूहि मत्स्यराजेन यद्धृतम् । नारायण महाभाग श्रोतुं कौतूहलं मम

नारायण उवाच ।

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शङ्करस्य महात्मनः । ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वापायपरक्षणम् ॥
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते । दत्वा षडक्षरं मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम् ।
अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः ॥११६॥

शिवत्वं प्राप लीलया । बभूव

गीश्रेष्ठो वीरभद्रो बभूव धारणाद् यतः। त्रैलोक्यविजयो राजा हिरण्यकशिपुः स्वयम्
हिरण्याक्षश्च विजयी बभूव धारणाद्यतः। यद्धृत्वापठनात्सिद्धोदुर्वासा विश्वपूजितः
गीषव्यो महायोगी पठनात् धारणाद् यतः। यद्धृत्वावामदेवश्चदेवलश्च्यवनः स्वयम्
अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च बभूव विश्वपूजितः ॥१२०॥

ॐ नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदावतु। ओं नमः शिवायेति चस्वाहाभालंसदावतु
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदावतु।
ओं ह्रीं क्लीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥१२२॥
ओं नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं ह्रूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदावतु ॥१२३॥
ओं ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदावतु।
ओं ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा ॥१२४॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान् सदावतु।
ओं ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदावतु ॥१२५॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं रुद्राय स्वाहा नाभिं सदावतु।
ओं ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदावतु ॥१२६॥
ओं ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा भ्रूश्च सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईशानाय स्वाहा पार्श्वं सदावतु ॥१२७॥
ओं ह्रीं ईश्वराय स्वाहा उदरं पातु मे सदा।
ओं श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा बाहू सदावतु ॥१२८॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहाःपातु करौ मम। ओंमहेश्वरायरुद्रायनितम्बंपातुमेसदा
ओं ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौसदावतु। ओंसर्वेश्वरायसर्वायस्वाहासर्वंसदावतु
प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शङ्करः। दक्षिणेपातुमांरुद्रोनैर्ऋत्यांस्थाणुरेवच
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः। उत्तरे गिरिशः पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥
ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु अधोमृत्युञ्जयःस्वयम्। जलेस्थलेचान्तरीक्षेस्वप्नेजागरणेसदा

पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तञ्च भक्तवत्सलः ॥१३४॥
इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् । दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवतिनिश्चितम् ॥१३५
यदि स्यात्सिद्धकवचोरुद्रतुल्योभवेद्ध्रुवम् । तवस्नेहान्मयाख्यातंप्रवक्तव्यंनकस्यचित्
कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् । अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥
सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१३८॥
सर्वज्ञः सर्वसिद्धीशो मनोयायी भवेद्ध्रुवम् । इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यःशङ्करं प्रभुम्
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥१३९॥
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे शङ्करकवच-
प्रकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

---

## षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

### सुचन्द्रेण नृपतिना सह रामस्य युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

मत्स्यराजे निपतिते राजा युद्धविशारदः । राजेन्द्रान् प्रेरयामास युद्धशास्त्रविशारदान्
बृहद्बलं सोमदत्तं विदर्भं मिथिलेश्वरम् । निषधाधिपतिञ्चैव मगधाधिपतिन्तथा ॥
आययुः समरे योद्धुं पर्शुरामं महारथाः । त्रिभिरक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह नारद ॥
रामस्य भ्रातरः सर्वे वीरास्तीक्ष्णास्त्रपाणयः । वारयामासुरस्त्रैश्च तानेव रणमूर्द्धनि ॥
ते वीराः शरजालेन दिव्यास्त्रेण प्रयत्नतः । वारयामास सुरैकैकं भ्रातृवर्गान् भृगोस्तथा
आययौ समरे शीघ्रं दृष्ट्वा तांश्च पराजितान् ।
पिनाकहस्तः सभृगुर्ज्वलदग्निशिखोपमः ॥६॥
चिच्छेद मगधराजश्च पर्शुरामो महाबलः । चिच्छेद मे गाण्डेन सोमदत्तो महाबलः ॥७॥

भृगुः शङ्करशूलेन सोमदत्तं जघान ह । वृहद्बलञ्च गदया विदर्भं मुष्टिभिस्तथा ॥८॥
मैथिलं मुद्गरेणैव शक्त्या च नैषधं तथा । मागधं चरणोद्घातैरस्त्रजालेन सैनिकान् ॥९॥

निहत्य निखिलान् भूपान् संहाराग्निसमो रणे ।
दुद्राव कार्त्तवीर्य्यञ्च पर्शुरामो महाबलः ॥१०॥

दृष्ट्वा तं योद्धमायान्तं राजानश्च महारथाः । आययुः समरं कर्त्तुं कार्त्तवीर्य्यंनिवार्य्य च
कान्यकुब्जाश्च शतशः सौराष्ट्राः शतशस्तथा । राढीया शतशश्चैव वारेन्द्राः शतशस्तथा

सौम्या वाङ्गाश्च शतशो महाराष्ट्रास्तथा दश ।
कतिधा गुर्जजातीयाः कालिङ्गाः शतशस्तथा ॥१३॥

कृत्वा तु शरजालञ्च भृगुश्छिच्छेद तत्क्षणम् ।
तं छित्त्वाभ्युत्थितो रामो नीहारमिव भास्करः ॥१४॥

त्रिरात्रं युयुधे रामस्तैःसार्द्धं समराजिरे । द्वादशाक्षौहिणीं सेनां ततश्चिच्छेद पर्शुना ॥
रम्भास्तम्भसमूहञ्च यथा खड्गेन लीलया । छित्त्वा सेनां भूपवर्गं जघान शिवशूलतः ॥
सर्वांस्तान्निहतान् दृष्ट्वा सूर्य्यवंशसमुद्भवः । आजगाम सुचन्द्रश्च लक्षराजेन्द्रसंयुतः ॥
द्वादशाक्षौहिणीभिश्च सेनाभिः सह संयुगे । कोपेन युयुधे रामं सिंहं सिंहो यथारणे ॥
भृगुः शङ्करशूलेन नृपलक्षं निहत्य च । द्वादशाक्षौहिणीं सेनां जघान पर्शुना बली ॥१६
निहत्य सर्वाः सेनाश्च सुचन्द्रं युयुधे बली । नागास्त्रं प्रेरयामास निहन्तुंतंभृगुःस्वयम्
नागपाशञ्च चिच्छेद गारुडेन नृपेश्वरः । जहास च भृगुं राजा समरे च पुनःपुनः ॥२१
भृगुर्नारायणास्त्रञ्च चिक्षेप रणमूर्द्धनि । अस्त्रं ययौ तं निहन्तुं शतसूर्य्यसमप्रभम् ॥२२॥

दृष्ट्वास्त्रं नृपशार्दूलश्चावरुह्य रथात् क्षणात् ।
न्यस्तशस्त्रः प्रणनाम स्तुत्वा नारायणं शिवम् ॥२३॥

तमेव प्रणतं त्यक्त्वा ययौ नारायणान्तिकम् । अस्त्रराजो भगवतोरामःसंप्रापविस्मयम्
भृगुः शक्तिञ्च मुषलं तोमरं पट्टिशं तथा । गदां पर्शुञ्च कोपेन चिक्षेप नृपहिंसया ॥२५

जग्राह काली तान् सर्वान् सुचन्द्रस्यन्दनस्थिता ।
चिक्षेप शिवशूलं स नृपमाल्यं बभूव तत् ॥२६॥

ददर्श पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रसूम् । वहन्तीं मुण्डमालाञ्च विकटास्यां भयङ्क
विहाय शस्त्रमस्त्रञ्च पिनाकञ्च भृगुस्तदा । तुष्टाव तां महामायां भक्तिनम्रात्मक

परशुराम उवाच ।

नमः शङ्करकान्तायै सारायै ते नमो नमः । नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः । नमोऽस्तुतेजगन्मात्रेकारणायै नमोन
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि । त्वत्पादे शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थकं कु
त्वयि मे विमुखायाञ्च को मां रक्षितुमीश्वरः । त्वं प्रसन्ना भव शुभेमांभक्तं भक्तव
युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा । तं वरं सफलं कर्तुं त्वमर्हसि वरा
पर्शुरामस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाभवदम्बिका । माभैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत ॥
एतद् भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् । महाभयात्समुत्तीर्णः स भवेदलील
स पूजितश्च त्रैलोक्ये त्रैलोक्यविजयी भवेत् । ज्ञानिश्रेष्ठो भवेच्चैव वैरिपक्षविमर्द

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे भृगुकृतं कालीस्तोत्रम् ।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भृगुं धर्मभृतां वरम् । आगत्य कथयामास रहस्यं राममेव च ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु राम महाभाग रहस्यं पूर्वमेव च । सुचन्द्रजयहेतुञ्च प्रतिज्ञासार्थकाय च ॥
दशाक्षरी महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा । सुचन्द्रायैव कवचं भद्रकाल्याः सुदुर्ल
कवचं भद्रकाल्याश्च देवानाञ्च सुदुर्लभम् । कवचं तद्गलेयस्य सर्वशत्रुविमर्दकम
सर्वत्र पूज्यं शस्तञ्च त्रैलोक्यजयकारणम् । तस्मिन् स्थिते च कवचे कस्त्वंजेतुमलं भु
भृगो गच्छतु भिक्षार्थं करोतु प्रार्थनां नृप । सूर्यवंशोद्भवो राजा दाता परमधार्मि
प्राणांश्च कवचं मन्त्रं सर्वं दास्यति निश्चितम् ॥४३॥
भृगुः सन्न्यासिवेशेण गत्वा राजान्तिकं मुने । भिक्षाञ्चकार मन्त्रञ्चकवचंपरमाद्भु
राजा ददौ च मन्त्रञ्च कवचं परमादरात् । ततः शङ्करशूलेन जघान तं नृपं भृगुः ॥४
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कालीस्तोत्रं नाम
षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

ददर्श पुरतो रामो भद्रकालीं जगत्प्रसूम्। वहन्तीं मुण्डमालाञ्च विकट

विहाय शस्त्रमस्त्रञ्च पिनाकञ्च भृगुस्तदा। तुष्टाव तां महामायां भक्ति

परशुराम उवाच।

नमः शङ्करकान्तायै सारायै ते नमो नमः। नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै

नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः। नमोऽस्तुतेजगन्मात्रेकारण

प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि। त्वत्पादे शरणं यामि प्रतिज्ञां

त्वयि मे विमुखायाञ्च को मां रक्षितुमीश्वरः। त्वं प्रसन्ना भव शुभेमांभ

युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा। तं वरं सफलं कर्त्तुं त्व

परशुरामस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाभवदम्बिका। माभैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्त

एतद् भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। महाभयात्समुत्तीर्णः स

स पूजितश्च त्रैलोक्ये त्रैलोक्यविजयी भवेत्। ज्ञानिश्रेष्ठो भवेच्चैव वै

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे भृगुकृतं कालीस्तोत्रम्।

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा भृगुं धर्म्मभृतां वरम्। आगत्य कथयामास रहस्यं र

ब्रह्मोवाच।

शृणु राम महाभाग रहस्यं पूर्वमेव च। सुचन्द्रजयहेतुञ्च प्रतिज्ञासार्थक

दशाक्षरी महाविद्या दत्ता दुर्वाससा पुरा। सुचन्द्रायैव कवचं भद्रकाल्य

कवचं भद्रकाल्याश्च देवानाञ्च सुदुर्लभम्। कवचं तद्गलेयस्य

अतीव पूज्यं शस्तञ्च त्रैलक्यजयकारणम्। तस्मिन् स्थिते च का

भृगो गच्छतु भिक्षार्थं करोतु प्रार्थनां नृप।

प्राणांश्च कवचं मन्त्रं सर्वं दास्यति

भृगुः सन्न्यासिवेषेण गत्वा राजान्तिकं मुने।

राजा ददौ च मन्त्रञ्च कवचं

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे

राजेन्द्रः शरजालेन छेदयामास लीलया । चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराश्चावलील
चिच्छिदुः स्यन्दनं राज्ञस्ते वीराः पञ्चबाणतः । सारथिं पञ्चबाणेन रथाश्वं दशबा
तद्धनुः सप्तबाणेन तूर्णञ्च पञ्चबाणतः । चिच्छिदुस्तद्भ्रातृवर्गान विप्राः शङ्करशूल
ते च अक्षौहिणींसेनां निजघ्नुश्चावलीलया । हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीरा शिवशूलंनिचिक्षि

गले बभूव तत् शूलं राज्ञः पुष्करमालिका ॥ ८ ॥

शक्तिञ्च परिघञ्चैव भुशुण्डीं मुद्गरन्तथा । गदाञ्च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलदग्नयः ॥
तानि शस्त्राणि चूर्णानि नृपेन्द्रदेहयोगतः । विस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरेव महामुने
धनुश्च शस्त्राणिचास्त्राणिविविधानिच । सेनांप्रस्थापयामासकार्त्तवीर्य्यार्जुन स्वक
राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः । चकार शरजालञ्च महाघोरतरं मुने ॥
चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराः शस्त्रपाणयः । राजा प्रस्वापनेनैव निद्रितांस्तांचका
नृंश्च निद्रितान्दृष्ट्वा परशुरामो महाबलः । क्षतविक्षतसर्वाङ्गान बोधयामास तत्त्वतः
धयित्वा तान्निवार्य्य जगाम रणमूर्द्धनि । चिक्षेप परशुं कोपेन शीघ्रं राजजिघांसय
त्वा राज्ञः किरीटञ्च परशुर्भूमौ पपात ह । जग्राह परशुं शीघ्रं परशुरामो महाबलः
शङ्करशूलञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगामशिवसन्निधि
ता निहन्तुं तं रामं शरजालञ्चकार ह । चिच्छेद शरजालञ्च परशुरामश्च लीलया
पि राजा नानास्त्रं चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । तच्चिच्छेद क्रमेणैव भृगुः शस्त्रभृतांवर
पुश्चिक्षेप नानास्त्रं महासन्धानपूर्वकम् । तच्चिच्छेद महाराजः सन्धानेनावलीलय
श्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सन्धानमन्त्रपूर्वकम् । राजा निर्वापणञ्चक्रे सन्धानेनावलीलया ।
ाण्यस्त्राणिशस्त्राणिरामः पाशुपतंविना । चिक्षेपकोपविभ्रान्तो भूपश्चिच्छेदतानिच
ः स्तुत्वा शिवं नत्वा ददे पाशुपतं मुने । नारायणश्च भगवानुवाच विप्ररूपधृक् ॥

ब्राह्मण उवाच ।

रोपि भृगो वत्स त्वमेवज्ञानिनां वरः । नरं हन्तुं पाशुपतं कोपात्किंक्षिपसित्वमात
वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सत्वरम् । सर्वघ्नञ्च शस्त्रमिदं विना श्रीकृष्णमीदृशम्
पाशुपतं जेतुमलमेव सुदर्शनम् । हरेः सुदर्शनञ्चैव सर्वास्त्रपरिमर्द्दकम् ॥ २६ ॥

ओं ह्रीं कालिकायैस्वाहा ममपृष्ठं सदावतु। रक्तबीजविनाशिन्यै स्वाहा ह

ओं ह्रीं क्रीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा पार्श्वौ सदावतु।

ओं ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु॥ १६॥

प्राच्यांपातुमहाकालीआग्नेय्यांरक्तदन्तिका। दक्षिणेपातुचामुण्डानैरृ॑त्यां

श्यामाच वारुणेपातु वायव्यांपातु चण्डिका। उत्तरेविकटास्याचऐशान्यां

ऊर्द्ध्वंपातुलोलजिह्वा मायाद्यापात्वधः सदा। जलेस्थले चान्तरिक्षेपातुर्

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वेषां कवचानाञ्च सारभूतं

सप्तद्वीपेश्वरो राजा सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः। कवचस्य प्रसादेन मान्धाता

प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह। यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौभरि

यदिस्यात् सिद्धकवचः सर्वसिद्धीश्वरोभवेत्। महादानानि सर्वाणितपांि

निश्चितं कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ २३॥

इदं कवचमज्ञात्वा भजेत् कालीं जगत्प्रसूम्। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवा

कालीकवचं नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

---

## अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

### सुचन्द्रं पतितं दृष्ट्वाऽपरैः राजभिः सह रामयुद्धम्

नारायण उवाच।

सुचन्द्रे पतिते ब्रह्मन् राजेन्द्राणांशिरोमणौ। आजगाम पुष्कराक्षः सेनाभ्या

सूर्य्यवंशोद्भवो राजा सुचन्द्रतनयोमहान्। महालक्ष्मीसेवकश्च लक्ष्मीवान्

महालक्ष्म्याश्च कवचं गले यस्य मनोहरम्। परमैश्वर्य्यसंयुक्तस्त्रैलोक्य वि

तं दृष्ट्वा समरं सर्वे भृगुरामस्य धीमतः। आययुः समरं कर्त्तुं नानायस्त्रा

राजेन्द्रः शरजालेन छेदयामास लीलया । चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराश्चावली
चिच्छिदुः स्यन्दनं राज्ञस्ते वीराः पञ्चबाणतः । सारथिं पञ्चबाणेन रथाश्वं दश
तद्धनुः सप्तबाणेन तूर्णञ्च पञ्चबाणतः । चिच्छिदुस्तद्भ्रातृवर्गान् विप्राः शङ्करशू
ते च त्र्यक्षौहिणीसेनां निजघ्नुश्चावलीलया । हन्तुं नृपेन्द्रं ते वीरा शिवशूलं निचि

गले बभूव तत् शूलं राज्ञः पुष्करमालिका ॥ ८ ॥

शक्तिश्च परिघञ्चैव भुशुण्डीं मुद्गरन्तथा । गदाञ्च चिक्षिपुर्विप्राः कोपेन ज्वलदग्नय
तानि शस्त्राणि चूर्णानि नृपेन्द्रदेहयोगतः । विस्मिता भ्रातरः सर्वे भृगोरेव महा
त्यंधनुश्चशस्त्राणिचास्त्राणिविविधानिच । सेनांप्रस्थापयामासकार्त्तवीर्य्यार्जुन म
राजा स्यन्दनमारुह्य पुष्कराक्षो महाबलः । चकार शरजालञ्च महाघोरतरं मुने ।
चिच्छिदुः शरजालञ्च ते वीराः शस्त्रपाणयः । राजा प्रस्वापनेनैव निद्रितांस्तांश्च
भ्रातृंश्च निद्रितान्दृष्ट्वा परशुरामो महाबलः । क्षतविक्षतसर्वाङ्गान बोधयामास तत्त्व
बोधयित्वा तान्निवार्य्य जगाम रणमूर्द्धनि । चिक्षेप परशुं कोपेन शीघ्रं राजजिघां
छित्त्वा राज्ञः किरीटञ्च परशुर्भूमौ पपात ह । जग्राह परशुं शीघ्रं परशुरामो महाब
दा शङ्करशूलञ्च चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । नृपस्य कुण्डलं छित्त्वा जगामशिवसन्नि
राजा निहन्तुं तं रामं शरजालञ्चकार ह । चिच्छेद शरजालञ्च परशुरामश्च लील
क्षेप राजा नानास्त्रं चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम् । तच्चिच्छेद धर्मेणैव भृगुः शस्त्रभृतां
भृगुश्चिक्षेप नानास्त्रं महासन्धानपूर्वकम् । तच्चिच्छेद महाराजः सन्धानेनावलील
मश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं सन्धानमन्त्रपूर्वकम् । राजा निर्वापणञ्चक्रे सन्धानेनावलीलय
णिव्यस्त्राणिशस्त्राणिरामः पाशुपतं विना । चिक्षेपकोपविभ्रान्तो भृगुश्चिच्छेदतानि
मः स्तुत्वा शिवं नत्वा दद्रे पाशुपतं मुने । नारायणश्च भगवानुपाय विप्ररूपधृ

ब्राह्मण उवाच ।

कुरोषि भृगो वत्स त्वमेवज्ञानिनां वरः । नरं हन्तुं पाशुपतं कोपात्किंशरसिक्षम
र्वं पाशुपतेनैव भवेद्भस्म च सत्वरम् । सर्वमस्य शस्त्रमिदं विना श्रीहरिपर्यन्त
तो पाशुपतं जेतुमलमेव सुदर्शनम् । हरेः सुदर्शनश्चैव सर्वास्त्रप्रमर्दनम् ॥ २६

शुपतं पशुपतेर्हरेरेव सुदर्शनम्। एते प्रधाने सर्वेषामस्त्राणाञ्च जगत्त्रये ॥ २७ ॥
ज पाशुपतं ब्रह्मन् मदीयं वचनं शृणु। यथा जेष्यसि राजानं पुष्कराक्षं महाबलम् ॥
र्त्तवीर्य्यमजेतारं यथा जेष्यति साम्प्रतम्। श्रूयतां सावधानेन तत्सर्वं कथयामि ते।
ालक्ष्म्याश्च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। भक्त्याश्च पुष्कराक्षेण धृतं कण्ठेविधानतः
दुर्गतिनाशिन्याः कवचं परमाद्भुतम्। धृतञ्च दक्षिणे बाहौ पुष्कराक्षसुतेन च ॥
वचस्य प्रसादेन विश्वं जेतुं क्षमौ च तौ। को जेता च त्रिभुवने देहे चकवचे स्थिते
ं यास्यामि भिक्षार्थं सन्निधाने तयोर्मुने। करिष्यामि च तद्भिक्षां प्रतिज्ञासफलायते
ह्मणस्य वचः श्रुत्वा रामः संत्रस्तमानसः। उवाच ब्राह्मणं वृद्धं हृदयेन विदूयता ॥

परशुराम उवाच।

जानामि महाप्राज्ञकस्त्वंब्राह्मणरूपधृक्। शीघ्रञ्च ब्रूहि मांमूढं तदागच्छनृपान्तिकम्

पर्शुरामवचः श्रुत्वा प्रहस्य ब्राह्मणः स्वयम्।
अहं विष्णुरेवमुक्त्वा ययौ भिक्षितुमीश्वरः ॥ ३६ ॥

त्वातयोः सन्निधानं ययाचे कवचञ्चतौ। ददतुस्तौ च कवचे विष्णवे विष्णुमायया ॥

गृहीत्वा कवचे विष्णुर्वैकुण्ठं प्रजगाम सः ॥ ३७ ॥

नारद उवाच।

हालक्ष्म्याश्च कवचं केन दत्तं महामुने। पुष्कराक्षाय भूपाय श्रोतुं कौतूहलं मम ॥३८
वचञ्चापि दुर्गायाः पुष्कराक्षसुताय च। दुर्लभं केन वा दत्तं तद्भवान् वक्तुमर्हसि ॥

कवचञ्चापि किम्भूतं तयोश्च तस्य किं फलम्।
मन्त्रौ च किं प्रकारौ तन्मे ब्रूहि जगद्गुरो ॥ ४० ॥

नारायण उवाच।

तं सनत्कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते। महालक्ष्म्याश्च कवचं मन्त्रश्चापि दशाक्षरः ॥
वनञ्चापि गोप्यञ्चैवोक्तं तच्चरितञ्च यत्। ध्यानञ्च सामवेदोक्तं पूजाविधिमनोहरम्
र्गायाश्चापि कवचं दत्तं दुर्वाससा पुरा। स्तवनञ्चापि गोप्यञ्च मन्त्रश्चापि दशाक्षरः
.. श्रोष्यसि तत् सर्वं देव्याश्च परमाद्भुतम्। महायुद्धसमारम्भेदत्तं प्रार्थनयाचयत्

महालक्ष्म्याश्च मन्त्रश्च शृणु तं कथयामि ते।
ओं श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेति परमाद्भुतम् ॥ ४५ ॥

ध्यानञ्च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने। दत्तं तस्मै कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते ॥
सहस्रदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम्। पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्राभलोचनाम् ॥
पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पविशायिनीम्। पद्मिनीं पद्महस्ताञ्च पद्ममालाविभूषिताम्॥४८
पद्मभूषणभूषाढ्यां पद्मशोभाविवर्द्धनीम्। पद्मकाननं पश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा ॥
वेदनाष्टदले पद्मे पद्मपुष्पेण पूजयेत्। गणं सम्पूज्य दत्त्वाचैवोपचाराणि षोड़श॥५०॥
स्तुत्वा च प्रणमेत् साधको भक्तिपूर्वकम्। कवचं श्रूयतां ब्रह्मन् सर्वसारं वदामि ते

नारायण उवाच।

शृणु विप्रेन्द्र पद्मायाः कवचं परमं शुभम्। पद्मनाभेन यद्दत्तं नाभिपद्मे च ब्रह्मणे ॥५२॥
संप्राप्य कवचं ब्रह्मा तत् पद्मे ससृजे जगत्। पद्मालयाप्रसादेन सलक्ष्मीको बभूव सः
पद्मालयावरं प्राप्य पाद्मश्च जगतां प्रभुः। पाद्मेन पद्मकल्पे च कवचं परमाद्भुतम् ॥५४॥
दत्तं सनत्कुमाराय प्रियपुत्राय धीमते। कुमारेण च यद्दत्तं पुष्कराय च नारद ॥ ५५ ॥
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मा सर्वसिद्धेश्वरो महान्। परमैश्वर्य्यसंयुक्तः सर्वसम्पत्समन्वितः ॥
यद्धृत्वाच धनाध्यक्षः कुबेरश्च धनाधिपः। स्वायम्भुवो मनुःश्रीमान् पठनाद्धारणाद्यतः
प्रियव्रतोत्तानपादौ लक्ष्मीवन्तौ यतो मुने। पृथुः पृथ्वीपतिः सद्यो बभूव धारणाद्यतः
कवचस्य प्रसादेन स्वयं दक्षः प्रजापतिः। धर्मश्च कर्मणां साक्षी पातायस्य प्रसादतः

यद्धृत्वा दक्षिणे बाहौ विष्णुः क्षीरोदशायिकः।
भक्त्या बिभर्त्ति कण्ठे च शेषो नारायणांशकः ॥ ६० ॥

यद्धृत्वा वामनं लेभे कश्यपश्च प्रजापतिः। सर्वदेवाधिपः श्रीमान्महेन्द्रो धारणाद् यतः

राजा मरुत्तो भगवान् बभूव धारणाद् यतः।
त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान्नहुषो यस्य धारणात् ॥ ६२ ॥

विश्वं विजिग्ये खट्वाङ्ग-पठनाद्धरणाद्यतः। मुचुकुन्दो यतःश्रीमान्मान्धातृतनयोमहान्
सर्वसम्पत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालयास्वयम्

र्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजञ्च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥

ओं ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्।
श्रीं मे पातु कपालञ्च लोचने श्रीं श्रियै नमः ॥ ६६ ॥
ओं श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदावतु।
ओं श्रीं ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम् ॥ ६७ ॥
ओं श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तं सदावतु।
ओं श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदावतु ॥ ६८ ॥
ओं श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदावतु।
ओं श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदावतु ॥ ६९ ॥
ओं श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदावतु ॥ ७० ॥
ओं श्रीं श्रीं कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा मम हस्तौ सदावतु ॥ ७१ ॥
ओं श्रीं निवासकान्तायै मम पादौ सदावतु।
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥ ७२ ॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया।
पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया ॥ ७३ ॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु श्रीः स्वयम्।
उत्तरे कमला पातु ऐशान्यां सिन्धुकन्यका ॥ ७४ ॥

रायणेशी पातूर्द्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु। सन्ततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम
ति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ७६॥
वर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत् फलं लभते धर्मी कवचेन ततोऽधिकम् ॥
रुमभ्यर्च्य विधिवत्कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान् प्रतिजन्मनि

अस्ति लक्ष्मीर्गृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम्।

देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥ ७६ ॥

सर्वपुण्यवान्धीमान् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । सस्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥
स्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोह भयैरपि । गुरुभक्ताय शिष्याय शरणाय प्रकाशयेत्
कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मींजगत्प्रसूम् । कोटिसंख्यप्रजप्तोऽपिनमन्त्रः सिद्धिदायकः॥
ते ब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे लक्ष्मीकवचं नामाष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

# एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## दुर्गाकवचम् ।

नारद उवाच ।

कवचं कथितं ब्रह्मन् पद्मायाश्च मनोहरम् । परं दुर्गतिनाशिन्याः कवचं कथय प्रभो ॥
पद्माक्षप्राणतुल्यञ्च जीवनं बलकारणम् । कवचानाञ्च यत् सारं दुर्गासेवनकारणम् ॥२

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम् । श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शङ्कराय ददौ पुरा । जघान त्रिपुरं रुद्रो यद्धृत्वा भक्तिपूर्वकम् ॥४॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः । यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी ॥५
यद्धृत्वापठनाद् ब्रह्माज्ञानवान् शक्तिमान् भुवि । शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनाञ्चगुरुर्यतः

शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥ ६ ॥

ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्रीदेवी दुर्गतिनाशिनी
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः । पुण्यतीर्थञ्च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥८।

ओं ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम् ॥
ओं ह्रीं मे पातु कपालञ्च ओं ह्रीं श्रीमिति लोचने ॥ ९ ॥

तुमे कर्णयुग्मञ्च ओं दुर्गायैनमःसदा। ओं ह्रीं श्रीमितिनासांमे सदा पातु च सर्वत

ह्रीं श्रीं हूमिति दन्तानि पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम्।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु कण्ठञ्च दुर्गे रक्षतु गण्डकम् ॥ ११ ॥

कन्धं दुर्गविनाशिन्यैस्वाहा पातुनिरन्तरम्। वक्षो विपद्विनाशिन्यैस्वाहा मे पातुसर्व

र्गे दुर्गे रक्षणीति स्वाहा नाभिं सदावतु। दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष पृष्ठं मे पातु सर्वतः ॥

ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदावतु।
ओं ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥ १४ ॥
प्राच्यां पातु महामाया आग्नेय्यां पातु कालिका।
दक्षिणे दक्षकन्या च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी ॥ १५ ॥

श्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा। कुबेरमाता कौबेर्यामैशान्यामीश्वरी सद

तूर्ध्वे नारायणी पातु अम्बिकाधः सदावतु। ज्ञाने ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रासदाव

ति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्

स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत् फलम्। सर्वव्रतोपवासे च तत्फलं लभते नरः

रुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ कवचं धारयेत्तु

च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः। इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्दुर्गतिनाशिनीम्

शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥ २२ ॥

कवचं काण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सुन्दरम्। यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयंसुदुर्लभ

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे
दुर्गाकवचंनामैकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।

# चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## सहस्राक्षमरणानन्तरं कार्त्तवीर्यस्य युद्धागमनम्।

नारायण उवाच।

ौ गृहीत्वा तदा विष्णौ वैकुण्ठञ्च गते सति। सपुत्रञ्च सहस्राक्षं जघान भृगुनन्दनः॥
त्वा युद्धन्तु सप्ताहं ब्रह्मास्त्रेण प्रयत्नतः। राजा कवचहीनोऽपि सपुत्रश्च पपात ह॥
पतिते तु सहस्राक्षे कार्त्तवीर्य्यार्जुनः स्वयम्। आजगाममहावीरोद्विलक्षाक्षौहिणीयुतः
सुवर्णरथमारुह्य रत्नसारपरिच्छदम्। नानास्त्रं परितः कृत्वा तस्थौ समरमूर्द्धनि ॥४॥
परशुरामश्च समरे तं राजेन्द्रं ददर्श ह। रत्नालङ्कारभूषाढ्यौ राजेन्द्रकोटिभिः सह ॥५॥
रत्नातपत्रभूषाढ्यं रत्नालङ्कारभूषितम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं सुमनोहरम् ॥६॥
राजा दृष्ट्वा मुनीन्द्रं तमवरुह्य रथादहो। प्रणम्य रथमारुह्य तस्थौ नृपगणैः सह ॥ ७ ॥
ददौ शुभाशिषं तस्मै रामश्च समयोचितम्। प्रोवाच च गतार्थञ्च स्वर्गं गच्छेतिसानुगः
उभयोः सेनयोर्युद्धं बभूव तत्र नारद। पलायिता रामशिष्या भ्रातरश्च महाबलाः।

क्षतविक्षतसर्वाङ्गाः कार्त्तवीर्य्यप्रपीड़िताः ॥ ६ ॥

नृपस्य शरजालेन रामः शस्त्रभृतां वरः। न ददर्श स्वसैन्यञ्च राजसैन्यं स्वमेव च १०।
चिक्षेप वह्निं रामश्च बभूवाग्निमयं रणे। निर्वापयामास राजा वारुणेनावलीलया ॥११॥
चिक्षेप रामो गान्धर्वं शैलसर्पसमन्वितम्। वायव्येन महाराजः प्रेरयामास लीलया॥
चिक्षेप रामो नागास्त्रं दुर्निवार्य्यं भयङ्करम्। गारुड़ेन महाराजः प्रेरयामास लीलया॥
माहेश्वरञ्च भगवांश्चिक्षेप भृगुनन्दनः। निर्वापयामास राजा वैष्णवास्त्रेण लीलया॥
भृगुश्चिक्षेप ब्रह्मास्त्रं नृपनाशाय नारद। ब्रह्मास्त्रेण च भूपस्य प्राप निर्वापणं रणे॥
दत्तदत्तञ्च यच्छूलमव्यर्थं मन्त्रपूर्वकम्। जग्राह राजा समरे पर्शुरामवधाय च॥१६॥
शूलं ददर्श रामश्च शतसूर्य्यसमप्रभम्। प्रलयाग्निशिखोद्रिक्तं दुर्निवार्य्यं सुरैरपि॥१७॥
पपात शूलं समरे रामस्योपरि नारद। मूर्च्छामवाप स भृगुः पपात च हरिं स्मरन्॥१८

ति पशुं गमे न सर्वे देवा भयाकुलाः । आजग्मुः समरं तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
ऽथ महाज्ञानी महाज्ञानेन लीलया । ब्राह्मणं जापयामास तूर्णं नारायणाज्ञया ॥२२
ध्व चेतनां प्राप्य ददर्श पुरतः सुरान् । प्रणनाम परं भक्त्या लज्जा नम्रात्मकन्धरः ।
॥ दृष्ट्वा सुरेशांश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः । प्रणम्य शिरसा मूर्ध्ना तुष्टाव परमेश्वरान्
ाजगाम भगवान् दत्तात्रेयो रणस्थलम् । शिष्यरक्षानिमित्तेन कृपालुर्भक्तवत्सलः ।
ः पाशुपतास्त्रञ्च जग्राह कोपसंयुतः । दत्तदत्तेन दृष्टेन बभूव स्तम्भितो रणे ॥२४
र्श स्तम्भितो रामो राजानं रणमूर्द्धनि । नानापार्षदयुक्तेन कृष्णेन रक्षितं रणे ॥२५
र्शनं प्रज्वलन्तं भ्रमणं कुर्वता सदा । सस्मितेन स्तुतेनैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥२६
पालशतयुक्तेन गोपवेशविधारिणा । नवीनजलदाभेन वंशीहस्तेन वादयन् ॥ २७ ॥
स्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी । दत्तेन दत्तं कवचं कृष्णस्य परमात्मनः ॥२८

राज्ञोऽस्ति दक्षिणे बाहौ सद्रत्नगुटिकान्वितम् ।
गृहीतकवचे शम्भौ भिक्षया योगिनां गुरौ ॥ २९ ॥

ाहन्तुं नृपं शक्तो भृगुश्चेति च नारद । श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाणीं शङ्करो द्विजरूपधृक्
क्षां कृत्वा तु कवचमानीय च नृपस्य च । शम्भुना भृगवे दत्तं कृष्णस्यकवचञ्च यत्
स्मिन्नन्तरे देवा जग्मुः स्वस्थानमुत्तमम् । उवाच पर्शुरामश्च राजानं समरं प्रति ॥

परशुराम उवाच ।

जेन्द्रोत्तिष्ठ समरं कुरु साहसपूर्वकम् । कालभेदे जयो नृणां कालभेदे पराजयः ॥
धीतं विधिवद्दत्तं कृत्वा पृथ्वी सुशासिता । यशःकृतञ्चसंग्रामोत्त्ययाहंमूर्च्छितोऽधुना
ताः सर्वे च राजेन्द्रा लीलया रावणोजितः । जितोऽहंदत्तशूलेनशम्भुनाजीवितः पुनः
मस्य वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः । मूर्ध्ना प्रणम्य तं भक्त्यायथार्थोक्तिमुवाच ह

राजोवाच ।

कमधीतं किं वा दत्तं कावा पृथ्वी सुशासिता । गताःकतिविधाभूपामादृशाधरणीतले
द्धिस्तेजो विक्रमश्च विविधा रणमन्त्रणा । श्रीरैश्वर्य्यंतथाज्ञानंदानशक्तिश्चलौकिकम्
ाचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा परमं तपः । सर्वं मनोरमासङ्गे गतमेव मम प्रभो ॥३६

सा च स्त्री प्राणतुल्या मे साध्वीपद्मांशसम्भवा । यज्ञेषु पत्नी मातेवस्नेहेक्रीड़तिसङ्गिनी
बाल्यात्सङ्गिनी शश्वत्शयनेभोजने रणे । तां विना प्राणहीनोऽहंविषहीनोयथोरगः
त्वया न दृष्टं युद्धं मे पुरेयं शोचना स्थिता । द्वितीयशोचना विप्र हतोऽहं ब्राह्मणेन च
काले सिंहः शृगालश्च शृगालः सिंहमेवच । काले व्याघ्रं हन्ति मृगोगजेन्द्रंहरिणस्तथा
हिषं मक्षिका काले गरुड़श्च तथोरगः । किङ्करःस्तौतिराजेन्द्रं कालेराजा च किङ्करम्
न्द्रश्च मानवः काले काले ब्रह्मा मरिष्यति । तिरोभूत्वाच प्रकृतिः काले श्रीकृष्णविग्रहे
रिष्यन्ति सुराः सर्वे त्रिलोकस्थाश्चराचराः । सर्वे कालेलयंयान्तिकालोहिदुरतिक्रमः

कालस्य कालः श्रीकृष्णः स्रष्टुः स्रष्टा यथेच्छया ।
संहर्त्ताचैव संहर्त्तुः पातुः पाता परात्परः ॥ ४७ ॥

महान् स्थूलतमः(स्थूलात्)सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमःकृशः । परमाणुपरःकालःकालश्चकालभेदकः
यस्य लोमानिविश्वानि स पुमांश्चमहाविराट् । तेजसा षोड़शांशश्चकृष्णस्यपरमात्मनः
ततः क्षुद्रविराड् जातः सर्वेषां कारणंपरम् । यः स्रष्टा च स्वयं ब्रह्मायन्नाभिकमलोद्भवः
नाभेः कमलदण्डस्य योऽन्तं न प्राप यत्नतः । भ्रमणाल्लक्षवर्षञ्च ततः स्वस्थानसंस्थितिः
तपश्चके ततस्तत्र लक्षवर्षञ्च वायुभुक् । ततो ददर्श गोलोकं श्रीकृष्णञ्च सपार्षदम् ॥
गोपगोपीपरिवृतं द्विभुजं मुरलीकरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥
दृष्ट्वानुज्ञां गृहीत्वा च प्रणम्य च पुनः पुनः । ईश्वरेच्छाञ्च विज्ञाय स्रष्टुं सृष्टिं मनो दधे
यः शिवःसृष्टिसंहर्त्ता स च स्रष्टुर्ललाटजः । विष्णुःपाताक्षुद्रविराट् श्वेतद्वीपनिवासकृत्
सृष्टिकारणभूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सन्ति विश्वेषु सर्वेषु श्रीकृष्णस्य कलोद्भवाः

तेऽपि देवाः प्राकृतिकाः प्राकृतश्च महाविराट् ।
सर्वप्रसूतिः प्रकृतिः श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः ॥५७॥
न शक्तः परमेशोऽपि तां शक्तिं प्रकृतिं विना ।
सृष्टिं विधातुं मायेशो न सृष्टिर्मायया विना ॥५८॥

सा च कृष्णे तिरोभूत्वा सृष्टिसंहारपालके । साविर्भूता सृष्टिकाले सानित्यामहेश्वरी
कुलालश्च घटं कर्त्तुं यथा शक्तो मृदं विना । स्वर्णं विना स्वर्णकारःकुण्डलंकर्त्तुमक्षमः

सा च शक्तिः सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरेच्छया। राधापद्माचसावित्रीदुर्गादेवीसरस्वती
प्राणाधिष्ठात्री या देवीकृष्णस्यपरमात्मनः। प्राणाधिकप्रियतमा सा राधा परिकीर्त्तिता
ऐश्वर्य्याधिष्ठात्रिदेवी सर्वमङ्गलकारिणी। परमानन्दरूपा च सा लक्ष्मीः परिकीर्त्तिता
विद्याधिष्ठात्रिदेवी या परमेशस्य दुर्लभा। वेदशास्त्रयोगमाता सा सावित्री प्रकीर्त्तिता
बुद्ध्यधिष्ठात्रि या देवी सर्वशक्तिस्वरूपिणी। सर्वज्ञानात्मिका सर्वासादुर्गादुर्गनाशिनी
वागधिष्ठात्रि या देवी शास्त्रज्ञानप्रदा सदा। कृष्णकण्ठोद्भवा साच याचदेवो सरस्वती
पञ्चधादौ स्वयं देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। ततः सृष्टिक्रमेणैव बहुधा कलया च सा॥६
योषितः प्रकृतेरंशाः पुमांसः पुरुषस्य च। मायया सृष्टिकाले च तद्विना न भवेद्ध्रुवम्
सृष्टिश्च प्रतिविश्वेषु ब्रह्मन् ब्रह्मोद्भवासदा। पाताविष्णुश्च संहर्त्ता शिवःशश्वत्शिवप्रदः
दत्तदत्तं ज्ञानमिदं राम महाश्च पुष्करे। दीक्षाकाले च माघ्याञ्च मुनिप्रवरसन्निधौ
इत्युक्त्वा कार्त्तवीर्य्यश्च रामं नत्वा च सस्मितः। आरुरोह रथं शीघ्रं गृहीत्वासशरंधनुः
रामस्ततो राजसैन्यं ब्रह्मास्त्रेण जघान ह। नृपं पाशुपतेनैव लीलया श्रीहरिं स्मरन्।
एवं त्रिःसप्तकृत्वश्च क्रमेण च वसुन्धराम्। रामश्चकार निर्भूपां लीलया च शिवंस्मरन्
गर्भस्थं मातृक्रोडस्थं शिशुं वृद्धञ्च मध्यमम्। जघान क्षत्रियं रामः प्रतिज्ञा पालनाय च
कार्त्तवीर्य्यश्च गोलोकंजगामकृष्णसन्निधिम्। जगामपरशुरामश्च स्वालयंश्रीहरिस्मरन्
त्रिःसप्त कृत्वो निर्भूपां महीं दृष्ट्वा महेश्वरः। पशुना रमणं दृष्ट्वा पशुरामश्चकार तम्।
देवाश्च मुनयो देव्यः सिद्धगन्धर्वकिन्नराः। सर्वे चक्रुः पुष्पवृष्टिं राममूर्द्धनि च नारद
स्वर्गे दुन्दुभयो नेदुर्हरिशब्दो बभूव ह। परशुरामस्य यशसा शुभ्रेण पूरितं जगत्॥३४
ब्रह्मा भृगुश्च शुक्रश्च च्यवनो वाल्मीकिस्तथा। जमदग्निर्ब्रह्मलोकादाजगाम प्रहर्षितः॥
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः सानन्दाश्रुसमन्विताः। दूर्वापुष्पकराः सर्वे कुर्वन्तो मङ्गलाशिषम्
प्रणनाम च तान्रामोदण्डवत् पतितोभुवि। क्रोडे चकार ब्रह्मादौ क्रमात्तातेतिसंवदन्
तमुवाच स्वयं ब्रह्मा पशुं रामं जगद्गुरुः। हितं नीति वेदसारं परिणामसुखावहम्॥४२

ब्रह्मोवाच।

शृणु राम प्रवक्ष्यामि सर्वसम्मतकरं परम्। काण्वशाखोक्तवचनं सत्यञ्च सर्वसम्मतम्।

पूज्यानामेव सर्वेषामिष्टः पूज्यतमः परः । जनको जन्मदानत्वात् पालनाच्च पितास्मृतः
गरीयान् जन्मदातुश्च सोऽन्नदाता पिता मुने । विनान्नं नश्वरो देहोनित्यश्च पितुरुद्भवः
तयोः शतगुणेमातापूज्यामान्या चवन्दिता । गर्भधारणपोषाभ्यां साचताभ्यां गरीयसी
तेभ्यः शतगुणे पूज्योऽभीष्टदेवः श्रुतौ श्रुतः । ज्ञानविद्यामन्त्रदाताऽभीष्टदेवात्परो गुरुः
गुरुवद् गुरुपुत्रश्च गुरुपत्नी ततोऽधिका । देवे रुष्टे गुरू रक्षेद् गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥८८
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः । गुरुरेव परं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रियः परः ॥ ८६ ॥
गुरुर्ज्ञानं ददात्येव ज्ञानञ्च हरिभक्तिदम् । हरिभक्तिप्रदाता यः को वा बन्धुस्ततः परः ॥

अज्ञानतिमिराच्छन्नो ज्ञानदीपं यतो लभेत् ।
लब्ध्वा च निर्मलं पश्येत् को वा बन्धुस्ततः परम् ॥ ६१ ॥

गुरुदत्तश्चमन्त्रञ्चजप्त्वाज्ञानंततोलभेत् । सर्वज्ञत्वञ्च सिद्धिश्च कोवा बन्धुस्ततोऽधिकः
सुखं जयति सर्वत्र विद्यया गुरुदत्तया । यया पूज्योऽपिजगति कोवाबन्धुस्ततोऽधिक

विद्यान्धो वा धनान्धो वा यो मूढो न भजेद् गुरुम् ।
ब्रह्महत्याधिकं पापं लभते नात्र संशयः ॥ ६४ ॥

दरिद्रं पतितं क्षुद्रंनरबुद्ध्याचरेद् गुरुम् । सोऽशुचिस्तीर्थस्नातोऽपि नाधिकारीचकर्मसु
अभीष्टदेवः श्रीकृष्णो गुरुस्ते शङ्करः स्वयम् । शरणं गच्छ हे पुत्र देवात्पूज्यतमं गुरुम्
त्रिः सप्तकृत्वो निर्भूपा त्वया पृथ्वी कृता यतः । प्राप्ता त्वया हरेर्भक्तिस्तं शिवंशरणंव्रज
शिवञ्च शिवरूपञ्च शिवदं शिवकारणम् । शिवाराध्यं शिवं शान्तं गुरुं त्वं शरणं व्रज
गोलोकनाथो भगवानंशेन शिवरूपधृक् । य इष्टदेवः स गुरुस्तमेव शरणं व्रज ॥६६॥
आत्माकृष्णः शिवोज्ञानंमनोऽहंसर्वजीविषु । प्राणा विष्णोश्चप्रकृतिःसर्वशक्तियुतासुत
ज्ञानदं ज्ञानरूपञ्च ज्ञानबीजं सनातनम् । मृत्युञ्जयं कालकालं तं गुरुं शरणं व्रज ॥१०१
महाज्योतिः स्वरूपं तं भक्तानुग्रहविग्रहम् । शरणं व्रज सर्वज्ञं भगवन्तं सनातनम् ॥
प्रकृतिर्लक्षवर्षञ्च तपस्तप्त्वा यमीश्वरम् । कान्तं प्रियपतिं लेभे तं गुरुं शरणं व्रज ॥
इत्युक्त्वा मुनिभिः सार्द्धं जगाम कमलोद्भवः । रामश्च गन्तुं कैलासं मनश्चक्रे च नारद ।
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कार्त्तवीर्यवधवर्णनं
नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

# एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## भार्गवस्य कैलाशगमनम् ।

नारायण उवाच ।

हरेश्च कवचं धृत्वा कृत्वा निःक्षत्रियां महीम् । रामो जगाम कैलासं नमस्कर्त्तुं शिवं गुरुम्
गुरुं पत्नीं शिवामम्बां द्रष्टुं गुरुसुतौ च तौ । गुणेर्नारायणसमौ कार्त्तिकेयगणेश्वरौ ॥
मनोयायी महात्मा च शीघ्रं संप्राप्य तत्क्षणम् । ददर्श नगरं रम्यमतीव सुमनोहरम् ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशैर्मणिभिः सुमनोहरैः । सुवर्णभूमिसदृशैः राजमार्गैर्विराजितम् ॥
सिन्दूराकारवर्णैश्च वेष्टितं मणिवेदिभिः । संयुक्तं मुक्तानिकरैः पूरितं मणिमण्डपैः ॥५
यक्षाणामालयैर्दिव्यैः संयुक्तं शतकोटिभिः । कपाटस्तम्भसोपानैः शोभितैर्मणिनिर्मितैः
सुवर्णकलसैर्दिव्यैः राजितैः श्वेतचामरैः । रत्नकाञ्चनपूर्णैश्च यक्षेन्द्रगणवेष्टितैः ॥ ७ ॥
रत्नभूषणभूषाढ्यैर्दीपितैः सुन्दरीगणैः । बालिकाभिर्बालकैश्च चित्रपुत्तलिकाकरैः ॥८॥

क्रीडद्भिः सस्मितैः शश्वत् स्वच्छन्दश्च विराजितैः ।
पारिजातद्रुमगणैः स्वर्णदीतीरनीरजैः ॥ ९ ॥

आकीर्णं पुष्पजालैश्च पुष्पितैश्चसुगन्धिभिः । कल्पवृक्षाश्रितैः सिद्धैः कामधेनुपुरस्कृतैः
सिद्धविद्यातिनिपुणैः पुण्यवद्भिर्निषेवितम् । वटवृक्षैरक्षयैश्च त्रिलक्षयोजनोच्छ्रितैः ॥
शतयोजनविस्तीर्णैः शतस्कन्धसमन्वितैः । असंख्यशाखानिकरैरसंख्यफलसंयुतैः ॥१२
नानापक्षिगणाकीर्णैः सुमनोहरशब्दितैः । कल्पितैः शीतवातेन मण्डितश्च सुगन्धिना ।
पुष्पोद्यानसहस्रेण सरसाञ्च शतेन च । सिद्धेन्द्रालयलक्षैश्च मणिरत्नविकारजैः ॥१४॥
रामश्च दृष्ट्वा नगरमतीव हृष्टमानसः । ददर्श पुरतो रम्यं श्रीयुक्तं शङ्कराश्रमम् ॥ १५ ॥
सुवर्णमूल्यशतकैर्मणिभिः स्वर्णवर्णकैः । खचितं रत्नसारेण रचितं विश्वकर्मणा ॥१६
चतुर्योजनविस्तीर्णं त्रिपञ्चयोजनस्थितम् । चतुरस्रं चतुष्कोणं प्राकारं सुमनोहरम् ॥१७
द्वारं रत्नकपाटेन नानाचित्रान्वितेन च । युक्तं मणीन्द्रवेदिभिर्मणिस्तम्भविराजितैः ॥१८

तद्दक्षिणे वृषेन्द्रञ्च वामे सिंहञ्च नारद । नन्दीश्वरं महाकालं पिङ्गलाक्षं भयङ्करम् ॥
विशालाक्षञ्च बाणञ्च विरूपाक्षं महाबलम् । विकटाक्षंभास्कराक्षं रक्ताक्षंविकटोदरम्
संहारभैरवं कालभैरवञ्च भयङ्करम् । रुरुभैरवमीशाभं महाभैरवमेव च ॥ २१ ॥
कृष्णाङ्गभैरवञ्चैव क्रोधभैरवमुल्बणम् । कपालभैरवञ्चैव रुद्रभैरवमेव च ॥ २२ ॥

सिद्धेन्द्रांश्च रुद्रगणान् विद्याधरांश्च गुह्यकान् ।
भूतान् प्रेतान् पिशाचांश्च कुष्माण्डान् ब्रह्मराक्षसान् ॥ २३ ॥

वेतालान्दानवांश्चैव योगीन्द्रांश्च जटाधरान । यक्षान् किम्पुरुषांश्चैव किन्नरांश्च ददर्श ह
तान्दृष्ट्वा नन्दिकेशाज्ञां गृहीत्वाभृगुनन्दनः । तां सम्भाष्याभ्यन्तरञ्च जगामानन्दमानसः
रत्नेन्द्रसारनिर्माणं ददर्श शतमन्दिरम् । अमूल्यरत्नकलसैरुज्ज्वलद्भिश्च विराजितम् ॥
अमूल्यरत्नरचितैर्मुक्तानिर्म्मलदर्पणैः । हीरासारविकारैश्च कपाटैश्च विराजितम् ॥ २७ ॥
गोरोचनाभिर्म्मणिभिर्युतं स्तम्भसहस्रकैः । मणिसारविकारैश्च सोपानैः परिसेवितम्
ददर्शाभ्यन्तरं द्वारं नानाचित्रेणचित्रितम् । मुक्तामाणिक्यग्रथितैर्मालाजालैर्विराजितम्
ददर्श कार्त्तिकं वामे दक्षिणे च गणेश्वरम् । वीरभद्रं महाकायं शिवतुल्यपराक्रमम् ॥
प्रधानपार्षदगणान् क्षेत्रपालांश्च नारद । रत्नसिंहासनस्थांश्च रत्नभूषणभूषितान् ॥ ३१ ॥
तान् संभाष्य भृगुः शीघ्रं महाबलपराक्रमः । पर्शुहस्तः पर्शुरामो गमनङ्कर्त्तुमुद्यतः ॥३२
गच्छन्तं तं गणेशश्च क्षणं तिष्ठेत्युवाच ह । निद्रितो निद्रया युक्तो महादेवोऽधुनेति च
ईश्वराज्ञां गृहीत्वाहमत्रागत्य क्षणान्तरे । त्वया सार्द्धंगमिष्यामिभ्रातस्तिष्ठेतिसाम्प्रतम्
श्रुत्वा गणेशवचनं पर्शुरामो महाबलः । बृहस्पतिसमो वक्ता प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे कैलासवर्णनं
नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

# द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## गणेशस्य समीपे रामस्य शिवशिवादर्शनप्रार्थनम् तयोः कथोपकथनञ्च

परशुराम उवाच।

यास्याम्यन्तः पुरंभ्रातःप्रणामंकर्तुमीश्वरम्। प्रणम्यमातरं भक्त्या यास्यामित्वरितंगृहम्
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपा कृतापृथ्वीच लीलया। कार्तवीर्य्यः सुचन्द्रश्च हतोयस्यप्रसादतः

नानाविद्या यतो लब्धा नानाशास्त्रं सुदुर्लभम्।
तं गुरुं जगतां नाथं द्रष्टुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ५॥

सगुणं निर्गुणञ्चैव भक्तानुग्रहविग्रहम्। सत्यं सत्यस्वरूपञ्च ब्रह्मज्योतिः सनातनम्॥
स्वेच्छामयं दयासिन्धुंदीनबन्धुंमुनीश्वरम्। आत्मारामं पूर्णकामं व्यक्ताव्यक्तंपरात्परम्
परापराणां स्रष्टारं पुरुहूतं पुरस्कृतम्। पुराणं परमात्मानमीशानमादिमव्ययम्॥ ६॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वमङ्गलकारणम्। सर्वमङ्गलदं शान्तं सर्वैश्वर्य्यप्रदं वरम्॥ ७॥
आशुतोषं प्रसन्नास्यं शरणागतवत्सलम्। भक्ताभयप्रदं भक्तवत्सलं समदर्शनम्॥ ८॥
इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च तस्थौ गणपतेः पुरः। वाचा मधुरया तत्र तमुवाचगणेश्वरः॥९॥

श्रीगणेश्वर उवाच।

क्षणं तिष्ठ क्षणंतिष्ठ शृणु भ्रातरिदं वचः। रहःस्थलनियुक्तो न द्रष्टव्यः स्त्रीयुतः पुमान्
स्त्रीसंयुक्तं पुरुषं यः पश्यति नराधमः। करोति रसभङ्गं वा कालसूत्रं व्रजेद् ध्रुवम् ११
तत्र तिष्ठति पापीयान् यावच्चन्द्रदिवाकरौ। विशेषतश्च पितरं गुरुं भूतपतिं द्विज १२
रहः सुरतसंसक्तं न हि पश्येद्विचक्षणः। कामतः कोपतो वापि यः पश्येत्सुरतोन्मुखम्

स्त्रीविच्छेदो भवेत्तस्य ध्रुवं सप्तसु जन्मसु।
श्रोणीवक्षःस्थलं वक्त्रं यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामतोऽपि विमूढश्च सोऽन्धो भवति निश्चितम्॥१४॥

गणेशस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य भृगुनन्दनः। तमुवाच महाकोपान्निष्ठुरं वचनं मुने॥१५॥

परशुराम उवाच ।

हो श्रुतं किं वचनमपूर्वनीतिमुत्तमम् । इदमेवमधो नैवं श्रुतमीश्वरवक्त्रतः ॥ १६ ॥

श्रुतं श्रुतौ वाक्यमिदं कामिनाञ्च विकारिणाम् ।
निर्विकारस्य च शिशो न दोषः कश्चिदेवहि ।
यास्याम्यन्तःपुरं भ्रातस्तव किं तिष्ठ बालक ॥१७॥

या दूरीकरिष्यामि कार्य्यञ्च समयोचितम् । तथैव तातो माता च एवं नैवनिरूपितम् ।
तां पितरौ तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ । पार्वती स्त्री पुमान् शम्भुरितिकैर्न निरूपितः ।१६
रूपः शङ्कश्च सर्वारूपा च पार्वती । गुणातीतस्यका क्रीड़ा तद्भङ्गोवाकुतो विभो ।२०

क्रीड़ा लज्जा भीतिभङ्गो ग्राम्यस्य नेश्वरस्य च ।
स्तनान्धं बालकं दृष्ट्वा पित्रोर्लज्जा कुतो भवेत् ॥२१॥
लज्जायाश्च कुतो लज्जा लज्जेशस्य च तत्कुतः ।
लज्जा लज्जामवाप्नोति तापं किंवा हुताशनः ॥२२॥

शीतं शीतमहो भ्रातर्निदाघो दाहमेव च । भीतिर्भीतिमवाप्नोतिमृत्योर्मृत्युर्बिभेतिकिम् ॥
कुतोज्वरोज्वरंहन्तिव्याधिव्याधिश्चजीर्य्यति । संहर्त्तानाञ्चसंहर्त्ताकालःकालाद्बिभेतिच
स्रष्टासृजतिस्रष्टारं पातास्वंपातित्वन्मते । क्षुत्क्षुधंसमवाप्नोतितृष्णातृष्णांप्रयातिकिम्

निद्रा निद्राञ्च श्रीः शोभां शान्तिः शान्तिञ्च तन्मते ।
पुष्टिः पुष्टिमवाप्नोति तुष्टिस्तुष्टिं क्षमा क्षमाम् ।
आत्मनः परमात्मास्ति शक्तिः शक्त्या बिभेति किम् ॥२६॥

लोभमोहकामक्रोधाःस्वात्मनानहिवाधिताः । दयान वद्धादययानेच्छावद्धेच्छयाप्रभो ॥
ज्ञानवुद्ध्योःकोविकारोजरामावाधते जरा । चिन्तानचिन्तयाग्रस्ताचक्षुःस्वञ्चनपश्यति
हर्षोमुदंकिमाप्नोतिशोकंशोकोनवाधते । काविपत्तिर्विपत्तेश्च सम्पत्तिः सम्पदः कुतः ॥
मेधावाधारणाशक्ति स्मृतेर्वा स्मरणंकुतः । न दग्धः स्वप्रतापेनविवस्वानिव सम्मतः ॥
विपरीतमतोभ्रातस्त्वयैवाचरितोऽधुना । न श्रुतोऽयंगुरुमुखान्नदृष्टोन श्रुतौ श्रुतः ॥३१॥
इत्युक्त्वापरशुरामश्च प्रहस्यचपुनःपुनः । शीघ्रं गन्तुं मनश्चक्रेगुरोरभ्यन्तरं मुदा ॥३२ ॥

रशुरामवचः श्रुत्वाजितक्रोधोगणेश्वरः। शुद्धसत्वस्वरूपश्च प्रहस्यतमुवाच ह ॥३३॥

गणपतिरुवाच।

अज्ञानतिमिराच्छन्नोज्ञानंप्राप्नोतिज्ञानिनः। पितुर्भ्रातुर्मुखाज्ज्ञानंदुर्लभंभाग्यवान्लभेत् ॥
श्रुतंज्ञानंविशिष्टञ्चज्ञानिनामपिदुर्लभम्। किञ्चिन्ममन्दबुद्धेःशृणुभ्रातर्निवेदनम् ॥३५॥
योनिर्गुणःसोनिर्लिप्तःशक्तिभ्योनहिसंयुतः। सिसृक्षुरार्थितोशक्तोनिर्गुणःसगुणो भवेत् ॥
यावन्तिच शरीराणिभोगार्हाणिमहामुने। प्राकृतानि च सर्वाणि श्रीकृष्णविग्रहं विना ॥
ध्यायन्ते योगिनस्तञ्चशुद्धज्योतिःस्वरूपिणम्। हस्तपादादिरहितंनिर्गुणं प्रकृतेः परम् ॥
वैष्णवास्तं नमस्यन्ते भक्तानुग्रहकारकम्। कुतोबभूव तज्ज्योतिरहोतेजस्विनां विना ॥
ज्योतिरभ्यन्तरेनित्यंशरीरंश्यामसुन्दरम्। द्विभुजंमुरलीहस्तंसस्मितंपीतवाससम् ॥४०॥
श्रीवामूल्यसद्रत्नभूषणेन विभूषितम्। ज्योतिरभ्यन्तरे मूर्त्तिं पश्यन्ति कृपया विभो ॥
तद्दास्येनियुक्तास्तेभवन्त्येवेश्वरेच्छया। योगस्तपोवादास्यस्यकलांनार्हन्तिषोड़शीम् ॥
यदा सृष्टुमुनुः कृष्णःससृजेप्रकृतिमुदा। तद्वयोर्नोहार्पितंवीर्य्यंवीर्य्याड्भिवो बभूव ह ॥
दिव्येन लक्षवर्षेणगर्भाड्भिभ्योविनिर्गतः। तदा चकार निश्वासं ततोवायुर्बभूव ह ॥४४॥
निश्वासेन समं भ्रातर्मुखबिन्दुर्विनिर्गतः। ततो बभूव सहसा जलराशिर्हरेः पुरः ॥४५॥
तज्जलेचस्थितोड्भियोदिव्यवर्षञ्चलक्षकम्। ततो बभूवसहसाविश्वाधारो महाविराट् ॥

यावन्ति गात्रलोमानि तस्य सन्ति महात्मनः।
ब्रह्माण्डानि च तावन्ति विद्यमानानि निश्चितम् ॥४७॥

तथैव प्रति ब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। देवाश्च मुनयश्चैव विद्यमानाश्चराचराः ॥४८॥
महाविराडाश्रयश्च सर्वस्य च जनस्य च। निश्वासवायुर्भगवान् बभूव श्रीहरेर्मुने ॥४९॥
महान्विष्णुःकलयाततःक्षुद्रविराड्भूत्। तन्नाभिकमले ब्रह्मा शङ्करस्तल्ललाटजः ॥५०॥
विष्णुस्तदंशःपाताय:श्वेतद्वीपनिवासकृत्। एवन्ते प्रति ब्रह्माण्डे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
स्वयञ्च स्वांशकलया नानामूर्त्तिधरो हरिः। तदाभवच्च सगुणः सर्वशक्तियुतस्तदा ॥५२॥
रूपंतज्ञादिरहितः स च स्वेच्छामयोमहान्। सर्वदा सर्वभोगार्हः सर्वशक्तिसमन्वितः ॥
लज्जानाम्नैवलज्जाया मतोऽयंसर्वसम्मतः। या च लज्जापर्वतादेर्वातस्यलज्जा कुतो गता ॥

सर्वशक्तिमयीदुर्गामहत्त्वयासाच शैलजा । तस्यामन्त्राद्यःसन्ति सर्वदा सर्वसम्मता ॥५५

पञ्चधा याच प्रकृतिः श्रीकृष्णस्य च भूधर । राधापद्मा च सावित्री दुर्गादेवी सरस्वती ॥

प्राणाधिष्ठात्री या देवी कृष्णस्य परमात्मनः ।
प्राणाधिका प्रिया सा च राधास्ति तस्य वक्षसि ॥५७॥

विद्याधिष्ठात्रीयादेवीसावित्रीब्रह्मणःप्रिया । लक्ष्मीर्नारायणस्यैवसर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥

सरस्वतीद्विधा भूत्वा कृष्णस्य मुखनिर्गता । सावित्रीब्रह्मण कान्तास्वयंनारायणस्य च

बुद्ध्यधिष्ठात्री या देवी ज्ञानस्य शक्तिसंयुता ।
सा दुर्गा शूलिनः कान्ता तस्या लज्जा सुता गता ॥६०॥

प्रकृतिः पञ्चधा भ्रातर्गोलोके च बभूव ह । इमाः प्रधानाः कलया बभूवानेकधापि सा ॥

विप्रेन्द्रनित्यंवैकुण्ठं ब्रह्माण्डात्परमुच्यते । अविनाशीस्थलंशश्वत्प्रलयेप्राकृतिके ध्रुवम् ॥

तत्र नारायणो देवः कृष्णाङ्गांशश्चतुर्भुजः । वनमाली पीतवासाःशक्त्या च पद्मया सह ॥

स्वयंकृष्णश्चगोलोकेद्विभुजःश्यामसुन्दरः । सस्मितोमुरलीहस्तोराधावक्षःस्थलस्थितः ॥

गोगोपगोपीभिः शश्वत् संयुक्तो गोपरूपधृक् ।
परिपूर्णतमः श्रीमान् निर्गुणः प्रकृतेःपरः ॥६५॥

स्वेच्छामयःस्वतन्त्रस्तु परमानन्दरूपधृक् । सुतःकलोद्भवायस्यषोडशांशोमहाविराट् ॥

यतो भवन्तिविश्वानिस्थूलसूक्ष्मात्मिकानि च । पुनस्तत्र प्रलीयन्ते एवमेव मुहुर्मुहुः ॥

गोलोकमूर्ध्वं वैकुण्ठात् पञ्चाशत्कोटियोजनम् ।
नास्ति लोकस्तदूर्ध्वे च नास्ति कृष्णात्परः प्रभुः ॥६८॥

इदं श्रुतंशम्भुवक्त्राद्यन्मयातेकथितंद्विज । क्षणंतिष्ठाधुना भ्रातरीश्वरः सुरतोन्मुखः ॥६९॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे पर्शुराम संवादे ज्ञाननिरूपणं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

# त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## गमनव्याघाते रामस्य गणेशेन सह वाग्युद्धम् ।

नारायण उवाच ।

गेशवचनं श्रुत्वा स तदा रागतः सुधीः । पर्शुहस्तः पर्शुरामो निर्भयो गन्तुमुद्यतः ॥
गेश्वरस्तदा दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय्यद्यतः । वारयामास संप्रीत्या चकार विनयं पुनः ॥२॥
मस्तं प्रेषयामास हृत्वानु पुनः पुनः । बभूव च ततस्तत्र वाग्युद्धं हस्तकर्षणम् ॥३॥
र्शुं निक्षेपणं कर्त्तुं मनश्चक्रे भृगुस्तदा । हाहाकृत्वा कार्त्तिकेयो बोधयामास संसदि ॥

अव्यर्थमस्त्रं हे भ्रातर्गुरुपुत्रे कथं क्षिप ।
गुरुवद् गुरुपुत्रश्च मा भवान् हन्तुमर्हति ॥ ५ ॥

र्शुं क्षिपन्तं कुपितं रक्तपद्मदलेक्षणम् । गणेशो रोधयामास निवर्तस्वेत्युवाच तम् ॥
गणेशं रामश्च प्रेरयामास कोपतः । पपात पुरतो वेगाच्छिन्नमानो गजाननः ॥ ७ ॥
जाननः समुत्थाय धर्मं कृत्वातु साक्षिणम् । पुनस्तं बोधयामास जितक्रोधः शिवात्मजः
वर्त्तस्व निवर्त्तस्वेत्युच्चार्य्य च पुनः पुनः । प्रवेशने ते का शक्तिरीश्वराज्ञां विनाप्रभो
म भ्राता त्वमतिथिर्विद्यासम्बन्धतो ध्रुवम् । ईश्वरप्रियशिष्यश्च सहामि तेन हेतुना ॥
हं कार्त्तवीर्य्यश्च भूपास्ते क्षुद्रजन्तवः । अतो विप्रन जानासिमाञ्च विश्वेश्वरात्मजम्
पं तिष्ठ निवर्त्तस्व समरे ब्राह्मणातिथे । क्षणान्तरे त्वयासार्द्धं यास्यामीश्वरसन्निधिम्

नारायण उवाच ।

रस्यवचनं श्रुत्वा प्रजहास पुनःपुनः । पर्शुं क्षेप्तुं मनश्चक्रे प्रणम्य शङ्करं हरिम् ॥१३॥
र्शुं क्षिपन्तं कोपेन पर्शुरामं गजाननः । दृष्ट्वा मुमूर्षुं देवेशो धर्मं कृत्वातु साक्षिणम् ॥
कारहस्तं योगेन स तदा कोटियोजनम् । योगीन्द्रस्तत्र सन्तिष्ठन्भ्रामयित्वा पुनःपुनः
तथा वेष्टयित्वा तु भ्रामयित्वा तु तत्रवै । ऊर्द्ध्वमुत्तोल्य वेगेन क्षुद्राहिं गरुडो यथा
सद्वीपांश्च शैलांश्च काञ्चनीं सप्त सागरान् । क्षणेन दर्शयामास रामं योगेन स्तम्भितम्

हस्तपादाद्यनाथं तं जडं सर्वाङ्गकम्पितम् । पुनस्तं भ्रामयामास दर्पितं दर्पनाशनः ॥१८॥
भूर्लोकञ्च भुवोलोकं स्वर्लोकञ्च सुरेश्वरः । जनलोकं तपोलोकं ध्रुवलोकञ्च तत्परम् ॥
गौरीलोकं शम्भुलोकं दर्शयामास नारद । दर्शयित्वा तु ब्रह्माण्डं स पपौ सप्तसागरान्
पुनरुद्गीरणं चक्रे सनकसागरोदकम् । तत्र तमर्पयामास गभीरे सागरोदके ॥ २१ ॥

मुमूर्षुं तं सन्तरन्तं पुनर्जग्राह लीलया ।
पुनस्तत्र भ्रामयित्वा ब्रह्माण्डादूर्ध्वमुत्तमम् ॥ २२ ॥

वैकुण्ठंदर्शयामास सलक्ष्मीकं चतुर्भुजम् । क्षणं तत्र भ्रामयित्वा योगीन्द्रो योगमायया
पुनः करञ्च योगेन वर्द्धयामास लीलया । गोलोकं दर्शयामास विरजाञ्च नदीश्वरीम् ॥
वृन्दावनं शतशृङ्गंशैलेन्द्रं रासमण्डलम् । गोपीगोपादिभिःसार्द्धं श्रीकृष्णं श्यामसुन्दरम्
द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नसिंहासनस्थञ्च रत्नभूषणभूषितम् ॥ २६॥
तेजसा कोटिसूर्य्याभं राधावक्षःस्थलस्थितम् । एवंकृष्णं दर्शयित्वाप्रणमय्य पुनःपुनः
क्षणेन लम्बमानस्य भ्रामयित्वा पुनः पुनः । दृष्ट्वा कृष्णमिष्टदेवं सर्वपापप्रणाशनम् ।

भ्रूणहत्यादिकं पापं भृगोर्दूरं चकार ह ॥ २८ ॥

न भवेद्व यातना नष्टा विनाभोगेन पापजा । स्वल्पाञ्च बुभुजेरामो गतान्या कृष्णदर्शनात्
क्षणेन चेतनां प्राप्य पपात वेगतो भुवि । बभूव दूरीभूतञ्च गणेशस्तम्भनं भृगोः ॥ ३०॥
सस्मार कवचं स्तोत्रं गुरुदत्तं सुदुर्लभम् । अभीष्टदेवं श्रीकृष्णं गुरुं शम्भुं जगद्गुरुम्
चिक्षेप पर्शुमव्यर्थं शिवतुल्यञ्च तेजसा । ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभाशतगुणं मुने ॥३२ ॥
पितुरव्यर्थमस्त्रञ्च दृष्ट्वा गणपतिः स्वयम् । जग्राह वामदन्तेन नास्त्रं व्यर्थञ्चकारह ॥
निपत्य पर्शुर्वेगेन छित्वा दन्तं समूलकम् । जगाम रामहस्तञ्च महादेवबलेन च ॥ ३४ ॥
हाहेति शब्दमाकाशे देवाश्चक्रुर्महाभिया । वीरभद्रः कार्त्तिकेयः क्षेत्रपालाश्च पार्षदाः ॥
पपात भूमौ दन्तश्च सरक्तः शब्दमुच्चरन् । पपात गैरिकयुक्तश्च महास्फाटिकपर्वतः॥३६।

शब्देन महता विप्र चकम्पे पृथिवी भिया ।
कैलासस्था जनाः सर्वे मूर्च्छामापुः क्षणं भिया ॥३७॥
निद्रा बभञ्ज निद्राया निद्रेशस्य जगत्प्रभोः ।

आजगाम बहिः शम्भुः पार्वत्या सह सम्भ्रमात् ॥ ३८ ॥
ति ददर्श हेरम्बं लोहितास्यं क्षतं नतम् । भग्नदन्तं जितक्रोधं सस्मितं लज्जितं मुने ॥
पप्रच्छ पार्वती शीघ्रं स्कन्दं किमिति पुत्रक ।
स च तां कथयामास वार्त्तां पौर्वापरीं भिया ॥ ४० ॥
कोप दुर्गा कृपया रुरोद च मुहुर्मुहुः । उवाच शम्भोः पुरतः पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि ॥
म्बोध्य शम्भुं शोकेन भिया विनयपूर्वकम् । उवाचप्रणतासाध्वी प्रणतार्त्तिहरंपतिम् ।
इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे गणेशदन्तभङ्गो नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

---

## चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

### गणेशदन्तभङ्गं दृष्ट्वा रामं प्रति गौर्या उपालम्भः ।

पार्वत्युवाच ।

र्वे जानन्ति जगति दुर्गां शङ्करकिङ्करीम् । अपेक्षारहिता दासी तस्याश्च जीवनं वृथा
वरस्य समाः सर्वास्तृणपर्वतजातयः । दासीपुत्रस्य शिष्यस्य कस्य दोष इतिप्रभो॥
चारं कर्त्तुमुचितं त्वञ्च धर्मविदांवरः । वीरभद्रः कार्त्तिकेयः पार्षदाः सन्ति साक्षिणः
क्ष्ये मिथ्यांको वदेद्वा द्वावेषां भ्रातरौ समौ । साक्ष्ये समे शत्रुमित्रेसतां धर्मनिरूपणे
साक्षी सभायां यत् साक्ष्यं जानन्नप्य न्यथावदेत् ।
कामतः क्रोधतो वापि लोभेन च भयेन च ॥ ५ ॥
स याति कुम्भीपाकञ्च निपात्य शतपूरुषम् ।
तैश्च सार्द्धं वसेत्तत्र यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ६ ॥
हंविबोधितुं शक्ता निर्णेत्री च द्वयोरपि । तथापि तव साक्षात्तु ममाशा निन्दिता श्रुतौ
। कुत्र नृपे वसति संसदि । उदिते भास्करे पृथ्व्यां खद्योतो हि यथाप्रभो

सुचिरं तपसा प्राप्तं त्वदीयं चरणाम्बुजम् । परित्यागभयेनैव सन्ततं भीतया मया ॥६॥

यत्किञ्चित् कोपशोकाभ्यामुक्तं मोहन तत्परम् ।

तत् क्षमस्व जगन्नाथ पुत्रस्नेहाच्च दारुणात् ॥ १० ॥

त्वयायदि परित्यक्ता तदा पुत्रेणतेनकिम् । साध्व्याः सद्वंशजायाश्च शतपुत्राधिक पतिः
रसद्वंशप्रसूताया दुःशीला ज्ञानवर्जिता । स्वामिनं मन्यते नासौ पित्रोर्दोषेण कुत्सिता
कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणंजडम् । कुलजा विष्णुतुल्यञ्च कान्तं पश्यतिसन्ततम्
हुताशनोवा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां परः । पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हन्तिषोडशीम्
दानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानिच । तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्तिषोडशीम्
त्रोवापितावापिबान्धवोऽथ सहोदरः । योषितांकुलजातानांन कश्चित्स्वामिन समः
इत्युक्त्वा स्वामिनं दुर्गा ददर्श पुरतो भृगुम् । शम्भोः पदाब्जं सेवन्तं निर्भयं तमुवाचह

पार्वत्युवाच ।

अयेराममहाभाग ब्रह्मवंशोऽसिपण्डितः । पुत्रोऽसि जमदग्नेश्च शिष्योऽप्ययोगिनांगुरोः
माताते रेणुकासाध्वी पद्मांशासत्कुलोद्भवा । मातामहो वैष्णवश्चमातुलश्च ततोऽधिकः
त्वञ्च रेणुकभूपस्य मनुवंशोद्भवस्य च । दौहित्रो मातुलः साधुः शूरो विष्णुयशा नृपः
कस्य दोषेण दुर्द्धर्ष स्त्वं न जानेऽथशुद्धतः । येषां दोषैर्जनो दुष्टस्तव ते शुद्धमानसाः
अमोघं प्राप्य पर्शुञ्च गुरुञ्च करुणानिधिम् । परीक्षां क्षत्रिये कृत्वा यभूवास्य सुनेपुनः
गुरवे दक्षिणां दातुमुचितञ्च श्रुतौ श्रुतम् । भग्नोदन्तस्तन्सुतस्य छेदयस्वच मस्तकम् ॥

गणेश्वरं रणे जित्वा स्थितश्चेदावयोःपुरः ।

मा त्वं लब्धाशिषो भूत्वा पूजितोऽभूर्जगत्त्रये ॥२४॥

पर्शुनाऽमोघवीर्य्येण शङ्करस्य वरेण च । हन्तुं शक्तः शृगालश्च सिंहं शार्दूलमात्तुभुक्
त्वद्विधं लक्षकोटिञ्चहन्तुं शक्तो गणेश्वरः । जितेन्द्रियाणां प्रवरोनहि हन्तिचमक्षिकाम्
तेजसा कृष्णतुल्योऽयंकृष्णांशश्च गणेश्वरः । देवाश्चान्ये कृष्णकलाःपूजास्य पुरतस्ततः
मत्प्रभावतः प्राप्तः शङ्करस्य वरेण च । शोकेनाति कठोरेण नहिसम्यद्विपद्विना ॥२८॥

इत्युक्त्वा पार्वती रोषार्त्तं रामं हन्तुमुद्यता ।

राम: सस्मार तं कृष्णं प्रणम्य मनसा गुरुम् ॥ २९ ॥
तस्मिन्नन्तरे दुर्गा ददर्श पुरतो द्विजम् । अतीव वामनं बालं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥
कुर्वन्तं शुक्लवस्त्रं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् । दण्डिनं छत्रिणञ्चैव दधतं तिलकोज्ज्वलम्
यतं तुलसीमालां सस्मितं सुमनोहरम् । रत्नकेयूरवलयं रत्नमालाविभूषितम् ॥ ३२ ॥
नूपुरपादञ्च रत्नमुकुटोज्ज्वलम् । रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् ॥३३॥
थरमुद्रां दर्शयन्तं भक्तं वामकरेण च । दक्षिणेऽभयमुद्राञ्च भक्तेशं भक्तवत्सलम् ॥
लिकाबालकगणैर्नागरै: सस्मितैर्युतम् । कैलासवासिभि: सर्वैरावृद्धैरीक्षितं मुदा ॥
दृष्ट्वा सम्भ्रमात् शम्भु:सभृत्य:सहपुत्रक: । मूर्ध्ना भक्त्या प्रणनाम दुर्गाचदण्डवद्भुवि
आशिषं प्रददौ बाल: सर्वेभ्यो वाञ्छितप्रदम् ।
तं दृष्ट्वा बालका: सर्वे महाश्चर्यं ययुर्भिया ॥ ३७ ॥
त्वा तस्मै शिवो भक्त्या चोपचाराणि षोडश । पूजाञ्चकार श्रुत्युक्तांपरिपूर्णतमस्यच
ाथ काण्वशाखोक्तस्तोत्रेण नतकन्धर: । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गो भगवन्तं सनातनम्
त्नसिंहासनस्थञ्च प्रोवाच शङ्कर: स्वयम् । अतीवतेजसा सर्वं प्रच्छन्नीकृतमेव च ॥४०

शङ्कर उवाच ।

त्मारामेषु कुशलप्रश्नोऽतीवविडम्बनम् । ते शश्वत् कुशलाधारा: कुशलाकुशलप्रदा:
द्य मे सफलंजन्मजीवितञ्च सुजीवितम् । प्राप्तस्त्वमतिथिर्ब्रह्मन् कृष्णसेवाफलोदयात्
रिपूर्णतम: कृष्णो लोकनिस्तारहेतवे । कलया पुण्यक्षेत्रे हि भारते च कृपानिधि: ॥
तिथि: पूजितो येन पूजिता: सर्वदेवता: । अतिथिर्यस्य संतुष्टस्तस्य तुष्टो हरि:स्वयम्
ानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासाभ्यां सर्वयज्ञेषु दीक्षया ॥४५
र्वैस्तपोभिर्विविधैर्नित्यैर्नैमित्तिकादिभि: । तदेवातिथिसेवाया:कलांनार्हन्तिषोडशीम्
अतिथिर्यस्य भग्नाशो याति रुष्टश्च मन्दिरात् ।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम् ॥ ४७ ॥
तिगोघ्नश्च कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पग: । पितृमातृगुरूणाञ्च निन्दको नरघातक: ॥४८
सन्ध्याहीनो स्वघाती च सत्यघ्नो हरिनिन्दक: ।

ब्रह्मस्वस्थाप्यहारी च मि[illegible]प्रदायकः ॥ ४९ ॥

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च वृषवाहश्च सूपकृत्, [illegible]दाही ग्रामयाजी [illegible] वृषलापतिः ॥
शूद्रश्राद्धान्नभोजी च शूद्रश्राद्धेषु भोजकः । कन्या विक्रयकारी च [illegible]
लाक्षा मांस लौह रस तिलानां लवणस्य च । विक्रेता ब्राह्मणश्चैव [illegible] तथा
एकादशीकृष्णसेवाहीनो विप्रश्च भारते । एते महापातकिनस्त्रिषु लोकेषु निन्दिताः ॥
कालसूत्रे च नरके पतन्तिब्रह्मणःशतम् । एतेभ्योऽप्यधिक सोऽपि[illegible]

नारायण उवाच ।

शङ्करस्य वचः श्रुत्वा सन्तुष्टःश्रीहरिः स्वयम् । मेघगम्भीरया वाचा तमुवाचजगत्पतिः

विष्णुरुवाच ।

श्वेतद्वीपादागतोऽहं ज्ञात्वा कोलाहलञ्च वः । परशुरामस्य रक्षार्थं कृष्णभक्तस्य[illegible]
नैतेषां कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । रक्षामि तान्चक्रहस्तो गुरुमन्यं विना[illegible]
नाहं पाता गुरौ रुष्टे बलवद् गुरुहेलनम् । तत्परः पातकी नास्ति सेवाहीनो गुरो[illegible]
मान्यः पूज्यश्च सर्वेभ्यः सर्वेषांजनको भवेत् । अहो यस्यप्रसादेन सर्वान्पश्यतिमानव

जनको जन्मदानाच्च रक्षणाच्च पिता नृणाम् ।

ततो विस्तीर्णकरणात् कलया स प्रजापतिः ॥ ६० ॥

पितुः शतगुणैर्माता पोषणाद्गर्भधारणात् । वन्द्या पूज्या च मान्या च प्रसूःपायमुत्[illegible]
मातुः शतगुणैर्वन्द्यः पूज्योमान्योऽन्नदायकः । यद्विनाशश्यरोदेहो विष्णुश्चकलयान्नद
अन्नदातुः शतगुणोऽभीष्टदेवः परः स्मृतः । गुरुस्तस्माच्छतगुणो विद्यामन्त्रप्रदायक
अज्ञानतिमिराच्छन्नं ज्ञानदीपेन चक्षुषा । यः सर्वार्थं दर्शयति तत्परःकोऽपि बान्धव
गुरुदत्तेन मन्त्रेण तपसेष्टसुखं लभेत् । सर्वज्ञत्वं सर्वसिद्धिं तत्परः कोऽपि बान्धव ॥
सर्वं जयतिसर्वत्रविद्यया गुरुदत्तया । तस्मात् पूज्योहिजगति कोवापन्गुरुतोऽधिकः
विद्यान्धो वा धनान्धोवायोमूढोनभजेद्गुरुम् । ब्रह्महत्यादिभि पापैःसलिप्तोनात्रसंशयः
दरिद्रं पतितं क्षुद्रंनरबुद्धयाचरेद् गुरुम् । सोऽशुचिस्तीर्थस्नातोऽपि नाधिकारीसकर्मसु
पितरं मातरं भार्यां गुरुपत्नीं गुरुं परम् । यो न पुष्णाति कापट्यात्समहापातकीभवेत्

ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुर्भास्कररूपकः॥ ७० ॥
श्चन्द्रस्तथेन्द्रश्च वायुश्च वरुणोऽनलः। सर्वरूपोहि भगवान् परमात्मा स्वयं गुरुः।

नास्ति वेदात् परं शास्त्रं नहि कृष्णात् परः सुरः।
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्पं तुलसीपरम्॥ ७२ ॥

स्ति क्षमावती भूमेः पुत्रान्नास्त्यपरः प्रियः। न च दैवात्पराशक्तिर्व्रतं नैकादशींविना
लग्रामात् परो यन्त्रो न क्षेत्रं भारतात्परम्। परं पुण्यस्थलानाञ्च पुण्यंवृन्दावनंयथा
क्षदानांयथाकाशी वैष्णवानांयथाशिवः। न पार्वतीपरासाध्वी न गणेशात्परो वशी
त्र विद्यासमोबन्धुर्नास्तिकश्चिद्गुरोः परः। विद्यादातुः पुत्रदारौ तत्समौनात्रसंशयः
हस्त्रियाश्च पुत्रे च बभूव रामहेलनम्। परं सम्मार्ज्जनां कर्त्तुमागतोऽहं तवालयम्॥

नारायण उवाच।

त्येवमुक्त्वा शम्भुश्च दुर्गां सम्बोध्य नारद। उवाच भगवान् तत्र सत्यसारं परं वचः

विष्णुरुवाच।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मदीयं वचनं शुभम्। नीतियुक्तं वेदसारं परिणामसुखावहम्॥
था ते गजवक्त्रश्च कार्त्तिकेयश्च पार्वती। तथा परशुरामश्च भार्गवो नात्र संशयः॥८०
ास्त्येषु स्नेहभेदश्च तव वा शङ्करस्य च। विचार्य्य सर्वं सर्वज्ञे कुरु मातर्यथोचितम्॥
त्रेण सार्द्धं पुत्रस्य विवादो दैवदोषतः। दैवं हन्तुं कोहि शक्तो दैवञ्च बलवत्परम्॥
त्राभिधानं वेदेषु पश्य वत्से वरानने। एकदन्त इति ख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्॥८३॥
त्रनामाष्टकं स्तोत्रं सामवेदोक्तमीश्वरि। शृणुष्वावहितं मातः सर्वविघ्नहरं परम्॥

विष्णुरुवाच।

गणेशमेकदन्तञ्च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥८५॥
नामाष्टार्थञ्च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये। स्तोत्राणां सारभूतञ्च सर्वविघ्नहरं परम्॥८६
ज्ञानार्थवाचकोगश्च णश्च निर्वाणवाचकः। तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः। बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥८८
दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः। दीनानां परिपालकं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥

विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः । विपत्खण्डनकारकं नमामि विघ्ननायकम्
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा । पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरञ्च तम् ॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ । सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्
विष्णुप्रसादपुष्पञ्च यन्मूर्द्ध्नि मुनिदत्तकम् । तद्गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम् ॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये । वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम् ॥८४॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम् । पुत्रस्य पश्य वेदे च तदा कोपं यथा कुरु ॥
एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतंशुभम् । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं ससुखी सर्वतोजयी
ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद् यथोरगाः । गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम्॥
पुत्रार्थीलभते पुत्रंभार्य्यार्थीविपुलांस्त्रियम् । महाजडः कवीन्द्रश्च विद्यायाश्चभवेद्ध्रुवम

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे गणपतिखण्डे नारायणनारदसंवादे गणेश-
स्तोत्रकथनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

## पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

### गौरीं बोधयित्वा रामंप्रति स्तवादिकरणे विष्णोरुपदेशः ।

नारायण उवाच ।

पार्वतीं बोधयित्वा तु विष्णूराममुवाच ह । हितं सारं नीतिसारं परिणामसुखावहम्

विष्णुरुवाच ।

रामत्वमधुना सत्यमपराधी श्रुतेर्मते । कोपात्कृत्वा दन्तभग्नं गणेशस्य स्थितोऽशिवे
मयोक्तेनैवस्तोत्रेणस्तुत्वागणपतिं परम् । काण्वशाखोक्तस्तोत्रेणस्तौहिदुर्गां जगत्प्रसूम्
श्रीकृष्णस्य परा शक्तिं बुद्धिरूपा जगत्प्रभोः । अस्याश्चतव रुष्टायां हतबुद्धिर्भविष्यति
सर्वशक्तिस्वरूपेयमनया शक्तिमज्जगत् । अनया शक्तिमान् कृष्णो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
सृष्टिं कर्त्तुं नशक्तश्च ब्रह्मा शक्त्याऽनया विना । वयमस्यां प्रसूताश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

सद्धुऽसुरग्रस्ते काले घोरतरे द्विज । तेजःसु सर्वदेवानामाविर्भूता पुरा सती ॥७॥
णाम्याऽसुरान् हत्वादत्वा तेभ्यःपदन्ततः । दक्षपत्न्यां जनिं लेभे दक्षस्य तपसापुरा
प्यां भूत्वाशङ्करस्य पुनः पत्युश्चनिन्दया । देहं त्यक्त्वा शैलपत्न्यां जनि लेभेपुरासती
ङ्करस्तपसालब्धोयोगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः । लब्धोगणपतिः पुत्रः कृष्णांशःकृष्णसेवया
वि ध्यायसे नित्यं तं न जानासि बालक । स एव भगवान्कृष्णश्चांशेन पार्वतीसुतः

पुटाञ्जलिर्नतो भूत्वा स्तौहि दुर्गां शिवप्रियाम् ।
शिवां शिवप्रदां शैवां शिवबीजां शिवेश्वरीम् ॥ १२ ॥

वाया: स्तोत्रराजेन कृतेन शूलिना पुरा । त्रिपुरस्य वधे घोरे ब्रह्मणा प्रेरितेन च ॥
युक्त्वा श्रीपदं शीघ्रं जगाम श्रीनिकेतनम् । गते हरौ हरिं स्मृत्वारामस्तांस्तोतुमुद्यतः
ष्णुदत्तेन स्तोत्रेण सर्वविघ्नहरेण च । धर्म्मार्थकाममोक्षाणां कारणेन च नारद ॥
टाञ्जलियुतो भूत्वा स्नात्वा गङ्गोदके शुभे । गुरुं प्रणम्य भक्तेशं धृत्वा धौतेचवाससी
चम्यनत्वा मूर्ध्ना तां भक्तिनम्रात्मकन्धरः । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गश्चानन्दाश्रुसमन्वितः

परशुराम उवाच ।

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च ।
आविर्भूता विग्रहतः पुरा सृष्ट्युन्मुखस्य च ॥ १८ ॥

र्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालङ्कारभूषिता । वह्निशुद्धांशुकाधाना सुस्मिता सुमनोहरा ॥
वयौवनसम्पन्ना सिन्दूरबिन्दुशोभिता । ललितं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥

अहोऽनिर्वचनीया त्वं चार्वी मूर्त्तिश्च बिभ्रती ।
मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महद्विष्णोर्विधिः स्वयम् ॥ २१ ॥

मोह लक्ष्ममात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम् । बालैःसंभूयसहसासस्मिताधाविता पुरा ॥
द्भिःख्याता तेन राधामूलप्रकृतिरीश्वरी । कृष्णस्त्वांसहसाहूय वीर्य्याधानञ्चकारह ॥
तोडिम्भंमहदुजज्ञे ततोभूतो महाविराट् । यस्यैवलोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ।

तत् शृङ्गारक्रमेणैव त्वन्निःश्वासो बभूवह ।
स निःश्वासो महावायुः स विराड् विश्वधारकः ॥२५॥

तव धर्मजलेनैव पुप्राव विश्वगोलोकम्। स विराड् विश्वनिलयोजलराशिर्बभूवह ॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्चमूर्त्तिश्च बिभ्रती। प्राणाधिष्ठात्री यामूर्त्तिः कृष्णस्य परमात्मनः

कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः ॥२७॥

वेदाधिष्ठात्री या मूर्त्ति र्वेदशास्त्रप्रसूरपि। तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

ऐश्वर्याधिष्ठात्री मूर्त्तिः शान्तिश्च शान्तरूपिणी।

लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्तां शुद्धां सत्त्वस्वरूपिणीम् ॥२६॥

रागाधिष्ठात्री या देवी शुक्लमूर्त्तिः सतां प्रसूः।

सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो ॥३०॥

बुद्धिर्विद्यासर्वशक्तेर्या मूर्त्तिरधिदेवता। सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥३१॥

सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य मन्दिरेऽधुना ॥३२॥

शिवे शिवस्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके।

सरस्वती च सावित्री वेदसू र्ब्रह्मणः प्रिया ॥३३॥

राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च। परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी ॥३४॥

त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः ॥३५॥

त्वद्विद्यायोषितः सर्वास्त्वंसर्वबीजरूपिणी। छायासूर्य्यस्यचन्द्रस्यरोहिणीसर्वमोहिनी
शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी। वरुणानी जलेशस्यवायोःस्त्रीप्राणवल्लभा
वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी। यमस्य तु सुशीलाचनैर्ऋतस्यचकैटभी
ईशानस्य शशिकला शतरूपा मनोःप्रिया। देवहूती कर्दमस्य वशिष्ठस्याप्यरुन्धती॥३६
अदिति र्देवमाता या मुद्रागस्त्यमुनेः प्रिया। अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारावसुन्धरा

गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां याःसरिद्वरा।

एताः सर्वाश्च याःह्यन्याः सर्वास्त्वत्कलयाम्बिके ॥४१॥

गृहलक्ष्मी र्गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु। तपस्विनां तपस्या त्वंगायत्री ब्राह्मणस्यच
सतां सत्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा। ज्योतीरूपानिर्गुणस्यशक्तिस्त्वंसगुणस्यच
सूर्य्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने। जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे

[illegible]

पुटाञ्जलियुतो भूत्वा स्तौमि दुर्गां [illegible]।
शिवां शिवप्रदां [illegible] शिवभार्याम् ॥ १२ ॥

शिवायाः स्तोत्रराजेन स्तवेन शूलिना पुरा। त्रिपुरस्य वधे घोरे ब्रह्मणा प्रेरितेन च ॥ हरगुरुणा धाम्पदं [illegible] जगाम धीनिकेतनम्। गते हरौ हरि स्मृत्वा रामस्तोत्रानुमुक्तः विष्णुदत्तेन स्तोत्रेण सर्वविघ्नहरेण च। धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणेन च नारद ॥ पुटाञ्जलियुतो भूत्वा स्नात्वा गङ्गोदके शुभे। गुरुं प्रणम्य भक्तेश भूत्वा धौतवाससी आचम्य नत्वा मूर्ध्ना तां भक्तिनम्रात्मकन्धरः। पुलकाङ्कितसर्वाङ्ग आनन्दाश्रुसमन्वितः

परशुराम उवाच।

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च।
आविर्भूता विग्रहतः पुरा सृष्ट्युन्मुखस्य च ॥ १८ ॥

सूर्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालङ्कारभूषिता। वह्निशुद्धांशुकाधाना सुस्मिता सुमनोहरा ॥ नवयौवनसम्पन्ना सिन्दूरविन्दुशोभिता। ललितं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम् ॥

अहोऽनिर्वचनीया त्वं चार्वी मूर्त्तिञ्च बिभ्रती।
मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महद्विष्णोर्विधिः स्वयम् ॥ २१ ॥

मुमोह लक्ष्मात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम्। बालैःसंभूयसहसासस्मिताधाविता पुरा ॥ सद्भिःख्याता तेन राधामूलप्रकृतिरीश्वरी। कृष्णस्त्वांसहसाहूय वीर्याधानञ्चकार ह ॥ ततोडिम्बंमहज्जज्ञे ततोभूतो महाविराट्। यस्यैवलोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च।

तत् शृङ्गारक्रमेणैव त्वन्निःश्वासो बभूव ह।
स निःश्वासो महावायुः स विराड् विश्वधारकः ॥२५॥

तव चर्मजलेनैव पुपाव विश्वगोलोकम् । स विराड् विश्वनिलयोजलराशिर्बभूवह ॥
ततस्त्वं पञ्चधा भूय पञ्चमूर्त्तिश्च बिभ्रती । प्राणाधिष्ठात्री यामूर्त्तिः कृष्णस्य परमात्मनः

कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः ॥२८॥

वेदाधिष्ठात्री या मूर्त्ति र्वेदशास्त्रप्रसूरपि । ता सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

ऐश्वर्य्याधिष्ठात्री मूर्त्तिः शान्तिश्च शान्तरूपिणी ।

लक्ष्मीं वदन्ति सन्तस्तां शुद्धां सत्त्वस्वरूपिणीम् ॥२९॥

रागाधिष्ठात्री या देवी शुक्लमूर्त्तिः सतां प्रसूः ।

सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो ॥३०॥

बुद्धिर्विद्यासर्वशक्तेर्या मूर्त्तिरधिदेवता । सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥३१॥

सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य मन्दिरेऽधुना ॥३२॥

शिवे शिवस्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके ।

सरस्वती च सावित्री वेदसू र्ब्रह्मणः प्रिया ॥३३॥

राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च । परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी ॥३४॥

त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः ॥३५॥

त्वद्विद्यायोषितः सर्वास्त्वंसर्वबीजरूपिणी । छायासूर्य्यस्यचन्द्रस्यरोहिणीसर्वमोहिनी
शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी । वरुणानी जलेशस्यवायोःस्त्रीप्राणवल्लभा
वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी । यमस्य तु सुशीलाचनैर्ऋतस्यचकैटभी
ईशानस्य शशिकला शतरूपा मनोःप्रिया । देवहूती कर्दमस्य वशिष्ठस्याप्यरुन्धती॥३६
अदिति र्देवमाता या मुद्गागस्त्यमुनेः प्रिया । अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारावसुन्धरा

गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां याःसरिद्वरा ।

एताः सर्वाश्च याःह्यन्याः सर्वास्त्वत्कलयाम्बिके ॥४१॥

गृहलक्ष्मी र्गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु । तपस्विनां तपस्या त्वंगायत्री ब्राह्मणस्यच
सतां सत्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा । ज्योतीरूपानिर्गुणस्यशक्तिस्त्वंसगुणस्यच
सूर्य्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने । जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे

त्वं भूमौ गन्धरूपा च आकाशे शब्दरूपिणी। क्षुत्पिपासादयस्त्वञ्चजीविनांसर्वशक्तयः
सर्वबीजस्वरूपा त्वं संसारे साररूपिणी। स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वाज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम्
कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रसूः शुभा। शूलिने कृपया सा त्वंयतोमृत्युञ्जयःशिवः
सृष्टिपालनसंहारशक्तयस्त्रिविधाश्च याः। ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते
मधुकैटभभीत्या च त्रस्तोधाताप्रकम्पितः। स्तुत्वामुमोचयांदेवींतांमूर्द्ध्नाप्रणमाम्यहम्
मधुकैटभयोर्युद्धेत्रातासौविष्णुरीश्वरीम्। बभूवशक्तिमानस्तुत्वातांदुर्गांप्रणमाम्यहम्
त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिते शिवे। यां तुष्टुवुः सुराः सर्वे तां दुर्गां प्रणमाम्यहम्
विष्णुना वृषरूपेण स्वयं शम्भुः समुत्थितः। जघान त्रिपुरंस्तुत्वातांदुर्गांप्रणमाम्यहम्

यदाज्ञया वाति वातः सूर्य्यस्तपति सन्ततम्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥५३॥

यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद् भ्रमति वेगतः। मृत्युश्चरतिजन्त्वोघेतांदुर्गांप्रणमाम्यहम्

स्रष्टा सृजति सृष्टिञ्च पाता पाति यदाज्ञया।
संहर्त्ता संहरेत् काले तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥५५॥
ज्योतिः स्वरूपो भगवान् श्रीकृष्णो निर्गुणः स्वयम्।
यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्त्तुं नमामि ताम् ॥५६॥

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे। शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति ॥५७
इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च प्रणम्य तां रुरोदह। तुष्टा दुर्गा सम्भ्रमेण चाभयञ्च वरंददौ ॥५८
अमरो भव हे पुत्र वत्स सुस्थिरतां व्रज। सर्वप्रसादात् सर्वत्रजयोऽस्तु तव सन्ततम्
सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टोऽस्तु सन्ततं हरिः। भक्तिर्भवतुतेकृष्णेशिवदे च शिवे गुरौ
इष्टदेवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती। तं हन्तुं नहि शक्ताश्च रुष्टाश्चसर्वदेवताः ॥६१

श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्योहि शङ्करस्य च।
गुरुपत्नीं स्तौषि यस्मात् कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः ॥६२॥

अहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्। अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्तावानिरङ्कुशाः॥
चन्द्रमा बलवान् यस्तुष्टो येषां भाग्यवतां भृगो। तेषां तारागणारुष्टाःकिंकुर्वन्तिच दुर्बलाः

यस्य तुष्टः समायाम्भेन्नरदेयो महान् सुखी । यस्य क्रियाकरिष्यन्तिदृष्टाभृत्याश्चदुर्बलाः
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामं शुभाशिषम् । जगामान्तःपुरं तूर्णं हरिशब्दोयभूवह॥

काण्वशाखोक्तस्तोत्रञ्च पूजाकाले च यः पठेत् ।
यात्रा काले च प्रातः वां वाञ्छितार्थं लभेत् ध्रुवम् ॥६३॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां प्रजार्थी चाप्नुयात् प्रजाम् ।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं धननष्टो धनं लभेत् ॥६८॥

यस्य रुष्टो गुरुर्देवो राजा वा बान्धवोऽथवा । तस्य तुष्टश्चवरदः स्तोत्रराजप्रसादतः ॥
दस्युग्रस्तोऽहिग्रस्तश्च शत्रुग्रस्तोभयानकः । व्याधिग्रस्तोभवेन्मुक्तःस्तोत्रस्मरणमात्रतः
राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च बन्धने । जलराशौ निमग्नश्च मुक्तोभवति स्तोत्रतः
स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थंलभेद्ध्रुवम् ॥
कृत्वा हविष्यं वर्षञ्च स्तोत्रराजं श्रृणोति या । भक्त्यादुर्गाञ्चसम्पूज्यमहावन्ध्याप्रसूयते
लभते सा दिव्यपुत्रंज्ञानिनंचिरजीविनम् । असौभाग्याचसौभाग्यं षण्मासश्रवणाल्लभेत्

नवमासं काकवन्ध्या मृतवत्सा च भक्तितः ।
स्तोत्रराजं या श्रृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥७५॥
कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं श्रृणोति या ।
घटे सम्पूज्य दुर्गाञ्च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥७६॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारदसंवादे गणपतिखण्डे दुर्गास्तोत्रं
नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

---

# षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

## गणेशाय तुलसीदान निषेधकथनम् ।

नारायण उवाच ।

स्तुत्वा दुर्गां परशुरामो हर्षविह्वलमानसः । हरिणोक्तेन स्तोत्रेण प्रतुष्टाव गणेश्वरम् ॥
पूजाञ्चकार भक्त्या च नैवेद्यैर्विविधैरपि । धूपैर्दीपैश्च गन्धैश्च पुष्पैश्च तुलसीं विना ॥२
सम्पूज्य भ्रातरं भक्त्या स रामः शङ्कराज्ञया । गुरुपत्नीं गुरुं नत्वा गमनं कर्त्तुमुद्यतः ॥

नारद उवाच ।

पूजां भगवतश्चक्रे रामो गणपतेर्यदा । नैवेद्यैर्विविधैः पुष्पैस्तुलसीञ्च विना कथम् ॥
तुलसी सर्वपुष्पाणां मान्या धन्या मनोहरा । कथं पूजां सारभूतां न गृह्णाति गणेश्वरः

नारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
ब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्तं निगूढञ्च मनोहरम् ॥६॥

एकदा तुलसी देवी प्रोद्भिन्नयौवना । तीर्थं भ्रमन्ती तपसा नारायणपरायणा ॥७॥
ददर्श गङ्गातीरे सा गणेशं यौवनान्वितम् । अतीव सुन्दरं शुद्धं सस्मितंपीतवाससम् ॥
चन्दनोक्षित सर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम् । ध्यायन्तं कृष्णपादाब्जं जन्ममृत्युजरापहम् ॥
जितेन्द्रियाणां प्रवरं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम् । अकारहास्यं निष्कामं सकामातमुवाच ह

तुलस्युवाच ।

अये किं ध्यायसे देव शान्तरूप गजानन । कथं लम्बोदरो देहो गजवक्त्रं कथं तव ॥
एकदन्तः कथं वक्त्रे वदामुष्य च कारणम् । त्यज ध्यानं महाभाग सायङ्कालउपस्थितः
इत्युक्त्वा तुलसी देवी प्रजहास पुनः पुनः । परं चेतसि दग्धा सा कामबाणैः सुदारुणैः
तदीयस्य प्रधानाङ्गं दृष्ट्वा किञ्चिज्जलं मुने । जघान ततंत्यग्रेण नियन्त्रंकृष्णमानसम्
बभूव ध्यानभङ्गश्च तस्य नारद चेतनम् । दुःखञ्च ध्यानभेदेन सद्विच्छेदोहि शोकदः ॥

ध्यानं त्यक्त्वा हरिं स्मृत्वा ददर्श कामिनीं पुरः ।
नवयौवनसम्पन्नां सस्मितां कामपीडिताम् ॥१६॥

लम्बोदरश्च तां दृष्ट्वा परं विनयपूर्वकम् ।
उवाच सस्मितः शान्तः शान्ता कामातुरां वशी ॥१७॥

गणेश्वर उवाच ।

का त्वं वत्से कस्य कन्ये मातर्मां ब्रूहि किं शुभे ।
पापदोऽशुभदः शश्वद् ध्यानभङ्ग स्तपस्विनाम् ॥१८॥

कृष्णः करोतु कल्याणं हन्तु विघ्नं कृपानिधिः । मद्ध्यानभङ्गजो दोषोनाशुभवतुते शुभे
गणेशवचनं श्रुत्वा तमुवाच स्मरातुरा । सस्मितं सकटाक्षञ्च देवं मधुरया गिरा ॥२०

तुलस्युवाच ।

धर्मात्मजस्य कन्याऽहमप्रौढ़ा च तपस्विनी ।
तपस्या मे स्वामिनोऽर्थे त्वं स्वामी भव मे प्रभो ॥ २१ ॥

तुलसी वचनं श्रुत्वा गणेशः श्रीहरिं स्मरन् । तामुवाच महाप्राज्ञः प्राज्ञीं मधुरयागिरा ॥

गणेश उवाच ।

हे मातर्नास्ति मे वाञ्छा घोरेदारपरिग्रहे । दारग्रहोहि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥
हरिभक्तेर्व्ययवायश्च तपस्यानाशहेतुकः । मोक्षद्वारकपाटञ्च भवबन्धनपाशकः ॥ २४ ॥
गर्भवासकरः शश्वत् तत्वज्ञाननिकृन्तनः । संशयानां समारम्भोयस्त्याज्यो वृषभैरपि ॥
गेहोऽयं करुणानाञ्च सर्वमायाकरण्डकः । साहसानां समूहश्च दोषाणाञ्च विशेषतः॥

निवर्तस्व महाभागे पश्यान्यं कामुकं पतिम् ।
कामुकेनैव कामुक्या सङ्गमो गुणवान् भवेत् ॥ २७ ॥

इत्येवंवचनंश्रुत्वा कोपात्तु सा शशापह । दारग्रहस्तेभविता सा साध्वीतिगणेश्वरम् ॥
इत्याकर्ण्य सुरश्रेष्ठ स्तांशशापशिवात्मजः । देवित्वमसुरग्रस्ता भविष्यति न संशयः ॥
तत्पश्चान्महतां शापाद्वृक्षत्वं भवितेति च । महातपस्वीत्युक्त्वैव विरराम च नारद ॥
शापं श्रुत्वा तु तुलसीप्ररुरोद पुनःपुनः । तुष्टाव च सुरश्रेष्ठं स प्रसन्न उवाच ताम् ॥३१॥

गणेश्वर उवाच ।

पुष्पाणां सारभूता त्वं भविष्यसि मनोरमे । कलांशेन महाभागेत्वयं नारायणप्रिया ॥

प्रिया त्वं सर्वदेवानांश्रीकृष्णस्यविशेषतः । पूजाविमुक्तिदानृणाममत्याज्याच सर्वदा ॥
इत्युक्तवातां सुरश्रेष्ठो जगाम तपसे पुनः । हरेराराधनव्यग्रो वक्रीसन्निधि ययौ ॥३५॥
जगाम तुलसीदेवी हृदयेन विदूयता । निराहारा तपश्चक्रे पुष्करे लक्षवर्षकम् ॥३८॥
पश्चान्मुनीन्द्र शापेन गणेशस्य च नारद । सा प्रिया शङ्खचूडस्य बभूव सुचिरं मुने ॥
ततः शङ्करशूलेन संममारासुरेश्वरः । सा कलांशेन वृक्षत्वं ययौ नारायणप्रिया ॥३९॥
कथितश्चेतिहासस्ते श्रुतो धर्ममुखात् पुरा । मोक्षप्रदश्च सारश्च पुराणे न प्रकीर्तितः ॥
परशुरामो महाभागो जगाम तपसे वनम् । प्रणम्य शङ्करं दुर्गां संपूज्य च गणेश्वरम् ॥
पूजितो वन्दितः सर्वैःसुरेन्द्रमुनिपुङ्गवैः । पार्वती शिवसान्निध्ये तत्रतस्थौ गणेश्वरः ॥
इदंगणपतेः खण्डं यः शृणोति समाहितः । स राजसूययज्ञस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं श्रीगणेशप्रसादतः । धीरं वीरञ्च धनिनं गुणिनं चिरजीविनम् ॥
यशस्विनं पुत्रिणञ्च विद्वांसं सुकवीश्वरम् । जितेन्द्रियाणां प्रवरं दातारंसर्वसम्पदाम् ॥
सुपवित्रं सदाचारं प्रशंस्यं वैष्णवं लभेत् । अहिंसकं दयालुञ्च तत्त्वज्ञानविशारदम् ॥
भक्त्या गणेशं संपूज्य वस्त्रालङ्कारचन्दनैः । श्रुत्वा गणपतेः खण्डंमहावन्ध्या प्रसूयते ॥

मृतवत्सा काकवन्ध्या ब्रह्मन् पुत्रं लभेद् ध्रुवम् ।
अदूषितं दूषितापि शुद्धा चैव लभेत् सुतम् ॥४६॥

संपूर्णब्रह्मवैवर्त्तं श्रुत्वा यल्लभते फलम् । तत्फलं लभते मर्त्यः श्रुत्वेदं खण्डमुत्तमम् ॥
वाञ्छाङ्कृत्वा तु मनसि शृणोति परमास्थितः । तस्मैददातिसर्वेष्टंसुरश्रेष्ठोगणेश्वरः
श्रुत्वागणपतेः खण्डं विघ्ननाशाय यत्नतः । स्वर्णयज्ञोपवीतञ्च श्वेतछत्राश्वमाल्यकम् ॥
प्रदीयते वाचकाय स्वस्तिकं तिलड्डुकम् । परिपक्कफलान्येव देशकालोद्भवानि च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्त्ते महापुराणे नारायणनारद संवादे गणपतिखण्डे
षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

इति गणपतिखण्डं समाप्तम् ।

---

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# ब्रह्मवैवर्तपुराणस्थ ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डानां शुद्धिपत्रम्

| पृष्ठाङ्काः | पङ्क्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६ | १६ | रक्षसः परमात्मानः | यक्षसःपरमात्मनः |
| १० | १५ | सम्पुटाञ्चलिः | सम्पुटाञ्जलिः |
| १३ | ५ | जृम्भनम् | जृम्भणम् |
| ” | ६ | काटि | कोटि |
| ६ | २२ | कृष्णाङ्धि | कृष्णाङ्घ्रि |
| १ | १४ | ददानि | दानानि |
| ” | २२ | तपखिनां | तपस्विनां |
| २० | १० | स्नेहात् | स्नेहात् |
| ” | १२ | ध्रवं | ध्रुवं |
| २२ | २० | श्वके | श्वके |
| २४ | ७ | तथौ | तस्थौ |
| २५ | १६ | यौचनः | यौवनः |
| २७ | १३ | पार्श्वदाः | पार्षदाः |
| ” | १५ | प्रियाणाश्च | प्रियाणाञ्च |
| २८ | १७ | दुर्दंर्ष | दुर्दर्ष |
| ३० | १० | प्रणपल्लभम् | प्राणवल्लभम् |
| ३२ | ७ | गौतमाजवे | गौतमाश्रवे |
| ३४ | १२ | पुपाश्च | पुंसाश्च |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३२ | ११ | करिष्यति | करिष्यामि |
| " | २१ | क्रियरर्थ | क्रियरर्थं |
| ३७ | ३ | कमलानानां | कमलानां |
| ३८ | ३ | गाम्भम | गाम्भर्य |
| ३९ | १० | क्रिम्प | क्रिम्प |
| " | १५ | दूरासमसयोग | दूरासमयोग |
| " | १८ | मकोर्तिन | मर्कीर्ति |
| ४० | ६ | बजम | त्रिजम |
| " | १४ | प्रकतो | प्रकृतो |
| ४१ | ११ | कपुष्मतु | कपुष्मु |
| ४३ | ११ | वस्त्रिन्ड | वस्त्रिन्ड |
| " | २४ | सर्वविदर्थ | सर्वविदर्थं पुष्प |
| ४४ | ५ | यावतु | यावत् |
| " | ८ | संबदर | वंदर |
| " | २३ | मिरागु | स्थिरागु |
| ४६ | ६ | जृम्भन | जृम्भण |
| ४७ | १८ | निक्षिमम् | निक्षिपम् |
| ५१ | २२ | ब्रह्मणानां | ब्रह्मनानां |
| ५४ | १७ | हम्यवपर्णां | हम्यवर्णां |
| " | २५ | स्तावप्यान् | स्तनप्यान् |
| ५५ | १७ | सर्पापच्छनि | सर्पापच्छन्ति |
| ५६ | १६ | ब्राह्मणस्य | ब्राह्मणस्य |
| ५७ | २ | यदु | यद् |
| ५८ | ८ | शश्वदु | शश्वद् |

| | | | |
|---|---|---|---|
| [illegible] | १३ | प्राविष्युणो | प्रावृष्युष्णो |
| [illegible] | ५ | सेवेत् | सेवेत |
| " | ११ | चनकं | चणकं |
| [illegible] | ३ | श्रोत्रेभिः | श्रोत्रिभिः |
| [illegible] | ६ | निकृति | निष्कृति |
| [illegible] | १४ | हरित्रेति | हरिरत्रेति |
| [illegible] | २० | फलम् | फल्म् |
| | १५ | प्रकाण | प्रकारेण |
| | २० | प्रध्याह्न | मध्याह्न |
| [illegible] | २ | प्राय | प्राप |
| | ६ | ग्रीष्य | ग्रीष्म |
| ७७ | २३ | भक्तानुह | भक्तानुग्रह |
| " | २५ | भर्पिता | भूंपिता |
| ८० | १० | स्वरूभ | स्वरूपश्च |
| ८३ | ११ | योगिन्द्राणां | योगीन्द्राणां |
| " | १६ | परिग्रहार्थं | परिग्रहार्थं |
| ८४ | २ | साध्या | साध्याः |
| " | ३ | बत्स | वत्स |
| ८५ | २१ | प्रश्चात् | पश्चात् |
| ८८ | १३ | हृदुपद्मे | हृत्पद्मे |
| " | १५ | ध्यायेद्दिष्टं | ध्यायेद्विष्टं |
| ९० | १६ | प्रह्लाणा | ब्रह्माण |
| ९२ | १३ | गुरुपविष्टं | गुरूपदिष्टं |
| " | १५ | पात्रं | पात्रं |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १०३ | २ | क्षत् | क्षुव् |
| १०४ | ६ | परला | कमा |
| १०५ | ३ | स्वरूापा | स्वरूपा |
| " | ८ | य | या |
| १०५ | १६ | पुत्रपौत्रा | पुत्रपौत्र |
| १०७ | २३ | प्यास्तं | व्यास्तं |
| १०८ | १४ | माघ | ग्राम |
| १०६ | ८ | पश्चात् | पश्चान् |
| ११३ | ४ | कृष्णे | श्रीकृष्णे |
| ११५ | १ | नीर्णय | निर्णय |
| " | २ | क्षतु | क्षुत |
| ११६ | १३ | शयामो | श्यामो |
| " | १७ | श्याने | शयाने |
| १२८ | ८ | चरिष्यमि | चरिष्यामि |
| १२० | ३ | तर्यो | तस्यौ |
| १२१ | १५ | भपष्यन्ति | भविष्यन्ति |
| १२२ | १० | कन्या | कन्य |
| १३३ | [illegible] | वेश्याश्च | वेश्या |
| १३६ | [illegible] | पर्य्यपस्थिता | पर्य्युपस्थिता |
| " | १७ | स्तुकुर्वं | स्तुकुर्वं |
| १४० | ११ | पृथ्वी | पृथ्वी |
| " | १८ | स्वपया | स्वरूपा |
| " | २१ | शीघ्या | शीघ्रा |
| १४२ | १२ | गुणधादि | यगाधादि |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ... | २४ | दशगुण | दशगुणं |
| १ | ३ | शततं | सततं |
| १ | १० | मन्दकिनी | मन्दाकिनी |
| १ | १० | भगीरथी | भागीरथी |
| | ११ | पाख्यानन | पाख्यान |
| | २१ | शुभद्रां | सुभद्रां |
| | १३ | स्वरूपापै | स्वरूपायै |
| १५२ | १२ | परमात्मन | परमात्मान |
| १५४ | १७ | दास्यमी | दास्यामी |
| १५७ | २० | पद्येर्या | पद्येर्ष्या |
| " | १६ | परमात्मन | परमात्मान |
| १५८ | ६ | वृषध्वज्ञ | वृषध्वजश्च |
| १६१ | १३ | किञ्च | किञ्चि |
| " | २१ | न यौवनम् | नव यौवनम् |
| " | २५ | पारायणः | परायणः |
| १६५ | २० | शाप | शापा |
| १६६ | ७ | विवर्जितः | वर्जितः |
| १७० | २ | मुमुक्षणा | मुमुक्षुणा |
| " | १६ | वास्तुवश्च | वास्तवश्च |
| १७५ | २५ | तच्छ्रुवा | तच्छ्रुत्वा |
| १७७ | १० | स्पर्श्य | स्पर्शि |
| १७८ | २५ | खड्गं | खड्गं |
| १८० | २४ | सुप्रातौ | सुर्पातौ |
| १८१ | १५ | श्रीकृष्णं | श्रीकृष्णं |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १८६ | १४ | मय्यायां | मय्यर्यां |
| १८७ | १५ | जगाह | जग्राह |
| ,, | २३ | महद्भुव्न् | महद्दुव्म |
| १६४ | ११ | घर्त्तला | घर्त्तुला |
| १६५ | ११ | विर्थानि | तीर्थानि |
| ,, | १२ | त्यन्ते | प्यन्ते |
| ,, | १५ | निस्तारत्वस्य | निस्तारस्तस्य |
| ,, | १८ | धृत्वां | धृत्वा |
| १६६ | ४ | रीस्घरस्य | रीश्वरस्य |
| ,, | ७ | तात्पा | तापा. |
| १६७ | २० | पविग्रापि | पवित्राणि |
| १६८ | ३ | रुदन्ति | रुदन्ती |
| ,, | ६ | पठेताश्च | पठेत्ताश्च |
| २०० | १४ | सा | सदा |
| २०१ | २ | मुनीः | मुनिः |
| ,, | १७ | भावद्दयेद्व | भावाद्दयेद्व |
| २०५ | २ | क्षणायु | क्षीणायु |
| ,, | ११ | निर्मुल | निर्मूल |
| २०६ | ४ | धाञ्छन्नि | धाञ्छन्ति |
| ,, | ६ | कर्में | कर्म |
| २०६ | २२ | घर्पाण | घर्पाणा |
| २१४ | १२ | संग्राप्य | संग्राप्य |
| २१५ | ५ | शुक्राएमी | शुक्राएमीं |
| २१६ | २४ | यमञ्च | यमञ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २१७ | ५ | वैष्जपानां | वैष्णवानां |
| " | ६ | पवित्राण | पवित्राणा |
| " | १० | सौमाग्य | सौभाग्या |
| २२० | ८ | सिद्धियोगीभि | सिद्धैर्योगिभि |
| २२१ | २२ | शुद्ध्य | शुद्ध |
| २२२ | २१ | मवे | भवेद् |
| २२३ | ४ | लौहेण | लौहेन |
| " | ७ | भवेत् | भवेन् |
| " | १५ | विधि | विधि |
| " | २२ | घसेत् | घसेद् |
| २२४ | २ | गोलकुन्दं | गोलकुण्डं |
| २३० | १० | वृन्दावने | वृन्दावने |
| २३१ | २४ | श्चतुर्दंदश | श्चतुर्दश |
| २३३ | २४ | दुरिताति | दुरितानि |
| २३७ | ५ | विस्तीर्ण | विस्तीर्णं |
| २४२ | १२ | जगतामभि | जगतामपि |
| २४३ | ३ | तद्गुणं | तद्गुणं |
| " | २१ | यद्ज्ञान | यज्ज्ञान |
| २४७ | १५ | गृहणी | गृहिणी |
| २४८ | १५ | दुर्वासमः | दुर्वाससः |
| " | १६ | दुःस्विता | दुःखिता |
| २५० | ७ | विशुद्धेत | विशुध्येत |
| २५१ | ६ | प्रदर्शयेयत् | प्रदर्शयेत् |
| २५२ | २ | नाशायत्येव | नाशयत्येव |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २५२ | ५ | गोलोकमुत्तम् | गोलोकमुत्तमम् |
| २५५ | १८ | मुपयासना | मुपयासाना, |
| २५३ | २ | निसेव्य | निषेव्य |
| " | ५ | " | " |
| " | २० | भयङ्कुकम् | भयङ्करम् |
| २५८ | ३ | सर्वेणां | सर्वेषां |
| " | ५ | जर्मार्जितं | जन्मार्जितं |
| २५६ | ११ | कथयामास | कथयामास |
| " | १५ | जितेम्द्रियः | जितेन्द्रियः |
| " | २२ | दैवेन | दैवेन |
| २६० | १७ | परमैश्वर्य्य | परमैश्वर्य्यं |
| " | २५ | श्रीः | श्री |
| २६१ | ५ | भाग्यहीनश्च | भाग्यहीनश्च |
| " | ६ | शुद्राणां | शूद्राणां |
| " | १२ | अर्धारानश्च | अधीरान्नश्च |
| २६२ | २ | पद्मनिपासिनी | पद्मनिवासिनी |
| २६३ | ११ | महालक्ष्मी | महालक्ष्मीं |
| " | १२ | षोडशः | षोडश |
| २६४ | २२ | दर्शन | दर्शनं |
| " | २५ | विघ्रती | विभ्रती |
| २६५ | २० | स्तनान्धानां | स्तनन्धानां |
| २६७ | ७ | साम्प्रतम् | साम्प्रतम् |
| | ८ | विपहीनो | विपहीनो |
| | ११ | स्वहा | स्वाहा |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २७३ | १३ | निष्ठरं | निष्ठुरं |
| २७४ | ६ | परिरुच्यते | पतिरुच्यते |
| २७५ | ६ | स्थलोज्ञलाम् | स्थलोऽज्वलाम् |
| २७८ | ८ | दोर्षीनां | देर्षीनां |
| २७६ | ६ | घालकं | बालकं |
| २८० | ३ | तद्वारा | तद्‌द्वारा |
| " | २२ | यत्थ्रुतं | यच्छ्रुतं |
| २८३ | २ | नांरद | नारद |
| " | ६ | कोमलाङ्गी | कोमलाङ्गीं |
| " | २१ | तम्मङ्गलम् | तन्मङ्गलम् |
| " | २३ | नृपेन | नृपेण |
| २८४ | १२ | वैप्यघी | वैप्यघी |
| २८६ | ८ | यवत्रतः | यवत्रतः |
| २८८ | ६ | भयकपिता | भयकम्पिता |
| " | १८ | मुदन्विता | मुदान्विता |
| " | १६ | गर्मो | गर्भो |
| २८६ | १४ | धीहृव्वरणा | धीहृव्वघरणा |
| " | २० | यथ | यथा |
| २६१ | १० | भूयः | भूयः |
| २६२ | ६ | संक्रान्यां | संक्रान्त्यां |
| " | १५ | गृहीत्य | गृहीत्वा |
| " | २० | देवै | देवैः |
| २६६ | १२ | बलवती | बलवती |
| २६७ | १५ | देवा | देवी |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४५१ | १८ | सार्द्ध | सार्द्धं |
| " | २१ | खण्डखण्डं | खण्डंखण्डं |
| ४५२ | ७ | महावाहो | महाबाहो |
| " | २१ | जलवुद्बुद | जलबुद्बुद |
| " | २४ | निर्वार्य्यंते | निवार्य्यंते |
| ४५४ | ६ | वाव्यं | वायव्यं |
| " | १२ | शोक | शोकं |
| ४५५ | ३ | श्चतुर्दश | श्चतुर्दश: |
| " | २५ | कौशकीं | कौशिकीं |
| ४५६ | १० | लोभलोह | लोभमोह |
| ४५७ | १२ | कूङ्कुमेन | कुङ्कुमेन |
| " | २२ | साध्वीं | साध्वी |
| ४५८ | ८ | तेषामूर्द्धञ्च | तेषामूर्द्धंञ्च |
| " | ६ | मेदनीम् | मेदिनीम् |
| " | १४ | विप्रतः | विप्रत: |
| ४६० | २ | त्रिलाचनौ | त्रिलोचनौ |
| " | ८ | विचित्रतान् | विचित्रितान् |
| ४६२ | १५ | अनाथोहञ्च | अनाथोऽहञ्च |
| ४६५ | १६ | विजयास्यास्य | विजयस्यास्य |
| ४६७ | २० | मन्त्रेपु | मन्त्रेषु |
| ४६८ | ३ | पाञ्चभौकिक | पाञ्चभौतिक |
| " | ६ | वृधत | वृधती |
| • | २३ | व्यानिशाय | व्याधिनाशाय |
| ४६६ | १३ | विदुना | विदुषा |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४६६ | २३ | कामधेनूश्च | कामधेनुश्च |
| ४७२ | २० | पप॑ | पप॑ |
| ४७५ | १२ | संक्षभितं | संक्षुभितं |
| ४७६ | १० | श्याशानं | श्मशानं |
| " | २४ | नपेश्वरम् | नृपेश्वरम् |
| ४८३ | १२ | शुद्राणां | शूद्राणां |
| " | २३ | र्वल्म् | र्वल्म् |
| ४८७ | १० | शिछच्छेद | शिरच्छेद |
| ४८८ | १६ | त्रैलक्य | त्रैलोक्य |
| ४९१ | १२ | पर्शरामो | पर्शरामो |
| " | १७ | तच्छिरच्छेद | तच्छिरच्छेद |
| " | १८ | शिरोप | शिरक्षेप |
| " | १८ | तच्छिरच्छेद | तच्छिरच्छेद |
| ४९२ | ६ | ब्राह्मण॑ | ब्राह्मणं |
| ४९३ | ६ | पद्मिनीं | पद्मिनीं |
| " | ७ | पिपर्दनीम् | पिपर्दिनीम् |
| ४९४ | ८ | सदायतु | सदापतु |
| " | २१ | पातूर्द्ध | पातूर्ध्व |
| ४९६ | ५ | विनाग्रान्ये | विनाग्निन्ये |
| ४९७ | २० | वधाय | वधाय |
| ५०२ | ७ | शद्रासे | सद्रासे |
| ५०६ | २१ | बिभो | विभो |
| ५०८ | ८ | अभ्यर्च | अभ्यर्च |
| ५१२ | ६ | सद्य | सद्य |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३११ | १२ | गोरे | गोरेः |
| ३१३ | ५ | मुण | वांग |
| ३१४ | ३ | पत्र | पर्ई |
| " | १८ | त्वद्वारे | त्वाद्वारे |
| ३१५ | ६ | महाविष्ण | महाविष्णु |
| ३१६ | १३ | नरमाज | नरमान |
| ३१७ | २२ | सार्वांच | सार्वभि |
| ३१८ | | सद्गुरंच | सद्गुरंच |
| " | ४ | ध्यत्नि | ध्यतीते |
| ३१९ | १२ | सत्र | शुत्र |
| ३२१ | २१ | मनुम् | मनुम् |
| " | २५ | मण्डितत् | मण्डितम् |
| ३२३ | २ | मं | तं |
| ३२५ | १४ | भूरण | भूरणं |
| ३३१ | ५ | सरेस्यानां | सरेशान्यां |
| ३३३ | २० | विष्णु | विष्णु |
| ३३६ | १२ | पिषय | विषय |
| ३३७ | ११ | सत्यीत्य | सतीत्य |
| ३३८ | ६ | स्नायायामास | स्नापयामास |
| ३३९ | ३ | नपुंसकः | नपुंसकः |
| ३४० | १२ | शुभाभिषम् | शुभाशिषम् |
| ३४२ | १८ | प्रज्ञाणा | प्रज्ञाना |
| ३४७ | ४ | मूच्छि | मूच्छिं |
| ३५५ | ११ | धर्माभ्यां | धर्माभ्यां |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३५५ | १२ | सप | स पष |
| ,, | १५ | यौवनस्थाश्च | यौवनस्थाश्च |
| ,, | १७ | दम्रो | दमो |
| ,, | २३ | मेधसात् | मेधसान् |
| ३५६ | १४ | लोकाश्च | लोकाश्च |
| ,, | २१ | पृथक् | पृथक् |
| ३५७ | १४ | बन्धाति | बध्नाति |
| ३६२ | १६ | चञ्चिताम् | चर्चिताम् |
| ३६३ | १७ | जम्म | जन्म |
| ३६६ | ७ | ताम्रपिष्ठे | ताम्रपृष्ठे |
| ३६८ | ३ | प्राकृति | प्रकृति |
| ३७० | ४ | सिद्धिानां | सिद्धानां |
| ,, | १४ | मृतकवत्सा | मृतवत्सा |
| ३७१ | १० | धामिकः | धार्मिकः |
| ३७३ | १७ | श्रृणु | शृणु |
| ३७४ | ४ | नांरद् | नारद |
| ,, | १० | श्वित्त | श्वित्र |
| ३७७ | ३ | केवलम | केवलम् |
| ३७८ | ४ | रस्नश्च | रत्नश्च |
| ,, | ४ | यया | यथा |
| ,, | २२ | अक्षारा | अक्षरा |
| ३८६ | ४ | मूर्त्ति | मूर्ति |
| ,, | ५ | वह्निः | वह्निः |
| ,, | १३ | पुद्दलश्च | पुष्पदश्च |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २०१ | १२ | गोरी | गौरी |
| २०३ | ५ | कूप | कौप |
| २०४ | ३ | नम | नर्म |
| - | १६ | मारुपाई | मारूपाई |
| २१५ | ६ | [illegible] | [illegible] |
| २१६ | १३ | [illegible] | [illegible] |
| २१७ | ११ | [illegible] | [illegible] |
| २१८ | | [illegible] | [illegible] |
| - | ७ | [illegible] | [illegible] |
| २१९ | १५ | [illegible] | [illegible] |
| २२१ | २१ | [illegible] | [illegible] |
| - | २५ | [illegible] | [illegible] |
| २२२ | २ | [illegible] | [illegible] |
| २२५ | १७ | [illegible] | [illegible] |
| २२६ | ५ | [illegible] | [illegible] |
| २२३ | २० | [illegible] | [illegible] |
| २२६ | १२ | [illegible] | [illegible] |
| २२७ | ११ | [illegible] | [illegible] |
| २२८ | ६ | [illegible] | [illegible] |
| २२९ | २ | [illegible] | [illegible] |
| २४० | १२ | [illegible] | [illegible] |
| २४२ | १८ | [illegible] | [illegible] |
| २४३ | ४ | मूर्ष्नि | |
| २४५ | ११ | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४१७ | २५ | विनाकस्य | विनायकस्य |
| ४२० | ८ | ब्रह्मणा | ब्रह्मणा |
| ४२१ | ५ | विश्वाप्रश्च | विश्वासप्रश्च |
| ४२४ | ११ | व्योप्यश्च | व्याप्यश्च |
| ” | २४ | मिथ्यैव | मिथ्यैव |
| ४२५ | १० | क्षद्रा | क्षुद्रा |
| ” | २२ | पर्द्धयितं | वर्द्धयितुं |
| ४२७ | ५ | श्वेरचामरम् | श्वेतचामरम् |
| ४२८ | २२ | कुम्भपतकैः | कुम्भशतकैः |
| ४३३ | २ | विघ्नतो | विघ्नतो |
| ४३४ | ८ | पठेनित्यं | पठेन्नित्यं |
| ” | ११ | व | वा |
| ४३५ | २५ | तवाधना | तवाधुना |
| ४४० | १५ | लक्ष्यै | लक्ष्म्यै |
| ” | १७ | लक्ष्यै | ” |
| ” | १८ | ” | ” |
| ४४३ | ८ | गृहस्थाणां | गृहस्थानां |
| ” | २० | रूक्ष्म | रूक्ष |
| ” | २४ | मूर्द्धिन | मूर्द्धिन |
| ४४४ | १० | इत्येव | इत्येवं |
| ४४८ | ” | विविधञ्च | विविधञ्च |
| ४४९ | ८ | प्रात्य | प्राप्य |
| ४५० | ७ | शमयायामास | शमयामास |
| ४५१ | २ | राज्ञः | राज्ञो |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३८७ | २२ | मानाश्च | मानश्च |
| ” | २५ | द्वेपर्षि | द्वेपर्षि |
| ३८६ | १० | लमेन्नर | लमेन्नः |
| ” | ” | क्षत्र | श्रुत्र |
| ” | २१ | सर्वान् | सर्वान् |
| ३६२ | २२ | निमित्तेन | निमित्तेन |
| ३६३ | ३ | पूर्ण | पूर्ण |
| ३६४ | १२ | कस्यजेत् | कस्यचित् |
| ” | २० | भूपणपितैः | भूपणभूपितैः |
| ३६५ | २ | सिंहसने | सिंहासने |
| ” | १२ | मतफलं | मठफलं |
| ” | १४ | मृना | मृदा |
| ” | २० | निन्द्रादय | निद्रादय |
| ३६७ | २ | ब्रह्मावाच | ब्रह्मोवाच |
| ३६८ | ७ | निलिप्तो | निर्लिप्तो |
| ४०१ | २१ | पूज्ञायिष्यसि | पूजयिष्यसि |
| ४०२ | ६ | व्यजनम् | व्यञ्जनम् |
| ” | २० | ध्रवम् | ध्रुवम् |
| ४०३ | ७ | प्रातोति | प्राप्नोति |
| ” | १७ | श्चक्ष | श्चक्षू |
| ४०४ | १८ | ानन्दकम् | निन्दकम् |
| ४०५ | १० | यद | यद् |
| ४०६ | १३ | देवाश्चा | देवाश्च |
| ” | १८ | सूर्य्यभाऽनु | सूर्यभानु |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४१७ | २५ | विनाकस्य | विनायकस्य |
| ४२० | ८ | ब्रह्मणा | ब्रह्मणा |
| ४२१ | ५ | विश्वाप्रश्च | विश्वासप्रश्च |
| ४२४ | ११ | व्योप्यञ्च | व्याप्यञ्च |
| " | २४ | मिथ्यैव | मिथ्यैव |
| ४२५ | १० | क्षद्रा | क्षुद्रा |
| " | २२ | वर्द्धयितं | वर्द्धयितुं |
| ४२७ | ५ | श्वेरचामरम् | श्वेतचामरम् |
| ४२८ | २२ | कुम्भपतकैः | कुम्भशतकैः |
| ४३३ | २ | विघ्रतो | विघ्नतो |
| ४३४ | ८ | पठेनित्यं | पठेन्नित्यं |
| " | ११ | व | वा |
| ४३५ | २५ | तवाधना | तवाधुना |
| ४४० | १५ | लक्ष्यै | लक्ष्म्यै |
| " | १७ | लक्ष्यै | " |
| " | १८ | " | " |
| ४४३ | ८ | गृहस्थाणां | गृहस्थानां |
| " | २० | रूक्ष्म | रूक्ष |
| " | २४ | मूद्ध्नि | मूर्द्ध्नि |
| ४४४ | १० | इत्येव | इत्येवं |
| ४४८ | " | विविधञ्च | विविधञ्च |
| ४४६ | ८ | प्रात्य | प्राप्य |
| ४५० | ७ | शमयायामास | शमयामास |
| ४५१ | २ | राज्ञः | राज्ञो |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४४१ | १४ | [illegible] | [illegible] |
| " | २१ | [illegible] | [illegible] |
| ४४३ | ३ | [illegible] | [illegible] |
| " | २१ | [illegible] | [illegible] |
| " | २४ | [illegible] | [illegible] |
| ४४४ | ६ | [illegible] | [illegible] |
| " | १४ | [illegible] | [illegible] |
| ४४५ | ३ | [illegible] | [illegible] |
| " | २५ | [illegible] | [illegible] |
| ४४६ | १० | [illegible] | [illegible] |
| ४४७ | १६ | [illegible] | [illegible] |
| " | २१ | [illegible] | [illegible] |
| ४४८ | ८ | [illegible] | [illegible] |
| " | १ | [illegible] | [illegible] |
| " | १४ | [illegible] | [illegible] |
| ४५० | २ | [illegible] | [illegible] |
| " | ८ | [illegible] | [illegible] |
| ४६२ | १५ | [illegible] | [illegible] |
| ४६५ | १६ | [illegible] | [illegible] |
| ४६७ | २० | मन्त्रेषु | मन्त्रेषु |
| ४६८ | ३ | [illegible] | [illegible] |
| " | ६ | [illegible] | [illegible] |
| " | २३ | [illegible] | [illegible] |
| ४६९ | १२ | पिस्पना | पिस्पाना |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४६९ | २३ | कामधेनूश्च | कामधेनुश्च |
| ४७२ | २० | पर्ण | पर्ण |
| ४७५ | १२ | संक्षमितं | संक्षुमितं |
| ४७६ | १० | श्याशानं | श्मशानं |
| ,, | २४ | नपेश्वरम् | नृपेश्वरम् |
| ४८३ | १२ | शुद्राणां | शूद्राणां |
| ,, | २३ | वैलम् | वैलम् |
| ४८७ | १० | शिछच्छेद | छिच्छेद |
| ४८८ | १९ | त्रैलक्य | त्रैलोक्य |
| ४९१ | १२ | पर्शरामो | पर्शरामो |
| ,, | १७ | तच्छिच्छेद | तच्छिच्छेद |
| ,, | १८ | क्षिसेप | क्षिक्षेप |
| ,, | १८ | तच्छिच्छेद | तच्छिच्छेद |
| ४९२ | ९ | ब्राह्मवं | ब्राह्मणं |
| ४९३ | ६ | पद्मिनीं | पद्मिनीं |
| ,, | ७ | विवर्द्धनीम् | विवर्द्धिनीम् |
| ४९४ | ८ | सदायतु | सदापतु |
| ,, | २१ | पातूर्द्ध | पातूद्र्ध्व |
| ४९६ | ५ | विनाशन्यै | विनाशिन्यै |
| ४९७ | २० | वधाय | वधाय |
| ५०२ | ७ | शङ्काशै | सङ्कासै |
| ५०६ | २१ | विभो | विभो |
| ५०८ | ८ | मध्यर्थं | मध्यर्थ |
| ५१२ | ६ | सद्य | सद्म |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५१२ | १३ | पुलकाङ्किकल | पुलकाङ्कित |
| ५१३ | १३ | यल्यतु | यत्नयतु |
| ५१५ | १० | ध्रुपम | ध्रुपम् |
| " | २२ | कर्त्तं | कर्त्तुं |
| ५१६ | २३ | महत्तुजबे | महज्जबे |
| ५१७ | २ | पिप्पगोलोकम् | पिप्पगोलक |
| " | २४ | शस्पि | शक्ति |
| ५१८ | ३ | स्मृतिर्मधा | स्मृतिर्मेधा |
| " | १८ | सम्ममेण | सम्भ्रमेण |
| ५१९ | ५ | लभेत् | लभेत्तु |
| ५२१ | ८ | गणेशचेनं | गणेशयचनं |
| ५२२ | १६ | चेव | चैव |

इति श्री ब्रह्मवैवर्तमहापुराणस्य ब्रह्म-प्रकृति-गणेशखण्डानां शुद्धिपत्रम्।

ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु ।